# BIBLIOTHECA INDICA.

A

COLLECTION OF ORIENTAL WORKS

PUBLISHED BY

THE ASIATIC SOCIETY OF BENGAL.

NEW SERIES NOS. 400, 401, 403, 406, 407, 410, 417, 418, 419, 422, 426 & 429.

---

# Chaturvarga Chintámani.






BY

## HEMÁDRI.

EDITED BY

PANDITA YOGEŚVARA BHAṬṬÁCHARYA

AND

PANDITA KÁMÁKHYÁNÁTHA TARKARATNA.

---

VOL. II.

VRATA-KHAṆḌA.

PART II.

CALCUTTA:

PRINTED BY K. N. BHATTACHARYA AT THE GANEŚA PRESS.

1879.

# चतुर्व्वर्गचिन्तामणि

## व्रतखण्डम्।

श्रीहेमाद्रिणा विरचितम्।

द्वितीयभागात्मकं।

———ooo@ooo———

... नामकसमाजानुमत्यातत्साहाय्येन च

... चारितम्।

———

... रोमणिना परिशोधितम्।

... मरणानन्तरं

... श्वरभट्टाचार्य्येण

... ख्यानायतकरत्नेन च

... यदंश परिशोधितञ्च।

———

कलिकाता

... यन्त्रे मुद्रितम्।

सम्वत् १९३५।

# सूचीपत्रम् ।

———000———


| | पृष्ठा |
|---|---|
| **अ** | |
| अग्निप्रवेशविधिः .. | ९५६ |
| अग्निवैकल्यं ... | १०८ |
| अनङ्गत्रयोदशीव्रतं ( कालोत्तरोक्तं ) | ८ |
| अनङ्गत्रयोदशीव्रतं ( भविष्योत्तरोक्तं ) | १ |
| अनन्तचतुर्दशीव्रतं .. | २६ |
| अनन्तव्रतं ( विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं ) | ६६७ |
| अनन्तव्रतोद्यापनविधिः .. | ३६ |
| अनरकव्रतं .. | ८६९ |
| अनशन विधिः .. | ९४८ |
| अमावस्याव्रतं ( कूर्म्मपुराणोक्तं ) | २५७ |
| अमावस्याव्रतानि .. | २४६ |
| अर्कव्रतं .. | ५०९ |
| अवाविक्षतोपशमनं ... | १०८९ |
| अर्द्धश्रावणिकाव्रतं .. | ७५३ |
| अर्द्धोदयव्रतं .. | २४६ |
| अरुन्धतीव्रतं .. | ३१२ |
| अशोकत्रिरात्रव्रतं .. | २७९ |
| अशोकपूर्णिमाव्रतं .. | १६२ |
| अश्वव्रतं .. | ९११ |
| अश्वशान्तिः .. | १०३१ |
| अश्विनीस्नानं .. | ५९३ |
| अच्छिद्रधूस्नानं .. | ६५४ |
| अहिंसाव्रतं .. | ८६५ |
| **आ** | |
| आज्ञासंक्रान्तिव्रतं ... | ७३८ |
| आदित्यव्रतं ( भविष्यपुराणोक्तं ) | ५२१ |
| आदित्यव्रतं ( भविष्योत्तरोक्तं ) | ५२० |
| आदित्यशयनव्रत ... | ६८० |
| आदित्यशान्तिव्रतं ... | ५२३ |
| आदित्यहृदयविधिः ... | ५२६ |
| आदित्याभिमुखविधिः ... | ५२५ |
| आनन्दव्रतं ... | ८४२ |
| आन्दोलनविधिः ... | ७४५ |
| आयुधव्रतं ... | ८३१ |
| आयुर्व्रतं ... | २२७ |
| आयुःसंक्रान्तिव्रतं ... | ७२७ |
| आरोग्यव्रत ... | ७६१ |
| आशादित्यव्रतं ... | ५२३ |
| आश्विनव्रतानि ... | ७५९ |
| आषाढव्रतानि ... | ७५१ |
| **इ** | |
| इन्द्रपौर्णमासीव्रतं ... | १९६ |

| | पृष्ठा |
|---|---|
| इन्द्रव्रतं ... | ८८३ |
| **ई** | |
| ईश्वरव्रतं ... | १४८ |
| **उ** | |
| उपस्करवैकृतीपशमः ... | १०८६ |
| उमामहेश्वरव्रतञ्चापरं ... | ३९६ |
| उमामहेश्वरव्रतं देवीपुराणोक्तं | ६९१ |
| **ऋ** | |
| ऋतुव्रतानि ... | ८५८ |
| **ए** | |
| एकभक्तव्रतं ... | ७४८ |
| एकभक्तव्रतं विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं | ८६३ |
| **औ** | |
| औत्पातिकं ... | १०७८ |
| **क** | |
| कदलीव्रतं ... | १३४ |
| करणव्रतं ... | ७१८ |
| करणव्रतानि ... | ७१८ |
| करिव्रतं ... | ९११ |
| कल्पवृक्षव्रतं ... | ९१० |
| काञ्चनपुरीव्रतं ... | ८६८ |
| कामत्रयोदशीव्रतं ... | २५ |
| कामदेवव्रतं ... | १८ |
| कामधेनुव्रतं ... | ३४४ |
| कामव्रतं ... | २५ |
| कामावाप्तिव्रतं ... | १५५ |
| कारीषाग्निसाधनं ... | ९६० |
| कार्त्तिकमासव्रतं ... | ७७२ |
| कार्त्तिकव्रतानि ... | ७६२ |
| कालविरात्रिव्रतं ... | ३२६ |
| कीर्त्तिव्रतं ... | ८६३ |
| कृच्छ्रव्रतानि ... | ७६९ |
| कृत्तिकाव्रतं ... | १७९ |
| कृत्तिकास्नानं ... | ५९७ |
| कृष्णचतुर्द्दशीव्रतं ... | ६५ |
| कृष्णचतुर्द्दशीव्रतं (कूर्म्मपुराणोक्तं) | १५६ |
| कृष्णचतुर्द्दशीव्रतं ( शिवधर्म्मोक्तं ) | १५४ |
| कृष्णचतुर्द्दशीव्रतं ( सौरपुराणोक्तं ) | १५६ |
| कोकिलाव्रतं ... | ७५५ |
| कौमुदीमहोत्सवः .. | ३५० |
| कौमुदीव्रतं .. | ७६० |
| क्षेमव्रतं .. | १५४ |
| **ग** | |
| गजनीराजनविधिः .. | २२६ |
| गजपूजाविधिः .. | २२२ |
| गजशान्तिः .. | १०३६ |
| गन्धव्रतं ... | २४१ |
| गल्लसिकाव्रतं .. | ८६१ |
| गायत्रीव्रतं ... | ६२ |
| गुणावाप्तिव्रत ... | ४९९ |
| गुरुव्रतं ... | ५७९ |
| गोत्रिरात्रव्रतकथा ... | २९३ |
| गोत्रिरात्रव्रतं ( भविष्योत्तरोक्तं ) | ३२३ |
| गोत्रिरात्रव्रतं ( स्कन्दपुराणोक्तं ) | २८८ |
| गोपदत्रिरात्रव्रतं ... | ३२३ |
| गोयुग्मव्रतं ... | ६९४ |

| | पृष्ठा | | पृष्ठा |
|---|---|---|---|
| गौरव्रतं ... | ६६५ | जयपौर्णमासीव्रतं ... | १६० |
| गोशान्तिः ... | १०२७ | जयव्रतं (विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं) | १५५ |
| ग्रहनिध्यर्कयागमाहात्म्यकीर्त्तनं | ५९० | जयविधिः ... | ५२४ |
| **घ** | | जयावाप्तिव्रतं ... | ७६८ |
| घटिकाभिषेकः .. | १०१४ | जातिविराचिव्रतं ... | २२० |
| घृतभाजनव्रतं .. | २४० | ज्ञानावाप्तिव्रतं ... | ७४६ |
| घृतश्रयनविधिः .. | ६११ | ज्येष्ठाव्रतानि ... | ७५० |
| घृताविचणविधिः ... | ८६२ | ज्येष्ठाव्रतं ... | ६३० |
| **च** | | **त** | |
| चण्डिकाव्रतं .. | ४१० | ताम्बूलसंक्रान्तिव्रतं ... | ७४० |
| चतुर्द्दशीजागरणव्रतं .. | १४६ | तिथिनक्षत्रवारव्रतानि ... | ५८८ |
| चतुर्द्दशीव्रतं ... | १५६ | तिथियुगलव्रतपञ्चकं ... | २६७ |
| चतुर्द्दशीव्रतानि ... | २६ | तीव्रतं ... | ६१७ |
| चतुर्द्दशीव्रत(भविष्योत्तरोक्तं) | १२२ | तेजःसंक्रान्तिव्रतं ... | ७२४ |
| चतुर्द्दश्यष्टमीनक्तव्रतं .. | १५८ | त्रयोदशीव्रतानि ... | १ |
| चतुर्म्मासीव्रतानि ... | ८०० | त्रयोदशीव्रतं ... | १६ |
| चतुर्युगव्रतं ... | ५०० | त्रिपुरसूदनव्रतं .. | ५२५ |
| चन्द्रनक्षत्रशान्तिः ... | ५५८ | त्रिविक्रमविराविव्रतं .. | ३२८ |
| चन्द्रव्रतं ... | ३४४ | त्रिविक्रमव्रतं ... | ८५४ |
| चन्द्रव्रतं पद्मपुराणोक्तं ... | ८८४ | त्रिविक्रमव्रतं (सौरपुराणोक्तं) | ८५६ |
| चन्द्रव्रतं विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं | ३५६ | त्र्यम्बकव्रतं ... | १४७ |
| चन्द्रोदितोद्यापनव्रतं ... | १७५ | **द** | |
| चन्द्रसूर्य्योपरागस्नानम् ... | १०२१ | दन्तोत्पत्तिशान्तिः .. | १०२४ |
| चान्द्रायणव्रतं ... | ७८७ | दमनकपूजाविधिः .. | ४५३ |
| **ज** | | दशादित्यव्रतं ... | ५०६ |
| जन्मभारशान्तिः ... | १०२७ | दिवाकरव्रतं ... | ५२८ |

| | | पृष्ठा |
|---|---|---|
| दीपदानविधिः | .. | ४७५ |
| दीपव्रतं | .. | ४९१ |
| दीप्तिव्रतं | ... | ८६६ |
| दुर्गन्धदौर्भाग्यनाशनत्रयोदशीव्रतं | | १४ |
| दूर्वाविरात्रव्रतं | ... | ३१५ |
| देवव्रतं पद्मपुराणोक्तं | ... | ८६२ |
| देवव्रतं | ... | ६४ |
| देवमूर्त्तिव्रतं | ... | ५०४ |
| देवशयनोत्थानविधिः | ... | ८०० |
| देवीव्रतं | ... | २२९ |
| देवीव्रतं देवीपुराणोक्तं | ... | ७७५ |
| देवीव्रतं भविष्योत्तरोक्तं | .. | ८८४ |
| देवीव्रतं देवीपुराणोक्तं | ... | ९१५ |
| द्वितीयाभद्राव्रतं | .. | ७२४ |
| द्वीपव्रतं | ... | ४६५ |

ध

| | | |
|---|---|---|
| धनसंक्रान्तिव्रतं | .. | ७३६ |
| धनावाप्तिव्रतं विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं | | १५५ |
| धनावाप्तिव्रतं | ... | ५०१ |
| धनावाप्तिव्रतं विष्णुधर्म्मोक्तं | | ७५९ |
| धराव्रतं | .. | ९०६ |
| धान्यसंक्रान्तिव्रतं | ... | ७३० |
| धामत्रिरात्रव्रतं | .. | ३२१ |
| धाराव्रतं | ... | ८५३ |
| धृतिव्रतं | ... | ५८६ |
| ध्वजव्रतं | ... | ८७९ |

न

| | | पृष्ठा |
|---|---|---|
| नक्षत्रपुरुषव्रतं | ... | ६९९ |
| नक्षत्रपूजाविधिः | ... | ५९४ |
| नक्षत्रव्रतानि | ... | ५९३ |
| नक्षत्रहोमविधिः | .. | ६८४ |
| नक्षत्रार्थव्रतं | ... | ६९६ |
| नदीव्रतं | ... | ४६२ |
| नन्दव्रतं | .. | १८ |
| नन्दादिविधिः | ... | ५२१ |
| नन्दादिव्रतविधिः | ... | ५२७ |
| नन्दाविधिः | ... | ५२३ |
| नन्दाव्रतं | ... | ८३२ |
| नवनक्षत्रशान्तिः | ... | ६८८ |
| नवस्याद्युपवासव्रतं | ... | ५०९ |
| नवपूर्णिमाव्रतं | ... | १९६ |
| नरसिंहचतुर्द्दशीव्रतं | ... | ४१ |
| नरसिंहत्रयोदशीव्रतं | ... | १४ |
| नानातिथिव्रतानि | ... | २५८ |
| नानाफलपूर्णिमाव्रतं | ... | २४२ |
| नानामासव्रतानि | .. | ८०० |
| निकुम्भपूजा | ... | २४१ |
| नीराजनविधिः | ... | ६७५ |

प

| | | |
|---|---|---|
| पञ्चषष्ठपूर्णिमाव्रतं | ... | १९५ |
| पञ्चमूर्त्तिव्रत | ... | ४६८ |
| पत्रव्रतं | .. | ८६४ |
| पयोव्रतं | .. | २५४ |

| | | पृष्ठा |
|---|---|---|
| पञ्चनखव्रतं | .. | ९०५ |
| पर्व्वभूभाजनव्रतं | .. | ९०६ |
| पवित्रारोहणविधिः | ... | ४४० |
| पातालव्रतं | ... | ५०६ |
| पात्रव्रतं | .. | ३८१ |
| पादोदकस्नानं | ... | ६५० |
| पापमोचनव्रतं | .. | ३९६ |
| पापसंक्रान्तिव्रतं | ... | ७३९ |
| पालीचतुर्द्दशीव्रतं | .. | १३० |
| पाशुपतव्रतं | .. | ४५५ |
| पाशुपतव्रतं वायुसंहितोक्तं | | २११ |
| पाशुपतव्रतं ( मलव्यपोहनं ) | | १९७ |
| पितृव्रतं | ... | २५३ |
| पितृव्रतं ( भविष्यपुराणोक्तं ) | | २५४ |
| पितृव्रतं ( विष्णुपुराणोक्तं ) | | २५५ |
| पितृव्रतं ( विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं ) | | ५०५ |
| पुत्रकामव्रतं | .. | १७१ |
| पुत्रदोविधिः | .. | ५२४ |
| पुत्रव्रतं | .. | ८८३ |
| पुत्रप्राप्तिव्रतं | ... | २३० |
| पुत्रोत्पत्तिव्रतं | .. | ६५९ |
| पुराणश्रवणविधिः | ... | ९९७ |
| पूर्णिमाव्रतं विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं | | २४३ |
| पूर्णिमाव्रतं वह्निपुराणोक्तं ... | | २४४ |
| पौर्णमासीव्रतानि | ... | १६० |
| पौषव्रतानि | ... | ७८६ |
| प्रकीर्णकव्रतानि | ... | ८६८ |
| प्रतिमाव्रतं | ... | ५७ |
| प्रदीपविधिः | ... | ७६३ |
| प्रदोषव्रतं | ... | १९ |
| प्रभाव्रतं | ... | ८८४ |
| प्रसववैकृतं | ... | १०८६ |
| प्राजापत्यव्रतं | ... | ८८३ |
| प्राप्तिव्रतं | ... | ८६६ |
| **फ** | | |
| फलव्रतं | ... | ८१८ |
| फलसंक्रान्तिव्रतं | ... | ७६३ |
| फाल्गुणविधिः | .. | ७९८ |
| फाल्गुणव्रतानि | .. | ७९७ |
| **ब** | | |
| बन्ध्याभिषेकविधिः | ... | १०१७ |
| बाणिज्यलाभव्रतं | ... | ६४८ |
| बुधव्रतं | ... | ५७८ |
| वृक्षोत्पातशमनं | ... | १०८१ |
| ब्रह्मकूर्च्चव्रतं | ... | ९३१ |
| ब्रह्मकूर्चव्रतं विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं | | २३८ |
| ब्रह्मगायत्रीचन्द्ररोहिणीव्रतं | | ६९४ |
| ब्रह्मण्यप्राप्तिव्रत | ... | ५०० |
| ब्रह्मव्रतं | .. | ८८५ |
| ब्रह्मसावित्रीव्रतं | ... | २५८ |
| ब्राह्मण्यावाप्तिव्रतं | ... | ६४५ |
| **भ** | | |
| भद्रचतुष्टयव्रतं | .. | ३८३ |
| भद्राविधिः | ... | ५२३ |
| भवानीव्रतं | ... | ६९७ |
| भाद्रपदव्रतानि | ... | ७५८ |

| | | पृष्ठा |
|---|---|---|
| भीमव्रतं | ... | ८८४ |
| भीष्मपञ्चकव्रतं | .. | ३२६ |
| भूभाजनव्रतं | .. | ८६७ |
| भूतमातृत्सवः | .. | २९५ |
| भूमिव्रतं | ... | ६२ |
| भृगुपतनविधिः | ... | ९६१ |
| भौमसंक्रान्तिव्रतं | ... | ७२३ |
| भौमावाप्तिव्रतं | ... | ७५२ |
| भौमवारव्रतं | ... | ५६७ |
| भौमव्रतं | ... | ५६७ |
| भौमव्रतं ( पद्मपुराणोक्तं ) | ... | ५६८ |
| **म** | | |
| मङ्गलव्रतोद्यापनं | ... | ५७४ |
| मङ्गलाव्रतं | ... | ३२१ |
| मदनमहोत्सवः | ... | ११ |
| मनोरथपूर्णिमाव्रतं | ... | १२३ |
| मनोरथसंक्रान्तिव्रतं | ... | ७४१ |
| महातपोव्रतानि | .. | ९१७ |
| महापौर्णमासीव्रतं | ... | १९१ |
| महाप्रस्थानं | ... | ९५४ |
| महाफलव्रतं | .. | २९२ |
| महाराजव्रतं | .. | १२९ |
| महालक्ष्मीव्रतं | .. | ४९५ |
| महाव्रतं | ... | ३७७ |
| महाव्रतं ( लिङ्गपुराणोक्तं ) | .. | ३९८ |
| महाव्रतं ( विष्णुधर्मोत्तरोक्तं ) | | ४६१ |
| महाशान्तिः | .. | ५८० |
| महाशान्तिः ( भविष्यपुराणोक्ता ) | | १०७२ |

| | | पृष्ठा |
|---|---|---|
| महेश्वरव्रतं | ... | १५२ |
| महेश्वरस्नानं | .. | १००९ |
| महोत्सवव्रतं | ... | १४८ |
| माघमासव्रतानि | ... | ७८९ |
| माघस्नानविधिः | ... | ७९० |
| मार्गशीर्षव्रतानि | .. | ७८४ |
| मासमषिधाराव्रतं | ... | ८२५ |
| मासव्रतं | ... | ८५२ |
| मासव्रतानि | ... | ७४४ |
| मासोपवासव्रतं | ... | ७७६ |
| मुखव्रतं | ... | ८६५ |
| मूलशान्तिः | ... | ६४५ |
| मूलस्नानं | ... | ६४४ |
| मृगपक्षिवैकृतोपशमनं | ... | १०८ |
| मौनव्रतम् | ... | ४८२ |
| मौनव्रतोद्यापनम् | ... | ४९२ |
| **य** | | |
| यमलजननशान्तिः | .. | १०२३ |
| यमव्रतं | ... | १५१ |
| यमव्रतं ( महाभारतोक्तं ) | ... | ३७७ |
| यमव्रतं ( विष्णुधर्मोत्तरोक्तं ) | | १५३ |
| यमादर्शनत्रयोदशीव्रतं | ... | ९ |
| युगावतारव्रतं | ... | ५१८ |
| युगादिविधिः | ... | ५१७ |
| युगादिव्रतं | .. | ५१४ |
| योगव्रतं | .. | ७०७ |
| योगव्रतानि | ... | ७०७ |

पृष्ठा

र

रक्षाबन्धनपौर्णमासीव्रतं ... १९०
रथयात्रोत्सवः देवीपुराणोक्तः ४२०
रथयात्रोत्सवः ... ४१४
रम्भाचिरात्रव्रतं ... २८३
रविव्रतं ... ७९५
राज्ञिव्रतं ... २३८
रुद्रव्रतं .. ८६६
रुद्रव्रतं (पद्मपुराणोक्तं) ... ३९४
रुद्रस्नानम् ... १०११
रूपसत्रव्रतं ... ६७१
रूपसंक्रान्तिव्रतं ... ७३४
रूपावाप्तिव्रतं .. ●४४
रोगहरविधिः ... ५२६
रोहिणीव्रतं .. ५९८
रोहिणीस्नानं .. ५९९

ल

लक्ष्मीनारायणव्रत ... १६४
ललिताव्रत .. ५१०
लावण्यावाप्तिव्रतं ... ७८५
लोकव्रतं ... ४६३

व

वटसावित्रीव्रतं ... १४७
वरव्रतं ... ८८६
वरुणव्रतं पद्मपुराणोक्तं .. ९०५
वरुणव्रतं ... १३६
वर्द्धापनविधिः ... ८८९

पृष्ठा

वसुव्रतं ... ८८५
व्यस्तचिरात्रव्रतं ... ३२१
वह्निव्रतं ... २५५
वायुव्रतं .. १५२
वारव्रतानि .. ५२०
वारिव्रतं ... ८५७
विद्यावाप्तिव्रतं ... ७९६
विनायकस्नपनं ... १००१
विरूपाक्षव्रतं .. १५३
विल्वत्रिरात्रव्रतं .. १०८
विशोकसंक्रान्तिव्रतं ... ७४२
विष्टिव्रतं ... ७१९
विष्णुदेवकीव्रतं .. ८३६
विष्णुपदव्रतं .. ६६५
विष्णुव्रतं ... ४५८
वृन्ताकत्यागविधिः .. ९०९
वृषव्रतं .. २४२
वृषोत्सर्गः .. ९८३
वृष्टिविकृतिप्रशमनं .. १०८४
वेदव्रतं .. ८२७
वैश्याव्रतं .. ५४१
वैशाखव्रतानि .. ७४८
वैशाखीकार्त्तिकीमाघीविधिः १९६
वैश्वानरव्रतं ... ८६०
वैष्णवव्रतं ... ८१८
व्यतीपातव्रतं नारदीयपुराणोक्तं ७०८
व्यतीपातव्रतं ... ७१३
व्योमव्रतं ... ८९३

| | पृष्ठा |
|---|---|
| **श** | |
| शक्रध्वजोच्छ्रायविधिः ... | ४०१ |
| शक्रव्रतं ... | २३७ |
| शक्रव्रतं . | ८६६ |
| शङ्करनारायणव्रतं ... | ६६३ |
| शतभिषास्नानं ... | ६५३ |
| शक्रनाशनव्रतं ... | ५९७ |
| शनिव्रतं ... | ५८० |
| शनैश्चरादिशान्तिः .. | ५८७ |
| शङ्खव्रतं .. | ८६७ |
| शान्तिकपौष्टिकानि .. | १००३ |
| शाम्भरायणीव्रतं ... | ६५९ |
| शिवचतुर्द्दशीव्रतं ... | ५८ |
| शिवनक्तव्रतं ... | ३९८ |
| शिवरथव्रतं ... | ८५९ |
| शिवरात्रिव्रतं ... | १०४ |
| शिवरात्रिव्रतमाहात्म्यं ... | ९२ |
| शिवरात्रिव्रतं स्कन्दपुराणोक्तं | ७१ |
| शिवलिङ्गव्रतं ... | ८८७ |
| शिवव्रतं ... | २४३ |
| शिवयोगयुक्तशिवरात्रिव्रतमाहात्म्यं | ५८७ |
| शिवव्रतं कालोत्तरोक्तं ... | ३९८ |
| शिवव्रतं पद्मपुराणोक्तं ... | ८१८ |
| शिवव्रतं कालोत्तरोक्तं ... | ८१९ |
| शिवोपवीतव्रतं ... | ८४३ |
| शीलावाप्तिव्रतं ... | ७८६ |
| शकुनविरावव्रतं ... | ३२१ |

| | पृष्ठा |
|---|---|
| शुक्रव्रतं .. | ५७९ |
| शुल्कदानव्रतं ... | २५२ |
| शैलव्रतं ... | ४६३ |
| शैवनक्षत्रपुरुषव्रतं ... | ६९३ |
| शैवमहाव्रतं ... | ८४३ |
| शैवमहाव्रतमपरं ... | ४४८ |
| शैवोपवासव्रतं .. | ३९७ |
| श्यामामहोत्सवः ... | ९१२ |
| श्येनप्रासनविधिः ... | २४१ |
| श्रद्धाव्रतं ... | ८६२ |
| श्रावणव्रतं ... | ७५२ |
| श्रीप्राप्तिव्रतं ... | ७५१ |
| श्रीव्रतं . | ४६६ |
| **स** | |
| सदाव्रतं नाम अन्नदानमाहात्म्यं | ४६९ |
| सन्तानदव्रतं भविष्योत्तरोक्तं | २३८ |
| सप्तर्षिव्रतं ... | ५०८ |
| सप्तसागरव्रतं ... | ५०७ |
| सप्तसुन्दरकव्रतं ... | ८८६ |
| समुद्रव्रतं ... | ४६४ |
| सलिलाशय वैकृत्यं ... | १०८५ |
| सङ्क्रान्तिव्रतानि ... | ७२७ |
| संक्रान्तिव्रतानि देवीपुराणोक्तानि | ७२८ |
| संग्रामविधिः .. | ९६९ |
| सघाटकव्रत वराहपुराणोक्तं | ३७० |
| सम्पूर्णव्रतं ... | ८७६ |
| सम्भोगव्रतं भविष्यत्पुराणोक्तं | ३९५ |
| संवत्सरव्रतं विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं | ४१९ |

| | पृष्ठा |
|---|---|
| सम्वत्सरव्रतानि ... | ८६२ |
| सर्व्वकामव्रतं ... | १४५ |
| सर्व्वकामाप्तिव्रतं ... | ६५५ |
| सर्व्वव्रतं सौरपुराणोक्तं ... | २४ |
| सर्व्वाघाप्तिव्रतं ... | ५० |
| सागरव्रतं ... | ८१८ |
| सामव्रतं ... | ८६४ |
| सावित्रीपूजामन्त्रः ... | २७२ |
| सुकलत्रप्राप्तिव्रतं ... | ६०० |
| सुखव्रतं ... | ५०९ |
| सुगतिव्रतं विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं | १५५ |
| सुखसुप्तिव्रतं आदित्यपुराणोक्तं | ३४८ |
| सुजन्मावाप्तिव्रतं ... | ७२७ |
| सूर्य्यनक्तव्रतं ... | ५३८ |
| सूर्य्यव्रतं कालोत्तरोक्तं ... | ६४ |
| सूर्य्यव्रतं पद्मपुराणोक्तं ... | ७६४ |
| सूर्य्यव्रतं भविष्यत्पुराणोक्तं | ७६४ |
| सूर्य्यव्रतं सौरधर्म्मोक्तं ... | ५५२ |
| सोमवारव्रतानि ... | ५५७ |
| सोमव्रतं .. | ५५८ |
| सोमव्रतं भविष्यत्पुराणोक्तं | २२९ |
| सोमव्रतं भविष्यत्पुराणोक्तं | १७४ |
| सौख्यव्रतं भविष्यत्पुराणोक्तं | ४४० |
| सौगन्ध्यव्रतं ... | ८६० |
| सौभाग्यव्रतं ... | २४५ |
| सौभाग्यसङ्क्रान्तिव्रतं ... | ७३५ |
| सौभाग्यावाप्तिव्रतं ... | ७९९ |
| सौरनक्तव्रतं ... | ५२१ |
| स्त्रीपुत्रकामावाप्तिव्रतं ... | ८२१ |
| स्त्रीव्रतं ... | ८१८ |
| सारस्वतव्रतं ... | ८६१ |

# ग्रन्थानां वचनसंख्या।

——oo॰oo——


पृष्ठा

**अ**

अथर्वणगोपथब्राह्मणं — ८९१, ८९२

अथर्व्वपरिशिष्टं—६१८, ६२३,६२६।

अथर्व्ववेदः—९१६।

**आ**

आदिपुराणं—२४२, २४३,९१५।

आदित्यपुराणं—३४९, ५१८, ६५०, ७६८, ९४८, ९५७, ९५९, ९८९।

**क**

कालिकापुराणं—१५१, १८०, ३३१, ३८१, ९७२, ९९२।

कालोत्तरं—९, ४००, ५९०, ८२१।

कूर्म्मपुराणं—१५१, १५६, २५७, ९५९।

**ग**

गर्गः—६८८,

गारुड़पुराणः—६३, ७२९, ८७६।

**द**

देवीपुराणं—२७३, ३३५, ४२४, ४५५, ५९२, ६२७, ६९३, ६९४, ६९५, ६९८, ७६०, ७७६, ८५४, ८५६, ९१६, ९६४, ९९०।

पृष्ठा

**न**

नरसिंहपुराणं—१४, ४९,३७५, ३७७, ३८१।

नारदीयपुराणं—७१७, ७७५।

नृसिंहपुराणं—५२१।

**प**

पद्मपुराणं—२५, १४७, १७४, १७९, २३९, २४२, २५४, ३१८, ३२२, ३९४, ५७४, ६७८, ६८४, ६९४, ७४९, ८१८, ८५७, ८६०, ८६२, ८६३, ८६५, ८६६, ८६७, ८८३, ८८४, ८८५, ८८६, ८९३, ९०१, ९०२, ९०४, ९०५, ९११।

पालकथाः--२२२।

प्रभासखण्ड—२४५।

**ब**

ब्रह्मपुराण-७८९,८०१,९१४,९४०,९८४,

ब्रह्मवैवर्त्तः—८०५, ९०१, ९८२।

ब्रह्माण्डपुराणं—५५२,७१९. ७५४,९५५

**भ**

भविष्यपुराणं—९८२। १०१२,

पृष्ठा

भविष्यत्पुराणं—२५, १४८, १७५, १६७, २३६, २४०, २५४, २६४, २६४, ३६७, ३६८, ४४०, ५०६, ५१६, ५२१, ५२२, ५२४, ५२६, ५३३, ५३८, ५६७, ७६५, ७६६, ८२४, ६०५, ६०६, ६६०, १००७, १०१६ ।

भविष्योत्तरं—८, १४, १६, १७, १६, २४, ५६, ५८, ६४, ६५, ७१, १३०, १३२, १३३, १३६, १४७ १५६, १६२, १७१, १८४, १६०, १६५, १६६, २३८, २७२, २८३ ३०८, ३२२, ३२७, ३१६, ३५६, ३६१, ३६८, ४७५, ४८१, ५१०, ५१७, ५२१, ५२५, ५२७, ५२८, ५४८, ५५८, ५६७, ५७८, ५७६, ५८०, ५८७, ५८८, ६३८, ६७५, ६८०, ७०७, ७२४, ७२६, ७४८, ८०२, ८१२, ८१५, ८५३, ८५६, ८५७, ८७६, ८८७, ८८४, ८८७ ८६६ ८६८, ६००, ६०३, ६१०, ६५४, ६६४ १०१५ ।

म

मत्स्यपुराणं—६१, ५०६, ५४१, ७०३, ८४३, ६०६, ६८५, १०२८ १०८८ ।

मनुः—६६१, ६६३, ६६६, ६८१ ।

महाभारतः—१४५, ३७७, ६१६,

य

यमस्मृतिः—३६७,

याज्ञवल्क्यः—१००१, १००३,

र

रेवाखण्डं—६४६, ६६१,

पृष्ठा

ल

लिङ्गपुराणं—११४, ११२, ३६७, ३६८, ६३०, ६१७, ६५४, ६५६ ।

व

वराहपुराणं—२१३, ३७५, ७११, ७६८

वह्निपुराणं—२४५, ३४८, ७६३, ६६६

वायुपुराणं—६५६ ।

वायुसंहिता—२२१

वाराहपुराणं—२१, ६५६, ६६१

विष्णुधर्म्मः—१८, १५२, २४४, ४६१, ५०२, ७५२, ७८७, ७६७, ८४८, ८५५, ६४०, ६५०, ६७१, ६७३, ६६४

विष्णुधर्म्मोत्तरं—१६, १५३, १५४, १५५ १६४, १६६, १६७, २३५, २३६, २३७, २३८, २४६, २५६, ३२३, ४२०, ४६०, ४६१, ४६२ ४६३, ४६४, ४६५, ४६६, ४६८, ४६७, ४६२ ५००, ५०१, ५०२, ५०४, ५०५, ५०६, ५०७, ५०८, ५६४, ५६७, ५६८, ६००, ६१८, ६२३ ६२४, ६३०, ६४६, ६५३, ६५४, ६५५, ६५६, ६६७, ६७१, ६६१, ७०६, ७२८, ७४४, ७५० ७५१, ७५८, ७५६, ७६१, ७६८, ७८५, ७६७, ७६६, ८००, ८२७, ८२८, ८२६, ८३१, ८३६ ८५६, ८६०, ८६३, ८६४, ८६७, ८६५, ६१७, ६४६, ६४८, १०१०, १०२५ ।

विष्णुपुराणं—२५५, २५६, ८६५

विष्णुरहस्यं—२१०, ४५३, ७६०, ७७१, ७८३, ८४३, ८६७, ६६६

पृष्ठा

विष्णुस्मृतिः—७६१

श

शिवधर्मः—१५४, १५६, ९९५, ८४३, ८५३, ८८९, ९१२, १०३०

शिवधर्मोत्तरः—३९६, ८८३

शिवरहस्यं—८६१

स

सौरधर्मः—५५७

पृष्ठा

सौरपुराणं—२४, १५६, ३९६, ९१४, ९१७, ९५४, ९६६

स्कन्दपुराणं—८७, ९२, ११२, १४७, १४९, २५१, २७९, २८८, २९३, ३१२, ३१५, ४८२, ४९२, ४९९, ५१४, ५३७, ५६६, ५६७, ५९९, ६४०, ७३२, ७३३, ७३४, ७३५, ७३६, ७३७, ७३८, ७३९, ७४०, ७४१, ८६७, ८९१

स्कन्दमहाकालखण्डं—१५१, २४१ ।

## अथ सप्तदशोऽध्यायः ।

---ooo---

अथ त्रयोदशीव्रतानि ।

धर्मादपेतं न कदाचिदेव यदीयवाचो विषयत्वमेति ।
स एव हेमाद्रिरनुक्रमेण त्रयोदशीषु व्रतवृन्दमाह ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

भगवन् भूतभव्येश संसारार्णवतारक ।
व्रतं कथय किञ्चिन्मे रूपसौभाग्यदायकं ॥
अनङ्गः प्रीणितो येन फलं यच्छति केशव ।
आत्मवद्रूपसौभाग्यं तन्मे विस्तरतो वद ॥

कृष्ण उवाच ।

अनङ्गः श्रूयते देवः शूलपाणिः पिनाकभृत् ।
तस्मिन् सम्पूजिते* पार्थ किन्नाप्नोति नरोभुवि ॥
तेन ते कथयिष्यामि शूलपाणिव्रतेष्विदम् ।
यन्न कस्यचिदाख्यातं व्रतानामुत्तमं व्रतं ॥
चीर्त्वा भक्त्या नरोमर्त्यं यद्यदिच्छति पाण्डव ।
तत्तदाप्नोत्यसन्दिग्धमनङ्गाख्यां त्रयोदशीम् ॥
किं व्रतैर्बहुभिः पार्थ उक्तमात्रफलप्रदैः ।
त्रयोदशी त्वियं पुण्या सर्व्वव्रतफलप्रदा ॥

---

* तस्मिंस्तु पूजित इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

तस्मात् कार्य्या प्रयत्नेन बहुपुण्यमभीप्सता।
त्रयोदशीह्यनङ्गाख्या सर्व्वोऽघौघ* विनाशनी॥
सर्व्वदुष्टोपशमनी सर्व्वमङ्गलदायिनी।
अतुल्यसुखसौभाग्यरूपलावण्यदायिनी॥
पुरा दग्धेन कामेन त्रिनेत्रनयनाग्निना।
भस्मीभूतेन लोकेऽस्मिन् सङ्कल्पस्थेन पाण्डव।
अनङ्गेन कृताह्येषा तेनानङ्गत्रयोदशी॥
अपरं श्रूयते यस्यां पुराणेनेतिविश्रुतम्।
नाम निर्व्वचनं पार्थ कथयामि शृणुष्व तत्॥
अनङ्गो भगवान् शम्भुस्तेजो† मूर्त्तिरगोचरः।
सएव देवोयेनास्यां तेनानङ्गत्रयोदशी॥
प्रसिद्धा समनुप्राप्ता नित्या सर्व्वफलप्रदा।
मार्गशीर्षेऽमले पक्षे त्रयोदश्यां समाहितः॥
स्नानं नद्यां तड़ागे वा गृहे वा कूपतोऽपि वा।
कृत्वाभ्यर्च्य महादेवं विधानाच्छशिभूषणं॥
लिङ्गं स्वयम्भवं भूतमभावे यत्प्रतिष्ठितं।
तदनङ्गमितिप्रोक्तं पूजयेद्भक्तितोव्रती॥
दधि,दुग्ध,घृत,क्षौद्र, शर्कराद्यमृतैः शुभैः।
स्थाप्य‡ एवामृतैः पश्चात्स्नापयेद्गन्धवारिणा॥
धूपदीपादिनैवेद्यैः पुष्पैस्तत्कालसम्भवैः।

---

* सर्व्वाघौघेति पुस्तकान्तरे पाठः।

† विष्णुरिति पुस्तकान्तरे पाठः।

‡ स्नाप्यइति पुस्तकान्तरे पाठः।

फलैर्नानाविधैर्भक्ष्यैर्गीतवादित्रनिस्वनैः॥
श्रुतनामान्यथोच्चार्य होमःकार्यस्तिलाक्षतैः।
अश्वत्थ,जाति,नारङ्ग, पायसैर्म्मधुना पिबेत्॥
अश्वत्थादि क्रमात् काष्ठपुष्पफलनैवेद्यप्राशनानि॥

एवमुत्तरेष्वपि मासेषु

अनङ्गं पूजयेदादौ मधुमत्यासमन्वितं।
अनङ्गनाम्ना संपूज्य मधु प्राश्य स्वपेन्निशि॥
मधुप्राशनयोगेन जायते मधुरध्वनिः।
अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति भक्तिमान्॥
पुष्पैश्चोदुम्बरैर्व्वीर शुभदाडिममोदकैः।
चन्दनेन च योगीशं मदयन्त्या युतं यजेत्॥
स्नाप्य क्षीरादिभिः पार्थ पूजयित्वा विधानतः।
योगेश्वरेति संस्मृत्य चन्दनं प्राशयेन्निशि॥
सौम्यः शीतः सुगन्धश्च चन्दनप्राशनाद्भवेत्।
राजसूयस्य यज्ञस्य तद्भक्तः फलमाप्नुयात्॥
माघे न्यग्रोधसत्कन्द मातुलिङ्ग सुमालिकैः।

सुमालिकं सोमलकं मुक्ता मौक्तिक योगीशं मदयन्त्या सहितं यजेत्।

माघेस्मरेति संस्मृत्य प्राशयेन्मौक्तिकोदकं॥
प्राशनस्य प्रभावेन निर्मला धीः प्रजायते।
रूपाढ्यञ्च वपुःस्त्रीणां मनोनयननन्दनं॥
मुक्तापूर्णोपमे नेत्रे पद्मपत्रायते शुचिः।
सौम्यः शान्तः सुगन्धश्च चन्दनपाशनाद्भवेत्॥

बहुशर्म्मोघ्यहस्तस्य प्राप्नोत्यविकलं फलं।
फाल्गुने बदरीकैश्च गौरजोवीरणोदकैः॥
कक्कोलेनच वीरेशं सशीतं निशि पूजयेत्।
वीरनाम जपेद्रात्रौ कक्कोलं प्राशयेन्निशि॥
तेनास्य सुरभिर्गन्धो जायते कायवक्तयोः।
तथा गुणगणावासो द्रुतकाञ्चनसन्निभः॥
गोमेधस्य फलं प्राप्य शक्रलोके महीयते।
चैत्रे करञ्ज,दमन,द्राक्षा,वढ़क,शीतलैः॥

शीतलः कर्पूरः।

देवेशं रूपनामानं यजेत् सुभगया सह।
पूर्व्वोक्तविधिना पार्थ कर्पूरं प्राशयेन्निशि॥
कर्पूरवान् प्रियालोके गन्धगौरवसंयुतः।
चन्द्रवत्सर्व्वलोकानां लोचनाह्लादकारकः॥
जायते स नरः पार्थ यः करोतीह भक्तिमान्।
नरमेधफलावाप्तिर्जायते नात्र संशयः॥
वैशाखे सहकारार्कपुष्पाम्रफलसक्तुभिः।
जातीफलैर्महारूपमिन्द्राण्या सहितं यजेत्॥
प्राशयेद्रात्रिसमये जातीफलमनुत्तमं।
सफलास्तस्य सर्वाशा भवन्ति भुवि भारत॥
गोसहस्रफलं प्राप्य रुद्रलोके महीयते।
ज्यैष्ठे जम्बू बिल्वपत्रैः श्रीफलैः पूपकैस्तथा॥
लवङ्गनाथं संपूज्य प्रद्युम्नं ललितान्वितम्।
लवङ्गं प्राशयेद्रात्रौ लावण्यं तेनचाप्नुयात्॥

वाजपेयफलं लब्ध्वा मोदते दिवि भारत ॥
आषाढ़े ऽपामार्गनीप नालिकेरकदम्बकैः।
तिलैश्चोमापतिं रात्रौ पूजयेच्च तिलोत्तमां।
उमापतिं जपन् प्राज्ञः प्राशयेच्च तिलोदकं ॥
तिलोत्तमावदभवत् रूपसम्पदनुत्तमा।
प्राप्नोति पुण्डरीकस्य फलं कुरुकुलोद्वह।
श्रावणे सुमनोभ्योऽजकदलीफलमण्डकैः ॥

सुमना जाती।

गन्धतोयैः शूलपाणिं शुक्लवासोन्वितं यजेत्।
गन्धोदकञ्च संप्राश्य स्वपेद्रात्रौ विमत्सरः ॥
सुगन्धः सर्व्वसौख्याढ्यश्चिरायुश्चोपजायते।
अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य तस्य स्यात् फलमुत्तमं ॥
भाद्रे पालाशचाम्पेयशर्कराज्य पुरैस्तथा।

आज्यपुरी घृतपूरः।

यजेतागुरुणा सद्योजातं गौर्य्यासमन्वितं ॥
अगुरुं प्राशयित्वा तु गुरुर्भवति भूतले।
तुलापुरुषदानस्य हैमस्य फलमश्नुते ॥
आश्विने चाप्यपामार्गकर्कन्धुगुडपूरकैः।
स्वर्णाम्भोभिः सुवर्णञ्च त्रिदशाधिपतिं यजेत् ॥
हेमोदकञ्च संप्राश्य हेमवर्णः प्रजायते।
नरमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति निश्चितं ॥
ऊर्जे कदम्बक द्रोणकुष्माण्ड लवणेन तुः।
फलैश्च विद्याधिपतिं यजेन्मदनया सह ॥

फलैरमृतफलाख्यैर्भक्ष्यलवणवान् स्मृतः।
लवणं प्राशयेत्तत्र श्रद्धया परयान्वितः।
रूपलावण्यसंयुक्तः प्राशनादस्य जायते॥
नैवेद्यानामप्यलाभे हविष्यान्नं प्रकल्पयेत्।

इह प्रतिश्लोकं दन्तधावन कुसुम नैवेद्य प्राशनानां यथा क्रममभिहितानां तस्य तस्याभावे अयमनुकल्प उक्तः।

सर्वेषु पारणेष्वेव भोजयित्वा द्विजोत्तमान्।
सदक्षिणस्ततोऽश्नीयाद्बन्धुभिः सहितो वशी।
व्रतविघ्नो यदा तस्यामशक्तौ सूतकेऽथवा॥
उपोष्य एवोपवास्य तदहः पारयेत् पुनः।
एवं सम्वत्सरस्यान्ते शक्त्या रत्नाद्यलङ्कृतं॥
उमामहेश्वरं हैममधिवास्य ततोनिशि।
पुष्पैर्धूपैस्तथागन्धैर्नैवेद्यैर्विविधैः फलैः॥
ततः प्रभातसमये कृतहोमवलिक्रियः।
वक्ष्यमाणमिदं सर्वं प्रदद्यात्तु द्विजातये॥
लिङ्गाकारमनङ्गञ्च सौवर्णं कारयेच्छिवं।
ताम्रपात्रेषु संस्थाप्य कलशोपरिविन्यसेत्॥
शुक्लवस्त्रेण संच्छाद्य पुष्पनैवेद्यपूजितं।
ब्राह्मणाय प्रदातव्यं शिवभक्ताय सुव्रत॥
शक्तिमान् शयनं दद्यात्सवत्सां गां पयस्विनीं।
छत्रोपानत्प्रदानञ्च कलशा सोदकान्विताः॥
द्वादशात्र प्रकर्त्तव्याः स्रक्चन्दनविभूषिताः।
सितपक्वान्नसंछन्ना ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत्॥

देवस्यैव प्रदातव्याः कुम्भा द्वादशगन्दुकाः ।
वितानं पञ्चवर्णञ्च ध्वजकिङ्किणिनादिनम् ॥
घण्टाञ्च सुस्वनां भद्राम्बध्नीयाच्छिवमन्दिरे ।
तस्मिन्नेव दिने पार्थ सम्योज्यात्मानमर्च्चयेत् ॥
देवदेवं त्रिशूलेशं पुष्पनैवेद्यदीपकैः ।
गीतवादित्रनृत्यादि प्रेक्षणैर्विविधैरपि ॥
दानान्यत्र प्रदेयानि स्ववित्तस्यानुसारतः ।
सूर्य्योपरागसदृशोयतःसद्दिवसो मतः ॥
भोजनञ्च यथा शक्त्या षड्रसं मधुरोत्तमम् ।
प्रदद्याच्छिवभक्तानां देयानि च विशेषतः ॥
अर्च्चितो नावमन्येत नक्षिपेन्नानृतं वदेत् ।
एवं तदुत्सवं कृत्वा शिवयज्ञमनुत्तमं ॥
ततः स्वयन्तु भुञ्जीयाद्भृत्यवर्गसमन्वितः ।
शान्ताचारकनिष्टस्तु हृदि देवं निवेश्य च ।
एवं निर्व्वर्त्य विधिवत्कृतकृत्यःपुमान् भवेत् ॥
नारी वा नृपशार्दूल कृत्वैतद्व्रतमुत्तमं ।
फलं त्वेतदवाप्नोति नात्र कार्य्या विचारणा ।
एवं कृत्वा नरः सम्यक् भक्तिभावेन भावितः ॥
मुच्यते सर्व्वपापौघैर्ब्रह्महत्यादिकैरपि ।
इह कीर्त्तिमवाप्य वै मृतः स्वर्गे महीयते ॥
पुण्यशेषादिहागत्य सार्व्वभौमो नृपो भवेत् ।
व्रतस्यास्य प्रभावेण मूर्त्तिमान् मदनोभवेत् ॥
सौभाग्यधनसौख्याढ्यःशान्तचित्तो जितेन्द्रियः ॥

पुत्रपौत्रैः सुसंपूर्णैः जीवेच्च शरदां शतं।
शिवभक्तिपरो भूत्वा शिवैकगतमानसः॥
अन्तकाले शिवं स्मृत्वा शिवसायुज्यतां व्रजेत्।
कामेन याकिल पुरा समुपोषिता सीत्
शुभ्रान्तिथिं त्रिदशदेहमवाप्तिहेतोः।
तां प्राशनैरुदितनामयुतैरुपोष्य
दिव्यं प्रयाति परमं पदमिन्दुमौलेः॥

इति भविष्योत्तरोक्तं मनङ्गत्रयोदशीव्रतं।

---

चैत्र शुक्लत्रयोदश्यामनङ्गं तु पटे लिखेत्।
नीलदूर्वाङ्कुरश्यामं हस्तमात्रं प्रमाणतः॥
रतिप्रीत्युभयोपेतं पौष्पसायकचापधृक्।
पटेषु सुस्थितः कार्य्यः सर्व्वैश्चाप्सरसां गणैः॥
नानापुष्पैस्तु संपूज्य वस्त्रनैवेद्यदीपकैः।
धूपैर्नानाविधैर्हृद्यैर्नानातौर्य्यरवेण तु॥
पुष्पमण्डपमध्ये तु रम्योद्याने तु पूजयेत्।
आचार्य्योविविधैर्भक्त्या पूजितव्यः प्रयत्नतः॥
वस्त्रहेमान्नपानैश्च यथा शक्त्या तु भक्तितः।
पुमान् कामत्वमाप्नोति सर्व्वस्यैव प्रियो भवेत्॥
सौभाग्यं प्राप्नुयान्नारी इह लोके परत्र च।
मासि मासि यजेद्वापि यथानुक्रमयोगतः॥
एकस्मिन् वा दिने वत्स वत्सरे वा समर्चयेत्।

मदनं चित्तभवनं मन्मथन्तु रतिप्रियं।
अनङ्गं चैव कन्दर्पं संपूज्य मकरध्वजम्॥
कुसुमायुधसंज्ञञ्च तथा पूज्य मनोभवं।
तथा विषमवाणञ्च द्वादशं मालतीप्रियं॥
मासि भाद्रपदे यत्नादनङ्गं पूजयेत्तदा।
इत्येतन्नियमेनैव कामव्रतं समाचरेत्॥

इति कालोत्तरोक्तमनङ्गव्रतम्।

———ooo———

युधिष्ठिर उवाच।

यमस्याराधनं ब्रूहि श्रीवत्सपुरुषोत्तमं।
यथा न गम्यते रौद्रनरकं नरकान्तकम्॥

कृष्ण उवाच।

द्वारवत्यां पुरे पार्थ स्नातोऽहं लवणाम्भसि।
दृष्टवान् मुनिमायान्तं मुद्गलं नामनामतः॥
प्रज्वलन्तमिवादित्यं तपसा द्योतितं वरं।
स प्रणम्याथ सत्कारैरिदं पृष्टोयुधिष्ठिर॥
यमादर्शननामेदं व्रतं जन्तुभयापहं।
कथयामास स मुनिर्मुद्गलो विस्मयान्वितः॥

मुद्गल उवाच।

वृत्तान्तं कथयिष्यामि यद्दृष्टं स्वशरीरके।
अकस्माद्रोगरहितः पतितोस्मि धरातले॥
पश्यामि चण्डपुरुषैः समन्तादाहतं वपुः।

अङ्गुष्ठमात्रपुरुषो बलादाकृष्यते तु सः* ॥
बद्धा यमभटैर्गाढ़ं नीयते वेगवाहिभिः।
क्षणात्सभायां पश्यामि यमं पिङ्गललोचनं ॥
कृष्णावदातं रौद्रास्यं मृत्युव्याधिसमन्वितम्।
वातपित्तकफाद्यैश्च मूर्त्तिमद्भिरुपासितं ॥
कामशोकज्वरच्छर्दिश्लीहानाहभगन्दरैः।
राजयक्ष्मप्रमेहाद्यैर्नैकरोगैरनेकधा ॥
निजाङ्गन्तु व्रणै रौद्रैर्ज्वालागर्दभकादिभिः।
रोगैर्बहुविधैः कृष्ण नानारूपैर्भयावहैः ॥
मूर्त्तिमद्भिश्च संग्रामे नरकैर्घोरदर्शनैः।
राक्षसैश्च पिशाचैश्च समन्तात्परिवारितः ॥
विचारकैर्वशिष्ठाद्यैश्चित्रगुप्तादिलेखकैः।
आदित्यादिकदिक्पालैः कर्मसाक्षिभिरावृतः ॥
दूतै रौद्रमुखाद्यैश्च सिंहसर्पादिवाहनैः।
पाशांकुशादिहस्तैश्च भ्रुकुटीकुटिलाननैः ॥
वृहत्कायैर्महाघोरैः पापिष्ठानां नियामकैः।
असिपत्रवनाङ्गारक्षारगर्त्तास्रपूरकैः ॥
अस्थिभङ्गामिषच्छेदरुधिरस्रावकादिभिः।
तत्रस्थो दृश्यतोभाति यमोनाम्ना जनोऽपरः ॥
स प्राह किङ्करान् सर्वान् धर्मराजोरुषान्वितः।
त्यज्यतां किं समानीतोयुष्माभिर्भ्रान्तमानसैः ॥
मुद्गलोनाम कुण्डिन्ये नगरे भीष्मकात्मजः।

* बानदाकृष्यतेतुधा इति पुस्तकान्तरे।

क्षयिय: समानीयतां क्षीणायुस्त्यज्यतां मुनिः ॥
इत्युक्तास्ते गतास्तमादायाता: पुनरेव ते ।
ऊचुर्यमभटाः प्राप्ता धर्म्मराजं सुविस्मयाः ॥
क्षीणायुस्तत्र चास्माभिर्न्न कश्चिल्लक्षितो गतेः ।
न जानीमो भ्रान्तचित्ताः क्षमस्व जगतांपते ॥

यमउवाच ।

प्रायेण ते न दृश्यन्ते पुरुषै र्धर्म्मकिङ्करैः* ।
कृता त्रयोदशी यैस्तु नरकार्त्तिविनाशनी ॥
उज्जयन्यां प्रयागे वा भैरवे वापि ये मृताः ।
तिलान्नगोहिरण्यादि दत्तं यैस्तु गवाह्निकं ॥

किङ्करा ऊचुः ।

कीदृशं तद्व्रतं स्वामिन्कथंस नो भास्करात्मज ।
किं तत्र चैव† कर्त्तव्यं पुरुषार्थचतुष्टये ॥

यमउवाच ।

पूर्व्वाह्णे मार्गशीर्षादौ वर्षमेकं निरन्तरं ।
त्रयोदश्यां सौम्यदिने सूर्य्याङ्गारकवर्जिते ॥
मम नाम्ना द्विजानष्टौ पञ्च चैव समाह्वयेत् ।
पुराणवेदतत्त्वज्ञान् स्वाचारांस्तत्र दर्शनान् ॥
सूर्य्यैकशरणान् साधून् सर्वभूतहिते रतान् ।
शुचौ देशे शुभे पट्टे प्राङ्मुखानुपवेशयेत् ॥
अन्तर्व्वासोयुतान् भक्त्या यत्नेनाभ्यङ्गयेत तान् ।

---

* यमकिङ्करैरिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

† देवेति पुस्तकान्तरे पाठः ।

आरभ्य उत्तमाङ्गांस्तु तिलतैलेन मर्दयेत् ॥
स्नापयेद्गन्धकाषायैः सुखोष्णेन च वारिणा।
पृथक् पृथक् स्नापयित्वा सर्व्वानेव द्विजोत्तमान् ॥
सुखस्नातांस्तथाचान्तान् व्रती भक्तिपरायणः।
स्वयं सभृत्यः शुश्रूषां तेषां कुर्य्यात्समाहितः ॥
प्राङ्मुखानुपविष्टांश्च त्रयोदश पृथक् पृथक्।
संस्थापयेच्चाभिमुखान् गुडपूपान् सुपूजितान् ॥
सव्यञ्जनं सुपक्वान्नं भूयो भूयो निवेदयेत्।
यथासुखं यथातृप्ति यथाकाममयाचितं ॥
देयं भावं समालक्ष्य दुःखघ्निः श्रेय आत्मनः।
शुचिर्भूत्वा तथाचात्र दद्यात्तिलतण्डुलैः ॥
प्रस्थमात्रैरथैकैकं ताम्रपात्रसमन्वितैः।
सदक्षिणैश्च संछन्नैर्जलकुम्भैः पवित्रकैः ॥
चर्म्मप्रावरणैः श्रेष्ठैर्वस्त्रपुष्पैश्च दूतकाः।
मन्त्रेणानेन विप्रेन्द्रान् दद्यात्तान् पृथक् पृथक् ॥
ब्राह्मणान् समरूपांस्तान् पंक्तिभेदेन कारयेत्।
यमःशनैश्चरो मृत्युर्दण्डहस्तो विनायकः ॥
अभावः प्रलयः शान्तिर्दुःखप्रशमनोऽन्तकः।
लोकपालो धनी क्रूरो रौद्रो घोराननः शिवः ॥
मम प्रसादसुमुखोदद्यात्त्वभयदक्षिणाम्।
इत्युक्त्वा स प्रयच्छेत देयं दत्त्वा व्रती पुनः ॥
द्विजानामनुव्रजेत्तस्मात् स्वगृह्यविधिनार्चितान्।
एवं यः पुरुषः कश्चित्सकृद्व्रतमिदं चरेत् ॥

स मृतोऽपि नरो दूता न याति यममन्दिरं ।
अदृष्टोसौ समायाति विमानेनार्कमण्डलम् ॥
तस्मायाति पुरीं विष्णोस्ततः शिवपुरीं व्रजेत् ।
नूनं चीर्णं व्रतं तेन मुद्गलेन यथोदितं ॥
तेन नायात्यसौ लोकं मम क्षत्रियपुङ्गव ।

मुद्गलउवाच ।

यमस्यैतद्वचः श्रुत्वा क्वापि दूता गतास्तु मे ।
अहञ्च सर्व्वमाकर्ण्य विस्मयाविष्टमानसः ॥
स्वशरीरस्ततः प्राप्य सुप्तएवोत्थितो हरेः ।
ततोहरत्वमाविष्टो त्वां द्रष्टुमिदमागतः ।
श्रुतन्तु च मया तत्र कथितन्ते मयात्विह ।

कृष्णउवाच ।

इत्युक्त्वा मुद्गलो राजन् प्रयातःस्वाश्रमं प्रति ।
इदं कुरुष्व कौन्तेय त्वमप्यत्र महीतले ॥
ततो यास्यस्यसन्दिग्धं परित्यज्यान्तकं दिवं ।
एवं येऽन्येऽपि पुरुषाः स्त्रियोवापि युधिष्ठिर ॥
त्रयोदश्यां त्रयोदश्यां ये करिष्यन्ति भूतले ।
एकभक्तेन नक्तेन उपवासेन वा पुनः ॥
यमादर्शननाम्ना वै व्रतं सर्व्वव्रतोत्तमं ।
ते सर्व्वपापनिर्मुक्ता विमानेनार्कवर्च्चसा ॥
यास्यन्तीन्द्रपुरीं रम्यामप्सरोगणसंवृतां ।
दोधूयमानाश्चमरैस्तूयमानाः सुरासुरैः ॥
गीतवादित्रनिर्घोषैश्छत्रपंक्तिविराजिताः ।

अदृष्टा घोररूपैस्ते यमदूतैर्युधिष्ठिर ॥
अनाहिता व्याधिशतैः पिशाचाद्यैरगोचराः।
अताडिता महारौद्रैर्नानाप्रहरणाश्चताः ॥
यमदृष्टिपथान्मुक्ताः सर्व्वसौख्यसमन्विताः।
सर्व्वालङ्कारसंयुक्ताः स्वशिरःसौम्यदर्शनाः ॥
स्वर्गं वसन्ति सुचिरं भाविताःस्वेन कर्म्मणा।

स्नाप्य त्रयोदशमुनीन् घृतपायसेन
सम्भोज्य पूज्य तिलतण्डुलसम्प्रदानैः।
कुर्व्वन्ति ये व्रतमिदं चिदशेऽह्नि पार्थ
पश्यन्ति ते यममुखं न कदाचिदेव ॥

इति भविष्योत्तरोक्तं यमादर्शनत्रयोदशीव्रतम्।

---

गुरुवारे त्रयोदश्यामपराह्णे जलप्लुतः।
तर्पयित्वा देवपितॄन् ऋषींश्च तिलतण्डुलैः ॥
नरसिंहं समभ्यर्च्य यः करोत्युपवासकं।
सर्व्वपापविनिर्मुक्तोविष्णुलोके महीपते ॥

इति नरसिंहपुराणोक्तं नरसिंहत्रयोदशीव्रतम्।

---

युधिष्ठिर उवाच।

ब्रूहि मे यदुशार्दूल व्रतं गन्धविनाशनम्।
तिक्ताग्रहञ्च देहस्य दौर्भाग्यनाशनं तथा ॥

कृष्ण उवाच।

इमं प्रश्नं पुरा पार्थ जातूकर्णीमहामुनिः।
पृष्टोराज्ञ्या महामत्या कालनन्दनया तथा॥
कथयामास तां हृष्ट उपविष्टा शृणोति सा।
देवी कृताञ्जलिपुटा जातूकर्णोऽवदद्दुतं॥
ज्यैष्ठेमासि सिते पक्षे त्रयोदश्यां युधिष्ठिर।
स्नात्वा पुण्यनदीतोये पूजयेत्कुम्भदेशजम्॥
श्वेतमन्दारमर्कं वा करवीरञ्च रक्तकम्।
निम्बञ्च सूर्य्यदेवस्य वल्लभं दुर्लभं तथा॥
दीप,नैवेद्य,पुष्पाद्यै र्मन्त्रेणानेन पाण्डव।
निरीक्ष्य गगने सूर्य्यं स्नात्वा हृदि समुच्चरेत्॥
सूर्य्यं त्वं श्वेतमन्दारश्वेतार्कांर्कस्य सम्भव।
करवीर नमस्तुभ्यं निम्बहृच्च नमोऽस्तु ते॥
इत्थं योऽर्चयति भक्त्या वर्षे वर्षे पृथक् नरः।
द्रुमत्रयं नृपश्रेष्ठ नारी वा भक्तिसंयुता॥
तस्याः शरीरे दुर्गन्धो दुर्भाग्यं वा न जायते।
न सापत्नभयं लोके न वन्ध्यादोषजम्भवेत्॥
जायतेऽतीव सौभाग्यमन्यस्त्रीदुर्लभं नृप।
कथितं याश्चरिष्यन्ति गन्धदौर्भाग्यनाशनं॥
सर्व्वदोषैर्विनिर्मुक्ताः सुखमश्नन्ति भारत।
निम्बं नवार्ककरवीरलतासुपुण्यं॥
याः पूजयन्ति कुसुमाक्षतदीपदानैः।

---

१(मंत्यनामममिमि... रे पाठः।

ताः सर्व्वकामसुखवृद्धिसमृद्धिभाजो
दौर्भाग्यदोषरहिताः सुभगा भवन्ति।

इति भविष्योत्तरोक्तं दुर्गन्धदौर्भाग्यनाशन
त्रयोदशीव्रतम्।

---

युधिष्ठिर उवाच।

कान्तारवनदुर्गेषु प्रविशद्भि र्नदीषु च।
समुद्रतरणे चैव संग्रामेषु वरार्द्दने॥
देवतां कां स्मरेत्तत्र परित्राणकरीं विभो।
कथञ्च देव कुरुते परित्राणकृते जनः॥

कृष्णउवाच।

सर्व्वमङ्गलमाङ्गल्यां दुर्गां भगवतीं उमां।
नाप्नोति दुःखं पुरुषः संस्मरन् सर्व्वमङ्गलां॥
अलक्ष्यलक्ष्यं भूतस्य सर्व्वस्य हृदये स्थितां।
.. भयं समवाप्नोति संस्मरञ्जगदम्बिकां॥
यदा तु शास्त्रं विज्ञातुमवन्यामहमागतः।
गुरोः सन्दीपनेपार्श्वं वलेन सह भारत॥
प्राप्तविद्येन च मया प्रतिज्ञाताश्च दक्षिणाः।
दिव्यं भावं विदित्वा मे तेनाहं भावितस्तदा॥
प्रभासतीर्थं पुत्रो मे मृतोऽसौ दीयते त्वया।
मया ध्याता ततोदेवी सर्व्वापत्सु...णा...

अङ्गावङ्केति विख्याता तदा देवी च मङ्गला ॥
त्रितयं योऽर्चयेत्पार्थ तस्य सर्वत्र मङ्गलं ।
संहितान्तरकृत् बलभद्र मङ्गला वेतित्रयं ॥
ततः प्रभृति तत्रस्थाः पूजयन्ति जनाः सदा ।
माञ्चैव बलभद्रञ्च मध्यस्थां सर्वमङ्गलां ॥
वामे नारायणः सोऽहं कपाटी भवतस्ततः ।
त्रयोदश्यां सिते पक्षे मासि मासि धृतव्रतः ॥
एकभक्तेन नक्तेन उपवासेन वा पुनः ।
गन्धैः पुष्पैः सदीपैश्च मधुसीधुसुरासवैः ।
पललोडरकैः चिप्रं वलिभक्तैश्च भक्तितः ॥
योऽभ्यर्चयेत राजेन्द्र सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ।
सर्व्वापत्सु तरत्येव त्रितयं संस्मरेच्च यः ॥
अथवा दूरदेशस्थः कारयेत् प्रतिमात्रयं ।
मृण्मयं काञ्चनं चापि लिखितं चित्रकेऽपि च ॥
पूजयित्वा विधानेन सर्वं तत् फलमश्नुते ।

एतत्त्रयं त्रिदशमेऽह्नि सिते सदैव
यः पूजयेत् कुसुममांससुरोपहारैः ।
नश्यन्ति तस्य भवनेष्वतिभीषणानि
चौरारिजन्तुजनितानि भयानि सद्यः* ॥

इति भविष्योत्तरोक्त† सर्व्वमङ्गलात्रयोदशीव्रतम् ।

---

* मत्यादिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

† इति भविष्यत्तरोक्तं चङ्काबङ्कामङ्गला त्रयोदशी व्रतं मिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

मार्कण्डेय उवाच।

शुक्लपक्षे महाराज त्रयोदश्यामुपोषितः।
पूजयेत् कामदेवन्तु वैशाखात् प्रभृति प्रभो॥
गन्ध,माल्य,नमस्कार,दीप,धूपान्नसम्पदा।
दद्याद्व्रतान्ते विप्राय गन्धवस्त्रयुगं तथा॥
कृत्वा व्रतं वत्सरमेतदिष्ट
मासाद्य नाकं * सुचिरे मनुष्यः †।
मानुष्यमासाद्य भवत्यरोगः
सुखान्वितोरूपसमन्वितश्च॥

इति विष्णुधर्मोक्तं कामदेवव्रतं।

---

मार्कण्डेय उवाच।

शुक्लपक्षे महाराजं त्रयोदश्यामुपोषितः।
फाल्गुनात्तु समारभ्य नित्यं संपूजयेन्नरः॥

महाराजन्तु धनदं।

गन्धमाल्यनमस्कार दीपधूपान्नसम्पदा।
सुवर्णं ब्राह्मणेन्द्राय व्रतान्ते प्रतिपादयेत्॥
कृत्वा व्रतं वत्सरमेत दिष्टं
पक्षेषु राजन् सुचिरं† उपोष्य।

---

* प्राप्नोत्यसन्दिग्ध मिति पुस्तकान्तरे पाठः

† मनुष्य इति पुस्तकान्तरे पाठः।

मानुष्यमासाद्य धनान्वितः स्यात्
सौभाग्ययुक्तश्च तथा विरोगः॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं नन्दव्रतं।

---

व्यासउवाच।

त्रयोदश्यान्तथा रात्रौ सोपहारं त्रिलोचनं।
दृष्ट्वेशं प्रथमे यामे मुच्यते सर्व्वपातकैः॥

इति भविष्यत्पुराणोक्तं प्रदोष व्रतं॥

---

सनत्कुमार उवाच।

अथ स्वस्त्ययनं पुंसां शृण्वतामघनाशनं।
त्रयोदश्यां महाबुद्धे व्रतमेतन्निशामय॥
नवनीतं नवङ्गव्यं रजतांशुसमप्रभं।
कपित्थफलमात्रं यत्समादायसुसंयतः॥
रौप्यताम्रमये पात्रे सौवर्णे वाथ मृण्मये।
सुवर्णरचिते तस्य निक्षिपेत् प्राङ्मुखः शुचिः॥
स्नातश्च क्वतजप्यश्च शुक्लाम्बरधरःस्वयं।
मण्डलं पुष्पनिकरै रचितैर्वा प्रकल्पयेत्॥
तस्मिन्नष्टदलं पद्मं कारयेत् कुसुमोत्करैः।
तत्र लक्ष्मीपतिं देवं लक्ष्म्या युक्तन्तु दिव्यया॥
कर्णिकायां समावाह्य दलेष्वावाहयेत्तथा।
शक्तीरष्टौ तु तन्मन्त्रै र्दिशां पालांस्तु वाह्यतः॥

विधाय देवयजनं स्वादुमूलफलानि च।
तदग्रे तत्समानीय नवनीतं नवं शुचिः
द्विधा कृत्वा तदेकैकं मन्त्रेणैवाभिमन्त्रयेत्॥

मन्त्रः।

पुरुषः पूर्णकामश्च हरिर्भद्रं करोतु नः।
योषिद्व्रते सदा लक्ष्मीर्मङ्गलं दिशतु स्वयं॥
एवं कृत्वा ततः पत्नै दद्यादेकैकमग्रतः।
पूर्व्वं पुंलक्षितं पिण्डमितरञ्च तथापरम्।

इतरं स्त्रीलक्षितं।

प्राश्याचम्य स्थितां पत्नीं प्रयतामभिमन्त्रयेत्।
यस्त्वन्तरात्मा भूतानामनादिनिधनच्युतः॥
स परःपरया भक्त्या कुक्षिं रक्षन्तु मे सदा।
सर्व्वपुष्टिप्रजननी सर्व्वार्त्तिशमनी तथा॥
लक्ष्मीः कुक्षिगतं गर्भं रक्षतादच्युतप्रिया।
सर्व्वार्त्तिक्षयदक्षाणि दिव्यशक्तियुतान्यपि॥
त्वां रक्षन्तु सदा विष्णोःसर्व्वप्रहरणान्यपि।
तथा दिक्पतयः सर्व्वे रक्षन्तु ग्रहदेवताः॥
पान्तु संसारसंयुक्तां सर्वे रक्षन्तु सर्व्वदा।
इति कृत्वा ततः कुर्य्याद्ब्राह्मणानाञ्च तर्पणम्॥
गुरवे च वरं दत्त्वा नियमान् प्रतिपालयेत्।
वध्वा सहोपवस्तव्यं तद्दिनं प्रयतात्मना॥
चतुर्द्दश्यान्तु सुस्नातः कृतपूजाविधिः शुचिः।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु दद्याच्च गुरुदक्षिणाम्॥

भुञ्जीत बान्धवैः सार्द्धं नियमानुत्सृजेत्ततः॥
एवं कुर्व्वन्नरः शुद्धो बहुपत्यश्च विन्दति।
वन्ध्यापि लभते पुत्रं मनोनयननन्दनम्॥
कन्यापि सुपतिं विन्देत् व्रतेनानेन सुव्रता।
माङ्गल्यं परमं प्राप्य दीर्घमायुश्च विन्दति॥

इति वाराहपुराणोक्तं त्रयोदशीव्रतम्।

---

कृष्ण उवाच।

गौरीं विवाह्य जग्राह हरः पाशुपतं व्रतम्।
उमापतिः पशुपतिर्ध्यानासक्तो बभूव ह॥
ब्रह्मादिभिश्च संमन्त्र्य विशुद्धपुत्रलब्धये।
गौर्य्या मनोभिलषितपूरणाय प्रहर्षितैः॥
प्रहितः क्षोभणार्थाय समर्थ इति मन्मथः।
ततोमारो जगामाथ आश्रमं रतिसंयुतः॥
ईश्वरस्य धनुःपाणिर्व्वसन्तश्रीसहायवान्।
सचेक्षुचापमाकृष्य मदनोन्मादनं शरम्॥
चिक्षेप त्रिपुरघ्नाग्रे समाधेर्भङ्गहेतवे।
बुद्ध्वा तु तस्य सङ्कल्पं रुद्रः क्रोधज्वलद्वपुः॥
ललाटे वह्निमसृजत् तृतीयनयनाद्धरः।
कामोवलोकितस्तेन भस्मीभूतश्च तत्क्षणात्॥
दग्धं दृष्ट्वा स्मरं शोकाद्रतिप्रीत्यौस्थिते सदा।

करुणं विलपन्त्यौ च सर्व्वमन्यद्दिशांगते ॥
ततः शोकार्द्रहृदया गौरी रुद्रमुवाच ह।
भगवन् मदर्थे संरब्धः कामं निर्दग्धवानसि ॥
तेनैते पश्यतार्थ्ये द्वे कामस्य रुदितः कथम्।
कुरु प्रसादं देवेश रतिप्रीत्योर्वृषध्वज ॥
सञ्जीवय पुनःशम्भो मूर्त्तिमन्तं पुनः कुरु।
तच्छ्रुत्वा तु महादेवो हृष्टः प्रोवाच पार्वतीं
उपप्लुतं जगत्सर्व्वं मन्मथेन शरीरिणा।
मया दग्धस्य कामस्य पुनरागमनङ्कुतः ॥
किन्तु ते मानवद्वाक्य करोमि सफलं प्रिये।
अस्मिन्वसन्तसमये शुक्लपक्षे त्रयोदशी ॥
अस्यां मनोभवोदेवो भविष्यति शरीरवान्।
एतेन वीजभूतेन जगद्वर्त्तिष्यतेऽखिलम् ॥
एवं वरमिदं दत्त्वा मन्मथाय युधिष्ठिर।
जगाम हिमवत्पृष्ठे कैलाशं पार्वतीप्रियः।
तदेतत्ते समाख्यातं स्मरस्य चरितं नृप ॥
पूजाविधानमपरं कथयामि शृणुष्व तत्।
अस्यां स्नात्वा त्रयोदश्यामशोकाख्यं नगं लिखेत् ॥
सिन्दूररजनीरङ्गै रतिप्रीतिसमन्वितम्।
कामदेवं मत्तवाजिवक्त्रं तत्र वृषध्वजम् ॥
सौवर्णं वा महाराजवृत्तचन्दनमथापि वा।
लीलाविलासगमनगर्वितञ्चानप्सरोगणं ॥

† चचरत्येव मन्मथ इति पुस्तकान्तर।

गन्धर्वं गीतवादित्रप्रेक्षणीय समाकुलम्।
नंद्यावर्त्तकृतुक्रीडाप्रीति विद्याधरीयुतं॥
मध्याह्ने पूजयेत् भक्त्या भक्ष्यैर्धूपैः सुगन्धकैः।
मन्त्रेणानेन राजेन्द्र नरनारीसमन्वितं।
नमः कामाय देवाय देवदेवाय मूर्त्तये॥
ब्रह्मविष्णुसुरेशानां* मनःक्षोभकराय वै।
कृत्वैवमर्चयित्वा तु देवदेवं मनोभवं॥
ततस्तदग्रतो देया मोदकाः सुखमोदकाः।
नानाप्रकारान् भक्ष्यांश्च कामो मे प्रीयतामिति॥
ततो विसर्जयेद्विप्रान् दत्त्वा युग्मं सदक्षिणं।

युग्मं गोमिथुनं*।

स्वपतिं पूजयेन्नारी वस्त्रमाल्यविभूषणैः।
कामोयमिति सञ्चिन्त्य प्रहृष्टेनान्तरात्मना॥
मन्मथाय महापूजां* यजमानः सुहृद्वृतः।
रात्रौ जागरणं कुर्य्यात् सुखरात्रिर्यथा भवेत्॥
कर्पूरं कुङ्कुमक्षोदगन्धताम्बूलसर्ज्जनैः।
शूद्राणां मद्यदानैश्च कुर्य्याद्रास महोत्सवं॥
दीपप्रज्वलनैर्ह्निस्थैः नृत्यैः प्रेक्षणकोत्सवैः*।

---

* सुरेन्द्राणामिति पुस्तकान्तरे।
* वस्त्र युग्ममिति पुस्तकान्तरे पाठः।
* मन्मथायच्छाप्‌जामीया पुस्तकान्तरे पाठः।

एवं यः कुरुते पार्थ वर्षे वर्षे महोत्सवं ॥
वसन्तसमये प्राप्ते हृष्टः पुष्टो नृपः पुरे।
तस्य संवत्सरं यावत् शोकरोगैर्विमुच्यते ॥
सुभिक्षक्षेममारोग्यं यशश्रीसौख्यमुत्तमं।
कामवर्षी च पर्जन्यः तस्मिन् राष्ट्रे प्रजायते ॥
तुष्यते नात्र सन्देहो द्वादशार्द्धार्द्धलोचनः।
तथा कामश्च विष्णुश्च वसन्तश्च प्रजापतिः ॥
चन्द्रसूर्य्यादिकाः सर्व्वे ग्रहा ब्रह्मर्षयस्तथा।
सर्वेऽपि तस्य तुष्यन्ति यक्षगन्धर्व्वराक्षसाः ॥
असुरा यातुधानाश्च सुपर्णाः पन्नगा नगाः।
तुष्टाः प्रयच्छन्ति सुखं तस्य कर्त्तुर्न संशयः ॥
चैत्रोत्सवे सकललोक मनो निवासे।
कामं वसन्तमलयाद्रिमरुत्सहायं* ॥
पत्न्या सहार्च्चय पुरुषप्रवरोऽथ योषित्।
सौभाग्यरूपसुतसौख्ययुता सदा स्यात् ॥

इति भविष्योत्तरोक्तमदनमहोत्सवः।

---

व्यास उवाच।

मन्दवारयुता पुण्या शुक्लपक्षे त्रयोदशी।
तस्यामुपोष्य विधिवत्सम्पूज्य गिरिजापतिं ॥
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुक्तो भवति मानवः ॥

इति सौरपुराणोक्तं सर्व्वव्रतम्।

---

* कामञ्च वसन्तमलयाद्रिमरुत्सहायमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

पुष्यादितस्त्रयोदश्यां कृत्वा नक्तमथो पुनः।
अशोकं काञ्चनं दद्यादिक्षुयुक्तं दशाङ्गुलं॥
विप्राय वस्त्रसंयुक्तं प्रद्युम्नः प्रीयतामिति।
कल्पं विष्णुपुरे स्थित्वा विशोकः स्यात् पुमान् नृपः*।
एतत् कामव्रतं नाम सदा शोकविनाशनं॥

इति पद्मपुराणोक्तं कामव्रतम्।

---

ब्रह्मोवाच।

कामं पूज्य* त्रयोदश्यां सुरूपो जायते ध्रुवम्।
इष्टां रूपवतीं भार्य्यां लभेत् कामांश्च पुष्कलान्॥
मूलमन्त्राः स्वसंज्ञाभिरङ्गमन्त्राश्च कीर्त्तिताः।
पूर्व्ववत् पद्मपत्रस्थः कर्त्तव्यश्च तिथीश्वरः॥
गन्धपुष्पोपहारैश्च यथाशक्ति विधीयते।
पूजाशाठेन शाठेन कृतापि तु फलप्रदा॥
आज्यधारा समिद्भिश्च दधिक्षीरान्नमाक्षिकैः।
पूर्व्वोक्तफलदो होमः कृतः शान्तेन चेतसा॥

एतद्व्रतं वैश्वानरप्रतिपद्व्रतवत् व्याख्येयम्।

इति भविष्यत्पुराणोक्तं कामत्रयोदशीव्रतम्।

इति श्रीमहाराजाधिराज-श्रीमहादेवस्य समस्त
करणाधीश्वर-सकल-विद्याविशारद श्रीहेमाद्रि--
विरचिते चतुर्व्वर्गचिन्तामणौ व्रतखण्डे
त्रयोदशीव्रतानि॥

---

* नरइति पुस्तकान्तरे पाठः।
* कामयुज्जेति पुस्तकान्तरे पाठः॥

# अथ अष्टादशोऽध्यायः ॥

———000———

अथ चतुर्द्दशीव्रतानि ।

दिग्दन्तावलकर्णतालपवन-प्रेङ्खोलभृङ्गाङ्गना
सङ्गीतिश्रुति मिश्रितं सुमधुरं वैकुण्ठ-कुण्ठस्वरैः ।
कीर्त्तिं किंनरयोषितः प्रतिदिशङ्गायन्ति यस्यानिशं
हेमाद्रिः स चतुर्द्दशीव्रतगणं ब्रूते महासिद्धिदं ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

अनन्त व्रतमप्यन्यत्तिथा वक्ष्यामनुत्तमं ।
सर्वपापहरं नृणां स्त्रीणां चैव युधिष्ठिर ॥
शुक्लपक्षे चतुर्द्दश्यांमासि भाद्रपदे भवेत् ।
तस्यानुष्ठानमात्रेण सर्वपापाद्व्यपोहति ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

कृष्ण कोयमनन्तेति प्रोच्यते यस्तया विभो ।
किं शेषनाग आहोस्विदनन्तस्तत्चकः स्मृतः ॥
परमात्मा तथानन्त उताहो ब्रह्म उच्यते ।
क एषोऽनन्तसंज्ञोवै तथ्यं मे ब्रूहि केशव ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

अनन्त इत्यहं पार्थ ममरूपं निबोध वै ।
आदित्यादिग्रहा वारा यः काल उपपद्यते ॥

कला-काष्ठा-मुहूर्त्तादि दिनरात्रि शरीरवान्।
पक्षमासर्त्तु-वर्षाणि युगकल्प-व्यवस्थया॥
योऽयं कालो मया ख्यातः सोऽनन्त इति कीर्त्यते।
सोहं कलावतीर्णोऽत्र भुवो भारावतारणात्॥
दानवानां विनाशाय साधूनां पालनाय च।
अनादि मध्यमथ्यन्तकृष्णं विष्णुं हरिं शिवं॥
ब्रह्माणं भास्करं सोमं सर्वव्यापकमीश्वरं।
विश्वरूपं महाकालं सृष्टि संहारकारकं॥
प्रत्ययार्थं मया रूपं फाल्गुनाय प्रदर्शितं।
सर्व्वमेव महाबाहो योगिध्येयमनुत्तमं॥
विश्वरूपमनन्तञ्च यस्मिन्निन्द्राश्चतुर्द्दश।
वसवोऽष्टौ द्वादशार्का रुद्रा एकादशामलाः॥
सप्तर्षयः समुद्राश्च पर्व्वताः सरितोद्रुमाः।
नक्षत्राणि दिशोभूमिः पातालं भूर्भुवः स्वह।
मा कुरुष्वात्र सन्देहं सोऽहं पार्थ न संशयः॥

युधिष्ठिर उवाच।

अनन्तव्रतमाहात्म्यविधिं विधिविदाम्बर।
किं पुण्यं किं फलं यत्स्यादनुष्ठानवतां नृणां॥
केन चादौ पुरा चीर्णं मर्त्ये केन प्रकाशितं।
एवं सविस्तरं कृष्ण ब्रूह्यनन्त व्रतंमम॥

श्रीकृष्ण उवाच।

आसीत् पुरा कृतयुगे सुमन्तुर्नाम वै द्विज।

वसिष्ठगोत्रे चोत्पन्नः सुसुरूपां भृगोःसुतां ॥
दीर्घां नामोपयेमे तां वेदोक्तविधिना नृप।
तस्याः कालेन सञ्जाता दुहिता नन्ददायिनी ॥
शीला नाम सुशीला सा न्यवसन्मातृसद्मनि।
ततः कालेन कियता ज्वरदाहेन पीड़िता ॥
विननाश नदीतीर्थे ययौ स्वर्गं पतिव्रता।
सुमन्तुस्तु ततो यज्ञे धर्म्मं पुंसः सतां पुनः ॥
उपयेमे विधानेन कर्कशां नाम नामतः।
दुःशीलां कर्कशां चण्डीं नित्यं कलहकारिणीं ॥
सापि शीला पितुर्गेहे गृहार्चनरता बभौ।
कुड्यस्तम्भाङ्गन-द्वार-देहली-तोरणादिषु ॥
वर्णकैश्चित्रमकरोत् नील-पीत-सिता-सितैः।
स्वस्तिकैः शङ्खपद्मैश्च अर्चयन्ती पुनः पुनः ॥
ततः काले बहुतिथे गते मारदृशानुगा।
पित्रा दृष्टा तदातेन स्त्रीचिह्ने यौवने स्थिता ॥
कस्मै देया मया शीला विचार्य्यैवं सुदुःखितः।
पिता ददौ द्विजेन्द्राय कौण्डिन्याय शुभे दिने ॥
गृह्योक्तविधिना पार्थ विवाहमकरोत्तदा।
निर्वर्त्त्यौद्वाहिकं सर्वं प्रोक्तवान् कर्कशां द्विजः ॥
किञ्चिद्दायादिकं देयं जामातुः परितोषकं।
तत् श्रुत्वा कर्कशाक्रुद्धा प्रोञ्छाय गृहमण्डनं ॥
पटायां सुस्थितं कृत्वा स्वगृहं गम्यतामिति।
भोज्यावसिष्टचूर्णेन पाथेयञ्च चकार सा ॥

कौण्डिन्योऽपि विवाह्यैनां पथि गच्छन् शनैः शनैः।
शीलां सुशीलामादाय नवोढ़ां गौरथेन हि॥
मध्याह्ने भोज्यवेलायां समुत्तीर्य्य सरित्तटे।
ददर्श शीला स्त्रीणां सा समूहं रक्तवाससां॥
चतुर्द्दश्यामर्च्चयन्तं भक्त्या देवं जनार्द्दनं।
उपगम्य शनैः साथ प्रपच्छ स्त्रीकदम्बकं॥
आर्य्याः किमेतन्मे ब्रूत किं नाम व्रतमीदृशं।
ता ऊचु र्य्योषितस्तां तु शीलां शीलविभूषणां॥
अनन्तव्रतमेतद्धि व्रतेऽनन्तस्तु पूज्यते।
सा ब्रवीदहमेतत्ते करिष्ये व्रतमुत्तमं॥
विधानं कीदृशं तत्र किं दानं कोऽत्र पूज्यते।

स्त्रिय ऊचुः।

शीले सदन्नप्रस्थस्य पुन्नामसंस्कृतस्य च।
अर्द्धं विप्राय दातव्यं अर्द्धमात्मनि भोजनं॥
शक्त्या च दक्षिणां दद्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितां।
कर्त्तव्यं स सरीत्तीरे विधिनानेन मानिनि॥
स्नात्वा नन्तं समभ्यर्च्य गन्धलेपनधूपनैः।
पुष्पै र्गन्धैः सुनैवेद्यैः पीतरक्तैश्चतुःसमैः॥
तस्याग्रतो दृढ़ं सूत्रं कुङ्कुमाक्तं सुडोरकं।
चतुर्द्दशग्रन्थियुतं वामे करतले न्यसेत्॥
मन्त्रेणानेन सुश्रोणियावद्वर्षं समाप्यते॥
अनन्त संसारमहासमुद्रे
मग्नान् समभ्युद्धर वासुदेव।

अनन्तरूपी विनियोजयस्व
अनन्त सूत्राय नमोनमस्ते ॥
अनेन डोरकंवद्धाभोक्तव्यं स्वस्थमानसैः।
ध्यात्वा नारायणं देवमनन्तं विश्वरूपिणं।
भुक्ताचान्तो व्रजेद्वेश्म भद्रे उक्तं व्रतं तव ॥

श्रीकृष्ण उवाच।

एवमाकर्ण्य राजेन्द्र प्रहृष्टेनान्तरात्मना।
सापि चक्रे व्रतं शीला करे बद्धा सुडोरकम् ॥
पाथेयमर्द्धं विप्राय दत्त्वा भक्तं स्वयं तथा।
पुनर्जगाम संहृष्टा गोरथेन पतेर्गृहं ॥
भर्त्रासहैव शनकैः प्रत्ययस्तत्क्षणादभूत्।
तेनानन्तव्रतेनास्या वालंगोरस-संकुलं ॥
गृहाश्रमं श्रियाजुष्टं धन-धान्य-समन्वितं।
कुलमव्याकुलं रम्यं सर्वत्रातिथिपूजनं ॥
सापि माणिक्यकाञ्चीभि र्मुक्ताहारविभूषिता।
देवाङ्गवस्त्रसंच्छन्ना सावित्री प्रतिमाभवत् ॥
कदाचिदुपविष्टाया दृष्टोवद्धः सडोरकः।
शीलायाहस्तमूले तु भर्त्रा नेन द्विजन्मना ॥
स्त्रीमदान्धेन कौरव्य साक्षेपं त्रोटितं वृथा।
कोऽनन्त इति मूढेन जल्पता पापकारिणा ॥
चिक्षा ज्वाला कुलेवह्नौ हाहाकृत्वा प्रधाविता।
शीला गृहीत्वा सूत्रञ्च क्षीरमध्ये समाक्षिपेत् ॥

तेन कर्म्मविपाकेन तस्य सा श्रीः क्षयं गता।
गोधनं तस्करैर्नीतं गृहं मुष्टमकाञ्चनं॥
यद्यत्रैवागतं तत्र तत्रैव च विनिर्गतम्।
स्वजनैः कलहोमित्रैर्वञ्चनं भर्जनं तथा॥
अनन्ताक्षेपदोषेण दारिद्र्यं पतितं गृहे।
न कश्चिद्वदतोलोके तेन सार्द्धं युधिष्ठिर॥
शरीरेणाति सन्तप्तो मायया प्यतिदुःखितः।
निर्वेदं परमं प्राप्तः कौण्डिन्यः प्राह तां प्रियां॥
शीले किमेतदुत्पन्नं सहसाशोककारकं।
येनातिदुःखतोऽस्माकं जातः सर्वधनक्षयं॥
स्वजनैः कलहोगेहे नकश्चिन्मेप्रभाषते।
शरीरे तीव्रसन्तापः खेदश्चेतसि दारुणः॥
जानासि दुर्नयः कोऽत्र किं कृतं दुष्कृतं भवेत्।
प्रत्युवाच तं शीला सुशीलाशीलमण्डना॥
प्रायोऽनन्तकृताक्षेप पापसम्भवजं फलं।
भविष्यति महाभाग तदर्थं यत्नमाचर॥
एवमुक्तः सविप्रर्षि र्जगाम मनसा हरिं।
निर्वेदोन्निर्जगामाथ कौण्डिन्यः प्रयतोवनं॥
तपसे कृतसङ्कल्पो वायुभक्ष्यो द्विजोत्तमः।
मनस्याध्याय चानन्तं कृद्रक्ष्यामि ततो विभुं॥
यस्याप्रसादात्सञ्जातमाक्षेपान्निर्धनं गतं।
धनादिकं ममातीव सुखदुःखप्रदायकं॥
एवं सञ्चिन्तयत् सोऽथ वभ्राम विजने वने॥

तत्रापश्यत् महाचूतं फलितं पुष्पितं तथा।
वर्जितं पक्षिसङ्घातैः कीकटे विभवं यथा॥
तमपृच्छत्त्वयानन्तः कश्चिद्दृष्टो महातरो।
ब्रूहि सौम्य ममातीव दुःखं चेतसि वर्त्तते॥
सोऽब्रवीद्द्विज नानन्तं वेद्मि द्रक्ष्यामि वा द्विज।
एवं निराकृतस्तेन जगामाथ द्विजस्ततः॥
क्व द्रक्ष्यामीति गच्छन् स गामपश्यत्सवत्सकां।
तृणमध्ये प्रधावन्तीमितश्चेतश्च पाण्डव॥
अपृच्छद्धेनुके ब्रूहि यद्यनन्तस्त्वयेक्षितः।
साचोवाचाथ कौण्डिन्यं नानन्तं वेद्म्यहं द्विजः॥
ततो व्रजन् ददर्शाग्रे रम्यं पुष्करिणीद्वयं।
अन्योन्यजलकल्लोल-वीचिपर्य्यङ्कसङ्गमम्॥
छन्नं किञ्जल्ककह्लार-कमलोत्पलमण्डलैः।
सेवितं भ्रमरैर्हंसैश्चक्रैः कारण्डवैर्वकैः॥
ते चापृच्छद्द्विजोऽनन्तो भवतीभ्यां न लक्षितः।
जपतस्ते द्विजश्रेष्ठ नानन्तं वेद्मि हे किल॥
ददर्शाथ वने तस्मिन् गर्द्दभं कुञ्जरं तथा।
तावप्यातौ द्विजेनोक्तौ ऊचतुर्नैव विद्महे॥
एवं सम्यक् क्व द्रक्ष्यामि तत्रैव भुवि तादृशः।
कौण्डिन्यो विह्वलीभूतो निराशो जीविते नृप॥
दीर्घमुष्णञ्च निश्वस्य पपात भुवि भारत।
प्राप्य संज्ञामनन्तेति जल्पन्नुत्थाय स द्विजः॥
नूनं पश्याम्यहं प्राणानिति सङ्कल्प्य चेतसि।

उत्थायोद्वध्य वृक्षेऽस्मिन् तावद्भारत सत्तम ॥
कृपयानन्तदेवोऽस्य प्रत्यक्षं समजायत।
वृद्धब्राह्मणरूपेण एह्येहीत्युवाच तं ॥
प्रगृह्य दक्षिणे पाणौ गुहामाविश्य तं स्वतः।
स्वां पुरीं दर्शयामास दिव्यनारीनरैर्युतं ॥
तस्यां निविष्टमात्मानं दिव्यसिंहासने शुभे।
पार्श्वस्थं शङ्खचक्रञ्च गदागरुड़शोभितं ॥
दर्शयामास विप्राय विश्वरूपमनन्तकम्।
विभूतिभेदैश्चानन्तैरनन्तममितौजसं।
तं दृष्ट्वा तादृशं रूपमनन्तमपराजितम् ॥
वेपमानो जगादोच्चैर्जयशब्दपुरःसरं।
जय कृष्ण जयानन्त विश्वमूर्त्ते जयाव्यय ॥
जय सर्व्वैककर्त्तति संहर्त्तः च जयाच्युत।
अनादि निधना, व्यक्त जय नित्य जयाक्षर ॥
जय सर्वग सर्व्वात्मन् सर्व्वस्य हृदयेश्वरः।
एवमादि प्रणम्याथ पुनरप्याह तं द्विजं ॥
पापोऽहं पापकर्म्माहं पापात्मा पापसम्भवः।
त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष सर्व्व पापहरो भव ॥
तच्छ्रुत्वा नन्तदेवश्च प्राह सुस्निग्धया गिरा।
माभैस्त्वं ब्रूहि विप्रेन्द्र यत्ते मनसि वर्त्तते ॥

कौण्डिन्य उवाच।

मया भूत्या विलुप्तेन त्रोटितोऽनन्तडोरकः।
तेन पापविपाकेन भूतिर्मे प्रलयं गता ॥

स्वजनैः कलहो गेहे न कश्चिन्मां प्रभाषते।
निर्वेदात् भ्रमितोऽरण्ये तव दर्शनकाङ्क्षया॥
कृपया देवदेवश्च त्वया स्माकं प्रदर्शितः।
तस्य पापस्य मे शान्तिं कारुण्याद्वक्तुमर्हसि॥

श्रीकृष्ण उवाच।

तच्छ्रुत्वानन्तदेवेश उवाच द्विजसत्तमं।
भक्त्या माता पिता देवः किं न दद्याद्युधिष्ठिर॥

अनन्त उवाच।

स्वगृहं गच्छ कौण्डिन्य मा विलम्बं करिष्यसि।
चरानन्तव्रतं कुर्य्यात् नववर्षाणि पञ्च च॥
ततः पापविशुद्धात्मा प्राप्स्यसे ऋद्धिमुत्तमां।
पुत्रपौत्रान् समुत्पाद्य भुक्त्वा भोगान्मनोनुगान्॥
अन्ते च स्मरणं प्राप्य मामुपेष्यस्यसंशयम्।
अन्यच्चते वरन्दद्मि सर्व्वलोकोपकारकम्॥
इदमाख्यानकं श्रुत्वा शीलानन्तव्रतादिकम्।
करिष्यति नरोयस्तु कुर्व्वन् व्रतमिदं शुभम्॥
सोऽचिरात्पापनिर्म्मुक्तः प्राप्नोति परमां गतिं।
गच्छ विप्र गृहं शीघ्रं यथायेनागतोह्यसि॥

कौण्डिन्य उवाच।

स्वामिन् पृच्छामि मे ब्रूहि किञ्चित् कौतूहलं मया।
अरण्ये भ्रमता दृष्टं न तद्देश्मि जगद्गुरो॥
स चूत वृचस्तस्मिन् गौरिका च वृषभस्तथा।

कमलोत्पलकह्लारैः शोभितं सुमनोहरं॥
मया दृष्टं महारण्ये किं तत् पुष्करिणीद्वयं।
कः खरः कुञ्जरः कोऽसौ कोऽसौ वृद्धोद्विजोत्तमः॥

अनन्त उवाच।

स चूतवृक्षोविप्रोऽसौ वेदार्थत्व विशारदः।
सोर्थितोऽपि नवै प्रादा च्छिष्येभ्य स्तत्कृताङ्कतः *॥
सा गौ वसुन्धरा दृष्टा सुफला या त्वया द्विज।
वृषोधर्म्मस्त्वयादृष्टः शाद्वलं सत्यमाश्रितः॥
धर्म्म व्यवस्थानं तच्च यद्यत्पुष्करिणीद्वयं।
ब्राह्मण्यौ केचिदप्यास्तां भगिन्यौ ते परस्परं॥
धर्म्माधर्म्मादि यत्किञ्चित् तं निवेदयतोमिथः।
विप्राय न क्वचिद्दत्तमतिथौ दुर्ब्बलोऽपि वा॥
भिक्षा दत्ता नचार्थिभ्यो तेन पापेन कर्म्मणा॥
वीचीकल्लोलमालाभिर्मच्छतस्ते परस्परम्॥
खरः क्रोधः स्त्वयादृष्टः कुञ्जरो रोगउच्यते।
ब्राह्मणो सावनन्तोऽहं गुहासंसारगह्वरम्॥
इत्युक्त्वा देवदेवेशस्तत्रैवान्तरधीयत।
स्वप्नप्रायश्च तद्दृष्ट्वा ततः स्वगृहमागतः॥
कृत्वानन्तव्रतं सम्यक् नववर्षाणि पञ्च च।
भुक्त्वासर्व्वमनन्तेन यथोक्तं पाण्डुनन्दन॥
अन्ते च स्मरणं प्राप्य गतोऽनन्तपुरे द्विजः।
तथा त्वमपि राजेन्द्र कथां शृण्वन् व्रतं कुरु॥

---

* उपपन्नभ्यः शिष्येभ्यो गर्व्वात् विद्यां न दत्तवानिति पुस्तकान्तरे पाठः।

प्राप्स्यसे चिन्तितं सर्व्वमनन्तस्य वचो यथा।
यश्चतुर्द्दशमे वर्षे फलं प्राप्तं द्विजन्मना॥
वर्षेकेन तदाप्नोति कृत्वा साख्यानकं व्रतं।
यत् कृत्वा सर्व्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥
येऽपि शृण्वन्ति सततं तथान्ये च पठन्ति ये।
तेऽपि पापविनिर्म्मुक्ताः प्राप्स्यन्ति च हरेः पदं॥

संसारगह्वरगुहासु सुखं विहर्त्तुं
वाञ्छन्ति ये कुरुकुलोद्वह शुद्धचित्ताः।
सम्पूज्य च त्रिभुवनेशमनन्तदेवं
बध्नन्ति दक्षिणकरे वरडोरकन्ते॥

इत्यनन्तव्रतं।

---

अथोद्यापनविधिरभिधीयते।

युधिष्ठिर उवाच।

देवदेवं समाप्यैव व्रतस्य परमाद्भुतम्।
उद्यापनविधिं कृष्ण अनुग्राह्योस्मि केशव॥
उद्यापनविधिं विना न व्रतस्य फलं भवेत्।
तस्माद्यथातथा कुर्य्याद्वित्तशाठं विवर्जयेत्॥

श्रीकृष्ण उवाच।

मासि भाद्रपदे प्राप्ते परिपूर्णे व्रते ततः।
शुक्लायां च चतुर्द्दश्यां ब्रह्मचारी व्रती नतः॥

एकभक्तेन नियमं कृत्वा भक्तिसमन्वितः।
स्नात्वा नद्यां देवखाते तीर्थप्रस्रवणे तथा॥
सर्व्वौषधैः सर्व्वगन्धैस्तिलकल्कैरथामलैः।
वेदोक्तविधिना सम्यक् तर्पयेत् पितृदेवताः॥
ततो गृहं समागत्य वेदिं कृत्वा सुशोभनां।
तत्रालिखेन्मण्डलकं पञ्चवर्णैः सुशोभितैः॥
नवनाल सुसम्पूर्णं सर्व्वतोभद्रमेव च।
तस्योपरि न्यसेत् कुम्भमव्रणं सुदृढं नवं॥
ताम्रपात्रा समायुक्त पञ्चरत्नसमन्वितम्।
माषकेण सुवर्णस्य दरिद्रेणापि पार्थिवः।
कृत्वानन्तं प्रयत्नेन ताम्रपात्रोपरि न्यसेत्॥
शय्यां सुविस्तरां कृत्वा तत्रानन्त न्यसेद्व्रती।
लक्ष्म्या युक्त वासुदेवं मुशलेन हलेन च॥
आचार्य्यं पूजयित्वा च वस्त्रैराभरणैस्तथा॥
वर्षाङ्गुलीयचित्रैश्च भक्त्या च सुसमाहितः।
ततस्तं पूजयेद्देवमनन्तं विश्वरूपिणं॥
वस्त्रयुग्मसमाच्छन्न पीतयज्ञोपवीतिनं।
चन्दनेन सुगन्धेन कर्पूरागुरुमिश्रिणा॥
लेपयेच्च ततोङ्गानि* प्रीयतां मधुसूदन॥

अनुलेपनमन्त्रः।

ततः पुष्पाणि संगृह्य पूजयेन्नामभिः पृथक्।
अनन्ताय नमः पादौ गुल्फौ सङ्कर्षणाय च॥

* सर्वाङ्गानीति पुस्तकान्तरे पाठः।

कायात्मने तु जानुभ्यां जघनं विश्वरूपिणे।
कोटिं वै विश्वरूपाय मेढ्रं वै विश्वरूपिणे॥
नाभ्यान्तु पद्मनाभाय हृदये परमात्मने।
कण्ठं श्रीकण्ठनाथाय बाहू सर्वास्त्रधारिणे।
वाचस्पते नमस्तुभ्यं मुखे संपूजयेद्धरिं।
ललाटे केशवायेति शिरः सर्व्वात्मने नमः॥
लोकात्मा सर्वभूतात्मा निमिषस्त्रुटिसंलवः॥
जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि-संसारभयनाशन।
वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यः सुमनोहरः।
आहारः सर्व्वभूतानान्धूपोऽयं प्रतिगृह्यतां।

धूपमन्त्रः।

त्वं ज्योतिः सर्व्वभूतानां तेजसां तेजउत्तमं।
आत्मज्योतिः परं धाम दीपोऽयं प्रतिगृह्यतां॥

दीपमन्त्रः।

अन्नं चतुर्विधं स्वादु भूतानां जीवनं परं।
नैवेद्यन्ते मया दत्तं देव प्रीत्या प्रगृह्यतां॥
पूगीफलं सहान्येन कर्पूरञ्च मनोहरं।
पवित्रीकृतमन्यत्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यतां॥
वस्त्रयुग्मं शुचियस्माद्वासुदेवस्य वल्लभं।
अनन्तः प्रीयतां तेन पीतवर्णेन मे सदा॥
एवं पूजान्ततः कृत्वा गच्छेत्कुण्डसमाश्रयं।
स्वगृह्योक्तविधानेन कृत्वाग्निस्थापनं ततः॥

प्रारभेत्तु ततोहोममश्वत्थसमिधस्तिलैः।
व्रीहिभिश्च यवैश्चैव घृतेन तु विधानतः॥
पुरुषसूक्तेन जुहुयाद्ततोदेवेति वा पुनः।
इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधेपदम्॥
शतमष्टोत्तरं यावत्प्रत्येकं जुहुयाद्गुरुः।
सर्व्वंहुत्वा विधानेन मन्त्रैरेतैर्व्विचक्षणः॥

अनन्ताय स्वाहा। कालाय स्वाहा। संवत्सराय स्वाहा। अहोरात्राय स्वाहा। अर्द्धमासाय स्वाहा। मासाय स्वाहा। ऋतुभ्यः स्वाहा। संवत्सराय स्वाहा। ततोमहाव्याहृतयः। सर्व्वं प्रायश्चित्तं वरुणां आज्यतिलैः स्विष्टकृत्, प्रजापतिभ्यां जुहुयात्।

ततोवै लोकपालांश्च ग्रहान् पूज्य यथाक्रमं।
गीतवादित्रनिनदैर्दत्त्वा पूर्णाहुतिं व्रती॥
पुराणश्रवणैस्तद्वत् रात्रिशेषं नयेद्व्रती।
ततः प्रभातसमये स्नात्वा शुद्धः कृताह्निकः॥
पूर्व्वोक्तेन विधानेन पूजयेद्विश्वरूपिणम्।
पूजयित्वा हरिं देवमाचार्य्यं पूजयेत्ततः॥
परिधाप्य सपत्नीकं वस्त्रालङ्कारभूषितं।
मन्त्रैः संपूज्य विधिवद्धेनुं दद्यात् प्रयत्नतः॥
सुरभी वैष्णवी माता नित्यं विष्णुपदे स्थिता।
ग्रासं गृह्ण* मया दत्तं गोमातस्त्रातु मर्हसि॥

---

* ग्रासं गृह्णातु सा देवीति पुस्तकान्तरे पाठः।

गावोममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
गावोमे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहं॥
गोदानस्याधानार्थं दद्यात् स्वर्णं यथाविधि॥
मन्त्रेणानेन सम्पूज्य आचार्य्याय निवेदयेत्॥
अन्यच्च परिवासश्च आचार्य्याय निवेदयेत्।
आमन्त्रितानथो विप्रान् पूजयेच्च चतुर्दश*।
वस्त्रोपवीतैः संपूज्य भोजयेदन्नविस्तरैः॥
ततस्तु दक्षिणान्तेभ्यो वित्तशाठ्यविवर्जितः।
स्वशक्त्या दक्षिणां दद्यादाचार्य्याय क्षमापयेत्†॥
क्रियाहीनं भक्तिहीनं द्रव्यहीनं तथैव च।
मन्त्रहीनं पठेत्पश्चात् व्रतसम्पूर्ण‡हेतवे॥

अनन्त संसारमहासमुद्रे
मग्नं समभ्युद्धर वासुदेव।
अनन्तरूपे विनियोजयस्व
अनन्तरूपाय नमोनमस्ते॥

इत्यनन्तं विसर्ज्याथ ब्राह्मणांश्च तथैव च॥
दीनेभ्यः कृपणेभ्यश्च¶ दद्याच्चैव तथा धनं॥
ततइष्टैः समस्तैश्च पुत्र सम्बन्धिबान्धवैः।
यथोपपन्नं भोक्तव्यं कृत्वा मानसमव्यये॥
आचर्य्यं च शुचिर्भूत्वा चिन्त्योविष्णुश्च तद्दिने।

---

* आमन्त्रितान्विप्रान् पूर्व्वेद्युश्चतुर्दश इति क्वचित् पाठः।

† स्वशक्त्या दद्यादाचार्य्यं प्रणिपत्य क्षमापयेदिति पुस्तकान्तरे पाठः।

‡ सम्पूर्त्ति इति पुस्तकान्तरे पाठः।

¶ दीनान्धकृपणेभ्यश्च इति पुस्तकान्तरे पाठः।

एवं कृते नृपश्रेष्ठ कर्मणाशु जनार्द्दनः ।
अनन्तरूपी भगवांस्तुष्टोभवति सर्व्वदा ॥
व्रतस्य फलमाप्नोति विष्णुलोके महीयते ।

सूत उवाच ।

हिरण्यकशिपुं हत्वा देवदेवं जगद्गुरुं ।
सुखासीनं तदुत्सङ्गे शान्तकोपं रमापतिं ॥
प्रह्लादोज्ञानिनां श्रेष्ठः पालयन् राज्यमुत्तमम् ।
एकाकी च तदुत्सङ्गे प्रियं वचनमब्रवीत् ॥

प्रह्लाद उवाच ।

नमस्ते भगवन् विष्णो नृसिंहरूपिणे नमः ।
त्वद्भक्तोऽहं सुरेशैकं त्वां पृच्छामि च तत्त्वतः ॥
स्वामिन् त्वयि ममामित्रे भक्तिर्जाता त्वनेकधा ।
कथञ्च ते प्रियोजातः कारणं वद मे प्रभो ॥

नृसिंह उवाच ।

कथयामि महाप्राज्ञ शृणुष्वैकाग्रमानसः ।
भक्तेर्यत्कारणं वत्स प्रियत्वस्य च कारणं ॥
पुरा काले ह्यभूद्विप्रः किन्तु त्वं नाप्यधीतवान् ॥
नाम्ना त्वं वासुदेवोहि वेश्यास्वासक्तमानसः ।
यस्मिन्* जन्मनि नैव त्वं चकार सुकृतं कियत् ॥
सुक्ता तु मद्व्रतं चैकं वेश्यासङ्गतिलालसः ।
मद्व्रतस्य प्रभावेन भक्तिर्जाता तवानघ ॥

* अनघेति पुस्तकान्तरे पाठः ।

प्रह्लाद उवाच।

श्रीनृसिंहोच्यतां तावत् कस्य पुत्रस्य किं व्रतम्।
वेश्यायां वर्त्तमानेन कथं तच्च कृतं मया॥
येन तद्विष्णुमाहात्म्यं वक्तुमर्हसि साम्प्रतम्॥

नृसिंह उवाच।

पुरावन्तीपुरे ह्यासीत् ब्राह्मणो वेदपारगः।
तस्य नाम सुशर्मेति बहुलोकेषु विश्रुतः॥
नित्यहोमक्रियांचैव विदधाति द्विजोत्तमः।
ब्राह्मक्रियासु नियतः सर्वासु किल तत्परः॥
अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टाः सर्वे सुरोत्तमाः।
तेनापि विद्यमानेन कृतभो दुष्कृतं कियत्॥
तस्य भार्य्या सुशीलाभूद्विख्याता भुवनत्रये।
पतिव्रता सदाचारा पतिभक्तिपरायणा॥
जज्ञिरेऽस्यां सुताः पञ्च तस्माद्द्विजवरास्तथा।
सदाचाराः सुविद्वांसः पितृभक्तिपरायणाः॥
तेषां मध्ये कनिष्ठस्त्वं वेश्यासङ्गतितत्परः।
मया निषिध्यमानेन सुरापानं त्वया कृतम्।
सुवर्णं चापहृतं तैश्च समं चीर्णमघं बहु॥
विलासिन्या गृहे नित्यं हससे विनिवारितः।

विलासिनी वेश्या।

एकदा तद्गृहे ह्यासी महाकलिस्त्वया सह।
तेन कलहभावेन भोजनं न त्वया कृतं॥

अज्ञानात् मद्व्रतं चक्रे व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।
तस्यां विहारयोगेन रात्रौ जागरणं कृतं ॥
वेश्याया वल्लभं कश्चित् प्रजातं न त्वया समं ।
रात्रौ जागरणं चीर्णं त्यक्तं भोग्यमनेकशः ॥
व्रतेनानेन चीर्णेन मोदन्ति दिवि देवताः ।
सृष्ट्यर्थञ्च पुरा ब्रह्मा चक्रे ह्येतदनुत्तमं ॥
मद्व्रतस्य प्रभावेन निर्मितं स चराचरम् ।
ईश्वरेण पुरा चीर्णं बधार्थं त्रिपुरस्य च ॥
माहात्म्येन व्रतस्याशु त्रिपुरस्तु निपातितः ।
अन्यैश्च बहुभिर्देवै ऋषिभिश्च पुरानघ ॥
राजभिश्च महाप्राज्ञैर्विहितं व्रतमुत्तमम् ।
एतद्व्रतप्रभावेन सर्व्वे सिद्धिमुपागताः ।
वैश्यापि मत् प्रिया जाता त्रैलोक्ये सुखचारिणी ॥
ईदृशं मद्व्रतं वत्स-त्रैलोक्येषु च विश्रुतं ।
कलहेन विलासिन्या व्रतमेतदुपस्थितम् ॥
प्रह्लाद तेन ते भक्तिर्मयि जाता ह्यनुत्तमा ।
धूर्त्तया च विलासिन्या ज्ञात्वा व्रतदिनं मम ॥
कलहश्च कृतोयेन मद्व्रतञ्च कृतं भवेत् ।
सा वेश्या त्वप्सरा जाता भुक्त्वा भोगाननेकशः ॥
मुक्त्वा कर्म्म विलासि त्वं प्रह्लाद सुविस्मयः ।
कार्य्यार्थे भगवानास्ते मत्सरी च पृथक् तथा ॥
विधाय सर्व्वकार्य्याणि शीघ्रं त्वञ्च गमिष्यसि ।
य इदं व्रतमावश्यं प्रकरिष्यति मानवः ॥

न तेषां पुनरावृत्तिर्मत्तः कल्पशतैरपि।
अपुत्रो लभते पुत्रान् मद्भक्तांश्च सुवर्चसा॥
दरिद्रो लभते लक्ष्मीं धनदस्य च यादृशीं
तेजःकामो लभेत्तेजो राज्येषु राज्यमुत्तमं॥
आयुःकामो लभेदायुर्यादृशं च शिवस्य हि।
स्त्रीणां व्रतमिदं साधु पुत्रदं भाग्यदं तथा॥
अवैधव्यकरन्तासां पुत्रशोकविनाशनं।
धनधान्यकरं चैव जातिश्रैष्ठ्यकरं शुभं॥
सार्व्वभौमसुखं तासां दिव्यं सौख्यं भवेत्ततः।
स्त्रियो वा पुरुषाश्चापि कुर्व्वन्ति व्रतमुत्तमम्॥
तेभ्योददाम्यहं सौख्यं भुक्तिमुक्तिसमन्वितं।
बहुनोक्तेन किं वत्स व्रतस्यास्य फलं महत्॥
मद्व्रतस्य फलं वक्तुं नाहं शक्नोन शङ्करः।
ब्रह्मा चतुर्भिर्व्वक्त्रैश्च न लभेन्महिमावधिं॥

प्रह्लाद उवाच।

भगवंस्त्वत्प्रसादेन श्रुतं व्रतमनुत्तमं।
व्रतस्यास्य फलं साधु त्वयि मे भक्तिकारणं॥
स्वामिन् जातिविशेषेण त्वत्तः पापनिकृन्तनं।
अधुना श्रोतुमिच्छामि व्रतस्यास्य विधिं परं॥
कस्मिन् मासि भवेदेतत् कस्मिंश्च वासरे प्रभो।
एतद्विस्तरतोदेव वक्तुमर्हसि साम्प्रतं॥
विधिना येन वै स्वामिन् समग्रफलभुग्भवेत्।
ममोपरि कृपां कृत्वा ब्रूहि त्वं सकलं प्रभो॥

नृसिंह उवाच ।

साधु साधु महाभाग व्रतस्यास्य विधिं परं ।
सर्वं कथयतो मेऽद्य त्वमेकाग्रमनाः शृणु ॥
वैशाखशुक्लपक्षे तु चतुर्दश्यां समाचरेत् ।
मज्जन्मसम्भवं पुण्यं व्रतं पापप्रणाशनं ॥
वर्षे वर्षे तु कर्त्तव्यं मम सन्तुष्टिकारकम् ।
महागुह्यमिदं श्रेष्ठमानुषैर्भवभीरुभिः ।
तेनैव क्रियमाणेन सहस्रद्वादशीफलं ॥
जायते मत्सखा वच्मि मानुषाणां महात्मनां ।
स्वातीनक्षत्रयोगेन शनिवारेण संयुते ॥
सिद्धियोगस्य संयोगे वणिजे करणे तथा ।
पुण्यसौभाग्ययोगेन लभ्यते दैवयोगतः ॥
सर्वैरेतैस्तु संयुक्तं हत्या कोटिविनाशनम् ।
एतदन्यतरे योगे तद्दिनं पापनाशनम् ॥
केवले तत्प्रकर्त्तव्यम् मद्दिने व्रतमुत्तमम् ।
अन्यथा नरकं याति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥
यथा यथा प्रवृत्तिः स्यात्पातकस्य कलौ युगे ।
तथा तथा प्रणश्यन्ति तद्व्रतस्य प्रभावतः ॥
मद्व्रतस्य प्रभावेन मतिर्नस्याद्दुरात्मनाम् ।
विचार्य्यैत्थं प्रकर्त्तव्यं माधवे मासि मद्व्रतं ॥
नियमश्च प्रकर्त्तव्यं दन्तधावनपूर्वकं ।
श्रीनृसिंहोमहोग्रस्त्वं दयां कृत्वा ममोपरि ॥

अद्याहञ्च विधास्यामि व्रतं निर्विघ्नतां नय।

इति नियममन्त्रः।

व्रतस्थेन न कर्त्तव्या सङ्गतिः पापिभिः सह।
मिथ्यालापोन कर्त्तव्यः समग्रफलकाङ्क्षिभिः॥
स्त्रीभिर्हतैश्च आलापान् व्रतस्थोनैव कारयेत्।
स्मर्त्तव्यं मे महारूपं मद्दिने सकले शुभे॥
ततो मध्याह्नवेलायां नद्यादौ विमले जले।
गृहेवा देवखाते वा तड़ागे विमले शुभे॥
वैदिकेन च मन्त्रेण स्नानं कृत्वा विचक्षणः।
मृत्तिकागोमयेनैव तथा धात्रीफलेन च॥
तिलैश्च सर्व्वपापघ्नैः स्नानं कृत्वा महात्मभिः।
परिधाय शुचिर्व्वासो नित्यकर्म्म समाचरेत्॥
ततोगृहं समागत्य स्मरन् माम्भक्तियोगतः।
गोमयेन च लिप्याथ कुर्यादष्टदलं शुभं॥
कलशन्तत्र संस्थाप्य ताम्ररत्नसमन्वितं।
तस्योपरि न्यसेत्पात्रं तण्डुलैः परिपूरितं॥
हैमी तत्र च मन्मूर्त्तिः स्थाप्या लक्ष्म्या तथैव च।
पलेनच तदर्द्धेन तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः॥
यथा शक्ति तथा कार्य्या वित्तशाठ्यविवर्जितः।
पञ्चामृतेन संस्नाप्य पूजनन्तु समाचरेत्॥
ततोब्राह्मणमाहूय तमाचार्य्यमलोलुपं।
सदाचारसमायुक्तं शान्तं दान्तं जितेन्द्रियं॥

तेनैव कारयेत् पूजां दृष्ट्वा शास्त्रानुसारतः ।
आचार्यवचनाद्धीमान् पूजां कुर्य्याद्यथाविधि ।
मण्डपं कारयेत्तत्र पुष्पस्तबकशोभितं ॥
ऋतुकालोद्भवैः पुष्पैः पूजयेद्यतमानसः ।
उपचारैः षोड़शभिर्म्मन्त्रैर्नामभिस्तथा ।
ततः पौराणिकैर्म्मन्त्रैः पूजनीयौ यथाविधि ।
चन्दनं शीतलं दिव्यं चन्द्रकुङ्कुममिश्रितं ।
ददामि तव तुष्ट्यर्थं नृसिंह परमेश्वर ॥

इतिचन्दनमन्त्रः ।

कालोद्भवानि पुष्पाणि तुलस्यादीनि वै प्रभो ।
पूजयामि नृसिंहन्त्वां लक्ष्म्या सह नमोऽस्तु ते ॥

पुष्पमन्त्रः ।

कालागरुमयन्धूपं सर्व्वदेवसुवल्लभं ।
करोमि वै महाविष्णो सर्व्वकामसमृद्धये ॥

इति धूपमन्त्रः ।

दीपः पापहरः प्रोक्तस्तमोराशिविनाशनः ।
दीपेन लभ्यते तेजस्तस्माद्दीपं ददामि ते ॥

इति दीपमन्त्रः ।

नैवेद्यं सौख्यदञ्चारु भक्ष्यभोज्यसमन्वितं ।
ददामि ते रमाकान्त सर्व्वपापक्षयं कुरु ॥

इति नैवेद्यमन्त्रः।

नृसिंहाच्युतदेवेश लक्ष्मीकान्त जगत्पते।
अनेनार्घ्यप्रदानेन सफलाःस्युर्मनोरथाः॥

इत्यर्घ्यमन्त्रः।

पीताम्बर महाबाहो प्रह्लाद भयनाशकृत्।
यथाभूतेनार्चनेन यथोक्तफलदोभव॥

इति प्रार्थनमन्त्रः।

रात्रौ जागरणं कार्य्यं गीतवादित्रनिस्वनैः।
पुराणपठनैर्नृत्यै श्रोतव्या च कथा शुभा॥
ततः प्रभातसमये स्नानं कृत्वाह्यतन्द्रितः।
पूर्वोक्तेन विधानेन पूजयेन्मां प्रयत्नतः॥
वैष्णवं तु चरेच्छ्राद्धं मदग्रे सुस्थिमानसः।
ततो दानानि देयानि वक्ष्यमाणानि चानघ॥
पात्रेभ्यस्तु द्विजेभ्यो हि लोकद्वयजिगीषया।
सिंहः स्वर्णमयो देयो मम सन्तोषकारकः॥
गो-भूतिल-हिरण्यानि देयानि च फलैः शुभैः।
शय्या सतूलिका देया सप्तधान्यसमन्विता॥
अन्यानि च यथाशक्त्या देयानि मम तुष्टये।
वित्तशाठ्यं न कुर्व्वीत यथोक्तफलकाङ्क्षया॥
ब्राह्मणान् भोजयेद्भक्त्या तेभ्यो देया च दक्षिणा।
निर्द्धनैरपि कर्त्तव्यं देयं शक्त्यनुसारतः॥
सर्वेषामेव वर्णानामधिकारोऽस्ति मे व्रत।

मद्भक्तैस्तु विशेषेण कर्त्तव्यं मत्परायणैः ॥
मद्वंशे ये नरा जाता ये निष्पत्तिपरायणाः।
तान् समुद्धर देवेश दुस्तरात् भवसागरात् ॥
पातकार्णवमग्नस्य व्याधिदुःखाम्बुवारिभिः।
जीवैस्तु परिभूतस्य महादुःखगतस्य मे ॥
करावलम्बनन्देहि शेषशायिन् जगत्पते।
श्रीनृसिंह रमाकान्त भक्तानां भवनाशन ॥
क्षीराम्बुधिनिवासस्तु चक्रपाणिर्जनार्द्दनः।
व्रतेनानेन देवेश भुक्ति-मुक्ति-प्रदो भव ॥

इति प्रार्थनामन्त्रः।

एवं प्रार्थ्य ततो देवं विसृज्य च यथाविधि।
उपहारादिकं सर्वमाचार्य्याय निवेदयेत् ॥
दक्षिणाभिः सुसन्तोष्य ब्राह्मणांस्तु विसर्जयेत्।
मध्याह्ने तु समायुक्तो भुञ्जीत बन्धुभिर्नरः ॥
यइदं शृणुयाद्भक्त्या व्रतं पापप्रणाशनं।
तस्य श्रवणमात्रेण ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥
पवित्रं परमं गुह्यं कीर्त्तयेद्यस्तु मानवः।
सर्व्वान् कामानवाप्नोति व्रतस्यास्य फलं लभेत् ॥

## इति श्रीनरसिंहपुराणे नरसिंहप्रादुर्भावे नरसिंहचतुर्दशीव्रतम्।

———000———

( ७ )

शिव उवाच।

अथ लिङ्गव्रतान्यत्र शृणु लेशेन षण्मुख।
कार्त्तिकात् सम्यगारभ्य व्रतं वै शंसितव्रतः॥
कार्त्तिकस्य चतुर्द्दश्यां शुक्लायां पूजयेच्छिवं।
महास्नानं प्रकर्त्तव्यं महापूजामथो पुनः॥
लिङ्गव्रतानां सर्व्वेषां तथा नक्तेन वर्त्तनं।
पूजां कृत्वाथ यत्नेन वस्त्रनैवद्यकादिभिः।
शालिपिष्टमयं लिङ्गं कुर्य्याद्रत्निप्रमाणतः॥

रत्निर्बद्धमुष्टिकरः।

तिलप्रस्थं सुवर्णस्य लिङ्गस्योपरि विन्यसेत्।
धूपोवैकुन्दुरुर्देय अदनश्चागरुस्तथा॥
शिवरूपाय दातव्यं शिवं--यात्यच्चयञ्चतः॥

शिवरूपाय विप्राय लिङ्गं दातव्यं।

मार्गशीर्षे चतुर्द्दश्यां शुक्लायां वै विशेषतः।
संपूज्य पूर्व्ववल्लिङ्गं महास्नानेन तत्वतः॥
विलिप्य कुङ्कुमेनैव शिवन्तेन प्रपूजयेत्।
श्वेतं चन्दनलिङ्गन्तु कर्त्तव्यं पूर्व्वमानतः॥
सुवर्णं तण्डुलप्रस्थं पृष्ठेसर्पं शिवाग्रतः।
कर्पूरेण तु धूपन्तु चतुर्दिक्षु प्रकल्पयेत्।
महावर्त्यादिकं देयं दधिपात्रं शुभाष्टकं॥

'शुभाष्टकं' मङ्गलाष्टकम्।

एवं कृत्वा विधानेन लिङ्गायविनिवर्त्तयेत् *।

* लिङ्गं लिङ्गाय निर्व्वपेत् इतिक्वचित् पाठः।

ईशान रुद्रसंज्ञाय आचार्य्याय प्रकल्पयेत् ॥

ईशानोरुद्रः, प्रीयतामिति लिङ्गाय समर्च्याचार्य्याय दद्यात् एवमन्येष्वपि मासेषु ऊहनीयं ।

शिवसायुज्यतां याति व्रतेनानेन षण्मुख ।
पौषशुक्लचतुर्द्दश्यां पूर्ववत् पूजयेच्छिवं ।
पूजान्ते गुग्गुलशतं शिवस्य परितोवहेत् ॥

शतं, पलानां ।

पायसं घृतसंमिश्रं सखण्डं प्रस्थसम्मितं ॥

प्रस्थं, तण्डुलानां ।

नैवेद्यं पुरतोदेयं पताकाः शक्तिसङ्ख्यया ।

शक्तयो अष्टौ

ध्वजा तथा पुनश्वेत लिङ्गं वै पालिपिष्टजं ।
तिलाढ़कं सुवर्णञ्च लिङ्गं दक्षिणतो न्यसेत् ॥
शङ्कराख्यस्य रुद्रस्य व्रतमेतत् समर्पयेत् ।
माघशुक्लचतुर्दश्यां शिवं संपूज्य वर्त्तयेत् ॥
शाल्योदनाक्षतं लिङ्गं तिलप्रस्थं सुवर्णकं ।
शिवस्य दक्षिणे भागे धारितव्यं प्रयत्नतः ॥
मुद्गोदनं सघृतञ्च पूर्वस्यां प्रस्थसंमितं ।
अगरुं सिह्लकं चन्द्रं दहेद्धूपं शिवाग्रतः ॥
व्रतमेवं विधानेन उग्रमावाह्य निर्वपेत् ।
व्रतान्ते तु गुरुं भक्त्या यथाशक्त्या प्रपूजयेत् ॥
फल्गुशुक्लचतुर्दश्यां शिवं पूज्य विधानतः ।
गुग्गुलं सघृतं धूपं महावर्त्तिं चतुष्टयं ॥

3 46

मोदकानि विचित्राणि चोरी देया घृतप्लुता।
पूर्वोक्तेन विधानेन तथा लिङ्गं निवेदयेत्।
शर्वाय च नमः पूज्य त्वाचार्यो भूरिदक्षिणः॥
एवं कृत्वा महासेन प्राप्नोति तन्मयं क्वचित्।
चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां शिवं पूज्य विधानतः॥
भवरुद्राय निर्वर्त्य आचार्यं पूजयेत्ततः।
एवं कार्यं प्रयत्नेन चाक्षयं लोकमिच्छता॥
चतुर्दश्यां शुक्लपक्षे वैशाखस्य प्रयत्नतः।
शिवं पूज्य विधानेन महास्नपनपूर्वकं॥
विलिप्य कुङ्कुमेनैव चन्दनैश्चर्चयेच्छिवं।
लिङ्गं पिष्टमयं कृत्वा हेमपुष्पविभूषितं॥
तिलप्रस्थं सुवर्णञ्च दक्षिणादिकं विन्यसेत्
महावर्त्तिद्वयं देयं दीपमाल्यं घृतेन तु॥
सघृतं गुग्गुलं दद्यात् पलानान्तु शतद्वयं।
अगुरुं शिह्लकं चन्द्रं प्रत्येकन्तु फलन्दहेत्॥
ततोदमनपुष्पैस्तु शिवं संपूज्य भक्तितः।
सुवर्णं तिललिङ्गञ्च भवरुद्राय निर्वपेत्॥
रुद्रसंख्यास्तु गुरवो दक्षितव्याः प्रयत्नतः।
भूदानवस्त्रदानैश्च सुवर्णादि प्रविस्तरैः॥
एतद्व्रतोत्तमं नाम व्रतं संवत्सरं हितं।
एवं यः कुरुते भक्त्या सगच्छेत्परमम्पदं॥
पितरस्तस्य नन्दन्ति रुद्रलोके महीयते।
दिव्यवर्षायुतं स्वाग्रं तदन्ते तु धनेश्वराः॥

आत्मज्ञानं पुनस्ते तु शिवे नित्ये लयं ययुः ।
यः करोति महासेन शिववत् स च पूज्यते ॥
ज्यैष्ठे शुक्लचतुर्दश्यां नित्यं कृत्वा शिवं जपेत् ।
विलिप्य चन्दनेनैव जातीपुष्पैश्च पूजयेत् ॥
कुङ्कुमं लघुचन्द्रश्च धूपं देयं शिवायतः ॥

लघु, अगुरु ।

दीपमाला तु दातव्या वारिका किङ्किणीध्वजं ।
लावणागालकाश्चैव क्षीरिपो घृतसंयुत ॥
खण्डपात्राणि देयानि घृतपात्राणि तद्वहिः ।
एवं यः कुरुते वाञ्छन् मोक्षमक्षय्यमैश्वरं ॥
पितॄनुद्धरते सोऽपि दशपूर्वान् दशापरान् ।
आषाढस्य चतुर्दश्यां शुक्लपक्षे विशेषतः ॥
शिवं पूज्य विधानेन महास्नपनपूर्वकं ।
विलिप्य चन्दनैर्देवं प्रपला तु चतुःसमं ॥
चन्द्रं चन्दनकाश्मीरं ग्रन्थिला च शिखिध्वज ।
एवं चतुःसमं नाम अङ्गरागः शिवप्रियः ॥
सस्यकुङ्कुमकर्पूरं लघुवत्पलसंयुतं ।
धूपन्तु परतो दद्यात् नैवेद्यं किरणान् बहून् ॥

किरणान् कर्पूरान् । लिङ्गाख्यात्लक्षणतत् ।

घोरिका लड्डुकाश्चैव घृतपूरं पटक्षिकं ॥
निवेद्य क्षीरपानञ्च स्नेहाद्देवस्य यत्नतः ।
पिष्ठलिङ्गं सुवर्णं च पूगपत्रञ्च निर्वपेत् ॥
वितानञ्च पताकाश्च व्यजनं दर्पणं तथा ।

आचार्य्यं पूजयेत् पश्चाद्दहमन्त्रवाहनैः॥
एवं यः कुरुते सम्यक् स याति परमं पदं।
पितरस्तस्य मोदन्ते रुद्रलोकं समंततः॥
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटि शतानि च।
श्रावणस्य चतुर्द्दश्यां शुक्लपक्षे व्रतं चरेत्॥
नित्यनैमित्तिकं चैव कृत्वा काम्यं समाचरेत्।
स्नानं पूजाजपोध्यानं होमं चैवतु पञ्चमं॥
इति नित्यं समाख्यातामहन्यहनि सन्मुख।
अष्टम्यादिनिमित्तेषु पूजासु द्विगुणा तथा॥
पवित्रारोहणं तद्वन्नित्याङ्गं नियमं स्थितं।
दीक्षाचैव प्रतिष्टा च ग्रहणमयनं तथा॥
षड्शीति मुखाश्चैव निमित्तकमुदाहृतं।
काम्यव्रतानि कार्य्याणि त्रिवानि हि तथा परं॥
संपूज्य परमेशानं पूर्ववच्च विलेपनं।
वानरेनुहितं धूपं नैवेद्यं पायसं तथा॥

वानरं सिह्लकम्।

वस्त्रपूतोदकं चन्द्र पानन्देवाय कल्पयेत्।
ताम्बूलपिटिकं जिङ्गं सुवर्णञ्च समर्पयेत्॥
व्यजनं पादुकं पट्टं गन्धं धूपकपट्टकं।
नैवेद्यं विधिवत् भक्त्या भीमरुद्राय भक्तितः॥
आचार्य्यपूजैपरतैः कर्त्तव्या शाठ्यवर्जितैः।
अनेन व्रतमुख्येन शिवे यान्ति लयं परं॥
पितृनुद्धरते सोऽपि दशपूर्व्वान् दशापरान्।

पितरस्तस्य नन्दन्ति रुद्रलोकेषु सम्मुख।
दिव्यवर्षायुतान्यष्टौ ततो याति दिवाकरं॥
मासि भाद्रपदे शुक्ले चतुर्दश्याम्व्रतं चरेत्।
स्नानं पञ्चामृतेनैव लशुना तु विलेपनं॥
धूपञ्च वर्त्तुलं दद्याच्छशिलालोहिते न च।
धूपान्तरसमायुक्तं तदभावे घृतान्वितं॥
खण्डकाद्यान्यनेकानि मोदका। किरणानि च
घारिकावटकाश्चैव श्वेताशिखरिणी शुभा॥
शालितण्डुलप्रस्थन्तु पिष्टलिङ्गं सुवर्णकं।
ताम्बूलं नियतं तद्वद्वसनासनपादुकाः।
जानुनी भूमिगे कृत्वा निवेद्यान्तं पिनाकिने॥
पूर्ववद्गुरुपूजा च कर्त्तव्या शाठ्यवर्जिता।
प्रयाति शिवसायुज्यं बन्धुभिः सहितो नरः॥
पितरस्तस्य मोदन्ते रुद्रलोकेषु रुद्रवत्।
शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां मासि चाश्वयुजि व्रतं॥
स्नानं पञ्चामृतेनैव रोचनायाः पलेन तु।
विलेपनं तु शशिना तून्मत्तैस्तु समर्चयेत्॥
दीपमालाशतेनैव भक्ष्यं शाल्योदनं घृतं।
पूपखण्डानि सिद्धानि क्षीरया तं घनं शुभं॥
पुलाककोलपत्रन्तु जातीपूगफलानि च।
गन्धलिङ्गं सुवर्णं च शिवाय विनिवेदयेत्॥
आचार्य्यस्तु ततः पूज्यो हेमवस्त्रान्नवाहनैः।
शिवसायुज्यतां याति पितृभिः सह शाङ्करे॥

चतुर्दश्यां कार्त्तिकस्य शुक्लपक्षे व्रतं शृणु।
महास्नानं परं कार्य्यं लेपनन्तु चतुः समं।
दीपमालाशतेनैव महावर्त्तिचतुष्टयम्॥
हारिध्वजा वैजयन्ती मध्ये दिक्षु विदिक्षु च।
पट्टजं चन्द्रकान्दद्यादिक्षु मध्ये समुद्गकं॥
चन्द्रकं वितानं, लघुनाम रशालं संपुटं।
शीतकर्पूरः। श्रेष्ठश्च धूपो समुगाकनामा॥
विदिक्षु गुग्गुलघृतं शतेकैकेन धूपनं।
शालिपिष्टेनाष्टशतं पूर्वस्याद्रोणकल्पितं॥
तत् पृष्ठे पिष्टजं लिङ्गं द्वादशाङ्गुलसम्मितं।
हेममाला समायुक्तं मुक्तादाम विभूषितं॥
निवेद्य परया भक्त्या शाश्वताय प्रयत्नतः।
भुक्त्यार्थम्बाधमुक्त्यार्थं ब्रूयादेवं समाहितः॥
इदं तेऽस्तु महादेव इदमेवास्तु सिद्धिदं।
निवेद्यविधिवत्सम्यक् व्रतं सम्यग्यथोदितं॥
प्राप्नोत्यैश्वर्य्यमतुलमिच्छन् मोक्षं सनातनं।
कृतघ्नो ब्रह्महाचैव सोऽपि रुद्रपदं लभेत्॥
जायते परया भक्त्या गुरुं सम्पूज्य भक्तितः।
हेमवस्त्रान्नयानैश्च मणिभिर्मौक्तिकादिभिः॥
हस्तियानं प्रदातव्यं स्वभावादश्वसम्भवम्।
एवं कृतेन सम्पूर्णं लिङ्गव्रतकृते भवेत्॥

इति कालोत्तरोक्तं लिङ्गव्रतम्।

---

अधुना तु प्रवक्ष्यामि प्रतिमाव्रतमुत्तमम्।
महास्नानं महावर्त्ति-दीपमालाव्रतं तथा॥
विलेपनं कुङ्कुमेन धूपं वै गुग्गुलेन तु।
शतेनाष्टोत्तरेणैव नैवेद्यं पयसा घृतम्॥
तालमात्रा चतुर्विंशन्निनेत्रा च चतुर्भुजा।
शूलासिधनुर्वीणा नानाभरण-भूषिता॥
शालिपिष्टमयी कार्य्या वृषपृष्ठे च शोभना।
चामरैर्वीज्यमानन्तु शिवं तत्र प्रकल्पयेत्॥
दर्पणञ्चैव ताम्बूलं व्यजनं पादुकासनम्।
वैजयन्तीध्वजं यानमाचार्य्याय प्रयत्नतः॥
मासि मासि प्रकर्त्तव्यं चतुर्द्दश्यान्दिने दिने।
कार्त्तिकन्तु समारभ्य यावदाश्वयुजावधि॥
एतद्व्रतोत्तमं नाम प्रतिमाव्रतमीरितम्।
ब्रह्महा गुरुहा यस्तु पञ्चपातक-संयुतः॥
मित्रघ्नश्च कृतघ्नश्च योऽपि विश्वासघातकः।
सोऽपि रुद्रपदं याति त्रिसप्तकुलसंयुतः॥
कोटिकोटिसहस्रन्तु शिवलोके तु मोदते॥
तदन्ते जायते राजा स एको वीर्य्यवान् सुधीः।
ज्ञानैश्वर्य्यमवाप्नोति शिवदीक्षाप्रभावतः* ॥
परं पदमवाप्नोति येन भूयो न जायते।
एवं वोपदिशेत्तस्य भूमिदानन्तु कारयेत्॥

---

* साक्षादिति पुस्तकान्तरे पाठः।

महागजं महाश्वम्वा महायानमथापि वा।
दापयेत्तु प्रयत्नेन तदन्ते व्रतमाप्नुयात्॥

इति कालोत्तरोक्तं प्रतिमाव्रतम्।

---

नन्दिकेश्वर उवाच।

शृणुष्वावहितो ब्रह्मन् वक्ष्ये माहेश्वरं व्रतं।
त्रिषु लोकेषु† विख्यातं नाम्ना शिवचतुर्दशी॥
मार्गशीर्षे त्रयोदश्यां शितायामेकभोजनः।
प्रार्थयेद्देवदेवेशं त्वामहं शरणङ्गतः॥
चतुर्दश्यां निराहारः समभ्यर्च्य च शङ्करम्।
सुवर्णवृषभं कृत्वा भोजये चापरेऽनि॥
एवं नियमकृत् सुप्त्वा प्रातरुत्थाय मानवः।
कृतस्नानजपः पश्चादुमया सह शङ्करम्।
पूजयेत् कमलैः शुक्लैः गन्ध धूपानुलेपनैः॥
उमामहेश्वरं रूपं अवियोगद्वादशीव्रतोक्तं वेदितव्यं।
पादौ नमः शिवायेति शिरः सर्व्वात्मने नमः।
ललाटन्तु त्रिनेत्राय नेत्राणि हरये नमः॥
मुखमिन्दु-मुखायेति श्रीकण्ठायेति कन्धरं।
सद्योजाताय कर्णौ तु वामदेवाय वै भुजे।
अघोरहृदयायेति हृदयञ्चाभिपूजयेत्।
स्तनौ तत्पुरुषायेति तथेशायेति चोदरं॥
पार्श्वेचानन्तधर्म्माय ज्ञानभूताय वै कटिं।

---

† विष्णुलोकेष्विति पुस्तकान्तरे पाठः।

उरूज्ञानन्तवैराग्यसिंहायेति प्रपूजयेत् ॥
अनन्तैश्वर्य्यनाथाय जानुनी चार्च्चयेद्बुधः।
प्रधानाय नमो जङ्घे गुल्फौ व्योमात्मने नमः ॥
व्योमकेशात्मरूपाय* केशान् पृष्ठञ्च पूजयेत्।
नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै पार्वतीं चाभिपूजयेत् ॥
ततस्तु वृषभं हैममुदकुम्भ समन्वितं।
शुक्लमाल्याम्बरयुतं पञ्चरत्नसमन्वितं।
भक्ष्यैर्नानाविधैर्युक्तं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥
प्रीयतां देवदेवोऽत्र सद्योजातः पिनाकधृक्।
ततस्तु विप्रानन्नेन तर्पयेच्छक्तितः शुचिः ॥
पृषदाज्यन्तु संप्राश्य स्वपेद्भूमावुदङ्मुखः।
पञ्चदश्यां ततः पूज्य विप्रान् भुञ्जीत वाग्यतः ॥
तद्वत्कृष्णचतुर्दश्यामेतत्सर्वं समाचरेत्।
चतुर्दशीषु सर्व्वासु कुर्य्यात् पूर्व्ववदर्च्चनं ॥
ये तु मासविशेषास्तु स्तान्निबोध क्रमादिह।
मार्गशीर्षादिमासेषु क्रमादेतदुदीरयेत् ॥

आश्विनान्तेष्विति ज्ञेयं।

शङ्कराय नमस्तुभ्यं नमस्ते करवीरक।
त्र्यम्बकाय नम स्तेस्तु स्थाणवे च ततः परं ॥
नमः पशुपते नाम नमस्ते शम्भवे पुनः।
नमस्ते परमानन्द नमः सोमार्द्धधारिणे ॥
नमो भीमाय इत्येवं त्वामहं शरणं गतः।

---

* पुत्रकेशात्मरूपायेति पुस्तकान्तरे पाठः।

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ॥
पञ्चगव्यं तथा बिल्वं पञ्चगोशृङ्गवारि च।
तिलाश्च कृष्णा विधिवत् प्राशनं क्रमशः स्मृतम् ॥
प्रतिमासं चतुर्दश्यामेकैक प्राशनं स्मृतं।
मन्दारैर्मालतीभिश्च तथा मधुरकैरपि।
सिन्दुवारैरशोकैश्च मल्लिकाभिः स पाटलैः ॥
अर्कपुष्पैः कदम्बैश्च शतपत्रा तथोत्पलैः।
एकैकेन चतुर्दश्यामर्चयेत्पार्व्वतीपतिं ॥
पुनश्च कार्त्तिके मासि सम्प्राप्ते तर्पयेद्दिजान्।
अन्नैर्नानाविधैर्भक्ष्यैर्वस्त्रमाल्यविभूषणैः ॥
कृत्वा नीलवृषोत्सर्गं श्रुत्युक्तविधिना नरः।
उमामहेश्वरं हैमं वृषभञ्च गवा सह ॥
मुक्ताफलाष्टकयुतं सितनेत्रपटान्वितं।
सर्व्वोपस्करसंयुक्तां शय्यां दद्यात्सकुम्भकां ॥
ताम्रपात्रोपरि पुनः शालितण्डुलसंयुतां।
स्थाप्य विप्राय शान्ताय वेदव्रतपराय वै ॥
ज्येष्ठसामविदे देयं न वकव्रतिने क्वचित्।
गुणज्ञे श्रोत्रिये दद्यादाचार्य्ये तत्त्ववेदिनि ॥
अव्यङ्गाङ्गाय सौम्याय सदा कल्याणकारिणे।
सपत्नीकाय सम्पूज्य माल्य वस्त्र विभूषणैः ॥
गुरौ सति गुरौ देयं तदभावे द्विजातये।
न वित्तशाठ्यं कुर्व्वीत कुर्वन् दोषात्पतत्यधः ॥
अनेन विधिना यस्तु कुर्य्याच्छिवचतुर्दशीं।

सोऽश्वमेधसहस्रस्य फलमाप्नोति मानवः ॥
ब्रह्महत्यादिकं किञ्चिदत्र वा मूत्र वा कृतं ।
पितृभिर्म्मातृभिर्वापि तत् सर्व्वं नाशमाप्नुयात् ॥
दीर्घायुरारोग्यकुलाभिवृद्धि
रवाप्यामूत्र चतुर्भुजत्वम् ।
गणाधिपत्यं दिवि कल्पकोटि
शतं वसित्वा पदमेति शम्भोः ॥
न वृहस्पति रप्यलं तदस्याः
फलमिन्द्रो न पितामहोऽपि वक्तुं ।
नच सिद्धगणोप्यलं न चाहं
यदि जिह्वायुतकोटयोऽपि वक्तुं ॥
भवत्यमरवल्लवः पठति यः स्मरे द्वा-
सदा शृणोत्यपि विमत्सरः ।
सकलपापनिर्मोचनीं इमां शिवचतुर्दशी ॥
ममरकामिनी कोटय स्तवन्ति ।
तम निन्दितं किमुसमाचरेद्यः सदा ॥
यानाथनारी कुरुते च भक्त्या
भर्त्तारमापृच्छ्य गुरुं सुतम्वा ।
सापि प्रसादात्परमेश्वरस्य-
परं पदं याति पिनाकपाणेः ॥

इति मत्स्यपुराणोक्तं शिवचतुर्दशीव्रतम् ।

———000@000———

सनत्कुमार उवाच।

अथोत्तमं परं व्रतमपरं शृणु भद्रदं।
चतुर्द्दश्यां महाभाग सर्व्वरोगार्त्तिशान्तये॥
ज्वरगुल्मप्लीहशूलकुष्ठातिसारसंयुतः।
मर्त्यैर्नित्यमिदं कार्य्यं तदार्त्तिव्यपनुत्तये॥
स्नात्वा तु धृतसंकल्पः सर्वकामविवर्ज्जितः।
आदित्यमुपतिष्ठेत गायत्रीञ्च जपन्मुहुः॥
उदयात्पूर्वमारभ्य यावदस्तं गतो रविः।
निराहारो जितक्रोधोतावत्तिष्ठेत्समाहितः॥
रवावस्तङ्गते देवमर्च्चयेत् पुरुषोत्तमं।
उपोष्य विधिवत् स्नात्वा तथा पर्वणि सुव्रत॥

पर्व्वणि, पौर्णमास्यां।

एतच्च शुक्लचतुर्द्दशीव्रतं, पुराणे शुक्लपक्षस्य व्रतप्रकरणे पठितत्वात्।

अर्चयित्वा यथा योग्यं परमात्मानमच्युतम्।
गायत्रीमभ्यसेत्तत्र देवदेवस्य सन्निधौ॥
सहस्रं दशसाहस्रं शतञ्चापि स्वशक्तितः।
अथ ताम्रमयं पात्रं मृण्मय्वा समानयेत्॥
घृतेन पूर्णं तत् कृत्वा पञ्चप्रस्थमितेन च।
सुवर्णं रजतं मुक्तां रत्नान्नानि तिलांस्तथा॥
अन्तर्निधाय तत् कुर्य्यात् नववस्त्रद्वयान्वितम्।
स्थापयित्वा तु तस्याग्रे पूजनान्ते महामतिः॥
तत्र मार्त्तण्डमारभ्य संपूज्य च यथाविधि।

प्रदक्षिणं नमस्कार स्तोत्रालापैर्मुदा युतः ॥
स्थितः प्ररूढ़तिमिरनिर्भेदचतुरप्रभः ।
नानाव्याधिसमुत्थार्त्तिं मम संशमयत्वितः ॥
पुरुषः पुष्कराक्षश्च सर्व्वान्तरसमास्थितः ॥
परमात्मासयक्लेशं व्यपोहतु ममाच्युत ।
इत्यनेनेति * मन्त्रेण स तद्दासोविहृत्य च ॥
आत्मानं दर्शयेत्तत्र यथा सुस्पष्टलक्षितं ।
विप्राय वेदविदुषे दरिद्राय च दापयेत् ॥
गुरवे दक्षिणां दत्त्वा कुर्य्याद्ब्राह्मणभोजनं ।
भुञ्जीत बान्धवैः सार्द्धमुत्सृजेन्नियमानपि ॥
एवं कुर्व्वन्नरोलोके सर्व्वरोगविवर्ज्जितः ।
सौम्यगात्रप्रवृत्तश्री श्चिरमायुश्च विन्दति ॥
यथापः शमपत्यग्निं समिद्धमतिकामतः ।
तथा व्रतमिदं ब्रह्मन् रोगाग्निं शमयेदिह ॥
नाना व्याधि भृशार्त्तानां नराणामिह सुव्रत ।
तत् प्रतापशमोपायोव्रतादन्यन्न विद्यते ॥

## इति गारुड़पुराणोक्तं गायत्रीव्रतम् ।

———000———

शुक्लपक्षे चतुर्द्दश्यां यदातिथ्यार्कसम्भवः ।
पूजयेत् सूर्यं विधिना उपवासेन शूलिनं ॥
पूर्व्ववत् विधिना लिङ्गव्रतोक्तेनेत्यर्थः ।

---

* अनेनैवेति क्वचित् पाठः ।

कुङ्कुमेनाङ्गरागन्तु गन्धपुष्पैः प्रपूजयेत् ॥
पायसं घृतसंयुक्तं कुर्य्यात् प्रस्थप्रमाणतः।
भूमि दानं प्रकर्त्तव्यं शिवभक्ताय यत्नतः ॥
अनेन व्रतमुख्येन पृथ्वीपतित्वमाप्नुयात्।
एतद्भूमिव्रतं नाम पृथ्वीपालस्तु कारयेत् ॥

इति कालोत्तरोक्तं भूमिव्रतम्।

———000———

बृहस्पतिमघायोगो चतुर्द्दश्यां यदा भवेत्।
उपोष्य पूजयेत्तस्यां देवदेवं महेश्वरं ॥
महास्नानप्रचारेण महावर्त्तिपुरःसरं।
अङ्गरागश्चन्दनेन शुक्लपुष्पैः प्रपूजयेत् ॥
धूपस्तु सफलो देयः लघुना चन्द्रसंयुतः।
सितवस्त्राणि वास्तञ्च आचार्य्याय प्रदापयेत् ॥
जातीफलैः प्राशनञ्च रात्रौ जागरणं हितं।
एतद्देवव्रतं नाम आयुःश्रीकीर्त्तिवर्द्धनम् ॥

इति कालोत्तरोक्तं देवव्रतम्।

———000———

आश्विन्यादित्यवारेतु यदि शुक्ला चतुर्द्दशी।
स्नानं विशेषतः कार्य्यं शिवस्य परमात्मनः।
अङ्गरागं रोचनया रक्तपुष्पैः प्रपूजयेत्।
कपिलाज्यं तथा चीरं नैवेद्यं परिकल्पयेत् ॥

शिवभक्ताय विप्राय हेमदानं प्रकल्पयेत् ।
प्राशनं कुङ्कुमेनैव कर्त्तव्यं साधकेन तु ॥
एतद्गुह्यं व्रतं कार्य्यं भक्त्या पुत्रार्थिभि र्नरैः ।
पुत्रावै तस्य जायन्ते सर्व्वलक्षण संयुताः ॥

इति कालोत्तरोक्तं सूर्यव्रतम् ।

———ooo———

ईश्वर उवाच ।

वालवृद्धातुराणाञ्च भोगिनां स्त्रीषु वालिशे ।
विधानन्तेषु वक्ष्यामि मुच्यन्ते ते यथा सुत ॥
भूतायां फाल्गुणे कुर्य्यात् कृष्णपक्षेऽतिभक्तितः ।
दरिद्राणामनाथानामक्षमाणां विशेषतः ।
सर्व्वकामप्रदं कृष्ण चतुर्दश्यां शिवव्रतम् ॥
रात्रौ विशेषपूजा तु महास्नपनसम्मिता ।
महादीपद्वयं देयं शतमष्टोत्तरं पुनः ॥
सघृतं गुग्गुलं धूपं शिवं पशुपतिं यजेत् ।
खण्डखाद्यान्यनेकानि भक्ष्याणि विविधानि च ॥
यथा समर्प्यते भक्त्या वित्तशाठ्यं विना सुत ।
रात्रौ जागरणं कार्य्यं शिवस्याग्रे शिवं जपेत् ॥
शिवं, शिवपञ्चाक्षरं मन्त्रं ।
एवं व्रतधरः शम्भोः प्रभाते पूज्य निर्व्वपेत् ।
शिवो दाता शिवो भोक्ता शिवः सर्व्वमिदं जगत् ॥
शिवो जयति सर्व्वत्र यः शिवः सोऽहमेव च ।
कर्म्मणा मनसा वाचा सुकृतं यन्मया कृतं ॥

न्यूनाधिकं महादेव द्रव्यमन्त्रक्रियात्मकम्।
तत्सर्व्वं परमेशान गृहाण परमेश्वर॥
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं यत्कृतन्तु मया शिव।
तत्सर्व्वं परमेशान मया तुभ्यं समर्पितं॥
कलात्मना तथा देव स्थितोऽसि वेदवित्पते।
क्लिष्टं मे वास्तु साम्यं तत् यद्यत्त्वधिकं पुनः॥
कृपया सर्व्वभूतानां कुरु देव जगत्पते।
न कृतन्तु मया किञ्चिद्व्रतं दानादिकं क्वचित्॥
अनेन व्रतमुख्येन सर्वं सम्पादितं मया।
व्रतदानादिकं शम्भो त्वत्प्रसादात्त्वदाज्ञया॥
इदं व्रतवरं देव मया तुभ्यं समर्पितम्।
दरिद्रैश्च परीतैश्च ज्ञानिभिर्योगिभिस्तथा॥
बालवालिशवृद्धैश्च स्त्रीनरैर्व्याधिपीड़ितैः।
प्रयत्नात् फाल्गुने कार्य्यः शिवस्याग्रे तु जागरः॥
एतस्मिन् भूतदिवसे विशेषानार्चयन्ति ये।
शम्भुर्भूतपतिस्तेषां भूतैश्च परिभूयते॥
फाल्गुनेनैव भूतायां तस्माद्भूतपतिं यजेत्।
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां व्रतान्युक्तानि सर्व्वशः।
तानि सर्व्वाणि तेनैव व्रतान्येव कृतानि तु॥

स्कन्द उवाच।

व्रतस्योद्यापनं कर्म्म किं कर्त्तव्यञ्च मानवैः।
कोऽविधिः कानि द्रव्याणि कथं कार्य्यं वद प्रभो॥

ईश्वर उवाच।

शृणु षण्मुख तत्त्वेन लोकानां हितकाम्यया।
चतुर्द्दशाब्दं कर्त्तव्यं शिवरात्रिव्रतं शुभं॥
एकभक्तं त्रयोदश्यां चतुर्द्दश्यामुपोषणं।
सम्पाद्य सर्व्वसम्भारान्मण्डपं तत्र कारयेत्॥
वस्त्रैः पुष्पैः समाच्छन्नं पट्टकूलैश्च शोभितं।
तन्मध्ये लेखयेद्दिव्यं लिङ्गतो भद्रमण्डलं॥
अथवा सर्व्वतोभद्रं मण्डपान्तः प्रकल्पयेत्।
शोभोपशोभासंयुक्तं दीपैः सर्व्वत्र चोज्वलं॥
आचार्य्यं वरयेत्तत्र ऋत्विग्भिः सहितं शुचिं।
शिवरूपाश्च ते विप्राः पूज्याश्चन्दनपुष्पकैः॥
अनुज्ञातश्च तैर्विप्रैः शिवपूजां समारभेत्।
अव्रणं सजलं कुम्भं तस्योपरि तु विन्यसेत्॥
सौवर्णं राजतं ताम्रं मृण्मयञ्चापि कारयेत्।
वस्त्रयुग्मेन संवेष्ट्य वस्त्रपत्रैः प्रपूजयेत्॥
पलेन वा तदर्द्धेन तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः।
उमामहेश्वरीं मूर्त्तिं पूजयेद्वृषभस्थितां॥
आगच्छ देवदेवेश मर्त्यलोक हितेच्छया।
पूजयामि विधानेन प्रसन्नः सुमुखो भव॥

आवाहनमन्त्रः।

पादासनं कुरु प्राज्ञ निर्म्मलं स्वर्णनिर्म्मितं।
भूषितं विविधैरत्नैः कुरु त्वं पादुकासनं॥

हृदिस्थं चिन्तयेद्देवं शुद्धस्फटिकसन्निभं।
व्याघ्रचर्म्मपरीधानं चिन्तयेदव्ययं हृदा॥
गन्धोदकेन पुष्पेण चन्दनेन सुगन्धिना।
अर्घ्यं गृहाण देवेश भक्तिं मेत्यचलाङ्कुरु॥
वस्त्रं सूक्ष्मं दुकुलञ्च देवानामपि दुर्लभं।
गृहाण त्वमुमाकान्त प्रसन्नस्त्वं सदा भव॥
श्रीखण्डं चन्दनं दिव्यं मलयाचलसम्भवं।
विलेपनं सुरश्रेष्ठ गृहाण परमेश्वर॥
यज्ञोपवीतं सहजं ब्रह्मणा निर्म्मितं पुरा।
आयुष्यशुभवर्च्चस्यमुपवीतं गृहाण मे॥
माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो।
मया हृतानि पुष्पाणि पूजार्थं प्रतिगृह्यतां॥
वनस्पतिरसो धूपो गन्धाढ्यःसुमनोहरः।
आघ्रेयः सर्व्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यतां॥
आज्यञ्च वर्त्तिसंयुक्तं वह्निना योजितञ्च यत्।
दीपं गृहाण देवेश त्रैलोक्यतिमिरापहं॥
नैवेद्यं गृह्यतां देव भक्तिं मे अचलां कुरु।
ईप्सितं मे वरं देहि परत्र च परां गतिं॥
इदं फलं मया देव स्थापितं पुरतस्तव।
तेन मे सफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि॥
पूगीफलं महादिव्यं नागवल्लीदलैर्युतं।
कर्पूरेण समायुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यतां॥
हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमवीजं विभावसोः।

अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥
सोमञ्च सगणञ्चैव पूजयित्वा महेश्वरं।
होमं कुर्य्यात् प्रयत्नेन रौद्रमन्त्रैर्यथाविधि ॥
ब्राह्मणान् पूजयेद्भक्त्या भोजयेच्च चतुर्द्दश।
आचार्य्यञ्च सपत्नीकं वस्त्रालङ्कारभूषणैः ॥
यज्ञोपवीतवस्त्रादि दद्यात्तेभ्यः पृथक् पृथक्।
गां सवत्सां सवसनां नानालङ्कारभूषितां ॥
दद्यादाचार्य्यवर्य्याय शिवो मे प्रीयतामिति।
ततः सकुम्भां तां मूर्त्तिं सवस्त्रां वृषभस्थितां ॥
सर्व्वालङ्कारसहितामाचार्य्याय निवेदयेत्।
व्रतमेतत् कृतं यन्मे पूर्णं मेपूर्णमेव वा ॥
सर्व्वं सम्पूर्णतां यातु प्रसादाद्भवतां मम।
इति संप्रार्थ्य तान्विप्रान् प्रणम्य च पुनः पुनः ॥
नाममन्त्रैस्ततस्तेभ्यो दद्यात् कुम्भान् पृथक् पृथक् ॥
अजैकपादहिर्व्वुध्नो भवः शर्व्व उमापतिः।
रुद्रः पशुपतिः शम्भुर्वरदः शिव ईश्वरः।
महादेवोहरोभीमो नामान्येवं चतुर्द्दश ॥

स्कन्द उवाच।

एवं विधानं भूतेश श्रुतं बहुविधं मया।
पूजामन्त्रविधानेन कथयस्व पदे पदे ॥

शिव उवाच।

श्रूयतां धर्म्मसर्व्वस्वं शिवरात्रौ शिवार्चनं।

व्रते येन विधानेन स्वर्गपुण्येन कर्म्मणा ॥
कृत्वा स्नानं शुचिर्भूत्वा धौतवस्त्रसमन्वितः।
स्नापयेद्देवदेवेशं मन्त्रैर्वेदसमुद्भवैः ॥
ततः पूजा प्रकर्त्तव्या यथोक्तविधिना सुत।
नमो यज्ञजगन्नाथ नमस्त्रिभुवनेश्वर ॥
पूजां गृह्ण मया दत्तां महेश प्रथमे पदे।

इति प्रथमयामे।

द्वितीयः।

नमोऽव्यक्ताय सूक्ष्माय नमस्ते त्रिपुरान्तक।
पूजां गृहाण देवेश यथाशक्त्योपदर्शितां ॥

यथाशक्त्युपपादितां।

तृतीय मन्त्रः।

बद्धोऽहं विविधैः पाशैः संसारभवबन्धनैः।
पातितं मोहजालैर्मां त्वं समुद्धर शङ्कर ॥

चतुर्थः।

ततः पूजान्ते प्रतिमासं पुष्पचन्दनाक्षत दूर्वा।
कुशयुतमर्घ्यं दद्यात्।

नमः शिवाय शान्ताय सर्व्वपापहराय च।
शिवरात्रौ मया दत्तं गृहाणार्घ्यं मम प्रभो ॥

प्रथम प्रहरार्घ्यमन्त्रः।

मया कृतान्यनेकानि पातकानि च शङ्कर।

गृहाणार्घ्यमुमाकान्त शिवरात्रौ प्रसीद मे ॥

द्वितीयप्रहरार्घ्यमन्त्रः।

दुःखदारिद्रभारैश्च दग्धोऽहं पार्व्वतीपते।
मां त्वं त्राहि महादेव गृहाणार्घ्यं नमोस्तु ते ॥

इति तृतीयप्रहरार्घ्यमन्त्रः।

किंवजानासि देवेश तावद्भक्तिं प्रयच्छ मे।
पदाब्जयुगले देवदास्यं देहि जगत्पते ॥

इति चतुर्थप्रहरार्घ्यमन्त्रः।

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं यत्कृतन्तु यथा शिव।
तत्सर्व्वं परमेशान मया तुभ्यं समर्पितं ॥

प्रार्थना।

कुर्व्वन्ति ये वत्सरकं शिवपूजां कुरुष्व मे।
शुभक्तातुयथाकथञ्चित् सकृत्प्रयान्त्येव शिवस्यलोकं।
व्याधोऽपियातोऽसौकृदीशमस्यात् ॥

इति कालोत्तरे सोद्यापनं कृष्णचतुर्द्दशी व्रतम्।

———000———

सुत उवाच।

कैलासशिखरासीनं देवदेवं जगद्गुरुं।
पञ्चवक्त्रं दशभुजं त्रिनेत्रं शुलपाणिनं ॥
कपालखट्वाङ्गधरं धनुश्चर्मधरं शुभम्।
पिनाकधारिणं भीमं वरदञ्चाभयप्रदम् ॥

भषाङ्गव्यालशोभाढ्यं शषाङ्ककृतशेखरं।
नीलजीमूत सङ्काशं सूर्य्यकोठिसमप्रभम् ॥
प्रणिपत्य सुराः सर्व्वे उपासन्तमुमापतिं।
क्रीड़ते भगवांस्तत्र स्वगणैः परिवारितः ॥
विसृज्य देवताः सर्व्वा स्तिष्टते उमया सह।
दृष्ट्वा तं देवदेवेशं प्रहस्योत्फुल्ललोचना ॥
एकाकिनं सुरश्रेष्ठं पृच्छते तत्र पार्वती ॥

पार्वत्युवाच।

कथयस्व प्रसादेन यद्गोप्यं व्रतमुत्तमं।
व्रतानि देवदेवेश कथितानि त्वया मम ॥
दानधर्म्माण्यनेकानि तपतीर्थान्यनेकशः।
नानाविधास्त्वयादेव श्रामिताहं त्वया पुनः ॥
व्रतानामुत्तमं देव भुक्तिमुक्तिप्रदायकं।
तदहं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व मम प्रभो ॥

ईश्वर उवाच।

शृणु देवि परं गुह्यं व्रतानामुत्तमं व्रतं।
यन्नकस्यचिदाख्यातं रहस्यं मुक्तिदायकं।
येन वै कथ्यमानेन यमोपि विलयं व्रजेत्।
तदहं कथयिष्यामि शृणु चेकाग्रमानसा ॥
माघफाल्गुनयोर्म्मध्ये कृष्णपक्षे चतुर्द्दशी।
शिवरात्रिस्तु सा ज्ञेया सर्व्वयज्ञोत्तमोत्तमा ॥
दानयज्ञैस्तथा यज्ञैरन्यैश्च बहुदक्षिणैः।

शिवरात्रिसमं नास्ति कृत्वा यज्ञसहस्रकम्॥
कृष्णा सा कलिहन्त्री च यमपथविनाशिनी।
न ते यमपुरीं यान्ति उपोष्यन्ति शिवानिशां॥
भुक्तिमुक्तिप्रदां देवि सत्यं सत्यं वरानने।
शिवव्रतं करिष्यंस्तु एकचित्तः समाचरेत्॥

श्रीदेव्युवाच।

कथं यमपुरीं देव वर्ज्जयित्वा शिवं व्रजेत्।
एतदेव महाश्चर्य्यं प्रत्यक्षं कुरु मे प्रभो॥

शिव उवाच।

शृणु देवि यथा वृत्तं कथाम्पौराणिकीं शुभां।
यमशासनहन्त्री च शिवस्थानप्रदायिनी॥
कश्चिदासीत् पुरा काले निषादश्चामिषप्रियः।
प्रत्यन्तदेशवासी च भूचरो जीवभक्षकः॥
मांसाहारी सदा दृष्टे कुटुम्बपरिपालकः।
स्थूलः पीनो धनुर्धारी श्यामाङ्गो नीलकंचुकः॥
बद्धगोधाङ्गुलित्राणो वाम बाहुः सचर्म्मकः।
धनुर्व्वामे गृहीत्वा तु दक्षिणे शरमुत्तमं॥
निर्गतोऽसौ वने दुर्गे निषादो जीवघातकः।
जीववृत्तिश्च सा तस्य कुटुम्बपरिपालने॥
तस्य निर्गच्छमानस्य माताप्यस्याशिषो ददौ।
प्रहृष्टा मां प्रभेदेन भरणे जठरस्य च॥
शीर्षं रक्षतु ते शक्रो बाहू धनद एव च।

हृदयं पातु ते चन्द्रश्चाननञ्च बृहस्पतिः।
उदरं पातु ते वह्निर्णितम्बं दक्षिणापतिः॥
आत्मानं पातु ते मृत्युरादित्यः सर्व्वमेव च।
वनं गच्छ समाकीर्णं श्वापदैर्बहुभिर्वृतम्॥
व्याघ्राणां दीर्घनिर्घोषै र्नादितं तद्वनं महत्।
महादंष्ट्रा महाकाया दीर्घजिह्वा भयाननाः॥
शार्दूलास्तत्र दृश्यन्ते वनं वीरुद्वशीकृतं।
तस्मिन् वने महादुर्गे भीषणे द्रुमसंकुले॥
वनजीवविशेषैस्तु संव्याप्तगिरिगह्वरे।
तेनैव वृत्तियोगे च निषादः कायपोषणं।
वनं गत्वा निरीक्षेत दिशः सर्व्वा इतस्ततः॥
पदञ्च पदमार्गञ्च आश्रमं मृगशूकरान्।
इतश्चेतश्च वै धावदामिषे लुब्धचेतसः(१)॥
वनं तत् पृष्ठतः सर्व्वं निषादस्य गतन्त्विह।
न प्राप्या श्वापदाः के तु मृगशूकरचित्तलाः॥
निराशो लुब्धकोतिष्ठन् वददस्तं गतो रविः।
ददर्श च सरस्तत्र निर्म्मलं विमलं जलं॥
हंससारससंकीर्णं चक्रवाकोपशोभितं।
दृष्ट्वा तु चिन्तयामास तड़ागे जीवघातनम्॥
प्रकरिष्याम्यहं रात्रौ जीवहत्यां न संशयः।
विमृश्य सुचिरन्देवि तड़ागाभिमुखं ययौ॥
तत्र तीरं समासाद्य चतुर्दिशमितस्ततः।

१ मानस इति पुस्तकान्तरे पाठः।

भ्रमित्वा कारयामास आश्रमं तस्य गुप्तये॥
तत्तीरे वृक्षं तालञ्च साद्रलं बहुपत्रकं।
तस्य मध्ये महालिङ्गं तिष्ठते वरवर्णिनि॥
तन्मध्ये च महावृक्षं विल्वञ्चैव वरानने।
तेन वृक्षस्य पत्राणि गृहीत्वा मार्गशोधने॥
चिप्तानि दक्षिणे भागे तानि लिङ्गस्य मस्तके।
न दिवाभोजनन्तस्य आमिषेतु सुचेतसः॥
प्रविष्टस्तु ततस्तत्र न निद्रां लुब्धकोकृतां।
तस्य गन्धप्रभावेन नश्यन्ति मृगशूकराः॥
न तिष्ठन्ति मृगास्तत्र शरघातवशानुगाः।
ततस्तु सर्व्वरी क्षीणा उदिते सूर्य्यमण्डले॥
निराशो लुब्धको भूत्वा निःसृतोजालमध्यतः।
चलितो गृहमार्गेण क्षुधार्त्तोलुब्धकस्ततः॥
तावद्बालास्तु ते सर्व्वे निरीक्ष्य पितृमार्गगाः।
निषादमपि ते दृष्ट्वा कथं रात्रिमुपस्थिता॥
नानीतमामिषन्तात निराशाः शिशवो गताः।
रुदन्ति करुणैः शब्दैर्भोजनं दीयताञ्च नः॥
ततस्तूष्णीं पिता भूत्वा ह्यधोवदनदुःखितः।
भोजनं कुरु हे स्वामिन् तस्य भार्य्या वचोऽब्रवीत्॥
उपोषितस्त्वहोरात्रं कष्टन्तुभ्यं प्रवर्त्तते।
भोजनञ्च कृतन्तेन यथा दत्तन्तु भार्य्यया॥
धर्म्महीनो निषादस्तु पापात्मा जीवघातकः।
अकामोजागरं रात्रौ शिवरात्र्यां वरानने॥

पूजा तु विल्वपत्रैस्तु सञ्जाता लिङ्गमस्तके।
मृतोऽसौ कालपर्य्याये गृहीतो यम किङ्करैः॥
शिवेन प्रेषितास्तस्य विमानवरकोटयः।
शीघ्रमानीयतां व्याधो गृहीतो यमकिङ्करैः॥
निर्दग्धं कल्मसन्तस्य शिवरात्र्यां न संशयः।
यः पूर्व्वं लुब्धकोभूत्वा करोति प्राणिनां वधम्॥
इति श्रुत्वा वचोदिव्यं गणास्ते गन्तुमुद्यताः।
स्तुयमानाः परं देवं शिवं शान्तं निरामयं॥
यावद्गच्छन्ति ते सर्व्वे तावत्पश्यन्ति लुब्धकं।
हन्यमानं लौहदण्डैर्व्वहुभिर्मुष्टिभिस्तथा॥
सर्व्वे कोलाहलं चक्रुरस्माकमितरेगणाः।
परस्परं बध्यमाना ऊचुस्ते यमकिङ्कराः॥

यम किङ्करा ऊचुः।

नमोच्यामोवयश्चैनं निषादं जीवघातिनं।
यमोयावन्नपश्येत्तु शुद्धश्च नभवेत्ततः॥

शिव किङ्करा ऊचुः।

लुब्धकोऽयं पूर्व्वमासीत्पापिष्ठोयमकिङ्कराः।
अनेन शिवरात्रिस्तु कृताकामेन कानने॥
तस्माच्छिवाज्ञया सर्व्वे विमानैः परमागताः।
यावच्छिवं न पश्याम न मुञ्चामोह्यमुं नरं॥
ततोहन्तुं समारब्धाः खड्गमुद्गरपट्टिशैः।

प्रवृत्तं तन्महायुद्धमन्योन्यजय काङ्क्षिणां ॥
भग्नाङ्गसन्धयः केचित् केचिन्मूर्च्छां समाश्रिताः ।
जर्जरीकृतदेहास्तु क्रन्दन्ते यमकिङ्कराः ॥
त्राहि त्राहीति जल्पन्ति गतास्ते यमसादनं ।
निषादोऽपि गणैर्नीतो यत्र देवो महेश्वरः ॥
दृष्टिमात्रस्तु देवेन निषादोगणताङ्गतः ।
स्थितोऽसौ दिव्यदेहस्तु दिव्याभरणभूषितः ॥
तस्य दत्तं महेशेन विमानं सार्व्वकामिकं ।
रुद्रकन्यासमाकीर्णं पुष्पमालाविभूषितं ॥
नानातूर्य्यसमायुक्तं नानारत्नोपशोभितं ।
क्रीड़ते सुचिरं कालं यावदाभूतसम्प्लवं ॥
एवं लब्धवरो भूत्वा क्रीड़ते यम शासने ।
अथातो यमदूतास्तु धर्म्मराजपुरोगताः ॥
रुधिरारुण सर्व्वाङ्गाः रुदन्ते भग्नमस्तकाः ।
जर्जरीकृतदेहा स्ते भिन्नगात्राः समन्ततः ॥
दृष्ट्वा धर्मोवदत्येतत्* कोसौ कालेन योजितः ।
प्रेषयिष्याम्यहं देवं काममेतद्धि कथ्यतां ॥
केन चैवच युष्माकं कृतं विविधघातनं ॥

यमदूता ऊचुः ।

शृणु राजन् यथावृत्तं युद्धं शिवगणैः सह ।
नीतोऽसौ पापकर्म्मा च निषादो जीवघातकः ॥
अस्माभिरद्यमाणस्तु गणैः शैवैर्बलाहृतः ।

* दृष्टान्ते धर्म्मराजेनेति पुस्तकान्तरे पाठः ।

तच्छ्रुत्वा कुपितो धर्म्मः पापिष्ठो वशगो मम ॥
कथं शिवपुरं याति चित्रगुप्त विचारय ।

चित्रगुप्त उवाच ।

ईक्षितं पुस्तकं येन न किञ्चित् सुकृतं कृतं ।
धर्म्मबुद्धिं न जानाति धर्म्माधर्म्मं न विन्दति ।
एतन्मे निश्चितं देव सत्यं सत्यं वदाम्यहं ॥

शिव उवाच ।

इति ज्ञात्वा निषादस्य चित्रगुप्तनिवेदितं ।
चरित्रं धर्म्मराजस्तु स्वागतं वाक्यमब्रवीत् ॥

धर्म्मराज उवाच ।

नाहमद्य दिनादूर्ध्वं जन्तोश्चिन्तां करोमि तु ।
गत्वा समर्पयिष्यामि व्यापारन्तु शिवस्य च ॥
एवमुक्त्वा ततः शीघ्रं चित्रगुप्तो यमश्च सः ।
गत्वा च देवदेवेशं यमस्तोतुं प्रचक्रमे ॥

यम उवाच ।

नमस्ते लोकनाथाय महाबलविनाशन ।
साक्षात् कालविनाशाय कालनिर्द्देशिने नमः ॥
त्रिनेत्राय नमस्तुभ्यं नमस्ते शूलधारिणे ।
कपालिने नमस्तुभ्यं नमः खट्वाङ्गधारिणे ॥
नमो डमरुहस्ताय शक्तिसर्पनिधाय च ।
नमोऽस्तु नीलकण्ठाय हस्तिचर्म्मधराय च ॥

नम स्त्रैलोक्यनाथाय* महापातकनाशिने ।
कालकूटविनाशाय नमः कामविदाहिने ॥
अशोध्यं शोधसे देव एतन्मे कौतुकं महत् ।
महापापी निषादस्तु यतः सन्तारितस्त्वया ॥
न पापानां करिष्यामि चिन्तां वै त्रिपुरान्तक ।
इत्युक्त्वा देवदेवे तु प्रणामो-दण्डवत् कृतः ॥
दण्डमुद्राञ्च पादाग्रे स्थाप्य तूष्णीं बभूव ह ॥

ईश्वर उवाच ।

किमर्थं दण्डमुद्रां त्वं त्यजसे धर्म्मवर्द्धन ।
केनापराधितोऽ† वत्स मानस्ते केन मर्दितं ॥

धर्म्मराज उवाच ।

त्वद्गणैर्देवदेवेश गत्वा पापस्य कारणे ।
मदीयाः किङ्करा देव बहुधा घातिता भृशं ॥
पापकर्मा दुराचारो निषादो जीवघातकः ।
धर्म्मो नोपार्जितस्तेन जन्मप्रभृति ईश्वर ॥
अयोग्यं देवदेवेश त्वद्गणैर्बहुधा कृतं ।
गृहीतः शिवपुरीं नीतः स पापी न हि मेऽर्पितः ॥
तेनाहमागतो देव त्यक्त्वा मुद्रां चराम्यहं ।

शिव उवाच ।

वदत्येवं यमे गौरि प्रहस्याह मया कृतम् ।
निषादः पापकर्म्मा च जीवेत् प्राणिबधेन च ॥
कदाचित् स वनं गत्वा न किञ्चित् प्राप्तवांस्तदा ।

* दृष्टिस्थिरकारक इति पुस्तकान्तरे पाठः ।
† केनापमानित इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

दिनान्ते च निराशोऽसौ क्षुत्तृट्युक्तो जलान्तिके ॥
अकरोदाश्रमं मध्ये महाजाल्यां तदा निशि।
जालिमध्ये महालिङ्गं तिष्ठते चिरकालिकम् ॥
मुखाग्रे बिल्वपत्राणि गृहीत्वा मार्गतोऽक्षिपत्।
कथञ्चिद्दैवसंयोगाद्वायुना लिङ्गमूर्द्धनि ॥
निक्षिप्तानि प्रेतराज कोमलान्यप्यकामतः।
शिवरात्रिः कृता तेन जाग्रतामृतहेतुना ॥
शिवरात्रिप्रभावेन स गतो मम शासनं।
गणत्वमक्षयं दिव्यं मोक्षदं शिवशासने ॥
स मुक्तो रुद्रवन्निल्ये भोगान् भुङ्क्ते सदा दिवि।
भोगान्ते परमं याति शिवं परमकारणं।
शिवरात्रिप्रभावेन आगतो मम शासने ॥
तद्गृहाण महाधर्म्म दण्डं मुद्राञ्च सर्व्वदा।
पापिष्ठो ये सदा मर्त्त्या न ते यान्ति ममान्तिकं ॥
अद्यप्रभृति धर्म्मेश अवमानञ्च मा कृथाः।
गृह्ण गृह्ण महाधर्म्म मुद्रां दण्डं यदृच्छया ॥
पालनाय स्वधर्म्मस्य पाहि सत्यं महायम।
स्वगृहं गम्यतां शीघ्रं दण्डं गृह्य समुद्रकं ॥
ताड़यन् पापकर्म्माणं पालयन् वै स्वधर्म्मिणं।
एव मुक्तो धर्म्मराजो गतोऽसौ स्वगृहं शुभं ॥
एवं देवि मयाख्यातं शिवरात्रेर्महाव्रते ॥

पार्व्वत्युवाच।

अकामोलुब्धको देव कृत्वा ह्यमरताङ्गतः।

आश्चर्य्यमेतद्देवेश ममाश्चर्य्यतरं महत् ॥
कामतः शास्त्रदृष्टेन यः करोति शिवव्रतं ।
तदहं श्रोतुमिच्छामि प्रसादाद्वक्तुमर्हसि ॥
शिव उवाच* ।
शृणु देवि महाभागे सर्व्वतथ्यार्थभाषिणि ।
शिवरात्रिप्रभावस्य कथकः पापकर्म्मणाम् ॥
माघमासे तु या कृष्णा फाल्गुनादौ चतुर्द्दशी ।
सा तु पुण्या तिथिर्ज्ञेया सर्व्वपापविनाशिनी ॥
शान्तात्मा क्रोधहीनस्तु तपस्वी ह्यनसूयकः ।
तस्मै देयमिदं देवि गुरुपादानुगे सदा ॥
अन्यथा यो ददातीदं स दाता नरकं व्रजेत् ।
वर्षे वर्षे महादेवि नरोनारी पतिव्रता ॥
वोच्चयामि जगत् सर्व्वं कोमां भक्त्या प्रपूजयेत् ।
शिवमन्त्रैर्जपं कृत्वा होममर्चनदीपनम् ॥
जागरं शिवरात्र्यान्तु शिवं पश्येत् समाहितः ।
मम भक्तो जनो देवि शिवरात्रैकपोषकः ॥
गणत्वमक्षयं दिव्यमक्षयं शिवशासनम् ।
सर्व्वं कृत्वा तु भजते भोगानमृतसम्भवान् ॥
एवं द्वादशवर्षाणि शिवरात्रैकपोषकः ।
योमां जागरते रात्रिं मनुजः स्वर्गमाप्नुयात् ॥
अकृत्वा मां न जानाति व्रतमेतदुदाहृतं ।
शिवञ्च पूजयित्वा यो जागर्त्ति च चतुर्द्दशीं ॥

* भैरवउवाचेति पुस्तकान्तरे पाठः ।

मातुः पयोधररसं न पिबेत्स कदाचन।
यदीच्छेद्वाञ्छयाम् भोगान् दिवि देवसमः पुमान्॥
आगमोक्तविधिं कृत्वा प्राप्नोति सकलं फलं॥
आदौ मार्गशिरे मासि दीपोत्सवदिनेऽपि वा।
गृह्णीयान्माघमासे वा द्वादशैवमुपोषणं॥
निशि जागरणं कृत्वा दीपद्योतितदिङ्मुखः।
गीतवाद्यविनोदेन पूजा जाप्यैः शिवैरतः॥
एवं द्वादशवर्षं तु द्वादशैव तपोधने।
आचार्य्यं शिवशास्त्रज्ञं ब्राह्मणांश्च विशेषतः॥
आमन्त्र्य परया भक्त्या गृहं गत्वा तपोधनान्।
आचार्य्यं* वरयित्वा तु गृह्णीयाच्चरणद्वयं॥
आगच्छ मे गृहं तात व्रतकृत्यं गृहं कुरु।
आमन्त्र्य निशि नानेवं प्रभाते विमले पुनः॥
गृहीत्वाभ्यर्च्चयेल्लिङ्गन्तु स्थावरं जङ्गमं पुनः*।
पञ्चामृतेन दिव्येन स्नाप्य* चोद्वर्त्तनादिभिः॥
स्नापयेद्वारिकुम्भानां सहस्रेण शतेन वा।
पश्चाच्छता तदर्द्धेन स्नापयेच्छीतलेन तु॥
चन्दनेन विलिप्याथ स्थावरं जङ्गमं तथा।
शतपत्रैर्जातिपुष्पैरर्चयेद्बिल्वपत्रकैः॥
दीपान् दिक्षु च सर्व्वासु प्रज्वाल्य सघनांस्तथा।

---

* आचार्य्यं भक्तियुक्तस्तु गृह्णीयाच्चरणद्वयमिति क्वचित् पाठः।
* गृहीत्वोभयलिङ्गन्तु स्थावरं जङ्गमं पुन इति पुस्तकान्तरे पाठः।
* घृतेनाभ्यर्च्य यत्नेन सुगन्धैर्मलकादिभिरिति पुस्तकान्तरे पाठः।

सघनान् सकर्पूरान् ।
नैवेद्यमपि भक्ष्यांश्च क्षीरखण्डसमण्डकान् ।
गुडाद्यं लड्डुकांश्चैव अन्नञ्च रुचिरं बहु ॥
निवेदयेत्तथैतानि गुरुदैवतपस्विनां ।
देवाग्रे तु गुरुं पूज्य कृत्वा मण्डलकं शुभम् ॥
सुसूक्ष्माणि च वस्त्राणि शय्यां सोपस्करां तथा ॥
द्वादशैव तु गा दद्यात् परिधानादिकं तथा ।
अथवा दक्षिणामेव प्रदद्यात् जुहुयात्तिलान् ॥
दत्त्वा च भोजयेत्सर्व्वान् गुरूंश्चैव तपस्विनः ।
पश्चात् क्षमापयेद्देवं प्रीयतां मे महेश्वरः ॥
सर्व्वं चैव तथाचार्य्ये शिवव्रतपरायणे ।
गन्धादिविविधैः सर्व्वानन्यांस्तत्र समागतान् ॥
दक्षिणाभिश्च कुम्भैश्च नवान्नैश्च प्रपूजयेत् ।
एवं कृत्वा महादेवि न भूयो देहमाप्नुयात् ॥
यदासौ म्रियते देवि शिवलोकं व्रजेन्नरः ।
तस्मान्न च्यवते स्थानात् कल्पकोटिशतैरपि ॥
अथातः कालपर्य्याये द्रष्टुं याति स्वयम्भुवम् ।
सहितो लोकपालैश्च विमानैः सर्व्वकामिकैः ॥
ततः पश्येन्महादेवं नानागणसमावृतं ।
तं दृष्ट्वा स्तौति देवेशं शिवं त्रिभुवनेश्वरम् ॥
नमस्तुभ्यं जगन्नाथ ललाटे चन्द्रशेखर ।
नमस्ते उमयायुक्त भुक्तिमुक्ति प्रदायक ॥
नमस्ते कामदहन त्रैलोक्यव्यापिने नमः ।

नमस्ते कालोग्रकालभीतोस्मि देव शङ्कर ॥
इति स्तुतोभैरवस्तु ददाति वरमीप्सितं।

भैरव उवाच।

तुष्टोऽहं तव भक्तस्य शिवरात्रेरुपोषणात्।
वरं ददाम्यहं तुभ्यं देवदानवदुर्लभं॥
एताः कन्या महादिव्या त्रिनेत्राश्च चतुर्भुजाः।
रूपयौवनसम्पन्ना पीनोन्नतपयोधरा॥
हेमगौर्य्यो महातेजा संयुक्ताः सूर्य्यवर्चसः।
देवाङ्गवस्त्रसञ्छन्ना चन्दनागुरुचर्च्चिता:
सर्व्वलक्षणसम्पन्नाः कुण्डले* र्द्योतिताननाः।
एवं विधा मया दत्ता मनस्विन्यः सुमध्यमाः॥
विमानकोटिसंयुक्ताः सर्व्वाभरणभूषिताः।
क्रीड़स्वच महाभाग गणस्त्वं मम पुत्रक॥
सर्व्वगामी भवाद्येह लोकलोकञ्चराचरं।
तुष्टोऽहं तव भक्तस्य शिवव्रतरतस्य च॥
रुद्रलोके तु या कन्यास्त्रिनेत्राश्च चतुर्भुजाः।
अतीव भर्त्तृभक्ताश्च यथाहमुमया सह॥
ताभिः सार्द्धं महाभाग भुंक्ष्व भोगान् यथेप्सितान्।
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च॥
अन्ते व्रतप्रभावेन शिवसायुज्यतां व्रज।
सर्व्वव्यापी भवत्वञ्च लीयसे परमे पदे॥
परात्परतरं नास्ति शिवरात्रिव्रतात्परम्।

---

* कुण्डलैरित पुस्तकान्तरे पाठः।

न पूजयति देवेशं रुद्रं त्रिभुवनेश्वरं॥
जन्तुर्जन्मसहस्रेषु भ्रमते नात्र संशयः॥
यदा तद्भावसंयुक्तः स रुद्रगणतां व्रजेत्।
तत्र दत्तं हुतं जप्तमर्चनं गुरुपूजनं॥
जागरः शिवरात्र्यां तु सर्व्वं तच्चाक्षयं भवेत्।
कश्चित् पुण्यविशेषेण व्रतहीनोपि यः पुमान्॥
जागरं कुरुते तत्र स रुद्रसमतां व्रजेत्।
सूर्य्यग्रहे कुरुक्षेत्रे हिमवत्कुरुजाङ्गले॥
शिवरात्र्यां तथा भक्त्या दत्तं भवति चाक्षयं।
अखण्डितव्रतो योहि शिवरात्रिमुपोषयेत्॥
स सर्व्वकाममाप्नोति रुद्रेण सह मोदते।
शिवरात्रिदिने दत्तं तथा भवति चाक्षयं॥
अखण्डितव्रतो योहि शिवरात्रिमुपोषयेत्।
सर्वकाममनः पूर्णः क्रीडते शिवसन्निधौ॥
धन्यास्ते मानवा लोके शिवरात्रिपरायणाः।
अर्णवा यदि शुष्यन्ति क्षीयते हिमवानपि॥
मेरुमन्दारलङ्काश्च श्रीशैलो विन्ध्यएव च।
चलन्ते नेकदा सर्वे निश्चलं हि शिवव्रतं॥
अतस्तस्यां त्रयोदश्यां कृष्णायामेकभुक्नरः।
मन्त्रेणानेन गृह्णीयान्नियमं भक्तिमान्नरः॥
शिवरात्रिव्रतं ह्येतत् करिष्येहं महाफलं।
निर्विघ्नमस्तु मे चात्र त्वत्प्रसादाज्जगत्पते॥
रात्रीः प्रपद्ये जननीं मृद्गां चैव समाहितः।

गृह्णीयाद्ब्राह्मणस्त्वेवं नियमं वेदविद्विभो ॥

शिवरात्रि व्रतमित्यनेन मन्त्रेण शूद्रादिर्नियमं गृह्णीयात् ब्राह्मणादिषु।

रात्रीं प्रपद्ये जननीं सर्वभूतनिवेशनीं।
भद्रां भगवतीं कृष्णां विश्वस्य जगतो निशां॥
संवेशनीं संयमनीं ग्रहनक्षत्रमालिनीं।
प्रपन्नोऽहं शिवां रात्रीं भद्रे पारमशीमहि॥
भद्रे पारमशीमन्त्रोत्तमः।

इति मन्त्राभ्यामृग्वेदसिद्धाभ्यां नियमं गृह्णीयादित्यर्थः।

शिवमिष्टागुरुं दृष्ट्वा स्वाचान्तः शुचिरात्मवान् ॥ ॥
संकल्पैवं व्रतं कुर्य्यात् पूर्वेद्युः प्रातरेवच।
ततोऽह्नश्चरमे भागे स्वगायत्र्या ह्यतन्द्रितः॥
स्नानं कृष्णतिलैः कूर्य्याद्गृहे वाथ जलाशये।
रम्ये निशामुखे गच्छेच्छिवस्यायतनं व्रती।
दिनान्ते स्नपनं कुर्य्याच्छिवंनाम्ना प्रपूजयेत्॥
धूपनैवेद्यगन्धैश्च नृत्यगीतैः सदीपकैः।
शङ्खचक्रनिनादैश्च कुर्य्यात् पुस्तकवाचनं॥
द्वितीये प्रहरे चैव नाम्ना शङ्करमर्चयेत्।
पूर्व्वोक्तेन विधानेन पूजयेत्परमेश्वरम्॥
तृतीये प्रहरे देवं नाम्ना महेश्वरं तथा।
यामे चतुर्थे सम्प्राप्ते रुद्रं नाम्ना प्रपूजयेत्॥
एवं हि भक्तियुक्तश्च जागरं कारयेन्निशि।
सकलं फलमाप्नोति सत्यमेतद्वरानने॥

उषः स्नानं जपो होमः भोजयेच्छिववत्सलान् ।
श्वेतान् कुम्भान् प्रदद्याच्च यथाशक्त्या सदक्षिणान् ॥
पूजयेद्ब्राह्मणान् भक्त्या व्रते माहेश्वरे स्थितान् ।
वाचयेच्छिवशास्त्रञ्च स गच्छेच्छिव मन्दिरं ॥
उपोष्य पुण्यकर्म्माणो नियतं स्वर्गगामिनः ।
शिवव्रतस्य चाख्यानं यः पठेच्छिवसन्निधौ ॥
रमते शिवलोके च यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।
एवं देवि मयाख्यातं शिवरात्रेर्महाव्रतम् ॥
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ।

इति श्रीस्कन्दपुराणोक्तं सोद्यापनं शिवरात्रि व्रतं ।

———000@000———

कैलासशिखरे रम्ये नानाधातु विचित्रिते ।
नानाद्रुमलताकीर्णे नानारत्नोपशोभिते ॥
अप्सरोगणसङ्कीर्णे सिद्धगन्धर्वसेविते ।
क्रीडते भगवांस्तत्र गणैः स्वैः परिवारितः ॥
नन्द्यादयोगणास्तत्र क्रीड़न्ते शिवसन्निधौ ।
कौतूहलं परं तत्र पञ्चशब्दनिनादितं ॥
वीणावेणुमृदङ्गैश्च पञ्चैश्च तथा गिरि ।
देवकन्यासमाकीर्णं तं गिरिं सुमनोहरं ॥
प्रसादास्तत्र तिष्ठन्ति सौवर्णाः सुमनोहराः ।
ध्वजमालाकुलं रम्यं कैलासं सर्व्वदैवतैः ॥
विसृज्य देवताः सर्व्वाः रमते चोमया सह ।
तत्र स्थितं महादेवं उमा पृच्छति शङ्करम् ॥

उमा उवाच।

देव देव जगन्नाथ सर्व्वलोक नमस्कृत।
कृत्वा प्रसादं देवेश कथयस्व मम प्रभो॥
नमो नमो महादेव स्वस्थं तिष्ठति सर्व्वदा।
उद्वेगस्तु महाचित्ते कस्मान्मे परिवर्त्तते॥
न मया हि महादेव कृतं किञ्चिच्छुभं व्रतं।
कृत्वा प्रसादं देवेश व्रतं मे कथ्यतां प्रभो॥

ईश्वर उवाच।

शृणु देवि परं गुह्यं व्रतानामुत्तमं व्रतम्।
यन्न कस्यचिदाख्यातं रहस्यं मुक्तिदायकम्॥
येन वै कथ्यमानेन यमोपि विलयं व्रजेत्।
तदहं कीर्त्तयिष्यामि शृणुष्वैकमनाः सदा॥
माघफाल्गुनयोर्मध्ये कृष्णपक्षे चतुर्दशी।
शिवरात्रिस्तु विज्ञेया सर्वयज्ञोत्तमा तिथिः॥
दानयज्ञैस्तपोयज्ञैरन्यैश्च बहुदक्षिणैः।
शिवरात्रिसमं नास्ति कृत्वा यज्ञसहस्रकम्॥
न ते यमपुरस्थास्ते यैः कृतेयं शिवप्रदा।
भुक्तिमुक्तिप्रदा देवि सत्यं सत्यं वरानने॥

देव्युवाच।

कथं यमपुरीं देव वर्जयित्वा शिवं व्रजेत्।
एतदेव महाश्चर्य्यं प्रत्ययं कुरु मे प्रभो॥

शिव उवाच।

शृणु देवि प्रयत्नेन कथां पौराणिकीं शुभां।

मम शासन हंत्री च शिवलोकप्रदायिनी ॥
न ते यमपुरं यान्ति यैः कृतेयं शिवप्रदा ।
शृणु देवि महाश्चर्य्यं यज्जातं शिववल्लभे ॥
आसीद्राजा विदेहायां प्रजापालनतत्परः ।
सुधर्म्मा नाम विख्यातः सदा परमधार्म्मिकः ॥
पृथिव्यां सर्व्वराजानो वर्त्तन्ते वशवर्त्तिनः ।
तस्य राज्ये न वै कश्चित् व्याधितो दुःखितोऽभवत् ॥
साधून् पालयते राजा पुत्रवत् सुरसुन्दरि ।
एवं गुणविशिष्टस्य तस्य राज्ञः प्रिया शुभा ॥
भार्य्या तिलोत्तमा नाम सर्वैः समुदिता गुणैः ।
रूपलावण्यसंयुक्ता स्थिरयौवनसंस्थिता ॥
हंसकोकिलसम्भाषा मत्तमातङ्गगामिनी ।
यथा रूपा तथा शीला तस्य भार्य्या महीपतेः ॥
भर्त्तुः प्रियहिते युक्ता भर्त्तुश्चैव हि वल्लभा ।
याश्च रम्या परा भार्य्या शतसाहस्रसम्मिताः ॥
सर्व्वास्ता गुणसंयुक्ता दास्य एव व्यवस्थिताः ।
एवं गच्छति काले तु कस्मिंश्चित् सुरसुन्दरि ॥
अतः परं सधर्म्मात्मा जगाम रिपुमर्दन ।
दृष्ट्वा तिलोत्तमा देवी सर्व्वैः समुदिता गुणैः ॥
आगच्छन्तं ततो दृष्ट्वा राजानं रिपुमर्दनम् ।
ततश्च स्वयमुत्थाय ददौ राजासनं तदा ॥
वन्दत्येवं ततो राज्ञी शिवेति च पुनः पुनः ।
उपविष्टा ततो राज्ञः समीपे वशवर्त्तिनी ॥

स च राज्ञा तदा राज्ञ्या शिवेति समुदीरितं।

श्रुत्वेति शेषः।

सस्मार प्राक्तनं कर्म्म अन्यजन्मनि यत्कृतं।
तत्याजासौ तत स्मृत्वा ताम्बूलं करसंस्थितम्॥
चकार मनसा राजा सङ्कल्पं शिवपूजने।
ततः प्रपच्छ सा देवी किमिदन्त्यागकारणं॥
यदि वक्ष्यसि मे न त्वं मरिष्यामि तवाग्रतः।
सोऽपि राजा ततो देवीं मरणे कृतनिश्चयां॥
विज्ञाय कथयामास पूर्व्वजन्मनि चेष्टितं।
शृणुष्वा वहिता भूत्वा वचनं सुरसुन्दरि॥
श्रुत्वा त्वयेरितं वाक्यं शिवनामसमन्वितं।
स्मृतं मे सर्व्वचरितं पूर्व्वजन्मनि यत्कृतं॥
श्रूयतामभिधास्यामि सावधाना भव प्रिये।
अहमासं पुरा वैश्यः स्वधर्म्मनिरतः शुचिः॥
कालेन गच्छता देवि पूर्व्वजन्मवशेन च।
स्वकर्म्मनिरतस्यापि चौर्य्ये मतिरजायत॥
निशानिष्क्रमणं कृत्वा चौर्य्यं कर्त्तुमहं गतः।
तस्मिन् काले शुभे देवि माघमासोऽभवत्तदा।
ततश्चैवासिते पक्षे शिवयोगोऽभवत्तदा॥
चतुर्दशी तिथिश्चासीच्छिवरात्रिस्तु सा स्मृता।
मम वै भ्रममाणस्य अर्द्धरात्रमभूत्तदा॥
भ्रमता हि मया दृष्टः समवायो जनस्य वै।
जागरं तु प्रकुर्व्वाणः शिवस्यायतने शुभे॥

अन्तरन्तु समासाद्य उपविष्टस्तत्र चणं ।
कस्यचित् गृहमेधिन्याः कर्णसंस्थञ्च कुण्डलं ॥
हृत्वा पलायमानस्तु दृष्टोऽहं रचपालकैः ।
ततस्ते तद्विताः सर्वे खड्गपाणिधनुर्द्धराः ॥
तत स्तेकेन क्रुद्धेन शिरश्छिन्नं महासिना ।
तद्भयाच्च मया तत्र मुखे चिप्तन्तु कुण्डलं ॥
ततश्च कर्म्मणा तेन रात्रौ जागरणेन च ।
चौर्य्येण च कृते नापि राजाहं स बभूव ह ॥
ततश्च जातिस्मरणं जातं मम तिलोत्तमे ।
शिवयोगस्तु चाद्यैव माघमासस्तु शोभने ॥
चतुर्द्दशी तिथिश्चाद्य ताम्बूलं तन्मयोज्झितं ।
एतच्छ्रुत्वा च सा देवी आचार्य्यं परमं महत् ॥
उवाचैनं तदा राज्ञी विस्मयं परमं गता ।
यदि मे प्रत्ययं कञ्चिदुत्पादयसि भूमिप ॥
तदा जीवामि नृपते नान्यथेयं प्रतारणा ॥
एतच्छ्रुत्वा तदा राजा उवाच सुरसुन्दरि ॥
एतदेव शिरो मेऽत्र पश्येदं कूपसंस्थितं ।
कालेन कूपः पूर्णोयं लोष्टैश्च तृणसञ्चयैः ॥
उत्थाय च गतौ तत्र दम्पती विस्मयान्वितौ ।
खनयित्वा ततो देव्यै दर्शयामास तच्छिरः ॥
कुण्डलन्तु मुखे दृष्ट्वा विस्मयं परमं गतौ ।
ततस्तु दम्पती तत्र चक्रातुर्नियमं परं ॥
उपवासस्य नियमं तथा जागरणस्य च ।

शिव उवाच।

एव हि माघमासे तु संप्राप्ते सुरसुन्दरि।
तद्व्रतं जागरं चैव कुर्य्यात् पूजनमेव च॥
ततश्च भगवानीशस्तुष्टो भवति तत्क्षणात्।
कालेन गच्छता तौ तु पुत्रपौत्रसमन्वितौ॥
संपूर्णे च तयोः काले मरणं समुपागतौ।
युग्मन्तु परमं लोके शिवभक्तिसमन्वितौ॥
शिवरात्रिप्रभावेन दम्पती शिवसन्निधौ।
शिवरात्रिमिमान्देवि यः करोति नरो भुवि॥
सर्व्वपापविनिर्म्मुक्तः शिवलोके महीयते।
इत्येषा कथिता देवि शिवरात्रिस्तवाग्रतः॥
सर्व्वपापहरा पुण्या सर्व्वतीर्थफलप्रदा।
यः करोति नरो देवि शिवरात्रिमिमां शुचि॥
सर्व्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते।
य इमां शृणुयान्नित्यं शिवरात्रिकथां नरः॥
कृता तेन महादेवि शिवरात्रिर्न संशयः।

इतिश्रीस्कन्दपुराणे शिवयोगयुक्तशिवरात्रिव्रतमाहात्म्यं।

———ooo———

कैलासशिखरासीनं देवदेवं जगद्गुरुं।
पञ्चवक्त्रं दशभुजं त्रिनेत्रं शूलपाणिनं॥
कपालखट्वाङ्गधरं खड्गखेटकधारिणं।
कपालधारिणं भीमं वरदञ्चाभयप्रदं॥
भस्मांगव्यालशोभाढ्यं शशाङ्ककृतशेखरं।

नीलजीमूतसङ्काशं सूर्य्यकोटिसमप्रभं॥
दृष्ट्वा तन्देवदेवेशं प्रहस्योत्फुल्ललोचना।
देवी पप्रच्छ भर्त्तारं शङ्करं लोकशङ्करं॥

देव्युवाच।

कथय त्वं प्रसादेन यद्गोप्यं व्रतमुत्तमम्।
यत्कृत्वा देवदेवेशः पापहानिः प्रजायते॥
श्रुतानि देवदेवेश व्रतानि तिथिनिश्चयं।
दानधर्म्माण्यनेकानि तपस्तीर्थान्यनेकशः॥
नास्ति मे निश्चयो देव भ्रामिताहं त्वया पुनः।
तस्माद्वदस्व देवेश एकं निःसंशयं व्रतं॥
भुक्तिमुक्तिप्रदञ्चापि सर्व्वपापक्षयं करं।
तदहं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व महाप्रभो॥

ईश्वर उवाच।

शृणु देवि परं गुह्यं व्रतानामुत्तमं व्रतम्।
कस्यचिन्न समाख्यातं भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणां॥
यस्य श्रवणमात्रेण पातकं विलयं व्रजेत्।
तदहं कीर्त्तयिष्यामि शृणुष्वैकमनाः प्रिये॥
माघान्ते बहुलपक्षे सदा कार्य्या चतुर्दशी।
शिवरात्रिस्तु सा ज्ञेया सर्व्वयज्ञोत्तमोत्तमा॥
दानैर्य्यज्ञैस्तपोभिश्च व्रतैर्व्वहुविधैरपि।
तीर्थैश्चापि न तत्पुण्यं यत् पुण्यं शिवरात्रितः॥
शिवरात्रिसमं नास्ति व्रतं पापविनाशकृत्।
अज्ञानात् ज्ञानतोवापि कृत्वा मुक्तिमवाप्नुयात्॥

सर्व्वमाङ्गल्यकरणी सर्व्वाशुभविनाशिनी ।
मृतास्ते नरकं यान्ति यैरेषा न कृता क्वचित् ॥
सर्व्वमङ्गलशीला च सर्वाशुभविनाशिनी ।
भुक्तिमुक्तिप्रदा चैषा सत्यं सत्यं वरानने ॥

पार्व्वत्युवाच ।

कथं यमपुरे मार्गं त्यक्त्वा देवं व्रजेन्नरः ।
एतन्मे महदाश्चर्य्यं प्रत्ययं कुरु शङ्कर ॥

शिव उवाच ।

शृणु देवि यथावृत्तं कथाम्पौराणिकीं शुभाम् ।
यमशासनहन्त्री च शिवशासनदायिनी ॥
कश्चिदासीत् पुरा कल्पे निषादश्चामिषप्रियः ।
प्रत्यन्तदेशवासी च भूधरासन्नभूधरः ॥
सीमान्ते सर्व्वदा तिष्ठेत् कुटुम्बपरिपालकः ।
तन्वापीनोधनुर्धारी श्यामाङ्गः कृष्णकञ्चुकः ॥
बद्धगोधाङ्गुलित्राणः सदैव मृगघातकः ।
एवम्विधो निषादोऽसौ चतुर्दश्यान्दिनोदये ॥
स हत्यार्थं वणिग्भिश्च देवताग्रे निरुन्धितः ।
तेनापि देवताद्दृष्टा जनानां वचनं श्रुतम् ॥
उपवासरतानाञ्च जल्पतां शिवशिवेति च ।
दिनान्ते स तदा मुक्तः प्रातर्द्रव्यं प्रदीयतां ॥
ततोऽसौ धनुरादाय दक्षिणेन गतः स्वयम् ।
जगाम च वनोद्देशं जनहासञ्चकार ह ॥
शिवः शिवः किमेतद्वैवदन्ति नगरे जनाः ।

वने चरोनिरीचन् स चतुर्दिक्षु इतस्ततः ॥
पदञ्च पदमार्गञ्च मृगसूकरचित्तलान् ।
धावतस्तस्य सर्वासु दिक्षु वै लुब्धचेतसः ॥
वनं सपर्वतं सर्वं भ्रमतस्तु दिनङ्गतम् ।
अप्राप्ता एव गच्छन्ति सकला मृगजातयः ।
संप्राप्तमपि चापश्यन् न मृगं न च चित्तलं ॥
निराशो लुब्धको यावत्तावदस्तङ्गतोरविः ।
चिन्तयित्वा जलोपान्ते जागरं मृगघातनं ॥
सन्निधास्याम्यहं रात्रौ निश्चितं मम जीवनं ।
तड़ागसन्निधौ गत्वा तत्तीरे जालमध्यतः ॥
निलयं कर्त्तुमारब्धमात्मार्थे गुप्तिकारणं ।
जालिमध्ये महालिङ्गमस्ति स्वायम्भुवं शुभम् ॥
ततो विल्वस्य पत्राणि त्रोटित्वा मार्गशोधने ।
चिप्तानि दक्षिणे भागे गतानि लिङ्गमूर्द्धनि ॥
न दिवाभोजनं जातं स रुद्रस्य प्रभावतः ।
मृगान्निरीचतस्तस्य निद्रानाशोप्यजायत ॥
जालमध्यगतस्यापि प्रथमः प्रहरोगतः ।
ततो जलार्थमायाता हरिणीगर्भसंयुता ॥
निरीचन्ति दिशः सर्वा उत्फुल्लनयना भृशं ।
लुब्धकेनाथ सा दृष्टा वाणगोचरताङ्गता ॥
हतश्च वाणसन्धानं तेनैकाग्र्येण चेतसा ।
त्रोटित्वा विल्वपत्राणि प्रचिप्तानि शिवोपरि ॥
स्मरन् शिवेति वादश्च शीतेन परिपीडितः ।

विल्व मध्ये स्थितो दृष्टो हरिण्यालुब्धकस्तदा ॥
लुब्धकः स्वस्वरूपेण कृतान्त इव तिष्ठति।
दृष्ट्वा च तस्य सन्धानं यमदंष्ट्रासमप्रभं ॥
सा मृगी दिव्यया वाचा लुब्धकं वाक्यमब्रवीत्।

मृग्युवाच।

स्थिरो भव महाव्याध सर्वजीवनिकृन्तन।
किमर्थं मां हनिष्ये त्वं कथयस्व मम प्रभो ॥

शिव उवाच।

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा लुब्धकः प्राह तां मृगीं।
समात्रकं कुटुम्बं मे क्षुधया पीड्यते भृशं।
धनं च मद्गृहे नास्ति तस्मात्त्वां हन्मि शोभने ॥

सूत उवाच।

जातपूजाप्रभावेन जागरोपोषणेन च।
चतुर्थांशेन पापानां विमुक्तो लुब्धकस्तदा ॥
विस्मयोत्फुल्लनयनो मृगीवाक्येन पार्व्वति।
उवाच वचनं तां वै धर्म्मयुक्तमसंशयं ॥
मया हि पातिता देवि उत्तमाधममध्यमाः।
न श्रुतात्वीदृशी वाणी श्वापदानां कथञ्चन ॥
कस्मिन् देशे त्वमुत्पन्ना कस्मात् स्थानादिहागता।
कथय त्वं प्रयत्नेन परं कौतूहलं हि मे ॥

मृग्युवाच।

शृणु त्वं लुब्धकश्रेष्ठ कथयामि तवाखिलं।
आसं पूर्व्वमहं रम्भा स्वर्गे शक्रस्य चाप्सरा ॥

अनन्तरूपलावण्यसौभाग्येन च गर्व्विता ।
सौभाग्यमदसंयुक्तो दानवो मदगर्वितः ॥
मयैव सत्कृतोभर्त्ता हिरण्याक्षो महासुरः ।
तेन सार्द्धं चिरं कालं मया भुक्तं यथेप्सितम् ॥
अन्यस्मिन् दिवसे व्याध क्रीडिते वै सुरेण च ।
गतो बहुतरः कालो महादेवस्य कोपकृत् ॥
प्रत्यहं प्रेक्षणं नृत्यं शङ्करस्याग्रतश्चरेत् ।
यावद्गच्छाम्यहं तत्र तावद्रुद्रोऽब्रवीत् क्रुधा ॥
हे रम्भे क्व गतासि त्वं केन वा सङ्गता शुभे ।
सौभाग्यमदगर्व्वेण नागता मम मन्दिरं ॥
सत्यं कथय शीघ्रं त्वं नो वा शापन्ददामि ते ।
शापभीत्या मया तत्र सत्यमुक्तं शिवाग्रतः ॥
शृणु देव प्रवक्ष्यामि शापानुग्रहकारक ।
मम भर्त्ता समः प्राणैर्दानवो बलदर्पितः ॥
तेन सार्द्धं मया देव क्रीड़ितं निजमन्दिरे ।
तस्य भोगेन लुब्धाहं शयनादेव नोत्थिता ॥
तेनाहं नागता शीघ्रं सृष्टिसंहारकारक ।
रुद्रस्तद्वचनं श्रुत्वा सकोपो वाक्यमब्रवीत् ॥
मृगः कामातुरो नित्यं हिरण्याक्षो भविष्यति ।
त्वं मृगी तस्य भार्य्या वै भविष्यसि महावने ॥
तस्मात्तु निर्जले देशे तृणाहारा भविष्यसि ।
द्वादशाब्दानि भद्रन्ते भविता शाप एष ते ॥
परस्परस्य शोकेन शापान्तोऽपि भविष्यति ।

कृतस्त्वनुग्रहो व्याधे शङ्करेण यदृच्छया।
यदा कश्चित् व्याधवरो मम सान्निध्यमाश्रितः॥
बाणाग्रे तस्य सम्प्राप्ता पूर्वजन्म स्मरिष्यति।
शङ्करस्य तदा रूपं दृष्ट्वा मोक्षमवाप्स्यसि॥
शङ्करो न मया दृष्टो वसन्त्यस्मिन् महावने।
तेन दुःखमनुप्राप्ता मेदोमांसविवर्जिता॥
भर्त्राक्रान्ता विशेषेण अवध्या चेति निश्चितं।
सकुटुम्बस्य ते नूनं भोजनं न भविष्यति॥
आयास्यति मृगीत्वन्या मार्गेणानेन लुब्धक।
रूपयौवनसम्पन्ना बहुमांसमदोद्धता॥
भोजनं सकुटुम्बस्य तया नूनं भविष्यति।
अथवान्यो मृगोव्याध तव बाणस्य गोचरे॥
प्रभाते ते क्षुधार्त्तस्य निश्चयादागमिष्यसि।
मुक्ताथवा व्याध गर्भं बालानादिश्य बन्धुषु॥
शपथैरागमिष्यामि सन्दिश्य च सखीजनम्।
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा व्याधो विस्मितमानसः॥
कष्टमेवं तदा ध्यात्वा व्याधोवाच मृगाङ्गनां।
नागमिष्यति यद्यन्योमृगस्त्वमपि गच्छति॥
क्षुधया पीडितोहं वै कुटुम्बञ्च भविष्यति।
प्रातस्त्वया मम गृहमागन्तव्यं यदा भवेत्॥
व्रज त्वं शपथं कृत्वा यथा मे निश्चयो भवेत्।
पृथिवी वायुरादित्यः सत्ये तिष्ठन्ति देवताः॥
पालनीयं ततः सत्यं लोकद्वयमभीप्सुभिः।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सागर्भार्त्ता तदा मृगी।
चक्रे सत्यप्रतिज्ञां वै व्याधस्याग्रे पुनः पुनः॥

मृग्युवाच।

द्विजो भूत्वा तु यो व्याध वेदभ्रष्टोऽभिजायते।
स्वाध्यायसन्ध्यारहितः सत्यशौचविवर्जितः॥
अविक्रय्याणां विक्रेता अयाज्यानाञ्च याजकः।
तेन पापेन लिप्यामि नागच्छामि पुनर्यदि॥
धूर्त्ते दुष्टे शठे यच्च यत्पापं मानकूटके।
दानं दातुं प्रयुक्तस्य प्रार्थितं न ददाति च॥
तेन पापेन लिप्यामि गच्छामि न पुनर्यदि।
स्वदत्तां परदत्तां वा योहरेत्सागरांवरां॥
देवद्रव्यं गुरुद्रव्यं ब्रह्मद्रव्यं तथा हरेत्।
तेन पापेन लिप्यामि नागच्छामि पुनर्यदि॥
दीपेन दीपो दीप्येत पादं पादेन धावयेत्।
भर्त्तारं स्वामिनं मित्रमात्मानं बालमेव च॥
गाञ्च विप्रं गुरुं नारीं व्यापादयति दुर्म्मतिः।
तेन पापेन लिप्यामि नागच्छामि पुनर्यदि॥
दानस्य कीर्त्तने पापं यत्पापं दांभिके तथा।
असञ्जितेन्द्रिये नित्यं परदोषानुकीर्त्तने॥
कृतघ्ने च कदर्य्ये च नास्तिके वेदनिन्दके।
सदाचारविहीने च परपीड़ाप्रदायके॥
परपैशुन्ययुक्तेपि कन्याविक्रयकारके।
परापवादसन्तुष्टे सर्व्वधर्म्मबहिष्कृते॥

वृषलीपतौ च यत् पापं मातापित्रोरपोषके।
हैतुके बकवृत्तौ च आद्यतीर्थविवर्जिते।
एतेषां पातकं मह्यं नागच्छामि पुनर्यदि॥
यत्पापं ब्रह्महत्यायां पितृमातृवधे तथा।
यत्पापं लुब्धकानां तु गोचोरविषघातिनां॥
तेन पापेन लिप्यामि यद्यहं नागमे पुनः।
द्विभार्य्यः पुरुषोयस्तु समदृष्ट्या न पश्यति॥
यस्तीन् हले बलीवर्दान् विषमान् वाहयेन्नरः।
तेन पापेन लिप्यामि नागच्छति पुन र्यदि॥
सकृद्दत्वा तु यः कन्यां द्वितीये दातुमिच्छति।
यस्य संग्रहणी भार्य्या ब्राह्मणी च विशेषतः॥
एकाकी मिष्टमश्नाति भार्य्यापुत्रविवर्जितः।
आत्मनो गुणसम्पन्नां समाने सदृशे वरे॥
न ददाति च यः कन्यां नरो वै ज्ञान दुर्बलः।
तेन पापेन लिप्यामि नागच्छामि पुनर्यदि॥
मृगी वाक्यं ततः श्रुत्वा लुब्धको हृष्टमानसः।
मुमोच हरिणीं सद्यो मुक्ता बाणं धनुस्ततः॥
तस्या उक्तिप्रभावेन लिङ्गार्चाकरणेन च।
स पातकचतुर्थांशान्मुक्तोऽसौ तत् क्षणात्ध्रुवं॥
द्वितीये प्रहरे प्राप्ते ह्यर्द्धरात्रे वरानने।
स्मरन् शिव शिवं वाक्यं न निद्रां लब्धवांस्तथा॥
द्वितीयेऽथ ततः प्राप्ता कामार्त्ता मृगसुन्दरी।
सन्त्रस्ता भयसंविग्ना पतिमन्वेषती तदा॥

जालिमध्ये स्थितेनाथ दृष्टा सा तु वृकेन च।
पुनर्बिल्वस्य पत्राणि त्रोटितानि करेण तु॥
क्षिप्तानि दक्षिणे भागे लिङ्गस्योपरि पार्व्वति।
तस्या बधार्थं व्याधेन वाणं धनुषि सन्दधे॥
हर्षपूर्णेन मनसा कुटुम्बार्थं भृशं प्रिये।
निरीक्ष्य लुब्धको यावत्तस्यां वाणं विमुञ्चति॥
तावन्मृगी सुसन्त्रस्ता व्याधं वचनमब्रवीत्।
धनुर्धर शृणु व्याध सर्व्वसत्वभयङ्कर॥
देहि मे वचनं ह्येकं पश्चान्मान्विनिपातय॥
आयाता हरिणी चैका मार्गेणानेन लुब्धक।
समायाताथवा नैव सत्यं कथय सुव्रत॥
तद्वचो लुब्धकः श्रुत्वा विस्मितस्तत्क्षणादभूत्।
तस्यास्तु यादृशी वाणी अमुष्या अपि तादृशी॥
सैवेयमागतानूनं प्रतिज्ञापालनाय वै।
अथ कान्या समायाता या तया कथिता पुरा॥
एवं सञ्चिन्त्य मनसा लुब्धकोवाक्यमब्रवीत्।
शृणु त्वं मृगि मे वाक्यं गता सा निजमन्दिरं॥
त्वं दत्त्वा मम नूनं हि सा भवेत्सत्यवागपि।
अहोरात्रं कृतं कष्टं कुटुम्बार्थं मृगाङ्गने॥
अधुना त्वां हनिष्यामि देवतास्मरणं कुरु।
व्याधोक्तं वचनं श्रुत्वा हरिणी दुःखिता भृशं॥
व्याधं प्राह रुदित्वा सा मा मां व्याध निपातय।
नास्ति मांसं तथा मेदः शरीरे रुधिरं मम॥

तेजो बलं मे सकलं निर्दग्धं विरहाग्निना।
अहं प्राणैर्वियोक्ष्यामि भोजनन्ते न जायते॥
बलवान् सुमहातेजा मेदमांसपरिप्लुतः।
अत्यन्तस्थूलपीनाङ्गो मृगो ह्यत्रागमिष्यति॥
तयोक्तं लुब्धकः श्रुत्वा किङ्करोमीत्यचिन्तयत्।
मृगी ब्रूते ह्यसन्दिग्धं निश्चयोऽयं परं मम॥
चिन्तयित्वेति स प्राह मृगीं कामातुरान्तदा।
कुरु प्रतिज्ञां सत्यान्त्वं निश्चयो मे यथा भवेत्॥
तद्व्याधवचनं श्रुत्वा मृगी शोकसमाकुला।
सत्यां प्रतिज्ञां विदधे व्याधस्याग्रे पुनः पुनः॥

मृग्युवाच।

क्षत्रियस्तु रणं दृष्ट्वा संग्रामाद्यो निवर्त्तते।
तेन पापेन लिप्यामि यद्यहमनृतं वदे॥
परद्रव्यरता नित्यं मायावन्तोऽनुपासकाः।
भेदयन्ति तड़ागानि वापीनाञ्च गवामपि।
मार्गं स्थानञ्च ये घ्नन्ति सर्वसत्वभयङ्कराः॥
परित्यजति सन्मार्गं पशून् भृत्यांस्तथैव च।
ब्राह्मणान्निन्दते यश्च तथैवाश्रमनिन्दकः॥
तेन पापेन लिप्यामि तद्वै तदनृतं वदे।
आकर्ण्येत्थं वचस्तेन मुक्ता सा तत्क्षणात्प्रिये॥
जलं पीत्वा गता सापि अदृष्टः सोऽभवत्तदा।
जालिमध्यस्थितस्यापि द्वितीयप्रहरो गतः॥
पीडितस्तीव्रशीतेन क्षुधया परिपीडितः।

शिवं शिवं प्रजल्पंश्च न निद्रामुपलब्धवान्॥
कृतं शिवार्चनं तेन द्वितीये प्रहरेऽपि च।
वीक्षते स दिशः सर्व्वा जीवनार्थं वरानने॥
सौभाग्यबलदर्पाढ्यो मृगस्तावत् समागतः।
बाणं गृहीत्वा तं दृष्ट्वा मौर्व्यामाशु न्ययोजयत्॥
आकर्णान्तं धनुर्नाम्य हृष्टतुष्टेन चेतसा।
यावन्मुञ्चति बाणं स तावद्दृष्टो मृगेण वै॥
कालरूपन्तु तं दृष्ट्वा मृगश्चिन्तां परां ययौ॥
निश्चितं भविता मृत्यु यदि पादो विचाल्यते।
भार्य्या प्राणसमा चैव व्याधिनैव निपातिता॥
तया परहितस्यापि मम मृत्युर्भविष्यति।
हा कालविकृतं पापं यद्भार्या दुःखमागता॥
न हि भार्या समं सौख्यं गृहे वापि वनेपि वा।
तया विना न धर्मोहि नार्थकामौ विशेषतः॥
वृक्षमूलेऽपि दयिता यत्र तिष्ठति तद्गृहं।
प्रासादोऽपि तया हीनः कान्तारादतिरिच्यते॥
धर्म्मार्थकामकार्येषु पुंसाम्भार्या सहायनी।
विदेशगमने चापि सैव विश्वासकारिणी॥
नास्ति भार्यासमो बन्धुर्नास्ति भार्यासमं सुखम्।
नास्ति भार्यासमं लोके नरस्यार्त्तस्य भेषजं॥
यस्य भार्या गृहे नास्ति साध्वी च प्रियवादिनी।
तेनारण्यं न गन्तव्यं यथारण्यं तथागृहं॥
तया विना जीवतोऽपि निष्फलं मम जीवितं।

एका प्राणसमा मे भू द्वितीया प्रमदा मम ॥
भार्य्या विरहितस्याद्य जीवितं निष्फलं मम।
एवं सचिन्त्य शनकैर्लुब्धकं वाक्यमब्रवीत् ॥
शृणु व्याध महासत्व आमिषाहारनिश्चय।
त्वां हि पृच्छामि किञ्चिद्दै सत्यं कथय सुस्फुटं ॥
आयान्तं हरिणीयुग्मं केन मार्गेण तद्गतं।
त्वया विनाशितं नैव सत्यं कथय मेऽग्रतः ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लुब्धकस्यापि चिन्तयन्।
असावपि न सामान्यो देवता कापि विद्यते ॥
ध्यात्वेति सत्वस्तस्याग्रे लुब्धको वाक्यमब्रवीत्।
ते गतेऽनेन मार्गेण प्रतिज्ञाय ममाग्रतः ॥
ताभ्यां दत्तो भोजनार्थं मम त्वं नात्र संशयः।
अधुना त्वां हनिष्यामि न हि मोच्यामि कर्हिचित् ॥
व्याधोक्तं हि वचः श्रुत्वा हरिणः प्राह सत्वरं।
तत्सत्यं कीदृशं व्याध ताभ्यामुक्तं तवाग्रतः ॥
येन ते प्रत्ययोजातस्तन्मुक्तं हरिणीद्वयं।
व्याधेन कथिताः सर्वे ये कृताः शपथाः पुरा ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा हरिणो हृष्टमानसः।
व्याधं प्राह ततः शीघ्रं वचनं धर्म्मसंहितं ॥

मृग उवाच।

ताभ्यां यदुक्तं भो व्याध तत्सत्यं हि भवेन्मम।
प्रभाते त्वद्गृहं न्यूनमागमिष्यामि हिंसक ॥
भार्या ऋतुमती मेऽद्य कामार्त्तापि च साम्प्रतं।

गत्वा गृहेऽद्य तां भुक्ता अनुज्ञाप्य सुहृज्जनं॥
शपथैरागमिष्यामि त्वन्निहं नात्र संशयः।
न मद्देहस्त्वसृङ्मांसं यत्त्वं भोक्तुमभीप्ससि॥
तद्वृथा मरणं मे स्याद्यदि मान्त्वं हनिष्यसि।
तन्मृगस्य वचः श्रुत्वा व्याधो वचनमब्रवीत्॥

व्याध उवाच।

असत्यं भाषसे धूर्त्त प्रतारयसि मामिह।
ज्ञाता मृत्युः स्फुटं यत्र तत्र गच्छति कल्पधीः॥
व्याधस्य वचनं श्रुत्वा वाक्यं प्राह वरं मृगः।
शपथान् वै करिष्यामि यथा ते प्रत्ययो हृदि॥

व्याध उवाच।

मम त्वं शपथान् ब्रूहि विश्वासो येन जायते।
यथा हि प्रेषयामि त्वां स्वगृहं प्रति कामुक॥

मृग वाच।

भर्त्तारं वञ्चयेद्या स्त्री स्वामिनं वञ्चयेन्नरः।
मित्रं वञ्चयते यस्तु गुरुद्रोहं करोति यः॥
तेन पापेन लिप्यामि यदेतदनृतं वदे।
भेदयेद्यस्तु मित्राणि प्रमादं श्रावयेत्तु यः॥
विषमन्तु रसं दद्यादेकपङ्क्त्यां हि भुञ्जतां।
तेन पापेन लिप्यामि यदेतदनृतं वदे॥
प्रवासशीला ये विप्राः क्रयविक्रयकारिणः।
सन्ध्यास्नानविहीनाश्च वेदशास्त्रविवर्जिताः॥

मद्यपस्त्रीसमासक्ताः परनिन्दारतास्तथा।
परस्त्रीसेवका नित्यं परपैशुन्यसूचकाः॥
शूद्रान्नभोजकाश्चैव रसविक्रयकारकाः।
तेन पापेन लिप्यामि नायामि यदि ते गृहं॥
मद्याद्यं-विक्रयेद्यस्तु शूद्रालोभविमोहितः।
सर्व्वाशी सर्व्वविक्रेता विप्राणामपि निन्दकाः॥
विप्रवाक्यं परित्यज्य पाषण्डाभिरतस्तथा।
तेन पापेन लिप्यामि यदि नायाति ते गृहं॥
गां यः स्पृशति पादेन उदितेऽर्कें प्रबुध्यते।
एकाकी मिष्टमश्नाति विकर्म्मणि तथा रतः॥
मातापित्रोरभक्तश्च क्रियामुद्दिश्य पाचकः।
कन्याशुल्कोपजीवी च देवब्राह्मणनिन्दकः॥
एतेषां पातकं मह्यं यदि नायामि ते गृहं।
यः पठेत् स्वरहीनञ्च लक्षणेन विवर्जितम्॥
रथ्यां पर्य्यटमानस्तु वेदमुच्चिरते यदि।
पठमानस्य विप्रस्य चाण्डालः शृणुते यदि॥
तेन पापेन लिप्यामि यदि नायामि ते गृहं।
वेश्यारताः सदा ये च देवदायनिवारकाः॥
तेषां पापेन लिप्यामि यदि नायामि ते गृहं।
शूद्रान्नेषु सदा सक्ताः शूद्रसंपर्कदूषिताः॥
सन्ध्याभ्रष्टा च ये विप्रा दातृदाननिवारकाः।
तेषां पापेन लिप्यामि यदि नायामि ते गृहं॥
भर्त्तारमर्थहीनञ्च कुरूपं व्याधिपीड़ितं।

या न पूजयते नारी रूपयौवनगर्विता ।
तस्याः पापेन लिप्यामि यदि नायामि ते गृहं ॥
अथ किं बहुनोक्तेन भो लुब्धक तवाग्रतः ।
यदि नायामि ते गेहं ममासत्यं भवेत्तदा ॥
तेन वाक्येन सन्तुष्टो व्याधो वै वीतकल्मषः ।
संहृत्य वाणं धनुषो मृगं मुक्त्वा वनं प्रति ॥
जगाम प्रीतमनसा मुक्तपापो वरानने ।
जलं पीत्वाथ हरिणः प्रविष्टोगहनं वनं ॥
गतोऽसौ तेन मार्गेण येनायातं मृगीद्वयम् ।
लुब्धकेन तदा तत्र जालिमध्ये स्थितेन हि ॥
छित्वा विल्वस्य पत्राणि निक्षिप्तानि शिवोपरि ।
अज्ञानाच्छिवपूजा तु कृता तेन तथा व्रतं ॥
ब्रुवन् शिवशिवं सोऽथ निःसृतो जालिमध्यतः ।
उदिते सूर्य्यबिम्बे तु अज्ञानाज्जागरे कृते ॥
पापान्मुक्तोऽभवद्व्याधः शिवरात्रिप्रभावतः ।
यावन्निरीक्षते दिक्षु निशान्ते भोजनं प्रति ॥
तावच्छिशुव्रता चान्या मृगी तत्र समागता ।
दृष्ट्वा मृगीं तथा व्याधो वाणं धनुषि सन्दधे ॥
यावन्मुञ्चति बाणं स तावत् प्रोवाच तं मृगी ।

मृग्युवाच ।

मा वाणं मुञ्च धर्म्मात्मन् धर्म्मं पालय सुव्रत ।
अहमवध्या सर्व्वेषां सर्व्वशास्त्रनिदर्शनम् ॥
प्रयानं मैथुनासक्तं मदनव्याधिपीड़ितं ।

न हि हन्ति मृगं राजा मृगीं च शिशुनावृतां ॥
अथ त्वं धर्म्ममुत्सृज्य मां वधिष्यसि मानद।
बालकान् हि गृहे त्यक्त्वा आगमिष्याम्यहं पुनः ॥
या भर्त्तारं समुत्सृज्य परपुंसि रता भवेत्।
तस्याः पापेन लिप्यामि यदि नायामि ते गृहं ॥
ये कृताः शपथाः पूर्व्वं तवाग्रे व्याधसत्तम।
ते सर्व्वे मम सन्त्वत्र यदि नायाम्यहं पुनः ॥
व्याधेन सा तदा मुक्ता जगाम* निज मन्दिरम्।
व्याधोऽपि तत्शरन्त्यक्त्वा जगाम स्वगृहं प्रति ॥
सर्व्वेषां वचनं ध्यायन्मृगाणां सत्यवादिनां।
एतेषां घातको नित्यमहं यास्यामि कां गतिं ॥
एवं सञ्चिन्तयन् गेहे दृष्टाः क्षुधितबालकाः।
निरामिषन्तु तं दृष्ट्वा जग्मुस्तेपि निराशतां॥
नान्नं मांसं गृहे तस्य भोजनं येन जायते।
व्याधोऽपि स तदा तत्र तेषां वाक्यानि संस्मरन्॥
न भोजनं च निद्रां च लभते विस्मयान्वितः।
आगमिष्यन्ति ते नूनं शपथैरतियन्त्रिताः ॥
तानहं निहनिष्यामि सतां व्रतमनुस्मरन्।
लुब्धकेन तदा मुक्तो मृगोऽसौ शपथैः कृतैः ॥
स्वाश्रमं चाशु संप्राप्तो यत्र तद्धरिणीद्वयं।
सद्यः प्रसूता तत्रैका द्वितीया रतिलालसा॥
तृतीयापि समायाता बालकैः परिवारिता।

* व्याधेनेति पुस्तकान्तरे पाठः।

सर्व्वाः समेता एकत्र मरणे कृतनिश्चयाः।
परस्परेण जल्पन्ति लुब्धकस्य विचेष्टितं॥
ततो मृगीमृतुमतीं भुक्त्वा वाक्यं मृगोऽब्रवीत्।
स्थातव्यमत्र युष्माभिः कर्त्तव्यं प्राणरक्षणं॥
व्याघ्रद्विपात् लुब्धकेभ्यो वालकानाञ्च रक्षणं।
अहमत्र समायातः शपथैरतियन्त्रितः॥
अस्या ऋतु प्रदानाय पुनःसन्तानहेतवे।
ऋतुमतीं तु योभार्य्यां नैव सेवेत मोहितः॥
भ्रूणहत्या भवेत्तस्य धर्म्मश्चैव निरर्थकः।
सन्तानात् स्वर्गमाप्नोति इह कीर्त्तिञ्च शाश्वतीं॥
सन्तति र्यत्नतः पाल्या स्वर्गसौख्यप्रदायका।
अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गोनैव च नैव च॥
येन केनाप्युपायेन पुत्रमुत्पादयेत् पुमान्।
मया तत्रैव गन्तव्यं यत्र व्याधस्य मन्दिरं॥
सत्यं तु पालनीयं स्यात् सत्ये धर्म्मः प्रतिष्ठितः।
तास्तद्भर्तृ वचः श्रुत्वा प्रोचु र्धर्म्मयुतं वचः॥
अस्माकं पारणं श्लाघ्यं भर्त्त्रा सह मृग प्रभो।
वयमप्यागमिष्यामस्त्वया सार्द्धं मृगोत्तम॥
तथा ते विप्रियं कान्त न स्मरामः कदाचन।
पुष्पितेषु वनान्तेषु नदीनां सङ्गमेषु च॥
कन्दरेषु च शैलाना मवतारमिता वयं।
न कार्य्यमप्यतः कान्त जीवितेन विना त्वया॥
न दीनां पतिहीनानां जीवितं निष्प्रयोजनं।

मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः ॥
अमितस्य हि दातारं भर्त्तारं का न पूजयेत्।
अपि द्रव्ययुता नारी बहुपुत्रसुहृद्वृता ॥
शोच्या सा बन्धुवर्गस्य पतिहीना कुरङ्गम।
वैधव्यसदृशं दुःखं स्त्रीणामन्यन्न विद्यते ॥
धन्या स्ता योषितोयास्तु म्रियन्ते भर्त्तुरग्रतः।
नातन्त्री वाद्यते वीणा नाचक्रो वाह्यते रथः॥
नापतिः पूज्यते नारी अपि पुत्रशतैर्वृता।
निर्धनो व्यसनी वृद्धो व्याधितो विह्वलस्तथा ॥
पतितः क्वपणो वापि भर्त्ता स्त्रीणां सदा गतिः।
नास्ति भर्त्तृ समो धर्म्मो नास्ति भर्त्ता समः सुहृत् ॥
नास्ति भर्त्ता समो नाथः स्त्रीणां भर्त्ता गतिः परा।
एवं विलप्य ताः सर्व्वा मरणे क्वतनिश्चयाः ॥
बालकैस्ताःसमायुक्ता भर्तृशोकेन पीड़िताः।
तासां वाक्यं मृगः श्रुत्वा हृदि चिन्तापरोऽभवत् ॥
सर्व्वथापि हि गन्तव्यं मया व्याधस्य सन्निधौ।
सर्व्वतः सत्यसंरचा कुटुम्बस्य चयोऽन्यतः ॥
यदि गच्छामि तत्राहं कुटुम्बस्य चयोभवेत्।
नोवा प्रयामि तत्राहं मम सत्यं व्रजेत् पुनः ॥
वरं पुत्रस्य मरणं भार्य्याया आत्मनस्तथा।
सत्यलोपान्नरो नूनं ह्यधन्तं नरकं व्रजेत् ॥
तस्मात् सत्यं पालनीयं नरैः श्रेयोर्थिभिः सदा।
सत्येन धार्य्यते पृथ्वी सत्येन तपते रविः ॥

सत्येन वायवो यान्ति सत्ये न वर्द्धते परं ।
एवं सञ्चिन्त्य स मृगो धर्म्मान् हृदि मनोहरान् ॥
ताभिः सह कुरङ्गीभिराश्रमात् तत्क्षणं ययौ ।
तस्मिन् सरसि स्नात्वा तु कर्मन्यासञ्चकार ह ॥
तच्च लिङ्गं नमस्कृत्य हृदि ध्यायन् शिवं शिवं ।
स्नानं पानं परित्यज्य मैथुनं भोगमेव च ॥
कामं क्रोधं तथा लोभं मायां मोक्षविनाशिनीं ।
खाद्यपेयादिकञ्चैव लुब्धकाभिमुखो ययौ ॥
तस्य भार्या तथा पुत्राः पृष्ठलग्नाः व्रजन्ति वै ।
अनाशकम्परं गृह्य मरणे कृतनिश्चयाः ॥
भार्या पुत्रैःपरिवृतो मृगस्तन्देशमागतः ।
क्षुधितो बालकैर्युक्तो लुब्धको यत्र तिष्ठति ॥
मृगस्तन्देशमागत्य कुटुम्बेन समन्वितः ।
पालयन् सत्यवाक्यानि लुब्धकं वाक्यमब्रवीत् ॥

मृग उवाच ।

हन्या मां प्रथमं व्याध पश्चाद्भार्याः क्रमेण तु ।
बालकानि ततः पश्चाद्धन्त्वा मा विलम्बय ॥
मृगाणां भक्षणाद्व्याध न ते दोषोऽस्ति कश्चन ।
यास्यामः स्वर्गं वै सर्व्वे शस्त्रपूता न संशयः ॥
तवापि सकुटुम्बस्य प्राणयात्रा भविष्यति ।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं मृगोक्तं लुब्धकस्तदा ॥
आत्मानं निन्दयित्वा तु हरिणं वाक्यमब्रवीत् ।

व्याध उवाच।

अहोमृग महासत्व गच्छ गच्छ स्वमालयं।
आमिषेण न मे कार्यं यद्भाव्यं तद्भविष्यति॥
सत्वानां हि वधात्पापं तर्जने बन्धने तथा।
नैव पापं करिष्यामि कुटुम्बार्थं कथञ्चन॥
धर्माणाञ्च दया मूलं सत्यं शाखाफलन्द्रमं।
त्वं गुरु र्मम धर्म्माणामुपदेष्टा हि सांप्रतं॥
गच्छ गच्छ कुरङ्ग त्वं कुटुम्बेन समन्वितः।
न्यस्तानि तु मयास्त्राणि सत्यधर्म्मसमाश्रितः॥
तद्व्याधवचनं श्रुत्वा हरिणः प्राह तं पुनः।
कर्म्मन्यासमहं कृत्वा त्वत्सकाशमिहागतः॥
हन्यतां हन्यतां शीघ्रं न ते पापं भविष्यति।
मया दत्ता पुरा वाचा तया बद्धो मराम्यहं॥
मया मम कुटुम्बेन त्यक्तलोभः स्वजीवने।
एतच्छ्रुत्वा च वचनं लुब्धको वाक्यमब्रवीत्॥
त्वं गुरुस्त्वं पिता माता त्वं मे बन्धुः सखा सुहृत्।
मया त्यज्यानि शस्त्राणि त्याज्य मायादिकं बलं॥
कस्य भार्या सुतः कस्य कुटुम्बं कस्य हे मृग।
तैस्तैः स्वधर्म्मं भोक्तव्यं मृगं गच्छ यथासुखम्॥
इत्युक्त्वा लुब्धकस्तूर्णं मुक्त्वा चापं शरैः सह।
मृगान् प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्य क्षमापयेत्॥
प्रोचुर्व्याधं पुरस्तत्र वचःपीयूषसन्निभं।

एतस्मिन्नन्तरे नेदु र्देवदुन्दुभयो दिवि ॥
आकाशात् पुष्पवृष्टिश्च बभूव सुमनोहरा।
देवदूताः समायाता विमानं गुह्यशोभनं ॥

देवदूत उवाच।

अहो व्याध महासत्व सर्व्वसत्वभयङ्कर।
विमानवरमारुह्य सदेहस्त्रिदिवं व्रज ॥
शिवरात्रिप्रभावेन पातकन्ते चयं गतं।
उपवासश्च संजातस्तथा वै निशिजागरः ॥
यामे यामे कृता पूजा अज्ञानात्तु शिवस्य च।
सर्व्वपापविनिर्मुक्तो गच्छ त्वं रुद्रमन्दिरं ॥
मृगराज महासत्व सर्व्वभार्य्यासमन्वितः।
भार्य्याद्वितयसंयुक्तो नाचत्रं पदमाप्नुहि ॥
तव नाम्ना चयं ऋचं लोके ख्यातिं गमिष्यति।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं लुब्धकोऽथ मृगास्तथा ॥
विमानानि समारुह्य नाचत्रं पदमागताः।
हरिणीद्वयमार्गस्तु दृश्यतेऽद्यापि पार्व्वति ॥
तत्पृष्ठलग्नताराणां द्वितयं मणिसन्निभं।
ऋचं लुब्धकनाम्ना तु दृश्यते द्योतनं शुभं ॥
तारात्रितयसंयुक्तं मृगशीर्षं तदुच्यते।
वालकद्वितयश्चाग्रे तृतीया पृष्ठतो मृगी ॥
पृष्ठतस्तत्र संप्राप्ता मार्गशीर्षस्य सन्निधौ।
मृगराट् दृश्यतेऽद्यापि ऋचं व्योमगमुत्तमं ॥

अकामाज्जागरं रात्रौ तथोपोषणपूजनम्।
जातं लुब्धकराजस्य तत्फलं परिवर्णितं॥
ये नरा भक्तिभावेन शिवरात्रिव्रतं शुभं।
सोपवासं करिष्यन्ति जागरेण समन्वितं॥
तेषां फलं हि वै वक्तुं ब्रह्मापि च जडायते।
शिवरात्रिसमं नास्ति व्रतं पापभयापहं॥
यत् कृत्वा सर्व्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः।
यत्फलं माघमासे वै प्रयागे मज्जतां नृणां॥
वैशाखे द्वारकायान्तु तपस्याषाढसेवनात्॥
गयायां पिण्डदानेन कार्त्तिके माधवाग्रतः।
तत्फलं जायते नूनं श्रवणादेव पार्व्वति॥

## इति श्रीलिङ्गपुराणे उमामहेश्वर संवादे शिवरात्रिव्रतमाहात्म्यं।

———000———

ऋषय ऊचुः।

शिवरात्रिरितिख्याता कस्मिन् काले तु सा भवेत्।
किंफला किंविधाना सा तत्त्वन्नो विस्तराद्वद॥

सूत उवाच।

माघस्य कृष्णपक्षीयतिथिश्चैव चतुर्द्दशी।
तस्या रात्रिः समाख्याता शिवरात्रिरिति द्विजाः॥

तस्यां सर्वेषु लिङ्गेषु सदा संक्रमते हरः।
विशेषादमरैः सर्वैः ख्याता सेयं कणेश्वरे॥

ऋषय ऊचुः।

शिवरात्रिः कथं जाता केन वापि विनिर्म्मिता।
कस्माद्बहुफला सेति सर्व्वं वै विस्तराद्वद॥

सूत उवाच।

कथयिष्यामि पूर्व्वं तत् पूर्व्ववृत्तं कथानकं।
भर्तृयज्ञस्य संवादमश्वसेनस्य भूपतेः॥
आनर्त्ताधिपतिः पूर्व्वमश्वसेन इति स्मृतः।
आसीद्धर्म्मपरो नित्यं वेदवेदाङ्गपारगः॥
भर्तृयज्ञः पुरा तेन इदं पृष्टः कुतूहलात्।
कलिकालं समुद्वीक्ष्य वर्द्धमानन्दिनेन्दिने॥

भर्तृसेन उवाच।

कलिकाले कृते किञ्चिद्व्रतं मे वद सन्मुने।
खलायां सहजं पुण्यं सर्व्वपापप्रणाशनम्॥
अल्पायुषः* सदा मर्त्याः पूताः कृतयुगे पुरा।
त्रेतायां द्वापरे चैव किन्तु प्राप्ते कलौ युगे॥
तस्माद्वर्षव्रतं त्यक्त्वा किञ्चिदैकाहिकं वद।
श्वःकार्यमद्य कुर्वीत पूर्व्वाह्णे चापराह्णिकं॥
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं वास्य न वा कृतं।

---

* चेत्यायुष इति पुस्तकान्तरे पाठः।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भर्तृयज्ञ उदारधीः ॥
अब्रवीत् सुचिरं ध्यात्वा ज्ञात्वा दिव्येन चक्षुषा।
अस्ति राजन् व्रतं पुण्यं शिवरात्रीतिसंज्ञितं ॥
एकाह्निकं महाराज सर्व्वपातकनाशनं।
तस्यां यद्दीयते दानं हुतञ्जप्तं तथैवच ॥
सर्व्वमक्षयतां याति रात्रिजागरणे कृते।
अपुत्रो लभते पुत्रानधनो धनमाप्नुयात् ॥
स्वल्पायुर्दीर्घमायुष्यं शत्रूणाञ्चैव संक्षयं।
यं यं काममभिध्याय व्रतमेतत्समाचरेत् ॥
तं तं समाप्नुयान्मर्त्त्यो निष्कामो मुक्तिमाप्नुयात्।
तथा वर्षकृतात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥
पठनादेकचित्तेन यदि कुर्यात् प्रजागरं।
यानि कान्यत्र लिङ्गानि चराणि स्थावराणि च।
स च संक्रमते देवस्तस्यां रात्रौ यतो हरः ॥
शिवरात्रिस्ततः प्रोक्ता तेन सा हरवल्लभा।
प्रार्थितः स सुरैः सर्व्वैर्लोकानुग्रहकाम्यया ॥
भगवन् कलिकालेऽस्मिन् सर्व्वपापसमन्वितः।
वर्षपापविमुक्त्यर्थं विनायकं क्षितौ व्रतं ॥
एतया पूजया पूता मर्त्याः शुद्धिमवाप्नुयुः।
ततो दत्तं हुतं वैषामस्माकमुपतिष्ठते ॥
यथोच्छिष्टैश्च यद्दत्तं तद्दत्ताज्जायतेऽखिलं।
कलिकालेन चास्माकं किञ्चिद्देवोपतिष्ठति ॥
यत् किञ्चिन्मानवै र्दत्तं प्रभूतमपि शङ्कर ॥

भगवानुवाच।

माघमासस्य कृष्णायां चतुर्दश्यां सुरेश्वर।
अहं यास्यामि भूमिष्ठो रात्रौ नैव दिवा कलौ॥
लिङ्गेषु च समस्तेषु चलेषु स्थावरेषु च।
प्रपूजयेत् सम्यदिच्छुः सर्व्वपापविशुद्धये॥
तस्यां रात्रौ हि मे पूजां यः करिष्यति मानवः।
मन्त्रैरेतैः सुरश्रेष्ठ विपाप्मा स भविष्यति॥

ॐ सद्याय नमः। ॐ वामाय नमः। ॐ तत्पुरुषाय नमः। ॐ ईशानाय नमः।

पञ्चवक्त्राणि संपूज्य गन्धपुष्पानुलेपनैः।
वस्त्रैर्दीपेन नैवेद्यैस्ततोऽर्घ्यञ्च प्रदापयेत्॥
मन्त्रेणानेन मद्भक्तो माम्ध्यात्वा मनसि स्थितं।
गौरीवल्लभ देवेश सर्पाद्यैः शशिशेखरः॥
वर्षपापविशुद्ध्यर्थं अर्घोमे प्रतिगृह्यतां।
ततः संपूजयेद्विप्रं भोजनाच्छादनादिभिः॥
दत्त्वा प्रदक्षिणां तस्मै वित्तशाठ्यं विवर्जयेत्।
ततोजागरणं कुर्य्याद्गीतवादित्रनिस्वनैः॥
धर्म्माख्यानकथाभिश्च जलाख्यैस्ताण्डवैस्तथा।
एवं करिष्यते योऽत्र व्रतमेतत्सुरेश्वर॥
सर्व्वपाप विशुद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं भविष्यति।
तच्छ्रुत्वा त्रिदशाः सर्वे प्रणम्य शशिशेखरं॥
सम्प्रहृष्टा नृपश्रेष्ठा स्वानि स्थानानि भेजिरे।

प्रेषयामासुरुर्व्यां वै नारदं मुनिसत्तमं ॥
प्रबोधनाय लोकानां शिवरात्रिव्रते तदा।
सोऽपि गत्वा धरापृष्ठं श्रावयामास सर्व्वतः ॥
शिवरात्रेस्तु माहात्म्यं यदुक्तं शूलपाणिना।
ततः प्रभृति संज्ञाता शिवरात्रिर्धरातले ॥
सर्व्वकामप्रदा पुण्या सर्व्वपातकनाशिनी।
तत्र ते कीर्त्तयिष्यामि पुरावृत्तां कथां वरां ॥
यद्वृत्तं नैमिषारण्ये लुब्धकस्यात्र कस्यचित्।
तत्रासील्लुब्धकः कश्चिज्जातिमात्रो न कर्म्मतः ॥
व्यसनेनाभिभूतोऽयं परवित्तापहारकः।
न कदाचिद्व्रतन्तेन न दत्तं न जपः कृतः ॥
केवलन्तु हृतं वित्तं लोकानाञ्छलसंश्रयात्।
कस्यचित्त्वथ कालस्य शिवरात्रिः समागता ॥
माघमासे सिते पक्षे सर्व्वपातकनाशिनी।
तत्रास्त्यायतनं पुण्यं देवदेवस्य शूलिनः ॥
ततो जागरणं रात्रौ प्रारब्धमभितोजनैः।
नारीभिर्नरशार्दूल भूषिताभिः सुभूषणैः ॥
अथासौ चिन्तयामास चौरो वित्तेन जागरः।
गच्छामि यदि काचित् स्त्री भूषणैः परिभूषिता ॥
निद्रिता वाद्यतः श्वाश्य प्रवासादुपयाम्यहं।
ततोहत्वा समादाय भूषणानि व्रजाम्यहं ॥
एवं निश्चित्य मनसा गतस्तस्य समीपतः।
कर्णिकारं समारुह्य स्थितो गुप्तस्ततो हि सः ॥

वीक्ष्यमाणो दिशः सर्वा नारी निष्क्रमणोद्भवा।
चौर्यकर्म्मप्रवृत्तस्य शीतार्त्तस्य विशेषतः॥
सत्यापि निद्रिता याता न च नारीति निर्गता।
तस्याधस्तात्ततो लिङ्गमवधूतं हरोद्भवं॥
एतस्मिन्नेव काले तु शोद्गतस्तीव्रणदीधितिः।
असतां चैव चौराणां कामिनां विमुखावहः॥
ततोनराश्च नार्य्यश्च जग्मुः स्वं स्वं निकेतनं।
उमया तं परं शान्तं प्रणिपत्य महेश्वरं॥
सोऽपि चौरो निराशश्च क्षुत्क्षामः शीतविह्वलः।
अववर्य्य द्रुमात्तस्माद्गर्माग्निः क्वचिदासते॥
ततः कालेन महता पञ्चत्वं समपद्यत।
जातो जातिस्मरो भूत्वा दर्पणाधिपतेर्गृहे॥
उपवासप्रभावेन तस्यां रात्रौ प्रजागरात्।
शिवरात्रिस्तथा तस्य लिङ्गस्यापि प्रपूजनात्॥
ततो राज्यं समासाद्य पितृपैतामहं महत्।
कारयामास लिङ्गस्य प्रासादं तस्य शोधनं॥
वर्षे वर्षे समागत्य शिवरात्र्यां प्रजागरात्।
उपवासपरो भूत्वा गीतवादित्रनिस्वनैः॥
धर्म्माख्यानकथाभिश्च सामश्रुतिभिरेव च।
* नेत्रैः पूर्वोक्तैः संपूज्य अर्घ्यं दत्त्वा विधानतः॥
सन्तर्प्य ब्राह्मणान् कामैर्जगाम विषयं निजं।
कस्यचित्त्वथ कालस्य शिवरात्रिः समागता।

---

* वस्त्रैरिति पुस्तकान्तरे पाठः।

प्रासादे तत्र मुनयः प्राप्ताः शाण्डिल्यपूर्व्वकाः॥
शाण्डिल्योऽथ भरद्वाजो जवक्रीतश्च जालवः।
पुलस्त्यः पुलहो गार्ग्य स्तथान्ये वहवो नृपाः॥
सोऽपि राजा वृहत्सेनो दशार्णाधिपतेः सुतः।
सम्प्राप्तो जागरं कर्त्तुं तस्य लिङ्गस्य चाग्रतः॥
पूजयित्वा ततो देवं प्रणिपत्य मुनींश्च तान्।
उपविष्टस्ततश्चाग्रे अनुज्ञातोद्विजोत्तमैः॥
नृत्यंस्तस्यायतश्चक्रुः कथावहुविधा नृप।
राजर्षीणामतीतानां ब्राह्मणानां विशेषतः॥
अथ तस्मिन् कथयति तैः पृष्टो ब्रह्मवादिभिः।
कौतुकाविष्टचित्तैश्च विस्मयोत्फुल्ललोचनैः॥
राजन् पृच्छामि हे सर्व्वे वयं कौतूहलान्विताः।
यदि ब्रवीषि नः सत्यं देवतायतने स्थितः॥

राजोवाच।

यदि ज्ञास्यामि विप्रेन्द्राः कथयिष्याम्यसंशयं।
देवस्याग्रे तु संपूज्य सत्येनात्मानमालभे॥

ऋषयऊचुः।

सुलभानि परित्यज्य कस्माद्ग्रामान्यनेकशः।
जागरं कर्त्तुकामोऽत्र ह्या देशादुपतिष्ठसि॥
वर्षे वर्षे सदा प्राप्ते नूनं त्वं वेत्सि कारणं।
रहस्यं यदि ते न स्यात्तद्ब्रवीहि नराधिप।
सविलक्ष्यं स्मितं कृत्वा ततः प्राह सुदुर्म्मनाः॥
रहस्यं परमं ह्येतदवाच्यं हि द्विजोत्तमाः।

तथापि वेदयिष्यामि अश्वदेवाग्रतोयतः ॥
ततः स कथयामास पूर्व्वदेहसमुद्भवं ।
मलिम्लुचनरौनूनं वृत्तान्तं हि नराधिप ॥
चौर्य्यभावेन देवस्य पूजनं जागरस्तथा ।
उपवासं विना तेन शिवरात्रौ पुराभवत् ॥
जातिस्मरणसंयुक्तं तेषां सर्व्वं यथातथं ।
कथयामास भूपालो वृत्तान्तं पूर्वजन्मनः ॥
तत स्ते मुनयः सर्वे साधुवादान् पृथक्विधान् ।
नृपोत्तमस्य राजर्षेर्द्दयाशीर्भिसमन्विताम् ॥
रात्रौ जागरणं कृत्वा जग्मुस्तेच तथाश्रमं ।
सोऽपि राजा समभ्यर्च्य तदैव तान् द्विजोत्तमान् ॥
जगाम स्वपुरं पश्चात्कृत्वा रात्रिप्रजागरं ॥

भर्त्तृयज्ञ उवाच ।

शिवरात्रिः समुत्पन्ना एवम्भूमितले नृप ।
एवम्बिधं च माहात्म्यं तस्यास्ते परिकल्पितं ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्या सा नृपसत्तम ।
कलिकाले विशेषेण यदीच्छेद्भूतिमात्मनः ॥
एषा कृता विष्णुपेन नलेन नहुषेण च ।
मान्धाता धुन्धुमारेण सगरेण युयुत्सुना ॥
तथान्ये च महीपालाः सम्यक् श्रद्धासमन्विताः ।
प्रापाश्च ईप्सितान् कामान्नृपोदिव्यायचक्षुषा ॥
सत्यवताच साविच्या श्रिया देव्या च सीतया ।
अरुन्धत्या सरस्वत्या पनया रम्भया तथा ॥

इन्द्राख्या च वृषाख्या च स्वधया स्वाहया तथा।
रत्या प्रीत्या प्रभावत्या गायत्र्या च नृपोत्तम॥
सर्व्वे प्राप्ताः परान् कामानतिसौभाग्य संयुतान्।
यश्चैताः शृणुयाद्वापि पठेद्वा शिवसन्निधौ॥
दिनजात् पातकात सोऽपि मुच्यते नात्र संशयः।
नास्ति गङ्गासमन्तोयं नास्ति देवोहरोपमः॥
शिवरात्रिसमं नास्ति व्रतं सत्यं मयोदितं।
सर्व्वरत्नमयो मेरुः सर्व्वाश्चर्य्यसमन्नभः॥
सर्व्वधर्म्ममयी राजन् शिवरात्रिः प्रकीर्त्तिता।
गरुड़ः पक्षिणां यद्वत् नदीनां सागरो यथा।
प्रधाना सर्व्वधर्म्माणां शिवरात्रिस्तथोत्तमा॥

इति स्कन्धपुराणीयेनागरखण्डे शिवरात्रिव्रतम्।

———000———

कृष्ण उवाच।

चतुर्द्दशीं महाराज गतमुद्दिश्यते सदा।
नष्टस्तदा हव्यवाहः पुनरस्तित्वमाप्नुयात्॥

युधिष्ठिर उवाच।

कथमग्निः पुरा नष्टो देवकार्य्येह्युपस्थितः।
केनाग्नित्वं कृतं तत्र कथं हि विदितन्तव॥

कृष्ण उवाच।

पुरा सुरा महाराज तारकेण पराजिताः।
अपृच्छन् विश्वकर्त्तारं तारकं को वधिष्यति॥

उवाचासौ चिरन्ध्यात्वा रुद्रोमासक्तिसम्भवः ।
मङ्गास्वाहाग्नितेजोत्थः शिशुर्दैत्यं वधिष्यति ॥
एवं श्रुत्वा ययुः देवा यत्र शम्भुः सहोमया ।
प्रणम्य ते तमूचुर्हि यदुक्तं ब्रह्मणा तदा ॥
प्रतिपन्नञ्च रुद्रेण उमया सहितो नतः ।
प्रयत्नमकरोत्तच्च यदुक्तममरैस्तुतः ॥
दिव्यं वर्षशतं साग्रं ततः कालोऽथ मैथुने ।
न चाप्युपरमस्तत्र ततोरस्तात् कथञ्चन ॥
भयञ्च सुमहत्तेषां देवानां समजायत ।
रुद्रोमासम्भवोयो वै भविष्यति महाबलः ॥
स दैत्यान् दानवगणान् वधिष्यति न संशयः ।
केन कालेन भवति रेतोविरतिरेतयोः ॥
एतद्विचिन्त्य प्रहितौ देवैस्तत्रानिलानलौ ।
गतौ तौ वां मया दृष्टौ समस्तौ विषमस्तथा ॥
अशपच्च रुषा देवी देवैः सार्द्धं विवर्जिता ।
यस्मान्मे जनितं विघ्नभयं ह्यति दिवौकसां ॥
अथोवाच तदा देवादेवान् सर्व्वगणान् शनैः ।
अग्निं गृह्णातु वीर्य्यन्मे सम्भृतं सुचिरं हि यत् ॥
एवमुक्तोऽथ रुद्रेण नष्टोऽग्निर्देवसङ्कुलात् ।
न खस्थो न भुविस्थोवा न सूर्य्यस्थो न भूतले ॥
देवतायतने यत्नं न कुर्वान्नग्निदर्शनं ।
क्रिमिकीटपतंगाश्च त्वष्टौ त्रिदिवौकसां ।
हंं ह्रो केकाः शुकं वह्निः शीघ्रं शङ्खगणं गताः ॥

अग्रापाग्निर्द्विजिह्वाद्धि हि गुणो वो भविष्यति।
पृष्टा तु विबुधाः सर्वं पक्षिणं पक्षिणांवरं॥
जीवंजीवकनामानं भानोः सत्यं वदस्व नः।
क्वचिद्दृष्टस्त्वया वह्निर्वनेऽस्मिन्नटता सदा॥
न भद्रं नाप्यभद्रं वा किञ्चिदेव वचोऽब्रवीत्।
भूयोभूयस्तु पृष्टोऽपिनान्यामुच्चारयेद्गिरं॥
तुष्टस्तस्याब्रवीद्वह्निश्चिरञ्जीव वदामि ते।
यस्मान्न किञ्चिदुक्तं ते तस्माच्चित्रतनूरुहः॥
जीव जीव पुनर्जीव यावदिच्छा तथायुषः।
द्वितीयं ते वरं दद्मि जीवजीवक शोभनम्॥
व्यक्ता ते मानुषी वाचा स्पष्टार्था च भविष्यति।
कश्चिद्यदि च बाधस्ताद्बुधः स्नानं करिष्यति॥
अह्नाचापोडशान् दीपः क्षणाद्बालो भविष्यति।
मांसं यश्च तृतीयं वै भक्षयिष्यति निन्दितं॥
अजरः सोऽमरश्चैव सर्वकालं भविष्यति।
इदं दत्त्वा वरन्तस्य वह्निस्तमथ आप्तवान्॥
विबुधा अपि तत्रैव तमपश्यन्न वंशगं।
उत्पाद्य जातकर्म्माद्यं शास्त्रसन्दृष्टमानसः॥
तुष्टा वंशमथोचुस्ते देवास्त्रिभुवनेश्वरं।
अभयाकल्मषीभूत्वा अग्निगर्भान् वरिष्यति॥
येयं हि वैणवीयष्टिः ब्रह्मचारी च नैष्ठिकः।
यच्चाग्निपालनैपुण्यं यद्दृष्टं ब्रह्मवादिभिः॥

बहतः कल्मषीं यष्टिं तं प्राप्नोति द्विजोत्तमः।
वंशस्यानुग्रहं कृत्वा देवाहुतिमथाब्रुवन्॥
गृह्णीत शुल्कं भद्रस्य तव पुत्रो भविष्यति।

युधिष्ठिर उवाच।

यदाग्निर्नष्टो देवानां केनाग्नित्वं तदा कृतं।
भूयोऽपि केन कालेन अग्निरग्नित्वमाप्नुयात्॥

कृष्ण उवाच।

चिरात्त्वं विप्र नष्टोग्निर्येनाग्नित्वं कदाचन।
यस्मिन् काले तिथौ यस्यां पुनरग्नित्वमाप्नुयात्।
उतथ्यांगिरसोः पूर्वमासीद्वारातिकरोमहान्॥
अहं विद्यातपोभ्यां वै न ज्याध्यान् सुते न च।
उतथ्यैनैवमुक्तस्तु अङ्गिरा प्राह तं मुनिं॥
गच्छ वो ब्रह्मसदनं मरीचिप्रमुखैर्द्विजैः।
उपेतश्चान्यमुनिभिर्ब्रह्मराजर्षिसत्तमैः॥
उतथ्यः प्राह स ब्रह्मन् तान्दृषीन्त्वममानसः।
ज्यायान्वा कतमोऽस्माकमिति नः कथ्यतां स्फुटं॥
अथोवाच मुनिर्ब्रह्मातावुभौ क्रुद्धमानसौ।
आनय बहुधा गत्वा विबुधान् भुवनेश्वरान्॥
ततो विवाहं पश्यामि भवतां तैः समीक्ष्य च।
ततस्तौ सहितौ गत्वा ऋषीनेव समानयेत्॥
लोकपालान्महेन्द्रादीन् सयमान्वारुणानिलान्।
साध्यमारुद्गणान् विश्वान् भरद्वाजांश्च नारदान्॥

गन्धर्वान् वित्तपान् यक्षान् राक्षसान् दैत्यदानवान्।
नायातस्तत्र तिग्मांशुः सर्वे चान्ये समागताः॥
दृष्ट्वा तु विबुधान् सर्व्वान् ब्रह्मा प्रोवाच तानृषीन्।
आनयध्वमितस्तूर्णं साम्ना दण्डेन वा पुनः॥
एव मुक्त्वा गतस्तावदुतत्थः सूर्य्यमण्डलं।
स गत्वा प्राह मार्त्तण्डं शीघ्रमेह्यवसश्चिरं॥
स उत्तत्थमथोवाच कथं ब्रह्मन्व्रजाम्यहं।
एव मुक्त्वागतः सूर्य्यो भुवं मे मयि निर्गते॥
एव मुक्तो मुनिः प्रायात् स्वं स्वं देवसभागतं।
आचचक्षे च यत् प्रोक्तं भास्वता तपनंप्रति॥
उवाचाङ्गिरसं ब्रह्मा शीघ्रमेव तमानय।
सत्वयोक्तो गतस्तत्र यत्रासौ तपते रविः॥
एह्येहि भगवान् सूर्य्य उतत्थभवने पुनः।
एवमुक्तो गतः सूर्य्यो यत्र देवाः समागताः॥
स्थित्वा मुहूर्त्तं प्रोवाच किं वा कार्य्यमुपस्थितं।
पृच्छन्तमेवं मार्त्तण्डं ब्रह्मा प्रोवाच सादरं॥
गच्छ शीघ्रं न दहते भुवनं यावदङ्गिराः।
लब्धं प्रयातुं गोलोकं वर्त्तते कृष्णपिङ्गलं॥
पाटलं हरितं शोणं श्वेतोवर्षं प्रणाशितं।
शाकद्वीपं कुशद्वीपं क्रौञ्चद्वीपं सपत्तनं॥
दग्धमङ्गिरसा सर्वं भूयोऽपि प्रदहिष्यति।
यावंत दहते सर्वं भुवनं तपनाङ्गिराः॥

गच्छ तावदितः शीघ्रं स्वस्थानेन प्रभास्कर।
एवमुक्तः सविधुना स्वस्थानमधिरूढ़वान्॥
विष्टिवानङ्गिसङ्काशं सकाशं दैवतं रविः।
गत्वाङ्गिरा उवाचेदं गतं किङ्करवाण्यहं॥
विबुधाङ्गिरसं प्राहुस्तपोराशिमकल्मषं।
संप्रशस्याहुरग्नित्वं कुरु तावन्महीतले॥
पूर्वं यथाग्निः कृतवान् स्तथात्वमपि सत्तम।
यावदग्निं प्रशस्यामि क्वासौनष्टः क्व तिष्ठति॥
एवमुक्तः स दैवैस्तु अग्नित्वं कृतवांस्तदा।
दैवैर्दृष्टो यथाग्निश्च स मे सर्वं निवेदितं॥
देवकार्यं कृते तस्मिन् देवा वह्निमथाब्रुवन्।
अग्नेऽग्नित्वं कुरुष्वत्वमाङ्गिरसमकल्मषं॥
उवाच मुञ्च मत्स्थानं वचस्तोषाकरं शृणु।
अहन्ते तनयश्रेष्ठोभविष्ये प्रथमे मुने॥
बृहस्पतीतिमानाय तथा न्येवह्वः सुताः।
एव मुक्तोमुनिस्तुष्टो वह्नंश्च जनयत् सुतान्॥
वह्निं सोजनयामास पुत्रान्पौत्रां स्तदाङ्गिराः।
अवाप पुनरत्वग्नि मग्निरस्यातिथौ नृप॥
स्वपन् सर्वचतुर्दश्यां सञ्जातोहव्यवाहनः।
हव्यवाहन देवानां भूतानां ब्रह्मचारिणां॥
ते तेष्वियं तिथिस्तस्मै रुद्रेण प्रतिपादिता।
पूजनेयं तिथिर्हेतु र्मुनिभिः पार्थिवैस्तथा॥
नलसन्धातुसन्वाद्यैरन्यशानपुष्पादिभिः।

प्रिया सहस्रहन्तॄणां संग्रामेष्वेव कुत्रचित् ॥
अज्ञानतिर्य्यग्यो ये च व्यालवह्निजलाश्रयाः।
स्वापदैर्भक्षिता ये च तपनादिषु ये मृताः॥
उद्बन्धनिहता येच शूलाद्यैरविधानकैः।
तेषांशस्त्रचतुर्द्दश्यां तद्वत् स्वर्गसुखप्रदं॥
अनिष्टावैव दृशनिदानानि विविधानि च।
प्रभूतफलभोग्यानि उपतिष्ठन्ति ते नराः॥
एवं तिथिरियं राजन्नाम्नायी पठ्यते जनैः।
सैन्द्रीं केचिद्वदन्त्यन्ये रुद्रोग्निरिति पठ्यते॥
अस्यां मनोरथावाप्तिः कृतायां स्यान्नशंसयः।
अथ नक्तोपवासस्य विधानं शृणु पार्थिव।
(नक्तमेवोपवासः) येन विज्ञानमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते॥
शिवार्चनपरोभूत्वा जितक्रोधः शुचिर्नरः।
वसुधाभाजनं कृत्वा भुञ्जीयान्नक्तभोजनं॥
उपवासात्परं भैक्ष्यं भैक्ष्यात्परमयाचितं।
आयाचितात्परं नक्तं तस्मान्नक्तेन वर्त्तयेत्॥
देवैस्तु भुक्तं पूर्व्वाह्णे मध्याह्ने मुनिभिस्तथा।
अपराह्णे तु पितृभिः सन्ध्यायां गुह्यकादिभिः॥
सर्व्ववेलामतिक्रम्य नक्तभोजी तथा भवेत्।
हविष्यभोजनं स्नानमाहारस्य च लाघवं॥
अग्निकार्य्यमधः शय्यां नक्तभोजी समाचरेत्।
सन्ध्यायां मण्डलं कृत्वा शुचिना गोमयेन तु॥
दीपं दद्यात्तथार्घ्यं च पुष्पगन्धाक्षतैः फलैः।

* स्वापदैरचितायेचेति पुस्तकान्तरे पाठः।

मन्त्रेणानेन राजेन्द्र ध्यात्वा चेतसि शङ्करं ।
भूतभर्त्ता विभुर्द्देवः स्वयम्भूः सर्व्वगः शिवः ॥
समार्घ्यदानसंप्रीत स्त्रिधा पापं व्यपोहतु ।
दत्त्वार्घं ब्राह्मणं भोज्य स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ॥
एवं संवत्सरस्यान्ते व्रते पूर्णे सदक्षिणे ।
दद्याच्चामीकरं पात्रं रौप्यं वा ताम्रमेवच ॥
अशक्तौ मृण्मयं पात्रं पूर्णं गव्येन सर्पिषा ।
पूर्णकुम्भोपरि स्थाप्य श्वेतवस्त्रयुगन्तथा ॥
सौवर्णञ्च शिवं शक्त्या स्नाप्य पञ्चामृतादिना ।
वस्त्रोपरि समास्थाप्य पूजयेद्भक्तितत्परः ॥
पुष्पैर्गन्धैस्तथा धूपैः सदीपैः सहचन्दनैः ।
एवं संपूज्य विधिवदर्घ्यमष्टाङ्ग मुत्सृजेत् ॥
देवस्य पूज्यमन्त्रेण भक्तिभावेन भावितः ।
फलं पुष्पं गवां क्षीरं दधि दूर्वाङ्कुरास्तिलाः ॥
चन्दनं तण्डुलास्तोयमर्घ्यमष्टाङ्गमुच्यते ।
फलादिभिरष्टभिर्युक्तं तोयमष्टाङ्गम् ॥
शिरसा धारयित्वा तु जानुभ्यामवनीङ्गतः ।
महादेवाय दातव्यं गन्धधूपं यथाक्रमं ॥
भक्ष्योदनैर्व्वलिं दत्त्वा प्रणम्य परमेश्वरं ।
धेनुं सदक्षिणां दद्याद्वित्तशाठ्य विवर्ज्जितः ॥
श्रोत्रियाय च दातव्यं पुराणविदुषे द्विजे ।
एवं भक्त्या प्रदद्याद्यः सर्व्वमेतदुदाहृतं ॥

सर्व्वपाप विनिर्मुक्तः पुत्रपौत्रसमन्वितः।
धनधान्यसमायुक्तो जीवित्तु शरदां शतं॥
अन्तकाले शिवं स्मृत्वा शिवलोकं व्रजेन्नरः।
तत्र स्थित्वा स चत्वारि युगानि परया मुदा॥
त्रेतायां पार्थिवेन्द्रोऽसौ भूयाद्भरत सत्तम।
यस्त्वष्टमीषु च शिवासु चतुर्द्दशीषु
नक्तं समाचरति शास्त्रविधानदृष्टं।
स्वर्गाङ्गनाकुलरवाकुलिते विमाने
आरुह्य याति सुसुखेन महेशलोकं॥

इति भविष्योत्तरोक्तं चतुर्द्दशीव्रतं।

———000———

युधिष्ठिर उवाच।

अम्बुपूर्णतड़ागेषु महातोयाश्रमेषु च।
कस्याऽर्घ्यं संप्रयच्छन्ति कृष्ण ताः कुलयोषितः॥

कृष्ण उवाच।

मासि भाद्रपदे पक्षे शुक्ले भूततिथौ नृप।
तदा भक्त्या प्रदातव्यं वरुणायार्घ्यमुत्तमम्॥
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैस्त्रीभिस्तथैव च।
फलपुष्पैस्तथावस्त्रै र्दीपालक्तकचन्दनैः॥
विरूढैः सप्तधान्यैश्च दधिपिष्टाम्बुचन्दनैः।
अनग्निपाकसिद्धैस्तैस्तिलतण्डुलमिश्रितैः* ॥

* अनग्नि पाकसिद्धान्नैरिति पुस्तकान्तरे पाठः।

खर्जूरनारिकेलैश्च बीजपूर्णातुकैस्तथा*।

आतुकं फलविशेषः।

द्राक्षादाडिमपूगैश्च पुष्पैश्चापि† प्रपूजयेत्।
आलिख्य मण्डले देवं वरुणं यादसांपतिं॥
मन्त्रेणानेन राजेन्द्र पूजयेद्भक्तिभावितः।
वरुणाय नमस्तुभ्यं नमस्ते यादसांपते॥
अपांपते नमस्तुभ्यं रसानां पतये नमः।
माक्लेदं मा च दौर्गन्ध्यं वैरस्यं मा सुखेऽस्तु मे॥
वरुणोवारुणीभर्त्ता वसुदोऽस्तु सदा मम।
एवं यः पूजयेद्भक्त्या पुरुषो वरुणं नृप।
मध्याह्नेऽनग्निपाकं हि भुक्त्वा नियतमानसः।
चतुर्वर्णोऽथवा नारी व्रतेनानेन पाण्डव॥
निवेद्यं ब्राह्मणे देयं नैवेद्यञ्च प्रकल्पयेत्।
एवं यः कुरुते पार्थपालीव्रतमनुव्रतं॥
तत्क्षणात् सर्व्वपापेभ्यो मुच्यतेनात्र संशयः।
यथा समुद्रे मानं हि ज्ञायते नैव केनचित्॥
एवं हि व्रतिनाङ्गेहे धनं ज्ञातुं न शक्यते।
आयुषा यशसा कीर्त्या सौभाग्येन वलेन च॥
युज्यन्ते व्रतमाहात्म्यफलं वो नात्र संशयः।

संरुद्धशुद्धसलिलातिवलो विशाला
पालीसुपेत्य वहुभिस्तनुभिः क्रताली।

---

* बीजपूर्वारुकैस्तथेति पुस्तकान्तरे पाठः।

† च पुष्पैश्चेति क्वचित् पाठः।

ये पूजयन्ति वरुणं सहितं समुद्रे
तेषां गृहे भवति भूतिरनर्घगाधा॥

इति भविष्योत्तरोक्तं पालीचतुर्दशीव्रतं।

———०३०———

कृष्ण उवाच।

अस्मिन्नेव दिने पार्थ शृणु ब्रह्म सभातले।
देवलेन पुरा गीतं देवर्षिगणसन्निधौ॥
कृपया परया पार्थ कलाव्रतमनुत्तमं।
तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि लोकानुग्रहकारकं॥
नाकपृष्ठे पुरा देवैर्गन्धर्व्वैर्यक्षकिन्नरैः।
अप्सरोऽमर कन्याभिर्नागकन्याभिरर्चिताः॥
संसारासारतां ज्ञात्वा कदलीनन्दने स्थिताः।
शुक्ले पक्षे चतुर्दश्यां मासि भाद्रपदे नृप॥
देयमर्घ्यं वरस्त्रीभिः फलैर्नानाविधैस्तथा।
विरूढैः सप्तधान्यैश्च दीपालक्तकचन्दनैः॥
दधिदूर्वाक्षतैर्वस्त्रनैवेद्यैर्घृतपाचितैः।
जातीफलैः पूगफलैर्लवङ्गकदलीफलैः॥
तस्मिन्नहनि दातव्यं स्त्रीभीरम्याभिरर्घ्यकं।
मन्त्रेणानेन चैवार्घ्यं तच्छृणुष्व नराधिप॥
चिन्तेत्वां कदलीनित्यं कदली कामदायिनी।
शरीरारोग्यलावण्यं देहि देवि नमोस्तुते॥
इत्थं यः पूजयेद्रम्भां पुरुषो भक्तिमान्नृप।

नारी वानग्निपाकाना वर्णास्य चतुरोपि वा॥
तस्मिन्कुले न हि भवेत् काचिन्नारी कुलाटनी।
दुर्गता दुर्भगा व्यङ्गा स्वैरिणी पापचारिणी॥
विलासनी वा वृषली पुनर्भूःपुनरेव सा।
गणिका फेरवारावा च्छलकर्म्मकरी खला॥
भर्तृव्रताच्च चलिता न कदाचित् प्रजायते।
भवेत्सौभाग्यसौख्याढ्या पुत्रपौत्रश्रियावृता॥
आयुष्मती कीर्त्तिमती जीवेद्वर्षशतं भुवि।
एतद्व्रतं पुराचीर्णं गायत्र्या स्वर्गसंस्थया॥
तथा गौर्य्या च कैलासे पौलोम्या नन्दने वने।
श्वेतद्वीपे तथा लक्ष्म्या राधया भुविमण्डले॥
अरुन्धत्या दारुवने स्वाहया मेरुपर्व्वते।
सीतया चित्रकूटे च वेदवत्या हिमालये॥
भानुमत्या कृतं पार्थ नगरे नगराह्वये।
श्रेष्ठव्रतमिदं भद्र भद्रं भाद्रपदे सति॥
यत्करोति न सा दुःखैः कदाचिदभिभूयते॥

उद्भिन्नकन्दलदलां कदलीं मनोज्ञां
ये पूजयन्ति कुसुमाक्षतधूपदीपैः।
तेषां गृहेषु न भवन्ति कदाचिदेव
नार्य्योह्यनार्य्यचरिता विधवा विरूपाः॥

इति भविष्योत्तरोक्तं कदली व्रतं।

———000———

युधिष्ठिर उवाच।

लोकप्रसिद्धाः श्रूयन्ते श्रावण्यो नाम देवताः।
का एताः किन्नु कुर्वीत धर्म्मन्तासां ब्रवीहि मे॥

कृष्ण उवाच।

विद्यन्ते देवताः पुण्याः श्रावण्यो नाम पाण्डव।
ब्रह्मणा प्रथमं सृष्टा नियोगश्च जने कृतः॥
योयद्वदति लोकोऽत्र शुभम्बाप्यथवाशुभं।
प्रापयन्ति च ताः शीघ्रं ब्रह्मणः कर्णगोचरं॥
अतश्च लोके पूज्यास्ता नियमेन प्रजापतेः।
दूराच्छ्रवणविज्ञानं दूराद्दर्शनगोचरं॥
तासामस्तीतियत्पार्थ अचिन्त्यतर्कहेवभिः।
नरैस्तुष्टैश्च पुष्टैश्च श्रोतव्यं कार्य्यकारणात्॥
तं श्रावयन्ति धात्रे स्याच्छ्रावण्यस्तेन ताः स्मृताः।
यथा देवा यथादैत्या यथा विद्याधरा नराः॥
यथेह सिद्धगन्धर्व्वा नागाः किंपुरुषाः खगाः।
राक्षसाश्च पिशाचाश्च देवानामष्टयोनयः॥
तथैताः पुण्यकर्तृत्वादिन्द्राद्याः श्रावणिकाः स्मृताः।
तासामुद्दिश्य कर्त्तव्यं व्रतं नारीनरैः सह॥
किन्तु तासां महोग्रे तु व्रतसंयमनं सदा।
आघ्राय धूपं पक्वान्नं जलं वा गन्धमेव च॥
दातव्यं पुनरन्यासां नारीणां भोज्यपारणे।
अन्यव्रतपारणे भुक्तं चेत्स्वयमपि तद्व्रतं

कर्त्तव्यं नोचेद्वक्ष्यमाणदोष इति मह्योग्रत्वात् ॥
अदत्त्वा यदि मृत्युः स्यादन्तकालेऽपि पाण्डव ॥
तदा गलग्रहग्रस्तास्यामुखाः स्युर्घर्घरस्वनाः ।
सफेनरुधिरोद्गारा म्रियन्तेऽतीव दुःखिताः ।
श्रूयते तु पुरा पार्थ पृथिव्या मनवो नृपः ॥
तस्य भार्य्या महादेवी जयश्रीर्नाम भारत ।
सर्वाङ्गरूपसम्पन्ना सर्व्वैः समुदिता गुणैः ॥
भर्तृशुश्रूषणपरा भर्त्तुश्चातीव वल्लभा ।
सा कदाचिद्गता स्नातुं गङ्गाया आश्रमे मुनेः ॥
वशिष्ठस्य ददर्शाथ साध्वीं भार्यामरुन्धतीं ।
भोजयन्ती मुनीनान्तुपत्नीनां नानाभोजनैः ॥
तथा च प्रणिपत्याथ पृष्ठा देव्या महासती* ।
पूज्यते भगवति ब्रूहि किमेतद्व्रतमुच्यते ॥
ममापि कुरु कल्याणि करुणां त्वं महासति ।

अरुन्धत्युवाच ।

शृणु भद्रे प्रवक्ष्यामि नाम्ना श्रावणिकं व्रतं ।
एतद्भर्त्रा समाख्यातं वसिष्टेन महात्मना ॥
गुह्यं धर्म्मस्य सर्वस्व पतिव्रतकरं शुभं ।
गच्छ वा तिष्ट वा राज्ञि तवातिथ्यं करोम्यहं ॥
एवमुक्ता जयश्रीस्तु भोज्य तस्मिन्यदृच्छया ।
बुभोजातिप्रियं पार्थ मुनि पत्न्याकृतादरात् ॥
भुक्ताचम्य जगामाशु स्वपुरं परमेश्वरी ।

* सभानघ इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

कालेन विस्मृतं तस्यास्तद्व्रतन्तु सभोजनं॥
ततः सा समये पूर्णे म्रियमाणा महासती।
जयश्री घर्घराराव कुर्व्वाणा कण्ठगद्गदं॥
फेनं लालाविलं वक्त्रादुद्गिरन्ती मुहुर्मुहुः।
स्थिता पञ्चदशाहानि बीभत्सादारुणानना:॥
ततः षोडशमे प्राप्ते श्रुत्वा चेष्टामरुन्धती।
प्रविश्याभ्यन्तरन्तूर्णं तां राज्ञीमवलोक्य च॥
नहुषाय समाचष्टे यद्भुक्तं श्रावणीव्रते।
तच्छ्रुत्वा नहुषो राजा व्रतं भोज्यं चकार वै*॥
यथोक्तं तदरुन्धत्या पुष्कलं यावदीप्सितं।
दत्ताश्च करका अष्टौ उद्दिश्य च जयश्रियं॥
क्षणाज्जगाम पञ्चत्वं मुक्ताजायां† जनाधिप।
जगाम शक्रलोकं सा विमानेनार्कवर्चसा॥
दोधूयमाना चमरैस्तूयमाना सुरासुरैः।

युधिष्ठिर उवाच।

किं तत्र देव कर्त्तव्यं पुरुषैः पुरुषोत्तम।
सुविस्तरं मम ब्रूहि स्त्रीभिर्वा श्रावणीव्रतं॥

कृष्ण उवाच॥

मार्गशीर्षेऽमलेपक्षे चतुर्द्दश्यां नराधिप।
अष्टम्याञ्च नरः स्नात्वा मध्याह्ने विमले जले॥

---

* राजाद्भूतं नोद्यं चकारवै इति पुस्तकान्तरे पाठः।

† मायजनाधिप इति पाठान्तरम्।

आमन्त्रयेच्च गौरिण्यः शक्त्याष्टौ चाथापि वा ।
सदाचाराः सगोत्रिण्यो ब्राह्मण्यो वा स्वशक्तितः ॥
एकैकं ब्राह्मणं तत्र वेदवेदाङ्गपारगं ।
मन्त्रज्ञमितिहासज्ञं शुचिं शान्तं जितेन्द्रियं ॥
अर्घ्यं दत्त्वा विधानेन पादक्षालनपूर्व्वकं ॥
चन्दनेन सुगन्धेन पुष्पधूपादिभिस्तथा ।
श्रीवासूत्रकसिन्दूरकुङ्कुमाद्यैर्विभूषयेत् ॥
ततो दद्यात् सुपक्वान्नं भक्ष्यभोज्यमनुत्तमं ।
तासामग्रेषु दातव्या वर्द्धन्यो द्वादशैव तु ॥

वर्द्धनी वारिधानी ।

अच्छिद्रा जलपूर्णास्तु सुव्यक्ताः सूत्रवेष्टिताः ॥
सौमालकैस्तु सञ्छन्नाः पुष्पमालाविभूषिताः ।
चन्दनेन समालब्धाः सहिरण्याः पृथक् पृथक् ॥
तन्मध्ये वर्द्धनीमेकां स्वके शीर्षे निधापयेत् ।
स्थित्वा मण्डलके पार्थ यजमानः स्वयं तदा ॥
इममुच्चारयेन्मन्त्रं ध्यात्वा मनसि केशवं ।
यद्बाल्ये यच्च कौमारे वार्द्धके वापि यत्कृतं ॥
ऋणं मे तत्समं यातु पितृदेवमनुष्यजं ।
अयं मे समयः पूर्णस्तारयस्व भवार्णवात् ॥
अनृणोगन्तु मिच्छामि विष्णोः पदमनामयं ।
एवमस्त्विति ता ब्रूयुः स्त्रियः सर्वा युधिष्ठिर ॥
ततो ब्राह्मणमाहूय यजमान इदं वदेत् ।

ब्रूहि ब्राह्मण मन्त्रन्त्वं मुने येनाच्चयं व्रजेत् ॥
ततस्तां शीर्षे संस्थातुं वर्द्धनीं पाण्डुनन्दन।
उच्चारयीत यत्नेन मन्त्रेणानेन सद्विजः॥
अमुष्याः शिरसोदेव्याः सुमूर्त्ता इह मेऽत्तणं।
कटुकं निस्सृत्त्वम्बा ततोमधुकमातुहं॥
ततो गच्छ महादेवं श्राव्यं श्रावणिके शुभे।
एवमुच्चार्यतां विप्रो वचनं शिरसातदा॥
तावद्वर्द्धनिकान्तस्मै विप्राय प्रतिपादयेत्।
इति ताः समयं कृत्वा दत्त्वाशीर्षवनानि च ॥
समय एकवाक्यता।
गृहीत्वा करका नार्य्यो व्रजेयुः स्वं निकेतनं॥
गृहीत्वाकरकं भुक्त्वा समये या प्रयच्छति।
स्वगृहे पार्थिव श्रेष्ठ श्रावणीव्रतमादरात् ॥
तस्याः काले तु संप्राप्ते सुखे मृत्युः प्रजायते।
धनधान्यसमायुक्ता पुत्रपौत्रैरलङ्कृता॥
भर्तृशुश्रूषणपरा आधिव्याधिविवर्जिताः।
सौभाग्यातुलसंयुक्ता जीवेद्वर्षशतं सती॥
अन्तकाले हरिं स्मृत्वा प्रयाति हरिमन्दिरं।
* जाता जाता तु मर्त्येषु गौर्य्याः सा वल्लभा भवेत्॥
पुरुषोऽपि व्रतं चीर्त्वा विधिनानेन पाण्डव।
पुम्भिस्तु समयं कृत्वा फलमेतदवाप्नुयात्॥
भक्त्या शृण्वन्ति ये लोका पठ्यमानमिदं व्रतं।

* जातानुमर्त्त्येभर्त्तः; सा कृत्वा सा वल्लभा भावदिति पाठान्तरं।

सर्व्वपापविनिर्मुक्ताः स्वर्गं यास्यन्त्यसंशयं ॥
उद्दिश्यदेव पितृसिद्धगणान् श्रवण्यो
नार्य्योनवं हि जनितं स गुडाज्यमन्नं ।
या भोजयन्ति करकांश्च जलान्नयुक्तान् ।
यच्छन्ति ता भुवि विहृत्य सुखं श्रियन्ते ॥

इति भविष्योत्तरोक्तं श्रावणिका व्रतं।

---

अगस्त्य उवाच।

अनिष्ट्वा योऽश्वमेधादीन्न तप्तापि महत्तपः।
अदत्त्वा ब्राह्मणेभ्यश्च हेमं विद्याञ्चलो भवान् ॥
अस्नात्वाखिलतीर्थेषु अनधीत्याखिलाश्रुतीः।
अनभ्यस्यात्मयोगञ्च कथमिष्टां गतिं व्रजेत् ॥
सर्व्वकामाप्तये किञ्चिदिहलोके परत्र च।
कथं स्याच्छिवलोकश्च पुनरावृत्तिदुर्लभः ॥
ब्रह्महत्यादिपापौघैर्व्वहुजन्मकृतैरपि ॥
कथं क्षणाद्विमुच्येत तन्मे कथय षण्मुख।
अकृत्वापि शिवस्यार्चां पुराणोक्तैः सुविस्तरैः ॥
अल्पायासेन यस्तुष्टः शिवो देवश्च तद्वद।

स्कन्द उवाच।

चीर्णे व्रते महाराजे सर्व्वमेतदवाप्यते।
मुनेस्वर्गापवर्गाद्यं सद्यः शङ्करतुष्टिदं ॥
चतुर्दशीकुम्भजातशिवनक्षत्रसंयुता।
कुम्भजातेत्यगस्त्यस्य सम्बोधनं। शिवनक्षत्रमार्द्रा।

यावाभाद्रपदा युग्मस्यैकेन सहिताधुना।

पूर्व्वाभाद्रपदोत्तरा भाद्रपदयोर्युग्मस्य मध्य एकेन यायुक्ता भवति सावा इत्यर्थः।

तस्यांहि त्रिपुरं रुद्रो जितवानन्धकन्तथा।
क्षपयामास दृक्षञ्च चक्रे दर्पवियुक्तकं॥
जयदानादसौतस्मात्तिथिः शङ्करतुष्टिदा॥
तस्याङ्गौरी वरं लेभे तस्मादेव वरा शुभा।
तस्यां जातश्च नकुलो नाम देवः स्वयं शिवः॥
तस्मादतिशिवप्रीत्यै व्रतं तस्यां कृतं भवेत्।
ददाति देवी राज्यञ्च विमुक्तिञ्चात्र शङ्करः॥
महाराजव्रतानाञ्च शिवस्यैव तु तोषकृत्।
व्रतान्येतानि सर्वाणि बहूनि कृतवान्नरः॥
अश्वमेधसहस्रैस्तु राजसूयशतैरपि।
नानाव्रतैस्तथाचीर्णैर्योगाभ्यासैस्तथोत्तमैः॥
फलं व्रतेन चीर्णेन महाराजेन नो समं।
विप्रेभ्यः शुभपात्रेभ्यः कपिलानां सतार्वुदं॥
यो दद्याद्य इदं कुर्य्यात्तयोरेतत्करोवरः।
सकृदभ्यर्च्च तेशम्भोः कल्पकोटिशतैरपि॥
पूजितस्याहमिति च हरि राह: स्वयं वचः।
जन्मकोटिशतैर्यन्न भवेत् पुण्यमनुष्ठितं॥
तच्च व्रतं महाराज अविघ्नं कर्त्तुमर्हसि।

अगस्त्य उवाच।

व्रतराजस्य माहात्म्यं श्रुतन्त्वत्तोमया गुह।

अधुनाश्रोतुकामोहं विधिं तस्येप्सितप्रदं॥

स्कन्द उवाच।

यदागस्त्यचतुर्दश्यामार्द्रा भाद्रपदाथवा।
शितायामसितायां वा न विशेषो यथा गवि॥
तदा लब्ध्वैकभूर्भूत्वा त्रयोदश्यां यथाविधि।
सर्व्वव्रत* महाराज तदा संकल्पयेन्नरः॥
चतुर्दश्यां ततः कुर्यात्तिलगोमूत्रगोमयैः।
मृदाथ पञ्चगव्येन स्नानं शुद्धाम्बुना ततः॥
शिवसंकल्पमन्त्रस्य ततो दशशतं पठेत्।

शिव संकल्प मन्त्रोयज्जाग्रतो
दूरमित्यादिर्यजुःशाखाप्रसिद्धः।

षडक्षरस्तु शूद्रस्य जन्मकोटि कृतैस्ततः।

षडक्षरस्तुनमः शिवायेति।

मुच्यते पातकैः सर्वैस्तत्कृत्वा नात्र संशयः।
गृहे पञ्चामृतैः शम्भुं स्नापयेदुमयासह॥
पञ्चगव्येक्षुनिर्यासगन्धतोयैस्तथौषधैः।
पुष्करे कपिलाधेनूकोटिदानफलं लभेत्॥

गोरोचना चन्दन कुङ्कुमैला
कर्पूर कृष्णागुरुदेव काष्ठैः।
कस्तूरिकाद्यैरनुलिप्य शम्भुं
प्राप्नोति पुण्यं हयमेधकाद्यं॥
श्रीपञ्चकैः कुशशमीमरिचैस्तुलस्या

---

* सर्व्व व्रतेतु सुमहानिति पुस्तकान्तरे पाठः।

शेफालिकाभिरतिमुक्तकमल्लिकाभिः।
श्रोमालतीकुमुदकैः शतपत्रभृङ्गै
र्मासोऽपवासशतकोटि फलाय पूजा॥
श्रीविल्वः पद्मिनी। भृङ्गामार्कवः।
पञ्चाङ्ग धूपमथवा विहितं दशाङ्गं
दद्याद्घृताक्तगुड़ गुग्गुलमीश्वराग्रे॥
सर्वामिमां वसुमतीन्धनधान्यपूर्णां
दत्त्वाफलं भवतियत्तदवाप्यमाशु।
सुगन्धतैलोज्ज्वलदीपमालां
गवाज्यजातानथवा प्रदीपान्॥
दत्वाशिषोवाथ कुमारिकाणां
कोटिप्रदानस्य फलं लभेत।
चैरेयवटकासारमोदकाशोक वर्त्तिभिः।
निवेदितैः कुरुक्षेत्रे हैमदानस्य पुण्यभाक्॥
प्राग्ग्रीवमूर्द्धरोमाथ न्यसेत् कृष्णाजिने व्रती।
महेश्वरस्य पुरतः इतिशेषः।
राशिंशिलाकृतं तत्र कुर्यादाटकमानतः।
न्यूनन्तु प्रस्थयुग्मेन दरिद्रप्रस्थ मानतः॥
शुभं दारुमयं पीठं विस्तीर्णमुपरि न्यसेत्।
कुङ्कुमोद्वर्त्तनस्नानं न्यसेत्तत्रोपरि द्विकं* ॥
द्विकं उमामहेश्वराख्यं।
सितवस्त्रेण संवेष्ट्य तं कुर्यात्सुस्थिरं ततः।

---

* द्विपमिति पुस्तकान्तरे पाठः द्विपंचस्थिनं।

तं द्विपं ।

उत्तरेण ततोन्यत्तु सितवस्त्रावृतं न्यसेत् ॥

अन्यद्वितीयं द्विपं ।

अथोद्वारस्ततो मध्ये त्रिशूलं परशुं धनुः ।
असिङ्कपालं खट्टाङ्गं गङ्गां सोमं महावृषं ॥
हेमान्येतानि संस्थाप्य हैमङ्गोमिथुनं तथा ।

अनन्तरं गजयोर्म्मध्ये द्वारं न्यसेत् ततो द्वार गजमहेश्वराणां मध्ये त्रिशूलं परशुं धनुरादीनिन्यसेत् ।

गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपैर्दीपैर्वस्त्रैर्निवेदनैः ।
स्नेहपक्वैर्भक्ष्यभोज्यैःफलैश्चित्रैश्च पूजयेत् ॥
अध्यापयित्वा विप्राणां कोटिं वेदचतुष्टयं ।
दत्त्वा सर्व्वपुराणानि यत्फलं तत्फलं लभेत् ॥
एकामृचं यजुश्चैकं सामैकञ्चाप्यथार्वणीः ।
सकृज्जप्त्वा चतुर्वेदं परायणशतं लभेत् ॥

प्रदक्षिणीकृत्य मुनेश्चदण्डव
त्प्रणम्यदेवं दशकृत्व ईश्वरं ।
विमुक्तिमाप्नोतिनिकाममानः
सकाममाप्नोति यथार्थितं व्रती ॥

बिल्वपत्रसहस्रन्तु शिवसंकल्पमुच्चरन् ।
त्र्यम्बकं वा जपन् मन्त्र इति वाहोमये त्ततः ॥
सर्व्वं तीर्थेषु यः स्नातः सर्व्वयज्ञेषु सर्वदा ।
सर्वं व्रत कृदाप्नोति यत्फलं तत्फलं लभेत् ॥

अथ दद्याच्छिवस्यार्घं रगन्धपुष्पाक्षतैः सितैः।
सवज्रमणि माणिक्यै र्मुक्तामरकतैः सह ॥
रत्नहेमरजतादिभाजने
कांस्यताम्रमयभाजने तथा।
आहतार्घ्यमवनीस्थजानुको
भाजने द्विजललाटगेंजली ॥
शिवाय शान्ताय समस्त हे तवे
नमोस्तु ते सर्वगसर्ववेदिने।
अनन्तसर्वेश्वरसर्वदायिने।
नमोस्तु सर्वार्चितवाममूर्त्तये
मन्त्रे णानेन दत्त्वार्घं कुरुक्षेत्रविग्रहे।
गोभूहेमादिकं दत्त्वा यत्फलं लभते व्रती ॥
मोक्षोपिसुलभस्तस्य देव राज्येषु का कथा।
तथा व्रते महाराजे महेशायार्घ मुत्तमं*।
नयेन्निशाशेषमशेषशर्वरी
प्रजागरं स्तैस्तवकीर्त्तनादिभिः।
भवेत्पुमांसो न नरकारादिकारणं
हे कृष्ण नाकार्यफलं महात्मनां ॥
दिवा वानिशि वा या च दृष्ट् क्षुधातत् समागमः।
कृष्णाजिनादिकं तावत् सर्वं मन्त्रेण कल्पयेत् ॥
सर्वोपस्करयुक्ताश्च कपिला दश पञ्च वा।
द्वा तथैकां शुभांधेनुं मन्त्रे णैव प्रकल्पयेत् ॥

* यावन्निश्यर्च समागम इति पुस्तकान्तरे पाठः।

प्रीयतां मम शिवः सनातनः
कल्मषच्चय करोमहेश्वरः ।
तोषितोव्रतमहाराज्ञो
भुक्तिमुक्ति फलदोस्तु मे सदा ॥
ततः प्रभाते पुनराशितोव्रतो
द्विजायदद्याद्विधिदेशिकाय ।
मुनीन्द्रकृष्णाजिनपीठपूर्वकं
प्रदान मन्त्रेण कृताञ्जलिस्थितः ॥
प्रसीद सर्व्वेश्वर मामुमापते
समुद्धरास्माद्भववारिधेर्नतं ।
सदाव्रताधिराजेन मयासि सत्कृत
स्त्वासीति तारं शरणागतोस्म्यहं ॥
इति शमोच्यमनमस्कृति पूर्वकं
गुरुवरो यथोक्तमिदन्दत् ।
शिव लयम्विदधाति स शाश्वती
नपुनरेति घटोद्भवसन्निधिं ॥
पञ्चगव्यन्ततः प्राश्य व्रती तूष्णी कृताशनः ।
सर्वं विघ्नानि विच्छिद्य प्राप्नोति परमं पदं ॥

स्कन्द उवाच ।

अत्रापि श्रूयतेगस्त्य विश्वदेवोद्विजोत्तमः ।
क्रीड़ाविनोदपरमं उमाया देवसंसदं ॥
रविब्रह्मादयो देवा निर्जितास्तेन तेजसा ।

तेभिभूतप्रभासा च भीता ब्रह्माणमाययुः॥

ब्रह्मोवाच।

पुराव्रतं महाराजं चक्रे चैव पितामहः।
मुद्गलक्रियमाणन्तद्धिष्वादेवोयमैच्छत॥
तत्प्रसादात् प्रभावोयं सदा च्चिपति विप्रराट्।
त्रिलोकात् स्खलितास्त्वस्य सर्वसल्लोकपूर्वकाः॥
दृष्ट्वा व्रतं महाराजं भवद्भोभ्यधिकः प्रभः।
यथा व्रतं महाराज मत्तः कुरुत देवताः॥
यस्तु स्वयं व्रतं चक्रे मुद्गलोस्याः पितामहः।
स मोक्षं दुर्लभं लेभे मुद्गलो न पुनर्भवः॥
अहं चैतद्व्रतं चीर्त्वा विश्वकारित्वमाप्नुयात्।
लोकस्तथापि व्यामोहं वित्तशाठ्यस्य कारणात्॥
स्कन्दोऽपि पितरं सम्भूं लेभे कृत्वा त्विदं व्रतं।
अरूपां प्रियां प्राप्नोतिवित्तशाठस्य कारणात्।
सुरराज्यमपि प्राप्तः शक्रोमुषाद्वृते श्रियं॥
भ्रष्टराज्यो भवेद्भूयो वित्तशाठेकृतेसति।
श्रीपतित्वं हरिर्लेभे भानुर्लेभे परं शुभं॥
कृत्वा व्रतं महाराजमुमाचापि पतिं शिवं।

स्कन्द उवाच।

श्रुत्वैतद्व्रतमाहात्म्यं प्रापुर्वशाश्वतीं श्रियं।
दृष्ट्वा व्रतं महाराजं व्रतं चक्रुः सुरासुराः॥
पठति य इदमित्थं यः शृणोतीच्छते वा

क्षयित सकल पापस्तत्क्षणाद्दा कमेति ।
सुरवरजनपूज्यः प्रेरको यस्य पुंसो
जगति कलुषहीनः सोपि यो लेखकस्य ॥

इति स्कन्दोपुराणोक्तं महाराज व्रतं ।

———000———

कार्त्तिकस्याशिते पक्षे चतुर्दश्यां नराधिप ।
सोपवासः पञ्चगव्यं पिवन्नार्द्रो जितेन्द्रियः ॥
कपिलायास्तु गोमूत्रं कृष्णाया गोमयं तथा ।
श्वेतधेनोस्तथाक्षीरं रक्तायाश्च ततो दधि ॥
गृहीत्वा कर्बुरायाश्च घृतमेकत्र मेलयेत् ।
वेदोक्तमन्त्रै राजेन्द्र कुशोदकसमन्वितं ।
ततः प्रभातसमये स्नात्वा सन्तर्प्य देवतां ।
ब्राह्मणांस्तोषयित्वा तु भुञ्जीयात् वाग्यतः शुचिः ॥
शृणु ब्रह्मन् व्रतंह्येतत् सर्व्वपाप प्रणाशनं ।
यच्च बाल्ये पिकौमारे वार्द्धके चापि यत्कृतं ॥
ब्रह्म कूर्च्चोप वासेन तत् पापं नश्यति क्षणात् ॥

इति भविष्योत्तरोक्तं ब्रह्मकूर्च्च व्रतं ।

———

चतुर्दश्यान्तु नक्ताशी समान्ते गोयुगप्रदः ।
स शैवं पदमाप्नोति यजन्त्रैयम्बकं व्रतं ॥

इति पद्मपुराणोक्त त्रैयम्बक व्रतं ।

———

ईश्वरस्य चतुर्द्दश्यां सर्व्वैश्वर्य्यं समन्वितः।
बहुपुत्रो बहुधनस्तथास्यान्नात्रसंशयः॥
मूलमन्त्रस्त्वसंज्ञाभिरङ्गमन्त्राश्च कीर्त्तिताः।
पूर्ववत्पद्मपत्रस्थः कर्त्तव्यश्च तिथीश्वरः॥
गन्धपुष्पोपहारैश्च यथाशक्ति विधीयते।
पूजाशाठ्येन शठ्येन कृतापि तु फलप्रदा॥
आज्यधारासमिद्भिश्च दधिक्षीराज्ञमाक्षिकैः।
पूर्वोक्तफलदो होमः कृतः शान्तेन चेतसा।
एतद्व्रतं वैश्वानर प्रतिपद्व्रतवद्दशाख्येयं॥

## इति श्री भविष्यत्पुराणोक्तमीश्वर व्रतं।

———000———

चैत्रशुक्ल चतुर्द्दश्यां यथावत्पूजयेच्छिवं।
प्रासाद शोभां कृत्वैवं सम्यक् संमार्जनादिभिः॥
संस्नाप्य विधिवद्देवं क्षीराद्यैश्वरसादिभिः।
श्रीखण्डागरुकपूरकुङ्कुमैश्चानु लेपयेत्॥
ततो दमनकैर्विल्वैः पत्रैर्मरुवकोद्भवैः*।
†आलिङ्गपीठपर्य्यन्तं पूजयेद्ग्रन्थिलैस्तथा॥
नमेरुं देवदारुं वा श्रीफलान्यथसिह्लकं।
अगरुं महिषाख्यं वा ध्वजं वा निर्द्दहेत्ततः॥

---

* मरुवकैः शुभैरिति पुस्तकान्तरे पाठः।
† आलिङ्गयेत पर्यङ्के इति पाठान्तरं।

न मेरु फलं।

शालिपिष्ट भवैर्द्दीपैः पञ्चभिर्नवभिस्तथा।
कुर्य्यादारात्रिकं शम्भोः स्वर्णपात्रैः* समुज्वलैः॥
विचित्र वस्त्र पूजा च कर्त्तव्या महती शिवे।
पुष्पमण्डलिकां चित्रां स वितानोज्वलं शुभं॥
महोत्सवेन विधिवद्देयं तूर्य्यरवेण च।
विविधैर्भक्ष्यभोज्यैश्च नैवेद्यञ्चोपकल्पयेत्॥
सम्यक् सम्पादनीया स्यात् रथयात्रा पिनाकिनः।
प्रेक्षणीयैस्तथा नृत्यै र्वाद्यैर्गीतैश्च शोभनैः॥
पूजयेच्छिव भक्तांश्च विप्रानन्यांश्च भक्तितः।
प्रीयतांशिव इत्युक्ता नक्तं भुञ्जीत च स्वयं॥
वर्षेवर्षेप्रकर्त्तव्य एतच्चैवोत्सवंमहत्।
शिवभक्तैस्तथा न्यैश्च कीर्त्ति श्रेयोविवृद्धये॥

इति स्कन्दपुराणोक्तं महोत्सव व्रतं।

---

अथान्यं संप्रवक्ष्यामि पावनं धर्म्ममुत्तमं।
मोक्षदञ्च तथाक्लेशादिहमगदमेवच॥
आदायकलशान् गौरान् शतं शतार्द्धमेवच।
तस्याप्यर्द्धन्तदर्द्धं वा भूषयं श्च स मानवः॥
कार्त्तिके शुभ्रभूतायां हरं स्नाप्य घृतादिभिः।
शुभ्र भूतायां शुक्ला चतुर्द्दश्यां।

* कांस्यपात्रैरिति पुस्तकान्तरे पाठः।

समालभ्य न्यसेद्भूयः सौवर्णं वा प्रपञ्चकं।
सुरभीभिस्ततः पुष्पैरभ्यर्च्य गुग्गुलं दहेत् ॥
नैवेद्यञ्च पुनर्दत्त्वा वलिं वाह्ये विनिक्षिपेत् ॥
वितानं दीपमादर्श* वस्त्रयुग्मं ध्वजास्तथा।
धूपोत्क्षेपञ्च घण्टाञ्च दत्त्वा देवाय सम्भवे ॥
प्रदक्षिणं ततः कुर्य्याद्दण्डवद्भैरवस्य हि।
दक्षिणे चोदगग्रे वा पश्चिमे वाथ सर्वतः ॥
उपलिप्य शुभे देशे सोदकैरर्चयेत्ततः।
चन्दनेनाक्षतैः पुष्पैः स्थानं पाठांस्थापयेद्बुधः।
भूत्वास्तसुमुखो रत्नान्यपि तेषु निवेदयेत् ॥
सुसुगन्धाक्षतैः पूर्णान् हिरण्यांश्चैव सर्वशः।
दीपान् प्रज्वालयेत्तत्र विचिन्त्य हृदि शङ्करं ॥
ततस्तस्योपरिष्टाच्च जागरं परिकल्पयेत्।
भूयः सूर्य्योदये स्नात्वा स्नपनं कुशुमादिकं ॥
निवेद्य देवदेवाय गृहगस्तद्धरिं स्मरन्।
गत्वा गृहं समभ्यर्च्य पञ्च गव्यं पिबेत्ततः ॥
व्रतिभिर्ब्राह्मणैः सार्द्धं तुष्टो भुञ्जीत वाग्यतः।
ततस्तान्दक्षयित्वा तु सर्व्ववित्तानुसारतः ॥
प्रणम्य च पुनर्भुक्त्वाक्षमाप्य च विसर्जयेत्।
विधिनानेन यस्त्वब्दान्द्वादशोपवसन्नरः ॥
देवभोगान् सुभुक्त्वावै परन्धाम प्रयाति सः।
क◌ोत्यानिधनं यस्तु एतद्भाव पुरःसरं।

* श्मश्रेमितिपुस्तकान्तरे पाठः।

प्राप्य ज्ञानं प्रयाणान्ते गमिष्यत्यक्षयं पदं ॥

इति कालिका पुराणोक्तं चतुर्दशीजागरणव्रतं ।

———000———

व्यास उवाच ।

उपोषितश्चतुर्दश्यां कृष्णपक्षे समाहितः ।
यमाय धर्मराजाय मृत्यवेचान्तकाय च ॥
वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ।
प्रत्येकं तिलसंयुक्तान् दद्यात्सप्तोदकाञ्जलीन् ॥
स्नात्वा नद्यान्तु पूर्वाह्णे मुच्यते सर्वपातकैः ।

इति कूर्मपुराणोक्तं यमव्रतं ।

या कार्त्तिकस्य मासस्य कृष्णपक्षे चतुर्दशी ।
तस्यां स्नात्वा यमं तर्प्य न पश्यन्ति यमं क्वचित् ॥
प्रतिगृह्य तिलान् कृष्णान्दीपन्तैलसमन्वितं ।
दत्त्वा दानं दक्षिणा शान्ता निरीक्ष्य च सर्वतः ॥
अपसव्यं तिलैः कृष्णैः सूर्पणोयो पमो भवेत् ।
यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च ॥
वैरस्वताय कालाय दक्षाय मनवे तथा ।
कृष्णाय कृष्णगुप्ताय प्रेतप्रेताधिपायच ॥
चित्राय चित्रगुप्ताय दापयेच्च जलाञ्जलिं ।
सहिरण्यं ततः पात्रं पूरयित्वा तिलैर्द्विजः ॥
द्विजाय दद्याद्यो व्यास न शोचेन्मरणम्मति ।

इति स्कन्दमहाकालखण्डोक्तं यमव्रतं ।

———000———

मार्कण्डेय उवाच।

शुक्लपक्षाद्यथारभ्य फाल्गुनस्य नराधिप।
पूजयेत्तु चतुर्दश्यां सोपवासो महेश्वरं।
गन्धमाल्य नमस्कार दीप धूपान्न संपदा॥
व्रतान्ते गां तथा दत्त्वा वह्निष्टोमफलं लभेत्।
एतदेव व्रतं कृत्वा शुक्लपक्षे तु वत्सरं।
पौण्डरीकमवाप्नोति कुलमुद्धरति स्वकं॥
चतुर्दशी ह्ययश्चैतत्कृत्वा संवत्सरं नरः।
मासि मासि तथा भक्त्या सर्वान् कामानवाप्नुते॥
आसाद्य कामान्महेश्वरस्य तलाप्यकालं सुचिरञ्चराजन्।
सा युज्यमायाति महेश्वरस्य सर्वेश्वरस्या प्रतिमस्यतस्य॥

इति विष्णुधर्मोक्तं महेश्वरव्रतं।

———000@000———

मार्कण्डेय उवाच।

शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां ज्यैष्टादारभ्य यादव।
वायुं संपूजयेद्देवं सोपवासो जितेन्द्रियः॥
गन्धमाल्यनमस्कारदीपधूपान्नसम्पदा।
सम्वत्सरान्ते दातव्यं वस्त्रयुग्मं द्विजातये॥
कृत्वा व्रतं वत्सरमेतदिष्टमासाद्य लोकं सुचिरं मनुष्यः।
सुखानि भुक्त्वा सुचिरं महीपो मानुष्यमासाद्यभवत्पुरोगः॥

इति विष्णुधर्मोक्तं वायुव्रतं।

———

मार्कण्डेय उवाच।

शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां विरूपाक्षन्तु पूजयेत्।
पौषमासादथारभ्य यावत् सम्वत्सरं भवेत्॥
गन्धं माल्यं नमस्कारं धूपं दीपान्नसम्पदा।
तत्स्वं द्विजातयेदद्यात् व्रतान्ते तु परन्तप॥
तत्स्वं तदुपकरणं महाच्छादिकं॥
कृत्वा व्रतं वत्सरमेतदिष्टं
भयं न चाप्नोति स राक्षसेभ्यः।
कामानवाप्नोति भवत्यरोगो
भयञ्च राजन्नच तस्य किञ्चित्॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं विरूपाक्ष व्रतं।

---

मार्कण्डेय उवाच।

यत्र क्वचन नद्याञ्च यत्र कृष्णा चतुर्दशी।
अनर्काभ्युदिते काले देयं संपूजयेद्यमं॥
धूम्रवर्णं चित्रगुप्तं कालपाशञ्च यादव।
मृत्युं स्वर्गञ्च धर्म्मज्ञं गन्धमाल्यान्नसम्पदा॥
यमोद्धार इत्युक्त्वा तिलांश्च जुहुयात्ततः।
नमो यमायेति तथा स्त्रीशूद्रस्य विधीयते॥
कृशरम्भोजयेद्विप्रान् यथाशक्ति नरोत्तमं।
दद्याद्व्रतान्ते विप्राय तथैवच पयस्विनीं॥

कृत्वा व्रतं वत्सर मेतदिष्टं
न याति राजन् नरकं मनुष्यः।
पापक्षयं प्राप्य स याति नाकं
मानुष्यमासाद्य स धर्म्मवान् स्यात्॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं यमव्रतं।

———000———

नारी चोपवसेदब्दं कृष्णामेकाञ्चतुर्द्दशीं।
वर्षान्ते प्रतिमां कृत्वा शालिपिष्टमयीं शुभां॥
गीतानुलेपनैर्माल्यैः पीतवस्त्रैस्तु पूजयेत्।
पूर्वोक्तमखिलं कृत्वा शिवाय विनिवेदयेत्॥
पूर्वोक्तमित्यहिंसा ब्रह्मचर्य्यं भूशयनादि।
सप्तभूमैर्म्महायानैस्तप्तचामीकरप्रभः॥
युगकोटिशतं साग्रं रुद्रलोके महीयते।
शिवादिसर्व्वलोकेषु भोगान्भुक्त्वा यथेप्सितान्।
क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन् राजानं पतिमाप्नुयात्॥

इति शिवधर्म्मोक्तं कृष्णचतुर्दशीव्रतं।

———

यक्षाणां राक्षसानाञ्च चतुर्दश्याञ्च पूजनं।
कृत्वा क्षेममवाप्नोति क्रियासाफल्यमेवच॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं क्षेमव्रतं।

———000———

पूजयित्वा धनाध्यक्षं तदा वैश्रवणं प्रभुं।
वहुवित्तमवाप्नोति फलं संवत्सरं दिनं॥
शङ्खपद्मौ तदाभ्यर्च्य निधाने यक्षपूजिते।
मणिभद्रं तथाभ्यर्च्य धनमाप्नोत्यसंशयं॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं धनावाप्ति व्रतं।

———000———

माघमासे चतुर्द्दश्यां कृष्णपक्षे विशेषतः।
तथा पितृगणान् राजन् क्षीणचन्द्रे च पूजयेत्॥
सर्व्वकामसमूहस्य यज्ञस्य फलमश्नुते।
श्राद्धं कृत्वा तथा राजन् सर्व्वकामानवाप्नुयात्॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं सर्वकाम व्रतं।

———000———

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां महाकालमथार्च्चयेत्।
तस्मात्काममवाप्नोति तथेष्टं नात्र संशयः॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं कामावाप्तिव्रतं।

———000@000———

तथा तुम्बुरुगन्धर्व्वपञ्चकं पूजयेन्नरः।
सर्वत्र जयमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं जयव्रतं।

देवानां मानवानां वा तत्पक्षाये तथा परे।
तेषां संपूजनं कृत्वा चतुर्दश्यां सुखी भवेत्॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं सुखव्रतं।

यस्तु कृष्णचतुर्द्दश्यां स्नात्वा देवं पिनाकिनं।
आराधयेद्द्विजमुखे ततःस्वस्ति पुनर्भवेत्॥

इति कूर्मपुराणोक्तं कृष्णचतुर्दशी व्रतं।

——000——

माघमासे चतुर्दश्यां पूजयेदिन्दुशेखरं।
भक्त्या विल्वदलैर्मौनी हरनाम जपन्निशि॥
सर्व्वपापविनिर्म्मुक्तो याति शैवं परं पदं।

इति सौरपुराणोक्तं कृष्णचतुर्द्दशीव्रतं।

——000——

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां यश्च गुग्गुलकं दहेत्।
स याति परमं स्थानं यत्र देवःपिनाकधृक्॥

इति सौरपुराणोक्तं कृष्णचतुर्दशी व्रतं।

——00@00——

भविष्योत्तरात्

चतुर्द्दश्यां निराहारः समभ्यर्च्य त्रिलोचनं।
पुष्पधूपादिनैवेद्यै रात्रौ जागरणेन च॥
पञ्चगव्यं निशि प्राश्य स्वपेद्भूमौ विमत्सरः।
श्यामाकानथवा भुक्त्वा तैलक्षारविवर्जितः॥
होमः कृष्णतिलैः कार्यः शतमष्टोत्तरं नृप।
अग्नये हव्यवाहाय यमायाङ्गिरसे नमः॥
ततः प्रभाते विमले स्नाप्य पञ्चामृतैः शिवं।
पूजयित्वा विधानेन होमं कृत्वा तथैव च॥

उद्दिश्य मन्त्रमेतञ्च कृत्वा शिरसि वाञ्जलिं।
नमस्त्रिमूर्त्तये तुभ्यं नमःसूर्य्याग्निरूपिणे॥
पुत्रान् यच्छ सुखं यच्छ मोक्षं यच्छ नमोस्तुते।
नीराजनं ततः कृत्वा भोजयित्वा द्विजोत्तमान्॥
शक्तितो दक्षिणां दत्त्वा पश्चात् भुञ्जीत वाग्यतः।
एवं संवत्सरस्यान्ते कृत्वा सर्व्वं यथोदितं॥
सौवर्णं कारयेद्देवं त्रिनेत्रं शूलपाणिनं।
वृषस्कन्धगतं सौम्यं सितवस्त्रयुगान्वितं॥
चन्दनेनानुलिप्ताङ्गं शितपाल्योपशोभितं।
स्थापयित्वा ताम्रपात्रे ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥
सर्व्वकालिकमानन्त्ये कथितं व्रतमुत्तमं।
संवत्सरे समाप्तिर्हि व्रतस्य तु सदा भवेत्॥
चीर्णे व्रतेऽस्मिन् पुण्यं यत्तत्तुवक्ष्मिन् धनाधिप।
काले गते बहुतिथे तीर्थस्य मरणं भवेत्॥
मृतश्चादित्य देहस्थो दिव्यव्यालङ्कारभूषितः।
दिव्यनारीगणवृतो विमानवरमास्थितः॥
देवदेवैः समेतोऽसौ क्रीड़तेऽग्निपुरे चिरं।
इह वागत्य कालान्ते जातो नृणां कुले भवेत्॥
दानयज्ञः कृती दक्षो ब्राह्मणो ब्रह्मणः प्रियः।
श्रीमानग्निकृतीवीमान् पुत्रपौत्रसमन्वितः॥
पत्नीगणसमायुक्तश्चिरं भद्राणि पश्यति।
ये दुर्लभा भुवि सुरोरग मानवानां।
कामाश्चनामय गुणेन युताः सदैव

तानाप्नुवन्ति शिवभूततिथौ सुरेशं।
संपूजयति सुमतितो विधिवन्मनुष्याः॥

इति चतुर्दशी व्रतं।

———000———

कृष्ण उवाच।

शृणु नक्तोपवासस्य विधानं पाण्डुनन्दन।
येन विज्ञान मात्रेण नरो मोक्षमवाप्नुयात्॥
येषु तेषु च मासेषु शुक्लपक्षे चतुर्दशीं।
ब्राह्मणं भोजयित्वा तु प्रारभेत् शुततो व्रतं॥
मासि मासि भवन्ति द्वे अष्टमीच चतुर्दशी।
शिवार्चनरतो भूत्वा शिवध्यानैकमानसः॥
वसुधां भाजनं कृत्वा भुञ्जीयान्नक्तभोजनं।
उपवासात्परं भैक्ष्यं भैक्ष्यात्परमयाचितं॥
अयाचितात् परं नक्तं तस्मान्नक्तेन भोजयेत्।
देवैश्च भुक्तं पूर्वाह्ले मध्याह्ले मुनिभिस्तथा॥
अपराह्ले च पितृभिः सन्ध्यायां गुह्यकादिभिः।
सर्ववेलामतिक्रम्य नक्तभोजी सदा भवेत्॥
हविष्यभोजनं स्नानं सत्यमाहारलाघवं।
अग्निकार्य्यमधःशय्यां नक्तभोजी सदा भवेत्॥
एवं संवत्सरस्यान्ते व्रतं पूर्णं
पूर्णं कुम्भोपरिस्थाप्य दापयेषु शोभने॥
कपिलां पञ्चगव्येन स्नापयेन्मृण्मयेशिव।

फलपुष्पयवक्षीरदधिदर्भाङ्कुरास्तिलाः॥
चन्दनं तण्डुलास्तोयमर्घ्यमष्टाङ्गमुच्यते।
शिरसा धारयित्वा तु जानुगत्वा महीतले॥
महादेवाय दातव्यं गन्धपुष्पं यथा क्रमं।
भक्षोदनैर्बलिं कृत्वा प्रणम्य परमेश्वरौ॥
धेनुं वा दक्षिणां दद्याद्वृषं वापि धुरन्धरं।
श्रोत्रियाय दरिद्राय कल्पव्रतविदाय च॥
यो ददाति शिवे भक्त्या तस्य पुण्यफलं शृणु।
विमानमर्कप्रतिमं हंसयुक्तमलं कृतं॥
सुरूढोप्सरसङ्गीतैर्य्याति रुद्रालये सुखं।
स्थित्वा रुद्रस्य भवने वर्षकोटि शतत्रयं॥
इहलोके तु य ऋद्धेश्वयामलक्षेश्वरो भवेत्।
यथाष्टमीषु च शिवासु चतुर्दशीषु॥
नक्तं समाचरति शास्त्र विधान दृष्टं।
स्वर्गाङ्गना कररवाकुलितं विमान
मारुह्य याति ससुखेन शिवालयञ्च॥

इति श्रीभविष्योत्तरे चतुर्दश्यष्टमीनक्तव्रतं।

इति श्री महाराजाधिराज श्री महादेवीय समस्त करणा
धीश्वरसकलविद्याविशारदश्रीहेमाद्रि विरचिते
चतुर्व्वर्गचिन्तामणौ व्रतखण्डे
चतुर्दशीव्रतानि।

---

## अथोनविंशोऽध्यायः ।

———oo@oo———

### अथ पौर्णमासीव्रतानि ।

त्रिविधविबुधवृन्दानन्दसन्दोहकन्दो
यदि गणित गुणौघः सोऽद्य हेमाद्रि सूरिः ।
अभिमतफलसम्प्राप्तिसिद्धये बुद्धिभाजां
व्रतनिवहमिदानीं पौर्णमासीं ब्रवीमि ॥

कृष्ण उवाच ।

पौर्णमासी महाराज सोमस्य दयिता तिथिः ।
पूर्णमासो भवेद्यस्यां पूर्णमासी ततः स्मृता ॥
तस्यां तु स्रोतसि स्नात्वा सन्तर्प्य पितृदेवताः ।
आलिख्य मण्डले सोमं नक्षत्रैः सहितं विभुं ॥
पूजयेत् कुसुमैर्धूपैर्नैवेद्यैर्घृतपाचितैः ।
शुक्लवस्त्रैर्दक्षिणाभिः पूजयित्वा क्षमापयेत् ॥
शाकाहारेण मुन्यन्नैर्नक्तं भुञ्जीत वाग्यतः ।
मुनीनामन्नं मुन्यन्नं नीवारादि ॥
गगनार्णवमाणिक्य चन्द्र दाक्षायणीपते ।
वसन्तबान्धवविभो शीतांशो स्वस्तिनःकुरु ॥
पक्षे पक्षे पञ्चदश्यां विधिरेष प्रकीर्त्तितः ।
शुक्लपक्षेऽपि यः कश्चिच्छ्रद्धावान्स्व्रती भवेत् ॥

तत्राप्येष विधिः प्रोक्तः सर्व्वकामफलप्रदः।
अमावस्या तिथिरियं पितॄणामक्षया भवेत्॥
अमावास्येयं पौर्णमासी तद्व्रतं।
अमावास्या महाराज गयेन समुपोषिता।
तेनाक्षयवटोदन्तः पितृभ्यस्तीर्थमुत्तमं॥
यः कश्चित् कुरुते तस्मिन् पितृपिण्डोदकक्रियां।
तस्मिन्नक्षयवटे।
स तारयति राजेन्द्र पुरुषानेकविंशतिं॥
भवेयुरक्षयास्तस्य लोकाः पितृनिषेविताः।
यदा तु इह लोकान्ते तस्य चागमनं भवेत्॥
ब्राह्मणः पितृभक्तश्च सर्व्वविद्याविशारदः।
पञ्चजन्मानि राजेन्द्र भवेल्लक्ष्म्या समन्वितः॥
एवं सम्वत्सरस्यान्ते हैमं कृत्वा सुशोभनं।
सोमं नक्षत्रसहितं सर्वावयवसंयुतं।
सप्तधान्यसमायुक्तं रौप्यपात्रोपरि न्यसेत्।
सर्व्वाभरणसंयुक्तां गां च दद्यात् पयस्विनीं॥
उपदेशञ्च यो दद्यात्तस्मिन् व्रतवरे नरः।
संपूज्य वस्त्राभरणैर्मन्त्रेणार्घ्यं निवेदयेत्॥
नवो नवोसि मासान्ते जायमानः पुनः पुनः।
चन्द्र सान्द्रसुधासौध गृहाणार्घ्यं नमोस्तु ते॥
दद्याद्द्विजेन्द्रमुख्याय भक्त्या परमया युतः।
मासे मासे विधिरयं व्रतस्यास्य नराधिप॥
येन शक्नोति वा कर्त्तुं वर्षमेकं निरन्तरं॥

एकापि समुपोष्यैव दद्यादुद्यापनं सुधीः॥

व्रतोद्यापनयोर्वृत्तिर्मुख्यः कल्पः व्रतावृत्तिरप्यनावृत्तिर्गौणः।

यश्चैतत् कुरुते पार्थ पौर्णमासीव्रतं नरः।

सर्व्वपापविनिर्मुक्तश्चन्द्रवद्दिवि राजते॥

पुत्रपौत्रधनोपेतो गजदाता प्रियम्वदः।

सन्ततिं विपुलाम्प्राप्य प्रयागे मरणं भवेत्॥

ततश्चैवाक्षयान् कामानाप्नोति सुरसेवितान्।

सेव्यमानः स गन्धर्व्वैः स्तूयमानः सुरासुरैः॥

आस्ते वर्षशतं दिव्यं दिव्यभोगैरलङ्कृतः।

अभ्यर्च्चयन्ति शितपञ्चदशासु सोमं

कृष्णासु ये पितृगणाञ्जलपिण्डदानैः।

तेषां गृहाणि धनधान्यसुतादिसम्पत्

पूर्णानि पार्थिव भवन्ति विधौ विधानात्॥

## इति भविष्योत्तरोक्तं जयपौर्णमासीव्रतं।

---

पुलस्त्य उवाच।

अशोकपूर्णिमामेतां शृणुष्व गदतो मम।

उपोष्यास्यां नरः शोकं नाप्नोति स्त्री यथापि वा॥

फाल्गुनामलपक्षस्य पौर्णमास्यां नृपोत्तम।

मृज्जलेन नरः स्नात्वा दत्त्वा शिरसि वै मृदं॥

मृत्प्राशनं ततः कृत्वा कृत्वा च स्थण्डिलं मृदा।

पुष्पैर्गन्धैः समभ्यर्च्च भूधरं नाम नामतः॥

धरणीञ्च तथा देवीमशोकेति च कीर्त्तयेत्।
यथा विशोका धरणिः कृतकृत्या जनार्द्दन।
तथा मां सर्व्वशोकेभ्यो मोचयाशेषधारिणि॥
यथा समस्तभूतानामाधारत्वे व्यवस्थिता।
यथा विशोकं कुरु मां सकलेच्छाविभूतिभिः॥
ध्यानमात्रे यथा विष्णोः स्वाम्यं प्राप्तासि मेदिनि।
तथा मनःस्वच्छतां मे कुरुस्व भूतधारिणि॥
एवं स्तुत्वा समभ्यर्च्च्य चन्द्रायार्घ्यं निवेदयेत्।
उपोषितव्यं नक्तं वा भोक्तव्यं तैलवर्जितं॥
अनेनैव प्रकारेण चत्वारः फाल्गुनादयः।
उपोष्या नृपते मासाः प्रथमं पारणं स्मृतं॥
आषाढादिषु मासेषु तद्वत् स्नात्वा मृदाम्बुना।
तथैव प्राशनं पूजा तद्वदिन्दोस्तथार्हणं॥
चतुर्ष्वन्येषु वै नक्तं तथा वै कार्त्तिकादिषु।
पारणत्रितयञ्चैव चतुर्मासिकमुच्यते॥
विशेषपूजादानञ्च तथा जागरणं निशि।
विशेषेण च कर्त्तव्यं पारणे पारणे कृते॥
प्रथमं धरणीनाम स्मृतं मासचतुष्टयं।
द्वितीये मेदिनीनाम तृतीये च वसुन्धरा॥
पारणे पारणे राजन् वस्त्रयुग्मेन पूजयेत्।
तथैव धरणीं देवीं घृतस्नानेन केशवं॥
वस्त्राभावे च सूत्रेण पूजयेद्धरणीन्तथा।
घृताभावे तथा क्षीरं शस्तं वा सलिलं हरेः॥

एवं संवत्सरस्यान्ते गौः सवत्सा द्विजातये।
प्रकल्प्यधरणी-देवी-वस्त्रालङ्कारसंयुता॥
पातालसंस्थया देव्या चीर्णमेतन्महाव्रतं।
धरण्या केशवप्रीतौ ततः प्राप्ता समा गतिः॥
देवेन चोक्ता धरणी वराहवपुषा पुरा।
उपवासव्रतपरा समुद्धृत्य रसातलात्॥
व्रतेनानेन कल्याणि प्रणतो यः करिष्यति।
व्रतमेतत्समाश्रित्य पारणञ्च यथाविधि॥
सर्व्वबाधाविनिर्मुक्तो दशजन्मान्तराण्यसौ।
विशोकः सर्व्वकल्याणभाजनं स्यान्न संशयः॥
यथा त्वमेव वसुधे संप्राप्ता निर्वृतं पदं।
तथा स परमे लोके सुखं प्राप्स्यति मानवः॥
एवमेतन्महापुण्यं सर्व्वशान्तिप्रदानकं।
विशोकाख्यं व्रतवरं तत्कुरुष्व महाव्रतं॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तमशोकपूर्णिमाव्रतं।

———000———

पुलस्त्य उवाच।

पञ्चदश्यां शुक्लपक्षे फाल्गुनस्य नरोत्तम।
पाषण्डपतितां श्चैव तथैवान्त्यावसायिनः॥
नास्तिकान् भिन्नवृत्तांश्च पापिनश्चापि नालपेत्।
नारायणे गतमनाः पुरुषो नियतेन्द्रियः।
तिष्ठन् ब्रुवन् प्रस्खलंश्च स्तुतेवापि जनार्दनं॥

कीर्त्तये तत्क्रियाकाले सप्तकृत्वः पुनः पुनः।
लक्ष्म्या समन्वितं देवमर्चयेत जनार्दनं॥
सन्ध्याव्युपरमे चन्द्रस्वरूपं हरिमीश्वरं।
रात्रिञ्च लक्ष्मीं सञ्चित्य सत्वगर्भेण चिन्तयेत्॥
श्रीनिशा चन्द्ररूपा त्वं वासुदेवजगत्पते।
मनोभिलषितं देव पूरयस्व नमोनमः॥
मन्त्रेणानेन दत्त्वार्घ्यं देवदेवस्य भक्तितः।
नक्तं भुञ्जीत मौनेन तैलक्षारविवर्जितं॥
तथैव चैत्रवैशाखे ज्यैष्ठे च मुनिसत्तम।
अर्चयेच्च यथाप्रोक्तं मासि मासि च तद्दिने॥
निष्पादितं भवेदेकं पारणं दाल्भ्यभक्तितः *।
द्वितीयं तत्र वक्ष्यामि पारणन्तं निबोध मे॥
आषाढे श्रावणे मासि मासि भाद्रपदे तथा।
तथैवाश्वयुजेऽभ्यर्च्य श्रीधरञ्च श्रिया सह॥
सम्यक्च्छन्द्रमसन्दत्त्वा भुञ्जीतार्घ्यं यथाविधि।
द्वितीयमेतदाख्यातं तृतीयं पारणं शृणु।
कार्त्तिकादिषु मासेषु तथैवाभ्यर्च्य केशवं॥
भूत्या समन्वितं दद्याच्छशाङ्कायार्हणं निशि।
भुञ्जीत च यथाख्यातं तृतीयमपि पारणं॥
प्रतिपूज्य ततो दद्यात् ब्राह्मणेभ्यार्घ्य दक्षिणां।
प्रतिमासं च वक्ष्यामि प्राशनं कायशुद्धये॥
चतुरः प्रथमं मासान् पञ्चगव्यमुदाहृतं।

---

* दण्ड्यभक्तिता इति पुस्तकान्तरे पाठः।

कुशोदकं तथैवान्यदुक्तं मासचतुष्टयं ॥
सूर्यांशुतप्तं तद्वच्च जलं मासचतुष्टयं ।
गीतवाद्यादिकं रात्रौ तथा कृष्णकथाः शुभाः ॥
कारयेद्देवदेवस्य पारणे पारणे गते ।
जनार्द्दनं सलक्ष्मीकमर्चयेत् प्रथमं तथा ॥
सश्रीकं श्रीधरं तद्वत्तृतीयं भूतिकेशवं ।
एवं संपूज्य विधिवत् सपत्नीकं जनार्द्दनं ॥
नाप्नोतीष्टवियोगार्त्तिं पुमान्नार्य्यपिवा पुनः ।
यावदेतद्विधानेन पारणान्यर्च्चति प्रभुं ॥
तावन्ति जन्मान्यसुखं नाप्नोतीष्ट वियोगजं ॥
देवस्य च प्रसादेन मरणात्प्राक्स्मृतेः स्मृतिं ।
कुले सतां स्फीतधने भोगान् भुङ्क्ते यथेप्सितान् ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तलक्ष्मीनारायणं व्रतं ।

---

दालभ्य उवाच ।

श्रोतुमिच्छाम्यहं तात यममार्गं सुदुर्गमं ।
यथा सुखेन संयान्ति मानवा स्तद्वदस्व मे ॥

पुलस्त्य उवाच ।

प्रतिमासन्तु नामानि पञ्चदश्यां जगत्पतेः ।
कृतोपवासः सुस्नातः पूजयित्वा जगद्गुरुं ॥
उच्चारयन्नरोयाति सुमुखेनैव गच्छति ।

ततो विप्राय वै दद्यादुदकुम्भं सदक्षिणं॥
उपानद्वस्त्रयुग्मञ्च छत्रं काननमेव च।
यद्वा मासगतं नाम प्रीयतामिति कीर्त्तयेत्॥
केशवं मार्गशीर्षे तु पौषे नारायणं तथा।
माधवं माघमासे तु गोविन्दमपि फाल्गुने॥
चैत्रे विष्णुञ्च वैशाखे कीर्त्तयेन्मधुसूदनं।
ज्येष्ठे त्रिविक्रमं देवं तथाषाढे च वामनं॥
श्रीधरं श्रावणे मासि हृषीकेशं ततः परं।
नाम भाद्रपदे तद्वत् ज्ञायते पुण्यकाङ्क्षिभिः॥
तद्वदाश्वयुजे मासि पद्मनाभेति कीर्त्तयेत्।
दामोदरं कार्त्तिके च सर्व्वान्तरति दुर्गतिं॥
एवं मासक्रमेणैव यदि दातुं न शक्यते।
तदा संवत्सरस्यान्ते दद्याच्चैव समागतं॥

विशेषश्चात्र कथित इत्यनेन विशेषादन्यत्र पूर्व्वव्रतसाम्यं गम्यते।

कृत्वैवं सुखमाप्नोति मरणे स्मरणं हरेः।
याम्यं क्लेशं समं प्राप्य स्वर्गलोके महीयते॥
ततोमानुष्यतां प्राप्य निरातङ्कोगतज्वरः।
धनधान्यवति स्फीते कुले महति जायते॥

## इति विष्णुधर्मोत्तरोक्त नरकपूर्णिमाव्रतं।

——o@o——

सूत उवाच।

वैशाख्यां पौर्णमास्यान्तु सृष्टाः कमलयोनिना।

तिलाः कृष्णाश्च गौराश्च हृमये सर्व्वदेहिनां ॥
तस्मात् कार्य्यं तिलैः स्नानंतत्राग्नौ जुहुयात् तिलान् ॥
निवेदितव्यं विधिवत् तिलपात्रं तु विष्णवे ।
तिलतैलेन दीपाश्च देया देवेभ्य एव च ॥

कूर्म्मपुराणेतु विशेषः ।

वैशाखपूर्णमास्यान्तु ब्राह्मणान् पञ्च सप्त वा ।
उपोष्य विधिना शान्ताच्छुचीन् प्रयतमानसः ॥

आदित्य पुराणे ।

मोदकैश्च तिलैः श्राद्धं कर्त्तव्यं पितृतर्पणं ।
तिलैः समधुभिर्युक्तं ब्राह्मणेभ्यो जनार्दन ॥
दातव्या दक्षिणा चापि तिलैर्मधुयुतैरपि ।
मन्त्रं जपेच्च पौराणं पारंपर्य्याक्रमागतं ॥
ओं तिला वै सोमदैवत्याः सुरसृष्टास्तु गोसवे ।
स्वर्गप्रदाश्च तन्त्राश्च ते मां रक्षन्ति नित्यशः ॥
दद्यादनेन मन्त्रेण तिलपात्राणि तत्र च ।
सप्तभ्यस्त्वथ पञ्चभ्यो ब्राह्मणेभ्यस्तु कीर्त्तयेत् ॥
प्रीयतां धर्म्मराजश्च देवाश्चान्ये तथापि वा ॥

'गृहीतो' मन्त्रः ।

एवं कृते स मुक्तःस्यात्पापैर्जन्मशतार्ज्जितैः ।
इत्यादि पुराणोक्तो वैशाखो विधिः ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

सम्वत्सरेऽपि याः काश्चितिथयः पुण्यलक्षणाः ।

एता एव यदुश्रेष्ठ स्नाने दाने महाफलाः ॥

कृष्ण उवाच ।

वैशाखी कार्त्तिकी माघी तिथयोऽतीव पूजिताः ।
स्नान दान विहीनाश्च ननेयाः पाण्डुनन्दन ॥
तीर्थस्नानं तदा शस्तं दानं वित्तानुसारतः ।
वैशाख्यां पाण्डवश्रेष्ठ श्रेष्ठा चोज्जयनी मता ॥
कार्त्तिक्यां पुष्करं श्रेष्ठं माघ्यां वाराणसी मता ।
स्नानेनोदकदानेन तारयेदखिलान् पितॄन् ।
कुम्भान् स्वच्छजलैः पूर्णान् हिरण्यान्नैः समन्वितान् ।
वैशाख्यां ब्राह्मणे दत्त्वा न शोचति कृताकृते ॥
मधुरान्नरसैः पूर्णं भाजनं कनकोज्ज्वलं ।
बहूनि धनधान्यानि भक्त्या परमया युतः ॥
गोभूहिरण्यवासांसि विप्राय विधिवन्नृप ।
माघ्यां स्नानं तथा सम्यक् सर्प्य पितृदेवताः ॥
तिलपात्राणि देयानि तिलाः सपललौदनाः ।
कार्य्या सद्रानमन्त्रैश्च धेनुदानं प्रशस्यते ।
कम्बलाजिनरत्नानि मोचको पापमोचकः ॥
उपानद्दानमत्रैव तुल्यमश्वरथेन तु ॥
यत्र वा तत्र वा स्नानं दानं वित्तानुसारतः ।
काले कालोद्भवं सर्व्वं शस्यते पाण्डुनन्दन ॥
कार्त्तिक्यां तु वृषोत्सर्गं विवाहं पुण्यलक्षणं ।
कुर्यात् कुरुकुलश्रेष्ठ हरेर्नीराजनं तथा ॥
गजाश्वरथदानानि घृतधेन्वादिकानि च ।

प्रदेयानि द्विजातिभ्यस्तास्ताः संस्मृत्य देवताः।
फलानि यानि विद्यन्ते सुगन्धान्यगदानि च॥
कङ्कोलकफलं जात्या लवङ्गकदलीफलं।
खर्जूरं नारिकेलञ्च कदलीफलमेव च॥
दाड़िमं मातुलिङ्गञ्च कर्कोटं त्रपुषन्तथा।
वृन्ताकङ्कारवेल्लञ्च चिञ्चा कुष्माण्डमेव च॥
फलानामप्रदानेन येषान्तु तिथयो गताः।
ते व्याधिता दरिद्राश्च जायन्ते भुवि मानवाः॥
न केवलं ब्राह्मणानां दानमत्र प्रशस्यते।
भगिनी भागिनेयानां मातुलानां पितृष्वसुः॥
दरिद्राणाञ्च बन्धूनां दानं कोटिगुणोत्तरं।
मित्रं कुलीनश्चापन्नो बन्धुदारिद्रदुःखिताः॥
आशयाभ्यागतोदूरात्सोऽतिथिः सर्गसंक्रमः।
वनं प्रस्थापिते रामे ससीते सहलक्ष्मणे॥
मातामह कुलादेत्य विशुद्धेनान्तरात्मना।
सपथैः श्राविताऽनेकैः कौशल्या भरतेन वै॥
यदा न प्रत्ययं याति कदाचित् कोशलात्मजा।
तदा विशुद्धभावेन शपथान् श्राविता पुनः॥
वैशाखी कार्त्तिकी माघी तिथयोऽमरपूजिताः।
अप्रदानवती यान्तु यस्यार्य्योऽनुमते गतः॥
एतत् श्रुत्वा तु कौशल्या सहसा प्रत्ययं गता।
अङ्कमानीय भरतं सान्त्वयामास दुःखितं॥
एतत्तिथीनां माहात्म्यमाख्यातं बहुविस्तरं।

भूयस्तु संप्रवक्ष्यामि तव भारतसत्तम ॥
वैशाखे कार्त्तिके माघे सहिता नृपेन्द्र ।
या पूर्णिमा भवति पूर्णशशाङ्कचिह्ना ॥
तस्यां जलान्नकरकान् वरमातपत्रं ।
दत्त्वा प्रयाति पुरुषः पुरुहूत लोकं ॥

इति भविष्योत्तरोक्तो वैशाखो कार्त्तिकोमाघोविधिः ।

———000———

पुलस्त्य उवाच ।

ततोऽरतान्ते भगवान् पिनाकी
तस्यां गुहायामनुमोद्य पुण्यं ।
देवैश्च सर्वैरनुगम्यमानो
बभूव कामेन विहारचारी ॥
तस्यां मनुष्यः सुचिरं प्रमत्तो
नभस्य मासस्य तु पौर्णमास्यां ।
भार्य्याद्वितीयः सहसा यएव
पुनेष्टिमादौ स्वगृहेपि कृत्वा ॥
गच्छेत्ततः सर्व्वसमृद्धियुक्तो
होमैः सजाप्यैर्व्वलिनाच रुद्रं ।
शैलेन्द्रकन्यागजवक्त्रनन्दी
सद्भावभक्त्या प्यथवार्च्चयित्वा
संपूज्य विप्रानथ देव पूर्व्वान्
कृतोपवासोजितरोष दोषः
ततः सहायानपि भोजयित्वा

भार्य्याञ्च पश्चात् स्वयमन्न भुङ्क्ते॥
तृप्ताञ्च भार्य्यामथ गोपयित्वा
प्रदक्षिणीकृत्य गुहां सगुह्यं।
गृहांस्तु गच्छेत्परिपूर्णकामः
हृषः प्रहृष्टः कृतभोजनश्च।
कथाश्च दिव्याश्चथनन्दिनोश्च
भार्य्यां ततः श्रावणयोः प्रयुक्तां।
क्षीरोदनं त्रिदिनं भोजयेच्च
बन्ध्याञ्च भार्य्यामपि पुत्रकामां॥
ततो गृहे सर्वसमृद्धिकामः
सन्तर्प्य भार्य्यां प्रयतो विधाय।
उमां शिवं नन्दिनं चार्चयित्वा
ततो भवेत् पुत्रवतीच वन्ध्या॥
प्रादेशमात्रामथवा शिवस्य
हिरण्मयीं राजतीमायसीं वा।
त्रिशूलखट्वाङ्गधराम्बरेण्यां
त्रिलोचनां जटिलां चारुरूपां॥
कृत्वा कृतीं तामभिपूज्य पश्चात्
प्रताप्य वह्नौ तु निधाय पात्रे।
प्रस्थेन दुग्धस्य ततोभिषेकं
दत्त्वा च तत्पाययेत्पुत्रकामां॥

इति पद्मपुराणोक्तं पुत्रव्रतं।

———०३०———

ज्यैष्ठे मासि सिते पक्षे पौर्णमास्यां यतव्रतः ।
स्थापयेद्व्रणं कुम्भं शिततण्डुलपूरितं ॥
नानाफलयुतं तद्वदिक्षुदण्डसमन्वितं ।
शितवस्त्रयुगच्छन्नं सितचन्दनचर्चितं ॥
नाना भक्ष्य समोपेतं सहिरण्यञ्च शक्तितः ।
ताम्रपात्रं गुड़ोपेतं तस्योपरि निवेदयेत् ।
तस्मादुपरि ब्रह्माणं सौवर्णं पद्मकोदरे ॥
कुर्य्यात्शर्करयोपेतां सावित्रीं तस्य वामतः* ।
गन्धधूपं ततो दद्याद्गीतवाद्यञ्च कारयेत् ॥
तदभावे कथां कुर्य्याद्यथा प्राह पितामहः ।
ब्रह्मनाम्नीं च प्रतिमां कृत्वा गुडमयीं शुभां ॥
शुक्लपुष्पाक्षततिलैरर्च्चयेत्पद्मसम्भवं ।
ब्रह्मणे पादौ संपूज्य जङ्घे सौभाग्यदाय च ॥
विरिञ्चयोरुयुग्मञ्च मन्मथायेति वै कटिं ।
स्वच्छोदरायेत्युदरमनङ्गायेत्युरोहरेः ॥
मुखं पद्ममुखायेति वाहू वै वेदपाणये ।
नमः सर्व्वात्मने मौलिमर्च्चयेच्चापि पङ्कजं ॥
ततः प्रभाते तं कुम्भं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।
ब्राह्मणान् भोजयेद्भक्त्या स्वयं तु लवणम्बिना ॥
भक्त्या तु दक्षिणान्दद्यादिमं मन्त्रमुदाहरेत् ।
प्रीयतामत्र भगवान् सर्व्वलोकपितामहः ॥
हृदये सर्व्वलोकानां यस्त्वानन्दो विधीयते ।

* वामत इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

अनेन विधिना सर्व्वं मासि मासि समाचरेत् ॥
उपवासो पौर्णमास्यामव्ययं ब्रह्म पूजयेत्।
फलमेकन्तु संप्राश्य शर्व्वर्य्यां भूतले स्वपेत् ॥
तत्र त्रयोदशे मासि घृतधेनुसमन्वितां।
शय्यां दद्याद्विरिञ्चाय सर्वोपस्करसंयुतां ॥
ब्रह्माणं काञ्चनं कृत्वा सावित्रीं राजतीन्तथा।
षाण्मासिकः* सृष्टिकर्त्ता सावित्री तु फलस्य तु ॥
वस्त्रै द्विजं सपत्नीकं पूज्य शक्त्या विभूषणैः।
शक्त्या गवाह्निकं दद्यात् प्रीयतामित्युदीरयेत् ॥
होमं शुक्लैस्तिलैकुर्य्याद्ब्रह्मनामानि कीर्त्तयेत्।
गव्येन सर्पिषा तद्वत्पायसेनच कर्म्मवित् ॥
विप्रेभ्यो भोजनं दत्त्वा वित्तशाठ्यविवर्जितः।
इक्षुदण्डन्ततोदद्यात्पुष्पमालाश्च शक्तितः ॥
यो ब्रह्मा स स्मृतो विष्णुरानन्दात्मा महेश्वरः।
सुखार्थी कामरूपेण स्मरन्देवं पितामहं ॥
कुर्य्याच्चैव विधानेन पौर्णमासं स्त्रियोऽपि वा।
सर्व्वपापविनिर्मुक्तः प्राप्नोति ब्रह्मशाश्वतं ॥
इहलोके वरान् पुत्रान् सौभाग्यं ध्रुवमश्नुते ॥

## इति श्रीपद्मपुराणोक्तं पुत्रकामव्रतं।

———ooo———

सुमन्तुरुवाच।

सोमव्रतन्तथाप्यन्यच्छङ्करप्रीतये शृणु।

---

* पद्मासन इति पुस्तकान्तरे पाठः।

ताम्रपात्रं पयःपूर्णं* कृत्वा तत्रस्थञ्च शङ्करं ॥
प्रच्छाद्योपरिवस्त्रेण गन्धपुष्पार्चितं महत्।
शिवभक्ते द्विजे दद्याद्भोजयित्वा विधानतः ॥
प्राच्यां समुदिते सोमे प्रतीच्याञ्च रवौ गते।
पौर्णमास्यान्तु वैशाख्यां गृहपात्रं शिवाय तु ॥
प्रीयतां मे महादेवः सोममूर्त्तिर्जगत्पतिः।
तस्मै विप्राय तत्पात्रमर्चयेद्भक्तितः शनैः ॥
एवं सोमव्रतं नाम कृत्वा सोमान्तिकं व्रजेत्
रुद्रलोकात्परिभ्रष्टो भवेज्जातिस्मरो नरः ॥
पूर्व्वाभ्यासेन तेनैव पुनः शिवपुरं व्रजेत्।

इति भविष्यत्पुराणोक्तं सोमव्रतं।

---

भीष्म उवाच।

दीर्घायुरारोग्यकुलाभिवृद्धि
युक्तः पुमान् रूपगुणान्वितः स्यात्।
मुहुर्मुहुर्जन्मनि येन सम्यक्
व्रतं समाचक्ष्व तदिन्दुमौलेः ॥

पुलस्त्य उवाच।

त्वयापृष्टमिदं सम्यगक्षय्यकारकं।
रहस्यं तव वक्ष्यामि यत् पुराणविदोविदुः ॥
रोहिणीचन्द्रशयनं सोमव्रतमिहोत्तमं।
तस्मिन्नारायणस्यार्चामर्चयेदिन्दुनामभिः ॥

* ताम्रपात्रत्रयमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

यदा सोमदिने युक्ता भवेत्पञ्चदशी क्वचित्।
अथ वा ब्रह्मनक्षत्रं पौर्णमास्यां प्रजायते॥
तदा स्नानं नरः कुर्य्यात् पञ्चगव्येन सर्षपैः।

ब्रह्म नक्षत्रं रोहिणी॥

आप्यायस्वेति च जपेद्विद्वानष्ट शतं पुनः।
शूद्रोऽपि परया भक्त्या पाषण्डालापवर्ज्जितः॥
सोमाय वरदायाथ विष्णवे च नमोनमः।
कृतजाप्यः स्वभवनमागत्य मधुसूदनं॥
पूजयेत् फलपुष्पैस्तु सोमनामानि कीर्त्तयेत्।

सोमाय शान्ताय नमोस्तु पादा
वानन्ददायेति च पूज्य जङ्घे।
ऊरुद्वयं वापि जलोदराय
संपूजयेन्मेढ्रमनङ्गराजं॥
नमोनमः कामसुखप्रदाय
कटिः शशाङ्कस्य समर्च्चनीया।
तथोदरञ्चाप्यमृतोदराय
नाभिस्तु पूज्यो विधिलोचनाय॥
नमोस्तु चन्द्राय मुखञ्च पूज्यं
दन्ता द्विजानामधिपाय पूज्याः।
आस्यं नमश्चन्द्रमसेऽभिपूज्यं
पूज्यौतथोष्ठौ कुमुदप्रियाय॥
नासा च नाथाय वनौषधीनां
आनन्दभूताय पुनर्भ्रुवांश्च।

नेत्रद्वयं पद्मनिभन्तथेन्दो
रिन्दीवरश्यामकराय सौरे ॥
नमः समस्तामरवन्दिताय
कर्णद्वयं दैत्यनिषूदनाय।
ललाटमिन्दोरुदधि प्रियाय
केशाःसुषुम्नाधिपतेऽभिपूज्य।
शिरः शशाङ्काय नमोमुरारेः
विश्वेश्वरायेति नमः किरीटं।
पद्मप्रिये रोहिणि नाम लक्ष्मि
सौभाग्यसौख्यामृतचारुकायै ॥
देवीञ्च संपूज्य सुगन्धपुष्पै
र्नैवेद्यधूपादिभिरिन्दुपत्नीं।
सुप्त्वा तु भूमौ पुनरुत्थितेन
स्नात्वा च विप्राय हविष्ययुक्तः ॥
देयः प्रभाते स हिरण्यवारि
कुम्भोनमः पापविनाशनाय।
संप्राश्य गोमूत्र ममांसमन्न
मक्षारवर्ज्यानथविंशतिञ्च ॥
ग्रासान् पयः सर्पियुतानुपोष्य
भुक्तेतिहासं शृणुयान्मुहूर्त्तं।
कदम्बनीलोत्पलकेतकानि
जाती सरोजः शतपत्रिका च ॥
अम्लान कुब्जान्यथ तिन्दुवार

पुष्पं पुनर्भारसमल्लिकायाः।
शुक्लञ्च विष्णोः करवीरपुष्पं
श्रीचम्पकं चन्द्रमसः प्रदेयं* ॥
श्रावणादिषु मासेषु क्रमादेतानि सर्वदा।
यस्मिन्मासे व्रतादिःस्यात्तत्पुष्पैरर्चयेद्धरिं ॥
एवं संवत्सरं यावदुपोष्य विधिवन्नरः।
व्रतान्ते शयनन्दद्यादर्पणोपस्करान्वितं ॥
रोहिणी चन्द्रमिथुनं कारयित्वा च काञ्चनं।
चन्द्रः षड़ङ्गुलः कार्य्यो रोहिणी चतुरङ्गुला ॥
द्विचन्द्ररूपनिर्म्माणं चतुर्द्दशीस्थित महाराजोक्तं वेदितव्यं।
मुक्ताफलाष्टकयुतं* शितनेत्रपटान्वितं।
क्षीरकुम्भोपरि पुनः कांस्यपात्राक्षतैर्युतं ॥
दद्यान्मन्त्रेण पूर्व्वाह्णे शाकेक्षुफलसंयुतां।
श्वेतामथ सुवर्णास्यां खुरैरौप्यैः सुवर्णितां ॥
सवस्त्रभाजनां धेनुं तथा शङ्खञ्च शोभनं।
भूषणैर्द्दिजदम्पत्यमलंकृत्य गुणान्वितं ॥
चन्द्रोऽयं द्विजरूपेण सभार्य इति कल्पयेत्*।
यथा न रोहिणी कृष्णशयनं त्यज्य गच्छति ॥
सोमरूपस्य ते तद्वन्नमे भेदोऽस्तु भूपते।
यथात्वमेव सर्वेषां परमानन्दमुक्तिदः ॥

---

* श्रीचन्दनमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

* मुक्ताकलापयुक्ता इति पुस्तकान्तरे पाठः।

* भावयेदिति पुस्तकान्तरे पाठः।

मुक्तिर्मुक्तिस्तथा भक्तिस्त्वयि चन्द्रेऽस्तु मे दृढ़ा।
इति संसारभीतस्य मुक्तिकामस्य चानघ॥
रूपारोग्यायुषामेतद्विधायकमनुत्तमं।
इदमेव पितॄणाञ्च सर्व्वदा वल्लभं मुने॥
त्रैलोक्याधिपति र्भूत्वा सप्तकल्पशतत्रयं।
चन्द्रलोकमवाप्नोति विष्णुर्भूत्वा विमुच्यते॥
नारी वा रोहिणीचन्द्र शयनं वा समाचरेत्।
सापि तत्फलमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभं॥
इति पठति शृणोति वा य इत्थं
मधुमथनार्च्चन मिन्दुकीर्त्तनेन।
मतिमपि च ददाति सोऽपि शौरे
र्भवनगतः परिपूज्यतेऽमरौघैः॥

## इति पद्मपुराणोक्तं चन्द्ररोहिणी शयनव्रतं।

———000@000———

अनिलाद[*] उवाच।

अथोपोष्य चतुर्द्दश्यां पौर्णमास्यां गुरोर्द्दिने।
पूजयेद्विधिनानेन लिङ्गं सार्वं निबोध मे॥
ब्रह्माणः पश्चिमे भागे वामे लिङ्गस्य वै हरिं।
खखोल्कं दक्षिणे रौद्रमीश्वरं प्राग्दिशि स्थितं॥
खखोल्कः सूर्य्यः।
ईशानं मध्यमे देशे पूर्व्वाह्ने चैव पूजयेत्।

---

* अनिलादन इति पुस्तकान्तरे पाठः।

विलिप्यागुरुचन्द्रेण कुसुमैश्च सुगन्धिभिः ॥
चन्द्रः कर्पूरं।
गुग्गुलञ्चाज्यसंयुक्तमगरुं वासितं शुभं।
दत्त्वा नीराजनं कुर्याद्दद्याद्वै युग्मपञ्चकं॥
युग्मं गोमिथुनं।
नैवेद्यान्तं बलिञ्चैव पूर्व्ववत् स्वगृहं व्रजेत्।
पञ्चगव्यं ततः प्राश्य आचार्य्यब्राह्मणांस्तथा॥
व्रतिगोमिथुनान्येव भोजयेच्च स्वशक्तितः।
हेमवस्त्रादिकञ्चैव यत्नात् कृत्वा च कल्पयेत्॥
ततोदेवः प्रपूज्यो वै नैवेद्याद्यं निवेद्य च।
नत्वाग्निं पूजयित्वा तु पञ्चवक्त्रं शिवं स्मरेत्॥
प्राप्तेऽब्दे पञ्चमे गावः पञ्च पञ्च नियोजयेत्।
तेषामुद्दिश्यतेष्वेवं न्यूनञ्चापि ततोऽधिकं॥

पञ्चमे पञ्चपञ्चेति वचनाद्द्वितीये द्वे द्वे तृतीये तिस्रस्तिस्रः चतुर्थे चतस्रश्चतस्रः पञ्चमे पञ्च पञ्च प्रथमादेकैकैव तेषां ब्रह्मादीनां, पञ्चानां चन्द्ररूपानां पञ्चदेवतानां पञ्चवर्गानुद्दिश्य न्यूनाधिकं तेषु तेषु नियोजयेत्

निखिलं प्राग्विशेषञ्च कर्त्तव्यं तत्पदे नृभिः॥
सुखकीर्त्तिश्रियोऽर्थञ्च इहैवविभवाय च।
रहस्यमेतद्व्यत्योक्तं न देयं यस्य कस्यचित्॥

इति कालिकापुराणोक्तमीशान व्रतं।

-----000@000-----

कृष्ण उवाच।

अथातः शृणु भूपाल कृत्तिकाव्रतमुत्तमं।
राज्ञी या लिङ्गभद्राख्या पुरा यस्य प्रभावतः॥
अतीव महतीं लब्धा श्रियं जातिस्मराभवत्।
योगेनान्ते तनुन्त्यक्ता परब्रह्मणिलीयते॥

युधिष्ठिर उवाच।

कीदृशं तद्व्रतं कृष्ण मन्त्रो यन्त्रोहि कीदृशः।
विधानं कृत्तिकानाञ्च तच्च कालं वदस्व मे॥

कृष्ण उवाच।

कार्त्तिक्यां पौर्णमास्यान्तु गृह्णीयात् कृत्तिका व्रतं।
षट् मासांस्तु व्रतं यावदिदं संचिन्त्य चेतसि॥
पारणे पारणे चापि पुराणज्ञे द्विजोत्तमे।
उद्यापनं प्रयच्छेत यथा विभवसारतः।
कृत्तिकासु स्वयं सोमः कृत्तिकासु बृहस्पतिः॥
यदास्यात् सोमवारेण सा महाकार्त्तिकी स्मृता।
दृदृशीबहुभिर्व्वर्षैं बहुपुण्येन लभ्यते॥
लब्धापि न वृथा नेया यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः।
अन्यापि कार्त्तिकी पार्थ समुपोष्या विधानतः॥
तस्या विधानं राजेन्द्र शृणुष्वैकाग्रमानसः।
कार्त्तिके शुक्लपक्षस्य पौर्णमास्यां दिनोदये॥
नक्ते न नियमं कुर्याद्दन्तधावनपूर्व्वकं।

उपवासेन वा शक्त्या ततः स्नात्वा जलाशये ॥
कुरुक्षेत्रे प्रयागे वा पुष्करे निमिषेऽथ वा।
शालग्रामे कुशावर्त्ते मूलस्थाने चरित्रके ॥
गोकर्णे वावटे पुण्ये ह्यथवा नरकण्टके।
पुरेवा नगरे वापि ग्रामेघोषेऽथ पत्तने॥
यत्र वा तत्र वा स्नात्वा नारीवांप्यथ वा पुमान् ॥
देवर्षिपितृपूजाञ्च कृत्वा होमं युधिष्ठिर ॥
ततोऽस्तसमये प्राप्ते पात्रं गव्यस्य सर्पिषाः।
क्षीरस्य वाम्भसः पूर्णं कृत्वा गुडफलान्वितं ॥

चकाराद्दध्नः।

षट् प्रमाणं यथाव्योस्ति कृत्तिका शङ्करं न्यसेत्*।
षट् प्रमाणं षट् कृत्तिकानामाणीत्यर्थः ॥
षट्कृत्तिका विमानानि स्वर्णं रौप्यमयानि च ॥
रत्नगर्भाणि कुर्याच्च स्वशक्त्या पाण्डुनन्दन।
प्रथमा स्वर्णं निष्पन्ना द्वितीयारौप्यनिर्म्मिता ॥
तृतीया रत्नघठिता चतुर्थी नवनीतजा।
पञ्चमीकणिकान्नेन षष्ठीपिष्टमयीकृता ॥
कृत्वा षट्कृत्तिकां पार्थ गन्धालक्तक भूषिताः।
रत्नगर्भाः कुङ्कुमाक्ताः पिष्टातस्तवकार्च्चिताः ॥
सिन्दूर चन्दनाभ्यक्ता—जाती पुष्पैस्तु पूजिता।

---

* कृत्तिका प्रकटमिति पुस्तकान्तरे पाठः

मन्त्रेणानेन ताः पूज्य विप्राय प्रतिपादयेत् ॥

ॐ सप्तर्षिदारा अनलस्य वल्लभा
या ब्राह्मणक्षत्रभावेन युक्ताः ।
तुष्टा कुमारस्य च मातरो याः
ममापि सुप्रीततराः सन्तु स्वाहा ॥

एवमुच्चार्य विप्राय देयास्तु कृत्तिका नृप ।
ब्राह्मणोपि प्रतीच्छेत मन्त्रेणानेन पाण्डव ॥
धर्म्मदाः कामदाः सन्तु इमा नक्षत्रमातरः ।
कृत्तिका दुर्गसंसारात्तारयन्तु भयादपि ।
अनेन विधिना दत्त्वा दृष्ट्वाचैवान्तरे स्थिताः ॥
विसृज्य ब्राह्मणं भक्त्या अनुव्रज्य पदानि षट् ।
निर्वर्त्य च कृतार्थश्च श्रियं सत्फलमाप्नुयात् ।
विमानेनार्कवर्णेन गत्वा नक्षत्रमण्डलं ॥
दिव्येन वपुषा तत्र स्रक्चन्दनविभूषितः ।
दिव्यनारीगणयुतः सुखमास्तेह्यनामयः ॥
देधूयमानश्चमरैः छत्रपङ्क्त्याविराजितः ।
पारिजातकमन्दारपुष्पमालाविराजित ॥
कृतार्थः परिपूर्णश्च तिष्ठेद्धर्षायुतहृदयं ।
नारी कृत्वा व्रतं चान्ते गत्वा स्वर्गं सभर्तृका ॥
क्रीड़ते सुभगा साध्वी सर्वभोगसमन्विता ।
यश्चैतच्छृणुयात्पार्थ भक्तियुक्तः समाहितः ॥
नारी वा पुरुषो वापि मुच्यते सर्व्वकिल्बिषैः ।

सौवर्णरौप्य मणिगोनवनीतसिद्धा
षट्कृत्तिकाः कणिकपिष्टमयीश्च कृत्वा।
पात्रे निधाय कुसुमाक्षतधूपदीपैः
संपूज्य जन्मगहनं न विशन्ति मर्त्याः।

इति भविष्यत्तरोक्तं कृत्तिकाव्रतं।

——oo@oo——

युधिष्ठिर उवाच।

किमर्थं फाल्गुनस्यान्ते पौर्णमास्यां जनार्द्दन।
उत्सवो जायते लोके ग्रामे ग्रामे पुरे पुरे॥
किमर्थं शिशवस्तस्याङ्गृहे गेहे निनादिताः।
होलाका दीप्यते कस्मात् फाल्गुन्यान्तु किमुच्यते॥
आड़ाड़ेतिकासंज्ञा शीतोष्णेति किमुच्यते।
कोह्यस्याम्पूज्यते देवः केनेयमवतारिता॥
किमस्यां क्रियते कृष्ण एतद्विस्तरतो वद॥

कृष्ण उवाच।

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि विस्तरेण पुरातनं।
चरितं होलिकायास्तु पारंपर्य्येणचागतं॥
आसीत् कृतयुगे पार्थ रघुर्नाम नराधिपः।
शूरः सर्व्वगुणोपेतः प्रियवादी बहुश्रुतः॥
स सर्वां पृथिवीं जित्वा वशीकृत्य नराधिपान्।
धर्म्मतः पालयामास प्रजाः पुत्रानिवौरसान्॥

न दुर्भिक्षं न च व्याधिर्नाकालमरणं नृणां।
नाधर्म्मरुचयः पापास्तस्मिन् शासति पार्थिवे॥
तस्यैवं शासतो राज्यं क्षत्रधर्म्मरतस्य वै।
सर्व्वलोकाः समागम्य त्राहि त्राहीति चाब्रुवन्॥

पौरा ऊचुः।

अस्माकं तु गृहे का चित् ढोण्ढानामेति राक्षसी।
दिवारात्रौ समागम्य बालान् पीडयते बहून्॥
रक्षया चोदकेनापि भैषज्यैर्वा नराधिप।
मन्त्रैः परमाचार्य्यैः सा नियन्तुं न शक्यते॥
पौराणां वचनं श्रुत्वा रघुर्व्विस्मयमागतः।
विस्मयाविष्टहृदयः पुरोहितमथाब्रवीत्॥

रघुरुवाच।

ढोण्ढेति राक्षसी केयं किं प्रभावा द्विजोत्तम।
कथमेषा नियन्तव्या मया दुष्कृतकारिणी॥
रक्षणात् प्रोच्यते राजा पृथिवीपालनात्पतिः।
अरक्षमाणः पृथिवीं राजा भवति किल्विषी॥

वशिष्ठ उवाच।

शृणु राजन् परं गुह्यं यन्नाख्यातं मया क्वचित्।
ढोण्ढानामेति विख्याता राक्षसी मालिनः सुता॥
तया वाराधितः शम्भुरुग्रेण तपसा पुरा।
प्रीतस्तामाह भगवान् वरं वरय सुव्रते॥

यत्ते मनोभिलषितं तद्दास्यविचारितं।
ढोण्ढा प्राह महादेवं यदि तुष्टः स्वयं मम॥
तदवध्यां सुरादीनां मनुजानाञ्च शङ्कर।
मां कुरुष्व त्रिलोकेश शस्त्राणाञ्च तथैवच॥
शीतोष्णवर्षसमये दिवारात्रौ वहिर्गृहे।
अभयं सर्वदा मे स्यात्त्वत्प्रसादान्महेश्वर॥
एवमस्त्वित्यथोक्तान्तां पुनः प्रोवाच शूलभृत्।
उन्मत्तेभ्यः शिशुभ्यश्च भयन्ते संभविष्यति॥
ऋतुसन्धौ महाभागे मा व्यथा हृदये कृथाः।
एवं दत्त्वा वरं तस्या भगवान् भगनेत्रहा॥
स्वप्ने ह्यर्थोप्यथोलब्धस्तत्रैवान्तरधीयत।
एवं लब्ध्वा वरं सा तु राक्षसी कामरूपिणी॥
नित्यं पीड़यते बालान् संस्मृत्य हरभाषितं।
अडाडया तु गृह्णाति सिद्धमन्त्रं कुटुम्बिनां॥
गृहेषु तेन सा लोके ह्यड़ाड़ेत्यभिधीयते।
पुंश्चलीनाञ्च नारीणां नराणाञ्च विशेषतः॥
रुधिरं नासिकाच्छेदाद्गलितं सा पिवत्यलं।
एतत्ते सर्व्वमाख्यातं ढ़ोढ़ायाश्चरितं महत्।
साम्प्रतं कथयिष्यामि येनोपायेन हन्यते॥
अद्य पञ्चदशी शुक्ला फाल्गुनस्य नराधिप।
शीतकालो विनिष्क्रान्तः प्रातर्ग्रीष्मो भविष्यति॥
अभयं सर्व्वलोकानां दीयतां पुरुषर्षभ।
तथाह्यशंकिता लोका हसन्तु च रमन्तु च॥

दारुणानि च खड्गानि गृहीत्वा समरोत्सुकः ।
योधा इव विनिर्य्यान्तु शिशवः संप्रहर्षिताः ॥
सञ्चयं शुष्ककाष्ठानां पलालानाञ्च कारयेत् ।
तत्राग्निं विधिवद्धुत्वा रक्षोघ्नैर्मन्त्रविस्तरैः ॥
ततः किलिकिलाशब्दैस्तालीशब्दैर्मनोहरैः ।
तमग्निं त्रिःपरिक्रम्य गायन्तु च हसन्तु च ॥
जल्पन्तु स्वेच्छया लोकाः निःशङ्का यस्य यन्मतं ।
भगैर्बहुविधैः शब्दैः कीर्त्तयन् देशभाषया ॥
विस्तारयंश्च गायंश्च सहस्रं नाम तस्य वै ।
तेन शब्देन सा पापा होमेन च निराकृता ॥
अट्टाट्टहासैर्डिम्भानां राक्षसी क्षयमेष्यति ।
तस्यैवं वचनं श्रुत्वा स नृपः पाण्डुनन्दन ॥
सर्व्वं चकार विधिवद्यदुक्तन्तेन धीमता ।
गता सा राक्षसी नाशन्तेन चोग्रेण कर्म्मणा ॥
ततः प्रभृति लोकेऽस्मिन्नडाडाख्यातिमागता ।
सर्व्वदुष्टप्रमोहोमः सर्व्वरोगोपशान्तिदः ॥
क्रियतेऽस्यां द्विजैःपार्थ तेन सा होलिका स्मृता ।
सर्व्वसारा तिथिश्चेयं पौर्णमासी युधिष्ठिर ॥
सारत्वात्सर्व्वलोकानां परमानंददायिनी ।
अस्यां निशागमे पार्थ संरक्ष्याः शिशवो गृहे ॥
गोमयेनोपलिप्ते च सचतुष्के गृहाङ्गणे ।
आकारयेच्छिशुप्रायान् खड्गव्यग्रकरान्नरान् ॥
खड्गकाष्ठैश्च संस्पृश्य गीतैर्हास्यकरैः शिशून्

रचन्ति तेषां दातव्यं गुडपक्वान्नमेव च॥
एवं ढौण्ढेति राचस्या दोषः प्रशमनं व्रजेत्।
बालानां रचणं कार्य्यं तस्मात्तस्मिन् चमालये॥

युधिष्ठिर उवाच।

प्रभाते किं जनैर्देव कर्त्तव्यं सुखमीप्सुभिः।
प्रवृत्ते माधवे मासि प्रतिपद्युदिते रवौ॥

कृष्ण उवाच।

कृत्वावश्यककार्य्याणि सन्तर्प्य पितृदेवताः।
बन्दयेद्धोलिकाभूतिं सर्व्वदुष्टोपशान्तये॥
मन्त्रेणानेन राजेन्द्र पठ्यमानं निबोध मे।
वन्दितासि सुरेन्द्रेण ब्रह्मणा शङ्करेण च।
अतस्त्वं पाहि नो देवि विभूते भूतिदा भव॥
मण्डिते चर्च्चिते चैव उपलिप्ते गृहाजिरे।
चतुष्कङ्कारयेत् स्वच्छं वर्णकैश्चाचतैः शुभैः॥
तन्मध्ये स्थापयेत्पीठं शुक्लवस्त्रोत्तरच्छदं।
अग्रतः पूर्णकलशं स्थापयेत्पल्लवैर्युतं।
साचतं सहिरण्यञ्च सितचन्दनचर्च्चितं।
आसने चोपविष्टस्य ब्रह्मघोषेण भारत।
चर्च्चयेच्चन्दनैर्नारी अव्यङ्गाङ्गा सुलचणा॥
पद्मरागोत्तरपटा श्रेष्ठांशुकविभूषिता।
वपुराद्यं शिरोऽन्तञ्च दधिदूर्व्वाचतान्वितं॥
वर्द्धापयित्वा श्रीखण्डमायुरारोग्यवृद्धये।

वपुराद्यं शिरोऽन्तमिति पादादारभ्यमूर्द्धपर्य्यन्तं चन्दनेन चर्च्चयेदित्यर्थः तच्चन्दनं वर्द्धायित्वा किञ्चिदवशेष्य।

पश्चाच्च प्राशयेद्विद्वान् चूतपुष्पं सचन्दनं।
मनोभवस्य सा पूजा ऋषिभिः सम्प्रदर्शिता॥
यत्पिबन्ति वसन्तादौ चूतपुष्पं सचन्दनम्।
सत्यं सत्यस्य कामस्य पूजेयं क्रियते जनैः॥

प्राशनमन्त्रश्च।

इदमग्र्यं वसन्तस्य माकन्दकुसुमं तव।
सचन्दनं पिबाम्यद्य सर्व्वकामसमृद्धये॥
अनन्तरं द्विजेन्द्राणां सूतमागधवन्दिनां।
दद्याद्दानं यथाशक्त्या कामो मे प्रीयतामिति॥
ततो भोजनवेलायां सूतपाकेन तेन हि।
प्राशयेत् प्रथमं चान्नं ततो भुञ्जीत कामतः॥
य एवं कुरुते पार्थ शास्त्रोक्तं फाल्गुनोत्सवं।
अनायासेन सिध्यन्ति तस्य सर्व्वे मनोरथाः॥
आधयो व्याधयश्चैव यान्ति नाशं न संशयः।
पुत्रपौत्रसमायुक्तः सुखं तिष्ठति मानवः॥
पुण्या पवित्रा सर्व्वत्र सर्व्वविघ्नविनाशिनी।
एवं ते कथिता पार्थ तिथीनामुत्तमा तिथिः॥
वृत्ते तुषारसमये सितपञ्चदश्यां
प्रातर्व्वसन्तसमये समुपस्थिते च।
सम्प्राश्य चूतकुसुमं सह चन्दनेन।

सत्यं हि पार्थ पुरुषोऽथ समां सुखी स्यात्।

समां वर्षन्तु यावत्।

इति भविष्योत्तरपुराणोक्तहोलिकोत्सवविधिः।

——ooo——

युधिष्ठिर उवाच।

रक्षावन्धविधानं मे किञ्चित् कथय केशव।
दुष्टप्रेतपिशाचानां येनाधृष्यो भवेन्नरः॥
सर्व्वरोगोपशमनं सर्व्वाशुभविनाशनं
सकृत्कृतेनाब्दमेकं येन रक्षा कृता भवेत्।

कृष्ण उवाच।

शृणु पाण्डवशार्द्दूल इतिहासं पुरातनं।
इन्द्राण्या यत् कृतं पूर्व्वं शक्रस्य जयवृद्धये॥
देवासुरमभूद्युद्धं पुरा द्वादशवार्षिकं।
तत्रासुरैर्जितः शक्रः सह सर्वैः सुरोत्तमैः॥
परित्यज्यामरैःस्वर्गं सर्व्वालङ्कारवर्जितः।
प्राप्यामरावतीं तस्थौ प्राणत्राणपरायणः॥
ततो दानवराजेन त्रैलोक्यं स्ववशीकृतं।
इदमुक्ताः समानाय्य शृणुध्वं सनरामराः॥
मां यजध्वंस्तुविध्वञ्च अहं पूज्यः सुरासुरैः।
यः शक्रः सम्यगातिष्ठेत्सगच्छेद्दध्यतां मया॥
दानवेश्वरवाक्येन नष्टाः सर्व्वाः क्रियास्ततः।
स्वाहाकारस्वधाकारवषट्कारादिकाश्च याः॥

नाधीयत तथा वेदा नपूज्यन्तच देवताः ।
उत्सवा न प्रवर्त्तन्ते सर्वमासीदसंष्ठुलं ॥
धर्म्मनाशे सुरेशस्य वलहानिरजायत ।
ज्ञात्वा हीनवलं सर्वं दानवाः समभिद्रवन् ॥
सोऽभिद्रुतोऽसुरगणै स्त्यक्तराज्योऽपि देवराट् ।
वृहस्पतिमुपामन्त्र्य इदं वचनमब्रवीत् ॥
न स्थातुमत्रशक्नोमि न गन्तुं तैरभिद्रुतः ।
सर्वथा योद्धुमिच्छामि यद्भाव्यं तद्भविष्यति ॥
नश्यते युद्धतो वापि तावद्भवति जीवितं ।
तावद्धातास्तृजत् पूर्वं न यावन्मनसीप्सितं ॥
जयं मे शंसते ब्रह्मन् योत्स्येऽहं दानवैः सह ।
मुहूर्त्तं ज्वलितं श्रेयो येन धूमायितं चिरं ॥
कर्म्मायत्तं सुरैश्वर्य्यं पौरुषं कर्म्मचोच्यते ॥
तदद्याहं करिष्यामि ध्रुवं श्रेयो भविष्यति ।
श्रुत्वा सुरपतेर्वाक्यं वृहस्पतिरथाब्रवीत् ॥

वृहस्पतिरुवाच ।

न कालोविक्रमस्याद्य त्यजकोपं पुरन्दर ।
देश काल विहीनानि कार्य्याणि विपरीतवत् ॥
क्रियमाणानि दूष्यन्ति सोऽनर्थः सुमहान् भवेत् ।

इन्द्र उवाच ।

ब्रह्मन् किं वहुनोक्तेन योत्स्येऽहं सह दानवैः ।
नृणां कार्य्यसमारम्भे श्रेयसौत्सुक्यचित्तता ॥
गुणदोषावुभावेतावेकीकृत्य विचक्षणैः .

कार्य्यमारभ्यते यत्तु तस्य दोषाः पराङ्मुखाः॥
तयोः संवदतोरेवं शचीप्राह सुरेश्वरं।
अद्य भूतदिनं देव प्रातः पर्व्व भविष्यति॥
अहं रक्षां विधास्यामि जयो येन भविष्यति।
पौलम्यास्तु वचः सर्व्वं कृतवान् बलवृत्रहा॥
पौर्णमास्यां ततः प्रातः पौलोमीकृतमङ्गला।
बबन्ध दक्षिणे पाणौ रक्षापोठलिकां शुभां॥
बद्धरक्षस्ततः शक्रः कृतस्वस्त्ययनो द्विजैः।
आरुह्यैरावतं नागं निर्ज्जगाम सुरारिहा॥
संप्राप्य दानवानीकं नाम विश्राव्य चात्मनः।
पातयामास शत्रूणां शिरांसि निशितैः शरैः॥
तं दृष्ट्वा सहसायातं दानवाः संप्रहर्षिताः।
अभिजग्मुः शितैर्वाणैः शक्रं बर्हिणवाजिनैः॥
उवाच दानवान् सर्व्वान् प्रह्लादो दानवेश्वरः।
दिष्ट्याद्य भवतां प्राप्तिर्ब्रह्महा दृष्टिगोचरः॥
* हतेनमेकीकृत्याशु रथवंशेन दानवाः।

रथवंशेन रथसमुदायेन॥

यावन्न नश्यते पापस्तावद्यत्नो विधीयतां।
दानवेश्वरवाक्येन ततस्ते दनुनन्दनाः॥
त्यक्त्वा मौनं महात्मानः शक्रमाहुरहंहताः।
ततः शचीपतिः क्रुद्धो वज्रमुद्यम्य भास्वरं॥
जघान दानवानीकं क्षणात् कालइव प्रजाः।

* घतैनमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

वध्यमानाः सुरेशेन दानवास्ते महाबलाः॥
अत्यन्तभयसन्त्रस्ताः कालोयमिति मोहिताः।
केचित्समुद्रं विविशुर्गहनं केचिदाश्रिताः॥
केचिल्लम्बितमूर्द्धानो नग्ना भूत्वा वनेऽवसन्।
दयाधर्म्मं प्रब्रुवाणा निर्ग्रन्थव्रतमाश्रिताः॥
हेतुवादपरा मूढ़ा वञ्चयन्तः प्रजागणान्।
एवं निर्ज्जितदैतेयान् शक्रःस्वस्थानमागतः॥
त्रैलोक्यं पालयामास पूज्यमानः सुरासुरैः।
हतहर्षा सुरेन्द्रेण शुक्रं शरणमागताः॥
प्रणम्य कथयामासुर्ज्जितोऽहं समरेऽरिणा।
ब्रह्मर्षे हीनवीर्य्येण शक्रेणापि जितो यतः॥
तस्माद्धिक् पौरुषं लोके दैवं हि बलवत्तरं।

शुक्र उवाच।

विषादं माकृथा दैत्याः कार्य्याणां गतिरीदृशी।
दैवाद्भवतो भूतानां काले जयपराजयौ॥
सन्धानं सह शक्रेण नेदानीमुचितं भवेत्।
अजेयः सर्व्वशत्रूणां कृतः शच्या शचीपतिः॥
रक्षाबन्धप्रभावेण दानवेन्द्रो जितो महान्।
वर्षमेकं प्रतीक्षध्वं ततः श्रेयो भविष्यति॥
भार्गवेणैव मुक्तास्ते दानवा विगतज्वराः।
तस्थुः कालं प्रतीक्षन्तो यथोक्तं गुरुणा तथा॥
एष प्रभावो रक्षायाः कथितस्ते युधिष्ठिर।
जयदः सुखदश्चैव पुत्रा,रोग्य,धनप्रदः॥

युधिष्ठिर उवाच।

क्रियते केन विधिना रक्षाबन्धः सुरोत्तम।
कस्यां तिथौ कदा देव एतन्मे वक्तुमर्हसि॥
यथा यथा हि भगवन् विचित्राणि प्रभाषसे।
तथा तथा न मे तृप्तिर्बह्वर्थाः शृण्वतः कथाः॥

कृष्ण उवाच।

घनावृतेऽम्बरे पार्थ शाद्वले धरणीतले।
संप्राप्ते श्रावणे मासि पौर्णमास्यां दिनोदये॥
स्नानं कुर्व्वीत मतिमान् श्रुतिस्मृतिविधानतः।
ततो देवान् पितॄंश्चैव तर्पयेत्परमाम्भसा॥
उपाकर्म्मादिचैवोक्तमृषीणाञ्चैव तर्पणं।
कुर्व्वीत ब्राह्मणः श्राद्धं वेदानुद्दिश्य सुव्रत॥
शूद्राणां मन्त्ररहितं स्नानं दानञ्च शस्यते।
ततोऽपराह्णसमये रक्षापोटलिकां शुभां॥
कारयेदक्षतैः शस्तैः सिद्धार्थैर्हैमभूषितां।
वस्त्रैर्व्विचित्रैः कार्पासैः क्षौमैर्व्वा मलवर्ज्जितैः॥
विचित्रतन्तुग्रथितां स्थापयेद्राजतोपरि।
कार्य्या गृहस्य रक्षा, गोमयोपरचितैः सुवृत्तकुण्डलकैः॥
दूर्व्वावर्णसहितैस्त्रिचा दुरितोपशमनाय।
उपलिप्ते गृहे देशे दत्तचतुष्के न्यसेत् कुम्भं।
पीठं दत्त्वोपरि विशेत् राजामात्यैर्युतश्च सुमुहूर्त्ते॥
वेश्याजनेन सहितो मङ्गलशब्दैः समुच्छ्रितैश्चिह्नैः।
रक्षाबन्धः कार्य्यः शान्तिध्वनिना नरेन्द्रस्य॥

देवद्विजातिशस्ताख्यस्त्वै रक्षाभिरर्चयेत् प्रथमं।
तदनु पुरोधा नृपतेः रक्षाम्बध्नीत मन्त्रेण॥
येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः।
तेन त्वामभिबध्नामि रक्षे माचल माचल॥
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चान्यैश्च मानवैः।
कर्त्तव्यो रक्षिकाबन्धो द्विजान् संपूज्य शक्तितः॥
अनेन विधिना यस्तु रक्षाबन्धनमाचरेत्।
स सर्व्वदोषरहितः सुखी सम्वत्सरं भवेत्॥

य: श्रावणे श्रवति शीतजलं सुरेन्द्रे
रक्षाविधानमिदमाचरते मनुष्यः।
आस्ते सुखेन परमेण स वर्षमेकं
स पुत्रपौत्रसहितः ससुहृज्जनश्च॥

इति भविष्योत्तरे रक्षाबन्धन पौर्णमासीव्रतं।

———000———

कृष्ण उवाचेत्यनुवृत्तौ।

पञ्च पञ्चदशीः स्थित्वा एकभक्तेन मानवः।
संपूज्य पूर्णिमां देवीं लिखितां चन्दनादिना॥
पूर्णिमाप्रतिमा तु परिभाषायां द्रष्टव्या।
ततः पञ्च घटान् पूर्णान् पयोदधिघृतेन च॥
मधुना सितखण्डेन ब्राह्मणायोपपादयेत्।
मनोरथान् पूरयस्व यथा त्वं पूर्णिमाह्यसि॥
पञ्चकुम्भप्रदानेन भूतानां तुष्टिरस्तु मे।

दानमन्त्रः ।

।द्विजानेवं नमस्कृत्य सर्व्वान् कामानवाप्नुयात् ।
एतत् पञ्चघटं नाम व्रतं तुष्टिप्रदायकं॥

## इति भविष्योत्तरे पञ्चघटपूर्णिमाव्रतं ।

———000———

कृष्ण उवाचेत्यनुवृत्तौ ।

तिं शक्रसंपूज्य दम्पत्यान्युपवासी विभूषणैः ।
पौर्णमास्यामवाप्नोति मोक्षमिन्द्रव्रतादिह* ॥

## इति भविष्योत्तरे इन्द्रपौर्णमासीव्रतं ।

———

शङ्कर उवाच ।

महत्पूर्व्वा भवत्येषा पौर्णमासी द्विजोत्तम ।
प्रतिसंवत्सरं तस्याः सोपवासो जनार्द्दनं ॥
यः पूजयति धर्म्मज्ञ तेन संवत्सरं हरिः ।
पूजितः पौर्णमासीषु भवतीति विनिश्चयः ॥
तस्यां दानं स्वल्पमपि महद्भवति भार्गव ।
दानं तप्त जपो होमो यच्चान्यत्सुकृतं भवेत् ॥

भार्गव उवाच ।

संवत्सरे पौर्णमासी महापूर्व्वा वृषध्वज ।
कथं ज्ञेया जगन्नाथ तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥

---

* स्वर्गमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

शङ्कर उवाच ।

यस्यां पूर्णेन्दुना योगं याति जीवो महाबलः ।
पौर्णमासीति सा ज्ञेया महापूर्व्वा द्विजोत्तमैः ॥

जीवो वृहस्पतिः

## इति भविष्यत्पुराणे महापौर्णमासीव्रतं ।

———ooo———

ऋषय ऊचुः ।

श्रुतमेतत्त्वयाख्यातं पशुपाशविमोचणं ।
व्रतं पाशुपतं लैङ्गं पुरा दैवैरनुष्ठितं ॥
वक्तुमर्हसि चास्माकं यथापूर्व्वं त्वया श्रुतं ।

सूत उवाच ।

पुरा सनत्कुमारेण शैलादि स्पृष्टवान् प्रभुः ।
नन्दी प्राह च तस्मै यत् प्रवक्षामि समासतः ॥
देवैर्दैत्यै स्तथायक्षै र्गन्धर्व्वैः सिद्धचारणैः ।
ऋषिभिश्च महाभागैरनुष्ठितमनुत्तमम् ॥
व्रतं द्वादशलिङ्गाख्यं पशुपाशविमोचणं ।
भोगदश्चैव भक्तानां कामदं मोक्षदं शुभम् ॥
अवियोगकरं पुण्यं भक्तानां भयनाशनं ।
देवैरनुष्ठितं पूर्व्वं ब्रह्मणा विष्णुना तथा ॥
कृत्वा कनीयसं लिङ्गं स्नाप्य चन्दनवारिणा ।
चैत्रमासादि विप्रेन्द्राः शिवलिङ्गव्रतं शुभम् ॥
कृत्वा हैमं शुभं पद्मं कर्णिकाकेसरान्वितम् ।

नवरत्नैस्तु खचितमष्टपत्रं यथाविधि॥
कर्णिकायां न्यसेल्लिङ्गं स्फाटिकं पीठसंयुतं।
तत्र भक्त्या यथान्यायमर्च्चयेद्बिल्वयन्त्रकैः॥
सितैः सहस्रकमलैरक्तैर्नीलोत्पलैरपि।
जातैरन्यैर्यथालाभं गायत्र्या स्नाप्य सुव्रत॥
संपूज्य चैव गन्धाद्यैर्धूपदीपैश्च मङ्गलैः।
नीराजनीयैश्चान्यैश्च लिङ्गमूर्त्तिं महेश्वरम्॥
अगरुं दक्षिणे दद्यादघोरेण द्विजोत्तमः।
पश्चिमे सद्यमन्त्रेण दद्याच्चैव मनःशिलां॥
उत्तरे वामदेवाय चन्दनञ्चापि दापयेत्।
पुरुषेण मुनिश्रेष्ठ हरितालञ्च पूर्व्वतः॥
सितागुरूद्भवं विप्रा स्तथा कृष्णागुरोर्भवम्।
तथा गुग्गुलधूपञ्च दद्यादीशाय भक्तितः॥
महाचरुं निवेद्यास्माढकान्नमथापि वा।
एतद्वः कथितं पुण्यं शिवलिङ्गं महाव्रतं॥
सर्व्वमासेषु सामान्यं विशेषोऽपि च कीर्त्त्यते।
वैशाखे वज्रलिङ्गन्तु ज्यैष्ठे मरकतं शुभम्॥
आषाढे मौक्तिकं लिङ्गं श्रावणे नीलनिर्मितं।
मासि भाद्रपदे लिङ्गं पद्मरागमयं शुभम्॥
आश्विने चैव विप्रेन्द्रा गोमेदकमयं शुभम्।
प्रवालेन च कार्त्तिक्यां तथा वै मार्गशीर्षके॥
माघे च सूर्य्यकान्तेन फाल्गुने स्फाटिकेन तु।
सर्व्वमासेषु कमलं हैममेकं विधीयते ।

अलाभे राजतञ्चापि विल्वपत्रैः प्रपूजयेत्।
रत्नानामप्यलाभे तु हेम्ना वा रजतेन वा॥
रजतस्याप्यलाभे तु ताम्रलोहेन कारयेत्।
शैलं वा दारुजं वापि मृण्मयं वा सवेदिकम्॥
सर्व्वगन्धमयं वापि क्षणिकं परिकल्पयेत्।
हैमन्तिके महादेवं श्रीपत्रेणैव पूजयेत्॥

श्रीपत्रं कमलं।

सर्व्वमासेषु कमलं हैममेकमथापि वा।
राजतं वापि कमलं हेमकर्णिकमुत्तमम्॥
रजतस्याप्यलाभे तु विल्वपत्रैश्च पूजयेत्।
सहस्रकमलालाभे तदर्द्धेनापि पूजयेत्॥
तदर्द्धार्द्धेन वा रुद्रमष्टोत्तरशतेन वा।
विल्वपत्रे स्थिरा लक्ष्मीर्देवी लक्षणसंयुता॥
नीलोत्पले विशालाक्षी उत्पले षण्मुखः स्वयं।
पाद्यैर्गणैर्म्महादेवः सर्व्वदेवपतिः शिवः॥
तस्मात्सर्व्वप्रयत्नेन श्रीपत्रं न त्यजेद्बुधः।
नीलोत्पलं श्वेतपद्ममुत्पलञ्च विशेषतः॥
सर्व्ववश्यकरं वारः शिला सर्व्वार्थसिद्धिदा।
कृष्णागरुसमुद्भूतं सर्व्वपापनिकृन्तनं॥
गुग्गुलप्रभृतीनाञ्च धूपानाञ्च निवेदनं।
सर्व्वरोगक्षयकरश्चन्दनं सर्व्वसिद्धिदं॥
सौगन्धिकं तथा धूपं सर्व्वकामप्रसाधनं।
श्वेतागुरूद्भवञ्चैव तथा कृष्णागुरूद्भवं॥

सौम्यं सितारधूपञ्च साक्षान्निर्व्वाणसिद्धिदं।
श्वेतार्ककुसुमे साक्षाच्चतुर्व्वक्त्रः प्रजापतिः॥
कर्णिकारस्य कुसुमे मेधा साक्षादवस्थिता।
करवीरे गणाध्यक्षो बके नारायणः स्वयं॥
सुष्टुगन्धिषु सर्व्वेषु कुसुमेषु नगात्मजा।
तस्मादेतैर्य्यथालाभपुष्पैर्धूपादिभिस्तथा।
पूजयेद्देवदेवेशं भक्त्या वित्तानुसारतः।
निवेदयेत्ततो भक्त्या पायसञ्च महाचरुं॥
सघृतं सोपदंशञ्च सर्व्वद्रव्यसमन्वितं।
शुद्धान्नञ्चापि मुद्गान्नं आढक्यबन्धकन्तु वा॥
उपहाराणि पुष्पाणि न्यायेनैवार्ज्जितानि च।
नानाविधानि चान्नानि प्रोक्षितान्यम्भसा ततः॥
क्षीराज्यैः सर्व्वदेवानां स्थित्यर्थममृतं कृतं।
विष्णुना जिष्णुना साक्षात्तोयेषु सुप्रतिष्ठितं॥
तस्मात्संपूजयेद्देवमन्ने प्राणः प्रतिष्ठितः।
उपहारे तथा पुष्टिर्व्यजने पवनः स्वयं॥
सर्व्वात्मको महादेवो गन्धतोये ह्युमापतिः।
पटे वै प्रकृतिः साक्षान्महादेवी व्यवस्थिता॥
तस्माद्देवं यजेद्भक्त्या प्रतिमासं यथाविधि।
पौर्णमास्यां पौर्णमास्यां सर्व्वकार्य्यार्थसिद्धये॥
सत्यं शौचन्दयाक्षान्तिः सन्तोषो दानमेव च।
पौर्णमास्यां तथा विप्रा उपवासञ्च कारयेत्।
सम्वत्सरान्ते गोदानं वृषोत्सर्गं विशेषतः॥

भोजयेद्ब्राह्मणान् भक्त्या श्रोत्रियान् वेदपारगान्।
तल्लिङ्गं पूजितं तेन सर्व्वद्रव्यसमन्वितं॥
स्थापयेद्वा शिवक्षेत्रे दद्याद्वा* ब्राह्मणाय च।
एवं सर्व्वेषु मासेषु शिवलिङ्गं महाव्रतं॥
कुर्य्याद्भक्त्या मुनिश्रेष्ठास्तदेव तपसां परं।
सूर्य्यकोटिप्रतीकाशैर्व्विमानै रत्नभूषितैः॥
गत्वा शिवपुरं दिव्यं नेहायाति कदाचन।
अथ वा ह्येकमासे† च चरेदेवं व्रतोत्तमं॥
शिवलोकमवाप्नोति नात्र कार्य्या विचारणा।
अथवापि वित्तहीनस्तल्लिङ्गं चिन्तयेन्नरः॥
वर्षमेकं वरं देवं स्थानं प्राप्य शिवं व्रजेत्।
देवत्वञ्च पितृत्वञ्च देवराजत्वमेव च॥
गाणपत्यं पदं वापि शक्तोपि लभते नरः।
विद्यार्थी लभते विद्यां भोगार्थी भोगमाप्नुयात्॥
द्रव्यार्थी च धनं पुण्यआयुः कामांश्च नित्यजान्।
यान्यांश्चिन्तयते कामांस्तांस्तान् प्राप्येह मोदते॥
एकमासव्रतादेव चान्ते रुद्रमवाप्नुयात्।
इदं पवित्रं परमं रहस्यं
व्रतोत्तमं विश्वसृजा च दृष्टं।
हिताय देवासुरमर्त्त्यसिद्ध
विद्याधराणां परमं शिवेन॥

* दापयेदिति पुस्तकान्तरे पाठः।

† अथवाद्येकमासेवेति पुस्तकान्तरे पाठः।

संपूज्य देवं विधिनैव मोशं
प्रणम्य मूर्द्ध्ना सह भृत्यपुत्रैः ।
व्यपोहनं नाम जपस्तवञ्च
प्रदक्षिणीकृत्य शिवं प्रयत्नात् ॥
पुरा कृतो विश्वसृजा स्तवश्च
हिताय देवेन जगत्त्रयस्य ।
पितामहेनैव सुरेन्द्रसार्द्धं
महानुभावात्तु महार्हमेतत् ॥

अधिहत्या स्तवं वक्ष्ये सर्व्वसिद्धिप्रदं शुभं ।
नन्दिनश्च मुखात् श्रुत्वा कुमारेण महात्मना ॥
व्यासेन कथितं तस्मादहुमानेन वा श्रुतं ।
नमः शिवाय शुद्धाय निर्म्मलाय यशस्विने ॥
वृषान्तकाय सर्व्वाय भवाय परमात्मने ।
पञ्चवक्त्रो दशभुजो ह्यक्षिपञ्चदशैर्युतः ॥
शुद्धस्फटिकसङ्काशः सर्व्वाभरणभूषितः ।
सर्व्वज्ञः सर्व्वगः शान्तः सर्व्वोपरि सुसंस्थितः ।
पद्मासनस्थः सोमोऽयं पापमाशु व्यपोहतु ॥
ईशानः पुरुषश्चैव अघोरः सद्य एव च ।
वामदेवश्च भगवान् पापमाशु व्यपोहतु ॥
अनन्तः सर्व्वविद्येशः स मे पापं व्यपोहतु ।
एको रुद्रो ह्येकगुरुस्त्रैलोक्यानुमितो विधुः ॥
शिवध्यानैकसंपन्नः स मे पापं व्यपोहतु ।
त्रिमुर्त्तिर्भगवानीशः शिवभक्तिप्रबोधकः ।

शिवध्यानैकसम्पन्नः स मे पापं व्यपोहतु॥
श्रीकण्ठः श्रीपतिः श्रीमाञ्छिवध्यानरतः सदा।
शिवास्यनुरतः साक्षात्स मे पापं व्यपोहतु॥
शिखण्डी भगवान् शान्तः शिवभस्मानुलेपनात्।
शिवार्च्चनरतः श्रीमान् स मे पापं व्यपोहतु॥
त्रैलोक्यनामिता देवी ओंकारा च पुरातनी।
दाक्षायणी महादेवी गौरी हैमवती शुभा॥
एकवर्णाग्रजा माया पाटलायास्तथैव च।
अपर्णा वरदा देवी वरदानैकतत्परा॥
उमासुरहरी साक्षात् काशीस्था पापमर्द्दिनी।
खट्वाङ्गधारिणी देवी कराग्रतनुपल्लवे।
नैष्कर्म्मकादिभिर्द्दिव्यैस्तनुभिः पुत्रकैर्वृता॥
मेनया नन्दया देवी कालिका वारिजेक्षणा।
अम्बा या वीतशोकस्य नन्दिनश्च महात्मनः।
शुभावत्या सुशीर्षा वा पञ्चचूड़ा वरप्रदा॥
सृष्ट्यर्थं सर्व्वभूतानां प्रकृतिश्च गताव्यया।
त्रयोविंशतिभिस्तत्त्वैर्महदाद्यैर्व्विजृम्भिता॥
लक्ष्म्यादिशक्तिभिर्नित्यं नमिता नगनन्दिनी।
मनोन्मथी महादेवी माया वा मण्डनप्रिया।
मायया हि जगत्सर्व्वं ब्रह्माद्यं सचराचरं॥
क्षोभनी मोहनी नित्यं योगिनीहृदि संस्थिता।
एकादशे स्थिता लोके इन्दीवरनिभेक्षणा॥
भक्त्या परमया नित्यं सर्व्वदेवैरभिष्टुता।

गणेन्द्राम्भोजगर्भेन्द्रयमवित्तेशपूर्व्वकैः ॥
सम्भूता जननी तेषां सर्व्वोपद्रवनाशिनी।
भक्तानामार्त्तिहा भव्या भवभावविलासिनी॥
भुक्तिदा मुक्तिदा देवी भक्तानामभयप्रदा।
सा मे साक्षादुमा देवी पापमाशु व्यपोहतु॥
चण्डसर्व्वगणेशानो मुखाच्छम्भोर्व्विनिःसृतः।
शिवार्च्चनरतः श्रीमान् स मे पापं व्यपोहतु॥
सालङ्कायनपात्रस्य हृलमग्नो स्थितः प्रभुः।
याम्यतां मनुतान्देवः सर्व्वभूतगणेश्वरः॥
सर्व्वदः सर्व्वगः सर्व्वप्रभवः प्रभुरीश्वरः।
सनारायणकैर्द्देवैः सेन्द्रचन्द्रदिवाकरैः॥
सर्व्वैश्च यक्षगन्धर्व्वैर्भूतैर्भूतिविधायकैः।
उरगैर्ऋषिभिश्चैव ब्रह्मणा च महात्मना॥
स्तुतस्त्रैलोक्यनाथस्तु मुनिरन्तः पुरे स्थितः।
सर्व्वदा पूजितः सर्व्वैर्नन्दी पापं व्यपोहतु॥
महाकालो महातेजा महादेवइवापरः।
शिवार्च्चनरतः श्रीमान् स मे पापं व्यपोहतु॥
वृषभो मुनिशार्दूलः शिवध्यानपरायणः*।
शिवार्च्चनरतो नित्यं स मे पापं व्यपोहतु॥
मेरुमन्दरसङ्काशनवकोटिप्रमाणतः।
ऐरावतादिभिर्द्दिव्यैर्द्दिव्यैर्योगसमन्वितैः॥
बद्धा हृत्पुण्डरीकाक्षेस्तम्भे वृत्तिं निरुध्य च।

* प्रभावत इति पुस्तकान्तरे पाठः।

गजेन्द्रवक्त्रो यः साक्षाद्रा सप्तपाताल पादकः ॥
सप्तद्वीपोभुजङ्गकाः।
सप्तार्णवकुक्ष्यश्चैव सर्व्वतीर्थानुगः शिवः।
आकाशा वा देवो दिवो दिग्बाहुः सोमसूर्य्याग्निलोचनः ॥
हतासुरा महावृक्षा महाविद्या महोत्कटाः।
ब्रह्मोद्या धारणैर्द्दिव्यै र्य्योगपाशसमन्वितः ॥
वृद्धो हृत्पुण्डरीकाक्षस्तम्बे वृत्तिनिवृत्ति च।
गजेन्द्रवक्त्रो यः साक्षाद्गणकोटिशतैर्वृतः ॥
शिवध्यानैकसम्पन्नः स मे पापं व्यपोहतु।
भृगीशः पिङ्गलाक्षोऽसौ भसितासिक्तदेहयुक् ॥
शिवार्च्चनरतः श्रीमान् स मे पापं व्यपोहतु।
चतुर्भिस्तनुभिर्नित्यं सर्व्वारिविनिमर्द्दनः ॥
स्कन्दः शक्तिधरः शान्तः सेनानीर्गजवाहनः।
शिवासेमापतिः श्रीमान् स मेपापं व्यपोहतु ॥
मन्वाशर्व्वस्तथेशानो रुद्रः पशुपतिस्तथा।
उग्रो भीमो महादेवः शिवार्च्चनरतः सदा।
ये ते पापं व्यपोहन्तु मूर्त्तयः परमेष्ठिनः ॥
महादेवः शिवो रुद्रः शतमुर्नीललोहितः।
ईशानो विजयो भीमो देवदेवोभवोद्भवः ॥
कपोशश्चदिवाकरः।
एतेवै भैरवाद्यास्तु रुद्रारुद्रसमा भवाः।
शिवप्राणसमापन्ना व्यपोहन्तु मलं मम ॥
वैकर्त्तनो विवस्वांश्च मार्त्तण्डो भास्करो रविः।

लोकप्रकाशकश्चैव लोकसाक्षी त्रिविक्रमः॥
आदित्यश्च तथा सूर्य्यः अंशुमांश्च दिवाकरः।
एते वै द्वादशादित्या व्यपोहतु मलं मम॥
गगनःस्पर्शनस्तेजो रसश्च पृथिवीरुहा।
चन्द्रः सूर्य्यस्तथा चात्मा वसवः शिवभाविताः॥
पापं व्यपोहन्तु मलं भयं नानाविधं मम।
वसवः पावकश्चैव चयोनैर्ऋतिरेवच॥
वरुणो वायुः सोमश्च ईशानो भगवान् हरिः।
पितामहश्च भगवान् शिवध्यानपरायणः॥
एते पापं व्यपोहन्तु मनसा कर्म्मणा कृतं।
गभस्तिस्पर्शनो वायुरनिलो मरुतस्तथा॥
प्राणोपानश्च जीवेशो मरुतश्चैव भाषिताः॥
शिवार्च्चनरतः सर्व्वो व्यपोहन्तु मलं मम।
खेचरी वसुचारी च ब्रह्मद्दा ब्रह्मवित्सुधीः॥
सुषेणः शाश्वतः पुष्टः अपुष्टश्च महाबलः।
एते वै चारणाः शम्भोः पूजयातीव शोभिनः॥
व्यपोहन्तु मलं सर्व्वं पापञ्चैव मया कृतं।
मन्त्रज्ञो मन्त्रवित्प्राज्ञो हंसराट् सिद्धपूजितः॥
सिद्धिवित्परमः सिद्धिः सर्व्वसिद्धिप्रदायिनः।
व्यपोहन्तु मलं सर्व्वं सिद्धाः शिवपदार्च्चकाः॥
यक्षो यक्षेशधनदो जम्भनो मणिभद्रकैः।
पूर्णभद्रःस्वैरमाली शिविः पुण्डलिरेव च॥
नरेन्द्रश्चैव यक्षेशा व्यपोहन्तु मलं मम।

अनन्तः कुलिकश्चैव वासुकिस्तक्षकस्तथा ॥
कर्कोटको महापद्मः शङ्खपोलो महाबलः ।
शिवप्रणामसम्पन्नः शिवदेवप्रभूषणः ॥
मलं पापं व्यपोहन्तु विषं स्थावरजङ्गमं ।
वीणाज्ञः किन्नरज्ञश्च शूरसेनः प्रमर्द्दनः ॥
अतिशयः सुप्रभोगी गीतज्ञश्चेति किन्नराः ।
शिवप्रणामसम्पन्ना व्यपोहन्तु मलं मम ॥
विद्या विनीतो विद्यालीराशिर्व्विद्विदाम्बरः ।
प्रबुद्धो विबुधः श्रीमान् कृतज्ञश्च महायशाः ॥
एते विद्याधराः सर्व्वे शिवध्यानपरायणाः ।
व्यपोहन्तु मलं सर्व्वं महादेवप्रसादतः ॥
हयग्रीवो महाजृम्भः कालनेमिर्म्महायशाः ।
सुग्रीवो मर्द्दकश्चैव पिङ्गलो देवमार्द्दवः ॥
प्रह्लादश्चानुह्रादश्च शिविर्व्बाष्कल एव च ।
जृम्भकुम्भौ च मायावी कार्त्तवीर्य्यः कृतञ्जयः ॥
एते सुरा महात्मानो महादेवपरायणाः ।
व्यपोहन्तु महाघोरं पापभारं ममैव च ॥
गरुत्मांश्च हरिश्चैव पक्षिराड्वीममर्द्दनः ॥
नागशत्रुर्हिरण्याभो वैनतेयः प्रभञ्जनः ।
नागानां विषनाशश्च विष्णुवाहन एव च ॥
एते हिरण्यवर्णाभा गरुडा विष्णुवाहनाः ।
नानाभरणसम्पन्ना व्यपोहन्तु भयं मम ॥
अगस्तिश्च वसिठश्च अङ्गिरा भृगुरेव च ।

कश्यपो नारदश्चैव दधीचिश्च्यवनस्तथा।
उपमन्युस्तथान्ये च ऋषयः शिवभाविताः।
शिवार्चनरता हन्तु मनसा कर्म्मणा कृतं॥
गभस्तिस्पर्शनो वायुरनिलो मरुतस्तथा।
प्राणः प्राणेशजीवेशौ जीवोमरुत एव च॥
शिवार्चनरताः सर्व्वे व्यपोहन्तु मलं मम।
खेचरी वसुचारी च ब्रह्महा ब्रह्मवित्सुधीः॥
पितरः पितामहाश्चैव तथैव प्रपितामहाः।
अग्निस्वात्ता वर्हिषदस्तथा मातामहादयः॥
व्यपोहन्तु भयं पापं शिवध्यानपरायणः।
लक्ष्मीश्च धरणी चैव गायत्री च सरस्वती॥
दुर्गा उमा शची ज्येष्ठा मातरः सुरपूजिताः।
देवतानां मताश्चैव गणा मातामहादयः॥
व्यपोहन्तु भयं पापं शिवध्यानपरायणाः।
लक्ष्मीश्च धरणी चैव गणानां मातरस्तथा॥
भूतानां मातरः सर्व्वाः पन्नगा गणमातरः।
प्रसादाद्देवदेवस्य व्यपोहन्तु भयं मम॥
उर्व्वशी मेनका चैव रम्भा चैव तिलोत्तमा।
सुमुखी दुर्म्मुखी चैव कामुकी कामवर्द्धिनी॥
अथान्याः सर्व्वलोकेषु दिव्याश्चाप्सरसः शुभाः।
शिवाय ताण्डवं नित्यं कुर्व्वन्ति शिवभाविताः॥
गेये शिवार्चनरता व्यपोहन्तु मलं ममः।
अर्कः सोमोऽङ्गारकश्च बुधश्चैव बृहस्पतिः॥

शुक्रः शनैश्चरश्चैव राहुः केतुर्महाबलः ।
अपोहन्तु भयं घोरं शिरःपीड़ां शिवार्चकाः ।
मेषो वृषोऽथ मिथुनं तथा कर्कटकाः शुभाः ॥
सिंहश्च कन्या विपुला तुला वै वृश्चिकस्तथा ।
धनुश्च मकरश्चैव कुम्भो मीनस्तथैव च ॥
राशयो द्वादशाश्चैताः शिवपूजापरायणाः ।
व्यपोहन्तु परं पापं प्रसादात्परमेष्ठिनः ।
अश्विनी भरणी चैव कृत्तिका रोहिणी तथा ॥
श्रीमान्मृगशिराश्चार्द्रा पुनर्व्वसुपुष्यसर्पकाः ।
मघा वैपूर्व्वफाल्गुन्या उत्तराफाल्गुनी तथा ॥
हस्ता चित्रा तथा स्वाती विशाखा चानुराधका ।
ज्येष्ठा मूलं महाभागा पूर्व्वाषाढ़ा तथैव च ॥
श्रवणश्च धनिष्ठा च तथा शतभिषापि च ।
पूर्व्वभाद्रपदा चैव तथा प्रौष्ठपदा शुभाः ।
पौष्णश्च च देव्या सततं व्यपोहन्तु मलं मम ।
ज्वरकुण्डोदकश्चैव शतकर्णोमहाबलः ॥
महाकर्णः प्रभूतश्च प्रभुर्व्वा प्रीतिवर्द्धनाः ।
कोटिकोटिशतैश्चैव भूता नो परिवारिताः ॥
अपोहन्तु भयं पापं महादेवप्रसादतः ।
शिवध्यानेकसम्पन्नाः शिशिरा इन्दुमूर्त्तिभाः ॥
कुन्देन्दु सदृशाकाराः कुन्देन्दुवडवामुखः ।
वडवामुख्यशलुग्र्योवडवामुखभेदनः ।
वपुष्मांश्चैव सद्भक्तः चीरोद इव पाण्डुरः ॥

रुद्रलोके स्थितो नित्यं रौद्रैः सार्द्धं स्थितो गणैः।
वृषेन्द्रोविस्तृतिर्देवोविश्वस्य जगतः पिता ॥
वृतोनन्दादिभिर्नित्यं मातृभिर्मेषमर्द्दनः।
शिवार्चनरतो नित्यं मम पापं व्यपोहतु ॥
गवां माता जगन्माता रुद्रलोके व्यवस्थिता।
माता गवां महाभागा समे पापं व्यपोहतु।
सुशीला शीलसम्पन्ना शिवभक्तिपरायणा।
शिवलोके स्थिता नित्यं सा मे पापं व्यपोहतु।
वेदशास्त्रार्थसर्व्वज्ञः सर्व्वशास्त्रार्थचिन्तकः ॥
समस्तगुणसम्पन्नः सर्व्वदेवेश्वरोऽमरः।
ज्येष्ठः सर्व्वेश्वरः सौम्यो महाविष्णुचतुष्टयं ॥
आद्यः सेनापतिः शास्त्रं मोदते मेषमर्द्दनः।
ऐरावतगजारूढ़ः कृष्णकुञ्चितमूर्द्धजः ॥
कृष्णगौराक्तनयनः शशिपन्नगभूषणः।
एतैः प्रेतैः पिशाचैश्च कूष्माण्डैश्चैव संवृतः ॥
शिवार्च्चनरतः साक्षात्समे पापंव्यपोहतु।
ब्रह्माणी चैव माहेशी कौमारी वैष्णवी तथा ॥
वाराही चैव माहेन्द्री चामुण्डाग्नायिका तथा।
एता वै मातरः सर्व्वाः सर्व्वलोकप्रपूजिताः ॥
योगिनीभिर्महापापं व्यपोहन्तु समाहिताः।
वीरभद्रो महातेजा हिमकुन्देन्दुसन्निभः ॥
रुद्रस्य तनयो रौद्रः शूलशक्तमहाकरः।
सहस्रबाहुः सर्व्वज्ञः सर्व्वायुधधरः स्वयं ॥

त्रेताग्निनयनोपेतो त्रैलोक्याभयदः प्रभुः।
मातृणां रक्षको नित्यं महावृषभवाहनः॥
त्रैलोक्यनिर्म्मितः श्रीमान् शिवपादार्च्चने रतः।
यज्ञस्य च शिरश्छेत्ता पूषदन्तविनाशनः॥
वह्ने र्हन्तरातः साक्षाद्भगनेत्रनिपातनः।
गणेश्वरो यशो नारी स मे पापं व्यपोहतु॥
ज्येष्ठा वरिष्ठा वरदा सर्व्वाभरणभूषिता।
महालक्ष्मीर्जगन्माता सा मे पापं व्यपोहतु।
महामोहा महाभागा महाभूतगणैर्वृता।
शिवार्च्चनरता नित्यं सा मे पापं वपोहतु॥
लक्ष्मीः सर्व्वगुणोपेता सर्व्वलक्षणलक्षिता।
शर्म्मदा सर्व्वदा देवी सा मे पापं व्यपोहतु
सिंहारूढा महादेवी महिषासुरमर्द्दिनी॥
शिवार्च्चनरता रुद्रा मम पापं व्यपोहतु।
रुद्राणी रुद्रदयिता ब्रह्माण्डगणनायका।
कुष्माण्डश्चेति मे पापं व्यपोहन्तु समाहिताः॥
अनेन देवीं स्तुत्वा तु चान्ते सर्व्वं क्षमापयेत्।
प्रणम्य शिरसा भूमौ प्रतिमासं द्विजोत्तमान्
व्यपोहन स्तवमिमं यः पठेत् शृणुयादपि।
विधूय सर्व्वपापानि रुद्रलोके महीयते।
कन्यार्थी लभते कन्यां जयकामो जयं लभेत्॥
अर्थकामो लभेदर्थं पुत्रकामो बहून् सुतान्।
विद्यार्थी लभते विद्यां भोगार्थी भोगमाप्नुयात्॥

यान् यान् कामान् प्रार्थयते यज्ञानाञ्चैव यत्फलं।
दानानाञ्चैव यत्पुण्यं व्रतानाञ्च विशेषतः॥
तत्पुण्यं कोटिगुणितं जप्त्वा प्राप्नोति मानवः।
गोघ्नश्चैव कृतघ्नश्च वीरहा ब्रह्महा तथा॥
शरणागतघातीच मित्रविश्वासघातकः।
दुष्टः पापसमाचारो मातृहा पितृहा तथा॥
निहत्य सर्व्वपापानि शिवलोके महीयते॥

## इति लिङ्गपुराणोक्तं मलव्यपोहनं पाशुपतव्रतं।

———000———

भगवन् श्रोतुमिच्छामि व्रतं पाशुपतं वरं।
ब्रह्मादयोऽपि यत् कृत्वा सर्वे पाशुपताः स्मृताः॥

वायुरुवाच।

रहस्यं यत् प्रवक्ष्यामि सर्व्वपापनिकृन्तनं।
व्रतं पाशुपतं श्रेष्ठं मया च शिरसि श्रुतं॥
कालश्चैत्रपौर्णमासी देशः शिवपरिग्रहः।
क्षेत्रारामादिरन्योवा प्रशस्तः शुभलक्षणः॥
तत्र पूर्व्वत्रयोदश्यां सुस्नातस्तु कृताह्निकः।
अनुलाप्यं समाचार्य्यं संपूज्य प्रणिपत्य च॥
पूजां स्वशाखिकीं कृत्वा शुक्लाम्बरधरः स्वयं।
शुक्लयज्ञोपवीती च शुक्लमाल्यानुलेपनः॥
दर्भासने समासीनो दर्भमुष्टिं प्रगृह्य च।
प्राणायामत्रयं कृत्वा प्राङ्मुखोवाप्युदङ्मुखः॥

ध्यात्वा देवञ्च देवीञ्च तद्दिज्ञापनवर्त्मना।
व्रतमेतत् करोमीति भवेत्सङ्कल्पय दीक्षितः॥
यावत् शरीरपातञ्च द्वादशाब्दमथापि वा।
तदर्द्धं वा तदर्द्धं वा मासद्वादशकन्तु वा।
तदर्द्धं वा तदर्द्धं वा मासमेकं मथापि वा।
दिनद्वादशकं वाथ व्रतसङ्कल्पनं विधिः॥
समिद्धमग्निमाधाय विरजो होमकारणात्।
हुत्वाज्येन समिद्भिश्च चरुणा च यथा क्रमं॥
पूर्णायाः पुरतो भूप तत्त्वानां शुद्धिमुद्दिशेत्।
जुहुयान्मूलमन्त्रेण तारे च समिधादिभिः॥
तत्त्वान्येतानि मद्देहे शुद्धान्यन्यानि संस्मर॥
पञ्चभूतानि तत्त्वानि पञ्चपञ्चेन्द्रियाणि च।
ज्ञानकर्म्मविभेदेन पञ्च पञ्च विभागशः॥
त्वगादिधातवः सप्त पञ्चप्राणादिवायवः।
मनश्चाहं* कृतं तद्वन्निर्गुणौ प्रकृतिपूरुषौ॥
रागोविद्या कला चैव नियतिः काल एव च।
अथाथ शुद्धविद्याश्च महेश्वरसदाशिवौ।
शक्तिश्च शिवतत्त्वानि तानि च क्रमशो विदुः॥
मन्त्रैस्तु विरजो हुत्वा होतास्तैर्व्विंगतो भवेत्।
अथ गोमयमादाय पिण्डीकृत्य निमन्त्र्य च॥
न्यस्याग्रे तन्तु संरक्ष्य दिने तस्मिन् हविष्यभुक्।
प्रभाते च चतुर्द्दश्यां तच्च सर्व्वं यथोदितं॥

---

* मनश्चाहं कृतद्वारामकमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

दिने तस्मिन् निराहारः कालशेषं समापयेत्।
प्रातः पर्व्वणि वाप्येव हुत्वा होमञ्च तत्त्वतः।
उपसंहृत्य रुद्राग्निं गृह्णीयाद्भस्म पावतः॥
ततस्तु जटिलो मुण्डः शिखैकजटएव च।
हुत्वाग्नौ तु पुनर्व्वीतलज्जश्च स्याद्दिगम्बरः।
अन्यः कषायवसनश्चर्म्मचीराम्बरो यथा॥
रक्ताम्बरो वल्कली च भवेद्दण्डी च मूषली।
प्रक्षाल्य चरणौ पश्चाद्द्विराचम्यात्मनस्तनुं॥
सकली कृत्य तद्भस्म विटजामलसम्भवं।
अग्निरित्यादिभिर्म्मन्त्रैः षड्भिराथर्व्वणैः क्रमात्
निर्म्मथ्याङ्गानि मूर्द्धादिचरणान्तञ्च संस्पृशेत्।

अग्निरिति भस्मवायुरिति भस्मजलमिति भस्मस्थलमिति भस्मसर्व्वं हुत्वा इदंभस्मणाङ्गएतानि चक्षुषि इत्याथर्व्वण मन्त्राः षट्॥

ततस्तेन क्रमेणैव समुन्मृल्य च भस्मनः।
सर्व्वाङ्गोद्दलनं कुर्य्यात् प्रणवेन शिवेति च॥
तत स्त्रिपुण्ड्रं रचयेत्त्रिरायुषसमाह्वयं।
शिवभाव समागम्य शिवयोगमथाचरे॥
कुर्य्यात्त्रिसन्ध्यमित्येवमेतत्पाशुपतं व्रतं।
भुक्तिमुक्तिप्रदञ्चैतत् पशुत्वं विनिवर्त्तयेत्॥
तत्पशुत्वं परित्यज्य कृत्वा पाशुपतं व्रतं।
पूजनीयो महादेवो लिङ्गमूर्त्तिः सनातनः॥
पद्ममष्टदलं हैमं नवरत्नैरलङ्कृतं।

कर्णिकाकेशरोपेतमश्मनं परिकल्पयेत् ॥
श्वेतकृष्णनिभं भानुं सितं रक्तमथापि वा ।
पद्मं तस्याप्यभावे तु केवलं भावनामयं ॥
पद्मस्य कर्णिकामध्ये कृत्वा लिङ्गं कनीयसं ।
स्फाटिकं पीठकोपेतं पूजयेद्दृस्थितः क्रमात् ॥
प्रतिष्ठाप्य विधानेन लिङ्गं कृतसुशोभनं ।
परिकल्प्यासने मूर्त्तिंपञ्चवक्रं प्रभाकरं ।
पञ्चगव्यादिभिः पुण्यैर्यथाविभवसंभृतैः ॥
स्नापयेत् कलशैः पूर्णैः सहस्राणि सुसम्भवैः ।
गन्धद्रव्यैः सकर्पूरैश्चन्दनाद्यैश्च कुङ्कुमैः ॥
सवेदिकं समालिप्य लिङ्गंभूषणभूषितं ।
विल्वपत्रैश्च पद्मैश्च वात्र रक्तैस्तथोत्पलैः ॥

उत्पलैर्नीलोत्पलैः ।

नीलोत्पलैस्तथान्यैश्च पुष्पैस्तैस्तैः सुगन्धिभिः ।
पुष्पैः प्रशस्तैश्चैतैश्च पुष्पैर्दूर्वाक्षतादिभिः ॥
समभ्यर्च्य यथालाभं महापूजाविधानतः ।
धूपं दीपं तथाचार्घ्यं नैवेद्यञ्च विशेषतः ॥
निवेदयित्वा विधिवत् कल्याणञ्च समाचरेत् ।
दृष्टानि च विशिष्टानि न्यायेनोपार्थितानि च ॥
सर्व्वद्रव्याणि देयानि व्रतेत्वस्मिन्विशेषतः ।
(श्रीपत्रोत्पलपद्मानां सङ्ख्यामाह त्रिकामता ॥)
प्रत्येकममणव्यापितमष्टोत्तरं द्विजाः ।
तत्रापि च विशेषान् यद्विल्वपत्रकं परं प्राहुः ॥

परान् पद्मसहस्रकान् नीलोत्पलादिष्टोप्यतत्समानं विल्वपत्रकं॥
पुष्पान्तरे न नियमो यथालाभं प्रपूजयेत्।
अष्टाङ्गमर्घ्यमुत्कृष्टं धूपदीपौ विशेषतः॥
कृष्णागरुरघोराख्ये रक्ता सद्यमनःशिलौ।
चन्दनं वामदेवाख्ये मुखे कृष्णागुरुः पुनः॥
पौरपेगुग्गुलं सव्ये सौम्ये सौगन्धिके मुखे।
ईशानेऽपि तु सीतादीन् दद्याद्धूपं विशेषतः॥
शर्करा मधुकर्पूरं कपिलाघृतसंयुतं।
चन्दनागुरुकुष्ठाश्च माल्यं वै सम्प्रचक्ष्यते।
कर्पूरवर्त्तिजोपाद्या देवी दीपावलिस्ततः॥
अघोरचन्दनन्देयं प्रतिचक्रमतः परं।
प्रथमावरणे पूज्य क्रमाद्विवखरामुखी।
ब्रह्माङ्गानि ततश्चैवं प्रथमावरणेऽर्च्चयेत्।
द्वितीयावरणे पूज्या विद्येशाश्चक्रवर्त्तिनः॥
तृतीयावरणे पूज्या भवाद्याश्चाष्टमूर्त्तयः।
महादेवादयस्तत्र तथैकादशमूर्त्तयः॥
चतुर्थावरणे पूज्याः सर्व्व एव गणेश्वराः।
वहिरेव तु पद्मस्य पञ्चमे ज्योतिषांगणः॥
सर्व्वे देवाश्च देव्यश्च सर्व्वाः सर्व्वेऽपि खेचराः।
पातालवासिनश्चैव सर्वे मुनिगणा अपि॥
योगिनो गुरवः सर्व्वे पञ्चगोमातरस्तथा।
क्षेत्रपालाश्च सगणाः सर्व्वं वैतच्चराचरं॥
अथावरण पूजान्ते संपूज्य परमेश्वरम्।

शय्यासनं स्रजं द्रव्यं हविर्भक्त्या निवेदयेत् ॥
मुखवासादिद्रव्याणां ताम्बूलं सोपदंशकं ।
अलंकृत्य च भूपोपि नानापुष्पविभूषणैः ॥
नीराजनान्तां विस्तीर्य्य पूजाशेषं समापयेत् ।
क्रमुकं सोपदंशञ्च शयनञ्च समर्पयेत् ॥
यद्यत् यस्य हितं द्रव्यं तत्सर्वमनुरूपतः ।
कृत्वा च कारयित्वा च स्थित्वा च प्रतिपूजनं ॥
स्तोत्रव्ययोहनं जप्त्वा विद्यां पञ्चाक्षरीं जपेत् ।
(पञ्चाक्षरी विद्या च वायुसंहितोक्ता ।)
अस्याः परमविद्यायाः स्वरूपमधुनोच्यते ।
आदौ नमः प्रयोक्तव्यं शिवायेति ततःपरं ।
सैषा पञ्चाक्षरी विद्या सर्वश्रुतिशिरोगता ।
शब्दजो तस्य सर्वस्य वीजभूतः समासतः ॥
प्रथमं तन्मुखाद्भीर्णा मम मेवात्मवाचिका ।
तप्तचामीकरप्रख्या पीनोन्नतपयोधरा ॥
चतुर्भुजा त्रिनयना वालेन्दुकृतशेखरा ।
पद्मोत्पलधरा सौम्या वरदाभयपाणिका ॥
सर्व्वलक्षणसम्पन्ना सर्वाभरणभूषिता ।
सितपद्मासनासीना नीलकुञ्चितमूर्द्धजा ॥
अस्याः पञ्चविधावर्णा प्रस्फुरद्रश्मिमण्डला ।
पीतकृष्णास्तथा धूम्रवर्णाभारक्तएव च ॥
पृथक् प्रयुक्तायेवैता विन्दु नादविभूषिता ।
अर्द्धचन्द्राकृति र्व्विन्दुनाददीपशिखाकृतिः ॥

वीजं द्वितीयबीजेषु मन्त्रस्यास्य वरानने।
दीर्घपूर्वंतुरीयस्य पञ्चमं शक्तिमादिशेत्॥
वामदेवोनाम ऋषिः पङ्क्तिछन्दश्च आदितः।
देवताशिवएवाहं मन्त्रस्यास्य वरानने॥
उमाच वै वरारोहा विश्वामित्रस्तथाङ्गिराः।
भारद्वाजश्च वर्णानां क्रमश ऋषयः स्मृताः॥
गायत्र्यनुष्टुप्त्रिष्टुप च च्छन्दांसि बृहतीविराट्।
इन्द्रोरुद्रोहरिर्ब्रह्मास्कन्दस्तेषां च देवताः॥
मम पञ्च मुखान्याहुः स्थाने तेषां वरानने।
पूर्व्वादिर्वार्द्धपूर्वं तं नकारादि यथा क्रमं॥
उदात्तः प्रथमोवर्णश्चतुर्थश्च द्वितीयकः।
पञ्चमःस्वरिश्चैव मध्यमोनिहतः स्वयं॥
मूलविद्या शिवं शैवं सूक्तं पञ्चाक्षरं तथा।
नामान्यस्य विजानीयादेवं मे हृदयं मतं॥
नकारःशिव उच्येत मकारस्तु शिखोच्यते।
शकारः कवचं तद्वद्वाकारोनेत्रउच्यते॥
यकारोस्त्रं नमः स्वाहावषट्हुंवौषडित्यतः।
फडित्यपि च वर्णानामन्तेङ्गत्वं यदा तदा॥
तत्रापि मूलमन्त्रोऽयं किञ्चिद्भेदसमन्वितं।
तत्रास्य पञ्चमोवर्णो द्वादशस्वरभूषितः॥
तस्मादनेन मन्त्रेण मनोवाक्कायभेदतः।
शिवयोरर्च्चनं कुर्य्यात् जपहोमादिकं तथा॥
प्रदक्षिणं प्रणामञ्च कृत्वा स्नानं समर्चयेत्।

ततः पुरस्ताद्देवस्य सुविद्येच प्रपूजयेत्॥
दत्त्वार्घ्यंपुष्टौ पुष्पाणि देवमुद्दिश्य लिङ्गतः।
अभिस्वाम्निञ्च संरच्य यद्वा देवस्य नामतः॥
प्रत्यहं जनयत्नेवं कुर्य्यात् सर्वं पुरोहितं।
ततस्तस्याम्बुजं लिङ्गं सर्व्वोपकरणान्वितं॥
समर्पयेत्सगुरवे स्थापयेद्वा शिवालये।
संपूज्य च गुरूनन्यान् व्रतिनश्च विशेषतः॥
भक्तान् द्विजानभुक्तांश्च दीनानाथांश्च तोषयेत्।
स्वयञ्चानशनप्रायः फलमूलाशनोऽथवा॥
पयोव्रतो वा भिक्षाशी दिवैवैकाशनोभवे।
नक्तं भुक्ताशनं नित्यं भूशयोविरतः शुचिः॥
भस्मशायी शणाशायी वीरासनशयोऽथ वा।
ब्रह्मचर्य्यरतोनित्यं व्रतमेतत्समाचरेत्॥
अर्कवारे तथेन्दौ वा पञ्चदश्याञ्च पक्षयोः।
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां शक्त्याह्युपवसेदपि॥
पाषण्डपतितोदक्या सूतकान्त्यजपूर्व्विकान्।
वर्जयेत्सर्व्वयत्नेन मनसा कर्म्मणा गिरा॥
क्षमा, दानं दया, सत्यमहिंसा शीलता भवेत्।
सन्तुष्टश्च प्रशान्तश्च जपध्यानरतस्तथा॥
कुर्यात्त्रिषवणं स्नानं भस्मस्नानमथापि वा।
पूजा वैशाखिकञ्चैव मनसा कर्म्मणा गिरा॥
बहुनात्र किमुक्तेन नाचरेदशिवं व्रती।
प्रसादात्तु सदाचारे निरूप्य गुरुलाघवं॥

उच्छ्रितां निष्कृतिं कुर्य्यात् पूजाहोमजपादिभिः ।
आसमाप्तौ व्रतस्यैवमाचरेन्नप्रमादतः ।
गोदानञ्चोत्वषोत्सर्गं कुर्य्यात् पूजाञ्च संसदः ॥
सामान्यमेतत् कथितं व्रतस्यास्य विधानतः ।
प्रतिमासं विशेषञ्च प्रवदामि यथाक्रमं ॥
वैशाखे वज्रलिङ्गन्तु ज्यैष्ठे मारव्रतं शुभं ।
आषाढ़े मौक्तिकं विद्यात् श्रावणे नीलनिर्म्मितं ॥
मासे भाद्रपदे देवं पद्मरागमयं शुभं ।
आश्वयुज्यान्तु विधिवद्गोमेदकमयं शुभं ॥
कार्त्तिक्यान्तु द्रुमं लिङ्गं वैदूर्य्यं मार्गशीर्षके ।
पुष्परागमयं पुष्ये माघे तु मणिजोरथं ॥
फाल्गुन्याञ्चन्द्रकान्तोयं चैत्रेमासेऽथवा तथा ।
सर्व्वमासेषु रत्नानामलाभे हेममेव वा ॥
हेमालाभे राजते वा ताम्रजं लोह मेव वा ।
मृण्मयं वा यथालाभं चणिकं वान्यदेव वा ॥
सर्व्वं गन्धमयं वाच्यं लिङ्गङ्कुर्य्याद्यथारुचि ।
व्रतावसानसमये समाचरितनैत्यकं ॥
कृत्वा वैशाखिकीं पूजां हुत्वा चैव यथारुचि ।
संपूज्य यजनाचार्य्यं व्रतिनश्च विशेषतः ॥
देशिकेनाभ्यनुज्ञातः प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ।
दर्भासनो दर्भपाणिः प्राणापानौ नियम्य च ॥
जपित्वा शक्तितो मूलं ध्यात्वालिङ्गं त्रियम्बकं ।
अनुज्ञाप्य यथापूर्व्वं नमस्कृत्य कृताञ्जलिः ॥

समुत्सृजामि भगवान् व्रतमेतत्त्वदाज्ञया ।
इत्युक्तो दीर्घमूलान्तु दर्भानुत्तरतस्त्यजेत् ॥
ततो दर्भजुटाधारमेखला अपिचोत्सृजेत् ।
पुनराचम्य विधिवत् पञ्चाचरमुदीरयेत् ।
यः कुर्यात् व्रतिकोदीचामादेहान्तमनाःकिल ॥
व्रतमेतत् प्रकुर्वीत स तु वै नैष्ठिकःस्मृतः ।
सत्यः शमी च विज्ञेयो महापाशुपतस्तथा ॥
स एव तपसा श्रेष्ठः स एव च महाव्रती ।
न तेन सदृशः कश्चित् कृतकृत्योमुमुक्षुषु ॥
यतिश्चनैष्ठिकोयातः तमाहुर्नैष्ठिकोत्तमं ।
या नार्य्यं तद्वादशाहं व्रतमेतत् समाचरेत् ॥
सोऽपि नैष्टिकतुल्यः स्यात् शिवव्रतसमन्वयात् ।
घृताक्तोयश्चरेदेतत् व्रतं व्रतपरायणः ॥
द्विचैकदिवसञ्चापि स च कश्चन नैष्टिकः ।
कृतकृत्यश्च निष्कामोयश्चरेद्व्रतमुत्तमं ॥
शिवार्पितात्मा सततं तेनान्यः सदृशः क्वचित् ।
भवच्छिन्नोद्विजोविद्वान् महापातकसम्भवैः ॥
पापैर्विमुच्यते सद्यो मुच्यते न च संशयः ।
रुद्राग्रे पदवीं कीर्थ्य तद्भस्म परिकीर्त्तितं ॥
यस्मात् सर्वेषु लोकेषु वीर्यवान् कृतसंयतः ।
भस्मनिष्ठस्य दह्यन्ते दामो भस्मानि सङ्गमात् ॥
भस्मस्नान विशुद्धात्मा भस्मनिष्ठ इति स्मृतः ।
भस्मसन्दिग्धसर्वाङ्गो भस्मनिष्ठइतिस्मृतः ॥

भूतप्रेतेषु सर्व्वेषु लोकेष्वन्येषु वा भवेत्।
अरोगः सर्व्वसिद्धार्थी भवेच्चातो वदुःसह ॥
भस्मनिष्ठस्य सान्निध्याविद्रवीतिन संशयः ॥
मासकश्मसिकं प्रोक्तं भच्चकल्मषभच्चणात्।
भूति भूति करं पुंसां रच्च रच्च परं परं ॥
किमर्थ मिह वक्तव्यं भस्ममाहात्म्यकारणं।
व्रती च भस्मना स्नातः स्वयं देवो महेश्वरः ॥
परमास्त्रञ्च शैवानां भस्मैतत्पारमेश्वरं।
धौम्यग्रजस्य तपसि व्यापादोयं निवारितः ॥
यस्मात्सर्वें जयन्त्येनः कृत्वा पाशुपतं व्रतं।
घनवद्भस्मसंगृह्य भस्मस्नानरतो भवेत् ॥

## इति वायुसंहितोक्तं * पाशुपतं व्रतं।

———000———

### अथ गजपूजा।

तत्र श्रीगजेश्वर प्रार्थनमधिकृत्याह पालकाद्यः।
एवमस्त्विति देवेशस्तमुवाच मतङ्गजं॥
आषाढ्यां पूर्णचन्द्रायां मामभ्यर्च्य नराधिपाः।
तवपूजां करिष्यन्ति दत्तोह्येषवरस्तव ॥
तस्माद्भवसमाराजं पूजा कार्य्या नरोत्तमैः।
श्रीगजाय विधानेन शुचिभिस्तूपवासितैः ॥

* इति पुराणोक्तं पाशुपतव्रतमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

श्रीकामैश्च विशेषेण सदैश्वर्य्यकरी शुभा ।
दत्त्वा तस्य वरं देवो भगवान् भूतभावनः ।
गतः स्वमालयं देवो गताः सर्व्वाश्च देवताः ॥
श्रियं ददाति विपुलां यस्मात् पूजाविधानतः ।
प्रख्यातः श्रीगजस्तस्माज्जयदो नृपसत्तम ॥
तेनैषा क्रियते पूजा द्विरदानान्तु नित्यशः ।
इदमन्यत् प्रवक्ष्यामि कल्पमस्य नराधिप ॥
चतुर्णां चौरवृत्ताणां द्रव्यमन्यत् बन्धुभिः ।
उपोष्य ग्राहयेद्विप्रो बलिं होमांश्च कारयेत् ।
पुण्याहघोषेण ततः स्वस्ति वाच्य द्विजोत्तमान् ।
पश्चारत्निप्रमाणंस्यादग्रन्थिकमकोटरं ॥
श्लक्ष्णञ्चैवानुपूर्व्वञ्च भक्षकैः साधुवर्ज्जितं ।
आयामातास्यच भवेत् कर्णिका द्वादशाङ्गुला ॥
त्रिंशत्यङ्गुलनाहाच कार्य्या तु सुसमाहिता ।
वेलागवाक्षनलिनीमग्निव्यञ्जनकं तथा ॥
वैदलं याज्ञिकं भाण्डन्तथैवासनकङ्कतं ।
सचन्दनांश्च कलशांश्चतुरः† सोदकांस्तथा ।
सामान्यं यज्ञवत्सर्व्वं शेषन्द्रव्यमुपाहरेत् ॥
ततो विप्रः शुचिर्भूत्वा नमस्कृत्य महेश्वरं ।
सनत्कुमारं वरदं श्रीगजञ्च महाबलं ॥
सर्व्वान् देवान् नमस्कृत्य दिशश्चाष्टौ समाहितः ।
सर्व्वानृषिगणांश्चैव तथा नक्षत्रमण्डलं ॥

---

† विलासमर्य्यादनलिनी पुष्करिणीति पुस्तकान्तरे पाठः ।

समुद्रानापगाः सर्व्वाः समहोरगराक्षसाः।
पर्व्वताः सर्व्वभूतानि जङ्गमाजङ्गमं जगत्॥
ऐरावतांश्चाथ पुनर्नमस्कृत्य दिशाङ्गजान्।
उपोष्य सन्निशेद्रात्रौ वासोभिरहतैर्द्विज॥
सेनान्यांश्च नमस्कृत्य शुचिर्भूत्वा कृताञ्जलिः।
कुशास्तरणसंवृत्ते स्थण्डिले प्रयतः शुचिः॥
श्वोभूते पुनरुत्थाय स्नातो भूत्वा समाहितः।
तस्यै यस्तु गजेन्द्रस्य नमस्कृत्याधिरोहयेत्॥
सच्छत्रं तालव्यजनं माल्यदामोपशोभितं।
नन्दितूर्य्येण महताचोद्यमानेन शोभितं॥
सालङ्करणकैः पूरं हेमजालविभूषितं।
नानाकारैस्तथावस्त्रैःसमन्तात् परिवेष्टितं॥
चन्दनागुरुभिश्चैश्च सर्व्वगन्धैरलङ्कृतं।
स्त्रीरूपवेशैः पुरुषैः परिचर्य्योपशोभितैः।
जल्पद्भिर्निष्ठुरं वाक्यं प्रहसद्भिस्तथैव च॥
चतुष्पथे वीथिमार्गे तथैव चत्वरेषु च।
राजमार्गेषु च भृशं घोषवन्तस्ततस्ततः॥
अर्च्चयिष्यन्ति* तन्देवं राजानो विजयैषिणः†।
सेनापतिरमात्याश्च ये चान्ये तद्विजानतः॥
पूजयन्ति यथा न्यायं तथैव गजजीविनः।

---

* चामयिन्तीति पुस्तकान्तरे पाठः।

† विषयैषिष्व इति पुस्तकान्तरे पाठः।

अतोऽन्यथा तु कुर्व्वाणाः ससमिबलवाहनाः* ।
ज्वराजालैर्व्विनश्यन्ति देवताविक्रमेण वै ॥
प्रयुञ्जते च वै तस्मै सम्यक् पूजां नराधिप ।
सपुत्रदारा वर्द्धन्ते सराष्ट्रबलवाहनाः ॥
आज्ञां माहेश्वरस्यैतां प्रतिगृह्णन्ति ये नृपाः ।
संग्रामे शत्रुसंघाते भवन्ति च विदारिणः ॥
काले बीजानि रोहन्ति सम्यग्वर्षति वासवः ।
न भवत्यत्र मरको व्याधिहानिस्तथैवच ॥
निरामयश्च भुञ्जीत राजा कृत्स्नां वसुन्धरां ।
रत्नाकरवतीं देवीं सशैलवनकाननां ॥
अरोगा बलवन्तश्च जायन्ते च मतङ्गजाः ।
राजोपजीविनः सर्व्वे कामभोगैः समन्विताः ॥
पुत्रैश्च पशुभिश्चैव जीवन्ति च शतं समाः ।
अरोगा बलवत्यश्च जायन्तेवै प्रजा भृशं ॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनं ।
यांश्च प्रार्थयते कामान् सर्व्वांस्तान् प्राप्नुयान्नरः ॥
एवं वृत्तं महाराज शम्भो भक्त्यान्वितं विभो ।
श्रीगजस्य भयाद्विद्वि त्रिषु† लोकेषु विश्रुतं ॥
मया ख्यातं महाबाहो विस्तरेण यथाक्रमं ॥

इति पालकाप्रोक्तगजपूजाविधिः ।

———oo@oo———

* सराष्ट्र बलवाहनाः इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

† भयं विद्धिचिषु लोकेषु पूजितमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

अथार्व्वणगोपथब्राह्मणं।

अथाश्वयुजे मासे पौर्णमास्या
मपराह्ने हस्तिनो नीराजनं कुर्य्यात्।
प्रागुदक्प्लवने देशे यत्र दिशि वा मनोरमते गिरय
स्ते पर्व्वता इत्येतया हस्तशतमर्द्धम्वा मण्डलं
गृह्य याभिर्य्येमिति संप्रोक्षयेत् तत्र श्लोकाः
दशहस्तसमुत्सेधं पञ्चहस्तं सुविस्तृतं।
शान्तवृक्षमयं कुर्य्यात्तोरणं पुष्टिवर्द्धनं॥
शुक्लैः शुक्लाम्बरधरैस्तन्माल्यैरपि भूषितं।
कारयेत् स्थण्डिले शुभ्रे रसैश्च परिपूरिते॥
रसैस्त्वामभिषिञ्चामि भूमे मह्यं शिवा भव।
असपत्ना सपत्नघ्नी मम यज्ञविवर्द्धनी॥
इमौस्तम्भौ घृताभ्यक्तौ शुभौ भावसमावृतौ [१]॥

[illegible]मा कथाभिदामेति तमिमौ स्तम्भौ निर्द्दृतामित्पुच्छयस्त्र ब्राह्मणस्य त इत्युभाभ्यांसुवर्णमालापताकैस्तम्भौ संयोजय तस्या धस्ताच्चतुर्हस्तां वेदीं कृत्वा तन्त्वमित्युक्तदर्भैः पवित्रपाणिर्बलि [illegible]ण्याणि च दत्त्वा मधुलाजामिश्रैःस्वस्तिकं संयावदधिकृशर [illegible]रघृतविविधान्नपानभक्ष्यलक्षफलैरग्निं परिस्तीर्य्य आपो [illegible] गन्धातरः शुन्धन्त्विति चतुरोडुम्बरान् कलशान् क्षीरोदकेन [illegible]त्वा प्रतिदिशमवस्थाप्य दध्याद्रुद्राग्नेयं वायव्यवारुणा [illegible]घ्नं कृत्वा दूषणं यशस्यचर्च्चस्यानि च हुत्वौषधिं समादाय मण्डलमित्युक्ता। तत्र श्लोकाः।

---

[illegible]समस्वृतामिति पुस्तकान्तरे पाठः।

[illegible]यन्निति पुस्तकान्तरे पाठः।

सिंही व्याघ्री च हरिणी ह्यमृता चापराजिता।
पृश्निपर्णी च दूर्वा च पद्ममुत्पलमालिनी॥

तामनुमन्त्रयेद्वैदलं कटकसवद्ध्याद्वापि वैयाघ्रमनडुह्यं परिस्तीर्य्य, वैतस्याङ्कुशमनुमन्त्र्य, ततोऽस्यास्मादधिदेवता तस्यै च वलिं दत्त्वा, पिण्डानि च दद्यात्।

हस्तिनाम वाचयेद्यस्यां दिशि स रिपुर्भवति तां दिशं गत्वा हस्तिनमानयेद्धिरण्येन रजतेन वस्त्रेण मणिमुक्ताशङ्खेन चन्दनेन भद्रदारुणया कुष्ठेन नलदेन रोचनयाञ्जनेन मणिकुशिलया पद्मकुमुदोत्पलैर्ममाग्ने वर्च इति सूक्तं दक्षिणोत्तरप्रतिमुखं प्रतिजपेच्छेषेण गात्राण्यभ्यंजयेत् जपेत्। तत्रश्लोकाः। हस्तिनोरक्षणे दण्डः कर्त्तव्यो वैणवो नवः। षोड़शारत्निमात्रस्तु चातुपर्वं मनोहरः। तेन वारणात्तारयते दण्डाग्रेषु तृणानि कृत्वा ग्रसति जातं जातं। जातवेदसमित्यग्निं प्रज्वालयेत् सुजातं जातवेदसमिति नीराजयित्वा निधिं विभ्रतीति शालास्तु प्रवेशयेद्येन-प्रेक्षमाणाः स्वानि स्थानानि व्रजन्ति दीर्घायुषो बलवन्तश्च भवति गोसहस्रं कर्त्तुर्दक्षिणाग्रामवरश्च।

## इति गजनीराजन विधिः।

———000———

### सनत्कुमार उवाच।

अथ पर्व्वणि यत्कृत्यं तच्छृणुष्व महामते।
यज्ज्ञात्वा मनसः क्षान्तिं* सुसम्भूतिश्च विन्दति॥

* कान्तिमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

यत्पर्व्वणि कृतन्तावत्† शुभम्वा यदि वाशुभं।
षष्टिवर्षसहस्राणि तत्फलं भुञ्जते नराः॥
दयितं जीवितं पुंसां सर्वेषामपि सम्मतं।
यतस्त्वक्षयसंग्रामपरिक्लेशयुता नराः॥
अतस्तच्छान्तिजननमायुःप्रदमनाकुलं।
सर्व्वसौख्यप्रदं भद्रं तादृग्व्रतमिहोच्यते॥
चतुर्दश्यां शुचिः स्नात्वा दन्तधावनपूर्व्वकं।
चरितब्रह्मचर्यश्च यतवाक्कायमानसः॥
पौर्णमास्यान्तथा कृत्वा देवपूजां समाचरेत्।
मण्डलं चतुरस्रन्तु कारयेत् कुसुमाक्षतैः॥
तस्मिन् श्रीशं श्रियं देवीमर्चयेत् सुसमाहितः।
वृहन्तं पयसापूर्णं गन्धेन स्थापयेद्घटं॥
चतुरस्तोयपूर्णांस्तु कलशांस्थापयेत् क्रमात्।
मध्ये वावाहयेत् पञ्च चक्रादीन्यायुधान्यपि॥
इन्द्रियाणि तथा पञ्च बुद्धिप्राणं तथा मनः।
न्यसेद्द्येतानि सर्व्वाणि कलशेषु चतुर्ष्वपि॥
सर्व्वापद्भ्यस्तरेन्मर्त्यश्चाधिव्याधिभयादपि।
रक्षन्तु सर्व्वदा मान्तु बुद्धिप्राणं मनस्तनः॥
अवन्तु सर्व्वदापद्भ्यो मङ्गलानि दिशन्तु नः।
इति मन्त्रेण चाभ्यर्च्य समिद्धे जातवेदसि॥
षड्भिर्म्मन्त्रैस्तु जुहुयात् संस्कृते तु यथा विधि।
तिलैनाक्षतयुक्तेन निमध्वक्तेन संयतः॥

---

† नाथइति पुस्तकान्तरेपाठः।

मन्त्राः ।

अनामयाय पूर्णाय विमलायाच्युताय च ।
मृत्यवे कालरूपायेत्येते मन्त्रास्तथा च षट् ॥
अथैवायुधमन्त्रेण प्राणेन करणैरपि ।
हुत्वा तु करणायेति‡ तच्छेषेण वलिन्त्यजेत् ॥
अथासने स्थितं साध्यं कृत्वाचार्य्यस्तदग्रतः ।
अभिषेकं ततः कुर्य्यात् पयसा तज्जलेन च ॥
कुटुम्बिने दरिद्राय निष्कमावश्च हाटकं ।
तिलान्नलवणादीनि दद्याद्विप्रगताय च ॥
पूर्णकुम्भांस्ततोवास्मै हरिद्राचूर्णसंयुतान् ।
बीजपूर्णांस्तु कलशान् लवणेन प्रपूरितान् ॥
चतुरश्चतुरोदद्याद्दोषिद्गः परमायुषे ।
गुरवे च वरंदत्त्वा कृत्वा ब्राह्मणतर्पणं ॥
उपवासविधानेन दिनशेषं नयेत्सुधीः ।
अनन्तरे च दिवसे कुर्याद्भगवदर्च्चनं ॥
बान्धवैः सह भुञ्जीत नियमांश्च विसर्जयेत् ।
एवं पर्व्वणि यः कुर्य्याच्चिरञ्जीवी भवेच्च सः ॥
सर्व्वव्याधि समुत्थाने सर्व्वदुःखोदये सति ।
स्नानं पर्व्वणि यः कुर्य्यात्तच्छान्तिं सोऽश्नुते परां ॥

इति गारुड़पुराणोक्तमायुर्व्रतं ।

---

‡ पुरुषायेति पुस्तकान्तरे पाठः ।

अगस्त्य उवाच।

सर्व्वेषाञ्चैव पात्राणामतिपात्रन्तु शङ्करी।
तान्तु पूजय विप्रेशां दृष्टादृष्टप्रदायिकां॥
पात्राणान्तुपूज्यता विप्रे शाम्बिप्रेश्वरीं।
ब्रह्मणा यो विधिः शक्रे कथितो विजयावहः।
शक्रेण पूर्णिमा तात* श्रावणस्य शुभावहा॥

शक्र उवाच।

विजया या समाख्याता सर्व्वकामप्रसिद्धये।
तामहं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः सुरसत्तम॥

ब्रह्मोवाच।

पुत्रार्थं राज्यविद्यार्थंयशःसौभाग्यतोऽपि वा।
विजयार्थं ग्रामकामो जयां कुर्वीत पूर्णिमां॥
हैमं वा राजतं वापि खड्गं वा अथपादुके।
प्रतिमां वापि कुर्वीत सर्व्वलक्षणसंयुतां॥

शाङ्कर्या इति शेषः।

तामादाय शुभे ऋक्षे शुक्लवस्त्रविभूषितां।
यवशाल्यङ्कुरोपेतां पानपात्रविभूषितां॥
दीर्वींसुशोभनां वस्त्रैः कल्पयेत्तत्र विन्यसेत्।
हुत्वा हुताशनं मन्त्रैः तत्रदेवीन्तु विन्यसेत्॥
तत्र सयवाङ्कुरादियुक्तायां वेद्यां।
रोचनाचन्दनं चन्द्रैरुपलिप्याथ पूजयेत्॥

---

* जयेति पूर्णिमातातदति पुस्तकान्तरेपाठः।

नानापुष्पविशेषैस्तु धूपगन्धान्नभोजनैः।
पूजयेद्विधिवद्देवीं तथा वीजानि चाहरेत्॥
यवगोधूममुद्गांश्च शालिषष्टिकशाटकीः।
तिलान्माषान् प्रसृतींश्च श्यामाकावेणरालकान्॥
विल्वाम्रदाड़िमकपित्थमोचकापिच्छनागरान्।
बदरान् वीजपूरांश्च उडुम्बर अषोड़कान्* ॥
दापयेच्चैव देव्यास्तु नैविद्यान्यपराणि च।
आवेणी आशुव्रीहिः।
ऐरावतं नारिकेलं नारङ्गं कदलीफलं।
नारङ्गं पानीयामलकं।
फलार्थन्तु फलान्येव जपार्थञ्च यवाङ्कुरान्।
पुष्पं सौभाग्यकामाय रत्नान्यायुर्धनानि च॥
धनुः शत्रुविनाशाय तत्कामाय तदेव हि।
अन्नं सर्व्वार्थकामाय यथालाभन्तु दापयेत्॥
ततः क्षमापयेद्देवीं विद्यां गृह्णे च पार्थितां† ।
विद्याक्षच्यमाणमन्त्रं।
पुत्रार्थं पूजयेद्बालान्विजयाय स्त्रियो द्विजान्।
धर्म्मार्थञ्चैव भोज्येन मन्त्रितं विद्यया तया॥
मन्त्रितं भोज्येत भोजयितव्यं व्रतिना।
दक्षिणा तद्वदाचार्य्ये कन्यकां ब्राह्मणेषु च।
दापयेद्यास्वशक्त्यातु तथा त मनुगृह्णयेत्॥

---

* अषचकामिति पुस्तकान्तरे पाठः।

† प्रार्थयते इति पुस्तकान्तरे पाठः।

भोज्याग्रं पुत्रकामेन ग्रासं विद्याभिमन्त्रितं।
भोक्तव्यं पृथक् पात्रेण न च कुर्व्वीत सङ्करं॥
अनया विधिपूर्व्वन्तु मन्त्रोप्यत्रैव लिख्यते।

ओं यः पृथिव्यां रेतमेहाद्व्रतयोमामचितानि विद्याप्रयच्छत्यष्टौपुत्रान् जनयति वेदवेदाङ्गपारगान्। योऽधीत्य न प्रयच्छत्य पुत्रो नपुंसको भवति। अहं वीर्य्येणाहं बलेन तु ओं नमो भगवते अक्षीणरेतसे स्वाहा रतिकाले वा चिन्तयेद्देवतां तान्त्रिदशेखरौ।

यस्य रेतेन लोकोऽयं भूषितः पांवनो भुवि॥
ओं रेताय महारेताय सर्व्ववीर्य्यमहाबले।
कामाय कामदेवाय मम कामान् प्रयच्छतु॥

अनयाभिमन्त्रितं शयनं भजेत्।

प्रयच्छत्यष्टौ पुत्रान् यदि मोहं न गच्छति॥
एवं विद्यां गृहीत्वा तु देवीं नित्यं प्रपूजयेत्।
भवते सर्व्वकामानां सिद्धिरिष्टापराजिता॥
यानीह फलपुष्पाणि उत्पद्यन्ते च प्रावृषि।
तानि देव्याः सकन्यायागुरवेऽपि प्रदापयेत्॥
यथालाभन्तुकं वस्त्र देयं पुष्पफलानि च।
श्रावणी शुभदा या च आश्विनी कार्त्तिकीति वा॥
स्नातव्येतेन विधिना अवश्यं सिद्धिमिच्छता।
होमेन ब्रह्मचर्य्येण वहुमन्त्रोपसाधनात्॥
अपुत्रो लभते पुत्रान् धनं सौभाग्य जीवितं।
अथवा अनयाविद्या लक्षणाद्दहती सिता॥

बीजपूरकबीजानि बटशृङ्गाणि नावनात् ॥
नागकेशरपुष्पाणि कृत्वा वो लभते फलं ।
वृहतीसिता श्वेतवृहती । वट शृङ्गाणि वटाङ्कुराः ।
नावनात् नास्येन
फलसर्प्पिरपांपानात् फलं प्राप्नोति विद्यया ।
अजेयो भवते लोके विद्याधरधनाधिपः ॥
फलसर्पिरायुर्व्वेदसिद्धं ।
एतत्तु सर्व्वमाख्यातं विजयार्थं व्रतोत्तमं ।
सिद्धिदं सर्व्वलोकानां विधिनातूपसेवनात् ॥

इति देवीपुराणोक्तं पुत्रप्राप्तिव्रतं ।

———000———

मार्कण्डेय उवाच ।

कार्त्तिक्यान्तु तथारभ्य संपूर्णशशलचणं ।
पूजयेदुदये राजन् सदानक्ताशनोभवेत् ॥
लावणं मण्डलं कृत्वा चन्दनेनानुलेपितं ।
दशनचत्रसहितं ततः सोमन्तु पूजयेत् ॥
( लावणं सैन्धवलवणकृतं । )
कृत्तिकारोहिणीयुक्तं कार्त्तिके मासि पूजयेत् ।
सौम्यार्द्रासहितं राजन् मासि सौम्ये तथैव च ॥
आदित्यपुष्यसहितं मासि पौषे च यादव ।
मघासर्पयुतं माघफाल्गुणे शृणु पार्थिव ॥

आर्यस्ततोथ सावित्रैः सहितं पूजयेद्विभुं ॥
चित्रास्वातियुतञ्चैत्रे वैशाखे शृणु पार्थिव।
विशाखया च मैत्रेण युतं संपूजयेत्तथा ॥
ज्येष्ठामूलयुतं ज्यैष्ठे आषाढ़ाख्यानमुत्तरे।
श्रावणे श्रवणोपेतं वारुणेन श्रविष्टया ॥
तथाभाद्रपदे पौष्णा अजाहिव्रघ्नसंयुतं।
अश्विनीभरणीयुक्तं तथाचाश्वयुजे विभुं ॥

(कार्त्तिकादौकृत्तिकादिक्रमेण फाल्गुनश्रावणभाद्रपदेषु त्रीणि त्रीणि।)

गन्धमाल्यनमस्कारदीपधूपान्नसंम्पदा।
शुभ्रेण परमान्नेन लवणेन घृतेन च ॥
इक्षुणेक्षुविकारैश्च पयसा पायसेन च।
पूज्याश्चाविधवानार्य्यस्तथा तल्लक्षणैः शुभैः ॥
ततोऽनन्तरमश्नीयाद्धविष्यं प्रयतोनरः।
ब्राह्मणानां व्रतान्ते तु महारजतरञ्जितं ॥

महारजतं कुसुम्भः।

शक्त्या तु चासनं* दद्यान्नारी वा यदि वा नरः।
रूपसौभाग्यलावण्यधनयुक्तोभवेन्नरः।
व्रतेनानेन चीर्णेन स्वर्गलोकञ्च गच्छति ॥
सोपवासश्च यः कुर्य्याद्व्रतमेतदनुत्तमं।
अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥
सौभाग्यादि च यत् प्रोक्तं तदाप्नोति विशेषतः।

* वसनं दद्यादिति पुस्तकान्तरे पाठः।

मनसा काङ्क्षितान् कामान् सर्वानाप्नोत्यसंशयं ॥
जनाभिरामश्च शशाङ्कवत्स्या
जनाधिपालश्च तथैव लक्ष्म्या ।
शक्रेण तुल्यश्च तथैव शक्त्या
मानुष्यमासाद्य भवेत्स राजा ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं* मनोरथपूर्णिमा व्रतं ।

———०००———

मार्कण्डेय उवाच ।

कार्त्तिके पौर्णमास्यान्तु पूर्णं शिशिरदीधितिं ।
पद्मे षोड़शपत्रे तु कर्णिकायान्तु पूजयेत् ॥
केशरे पूजयेत्तत्र नक्षत्राण्यष्टविंशतिं ।
पत्रेषु तिथिदेवाश्चशाततोज्योत्स्नाश्च पूजयेत् ॥
अग्निब्रह्माम्बिकेभास्य नागस्कन्दविरोचनाः ।
शिवदुर्गायमेन्द्राश्च विष्णुकामशिवेन्दुकाः ॥
पितरश्चेत्यमी प्रोक्ता मुनिभिस्तिथिदेवताः ।
गन्धमाल्यनमस्कार दीपधूपान्नसम्पदा ॥
शुभ्रेण परमान्नेन दध्ना च लवणेन च ।
अपूपैश्च महाभाग फलैः कालोद्भवैस्तथा ॥
व्रतावसाने दद्याच्च वस्त्रयुग्मं द्विजातये ।
ब्राह्मणाश्च महाभाग महारजतरञ्जितैः ॥
पूज्याश्चाविधाः सम्यक् कालविद्याश्च तावुभौ ।

* श्रीभविष्योत्तरोक्त इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

सोपवासस्त्वभक्ताशी* व्रतमेतत् समाचरेत्।
नक्ताशनो वा धर्म्मज्ञस्तथैव च हविष्यभुक्* ॥

सौभाग्यदं रूपविवर्द्धनञ्च
लावण्यदं स्त्रीरतिभोगदञ्च।
कार्य्यं प्रयत्नेन नरेन्द्र पुंसा
कार्य्यन्तथा स्त्रीभिरदीनसत्त्वं ॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं* सौभाग्यव्रतं।

———000———

मार्कण्डेय उवाच।

मार्गशीर्षाद्‌थारभ्य चन्द्रमण्डलके नरः।
सोपवासः पौर्णमास्यां पूज्य यज्ञफलंलभेत् ॥
यज्ञफलं सर्व्वयज्ञफलं।
नक्ताशनस्तु संपूज्य वह्निष्टोमफलं लभेत् ॥
सोपवासश्च नक्ताशी वाजिमेधफलं लवेत्।
सोपवासः सुव्रतः।

कृत्वा व्रतं वत्सरमेतदिष्टं
प्राप्नोति लोकांश्च निशाकरस्य।
उपोष्य कालं सुचिरं सकालं
सायोज्यमायाति तमस्तशम्भोः ॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं चन्द्रव्रतं।

---

* सोपवासस्तु नक्ताशीति पुस्तकान्तरेपाठः।

* अनक्ताशी एक भक्तोनक्तं साम्ना वा कार्थेव च इति पुस्तकान्तरे पाठः।

* भविष्योत्तरोक्तं सौभाग्य व्रतं इति पुस्तकान्तरं पाठः।

मार्कण्डेय उवाच ।

प्रोष्ठपदात्तथारभ्य संपूर्णे शशिलक्षणे ।
संपूज्य वरुणं देवं गन्धमाल्यान्नसंपदा ॥
जलाशयजले ध्यात्वा एवं संवत्सरं बुधः ।
दद्यात् व्रतावसाने तु जलधेनुं द्विजातये ॥
छत्रोपानहसंयुक्तां वासोयुग्मविभूषितां ।
प्राप्नोति लोकं वरुणस्य राजं
स्तत्रोष्य कालं सुचिरं मनुष्यः ।
मानुष्यमासद्य भवत्यरोगो
रूपान्वितो वित्तयुतस्तथैव ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं वरुणव्रतं॥

---

मार्कण्डेय उवाच ।

आश्वयुज्यां* सपूर्वन्तु पौर्णमास्यां नरो भुवि ।
सोपवासः सुरेन्द्रञ्च देवं संपूजयेत्तथा ॥
शचीमैरावणम्वज्रं मातुलिङ्गं नराधिप ।
गन्धमाल्यनमस्कार दीपधूपान्नसम्पदा ॥
संवत्सरान्ते कनकञ्च दत्त्वा
प्राप्नोति लोकं सपुरन्दरस्य ।
मानुष्यमासाद्य नरेन्द्रपूज्यो
राजा भवेद्वा द्विजपुङ्गवो वा ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं शक्रव्रतं ।

---

* आश्वयुग्म स पूर्व्वमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

मार्कण्डेय उवाच।

उपोषितश्चतुर्दश्यां पौर्णमास्यां नरोत्तम।
पञ्चगव्यं पिवेत्पश्चाद्धविष्याशी तथा भवेत्॥
शुक्लव्रतमिदं कृत्वा* मासपापात् प्रमुच्यते।
तस्मात्सर्व्वप्रयत्नेन मासि मासि समाचरेत्॥
संवत्सरात् प्राप्य सुरेन्द्र लोकं
ततोऽथ राजा सुचिरं मनुष्यः।
मानुष्यमासाद्य नरेन्द्रपूज्यो
राजा भवेद्वा द्विजपुङ्गवो वा॥

## इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं ब्रह्मकूर्च्चव्रतं।

——000——

कार्त्तिक्यामुपवासी यः कन्यां दद्यात् स्वलङ्कृतां।
स्वकीयां परकीयां वा नदीसङ्गमके शुभे॥
एतत्सन्तानदं नाम व्रतं सुगतिदायकं।

## इति भविष्योत्तरोक्तं सन्तानदव्रतं।

——000——

कृष्ण उवाच।

कार्त्तिक्यां नक्तभुक् दद्यान्मेषं हेमविनिर्म्मितं।
मार्गशीर्षे नृपं पश्येन्मिथुनं तद्वदेव हि॥
एवं क्रमेण यो दद्याद्दासीं वस्त्रविभूषितां।
पौर्णमास्यां पौर्णमास्यां कर्त्तव्यं।

* संवत्सरमिदं कृत्वा इति पुस्तकान्तरे पाठः।

पौर्णमास्यां पौर्णमास्यां कौन्तेय वहुदक्षिणं।
एतद्राशिव्रतं नाम ग्रहोपद्रवनाशनं।
सर्व्वाशापूरकं तद्वत्सोमलोकप्रदायकं॥

## इति भविष्यत् पुराणोक्तं राशिव्रतं।

———०ः०———

पयोव्रतः पञ्चदश्यां व्रतान्ते गोयुगप्रदः।
लक्ष्मीलोकमवाप्नोति देवीव्रतमुदाहृतं॥

## इति पद्मपुराणोक्तं देवीव्रतं।

———000———

कालोत्तरात्।

माघशुक्ल चतुर्द्दश्यामुपोष्य नियमस्थितः।
शिवाय पौर्णमास्यान्तु कर्त्तव्यं घृतकम्बलं॥
कृष्णगोमिथुनं पश्चात् सुरूपं विनिवेदयेत्।
दिव्यं वर्षशतं सार्द्धं शिवलोके महीयते॥

शिवधर्म्मे।

आलिङ्गवेदिपर्य्यन्तं यो दद्याद्घृतकम्बलं।
तस्यानन्तं भवेत्पुण्यं माघपूर्णिमपर्वणि॥
जागरं गीतनृत्याद्यैः सकृत् कृत्वा तु पर्वणि।
मन्वन्तरशतं सार्द्धं रूद्रलोके महीयते॥
इति शिवधर्म्मोत्तरोक्तो घृतकम्बलविधिः।
पौर्णमास्यान्तु यः सोमं पूजयेद्भक्तिमान्नरः॥

सौभाग्यत्वं भवेत्तस्य इति मे निश्चिता मतिः॥
मूलमन्त्राः स्वसंज्ञाभि रङ्गमन्त्राश्च कीर्त्तिताः।
पूर्व्ववत्पञ्चपचस्थः कर्त्तव्यश्चातिथीश्वरः॥

तिथीश्वरः सोमः तद्रूपञ्च चतुर्द्दशीस्थितमहाराजव्रतोक्तं वेदितव्यं।

गन्धपुष्पोपहारैश्च यथाशक्ति विधीयते।
पूजाशाठ्ये न शाठ्ये न कृतापि तु फलप्रदा॥
आज्यधारासमिद्भिश्च दधिचीरान्नमाचिकैः*।
पूर्व्वोक्तफलदो होमः कृतः शान्तेन चेतसा॥
एतद्व्रतं वैश्वानरप्रतिपत्व्रतवद्व्याख्येयं।

इति भविष्यत्पुराणोक्तं सोमव्रतं।

———000———

भोजनं घृतसंयुक्तं मधुनोपरिशोभितं।
दद्यात् कृष्णतिलानान्तु प्रस्थमेकन्तु मागधं॥
द्विगुणन्तण्डुलानाञ्च पृथक्प्रस्थं प्रकल्पयेत्।
अण्डजैर्वौण्डजैर्वापि विविधं परिवेष्टितं॥
अण्डजानि कौशेयानि वौण्डजानि कार्पासानि।
लिङ्गं संवेष्ट्य मन्त्रैश्च बलिमेतं निवेदयेत्।
अर्चयित्वा विधानेन पौर्णमास्यां समाहितः॥
युगकोटिसहस्राणि* शिवलोके महीयते।

---

* पायसान्नैनवैतथेति पुस्तकान्तरे पाठः।

* पुराकोटि सहस्राणीति पुस्तकान्तरे पाठः।

पुण्यक्षयादिहागत्य समृद्धे जायते कुले ॥
मेधावी सुभगः श्रीमान्वेदवेदाङ्गपारगः ।

इति श्रीशिवधर्मोक्तं घृतभाजनव्रतं ॥

———000———

पौर्णमास्यामुपवसेदब्दमेकं सुयन्त्रितः ।
वर्षान्ते सर्व्वगन्धाग्रीं प्रतिमाञ्चिनिवेदयेत् ॥
सुविचित्रैर्म्महायानैर्द्दिव्यगन्धविभूषितैः ।
युग कोटि शतं साग्रं शिवलोके महीयते ॥
यथेष्टमैश्वरे लोके भोगमासाद्य यत्नतः ।
क्रमादागत्य लोकेस्मिन् राजानं पतिमाप्नुयात् ॥

इति शिवधर्मोक्तं गन्धव्रतं ।

———onDuo———

सनत्कुमार उवाच ।

उपोष्य च चतुर्द्दश्यां पौर्णमास्यां हरिं यजेत् ।
चैत्रे मासि निकुम्भश्च पिशाचैः महितो बली ॥
यातियोद्धुं पिशाचांश्च सिकताद्वीपवासिनः* ।
तदन्ते गच्छतां तेषां मध्याह्ने तु गृहे गृहे ॥
पूजा कार्य्या प्रयत्नेन नित्यं शक्त्या यथाक्रमं ।
पिशाचं मृन्मयं कृत्वा रम्यं तृणमयञ्च वा ॥
गन्धैर्म्माल्यैस्तथा वस्त्रैरलङ्कारैर्म्मनोहरैः ।
भक्ष्यैस्तु पूरिकापूपैर्म्मांसैर्द्दिव्यैश्च पानकैः ॥

* सिन्धुद्वीपनिवासिन इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

स्वजातिविहितैःपेयैर्नैवेद्यैश्च पृथग्विधैः।
आयुधैर्व्विविधाकारैश्छत्रोपानहयष्टिभिः॥
शुष्कान्नपूरिकायुक्तैस्थिरैर्भक्ष्यैश्च भस्त्रया।
शिक्यउद्दालपिष्टैर्व्वा ढक्कावाद्यैश्च चर्म्मणा॥
तन्त्रीवाद्यैर्म्मनोज्ञैश्च तथा पार्थोपयोगिभिः।
मध्याह्ने तन्तु संपूज्य प्राप्ते चन्द्रोदये पुनः॥
पूर्व्ववत् पूजयेत्तन्तु वित्तसाठ्यविवर्जितः।
ततः कृत स्वस्त्ययनो ब्राह्मणस्तं विसर्ज्जयेत्॥
अनुव्रजेद्द्वयैतन्तु द्वितीये दिवसे सति।
गृहा द्दूरंयोयस्य पर्व्वं तस्तु महीरुहात्॥
पुनर्गृहे प्रविश्यैव कर्त्तव्यः सुमहोत्सवः।
गीतवादित्रनिर्घोषो जनकोलाहलस्तथा॥
कृत्वा तृणमयं सर्पं दृढैः काष्ठैस्तु वेष्टितं।
क्रीड़ितव्यं पुनर्ग्रामनगरेषु च सर्व्वदा॥
तत्रासौ दुष्टसर्पाणां तत्त्वणाद्भयेन जायते।
त्रिभिश्चतुर्भिर्द्दिवसैः कर्त्तव्यं खण्डखण्डकं॥
सर्व्वोपस्कारशमनं नवखुण्डं गृहे गृहे।
पूजितव्यं सुगुप्ते तु रक्षितव्यञ्च वत्सरं॥

इत्यादि पुरानोक्ता निकुम्भपूजा।

———000———

कार्त्तिक्यां यो वृषोत्सर्गं कृत्वा नक्तं समाचरेत्।
शैवं पदमवाप्नोति वृषव्रत मिदंस्मृतं॥

इति पद्मपुराणोक्तं वृषव्रतं।

या प्रेरयति कर्म्माणि लोकेषु द्विजसत्तम।
तस्याः संपूजनं कार्यं शुक्लपञ्चदशीं सदा॥
माल्यानुलेपनैः शुक्लैर्धूपेन च सुगन्धिना।
रक्तवस्त्रप्रदानेन दीपदानेन वाथवा॥
वैदलैश्च तथाभक्ष्यैरपूपैस्तथैव च।
पूजयित्वा च तां देवीं भोक्तव्यं निशि भार्यया॥
यदि पञ्चदशीं सर्व्वां न शक्नोति कथञ्चन।
देव्याः संपूजनं कार्यं अवश्यमपि कार्त्तिके॥
उमान्तु* पूजयेद्यातु सातु नारी पतिव्रता।
सदा धर्म्मरता नारी लोके भवति भार्गव॥
नाशुभे च मतिस्तस्याः कदाचिदपि जायते॥

## इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं पूर्णिमाव्रतं।

———०००(u)०c०———

प्राप्य पञ्चदशीं राम तथा शुक्लाञ्च कार्त्तिकीं।
आरामगृहभित्तिं वै उभे शौच समालिखेत्॥
तस्यद्वारि गृहे वाशु नानावर्णैस्तु वर्णिकं।
गृहोपकरणं शक्त्या तयोश्चैवाभितो लिखेत्॥
पीतं यद्रासमाद्यन्तु सकटीमुखनाशिकं।
ततस्तौ पूजयेन्नारी स्नात्वा भर्त्तृपरा शुचिः॥
गन्धमाल्यनमस्कारधूपदीपान्नसम्पदा।
इक्षुणेक्षु विकारैर्व्वा विशेषेण च पूजयेत्॥

---

* उपार्त्तिमिति पुस्तकान्तरे पाठ.।

तयोस्तु पूजनं कृत्वा पश्येत्तु सिकतामयं।
शुक्लान्नित्यं न्यसेत् क्षीरं तच्चदद्याद्विजातये॥
ततश्च नक्तं भुञ्जीत तिलतैलविवर्जितं।
अनयोः पूजनाद्या तु गृहभङ्गन्तु नाप्नुयात्॥
पतिव्रता महाभागा दीर्घमाप्नोति जीवितं।
पूर्णमिन्दुं ततोऽभ्यर्च्य सौभाग्यं महदाप्नुयात्॥
इष्टग्रहमथाभ्यर्च्य नक्षत्रमथ वा नृप।
तस्याःक्षेममवाप्नोति कामञ्च यदुनन्दन
मासनामसनक्षत्रं पूर्णिमायोगपञ्च वा।
पूजयित्वा तदाराजन् सौभाग्यं महदाप्नुयात्॥
नृसिंहप्रतिवद्धन्तु पूर्णचन्द्रं समर्चयेत्।
नरोमातृगणा राजन् सर्व्वान् कामानवाप्नुयात्॥
एकां वा मातरं राजन् कामानाप्नोत्यभीप्सितान्।
वानस्पत्यमवाप्नोति पूजयित्वा वनस्पतीन्॥

इति विष्णुधर्मोक्तं नानाफलपूर्णिमाव्रतं।

---

श्रावण्यां पौर्णमास्याञ्च सोपवासो जितेन्द्रियः।
प्राणायामशतं कृत्वा मुच्यते सर्व्वकिल्विषैः॥

इति वह्निपुराणोक्तं पूर्णिमाव्रतं।

---

चन्द्रव्रतं पञ्चदश्यां शुक्लायां नक्तभोजनं॥
दश पञ्च च वर्षाणि व्रतमेतत् समाचरेत्।

अश्वमेधसहस्राणि राजसूय शतानि च ॥
इष्टानि तेन राजेन्द्र एतद्व्रतं समाचरेत्।

इति वाराहपुराणोक्तं चन्द्रव्रतं।

——000——

ईश्वर उवाच।

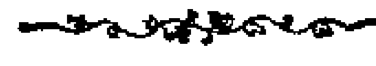
ज्यैष्ठस्य पौर्णमास्यान्तु दम्पती यस्तु भोजयेत्।
परिधाय यथा शक्त्या दौर्भाग्यैर्मुच्यते नरः॥
गन्धपुष्पोपहारैश्च पौर्णमास्यान्तु योऽर्चयेत।
ब्राह्मण्यं जायते तस्य सप्तजन्मनि सुन्दरि॥

इति प्रभासखण्डोक्तं ब्राह्मण्यावाप्तिव्रतं।

इति श्रीमहाराजाधिराजश्रीमहादेवस्य सकलकरणा-
धीश्वरसकलविद्याविशारदश्रीहेमाद्रिविर-
चिते चतुर्वर्गचिन्तामणौ व्रतखण्डे
पूर्णिमाव्रतानि।

——

## अथ विंशोऽध्यायः ।



### अथामावास्याव्रतानि ।

येनात्यर्थं बलिभिरनिशन्तर्पितो नागलोको*
राहूच्छिष्टामिव शशिकलां मन्यमानो न भुंक्ते ।
सोऽयं साधुद्विजपरिवृढः शूरिहेमाद्रिरास्म-
न्नामावास्याव्रतसमुदयं ख्यातमाख्यातिकीर्त्तिः ॥

अगस्त्य उवाच ।

भगवंस्त्वत् प्रसादेन श्रुतोऽयं व्रतविस्तरः ।
अर्द्धोदयन्तु मे ब्रूहि दुर्लभं सचराचरे ॥
जीवितं प्राणिनां पुण्यं यदिचेद्ददसि प्रभो ।
कथं कार्य्यं कृते किं स्यात् फलं कथय षण्मुख ॥
श्रूयतां पुण्ययोगोऽयं दुर्लभोऽर्द्धोदयाह्वयः ।
तिर्य्यङ्मनुष्यदेवानां दुष्प्राप्यं सर्व्वकामदं ॥
मघामायां व्यतीपात आदित्ये विष्णुदैवते ।
अर्द्धोदयं तदित्याहुः सहस्राकंग्रहैः समं ॥
पुराकृतं वसिष्ठेन जामदग्न्येन सुव्रत ।
सनकाद्यैर्मनुष्यैश्च बहुभिर्बहुभिःश्रुतैः ॥
अन्यैः शतसहस्रैश्च दृष्टं भवतु कुम्भजः ।
दानानां यज्ञ तीर्थानां फलं येन कृतं भवेत् ॥

---

* न्यकलोक इति पुस्तकान्तरं पाठः ।

ससागराधरा तेन सप्तद्वीपसमन्विता।
दत्ताखात् सर्व्वभावेन येन ह्यर्द्धोदयं कृतं॥
मानसादिषु तीर्थेषु यत्पुण्यं स्नानदानतः।
गङ्गागयाप्रयागे च पुष्कराणांत्रये तथा॥
तत्सर्व्वं वा न वा विप्र व्रतेनानेन कुम्भज।
अश्वमेधायुतं श्रेष्ठमिष्टापूर्त्तञ्च यद्भवेत्॥
अर्धोदयकृतं यैस्तु विधिदृष्टेन कर्म्मणा।
वाजि सत्रं गृहे लक्ष्मीः सन्ततिश्चानपायिनी॥
आयुर्य्यशोहि विपुलं व्रतकर्त्ता फलं लभेत्।
इन्द्राग्नियमलोकेषु निर्ऋतीनामपांयतेः॥
वायोःकुवेरशेषस्य लोकेषु सुकृती प्रभुः।
वसेच्चन्द्रार्कलोकेषु लोकपालैश्च सेवितः॥
गोकोटिदानाद्यत् पुण्यं क्षेत्रतीर्थनिवासिनां।
अर्द्धोदयजपुण्यस्य कलां नार्हन्ति षोड़शीं॥
भूर्लोकाधिपतिश्चैव भुवर्ल्लोकाधिपस्तुसः।
स्वर्लोकेशो जनानाञ्च तथोर्लोकस्यचेश्वरः॥
महर्लोके वसेन्नित्यं यावदिन्द्राश्चतुर्दश।
ततो हिरण्यगर्भस्य पुरुषो व्रतकारकः॥
तस्य लोकाधिपः साक्षी लोकानां पुरुषोव्ययः।
अर्द्धोदयप्रसादेन ब्रह्मलोके वसेत्तुसः॥
तथा वानेन विष्णुत्वं ब्रह्म रुद्रस्तथा भवेत्।
शिव लोको गुणैः पूज्यो देवराजसमन्वितः॥
वसेच्छाक्रेण मानेन व्रतस्यास्यप्रभावतः।

ततो विष्णुस्वरूपेण त्रैलोक्याधिपतिर्भवेत्॥
शङ्खचक्रगदाधारी वनमाली हरिः स्वयं।
व्रतप्रभावाल्लक्ष्मीशो देवो नारायणो भवेत्॥

अगस्त्य उवाच।

स्कन्द केन विधानेन कर्त्तव्यं व्रतमुत्तमं।
अर्द्धोदयं मनुष्याणां जीवितं दुर्लभं भुवि॥

स्कन्द उवाच।

कृते कृतं वसिष्ठेन त्रेतायां रघुणा कृतं।
द्वापरे धर्म्मराजेन कलौ पूर्णोदरेण च॥
अन्यैर्देवमनुष्यैश्च दैत्यैश्च द्विजसत्तम।
कृतमर्द्धोदयं सम्यक् पूर्णकामफलप्रदं॥
माघमासे कृष्णपक्षे पञ्चदश्यां रवेर्दिने।
वैष्णवेन चऋक्षेण व्यतीपाते सुदुर्लभे॥

वैष्णवर्क्षं श्रवणं।

पूर्व्वाह्ने सङ्गमे स्नात्वा शुचिर्भूत्वा समाहितः।
सर्व्वपापविशुद्ध्यर्थं नियमस्थो भवेन्नरः॥
त्रिदैवत्यंव्रतं देवाः करिष्ये भुक्तिमुक्तिदं।
भवन्तु सन्निधौमेद्य त्रयोदेवास्त्रयोग्नयः॥

इति नियममन्त्रः।

ब्रह्मविष्णुमहेशानां सौवर्णपलसंख्यया।
कर्त्तव्यार्चा तदर्द्धेन तदर्द्धेन द्विजोत्तम॥
शाग्यं शतत्रयं शम्भोर्द्रोणानां तिलपर्व्वतः।

शम्भुरत्र ब्रह्मा।

कर्त्तव्यौ विष्णुरुद्रावङ्गिरः पूर्व्वोक्तसंख्यया।
शय्यात्रयं ततः कुर्य्यादुपस्करसमन्वितं॥
देवानां त्रयमुद्दिश्य कर्त्तव्यं भक्तिशक्तितः।
ब्रह्मविष्णुशिवप्रीत्यै दातव्यन्तु गवां त्रयं॥
हिरण्यभूमिधान्यादिदानं विभवसारतः।
दातव्यं श्रद्धयोपेतं[1] ब्राह्मणेभ्यः प्रयत्नतः॥
मध्याह्ने तु नरः स्नात्वा शुचिर्भूत्वा समाहितः।
तिलपर्व्वतमध्यस्थं पूजयेत् देवतात्रयं॥

आदौ ब्रह्मपूजा।

नमो विश्वसृजे तुभ्यं[2] सत्याय परमेष्ठिने।
देवाय देवपतये यज्ञानां पतये नमः॥
ओं ब्रह्मणे नमः पादौ हिरण्यगर्भाय नम ऊरुभ्यां।
धात्रे नमो जानुभ्यां जङ्घाभ्यां परमेष्ठिने नमः।
वेधसे नमो गुह्ये पद्मोद्भवाय वै नमो वस्तौ।

हंसवाहनाय नमः कटिदेशे शतानन्दाय वक्षसि नमः। सावित्रीपतये नमोनमोस्तु बाहुषु। ओं ऋग्वेदाय नमः पूर्व्ववक्त्रे यजुर्व्वेदाय नमो दक्षिणवक्त्रे। सामवेदाय नमः पश्चिम वक्त्रे। अथर्व्ववेदाय नमः उत्तरवक्त्रे। ओं चतुर्वक्त्राय नमः शिरसि। कपोलौ ओं कपालाय नमः।

---

१ श्रद्धयोपेतमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

२ पूर्व्वमिति पुस्तकान्तरेपाठः।

ततः कार्य्या लोकपालपूजा विप्रैः समन्वतः।
हिरण्यगर्भ पुरुषप्रधानाव्यक्तरूपवत्॥
प्रसीद समुखो भूत्वा पूजां गृह्ण नमोऽस्तु ते।
ब्रह्मप्रार्थनमन्त्रः।
नारायण जगन्नाथ नमस्ते गरुड़ध्वज।
पीताम्बर नमस्तुभ्यं जनार्द्दन नमोऽस्तु ते॥

अनन्ताय नमः पादौ विश्वरूपाय ते नमः मुकुन्दाय नमो जानुभ्यां ऊरुभ्यां गोविन्दाय नमो जङ्घाभ्यां। गुह्ये प्रद्युम्नाय नमः पद्मनाभाय नमो नाभौ। भुवनोदराय नम उदरे वक्षसि कौस्तुभवक्षसे नमः। चतुर्भुजाय नमो बाहुषु वदने विश्वतोमुखाय नमः। नमः सहस्रशिरसे देवायानन्ताय मौलौ।

आदित्य चन्द्रनयन दिग्बाहो दैत्यसूदन।
पूजां दत्तां मया भक्त्या गृहाण करुणाकर[1]॥
इति विष्णुप्रार्थनामन्त्रः।
महेश्वर महेशान नमस्ते त्रिपुरान्तक।
नमो जीमूतकेशाय नमस्ते वृषभध्वज॥
ईशानाय नमः पादौ जङ्घाभ्यां चन्द्रशेखरः।
जानुभ्यां पशुपतिर्देव ऊरुभ्यां शङ्करः स्मृतः॥
उमाकान्ताय गुह्ये तु नाभौ वै नीललोहितः।
उदरे कृत्तिवाससे वक्षो नागोपवीतिने॥
भोगिरूपाय वै बाहौ नीलकण्ठस्तु कण्ठगः।

१ करुणापर इति पुस्तकान्तरे पाठः।

मुखे वै पञ्चवक्त्राय मौलौ चैव कपर्द्दिने ॥
अन्धकारे प्रमेयात्मन् नमो लोकान्तकाय च।
पूजां दत्तां मया भक्त्या गृहाण वृषभध्वज ॥

इति महेश्वरप्रार्थनमन्त्रः।

इति पूजाक्रमः प्रोक्तो मन्त्रैरेतैः प्रयत्नतः ॥
आचार्य्यं पूजयेद्भक्त्या वस्त्रालङ्कारभूषणैः।
हस्तमाला कर्णमाला पीठञ्च कमण्डलुः ॥
श्वेतवस्त्रयुगं देयं ब्रह्मणे सर्व्वमूर्त्तये।
पीतवस्त्रयुगं विष्णोः[1] लोहितं शङ्करस्य च ॥
पञ्चामृतेन स्नपनं पूजनं कुसुमैः स्वकैः।
कमलैस्तुलसीपत्रैर्व्विल्वपत्रैरखण्डितैः ॥
तत्कालसम्भवैर्द्दिव्यैः पूज्या देवा यथाक्रमं।
यथाशक्त्या प्रकर्त्तव्यं व्रतमेतत् सुदुर्लभं ॥
जीवितं प्राणिनामेतदनित्यं निश्चितं यतः।
अथ व्रताङ्गहोमस्य विधानं शृणु तत्त्वतः ॥
देवतात्रयमुद्दिश्य शास्त्रदृष्टेन कर्म्मणा।
प्रजापते विश्वरूपाय रुद्राय च नमो नमः।
इत्यनेनैव मन्त्रेण वह्निं संस्थाप्य भक्तितः।
ततो होमं प्रकुर्व्वीत यथाविभवसम्भवं ॥
अग्नये प्रजापतये स्वाहा। अग्नये विष्णवे स्वाहा।

---

१ कृष्णमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

अग्नये रुद्राय स्वाहा। एवं विधश्च होमः१। प्रजापते नत्वदेतान्यान्येन मन्त्रेण प्रजापतये। इदं विष्णुरिति विष्णवे। त्र्यम्बकमिति महादेवाय। इत्येतैर्मन्त्रैर्घृतहोमः२।

ब्रह्मणे विष्णवे महादेवाय स्वाहेति पूर्णाहुत्या सर्व्वान् कामान वाप्नोति प्राप्नोति होमोव्रताङ्गहोमः।

अथ होमावसानेच गाञ्च दद्यात्पयस्विनीं।
स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां घण्टाभरणभूषितां॥
ताम्रपृष्ठीं कांस्यदोहां सर्व्वोपस्करसंयुतां।
सदक्षिणां सुशीलाञ्च आचार्य्याय निवेदयेत्॥
तेन दत्तं हुतं जप्तमिष्टं यज्ञैः सहस्रधा।
कृतकृत्यो भवेद्विप्र व्रतस्यास्य प्रभावतः॥
एतत्सर्व्वं मयाख्यातं दुर्लभं व्रतमुत्तमं।
अर्द्धोदयं यथा दृष्टं किमन्यत् श्रोतुमिच्छसि३॥

## इति स्कन्दपुराणोक्तमर्द्धोदयव्रतं।

———000———

अमावस्यां निराहारः अब्दमेकं नियन्त्रितं।
शूलपिष्टमयं कृत्वा वर्षान्ते विनिवेदयेत्॥
शिवाय राजतं पद्मं सौवर्णं कृतवर्णिकं।
भक्त्या च विन्यसेत् मूर्ध्नि शेषं४ पूर्व्ववदाचरेत्॥

---

१ एवम्विधरुद्रहोमइति पुस्तकान्तरे पाठः।

२ चरुहोमइति पुस्तकान्तरेपाठः।

३ परिपृच्छतीति पुस्तकान्तरेपाठः।

४ शङ्खमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

कामतोऽपि कृतं पापं भ्रूणहत्यादिकञ्च यत् ।
तत्सर्व्वं शूलदानेन हत्वा नारीर्न संशयः ॥
महापद्मविमानेन नरो नारीसमन्वितः ।
युगकोटिशतं साग्रं शिवलोके महीयते ॥

पूर्व्ववदिति अहिंसा ब्रह्मचर्य्यं भूशयन पाषण्डानालापादिकमाचरेदित्यर्थः ।

ईशलोकादिलोकेषु भुक्त्वा भोगाननेकधा ।
इह लोके क्रमात्प्राप्य यथेष्टं पतिमाप्नुयात् ॥

## इति शिवधर्मोक्तं शूलदानव्रतं[१] ।

———000(D)000———

अगस्त्य उवाच ।

सर्गादौ ब्रह्मणा सृष्टास्तमूचुः पितरस्तदा ।
वृत्तिन्नो धेहि भगवान् यथावद्विद्महेवयं ॥

ब्रह्मोवाच ।

अमावास्यादिना वोऽस्तु तस्यां तिलकुशोदकैः ।
तर्पिता मानुषैस्तृप्तिं परां गच्छन्तु नान्यथा ॥
तिला देयास्तथैतस्यामुपोष्य पितृभक्तितः ।
चिराय तस्य सन्तुष्टा वरं यच्छन्तु मा चिरं ॥
तस्मादस्यान्तिथौ विद्वानेतत्सर्व्वं समाचरेत् ।

## इति वराह पुराणोक्तं पितृव्रतं ।

———000———

१ विष्णुधर्मोत्तरोक्तं शिवव्रतमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

ब्रह्मोवाच।

पितरः स्वदितैः पिण्डैरिष्टाः कुर्व्वन्ति सर्व्वदा।
प्रजावृद्धिं धनं रक्षामायुष्यं बलमेव च॥
मूलमन्त्राः स्वसंज्ञाभिरङ्गमन्त्राश्च कीर्त्तिताः।
गन्धपुष्पोपहारैश्च यथाशक्ति विधीयते॥
पूजाशाठ्येन शाठ्येन कृतापि तु फलप्रदा।
आज्यधारासमिद्भिश्च दधिक्षीरान्नमाक्षिकैः॥
पूर्व्वोक्तफलदो होमः कृतः शान्तेन चेतसा१॥
एतद्व्रतं वैश्वानरप्रतिपद्व्रतवद्व्याख्येयं।

इति भविष्यत्पुराणोक्तं पितृव्रतं।

——oo◎oo——

पुलस्त्य उवाच।

वर्षमेकं भवेद्यस्तु पञ्चदश्यां पयोव्रतः।
पञ्चदश्यामित्यमावास्यायां पुराणान्तरसंवादात्॥
समाप्ते श्राद्धकृद्द्यात्२ पयः३ पञ्च पयस्विनीः।
वासांसि च पिषङ्गानि जलकुम्भयुतानिच॥
स याति वैष्णवं लोकं पितॄणां तारयेच्छतं।
जन्मान्तरे भवेद्राजा पयोव्रतमिदं स्मृतं॥

इति पद्मपुराणोक्तममावस्यापयोव्रतं।

——o——

१ परमान्नेन वैतथेति पुस्तकान्तरे पाठः।

२ श्रद्धयाद्द्यादिति पुस्तकान्तरे पाठः।

३ गावइति पुस्तकान्तरे पाठः।

मार्कण्डेय उवाच ।

प्रभास्वरा वर्हिषद् अग्निस्वात्तास्तथैव च ।
क्रव्यादाश्चैव भूताश्च आज्यपाश्च सुकालिनः ॥
पूज्याः पितृगणा राजन् सोपवासेन नित्यशः ।
चैत्रे कृष्णारथारभ्य पञ्चदश्यां नराधिप ॥
आइन्तदह्नि कुर्वीत यावत् संवत्सरं भवेत् ।
गन्ध-माल्य-नमस्कार-धूप-दीपान्नसम्पदा ॥
संवत्सरान्ते दद्याच्च तथा धेनुं पयस्विनीं ।
ब्राह्मणाय महाभाग पितृभक्ताय शक्तितः१ ॥

कृत्वा व्रतं वत्सरमेतदिष्टं
प्राप्नोति लोकाम् स तथाच तेषां ।
तत्रोष्य कालं सुचिरं सुखी स्यात्
प्राप्नोति मोक्षं पुरुषप्रधानः२ ॥

इति विष्णुपुराणोक्तं पितृव्रतं ।

———000———

श्रीमार्कण्डेय उवाच ।

कृष्णपक्षे पञ्चदश्यां चैत्रादारभ्य यादव ।
वह्निसंपूजनं कृत्वा गन्धमाल्यान्नसम्पदा ॥
तिलहोमन्तथा कुर्यान्नाम्ना वह्नेर्नराधिप ।
संवत्सरान्ते दद्याच्च सुवर्णं ब्राह्मणाय च ॥

---

१ भक्तित इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

२ सुरप्रधानइति पुस्तकान्तरे पाठः ।

कृत्वा व्रतं वत्सरमेतदिष्टं
प्राप्नोति वित्तं सततं यशश्च ।
धर्मं मतीरूपमनुत्तमञ्च
कामान् यथेष्टान् पुरुषप्रधानः ॥

इति विष्णुपुराणोक्तं वह्निव्रतं ।

———000———

मार्कण्डेय उवाच ।

अमावास्यान्तवेलायां सोपवासो नरोत्तम ।
पद्मद्वये पूजयन्ति चन्द्रार्काविकराग्निगौ ॥
आदित्यमष्टदलके शशिनं षोड़शाकरे ।
आदित्यं सर्व्वरक्तेन चन्द्रं शुक्लेन यादव ॥
माल्यादिना महाभाग होमयेत्तिलतण्डुलान् ।
घृतक्षीरयुतान् राजन् तथार्च्चयेद्य१थाविधि ।
व्रतान्ते ब्राह्मणेन्द्राय कनकं२ प्रतिपादयेत् ॥
रजतम्बा महाभाग य इच्छेद्गतिमात्मनः ।
कृत्वा व्रतं वत्सरमेतदिष्टं
दद्याच्च दीपान् विधिवत् प्रभूतान्
चान्द्रं पदं प्राप्य विवर्द्धते सदः
धनान्वितः स्याच्चिदिवे इहैव ॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं चन्द्रव्रतं३ ।

---

१ तयोर्नाम्नादिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

२ करकमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

३ चम्पकव्रतमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

भगवानुवाच।

अमावस्यामनुप्राप्य ब्राह्मणाय कुटुम्बिने।
यत् किञ्चित् वेदविदुषे दद्यादुद्दिश्य शङ्करं॥
प्रीयतामीश्वरः सोमो महादेवः सनातनः।
सप्तजन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति॥

इति कूर्म्मपुराणोक्तममावास्याव्रतं।

---

अमावस्यायां ब्रह्माणं समुद्दिश्य पितामहं।
ब्राह्मणांस्त्रीन् समभ्यर्च्च्य मुच्यते सर्व्वपातकैः॥

इति कूर्म्मपुराणोक्तममावास्याव्रतं।

इति श्रीमहाराजाधिराज-श्रीमहादेवस्य-सकल-करणा-
धीश्वर-सकलविद्या-विशारद-श्रीहेमाद्रिविरचिते
चतुर्व्वर्गचिन्तामणौ व्रतखण्डे
अमावस्याव्रतानि॥

---

## अथ एकविंशोऽध्यायः ।



अथ नानातिथिव्रतानि ।

प्रत्येकमुक्तेषु तिथिव्रतेषु
लब्धावकाशं पुनरादरे तत् ।
हेमाद्रिरत्यन्तफलप्रदायि
नानातिथीनां व्रतवृन्दमाह ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

स्मारयामि हृषीकेश यन्नोक्तं भवता मम ।
तत्सावित्रीव्रतं ब्रूहि प्रसादसुमुखो भव ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

कथयामि कुलस्त्रीणां महिम्नोवर्द्धनं परं ।
यथा चीर्णं व्रतं पूर्व्वं सावित्या राजकन्यया ॥
आसीन्महीन्द्रो धर्मात्मा सर्व्वभूतहिते रतः ।
पार्थिवोऽश्वपतिर्नाम पौरजानपदप्रियः ॥
सर्वेश्वरोऽनपत्यश्च सत्यवाक् संयतेन्द्रियः ।
स सभार्य्यो व्रतमिदञ्चकारापत्यकाम्यया ॥
सावित्रीति प्रसिद्धं यत् सर्व्वकामप्रदायकं ।
तस्य तुष्टा तु सा देवी सावित्री ब्रह्मणः प्रिया ॥
भूर्भुवः स्वरितीत्यस्याः साक्षान्मर्त्तिरिह स्थिता ।

कमण्डलुकरा देवी वरदा स्मितभाषिणी ॥
उवाच दुहिता ह्येका तव राजन् भविष्यति ।
तस्याः प्रसादादप्येतत्सर्व्वं तव समागतं ॥
मन्नाम्ना सा च वक्तव्या महाकीर्त्तिमती तु सा ।
भविष्यति महाराज मा शोकं कर्त्तुमर्हसि ॥
एवमुक्ता तु सा देवी जगामादर्शनं तदा ।
कालेन बहुना जाता दुहिता देवरूपिणी ॥
सावित्रीप्रीतये हुत्वा सावित्र्यापूजया तथा ।
आदिष्टा चैव सावित्र्या सावित्रीसदृशी यतः ॥
सावित्रीत्येवनामास्याश्चक्रु विप्रास्तथापि सा ॥
सावित्री विग्रहवती१ व्यवर्द्धत पितुर्गृहे ।
काले बहुतिथे याते यौवनस्था बभूव सा ॥
सा सुमध्या पृथुश्रोणी प्रतिमां काञ्चनीमिव ।
प्राप्तेयं देवकन्येति संभ्रमं मेनिरे जनाः ॥
सा तु पद्मपलाशाक्षी प्रज्वलन्तीव तेजसा ।
चचार सापि सावित्रीव्रतं तद्गुरुणोदितं ॥
अथोपोष्य शिरः स्नाता सम्यक् सम्पूज्य देवताः ।
हुत्वाग्निं विधिवद्विप्रान् वाचयित्वेन्दुपर्व्वणि ॥
तेभ्यः सुमनसो मूर्ध्ना प्रतिगृह्य नृपात्मजा ।
सखीपरिवृताभ्येत्य२ देवश्रीरिव रूपिणी ॥

१ साक्षीकविग्रहवतीति पुस्तकान्तरे पाठः ।

२ भृत्यैरिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

साभिवाद्य पितुः पादौ विनीता चारुहासिनी ।
कृताञ्जलिर्वरारोहा नृपतेःपार्श्वतः स्थिता ॥
तां दृष्ट्वा यौवनप्राप्तां स्वां सुतां देवरूपिणीं
उवाच राजा संमन्त्र्य स्मृत्यर्थं सह मन्त्रिभिः ॥
पुत्री प्रदानकालास्ति नच कश्चिद्वृणोति मां ।
विचारयन्[१] पश्यामि वरंतुल्यमिहात्मनः ॥
तथापि देयासि मया दोषः स्यादन्यथा मम ।
देवादीनां तथा वाच्यो न भवेयं तथा कुरु ॥
पठ्यमानं मया पुत्रि धर्मशास्त्रेषु विश्रुतं ।
पितुर्गृहे तु या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता ॥
ब्रह्महत्या पितु स्तस्य सा कन्या वृषली स्मृता ।
अतोऽत्र प्रेषयामि त्वां कुरु पुत्रि स्वयम्वरं ॥
वृद्धैरनुमतासि त्वं शीघ्रं गच्छ च मा चिरं ।
देवादीनां यथा वाच्यो न भवेयं तथा कुरु ॥
एवमस्त्विति सावित्री प्रोक्त्वा शीघ्रं विनिर्ययौ ।
स्यन्दनेन महार्हेण मन्त्रिभिः परिवारिता ॥
तपोवनानि रम्याणि राजर्षीणां जगाम सा ।
मान्यानां तत्र वृद्धानां कृत्वा पादाभिवन्दनं ॥
ततो बभ्राम तीर्थानि पर्वतांश्च वनानि च ।
देशांश्च विविधान् रम्यानाश्रमान् सुमनोहरान् ॥
एकस्मिन्नाश्रमपदे कृतकृत्या बभूव सा ।
वरयित्वा वरं सा तु आजगाम स्वमालयं ॥

---

१ विभावयन् इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

सावित्री मन्त्रिमहिता परितुष्टेन चेतसा।
तत्र पश्यति देवर्षिं नारदं पुरतः पितुः॥
आसीनमासने विप्रं प्रणम्य स्मितभाषिणी।
कथयामास तत्सर्वं येनारण्यं गतागता॥

सावित्र्युवाच।

आसीच्छाल्वेषु धर्म्मात्मा क्षत्रियः पृथिवीपतिः।
द्युमत्सेन इति ख्यातो दैवादन्धो वभूव सः॥
तस्याप्यभवद्भार्य्या वै रुक्मिणी नाम सुन्दरी।
तस्य प्रतिहृतं राज्यं वैरिभेदेन योगतः॥
स बालया तया सार्द्धं भार्य्यया प्रस्थितो वनं।
स तस्य वत्ससंवृद्ध पुत्रः परमधार्म्मिकः॥
सत्यवान् नामरूपाढ्यो भर्त्तेति मनसा वृतः।

नारद उवाच।

अहो कष्टमहो कष्टं सावित्रि किमिदं कृतं।
कृतस्ते वालभावाद्ययद्गुणवान् सत्यवान् नृपः॥
सत्यं वदत्यसौ राजा सत्याश्वस्तेन स स्मृतः।
नित्यमश्वाः प्रियास्तस्य करोत्यश्वान् स मृण्मयान्।
चित्रेऽपि लिखयत्यश्वान् चित्राश्वस्तेन कथ्यते॥
किं वर्ण्णैरन्तिदेवस्य भक्त्या दानगुणैः समः।
ब्राह्मणः सत्यवाग्दक्षः शिविरौशीनरो यथा॥
ययातिरिव चोदारः सोमवत् प्रियदर्शनः।
अश्विनाविव रूपेण द्युमत्सेनसुतो वभौ॥

एको दोषोऽस्ति नान्योऽसावद्यप्रभृतिसत्यवान्।
संवत्सरेण क्षीणायुर्देहत्यागं करिष्यति॥

श्रीकृष्ण उवाच।

नारदादेतदाकर्ण्य दुहितुःप्राह पार्थिवः।
पुत्रि सावित्रि गच्छान्यं वरं वरय सत्पतिं॥
संवत्सरेण सोऽल्पायुर्देहत्यागं करिष्यति।

सावित्र्युवाच।

सकृज्जल्पन्ति राजानः सकृज्जल्पन्ति पण्डिताः।
सकृत्कन्या प्रदीयन्ते त्रीण्येतानि सकृत्सकृत्॥
दीर्घायुरथवाल्पायुः सगुणो निर्गुणोऽपि वा।
सकृद्वृतो मया भर्त्ता न द्वितीयं वृणोम्यहं॥
मनसा निश्चयं कृत्वा ततो वाचाभिधीयते।
क्रियते कर्म्मणा पश्चादेषधर्म्मः सनातनः॥

नारद उवाच।

यद्येतदिष्टं दुहितुस्ततः शीघ्रं विधीयतां।
अविघ्नमस्तु सावित्रि भद्रन्तव करिष्यति॥
एवमुक्त्वा खमुत्पत्य नारदस्त्रिदिवं ययौ।
उत्पाद्य दुःखमतुलं तस्य राज्ञो युधिष्ठिर॥
राजापि दुःखसंविग्नश्चिरंध्यानपरोऽभवत्।
अहोऽतिकष्टमुत्पन्नमपारं मादृगात्मनां॥
एतत् दुःखमहो दृष्ट्वा वरमेषानपत्यता।
सत्यमुक्तं पुराणज्ञैः कन्या दुःखैकभाजनं॥

देवैर्यदुक्तं तत्सर्व्वं व्यलीकं प्रतिभाति मे।
एवं संशोच्य बहुधा दधावात्मानमात्मना॥
देवीं संस्मृत्य सावित्रीं यया दत्तो वरः पुरा।
जगौ स्वदुहितुः सर्व्वं वैवाहिकमथाकरोत्॥
स्वयं गत्वा तु सामग्र्या वनं मुनिनिषेवितं।
शुभे मुहूर्त्ते पार्श्वस्थै र्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः॥
समर्थयित्वा कन्यां तां दत्त्वा पूपांश्च पुष्कलान्।
उवाचेदं महाभागां व्यथितेनान्तरात्मना॥
द्युमत्सेन महाभाग शृणु मे परमस्वचः।
इयं मे दुहितातीववल्लभा जीवितादपि॥
भर्त्ता समुचितो ह्यस्याः सत्यवान् सत्यवल्लभः।
त्वमप्यस्याः समुचितः श्वशुरो धर्म्मवल्लभः॥
अतोऽपराधाः च्चन्तव्याः बालेयं राज्यलालिता।
यदाभीष्टं च जामातुर्य्युवयोर्यदभीप्सितं॥
तत्तदाख्येयमस्माकं स्वस्ति तेस्तु व्रजाम्यहं।

श्रीकृष्ण उवाच।

इत्यामन्त्र्य गतो राजा नारदोक्तं व्यथान्वितः।
सावित्र्यपि च तल्लब्ध्वा भर्त्तारं मनसेप्सितं॥
मुमुदेऽतीव तन्वङ्गी देयं प्राप्येव पुण्यकृत्।
एवं तत्राश्रमे तेषां तदा निवसतां सतां॥
कालस्तत्पश्यतां कश्चिदतिचक्राम भारत।
सावित्र्यास्तु शयानाया श्चिन्तयन्त्या दिवानिशं॥
नारदेन यदुक्तन्तद् हृदयान्नापसर्पति॥

ततः काले बहुतिथे व्यतिक्रान्ते कदाचन।
प्राप्तःकालोहि मर्त्तव्यं यत्र सत्यवता नृप॥
प्रौष्ठपदे सिते पक्षे द्वादश्यां रजनीमुखे।
गणयन्त्याश्च सावित्र्या नारदोक्तं वचो हृदि॥
चतुर्थेऽहनि मर्त्तव्यमिति सञ्चिन्त्य भामिनी।
व्रतं त्रिरात्रमुद्दिश्य सावित्राख्यं महाफलं॥
उपोष्य संस्थिता साध्वी सावित्री सा पतिव्रता।
ततस्त्रिरात्रं निर्व्वर्त्त्य स्नात्वा सन्तर्प्य देवताः॥
श्वश्रूश्वशुरयोः पादौ ववन्दे चारुहासिनी।
अथ प्रतस्थे परशुं गृहीत्वा सत्यवान्वनं।
सावित्र्यपि च भर्त्तारं गच्छन्तं पृष्ठतोऽन्वयात्॥
वार्य्यमाणापि सा भर्त्रा वृद्धाभ्याञ्चाभिभाषिता।
ऊचतु स्तौच मा भद्रे गच्छ कण्टकिनं वनं॥
सुकुमारासि कल्याणि लालिता पृथिवीभृता।
श्वापदाश्वापदैर्य्यातु कथं गच्छसि१ तद्वनं॥
उपवासात्त्वयस्तेऽद्य तस्माद्गच्छ सुमध्यमे।

सावित्र्युवाच।

नैष धर्म्मो वरस्त्रीणां यद्भर्त्तरि बुभुक्षिते॥
स्वयमेव च भोक्तव्यमित्याहुर्द्धर्म्मदर्शिनः॥
अपरं कौतुक मेऽस्ति वनस्यास्य प्रदर्शने।
भर्त्रा सह प्रयास्यामि सहाया स्वामिनोऽचिरं॥

---

१ शक्यामीति पुस्तकान्तरे पाठः।

युष्मत्पादप्रसादेन मा निषेधं करिष्यथ ।
ततो ज्ञात्वा च सा बाला जगामाथ पतिव्रता ॥
सावित्र्यनुपदं भर्त्तुर्व्वने तस्मिन् मनोरमे ।
गत्वासौ दूरमध्वानं जग्राहाथ फलादिकं ॥
समित्कुशञ्च कुसुमं भार्य्यया स वदन् प्रियं ।
काष्ठानि शुष्काण्यादाय काष्ठभारमकल्पयत् ॥
काष्ठं कुठारेण तथा पाटयामास लीलया ।
अथ पाटयतस्तस्य जाता शिरसि वेदना ॥
ततः संत्यज्य तत्सर्व्वं वटच्छायामुपाश्रितः ।
सत्यवान् वेदनाक्रान्तः किञ्चिद्घूर्णितमानसः ॥
वटशाखामवष्टभ्य सत्यवान् प्राह गद्गदं ।
सावित्रि पश्य शिरसि वेदना मां प्रबाधते ॥
न च किञ्चित् प्रवक्ष्यामि भ्रमत्येव हि मे मनः ।
तवोत्सङ्गे क्षणन्तावत् स्वप्तुमिच्छामि सुन्दरि ॥
विश्रमस्व महाबाहो सावित्री प्राह दुःखिता ।
पश्चादपि गमिष्यावः स्वाश्रमं सुमनोहरं ॥
यावदुत्सङ्गगं कृत्वा शिरश्चास्ते महीतले ।
तावत् करालवदनाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥
आजग्मुर्यमदूताश्च रौद्राश्चातिभयङ्कराः ।
न शेकुर्दृष्टिपातेऽस्याः सावित्र्या स्थातुमन्तिके ॥
गत्वाचचक्षुस्तत्सर्व्वं सावित्र्यास्ति तु रुद्धनं ।
दृष्टिपातेन नास्माभिः शक्यतेऽस्याः प्रबाधितुं ॥
दहतीव च नो देहं दृष्टिपातेन सा सती ।

तत् स्वयं याहि नोऽस्माऽभिः साध्यते सत्यवान् क्वचित् ॥
इत्याकर्ण्य यमः कोपादुत्थायाथ वरासनात्।
आरुह्य महिषं रौद्रं रौद्रः प्राणहरो बली ॥
आजगाम त्वरायुक्तो यत्रास्ते सा पतिव्रता।
सावित्र्यपि च सन्त्रस्ता वीक्षमाणा इतस्ततः ॥
सावधाना कथं कोऽद्य भर्त्तारं मम नेष्यति।
तावद्ददर्श सा बाला पुरुषं कृष्णपिङ्गलं ॥
किरीटिनं पीतवस्त्रं साक्षात् सूर्य्यमिवोदितं।
तमुवाचाथ सावित्री प्रणम्य मधुराक्षरं ॥
कस्त्वन्देवोऽथ दैत्यो वा मान्धर्षितुमुपागतः।
न चाहं केनचिच्छक्त्या स्वधर्माद्‌व्यरोपितुं ॥
प्रष्टुं वा पुरुषश्रेष्ठ दीप्तास्वग्निशिखामिव ॥

यम उवाच।

यमः संयमनश्चाहं सर्व्वभूतभयङ्करः।
क्षीणायुरेष ते भर्त्ता सन्निधौ ते पतिव्रते ॥
न शक्तः किङ्करैर्जेतुं ततोऽहं स्वयमागतः।
एवमुक्त्वा सत्यवतः शरीरात् पाशसंयुतं ॥
अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं निषकर्ष यमो बलात्।
अथ प्रयातुमारेभे पन्थानं पितृसेवितं ॥
सावित्र्यपि वरारोहा कृत्वा पादेन मङ्गलं[१]।
रक्षार्थं भर्तृकायस्य यथावनुपदन्ततः ॥

[१] मण्डलमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

पतिव्रतत्वादश्रान्ता ध्यायमाना निजं पतिं[१] ।
तच्चिन्ता तद्गतप्राणा तामुवाच यमस्तदा ॥
निवर्त्य गच्छ सावित्रि सुदूरं त्वमिहागता ।
एष मार्गो विशालाक्षि न केनाप्यनुगम्यते ॥

सावित्र्युवाच ।

न श्रमो न च मे ग्लानिः कदाचिदपि जायते ।
भर्त्तारमनुगच्छन्त्यास्तव शिष्टस्य सन्निधौ ॥
सतां सन्तो गतिर्नान्या स्त्रीणां भर्त्ता सदा गतिः ।
वेदा वर्णाश्रमाणाञ्च शिष्याणाञ्च गतिर्गुरुः ॥
सर्वेषामेव जन्तूनां स्थानमस्ति महीतले ।
मुक्त्वा भर्त्तारमेकन्तु स्त्रीणां नान्यः समाश्रयः ॥
एभिरन्यैः समुचितैर्व्वाक्यैर्धर्म्मार्थसंयुतैः ।
तोषितो धर्म्मराजस्तु सावित्रीमिदमब्रवीत् ॥
तुष्टोऽस्मि तव भद्रेऽथ वरान् वरय सुव्रते ॥
सा च वव्रे वरान् पञ्च विनयावनता सती ।
चक्षुःप्राप्तिस्तथा राज्यं श्वशुरस्य महात्मनः ॥
जीवितञ्च तथा भर्त्तुर्धर्म्मप्राप्तिञ्च शाश्वतीं ।
पितुः पुत्रशतञ्चैव तथा च शतमात्मनः ॥
धर्म्मराजो वरं दत्त्वा प्रेषयामास तान्ततः ।
आजगामाथ सावित्री न्यग्रोधविटपन्तथा ॥
कृत्वोत्सङ्गं शिरस्तस्य पूर्व्ववन्निषसाद सा ।
गात्रसंवाहनं चक्रे भर्त्तुःशान्तस्य भारत ॥

---

१ निजं पदमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

लब्धसंज्ञस्तु तं प्राप्य नीरुक् प्राहेदमादरात्।
कथं न बोधितो भद्रे कालोऽतीव गतो मम॥
किं वक्ष्यति हि मे तातः किञ्च माता च दुःखिता।
विरुद्धं ह्यद्य संजातं कालोऽतीव गतो वने॥
विहाय मातापितरौ कालो न क्वापि मेऽत्यगात्।
इति मत्वा विरुध्येते कृतं नेह प्रबोधनं[1]॥

सावित्र्युवाच।

कथं त्वां बोधयाम्यत्र पीड़ितन्तु शिरोरुजा।
मम नात्र विलम्बोऽभूदकार्य्येण तवानघ॥
प्रहस्योत्थाय सावित्री जग्राह शिरसेन्धनं।
समित्कुशादिकं साथ जग्मतुस्तौ स्वमाश्रमं॥
ततः पित्रा स्वनेत्राभ्यां दृष्टौ तौ परया मुदा॥
आलिङ्ग्य मूर्ध्न्यथाघ्राय पुत्रमङ्के निवेश्य सः।
उवाच दिष्ट्या पश्यामि सभार्य्यन्त्वां समागतं॥
विलम्बकारणं पृष्टः समाचष्टे यथातथा।
विदितार्थोऽतिसंहृष्टः पूजयामास तां सतीं॥
अवाप[2] पूर्व्वजैर्भुक्तं राज्यं निहतकण्टकं।
द्युमत्सेनो महाभाग इयाज क्रतुभिस्तदा॥
ततोनृपतिरासाद्य पुत्रानात्मगुणाधिकान्।
सावित्र्या चेष्टितं ज्ञात्वा जामातुर्जीवितं तथा॥
राज्यप्राप्तिं च विपुलां परां मुदमवाप सः।

---

१ कृत्वानेहप्रबोधनमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

२ आचार्य्यैरिति पुस्तकान्तरे पाठः।

सावित्र्याख्यानकमिदं सर्व्वपापप्रणाशनं ॥
अवैधव्यप्रदं स्त्रीणां स्वर्गमोक्षप्रदायकं ।
सुखसौभाग्यदं पार्थ प्रातर्जप्यमिदं सदा ॥
भाद्रपदे पौर्णमास्यामाशु चीर्णं व्रतं त्विदं ।
माहात्म्यमस्य नृपतेः कथितं सकलं मया ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

कीदृशं तद्व्रतं कृष्ण सावित्र्या यदनुष्ठितं ।
तस्मिन् भाद्रपदे मासि विधानं तस्य शंस मे ॥
का देवता व्रते तस्मिन् को मन्त्रः किं फलं विभो ।
एतदाख्याहि मे नाथ न हि तृप्यामि माधव ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

श्रूयतां पाण्डवश्रेष्ठ सावित्रीव्रतमादरात् ।
कथयामि यथा चीर्णं तया सत्या युधिष्ठिर ॥
त्रयोदश्यां भाद्रपदे दन्तधावनपूर्वकं ।
त्रिरात्रं नियमं कुर्य्यादुपवासस्य भक्तितः ॥
अशक्ता च त्रयोदश्यां नक्तं कुर्य्याज्जितेन्द्रिया ।
अयाचितं चतुर्दश्यां पौर्णमास्यामुपोषणम् ॥
नित्यं स्नात्वा महानद्यां तडागे निर्झरेऽपि वा ।
विशेषतः पूर्णमास्यां स्नानं सर्षपमृज्जलैः ॥
गृहीत्वा वालुकां पात्रे प्रस्थमात्रां युधिष्ठिर ।
अथवा धान्यमादाय यवशालितिलादिकं ॥
ततोवंशमये पात्रे वस्त्रयुग्मेन वेष्टिते ।
सावित्रीप्रतिमां कृत्वा ब्रह्मणश्चैव शोभनं ॥

सौवर्णीं मृण्मयीं वापि स्वशक्त्या रौप्यनिर्मितां।
ब्रह्मणोरूपनिर्माणं पूर्व्वमभिहितं वेदितव्यं।
रक्तवस्त्रयुगं दद्यात्साविच्या ब्रह्मणः सितं॥
सावित्रीं ब्रह्मणासार्द्धमेवं भक्त्या प्रपूजयेत्।
गन्धैः पुष्पैश्च नैवेद्यैर्दीपकैर्मोदकैः शुभैः॥
पूर्णं कोशातकैः पक्वैः कूष्माण्डैः कर्कटीफलैः।
नारिकेलैश्च खर्जूरैः कपित्थैर्दाड़िमैस्तथा॥
वीजपूरैः सनारङ्गश्चाखोटैः पनसैस्तथा।
धान्यकैर्जीरकैर्हृद्यैर्गुडेन लवणेन च।
विरूढैः सप्तधान्यैश्च वंशपात्रप्रकल्पितैः॥
हरिद्रया कण्ठसूत्रैः शुभैः कुङ्कुमकेसरैः।
अवतारं करोत्येव साविची ब्रह्मणः प्रिया॥
तामर्च्चयीत मन्त्रेण सावित्रीं ब्राह्मणीं स्वयं।
इतरासां तथा स्त्रीणां पुराणोक्तो विधिः स्मृतः॥
ओं कारपूर्व्वके देवि वीणापुस्तकधारिणी।
वेदमातर्नमस्तुभ्यमवैधव्यं प्रयच्छ मे॥
रूपं देहि यशोदेहि सौभाग्यं देहि देवि मे।
यथा प्रसन्ना साविच्या स्तथा मां पाहि पाविनि॥
एवं संपूज्य विधिवज्जागरं तच कारयेत्।
गीतवादित्रनिर्घोषैर्हृष्टनारीकदम्बकैः॥
पुण्याख्यानैश्च विविधैस्तां रात्रिमतिवाहयेत्।
उत्सवेन नयेद्रात्रिं साचित्र्याश्च कथानकैः॥
ततः प्रभातसमये रवावनुदिते सति।

सावित्रीं ब्राह्मण श्रेष्ठ नैवेद्यानि निवेदयेत् ॥
अथ सावित्रिकल्पज्ञे सावित्राख्यानवाचके ।
वेदज्ञे तु स्ववृत्तस्थे दरिद्रे वा कुटुम्बिनि ॥
मन्त्रेणानेन कौन्तेय प्रणम्य विधिपूर्व्वकं ।
दूर्व्वाक्षततिलैर्मिश्रां पूर्व्वाशाभिमुखस्थितां ॥
शुचिवस्त्रधरो विप्रओंकारस्वस्तिपूर्वकं ।
सावित्रीयं मया दत्ता सहिरण्या हिरण्मयी ॥
ब्रह्मणः प्रीणनार्थाय ब्राह्मण प्रतिगृह्यतां ।
एवं दत्त्वा द्विजेन्द्राय सावित्रीं तां युधिष्ठिर ॥
नैवेद्यादि च तत्सर्व्वं ब्राह्मणस्य गृहं नयेत् ।
स्वयं दशपदं गच्छेत्स्ववेश्म तत आविशेत् ॥
गौरिण्यौ भोजयेद्भक्त्या हविष्यान्नेन शक्तितः ।
पुष्पैः कुङ्कुमसिन्दूरैस्ताम्बूलैः कण्ठसूत्रकैः ॥
वासोभिर्भूषणैः१ शक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जिता ।
विसर्जयेत्ततस्तांश्च सावित्रीप्रीयतामिति ॥
वक्तव्यं ब्राह्मणैः सर्वैस्तुष्टैर्भुक्तोत्तरे भृशं ।
सावित्री वरदा तुभ्यं भवतां भावसुव्रता२ ॥
पुत्रा अष्टौ तथा भर्त्ता परमायुरनामयः ।
पुत्रैःपौत्रैश्च संवृद्धं वर्द्धतान्तव सत्कुलं ।
व्रतञ्च सुव्रतं तत्तद्विधिनानेन निश्चितं ॥
पञ्चदश्यां तथा ज्यैष्ठे वटमूले महासती ।

१ वासाविर्भूषणैरिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

२ भवन्तु तव सुव्रतेइति पुस्तकान्तरे पाठः ।

त्रिरात्रोपोषिता नारी विधिनानेन पूजयेत्॥
सार्द्धं सत्यवता साध्वीं फलनैवेद्यदीपकैः।
वटावलम्बिनं कृत्वा काष्ठभारं युधिष्ठिर॥
रात्रौ जागरणं कृत्वा गीतनृत्यपुरःसरं।
ततः प्रभाते विधिना पूर्व्वोक्तेन नरोत्तम॥
तामपि ब्राह्मणे दद्यात् प्रणिपत्य क्षमापयेत्।
एतद्व्रतवरं पार्थ कथितं विधिवन्मया॥
याश्चरिष्यन्ति लोकेऽस्मिन् पुत्रपौत्रसमन्विताः।
भुक्त्वा भोगांश्चिरं भूमौ यास्यन्ति ब्रह्मणः पदम्॥
एतत् पुण्यं पापहरं धन्यं दुःस्वप्ननाशनं।
जपतां शृण्वतां चैव सावित्रीव्रतमादरात्॥

स्मृत्यर्थवेदजननीं सहभर्त्तृकां यां
सम्पूजयेत् कृतदिनत्रितयोपवासा।
सावित्रिवत् पितृकुलञ्च तथैव भर्त्तु-
रुद्धृत्यया भुवि भुनक्ति चिरं सुखानि॥

इति भविष्योत्तरोक्तं ब्रह्मसावित्रीव्रतं।

---

स्कन्दपुराणात्।

धर्म्मराजवरप्रदानानन्तरं सावित्र्युवाच।
मदीयन्तु व्रतं देव भक्त्या नारी करिष्यति।
भर्त्तुः सान्निहिता साध्वी समस्तफलभाजना॥

धर्मराज उवाच।

नारी वा विधवा वापि अपुत्रा पतिवर्ज्जिता१।
सभर्त्तृका२ सपुत्रा वा कार्यं व्रतमिदं शृणु॥
ज्यैष्ठमासे तु संप्राप्ते पौर्णमास्यां पतिव्रता।
स्नात्वा चैव शुचिर्भूत्वा वटं सिञ्च बहूदकैः॥
सूत्रेण वेष्टयेद्भक्त्या गन्धपुष्पाक्षतैः शुभैः॥
नमो वैवस्वतायेति भ्रमयन्तीप्रदक्षिणं।
रात्रौ कुर्वीत नक्तञ्च अब्दमेकं समाहिता।
तथैव वटवृक्षञ्च पक्षे पक्षे च पूजयेत्॥
संप्राप्ते च पुनर्ज्यैष्ठे लघुभुक् द्वादशीन्नयेत्।
दन्तानां धावनं कृत्वा नियमं कारयेत्ततः॥
त्रिरात्रं लङ्घयित्वाच चतुर्थे दिवसेह्यहं।
चन्द्रायार्घ्यं प्रदत्त्वा च पूजयित्वा च तां सतीं॥
मिष्टान्नानि यथाशक्त्या पूजयित्वा द्विजोत्तमान्।
भोक्ष्येऽहन्तु जगद्धात्रि निर्व्विघ्नं कुरु मे मुने॥

नियममन्त्रः।

कृत्वा वंशमये पात्रे वालुकाप्रस्थमेवच।
सप्तधान्यधृतं पात्रं प्रस्थैकेन द्विजोत्तम॥
वस्त्रद्वयोपरि स्थाप्य सावित्रीं ब्रह्मणा सह।
हैमीं कृत्वा तयोः प्रीत्यै त्रिरात्रमुपवासयेत्॥
न्यग्रोधस्य तले तिष्ठेद्यावच्चैव दिनत्रयं।

१ पुत्रवर्जिता इति पुस्तकान्तरे पाठः।
२ सपुत्रका इति पाठान्तरं।

सौवर्णीञ्चैव सावित्रीं सत्येन सह कारयेत् ॥
रौप्यपर्य्यङ्कमारोप्य रथोपरि निवेशयेत् ।
पलादूर्द्धं यथाशक्त्या रथं रौप्यमयं शुभं ॥
तथा च काष्ठभारे च वटेचैव सुविस्तरं ।
एवञ्च मिथुनं कृत्वा पूजयेद्गतमत्सरा ॥
वर्त्तुलं मण्डलं कृत्वा गोमयेन तपोधन१ ।
पञ्चामृतेन स्नपनं गन्धपुष्पोदकेन च ॥
चन्दनागुरुकर्पूरैर्म्माल्यवस्त्रविभूषणैः ।
संपूज्य तत्र सावित्रीं मण्डले स्थापयेद्बुधः ॥
पीतपिष्टेन पद्मञ्च अथवा चन्दनेन च ।
न्यसेच्चैव ततोदेवीं कमले कमलासनां२ ॥
अनेन विधिना स्थाप्य पूजयेद्गतमत्सरा ।

## अथ सावित्रीपूजा मन्त्रः ।

———ooo———

नमः सावित्र्यै पादौ तु प्रसवित्र्यै च जानुनी ।
कटिं कमलपत्राक्ष्यै उदरं भूतधारिणी ॥
ओं गायत्र्यै नमः कण्ठे शिरसि ब्रह्मणः प्रिया ।

अथ ब्रह्मसत्यवतोः पूजा ॥

पादौधात्रे नमः पूज्यौ जरुज्येष्ठाय वै नमः ।
परमेष्ठी च मेढ्रञ्च अग्निरूपाय वै कटिं ।
वेधसे चोदरं पूज्य पद्मनाभाय वै हृदि ॥

---

१ तपोवन इति पुस्तकान्तरे पाठः।

२ कमलानना इति पुस्तकान्तरे पाठः।

कण्ठन्तु विषये पूज्य हिरण्यगर्भाय वै मुखं ।
ब्रह्मणे वै शिरः पूज्य सर्व्वाङ्गं विष्णवे नमः ॥
अभ्यर्च्चैवं क्रमेणैव शास्त्रोक्तविधिना नृप ।
ततो रजतपात्रेण अर्घं दद्याद्द्वयोरपि ॥

सावित्र्यै अर्घ्यमन्त्रः ।

ओंकारपूर्व्वकं देवि वीणापुस्तकधारिणि ।
देवमातर्नमस्तुभ्यमवैधव्यं प्रयच्छ मे ॥
पतिव्रते महाभागे वह्निजाते शुचिस्मिते ।
दृढव्रते दृढमते भर्त्तुश्च प्रियवादिनी ॥
अवैधव्यन्तु सौभाग्यं देहि त्वं मम सुव्रते ।
पुत्रान् पौत्रांश्च सौख्यञ्च गृहाणार्घ्यं नमो नमः ॥

अथ ब्रह्मसत्यव्रतोरर्घ्यमन्त्रः ।

त्वया सृष्टं जगत्सर्व्वं सदेवासुरमानुषं ।
सत्यव्रतधरो देव ब्रह्मरूप नमोऽस्तु ते ॥

अथ यमस्यार्च्चनमन्त्रः ।

त्वं कर्म्मसाक्षी लोकानां शुभाशुभविवेचकः ।
वैवस्वत गृहाणार्घ्यं धर्म्मराज नमोऽस्तु ते ॥
धर्म्मराज पितृपते शान्तिभूतेषु जन्तुषु ।
कालरूप गृहाणार्घ्यमवैधव्यञ्च देहि मे ॥
गन्धपुष्पैः सनैवेद्यैः फलैः कुङ्कुमदीपकैः ।
रक्तवस्त्रैरलङ्कारैः पूजयेद्गतमत्सरा ॥

अथ सावित्रीप्रार्थन मन्त्रः।

सावित्री ब्रह्मगायत्री सर्व्वदा प्रियभाषिणी।
तेन सत्येन मां पाहि दुःखसंसारसागरात्॥
त्वं गौरी त्वं शची लक्ष्मीस्त्वं प्रभा चन्द्रमण्डले।
त्वमेव च जगन्माता त्वमुद्धर वरानने।
सौभाग्यं कुलवृद्धिञ्च देहि त्वं मम सुव्रते॥
यन्मया दुष्कृतं सर्व्वं कृतं जन्मशतैरपि।
भस्मीभवतु तत्सर्व्वमवैधव्यञ्च देहि मे॥

अथ ब्रह्मसत्यवतोः प्रार्थनामन्त्रः।

अवियोगी यथा देव सावित्र्या सहितस्तव।
अवियोगस्तथास्माकं भूयाज्जन्मनि जन्मनि॥

यम प्रार्थनामन्त्रः।

कर्म्मसाक्षी जगत्पूज्य सर्व्ववन्द्य प्रसीद मे।
संवत्सरव्रतं सर्व्वं परिपूर्णं तदस्तु मे॥
सावित्री त्वं यथा देवी चतुर्वर्षशतायुषं।
पतिं प्राप्तासि गुणिनं मम देवि तथा कुरु॥
सावित्री प्रसवित्री च सततं ब्रह्मणः प्रिया।
पजितासि द्विजैः सर्व्वैः स्त्रीभिर्मुनिगणैस्तथा॥
त्रिसन्ध्यं देवि भूतानां वन्दनीयासि सुव्रते।
मया दत्तेव पूजेयं त्वं गृहाण नमोऽस्तु ते॥
जागरन्तत्र कुर्व्वीत गीतनृत्यादिमङ्गलैः।
सुवासिन्यस्ततः पूज्या दिवसे दिवसे गते॥

सिन्दूरं कुङ्कुमञ्चैव ताम्बूलं सपवित्रकं।
तथा दद्याच्च सर्व्वाणि१ भैच्यं सौभाग्यमष्टकं॥
सतीष्वेव दिवारात्रौ कामक्रोधविवर्जिता।
दिनत्रयेऽपि कर्त्तव्यमेवं मार्जारपूजनं॥
ततश्चतुर्थदिवसे यत् कार्य्यन्तच्छृणुष्व मे।
मिथुनानि चतुर्व्विंश षोड़श द्वादशाष्ट वा॥
पूजयेद्वस्त्रगोदानैर्भूषणाच्छादनासनैः।
अथवा गुरुमेकञ्च व्रतस्य विधिकारकं॥
सर्व्वलक्षणसम्पन्नं सर्व्वशास्त्रार्थपारगं।
वेदविद्याव्रतस्नातं शान्तञ्च विजितेन्द्रियं॥
सपत्नीकं समभ्यर्च्य वस्त्रालङ्कारभूषणैः।
शय्यां सोपस्करां दद्यात् गृहञ्चैवातिशोभनं॥
अशक्तस्तु यथाशक्त्या स्तोकं स्तोकञ्च कल्पयेत्।
सौवर्णीं प्रतिमां पुत्रि पतिना सह दापयेत्॥

कल्पनामन्त्रः।

सावित्रि त्वं यथा देवि चतुर्व्वर्षशतायुषं।
सत्यवन्तं पतिं लब्धा मया दत्ता तथा कुरु॥

प्रतिमादानमन्त्रः।

सावित्री जगती माता सावित्री जगतः पिता।
मया दत्ता च सावित्री ब्राह्मण प्रतिगृह्यतां॥

अथ प्रतिग्रहमन्त्रः।

मया गृहीता सावित्री त्वया दत्ता सुशोभना।

१ स्वर्य्यानीति पुस्तकान्तरे पाठः।

यावच्चन्द्रश्च सूर्य्यश्च सह भर्त्रा सुखी भव।
गुरुञ्च गुरुपत्नीञ्च ततो भक्त्या चमापयेत्॥
यन्मया कृतवैकल्यं१ व्रतेऽस्मिन् दुरधिष्ठितं।
तत्सर्व्वं पूर्णतां यातु युवयोर्वचनेन तु॥

प्रतिमासं वटसेचनमन्त्रः॥

धर्म्मराजो यमो धाता नीलः कालान्तकोऽव्ययः॥
वैवस्वतश्चित्रगुप्तो दध्नाभृत्युः चयोवटः।
मासि मासि तथाह्येतैर्नामभिः सेचयेद्वटं॥
न्यग्रोधोहं वसेत् पुत्रि तस्माद्यत्नेन सेचयेत्।
ततो गुरुं सपत्नीकं पूजयेद्व्रतविस्मया॥
भूषणैश्च सवस्त्रैश्च कुङ्कुमैश्च मनोहरैः।
न्यग्रोधस्य समीपे तु गृहे वा स्थण्डिले शुभे॥
सावित्र्याश्चैव मन्त्रेण घृतहोमन्तु कारयेत्।
पायसं जुहुयाद्भक्त्या घृतेन सह भाविनि॥
व्याहृत्याचैव मन्त्रेण तिलव्रीहियवं तथा।
होमान्ते दक्षिणां दद्याद्वित्तशाठ्यविवर्ज्जिता॥
चमापयेत्ततो विप्रं वन्द्य पादौ प्रयत्नतः।
भुञ्जीत वासरान्ते तु नक्तं शान्ता तपस्विनी॥
अर्घ्यं दत्त्वा त्वरुन्धत्या दृष्ट्वा चैव प्रणम्य च।
अरुन्धति नमस्तेऽस्तु वसिष्ठस्य प्रिये शुभे॥
सर्व्वदेवनमस्कार्य्ये पतिव्रते नमोस्तु ते।
सर्व्वं गृह्ण मया दत्तं फलं पुष्पसमन्वितं॥

---

१ कृतवैकल्यमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

पुत्रान् देहि सुखं देहि गृहाणार्घ्यं नमोस्तु ते ।
सखीभिर्ब्राह्मणैः सार्द्धं भुञ्जीत विजितेन्द्रिया ॥
एवं करोति या नारी व्रतमेतदनुत्तमं ।
भ्रातरः पितरः पुत्राः श्वशुरः स्वजनास्तथा ॥
चिरायुषस्तथारोगाः स्युश्च जन्मशतत्रयं ।
भर्त्रा च सहिता साध्वी ब्रह्मलोके महीयते ॥

इति स्कन्दपुराणोक्तं वटसावित्रीव्रतं ।

———oo@oo———

इन्द्राण्युवाच ।

दृष्ट्वा मां नहुषो ब्रह्मन् कामेनातीवपीड़ितः ।
मान्धर्षयितुमारब्ध स्ततस्त्वां शरणङ्गता ॥
गुरो कश्चिदुपायोऽस्ति व्रतं वा दानमेव वा ।
येन शोकाद्विमोच्यामि तन्मे वद महामुने ॥
तस्यास्तु वचनं श्रुत्वा गुरुर्वाक्यमथाब्रवीत् ।

बृहस्पतिरुवाच ।

अस्त्यशोकत्रिरात्राख्यं व्रतंशोक हरं परं ।
त्रिरात्रं तच्च कर्त्तव्यं व्रतं शोकविनाशनं ॥
पापघ्नञ्चागदघ्नञ्च पुत्रपौत्रविवर्द्धनं ।
आयुःप्रदं कीर्त्तिकरं धनधान्यप्रदं परं ॥
भुक्तिमुक्तिप्रदं दिव्यं सर्व्वमायाविनाशनं ।
तच्छृणु त्वमशोकाख्यं त्रिरात्रव्रतमुत्तमं ॥
मासि मार्गशिरे चैव ज्यैष्ठे भाद्रपदे तथा ।

शुक्लपक्षे पञ्चदश्यामेकभक्तन्तु कारयेत् ॥
ततः प्रातःसमुत्थाय स्नानं कुर्य्यात्ततो व्रती।
आचम्य तु शुचिर्भूत्वा प्रणम्य च पुनः पुनः ॥
अशोकं पूजयेद्भक्त्या ब्रह्मविष्णुस्वरूपिणं१।
क्रमेणानेन देवेशि पुराणोक्तेन२ विस्तरात् ॥
अशोक शोकनाशार्थं सम्भूतोसि३ क्षिताविह।
अर्घ्यं गृहाण भो वृक्ष ब्रह्मविष्ण्वीशरूपभृत् ॥

अत्र ब्रह्मविष्णुरुद्राणां सशक्तिकानां मूर्त्तिकरणं। उत्तरत्र तद्दानदर्शनात्। तत्र ब्रह्मसावित्रीरूपं पुत्रकामपूर्णिमा व्रते। लक्ष्मीनारायणरूपन्तु पूर्णिमास्थलक्ष्मीनारायणव्रते। उमा महेशयोस्त्ववियोगद्वादशीव्रतेऽभिहितं। परिभाषोक्तं वा प्रतिमात्रयं वेदितव्यं।

अर्घ्यमन्त्रः।

इदं पाद्यं नमस्तुभ्यं कल्पितं पुण्यवारिणा।
पुष्पाक्षत४ फलैर्मिश्रमशोक प्रतिगृह्यतां ॥

पाद्यमन्त्रः।

चन्दनं विविधं वृक्षसम्भवं देवनिर्म्मितं।
तत्गृहाण द्रुमश्रेष्ठ कृपां कुरु ममोपरि ॥

---

१ व्रतं विष्णु स्वरूपिणमिति पुस्तकान्तरे पाठः।
२ क्रमेणोक्तेण इति पुस्तकान्तरे पाठः।
३ त्वं भूतोसि इति पुस्तकान्तरे पाठः।
४ पुण्याक्षत इति पुस्तकान्तरे पाठः।

गन्धमन्त्रः ।

पुष्पाणीमानि वृक्षेन्द्र मालत्यादीनि यानि च ।
गृहाणेमानि दिव्यानि मम सन्तु मनोरथाः ॥

पुष्पमन्त्रः ।

गुग्गुल्वाद्याश्चये धूपास्तथा चागुरुसन्निभाः ।
निवेदिता मया भक्त्या गृहाणैतान्महातरो ॥

धूपमन्त्रः ।

आरात्रिकं महावृक्ष कल्पितं दीपसंयुतं ।
उद्योतार्थं जगत्पूज्यं कुलस्य मम सोऽस्तु वै१ ॥

दीपमन्त्रः ।

अर्चितस्त्वं सुरैर्दिव्यैर्दानवैश्च महोरगैः ।
अप्सरोभिश्च गन्धर्वैस्ततस्त्वामर्चयाम्यहं ॥

अर्चनमन्त्रः ।

परमान्नं मयाशोक भक्ष्यभोज्यसमन्वितं ।
भक्त्या निवेदितं तुभ्यं षड्भिरेभीरसैर्युतं ॥
एवं संपूज्य तं वृक्षं प्रणिपत्य पुनः पुनः ।
अशोकं प्रार्थयेत्पश्चान्मन्त्रेणानेन भक्तिमान् ॥
यद्न्यूनं कृतं किञ्चिदतिरिक्तं कृत व्रते
तत्सर्व्वं पूर्णतां यातु प्रसादात्ते द्रुमोत्तम ॥

प्रार्थनामन्त्रः ।

अनेनैव विधानेन प्रतिमासञ्च पूजयेत् ।
यावद्द्वादश मासान्वै कुर्य्यादुद्यापनं ततः ॥

---

१ मम साधुवै इति पाठान्तरं ।

सम्यग्गृहीत्वा नियमं त्रिरात्रं समुपोषयेत्।
अशोकं कारयेद्रौप्यं नानाशाखं फलान्वितं॥
वस्त्रयुग्मेन संस्थाय१ गन्धपुष्पैः सुधूपितं।
नानाफलसमायुक्तं पुष्पमाल्योपशोभितं॥
गीतवाद्यविनोदैश्च नानाभावकथानकैः।
पुराणश्रवणं कार्य्यं व्रतस्यास्य च यत् फलं॥
एवं जागरणं कृत्वा कुर्याद्दानान्यनेकशः।
मिथुनानि तु संपूज्य ब्राह्मणानान्तु षोड़श॥
तेभ्यस्तु करका देयाः शूर्पाणि वसनानि च।
गुरोस्तु मिथुनं पूज्य वस्त्रैराभरणैः शुभैः॥
गोदानैर्भूमिदानैश्च वेश्मदानादिभिस्तथा।
प्रथमेऽह्नि ततो दद्यात् सावित्रीं ब्रह्मणा सह॥
उमामहेश्वरं देयं द्वितीयेऽह्नि वरानने।
लक्ष्मीनारायणञ्चैव तृतीयेऽह्नि सुशोभनं॥
सोपस्करमशोकन्तु दद्यात् सर्व्वं क्षमापयेत्।
ततोऽहं भोजयेद्बन्धून् दीनानाथांश्च तर्पयेत्२॥
पारणन्तु ततः कुर्यात् पारणन्तु३ पुनः पुनः।
एवं कृते त्रिरात्रन्तु फलं यत् कथितं बुधैः॥
तच्छृणुष्व महाभागे संक्षेपात् कथयामि ते।
अश्वमेधादिभिर्य्यज्ञैरिष्टैर्य्यत्फलमश्नुते॥

१ संवाप्येति पुस्तकान्तरे पाठः।

२ दीनान्धांश्चैव पूजयेदिति पुस्तकान्तरे पाठः।

३ प्राशनञ्च इति पाठान्तरं।

तत्फलं कोटिगुणितं चिरात्रेण न संशयः ।
गां दत्त्वा विविधैर्दानैर्गोमहिष्यादिभिस्तथा ॥
तथायज्जायते पुण्यं३ तीर्थानुस्मरणे कृते ।
यत्प्रोक्तं ऋषिभिःपुण्यं तत्सर्व्वं लभते फलं ॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्य गुरोरमिततेजसः ।
चकार सा तदा देवी पौलोमी व्रतमुत्तमं ॥
सा तद्व्रतप्रभावेन शक्रेण सह सङ्गता ।
एतद्व्रतं कृतंपूर्व्वं सावित्र्या राजकन्यया ॥
व्रतस्यास्य प्रभावेण प्राप्तोभर्त्ता श्रिया सह ।
अरुन्धत्या वेदवत्या दमयन्त्यानसूयया ॥
रुक्मिण्यादिभिरन्याभिः प्राप्ताः सर्व्वे मनोरथाः ।

पठन्ति शृण्वन्ति च ये मनुष्याः
कुर्व्वन्ति भक्त्या भुविसद्व्रतं ये४ ।
ते यान्ति नाकं सुचिरैर्विमानैः
विमुक्त पापाः सुखिनो भवन्ति ॥

इति भविष्योत्तरोक्तमशोकत्रिरात्रव्रतं ॥

———onॐuo———

नन्दिकेश्वर उवाच ।

अवैधव्यकरं ब्रूहि व्रतं किञ्चिन्महेश्वर ।
भर्त्तुर्दुःखमवाप्नोति पुत्रदुःखं तथैव च ॥
अपुत्रता महद्दुःखं दुःखञ्चापि कुपुत्रता ।

३ तथायत् क्रियते पुण्यमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।
४ संस्कृतं ये इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

एतान्येव तु दुःखानि या च नारी वृषध्वज ॥
नाप्नोति मर्त्यलोकेऽस्मिन् वैधव्यं सुरसत्तम।
नारीणाञ्च हितार्थाय ब्रूहि यद्यस्ति शङ्कर ॥
सौभाग्यमतुलं याति भर्त्तारं चाति पूजितं
सर्व्वावयवसंपूर्णमनङ्गमिव चापरं ॥
सद्वृत्तं वित्तसम्पन्नं सर्व्वशास्त्रविशारदं।
ज्ञातिश्रेष्ठं पूज्यतममेतन्मे ब्रूहि शङ्कर ॥

ईश्वर उवाच।

शृणुष्वैकमना भूत्वा रम्भाख्यं व्रतमुत्तमं।
येन चीर्णेन नन्दीश कृतकृत्याश्च योषितः ॥
न भवेद्विधवा नन्दिन्नानपत्या कदाचन।
विधानं शृणु नन्दीश यथा तत् क्रियते नृभिः ॥
शुक्लपक्षे त्रयोदश्यां मासि ज्यैष्ठे च सुव्रत।
त्रिरात्रं व्रतमुद्दिश्य भक्त्या तां कदलीं शुभां ॥
स्नात्वा चैव शुचिर्भूत्वा व्रती सिञ्चेद्वह्नदकैः ॥
सूत्रेण वेष्टयेद्भक्त्या गन्धपुष्पादि दापयेत्।
रात्रौ कुर्व्वीत नक्तं च अव्दमेकं समाहितः ॥
तथैव कदलीवृक्षं नित्यमेव प्रसेचयेत्।
ज्यैष्ठे मासि ततः प्राप्य द्वादश्याञ्चैव सुव्रत ॥
नद्यां वाथ तड़ागे वा शिवं संपूज्य चाक्षतैः।
स्नात्वा च पूजयेन्नन्दिन्नुमादेहार्द्धधारिणं ॥
एकभक्तं ततः कृत्वा नियमं कारयेत् व्रते।
भोक्ष्येऽहं त्रिदिनं लब्ध्वा सम्यगिष्ट्वा सुरेश्वरीं ॥

त्वत्प्रसादात् व्रतं मेऽस्तु निर्व्विघ्नेन महेश्वरि।
रम्भायाः स्थण्डिलं कृत्वा विचित्रञ्च सुशोभनं॥
रम्भाया निकटे स्थित्वा गीतवाद्यसमन्वितं।
मण्डपं कारयेत्तत्र पुष्पमालाविभूषितं॥
वितानेन च संयुक्तं सर्व्वशोभासमन्वितं।
मध्ये कुर्व्वीत कदलीं फलपुष्पादिसंयुतां॥
राजतीं शोभनाकारां जातरूपफलोचितां[1]।
वस्त्रयुग्मन्ततो दद्यात् सर्व्वालङ्कारभूषितां॥
कदल्यै कामदायिन्यै मेधायै ते नमोनमः।
रम्भायै रतिसारायै सर्व्वसौख्यप्रदे नमः॥
कदल्यै कामदायिन्यै मोचायै ते नमोनमः॥

पूजामन्त्रः।

चिन्तिता त्वं हि कदली चिन्तितं कामदायिनी।
शरीरारोग्यमैश्वर्यं देहि देवि नमोस्तु ते॥

प्रार्थनामन्त्रः।

पूजयेत् कुसुमैर्म्मन्त्रैः कण्ठसूत्रैश्च सुव्रत।
हरिद्रारञ्जितैः सूत्रैर्हृष्टनारीकदम्बकैः॥
सप्तधान्यैर्भृते पात्रे प्रस्थमात्रेण पूरिते।
उमामहेश्वरं शम्भुं कृत्वा तस्मिन्निवेशयेत्॥
रूप्यपर्य्यङ्कमारूढं पूजयेत्रुक्मिणीं हरिं।
वस्त्रयुग्मेन संवेष्ट्य चन्दनेन विलेपयेत्।
पूजयेच्च सुगन्धाढ्यैः पुष्पैः कालोद्भवैर्व्रती॥

---

१ फलान्वितामिति पुस्तकान्तर पाठः।

मन्त्रैरेभिस्तु नन्दीश पादादारभ्य नामभिः ।
त्रिपुरायै च इत्यङ्घ्रियुग्मङ्गौर्य्यास्तु पूजयेत् ॥
जानुनी चन्द्रनेत्रायै१ अपर्णायै नमोनमः ।
कटिं मन्मथनाशाय२ स्मरायै गिरिजां ततः ॥
नाभिं सर्वेश्वरायेति गिरिजायै तथाम्बिकां ।
हृदये हृद्विवासिन्यै शूलिने च महेश्वरं ॥
मुखं कामविनाशाय पार्व्वत्यै परमेश्वरीं ।
शिरः सौभाग्यदायिन्यै शूलिने तु कपर्दिने ॥
एवं संपूज्य देवेशमुमया सहितं प्रभुं ।
नृत्यवादित्रगीताद्यैरुपोष्य कदलीं ततः ॥
जागरस्तत्र कर्त्तव्यः पुराणाख्यानकैः शुभैः ।
एवं त्रिरात्रं नन्दीशं नयेद्भक्त्यासुभावितः ॥
दिनानि त्रीणि नन्दीश प्रतिलङ्घ्य च सुव्रती ।
मिथुनानि च संपूज्य यथाविभव सारतः ॥
गुरुञ्चैव सपत्नीकम्भोजयित्वा प्रपूजयेत् ।
दिनसङ्ख्यैर्बिल्वपत्रैर्घृतहोमस्ततो भवेत् ॥
पृषदाज्येन दध्ना वा पयसा वाथ वाग्यतः ।
तत्सवितुरिति मन्त्रेण जुहुयादनले सुधीः ॥

त्रयोदश्यां त्रयोदश चतुर्दश्यां चतुर्दश पञ्चदश्यां पञ्चदशा हुतय इति दिनसंख्यात्वं ॥

गुरवे पाण्डुरच्छत्रं तस्य पत्न्यै तथानघ ।

१ चन्द्रवक्त्रायै इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

२ नाथाय इति पुंस्तकान्तरे पाठः ।

रक्तवस्त्रं प्रदातव्यं वाचमेतामुदीरयेत्॥
गौर्य्या मे सहितो देवः प्रीयतां वृषभध्वज॥

दानमन्त्रः।

यथैवेन्द्रसमीपे तु शची तिष्ठति शोभने।
अहमेव सदा रम्भे पत्युः पार्श्वे स्थिता भवे॥
रूपं देहि धनं देहि यशः सौभाग्यमेव च।
पुत्रान् देहि धनं देहि सर्व्वान् कामांश्च देहि मे॥

प्रार्थनामन्त्रः।

कपिला तत्र दातव्या सर्व्वोपस्करसंयुता।
उमामहेश्वरं चैव कदल्या सहितं तथा॥
गर्भिणी वालवत्सा च[१] यथाकुर्य्यात्तथा शृणु।
द्वादश्यामेकभक्तन्तु त्रयोदश्यां तथैव च॥
नक्तं समाचरेन्नन्दिंश्चतुर्दश्यामयाचितं।
पञ्चदश्याञ्चोपवासमेवञ्चैव व्रतं चरेत्॥
एतद्व्रतन्तु नन्दीश पुत्रपौत्रप्रदायकं॥
या करोति व्रतं नन्दिन् विधिनानेन सुव्रत।
न तस्यास्ति कुले काचिदपुत्रा विधवा तथा॥
अरुन्धतीव मोदेच्च यावदाभूतसंप्लवं।
सदाकीर्त्तियुता साध्वी यावदिन्द्राश्चतुर्दश।
व्रतमेतत्[२] कृतं पूर्व्वं देवपत्नीभिरादरात्॥
ताभिर्भोगाश्च संप्राप्ता दिव्याश्चातिमनोरमाः।

---

१ वालगर्भाच इति पुस्तकान्तरे पाठः।

२ एवमेतदिति पाठान्तरं।

विराजन्ते स्वर्गलोके रवेरिव च रश्मयः॥
व्रतस्यैव तु माहात्म्यादवाप्नोति न संशयः।
एवं प्रभावो नन्दीश व्रतस्यास्य महामते॥
यः पठेच्छृणुयाद्वापि सोऽपि स्वर्गे महीयते।

इति स्कन्दपुराणोक्त रम्भात्रिरात्रव्रतं।

---

स्कन्द उवाच।

देवदेव महादेव परब्रह्म महेश्वर।
आयुर्य्यशोर्थपुत्रश्रीधर्म्म मतकुलकारकं॥
व्रतं ब्रूहि महेशान सर्व्वशोकप्रणाशनं।
जाताः पुत्राश्च जायन्ते अरोगाः सुखिन स्तथा॥
तेषां पुत्राश्च वध्वश्च दृश्यन्ते च सुशोभनाः।
सौभाग्यञ्चातुलं प्राप्य सपत्नी नैव जायते॥
येन सर्व्वं सुखं भुक्त्वा वैकुण्ठभवनं व्रजेत्।

ईश्वर उवाच।

व्रतानामुत्तमं स्कन्द तव वक्ष्ये सनातनं।
येनैव चीर्णमात्रेण सर्व्वयज्ञफलं लभेत्॥
यत् कृत्वा सर्व्वदानस्य फलमाप्नोति मानवः।
गोत्रिरात्रमितिख्यातं सर्व्वपापप्रणाशनं॥
नारी वाथ नरो वाथ त्रिरात्रव्रतमाचरेत्।
कृष्णपक्षे त्रयोदश्यां मासि चाश्वयुजे तथा॥
दोपात्वसमीपे तु व्रतमेतत् समाचरेत्।

प्रातः स्नात्वा त्रयोदश्यां कृत्वा वै दन्तधावनं॥
त्रिरात्रं नियमं कुर्य्याद्गोविन्दभक्तिभावितः।
गोविन्द जगतांनाथ गोवर्द्धनधरानघ॥
गोत्रिरात्रं करिष्यामि शरणं मे भवाच्युत।

नियममन्त्रः।

गोष्ठे वा गोपथे वाथ कृत्वा भूमिगृहं शुभं।
अष्टहस्तं चतुर्हस्तं चतुरस्रं सुशोभनं॥
वितानं पुष्पमालाभिः फलैर्नानाविधैरपि।
मध्ये वेदिं ततःकृत्वा मण्डलं तत्र कारयेत्।
सर्व्वतोभद्रनामाथ नवनालमथापि वा॥
तन्मध्ये विन्यसेद्देवं गोवर्द्धनधरं हरिं।
रुक्मिणी मित्रविन्दा च शैव्या जाम्बवती तथा॥
वामभागे तु देवस्य पूज्या वै भक्तिभावतः।
सत्यभामा च राधा च वासुदेवाग्निजित्तथा॥
दक्षिणे चैव पूज्यास्तु नन्दञ्च पुरतो यजेत्।
बलभद्रं यशोदाञ्च पृष्ठतः पूजयेत् शुभं॥
सुरभी च सुनन्दा च सुभद्रा नाम धेनवः।
एतास्वतस्रो देव्यश्च कृष्णस्य पुरतोन्यसेत्॥
सुवर्णमाषकाः कार्य्याः षोड़श प्रतिमाः शुभाः।
गोवर्द्धनस्य कर्त्तव्यो राजतः पलसंमितः॥
छत्राकारैर्म्महावृक्षैः शोभितः पक्षिभिः शुभः।
गोपीगोपसमाकीर्णो महावृक्ष१ समन्वितः॥

१ महावर्षमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

एवं संस्थाप्य यत्नेन ततः पूजां समाचरेत्।
ओं आगच्छ भगवान् कृष्ण गोपगोपीसमन्वितः॥
रुक्मिण्यादिभीराज्ञीभिर्मम पूजां गृहाण च।

आवाहनमन्त्रः।

नमः कृष्णाय पादौ च हरये जानुनी नमः।
उदरं बलदेवाय मुकुन्दाय नमः कटिं॥
चक्रिणे च भुजौ पूज्यौ कण्ठं श्रीकण्ठधारिणे।
मुखं पद्ममुखायेति गोविन्दाय नमः शिरः।
प्रणवादिनमोन्तैश्च अष्टाङ्गं पूजयेद्धरेः।

रुक्मिण्ये नमः। मित्रविन्दायै नमः। शान्त्यै नमः। जाम्बवत्यै नमः। सुरभ्यै नमः। सत्यभामायै नमः। राधायैनमः। नार्मजिते नमः। यशोदायै नमः। बलभद्राय नमः। नन्दाय नमः। सुनन्दायै नमः। सुभद्रायै नमः। नामजिते नमः। कामधेनवे नमः।

गोवर्धनधराधार गोकुलत्राणकारक।
विष्णुबाहुकृतोद्दार पूजयामि नगोत्तम॥
एवं संपूज्य विधिवत्पश्चादर्घ्यं प्रदापयेत्।
गवामाधार गोविन्द रुक्मिणीवल्लभ प्रभो॥
गोपगोपीसमीपे तमर्घ्यं गृह्ण नमोस्तु ते।
एवं पूजां समाप्यैव भक्तिभावपुरःसरं॥
गवामर्घ्यं[१] प्रदातव्यं सायाह्ने तु दिनत्रयं।

---

१ गवामर्थमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

मन्त्रेणानेन विधिवद्दिशन्तीनां स्वशक्तितः ॥
रुद्राणाञ्चैव या माता वसूनां दुहिता च या ।
आदित्यानाञ्च भगिनी सा नः शान्तिं प्रयच्छतु ॥

अर्घ्यमन्त्रः ।

नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च ।
नमो धर्म्मसुताभ्यश्च१ पवित्राभ्यो नमोनमः ॥

पूजामन्त्रः ।

सुरभी वैष्णवी माता नित्यं विष्णुपदे स्थिता ।
प्रतिगृह्णातु मे ग्रासं सौरभी मे प्रसीदतु ॥

गोग्रासमन्त्रः ।

गावो मे अग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ।
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहं ॥
मा वियोगोऽस्तु मे पुत्रैर्भर्त्रा च२ सह बान्धवैः ।
त्वत्प्रसादेन मे भक्तिर्निश्चलास्तु सदा त्वयि३ ॥

प्रार्थनामन्त्रः ।

एवं संपूज्य गाश्चैव४ गोविन्दञ्च विशेषतः ।
पुष्पैर्गन्धैश्च दीपैश्च धूपैर्नानाविधैरपि ॥

---

१ ब्रह्मसुताभ्यश्चइति पुस्तकान्तरे पाठः ।
२ मात्रा वेति पुस्तकान्तरेपाठः ।
३ निश्चला गौः सदात्वयिइति पुस्तकान्तरेपाठः ।
४ मावश्चेति पुस्तकान्तरे पाठः ।

नैवेद्यैर्घृतपक्वैश्च फलैर्नानाविधैरपि।
सप्तधान्यैर्विरूढैश्च वंशपात्रस्थितैः शुभैः॥
सुवासिन्यस्तथा पूज्या नित्यं ताम्बूलकुङ्कुमैः।
कण्ठसूत्रैस्तथा पुष्पैस्तथा च कनकादिभिः॥
एवं संपूज्य विधिवद्गोविन्दन्तु दिनत्रयं।
कृत्वोपवासत्रयञ्चैव चतुर्थे दिवसे पुनः॥
ततः शुचिः समुत्थाय कृत्वा स्नानं प्रयत्नतः।
प्रणम्याचार्य्यमुख्येन होमं तत्रैव कारयेत्॥
तिलैरष्टोत्तरशतं गायत्र्या होममाचरेत्।
ततो विसृज्य देवेशं गुरवे प्रतिपाद्य च॥
गावः पुच्छे समालभ्य पुरस्कृत्य द्विजर्षभान्।
हृष्टेन मनसा स्कन्द गृहमागम्य यत्नतः॥
मिथुनानि द्वादशाष्टौ भूषणाच्छादनादिभिः।
संपूज्य भोजनं दत्त्वा गोदानानि च दापयेत्॥
गुरोर्दम्पत्यमर्चित्वा वासोभूषणसंयुतं।
भक्त्या गोवर्द्धनं कृष्णं गोपीगोपसमन्वितं॥
गृहोपकरणैर्युक्तं यथा शक्त्या च भक्तितः।
गुरोःसम्पादयेद्धीमान् दक्षिणासहितं हरिं॥
क्षमाप्य च गुरुं तत्र भुञ्जीत शुचि संस्कृतं।
इष्टैः१ शिष्टैः समासीनो वाग्यतो विष्णुतत्परः॥
दीपोत्सवैर्व्रतमिदं शुचिमानसेन
कृत्वा नरः सकलसन्ततिवृद्धिकारि।

१ इष्टैरितीति पुस्तकान्तरे पाठः।

भुक्तोपभोगनिचयं सुखसंप्रयुक्तो
ह्यन्ते प्रयाति भवनं मनुजोमुरारेः ॥

इति स्कन्दपुराणोक्तं गोत्रिरात्रव्रतं[१] ।

———ooo@ooo———

निवृत्ते भारते युद्धे कुरुसैन्ये चयं गते ।
राजा धर्म्मसुतः श्रीमान् भ्रातृभिः सह मोदितः ॥
मागधैस्तूयमानश्च स्वसैन्यगणशोभितः ।
श्रीकृष्णेन समायुक्तः प्रययौ हस्तिनापुरं ॥
अभिषेकं ततश्चक्रे पुरोधा मुनिसंयुतः ।
दूर्व्वायवाङ्कुरैर्युक्तं चक्रुर्व्वर्द्धापणं स्त्रियः ॥
रत्नैर्दुकूलैर्धर्मात्मा तोषयामास तान् गणान् ।
नृपांश्च स्वनरोपेतान् मागधांश्चावनीपकान् ॥
ऋषींश्च सर्व्वान् प्रस्थाप्य स्वे स्वे स्थाने नृपानपि ।
स्तुत्या सन्तोषयामास श्रीकृष्णं पाण्डुनन्दनः ॥
देवदेव जगन्नाथ भक्तानामभयप्रद ।
प्रसादात्तव गोविन्द कौरवा युधि निर्जिताः ॥
राज्यं निष्कण्टकं प्राप्तं भक्तियोगात्तवानघ ।
मत्सेवापरियुक्तानां प्रसादं कुरु केशव ॥
एवमुक्ता स्थिते पाण्डौ पुत्रभ्रातृसमन्विते ।
पाञ्चाली परया भक्त्या प्रणम्य पुरुषोत्तमं ॥
बद्धाञ्जलिपुटा साध्वी प्रोवाच परमेश्वरं ।

---

१ गोत्रिराजव्रतमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

करुणाकारसंपूर्ण कंसासुरनिकृन्तन ॥
दुकूलहरणाद्यच्च दुःखं त्वद्भक्तिभाविता।
न ज्ञातं देवदेवेश प्रसादं कुरु केशव ॥
किमपि श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो व्रतमनुत्तमं।
येन चीर्णेन नारीणां सौभाग्यं पतिभक्तितः ॥

कृष्ण उवाच।

गौर्याः स्कन्दस्य पुरतः शम्भुना कथितं व्रतं।
गोत्रिरात्रमिदं ख्यातं पवित्रं कथयामि ते ॥
सावित्रीपुरतो धात्रा वसिष्ठेन महर्षिणा।
अरुन्धत्या प्रागुदितं तद्व्रतं शृणु सुव्रते ॥

द्रौपद्युवाच।

कस्मिन्मासे प्रकर्त्तव्यं यथा दानं तथा विधिः।
तत्सर्वं कथयाशु त्वं यदि तुष्टोऽसि माधव ॥

श्रीकृष्ण उवाच।

नभस्ये च सिते पक्षे त्रयोदशीति या तिथिः।
कार्त्तिके वा प्रकर्त्तव्यं सौभाग्यधनवाञ्छया ॥
सूर्य्योदये समुत्थाय दन्तधावनपूर्व्वकम्।
लक्ष्मीनारायणस्याग्रे त्रिरात्रोपोषणं गृहे ॥
कुर्य्यात् स्नानं ततश्चैव स्नापयेत् कमलापतिं।
पञ्चामृतेन श्रीखण्डैः कुसुमैरर्च्चयेत्ततः ॥
शतपत्रैश्च पद्माद्यैःपुष्पैः पूजां प्रकल्पयेत्।

पादौ नमामि बलिदानवमर्द्दनाय
जानू नमामि भुवनत्रयपालनाय ।
स्कन्धौ नमामि कमलारमणाय चित्ते
योगीश्वराय करचक्रसुधाप्रियाय ॥

पूजामन्त्रः ।

क्षीराब्धिकृतसम्वास वासुदेव जगत्प्रभो ।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं सौभाग्यं देहि मे सदा ॥

अर्घमन्त्रः ।

कूष्माण्डैर्नारिकेलैश्च बीजपूरैश्च दाड़िमैः ।
अर्घ्यं दत्त्वा च संपूज्य कामधेनुं प्रसादयेत् ॥

कामधेनुपूजा ।

करसंपुटकं कृत्वा कामधेनोरग्र इति वाच्यं ।

रोगाणि हन्तु मम कामदुधा प्रसन्ना
पापानि हन्तु मम कामदुघा प्रसन्ना ।
सौख्यं ददातु मम कामदुघा प्रसन्ना
पुत्रान् ददातु मम कामदुघा प्रसन्ना ॥

तृतीये दिवसे प्राप्ते वंशपात्रत्रयन्ततः ।
विरूढकसमापन्नं सम्यक् फलसमन्वितं ॥
दद्यात् कामदुधायै च व्रतसंपूर्णहेतवे ।
रात्रौ च सर्व्वतोभद्रं मण्डलञ्च प्रकल्पयेत् ॥
माषैकस्य सुवर्णस्य लक्ष्मीनारायणं प्रभुं ।

कृत्वा तत्र न्यसेद्देवं व्रतसंपूर्णहेतवे ॥
रात्रौ जागरणं कुर्य्याद्गीतवादित्रकौतुकैः।
ततः प्रभातसमये होमं कुर्य्याद्यथाविधि ॥
दम्पत्योः परिधानाय शुभैर्व्वस्त्रैःस्वशक्तितः।
देया धेनुश्च विप्राय निवेद्य पृष्ठतोव्रजेत् ॥
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति निश्चितं।
अथान्यदपि ते वच्मि इतिहासं पुरातनं ॥
व्याघ्रधेन्वोः सुसंवादं नीतिशास्त्रमयं शुभं।
वसिष्ठस्याश्रमात् काचिद्दिव्यगोवंशसम्भवा ॥
स्वेच्छया प्रययौ धेनुश्चरति गह्वरे वने।
सिंहव्याघ्रादिजीवेभ्यो निर्भया तपसो बलात् ॥
मुनीश्वरस्य सा धेनुः प्रययौ गिरिगह्वरं।
शिवशापपरिभ्रष्टव्याघ्रव्यापी महाबलः ॥
महादंष्ट्रो महाकायो नाम्नासौ जलवर्द्धनः।
प्रसारितकरो वीरो ययौ वृत्तिं शुभाशुभां ॥

व्याघ्रउवाच।

दिवसा बहवो जाताः क्षुधया पीड़ितस्य मे।
त्वं दृष्टा दैववशत आहाराय प्रकल्पिता ॥

धेनुरुवाच।

वसिष्ठस्य प्रभावेन दुष्टजीवैर्महाबलैः।
न हिंस्याहमवश्यं हि जानीयाद्याघ्रसत्तम ॥

वाक्यमेकं महाबाहो शृणुष्वैकाग्रमानसः।
स्वीयजीवाशया चाहं न ब्रवीमि तवाग्रतः॥
अध्रुवेण शरीरेण मलमूत्रयुतेन च।
परोपकृतिहीनेन किं कार्यं क्षत्रियेण च॥
वाङ्मनः कर्म्मणा ये वै शरीरनाशनेऽपि वा।
उपकारं न कुर्व्वन्ति तेषां जन्म निरर्थकं॥
मरणे वान्यचित्ता ये रणे दीनवचो भटाः।
ते यान्ति नरकं घोरमित्याहुः पूर्व्वसूरयः॥
कलत्रपुत्रबन्धूनां मायारहितमानसाः।
पुराणपुरुषे भक्तास्ते यान्ति परमाङ्गतिं॥
सोमत्रासरसञ्जातो बालो मम गृहे स्थितः।
ममागमनसंहृष्टिः स्नेहदुःखञ्च मे हृदि॥
सखी दुग्धेन तम्बालं स्वेच्छया परितोषयति।
सखीमकथयित्वाशु आयामि तव सन्निधौ॥

व्याघ्र उवाच।

वेदशास्त्रपुराणेषु पठ्यते पूर्व्वसूरिभिः।
स्त्री-विप्र-धेनु-पीड़ासु विवाहे राजविग्रहे॥
प्राणात्ययेऽप्यसत्यं हि वाच्यमन्यत्र नैव हि।
आपन्नतश्च योजन्तुर्य्यश्च वैरिवशङ्गतः॥
आत्मा वै रक्षितो येन तत् करोति न संशयः।
यस्यचाग्रे स्थितं भक्ष्यमादिष्टं परमेष्ठिना॥
न गृह्णाति च यो मूर्खोह्यनन्दानकरं व्रजेत्।
सुरैर्न न मनुष्यैश्च न यक्षैर्न पिशाचकैः॥

सत्यं हि निश्चितं वाक्यं प्राणिभिः प्राप्यचापदं।
जलतृणसमाहारकृतसन्तोषवर्त्तिनां॥
आपद्गतानामनृतं तत् पशूनाञ्च का कथा।
पृथिवी च तथादित्याः सत्ये तिष्ठन्ति देवताः॥
तस्मात्सत्यंत्वपाकार्य्य वाच्यञ्चैव वृषाङ्गणे।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा बालकस्नेहपीड़िता॥
चक्रे तत्र प्रतिज्ञाम्बै व्याघ्रस्याग्रे पुनः पुनः॥

धेनुरुवाच।

द्विजोभूत्वा ततो व्याघ्र वेदभ्रष्टोऽभिजायते।
स्वाध्यायसन्ध्यारहितः सत्यशौचविवर्ज्जितः॥
अविक्रेयाणां विक्रेता अयाज्यानाञ्च याजकः।
तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः॥
दुष्टबुद्धौ शठे धूर्त्ते यत् पापं परवञ्चके।
दाने दत्ते प्रदत्तञ्च प्रसक्तिं कुरुते नरः॥
तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः।
वेदविक्रयणेचैव शवसूतकभोजने॥
तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः।
मृतवत्सां गृहीता यो मातापित्रोरपोषकः॥
देवद्रव्यं गुरुद्रव्यं ब्रह्मद्रव्यं हरेत्तु यः।
तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः॥
स्वदत्तां परदत्ताम्वा योहरेच्च वसुन्धरां।
अवैष्णवे तु यत्पापं यत्पापं दम्भकर्त्तृके॥
तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः।

मुक्तेन्द्रिये च धूर्त्ते च परदोषापवादके।
कृतघ्ने च कदर्य्ये च परद्रव्यरते षटे॥
तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः।
सदाचारविहीने च परपीड़ाप्रदायके॥
तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः।
परापवादसंन्तुष्टे सर्व्वधर्म्म विवर्ज्जिते॥
यत्पापं ब्रह्महत्यायां पितृमातृवधे तथा।
तेषान्तु पातकं मह्यं यद्यहं नागमे पुनः॥
द्विभार्य्यः पुरुषोयस्तु यस्मादेकां विवर्ज्जयेत्।
तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः॥
यत् पापं लुब्धकानाञ्च स्वस्थानां विषदायिनां।
तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः॥
यत्पापं नास्तिकानाञ्च चौराणां विषयेषिणां।
तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः॥
यस्त्रीन् हले बलीवर्दान् विषमं वाहयेत्तु यः।
तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः॥
गोरवघ्नां प्रकुर्व्वन्ति दण्डेन ताडयन्ति ये।
तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः॥
सकृत् कन्यान्तु योदत्त्वा द्वितीये दातुमिच्छति।
तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः॥
कथायां कथ्यमानायामन्तरायं करोति यः।
तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः॥
यतिनिन्दाकरोनित्यं वेदनिन्दापरस्तथा।

तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः।
यस्य संग्रहणी भार्य्या ब्राह्मणी च विशेषतः॥
तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः।
अकर्म्मनिरते क्रूरे कुलधर्म्मविवर्जिते॥
तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः।
मूर्खे पाषण्डके चौरे तिलविक्रयकारके॥
एकोमिष्टान्नमश्नाति भार्यापुत्रमपोषकः।
आत्मम्भरा दुराचारा देवद्रव्यविलोपकः॥
तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः।
ब्रह्मघ्ना गुरुनिन्दोद्या: स्वामिनिन्दाकरास्तथा॥
तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः।
कुरुक्षेत्रे महापर्व्वे ग्रस्ते चन्द्रे दिवाकरे॥
ये गृह्णन्ति महादानं हव्यकव्यविवर्जितं।
तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः॥
कूटसाक्षी मृषावादी परद्रव्याभिलाषुकः।
तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः॥
परदाराभिगामी च ये च विश्वासघातकाः।
भर्त्तारमर्थहीनञ्च महाव्याधिप्रपीड़ितं॥
या न पूजयति नारी रूपयौवनगर्व्विता।
तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः॥
अथ किं बहुनोक्तेन मृगराज तवाग्रतः।
यदि नायामि शीघ्राहं मम सत्यं भवेन्न च॥
तेन वाक्येन सन्तुष्टो व्याघ्र आहारनिस्पृहः।

प्रसारितकरं त्यक्त्वा गच्छ धेनो स्वकं गृहं।
व्याघ्रेण मुक्ता सा धेनुरागता च स्वमाश्रमं॥
उत्कर्षं तर्णकं दृष्ट्वा जात प्रस्नवती भृशं।
बालं पयसा सन्तर्प्य सखीषु च विनिक्षिपेत्॥
ता दृष्ट्वा दुःखिता गावो मातृस्नेहसमन्विताः।
दृष्ट्वा दुःखतरो बालो न जाने च तयास्तु मे॥
तत्तद्बालमुपादाय पप्रच्छुस्तत्र कारणं।
विश्राव्य तासु वृत्तान्तं बालकन्तमुवाच सा॥
अनुयाहि व्रज त्वं हि सत्यवाक्यसमन्विता।
व्रजामि तद्वनं शीघ्रं व्याघ्रो वसति यत्र च॥

सख्युवाच।

कृतप्रतिज्ञेमूढ़ासि नन्दिनीवंश सम्भवे।
व्याघ्रधेन्वोः परं वैरन्त्रिषु लोकेषु विश्रुतं॥
विप्र-स्त्री-बाल-कार्य्येषु संप्राप्ते वैरिसङ्कटे।
प्राणापहारे मुनिभिरसत्यं नैव दूषितं॥
देवेशेन पुरा जघ्ने वृत्रः सुररिपुर्बली।
शपथान् कृत्वा तथा विष्णुः शक्रं विश्वासवर्ज्जितं॥
तत्र त्वं स्वगृहे तिष्ठ परिवारेण संयुता।
मुनिप्रवरास्तिष्ठन्ति न दुष्टा जन्तवःकदा॥

धेनुरुवाच।

सत्येन तपते भानुः सत्येन तपते शशी।
चतुर्मुखोऽपि सत्येन सत्येन सकलं जगत्॥

सत्यवाक्यपरिभ्रष्टो सोमो जीवेत् कदाचन ।
सत्येन सत्यलोकोऽस्ति सत्यं वेदे प्रतिष्ठितं ॥
व्रजामि सत्यवाक्येन तद्व्याघ्रं प्रति निर्भया ।
तद्वने चैव सांदृष्टो व्याघ्रो यातामुपागतां ॥

व्याघ्र उवाच ।

अहो मे भाग्यमतुलं कामधेनुः समागता ।
दुष्टयोनिविनिर्मुक्तो यास्यामि हरसन्निधौ ॥
यावत् प्राप्ता कलिमलहरा पावनी कामधेनु
स्तावद्व्याघ्रः१ प्रमथवरगणः सर्व्वसम्पत्तिदेहः ।
बद्धा पाणौ विमलमणिभिर्दीप्यमाने किरीटे
धेनुं भक्त्या मधुरवचनैराह संपूज्य सम्यक् ॥
धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि कामधेनोः प्रसादतः ।
सर्व्वपापविनिर्मुक्तो यास्यहं हरसंन्निधौ ॥
गावो रक्षन्तु मे पुण्यं गावो रक्षन्तु मेयशः ।
गावो रक्षन्तु मे वर्गं कलत्रपुत्रपौत्रकं ॥
संपूजितास्तु ता गावो मातृणां बहुसम्पदाः ।
सर्व्वपापहरा गावः सर्व्वपुण्यफलप्रदाः ॥
नमोऽस्तु कामधेनुभ्यो याः पुनन्ति जगत्त्रयं ।
यदाधारस्थितं विश्वं नन्दादिभ्यो नमोनमः ॥

धेनुरुवाच ।

महागण वरं ब्रूहि जगतां प्रीतिकारकं ।

१ तवेद्व्राह्मण मुक्तोरिति पुस्तकान्तरे ।

यदिच्छसि वरं काम्यं ददामि तव भक्तितः ॥

गण उवाच ।

विश्वोपकारकरणे समर्थाः कामधेनवः ।
भवद्वर्गास्तु विश्वासात् सदास्तु सुखितं जगत् ॥
भवत्प्रजारता ये वा भवत्प्रजापरायणाः ।
तेषाञ्च सर्व्वा सिद्धिः स्याद्भवदीयप्रसादतः ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

एवमस्त्विति साप्युक्ता व्याघ्रः शिवपुरं ययौ ।
कामधेनुश्च सन्तुष्टा वशिष्ठाश्रममाययौ ॥
एवमुक्तं गोत्रिरात्रं कृत्वा नारी नरोऽपिवा ।
प्राप्नोति सकलान् कामान् सप्तजन्मानि सुव्रते ॥

इति श्रीकृष्णेनोक्ता गोत्रिरात्रव्रतकथा समाप्ता ॥

———000@000———

याम्योत्तरगता रेखा कुर्य्यादेकोनविंशतिं ।
खण्डेन्दुत्रिपदा कोणे शृङ्खला पञ्चकोष्टिका ॥
एकादशपदा वाप्यो भद्रन्तु नवभिः पदं ।
चतुर्विंशत् पदा वापी विंशत्या परिधिः स्मृता ॥
सितेन्दुशृङ्खला कृष्णा वल्ली नीले च पूरयेत् ।
कृष्णं भद्रं सिता वापि परिधिः पीतकर्णिका ॥
सत्वरजस्तमोपेतं सर्व्वतो भद्रमण्डलं ॥

इति मण्डलविधिः

युधिष्ठिर उवाच।

भगवन् त्वत्प्रसादेन बहूनि सुकृतानि मे।
श्रुतानि बहुपुण्यानि कृतानि मधुसूदन॥
सर्व्वपापहराणि स्युः सर्व्वकामप्रदानि च।
साम्प्रतं श्रोतुमिच्छामि व्रतानामुत्तमं व्रतं॥
किञ्चिद्योगव्रतं ब्रूहि यदि तुष्टोऽसि माधव।
यत् कृत्वा सर्वपापेभ्यो नरो नारी विमुच्यते॥

कृष्ण उवाच।

कथयामि नृपश्रेष्ठ व्रतानामुत्तमं व्रतं।
यन्न कस्यचिदाख्यातं तच्छृणुष्व नृपोत्तम॥
यान्यान् कामान्वाञ्छयति लभते तांस्तथैव च।
तत्क्षणादेव मुच्यन्ते नरा नार्य्यश्च सर्व्वशः॥
धेनौ भगवति राजन् कामधेनोः प्रसादतः।
सौभाग्यं सन्ततिं लक्ष्मीं प्राप्नोति सुखमुत्तमं॥

युधिष्ठिर उवाच।

यदि तुष्टोऽसि भगवान् व्रतस्यास्य विधिं शुभं।
ब्रूहि मे नरशार्द्दूल करोमि त्वत्प्रसादतः॥
के मन्त्राः के नमस्काराः देवताः काः प्रकीर्त्तिताः।
किं दानमर्घ्यमन्त्रञ्च कथयस्व सुरोत्तम॥

कृष्ण उवाच।

नारदेन पुरा राजन् यदुक्तं सगरादिषु।

आरितन्तत्त्वया राजन् शृणुष्वैकमना व्रतं ॥
मासि भाद्रपदे शुक्ले त्रयोदश्यां समारभेत्।
त्रयोदशीप्रभाते तु समुत्थाय शुचिर्भवेत् ॥
गृह्णीयान्नियमं पूर्व्वं दन्तधावनपूर्वकं।
आचम्योदकमादाय इमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥
गोत्रिरात्रव्रतस्यास्योपवासकरणे मम।
शरणं भव देवि त्वं नमस्ते धेनुरूपिणि ॥
प्रसीदतु महादेवो लक्ष्मीनारायणः प्रभुः।
लक्ष्मीनारायणं देवं सौवर्णञ्च स्वशक्तितः ॥
पञ्चामृतेन गव्येन स्नापयेत् कमलापतिं।
स्थापयेत्सर्वतोभद्रमण्डलेऽष्टदलेऽपिवा ॥
गन्धपुष्पैः सुनैवेद्यैस्तुतिगीतादिनर्त्तनैः।
नारिकेलार्घ्यदानेन प्रीणयेद्गां हरिं तथा ॥
लक्ष्मीकाम जगन्नाथ गोत्रिरात्रं व्रतं मम।
परिपूर्णं कुरुष्वेदं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥

इत्यर्घ्यमन्त्रः।

आरात्रिकं ततः कुर्य्याद्भक्त्या कृष्णस्य तुष्टये।
नवं कुम्भं जलभृतं हविष्यान्नेन पूरितं ॥
कृत्वा दिनत्रयं पार्थ तथाच विनिवेशयेत्।
धेनुं पूज्य ततः कुर्यात् जलधारां प्रदक्षिणां ॥
पुरा दत्त्वा कुण्डलकं कुम्भहस्तकमण्डलुं।
अन्नाच्छादनगन्धादिदिव्यपुष्पैः सदीपकैः ॥

अहोरात्रमवक्रञ्च घृतदीपं दिनत्रयं।
प्रबोधयेद्व्रती धेनोरग्रे वा देवमण्डले॥
अर्घ्यदानन्ततः कुर्य्यात् नारिकेलादिभिः फलैः॥

अर्घ्यमन्त्रः।

पञ्च गावः समुत्पन्ना मथ्यमाने महोदधौ।
तासां मध्ये तु या नन्दा तस्यै धेन्वै नमोनमः॥
प्रदक्षिणीकृतायेन धेनुमार्गानुसारिणी।
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा॥
गावोममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
गावोमे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहं॥
आरात्रिकं सनैवेद्यङ्गीतवाद्यमहोत्सवं।
कुङ्कुमं कुम्भङ्कलशं धेनोर्दद्याद्विचक्षणः॥
एवं सपूज्य तां धेनुं सम्यक् भक्त्या दिनत्रयं।
यवांश्च यवसञ्चैव चारयेत्पाययेदपः॥
गोमयादक्षतैर्धान्यैः१ कुर्य्यात्तैरेव पारणं।
तारयेदत्र देशकान् पतत्यनपि दुःखदम्॥
धेन्वग्रे जागरं कुर्य्यात्सर्व्वपापप्रणाशनं।
त्रिविधान्मुच्यते पापात् प्रहरार्द्धेन पाण्डव॥
तस्योत्तरं कृतात्पापात् प्रहरार्द्धेन मुच्यते।
चत्वारि वेणुपात्राणि कारयित्वा प्रपूजयेत्॥
नारिकेलोदकद्राक्षाखर्ज्जूरदाड़िमैः शुभैः।

१ गोमयादाक्षतैर्धानैरिति पुस्तकान्तरे पाठः।

विरूढैः पुष्पसिन्दूरवस्त्रकुङ्कुमकज्जलैः ॥
प्रथमे बीजपूराघ्यं द्वितीये दाड़िमं शुभं ।
तृतीये नारिकेलेन दद्यादर्घ्यं दिनत्रयं ॥
करकास्तु त्रयः कार्य्याः हविष्यान्नेन पूरिताः ।
लक्ष्मीनारायणं देवं ब्रह्माणं भार्य्यया सह ॥
पूजयेत् कुसुमैर्वस्त्रै र्हेमसूत्रैर्युधिष्ठिर ।
दम्पत्योर्भोजनं देयं धेनुं भक्त्या दिनत्रयं ॥
पारणे गौरिणी विप्रानिष्टबन्धूंश्च भोजयेत् ।
गुरवे विष्णुरूपाय तां धेनुं प्रतिपादयेत् ॥
सकुङ्कुमां सवस्त्रां च घण्टामुकुटभूषितां ।
गीतवादित्रनृत्यादिशान्तिपाठपुरःसरां ॥
पापाद्विप्रगृहं यावत् प्रापयेद्व्रतएव वा ।
एवं या कुरुते पार्थ गोत्रिरात्रव्रतोत्तमं ॥
दुर्लभं तु सदा स्त्रीणां नराणां नृपसत्तम ।
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ॥
कृत्वा यत् फलमाप्नोति गोत्रिरात्रव्रते कृते ।
प्रभासे च कुरुक्षेत्रे चन्द्रसूर्य्यग्रहे तथा ॥
हेमभारशतं दद्यात् तत् फलप्राप्तये नृप ।
धेनुदानं कृतं येन सवस्त्रं सर्वकामकं ॥
सागराम्बरसंयुक्ता दत्ता तेन वसुन्धरा ।
एवं या कुरुते पार्थ त्रिरात्रव्रतमुत्तमं ॥
भवान्तरकृतात् पापात् त्रिविधान्मुच्यते नरः ।
सा कदाचिन्नपश्येत भर्त्तृदुःखं नराधिप ॥

पुत्रपौत्रसुखं तस्य भविष्यति न संशयः ॥
जन्मान्तरे च सा नारी वैधव्यं न च पश्यति ।
वैधव्यं न महादुःखं भविष्यति भवान्तरे ॥
अपुत्रो लभते पुत्रान् धनहीनो धनं लभेत् ।
कायेन मनसा चैव कर्म्मणायदुपार्जितं ॥
तत्सर्व्वं पातकं याति गोत्रिरात्रव्रते कृते ।
इह भोगान् विपुलान् कृत्वा आयुः सम्पूर्णमेव च ॥
व्रतस्यास्य प्रभावेन गोलोके च महीयते ।
कीर्त्तिदन्धनदं चैव सौभाग्यकरणं नृप ॥
आयुरारोग्यकरणं सर्व्वपापप्रणाशनं ।
तत्र स्नात्वादराद्राजन् सभार्य्यस्त्वं कुरु व्रतं ॥
यदि राज्यं कुरु कीर्त्तिं नित्यं प्राप्यमिहेच्छसि ।
तच्छ्रुत्वा पाण्डवश्रेष्ठो व्रतं चक्रे समाहितः ॥
व्रतस्यास्य प्रभावेन लब्धं राज्यमकण्टकं ।

## इतिश्रीभविष्योत्तरोक्तं गोत्रिरात्रव्रतं ।

——oo0oo——

ब्रह्मोवाच ।

शृणुष्वावहितो भूत्वा यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
कथयामि व्रतं श्रेष्ठं सर्वकामार्थसिद्धिदं ॥
येन चीर्णेन नारीणां वैधव्यमप्रजायते ।
आयुष्यं वर्द्धते भर्त्तुः पुत्राश्च धनसंयुताः ॥
तदहं संप्रवक्ष्यामि व्रतानामुत्तमं व्रतं ।

यत् प्रसादादुमा रुद्रं कृष्णं लक्ष्मीः शची हरिं ॥
सावित्री मां यथा प्राप्ता सीता रामं यथा मुने ।
दक्षकोपादुमा देवी देहन्त्यक्ता स्वकं पुरा ॥
जाता हिमवतोगेहे१ जटावल्कलधारिणी ।
चचारोग्रं तपोऽनाथा निराहारा जितेन्द्रिया ॥
एकाङ्गुष्ठे स्थिता बाला पञ्चाग्निपरिसंयुता२ ।
तपस्ये निश्चयं दृष्ट्वा गतः शम्भुस्ततः स्वयं३ ॥
कस्मादेवं त्वया कष्टं क्रियते गौरि साम्प्रतं ।

उमोवाच ।

महादेवो भवेदेव यथा मे पतिरुत्तमः ।
तदर्थं क्रियते घोरन्तपस्तपनदुःसहम् ॥

ब्रह्मोवाच ।

शृणु बाले सुखोपायं व्रतानामुत्तमं व्रतं ।
येन चीर्णेन ते शम्भुः स्वदेहार्द्धं प्रदास्यति ॥
सा त्वं कुरु व्रतं४ भद्रे त्रिरात्रं विल्वसंज्ञितं५ ।
तच्चीर्णमनया भक्त्या पतिर्लब्धो महेश्वरः ॥
कार्त्तिकेयः सुतस्तस्माद्गणेशश्च महामुने ।

---

१ जातासाहिमवद्गेहेति पुस्तकान्तरे पाठः ।

२ पञ्चाग्निपरिसमाप्यते इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

३ तस्याश्च निश्चयं दृष्ट्वा ततः स्वलोगतः स्वयमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

४ तच्चकुरुव्रतमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

५ द्विरात्रं विष्णुसंज्ञित मिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

इत्युक्तो ब्रह्मणा पूर्व्वं अगस्तिमुनिसत्तम॥
विस्मयाविष्टचेताश्च विधिं प्रष्टुं१ प्रचक्रमे।

अगस्त्य उवाच।

कस्मिन् काले दिने कस्मिन् स्थाने चैव नरोत्तम।
विधिनाकेन कर्त्तव्यं कथं पूज्यो वनस्पतिः॥

ब्रह्मोवाच।

ज्यैष्ठे मासि च संप्राप्ते पूर्णमास्यां द्विजोत्तम।
ज्येष्ठाऋक्षदिने कुर्य्यात्सिद्धार्थैः स्नानमुत्तमं॥
श्रीवृक्षं सिञ्चयेत्पश्चाद्गन्धपुष्पैश्च पूजयेत्।
वत्सरन्त्वेकभक्तान्तु हविष्यान्नेन कारयेत्॥
श्वशूकरखरादीनां दर्शने भोजनं त्यजेत्।
अनेन विधिना सम्यक् मासि मासि समाचरेत्॥
ततः संवत्सरे पूर्णे गत्वा विल्वसमीपतः२।
गृहीत्वा वालुकां पात्रे प्रस्थमात्रं महामुने॥
अथवा धान्यमादाय यवशालितिलादिकं३।
ततो वंशमये पात्रे वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत्॥
उमामहेश्वरं हैमं शक्त्या कुर्य्यात् सुभूषितं।
रक्तवस्त्रयुगं दद्यान्नैवेद्यं फलसंयुतं॥
पुष्पैर्व्वहुविधैश्चापि फलैर्नानाविधैस्तथा।

---

१ विधि दृष्टमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

२ विल्वसतीसमूर्त्ति पुस्तकान्तरे पाठः।

३ यवशालि तिलोदकमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

गुडेक्षुजीरकैर्धान्यैर्लवणेन विरूढकैः ।
सप्तधान्यैस्तथादीपैर्व्यञ्जपात्रप्रकल्पितैः ॥
रजन्या कण्ठसूत्रैश्च शुभैः कुङ्कुमकेशरैः ।
अवतारं करोत्येषा उमादेवी हरप्रिया ॥
श्रीनिकेत नमस्तुभ्यं शिवप्रिय नमोस्तु ते१ ।
अवैधव्यञ्च मे देहि श्रियं वै जन्मजन्मनि ॥
श्रियं धनं पतिं पुत्रानारोग्यं कुलसन्ततिं ।
सौभाग्यं रूपसम्पत्तिं पूजितस्त्वं प्रयच्छ मे ॥
सहस्रं विल्वपत्राणां होमयेत्तु यथाविधि ।
पायसं तत्र जुहुया द्विप्रः शान्तोऽथ मन्त्रवित् ॥
राजतं श्रीतरुं कृत्वा सुवर्णफलशोभितं ।
अष्टोत्तरशतं यावत् पीतवस्त्रेण वेष्टयेत् ॥
त्रयोदश्यां समारभ्य यावत्पूर्णं भवेत्तिथिः ।
त्रिरात्रं जागरं कृत्वा उपवासैर्जितेन्द्रियः ॥
रमापते२ पशुपते त्रैलोक्याधिपतिः प्रभो ।
गृहाणार्घ्यं मया देव गौर्य्या सह महेश्वरः ॥
ततः प्रभाते सञ्जाते स्नात्वा च तिलसर्षपैः ।
वस्त्रालङ्कारपुष्पैश्च गुरोर्दम्पत्यमर्च्चयेत् ॥
पादुकोपानहच्छत्रशय्या गाञ्च सुभूषितां ।
गुरुं प्रपूज्य भक्त्या तु दद्यादेतत् प्रयत्नतः ॥
षोड़शाष्टौ चतस्रोवा द्विजदम्पत्यो भूषिताः ।

---

१ वनस्पते इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

२ उमापते इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

वस्त्रालङ्कारगोदानैस्तस्मिन्नहनि पूजयेत्।
मिष्टान्नं भोजनं दद्यादात्मनः श्रेय इच्छता ॥
या नारी कुरुते चैतद्व्रतं पापप्रणाशनं।
सर्व्वसिद्धिकरं पुण्यं शिवलोके महीयते ॥
कल्पकोटिशतं यावदास्थाय शिवसन्निधौ।
ततोराज्ञी भवेन्मर्त्ये पुत्रपौत्रसमन्विता ॥

इति स्कन्दपुराणोक्तं विल्वत्रिरात्रव्रतं।

———000———

विल्वमूलं समाश्रित्य त्रिरात्रोपोषितः शुचिः।
हरनाम[१] जपेल्लक्षं भ्रूणहत्यां व्यपोहति ॥

इति सौरपुराणोक्तं हरत्रिरात्रव्रतं[२]।

———000———

स्कन्द उवाच।

अरुन्धतीव्रतं वक्ष्ये सदा सौभाग्यदायकं।
येन चीर्णेन वै सम्यक नारी सौभाग्यभाजना॥
जायते रूपसम्पन्ना पुत्रपौत्रसमन्विता।
वसन्तर्तुं समासाद्य तृतीयायां सुरर्षभ ॥
स्नानं कृत्वा तु विधिवत्त्रिरात्रोपोषिता सती।
मिथुनानि च चत्वारि समाहूय यतव्रता ॥

१ हरिनाम इति पुस्तकान्तरे पाठः।

२ हरिव्रतमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

पूजयेत् पुष्पताम्बूलैश्चन्दनैश्च तथाक्षतैः।
कुङ्कुमागुरुकर्पूरसिन्दूरैर्मृगनाभिभिः॥
शिलापट्टे च संस्थाप्य गुड़ाज्यलवणान्वितं।
लोष्टकेन समायुक्तं वस्त्रयुग्मेन वेष्टितं॥

लोष्टको नाम शिलापट्टोपरि स्थितपेषणोपलः एतद्दृषदुपलोपधानमभिहितं भवति।

आवाहयेन्महादेवीं वसिष्ठप्राणसम्मितां।
आयाहि वरदे देवि सान्निध्यं कुरु सुव्रते॥
पतिव्रतानां सर्व्वासां मुख्या त्वं देवि भामिनि।
आवाह्यारुन्धतीं देवीं पूजयेत् कुसुमैः शुभैः॥
द्विभुजाञ्चारुसर्व्वाङ्गीं साक्षसूत्रकमण्डलुं।
प्रतिमां काञ्चनीं कृत्वा नामभिः प्रतिपूजयेत्॥
देववन्द्ये नमः पादौ जानुनी लोकवन्दिते।
कटिं संपूजयेत्तस्या महासती च सर्व्वदा॥
नाभिं गम्भीरनाभीति ऋषिपत्नीं ततस्तनौ।
जगद्धात्रीं तथा कण्ठबाहू शान्त्यै नमः सदा॥
हस्तौ तु वरदायै तु मुखं धृत्यै नमोनमः।
अरुन्धती तथा पूज्या शिरस्तु कमलप्रिया॥
एवं संपूज्य तान्देवीं गन्धपुष्पे निवेदयेत्[१]।
पूजयित्वा सतीन्देवीं ततश्चार्घ्यं निवेदयेत्॥
अरुन्धति महाभागे वसिष्ठप्रियवादिनी।
सौभाग्यं देहि मे देवि धनं पुत्रांश्च देहि मे॥

१ गन्धपुष्पनिवेदनैरिति पुस्तकान्तरे पाठः।

अर्घ्यमन्त्रः।

अर्घ्यं दत्त्वा तु भक्त्या वै गृहीतकुसुमाञ्जलिः।
प्रार्थयेत्तां महाभागां१ लोकवन्द्यां महासतीं॥
पुत्रान् देहि धनं देहि सौभाग्यं देहि सुव्रते।
पौत्रांश्च सर्व्वकामांश्च देहि देवि नमोऽस्तु ते॥

प्रार्थना मन्त्रः।

सुवासिन्योऽथ संपूज्या दिवसे दिवसे तथा।
शुभगन्धाक्षतैस्तद्वद्दद्यात् सर्व्वेषु भक्षकान्॥
होमांश्चैव तथा कुर्युः समिद्भिश्च तिलैः शुभैः।
अष्टोत्तरशतं तद्दद्दिनसंख्यामथापि वा॥
मिथुनानि च संपूज्य भूषणाच्छादनादिभिः।
चतुर्व्विंशतिसंख्याकान् यथा षोड़शसंख्यया॥
आचार्य्याय सभार्य्याय वस्त्राण्याभरणानि च।
शय्यां सोपस्करां दद्यात् कांस्यपात्रं सदीपकं॥
आदर्शञ्चामरञ्चैव धेनुं दद्यात् पयस्विनीं।
दद्यात्तु भोजयित्वा च स्त्रियः शूर्पान् समोदकान्॥
सोदकान् करकांस्तद्वत्तयोर्वस्त्रं यथाविधि।
पोलिकां घृतपूपांश्च पूरिकाश्च विशेषतः।
सोमालिकाश्च दातव्या एकैकं द्विगुणं तथा॥

द्विगुणं भोजनं दायपर्य्याप्तं।

दीनानाथांश्च२ संपूज्य स्वयं नक्तं समाचरेत्।

धर्म्ममिति शेषः।

---

१ प्रार्थयन्तीं महाभागामिति पुस्तकान्तरे पाठः।

२ दीनानन्धांश्च संपूज्य इति पुस्तकान्तरे पाठः।

अनेनैव विधानेन नारी वा कुरुते व्रतं ॥
अवैधव्यं समाप्नोति तथा जन्मसहस्रकं ।
पुत्रपौत्रसमायुक्ता धनधान्यसमन्विता ॥
जीवेद्वर्षशतं साग्रं भर्त्रा सह महासती ।
एवमभ्यर्चयित्वा तु पदं गच्छत्यनामयं ॥
देवभार्य्या तथा स्वर्गे ऋषिभार्य्या तथैव च ।
राजभार्य्या महाभागा सर्व्वकामप्रदं व्रतं ॥

इति स्कन्दपुराणोक्तं अरुन्धतीव्रतं[१] ।

———ooo———

पुलस्त्य उवाच ।

अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि दूर्व्वात्रिरात्रमुत्तमं ।
नारीणां सुखसम्पत्तिपुत्रपौत्रप्रदायकं ॥
तनूरुहेभ्यः सम्भूता दूर्व्वा विष्णोरियं पुरा ।
तस्यामुपरि विन्यस्तं मथितामृतमुत्तमं ॥
देवदानवगन्धर्व्वैर्यक्षविद्याधरोरगैः ।
तत्र येऽमृतकुम्भस्य पेतु र्निस्यन्दविन्दवः ॥
तैरियं स्पृष्टगात्राभूत् दूर्व्वा तेनाजरामरा ।
वन्द्या पवित्रा देवैश्च वन्दितात्वर्च्चिता तथा ॥
शृणु दूर्व्वात्रिरात्रस्य विधिं कार्त्स्न्येन सुव्रत ।
मासि भाद्रपदे चैव शुक्लपक्षे त्रयोदशीं ॥
त्रिरात्रं समुपोष्यन्तु यावत् पूर्णा तिथिर्भवेत् ।
उमामहेश्वरं देवं सावित्रीं धर्म्ममेव च ॥

१ अरुन्धतीत्रिरात्रव्रतमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

दूर्व्वामूले तु संस्थाप्य मण्डपं कारयेत्ततः।

उमामहेश्वररूपन्तु प्रथमकृष्णाष्टमीव्रते, सावित्रीरूपं पुत्रकामपूर्णिमायां द्रष्टव्यं, धर्म्मरूपन्तु विष्णुधर्म्मोत्तरात्।

चतुर्व्वक्त्रश्चतुष्पादश्चतुर्व्वाहुः सिताम्बरः।
सर्व्वाभरणवान् श्वेतो धर्म्मः कार्य्यो विराजते।
दक्षिणे चाक्षमाला च तस्य वामे तु पुस्तकं॥

दूर्व्वासिञ्चनमन्त्रः।

दूर्व्वां सिञ्चामि ते मूलमुदकैरमृतोपमैः।
अवैधव्यञ्च मे देहि दूर्व्वायै ते नमोनमः॥
दूर्व्वे ह्यमृतजन्मासि वन्दितासि सुरासुरैः।
सौभाग्यं सन्ततिञ्चैव सर्व्वकार्य्यकरी भव॥
यथा शाखाप्रशाखाभिर्व्विस्तृतासि महीतले।
तथा ममापि सन्तानन्देहि त्वमजरामरे॥
एवमुच्चार्य्य सिञ्चेत भ्रमयस्व प्रदक्षिणं।
देवतापूजनं कृत्वा पूर्व्वोक्तविधिना ततः॥
सुवासिन्यः स्त्रियः पूज्या वंशपात्रैः सवाससैः।
अनेन विधिना तिष्ठेद्यावच्चैव दिनत्रयं॥
जागरं तत्र कुर्वीत नृत्यवादित्रनिस्वनैः।
शान्तिपाठं पुराणञ्च सावित्राख्यानमुत्तमं॥
ततः प्रभाते विमले प्रतिपद्दिवसे शुभे।
होमं तत्र प्रकुर्व्वीत तिलाज्यसमिधादिभिः॥
काण्डात् काण्डात्तु मन्त्रेण सहस्रेण तु संख्यया
वसोर्द्धारां ततो दद्याद्गतक्रोधो विमत्सरः॥

ब्राह्मणे दक्षिणां दद्याद्वित्तशाठ्यं न कारयेत् ।
आचार्य्यञ्च तथा पूज्य उमामहेशरूपिणं ॥
गावस्तत्रैव दातव्यानीलवर्णा विशेषतः ।
अलाभे१ सर्व्ववर्णानां सवत्साङ्गां पयस्विनीं
ताम्रपृष्ठीं रौप्यखुरां शृङ्गे कनकसम्भृतां ।
घण्टाभरणभूषाञ्च रत्नपुच्छां पयोमुचं ॥
ईदृशोन्यास्तथा गाश्च दद्याद्दूर्व्वात्रिरात्रके ।
आचार्य्यं वेदविद्वांसं वृद्धञ्चैव कुटुम्बिनं ॥
सर्व्वज्ञं शास्त्रविद्वांसं आचार्य्यं तत्र कारयेत् ।
आचार्य्याय सभार्य्याय परिधानं२ प्रदापयेत् ॥
हस्तमात्रा कर्णमात्रा स्त्रीणां भूषणमेव च ।
मिथुनानि तथा पूज्य द्वादशं परिसंख्यया ॥
भोजनान्ते प्रदातव्यं भूषणाच्छादनादिकं३ ।
शयनं तेषु दातव्यं वंशपात्रं दृढं तथा ॥
सौभाग्याष्टकसंयुक्तं स्त्रीणां प्रीतिकरं परं ।
दत्त्वा दानानि विप्रेभ्यः फलानां पायसानि च ॥
भोजयित्वा सुहृन्मित्रं सर्व्वतः स्वजनं तथा ।
या नारी समुपोष्यैव व्रतमेतत् पुरातनं ॥
दूर्व्वात्रिरात्रं पवित्रं पुण्यं सन्तानदायकं ।
ऐश्वर्य्यं सुखसौभाग्यं पुत्रसन्तानवृद्धिदं ॥

---

१ प्रभाते इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

२ परीधानं भूषणञ्च इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

३ भोजनं तेषु दातव्यं दातव्यं भूषणादिकमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

मर्त्यलोके चिरन्तिष्ठंस्ततः स्वर्गमवाप्नुयात्।
देवैरानन्दितास्तत्र पितृभिः सह गोत्रकैः॥
वसन्ति रममाणास्ता यावदाभूतसंप्लवं।
अर्घ्यं दद्यात्ततो रात्रावरुन्धत्याः प्रयत्नतः॥
शङ्खे तोयं समादाय सपुष्पफलचन्दनं।
भूमौ जानुञ्च विन्यस्य अर्घ्यं दद्यात् प्रयत्नतः॥

अर्घ्यमन्त्रः।

अरुन्धती सती देवी वसिष्ठप्रियवादिनी।
अवैधव्यञ्च सौभाग्यं देहि त्वं वरदे सदा॥

इति पद्मपुराणोक्तं दूर्वात्रिरात्रव्रतं।

---

नारद उवाच।

व्रतानां यत् परं पुण्यं जन्मदुःखक्षयङ्करं।
विष्णोराराधनायालं तद्वदस्व जगद्गुरो॥

ब्रह्मोवाच।

गर्भजन्मजरारोग्य दुःख संसारनाशनं।
परितुष्टिकरं विष्णोः शृणुष्व गदतो मम॥
दत्तं मुमुक्षुभिः शान्तैस्तपोनिष्ठैस्तथाग्रजैः।
समुद्दिश्य हरिं भक्त्या मरीचिप्रमुखैः पुरा॥
यत्ते राजशताख्यं तु व्रतं पुंभिः सुदुष्करं।

विधानं तस्य देवर्षे फलञ्च सुमहोदयं ॥
यस्त्रिरात्रशतं कुर्य्यात् समुद्दिश्य जनार्द्दनं ।
कुलानां शतमादाय स याति भवनं हरेः ॥
नवम्यादिसिते पक्षे नरोमार्गशिरस्य च ।
प्रारभेत त्रिरात्राणां सततं विधिवत् व्रती ॥
श्रद्दधानो जितक्रोधो नित्यस्नायी क्षमान्वितः ।
अभ्यर्च्चयेत्सदा विष्णुं कर्म्मणा मनसा गिरा ॥
अष्टोत्तरसहस्रन्तु शतं वानुदिनं जपेत् ।
ॐनमो वासुदेवेति समभ्यर्च्च जनार्द्दनं ॥
असत्यस्तेयपारुष्यपापैश्च सह संकथा ।
मधुमांसासवरसान् सदैव परिवर्ज्जयेत् ॥
ब्रह्मचर्य्यरतः शान्तः सर्व्वभूतहिते रतः ।
वासुदेवपरो नित्यं भवेच्च विधिवद्व्रती ॥
अष्टम्यामेकभक्ताशी१ दिनत्रयमुपावसेत् ।
एकादश्यां शुचिःस्नातो वासुदेवार्चने रतः ॥
द्वादश्यां पूजयेद्देवं गन्धमाल्यविलेपनैः ।
नैवेद्यधूपदीपाद्यैर्गीतनृत्यैश्च केशवं ॥
अनेन विधिना कृत्वा त्रिरात्राणां शतं नरः ।
निर्व्वापयेत्ततो भक्त्या विशेषविधिना व्रतं ।
संप्राप्ते कार्त्तिके मासि व्रतमेतदनुत्तमं ॥

प्रतिमासं त्रिरात्रद्वयमिति पञ्चाशता मासैः शतं तत्राधिमासद्वययोगाच्चतुर्भिर्वर्षैरिति कार्त्तिके समाप्तिः ।

---

१ अष्टम्यां नक्तभक्ताशीति पुस्तकान्तरे पाठः ।

एवं भोज्य द्विजातिभ्यो दद्याद्वस्त्रयुगानि च ॥
एवं प्रतिमासविधिना।
तथोपवीतछत्राणि शृणु तान्यासनानि च२।
एवं विप्रान् समभ्यर्च्य गुरुञ्चैव विशेषतः ॥
प्रणम्य शिरसा देवं सर्व्वमुद्यापयेद्व्रतं।
यथोक्ताद्द्विगुणं तस्य विप्र भक्तिमतः फलं ॥
प्रलीयन्ते परे तत्त्वे वासुदेवेऽव्यये व्रती।
श्रुत्वाचैतद्व्रतं पुण्यं विमानं तद्द्विजोत्तमाः।
सर्व्वपापैर्विनिर्मुक्ता प्रयान्ति परमाङ्गतिं ॥

इति विष्णुरहस्योक्तं त्रिविक्रमत्रिरात्रव्रतं।

———000———

युधिष्ठिर उवाच।
अनुसूया शरीरे तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
उत्पन्नाः केन तपसा कौतुकं मम केशव ॥
अनुसूया सतीनान्तु त्रैलोक्ये विहिता किल।
दानेन तपसा चैव तीर्थस्नानेन वा ध्रुवं ॥
श्रेष्ठजाती समुत्पन्ना सर्व्वलोकनमस्कृता।
एतन्मे कथयस्वेह अत्रुत्पत्त्या महामते ॥
श्रीकृष्ण उवाच।
तया कृते३ पार्थ महाव्रतं वै
पुरा त्रिरात्रञ्चरुजाति भद्रं।

२ कुण्डलान्यासनानिवेति पुस्तकान्तरे पाठः।

३ तयीन्वतमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

तस्य प्रभावात् सुतजातिरूपं
सतीत्वभावं विविदे त्रिलोक्यां ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

कस्मिन् काले दिने कस्मिन् स्थाने कस्मिन् सुरोत्तम ।
विधिना केन कर्त्तव्यं जातिः स्थाप्या कथं वद ॥

नारायण उवाच ।

ज्यैष्ठे मासि च कर्त्तव्यं त्रयोदश्यान्तु पाण्डव ।
नियमश्च ग्रहीतव्यमाचार्य्यानुज्ञया ततः ॥
कृत्वैकभक्तं द्वादश्यामुपवासत्रयञ्चरेत् ।
मण्डपं कारयेत्तत्र सपताकं मनोहरं ॥
तत्र जातिः प्रकर्त्तव्या स्वर्णादिभवसारतः ।
रौप्यपुष्पाणि कार्य्याणि वंशपात्रे निधापयेत् ॥
तत्र देवास्त्रयः पूज्या ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
सपत्नीकाः शुभैः पुष्पैः फलैश्च विविधैस्तथा ॥
अत्र विष्णुशिवमूर्त्तिकरणं अशोकत्रिरात्रवद्वेदितव्यं ।
यवशालितिलाद्यैश्च वंशपात्रं प्रपूरयेत् ।
देवतात्रितयं पूज्यवंशपात्रे त्रिवस्त्रकैः१ ॥
पीतरक्तसितैश्चैव नानापुष्पैः फलैस्तथा ।
वस्त्रालङ्कारपुष्पैश्च गुरोर्दम्पत्यमर्चयेत् ॥
पादुकोपानहं शय्याच्छत्रं गौश्च सुभूषिता ।

१ त्रिवस्त्रकैरिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

तिलतण्डुलमिश्रैश्च यवहोमं प्रकल्पयेत् ॥
गुडेक्षुक्षीरकैर्धान्यैर्लवणेन विरूढकैः।
सप्तधान्यैस्तथा दीपैर्व्वं प्रपात्रप्रकल्पितैः ॥
रजन्या कण्ठसूत्रैश्च सुभैः किंशुककेसरैः।
कृतेनानेन भूपालव्रतेन शृणु यत् फलं।
जातिं१ धनपतिं पुत्रानारोग्यं कुलसंन्ततिं ॥
सौभाग्यं२ रूपसम्पत्तिं पूजिता सा प्रयच्छति।

## इति भविष्योत्तरोक्तं जातित्रिरात्रव्रतं।

———ºº@ºº———

त्रिरात्रोपोषितो३ दद्यात् फाल्गुन्यां भवनं शुभं।
आदित्यलोकमाप्नोति धामव्रतमिदं स्मृतं ॥
सूर्य्योऽत्र देवता।

## इति पद्मपुराणोक्तं धामत्रिरात्रव्रतं।

———ººº———

मार्कण्डेय उवाच।
अहस्तक् दिवसं प्राप्य त्रिरात्रोपोषितो नरः।
मार्गशीर्षात्तथारभ्य पूजयेत्तु त्रिविक्रमं ॥
त्रिवर्णैः कुसुमैर्द्देवं त्रिभिः प्रयतमानसः।
त्रिवर्णैः श्वेतपीतरक्तैः ॥
तथैवानुलेपना देया त्रिमारं धूपमेव च।

१ पुत्रानारोग भुजस्ततः इति पुस्तकान्तरे पाठः।
२ आरोग्यमिति पुस्तकान्तरे पाठः।
३ त्रिरात्रोपोषितादद्यादिति पाठान्तरं।

त्रिसारं गुग्गुलु कुट्कश्रीवेष्टिकाः ।
वलिं त्रिमधुरं दद्यात् त्रींश्च दीपान्नरोत्तम ।
यवैस्तिलैस्तथा होमः कर्त्तव्यः सर्षपान्वितैः ॥

दद्यात्त्रिलोहञ्च तथा द्विजेभ्यः
ताम्रं सुवर्णं रजतञ्च राजन् ।
न केवलं स कुलदं व्रतन्तु
यथेष्टकामाप्तिकरं प्रदिष्टं ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं सुकुलत्रिरात्रव्रतं ।

———000———

श्रीकृष्ण उवाच ।

चैत्रे तु कुमुदैर्देवं त्रिभिः प्रयतमानसः ।
त्रिरात्रं तत्र नक्ताशी नद्यां स्नात्वाद्विजातये ।
अजाः पञ्च पयस्विन्यः प्रदद्यात् स सुवर्णकाः ॥
न जायते पुनरसौ जीवलोके कदाचन ।
एतद्वस्त्रव्रतं प्रोक्तं सर्व्वव्याधिविनाशनं ॥

सूर्य्योऽत्र देवता ।

इति भविष्योत्तरोक्तं वस्त्रत्रिरात्रव्रतं ।

———000———

श्रीकृष्ण उवाच ।

पार्थ भाद्रपदे मासि शुक्लपक्षे दिनोदये ।
तृतीयायां चतुर्थ्याञ्च श्रद्धया परिवत्सरं ॥

उपवासेन गृह्णीयाद्व्रतं नाम्ना तु गोष्पदं।
स्नात्वा नरोऽथ नारी वा पुष्पधूपविलेपनैः॥
दध्ना च घृतमिश्रेण मिष्टकैर्व्वनमालया।
अभ्यञ्जयेद्गवां शृङ्गे सपुच्छे चैव भारत॥
दद्याद्गवाह्निकं भक्त्या वासः पूर्वापराह्णयोः।
अनग्निपक्कं भुञ्जीयात् तैलाचारविवर्ज्जितं॥

पूर्व्वापराह्णयोः द्वितीया पञ्चम्योः गवां पदेषु माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिःप्रनुवोचं चिकितुषे जनायमागामनागामदितिवद्दिष्ट यमावायुवेति।

अर्घ्यमन्त्रः।

गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहं॥

इति गोप्रार्थनामन्त्रः।

व्रजन्तीनां गवां नित्यमायान्तीनां कुरूद्वह।
पुरद्वारेऽथ वा गोष्ठे मन्त्रेणानेन भक्तिमान्॥
अर्घ्यं दद्यात्तथाग्रासं तुष्टये पुष्टये गवां।
इत्थं संपूज्य दत्त्वार्घ्यं ततो गच्छेद्गृहं प्रति॥
पञ्चम्यां क्रोधरहितो भुञ्जीयाद्गोरसन्दधि।
शालिपिष्टं फलं शाकं तिलपिष्टं विरूढकं॥
दिनावसाने राजेन्द्र संयतस्तां निशां स्वपेत्।
प्रभाते गोपदं दत्त्वा ब्राह्मणाय कुटुम्बिने॥
विप्राय वेदविदुषे यथा शक्त्या हिरण्मयीं।

क्षमापयेत्तवां नाथ गोविन्दं गरुड़ध्वजं ॥
तथा गोवर्द्धनं शैलं कृत्वा गुड़मयं शुभं ।
यथाशक्त्या समभ्यर्च्च पुष्पधूपादिभिः पृथक् ।
यथैवं गोपदं पार्थ तथा गोवर्द्धनं गिरिं ॥
दद्याद्भक्त्या द्विजेन्द्राय गोविन्द प्रीयतामिति ।
गोभक्तो गोव्रतं चीर्त्त्वा भक्त्या दत्त्वा च गोष्पदं ॥
सौभाग्यं रूपलावण्यं प्राप्नोति विपुलां श्रियं१ ।
गोवत्सकाकुलगृहं गोभक्तिं समवाप्नुयात् ॥
भुक्त्वा भोगान् सुविपुलान्२ मृतः स्वर्गपुरं व्रजेत् ।
दिव्यान् भोगांस्ततो भुक्त्वा पुण्यशेषेण पार्थिव ॥
धनधान्यजनोपेतशालीक्षुरसऋद्धिमान् ।
कुलञ्च निर्म्मलं लब्ध्वा पुनर्गोभक्तिमान् भवेत् ॥
एवं जन्मत्रयं पार्थ व्रतस्यास्य प्रभावतः ।
ततो गोलोकमासाद्य पुनरावृत्तिवर्ज्जितं ॥
तिष्ठते देववद्भूत्वा३ यावदाचन्द्रतारकं ।
दिव्यरूपधरः स्रग्वी दिव्यालङ्कारभूषितः ॥
गन्धर्व्वगीतवाद्येन सेव्यमानोऽप्सरोगणैः ।
दिव्यं युगशतं स्थित्वा ततोविष्णुपुरं व्रजेत् ॥

योगोष्पदव्रतमिदं कुरुते त्रिरात्रं
गावश्च पूजयति गोरसभोजनश्च ।

---

१ प्राप्नोतिचाखिलप्रियामिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

२ सुखं सर्व्वान् इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

३ देववद्भया इति पाठान्तरं ।

गोविन्दमादिपुरुषं प्रणिधाय चित्ते
लोकं स पुण्यमुपयाति गवां पवित्रं ॥

इति भविष्योत्तरोक्तं गोपद्मत्रिरात्रव्रतं।

———000———

साधु भक्तोऽसि धर्म्मज्ञ कालरात्रिव्रतं मम।
शृणु वक्ष्याम्यहन्तेऽद्य कर्त्तव्यं विधिवद्यथा॥
मासि चाश्वयुजेऽष्टम्यां शुक्लपक्षे जितेन्द्रियः।
सत्यवाक् स्थिरचित्तात्मा नियमस्थो भवेत्सुधीः॥
कृत्वादौ मण्डपं श्रीमान् भूमिभागे१ समे शुभे।
चतुरस्रं समं श्लक्ष्णं पताकाध्वजशोभितं॥
सूत्रेणसूत्रितं कृत्वा कुण्डं हस्तप्रमाणतः।
धेन्वाकृतिसमं तत्र कारयेद्विधिवच्छुभं॥
ततो हरेत्सुसम्भारान् दर्भांश्चैव तिलांस्तथा।
पालाशीःपिप्पलीश्चैव समिधः सप्तविंशतिं॥
गर्गरीः कलशांश्चैव नवांश्चैवाहरेत् शुभान्।

गर्गरी मन्थनी।

सुवर्णपूर्णपात्राणि वैदलानि शुभानि च।
नैवेद्यपुष्पतोयार्घ्यं द्रव्याणि च नवानि तु॥
आहरेत् सर्व्वमेतद्धि व्यञ्जनञ्च सुशोभनं।
सुरभीणि च पुष्पाणि जातीर्नीलोत्पलानि च॥
अन्यानपि पवित्रांश्च फलादीनाहरेद्बहून्२।

१ नवभागे इति पुस्तकान्तरे पाठः।

२ कुशादीनारेद्बहूनिति पुस्तकान्तरे पाठः।

गन्धानिचैव चित्राणि धूपं गुग्गुलपूर्व्वकं॥
प्रणीतान् विष्टरांश्चैव स्रुवञ्च स्रुचमेव च।
एवं सम्भृत्य सम्भारांश्चतुरःसुकुलोद्भवान्॥
अधिवासार्थमाचार्य्यान् समुद्दिश्य प्रकल्पयेत्।
ये शुद्धा विगतक्रोधा देवब्राह्मणपूजकाः॥
आहोस्वित् सत्कुले जाताः सत्यशौचक्षमान्विताः।
चतुर्भिरौद्टशैर्व्वत्स आचार्य्यैर्न्नियमस्थितैः॥
सप्तरात्रोषितैः पूज्य अष्टाहं नक्तभोजनैः।

एवं पञ्चसाध्यव्रतं।

ततो नियममादाय तत्कुण्डे धनुषाकृतौ।
होमन्तु कारयेद्वत्स विप्रैः शाङ्करवंशजैः॥
शाङ्करवंशजाः शैवदीक्षावन्तः१।
तदभावेन चैवेह होमन्तद्भूमिमिच्छता२॥
कारयेत् कुशलान् ज्ञात्वा३ अव्यङ्गकुलजांस्तथा।
होमाभावे प्राप्तिशैवतुल्यानां विधानं॥
गणानामधिपं मातृभूपालं वृषभध्वजं।
आदावेव च संपूज्य ततोहोमं समाचरेत्॥

मातृभूपालः स्कन्दः।

जातरूपेण देवेशं सर्व्वकर्म्मसुसिद्धये।

---

१ शाङ्करेतिविशेषसम्बोधनमिति पुस्तकान्तरे पाठः।
२ होमं कुर्य्यादितिभिश्चणु इति पुस्तकान्तरे पाठः।
३ सत्कुलानज्ञात्वा इति पुस्तकान्तरे पाठः।

आग्नेयं मातृभिः सार्द्धं स्वरूपेण हरं यजेत् ॥

भूपालः क्षेत्रपालः आग्नेयः कार्त्तिकः। जातरूपःसुवर्णं विनायकरूपं कृष्णचतुर्थीव्रते। स्कन्दरूपन्तु कार्त्तिकेयषष्ठी व्रते वेदितव्यं। भातृरूपन्तु विष्णुधर्म्मोत्तरे।

जातस्य प्रादुर्भूतस्य रूपङ्कजमुखादि तेन देवेशादीन् पूजयेत्। हरस्वरूपेण लिङ्गरूपेण देवेशो गणेशः।

जुहोति सप्तपालाशानुदिते जुहुयात्तदा।
पुनश्चास्ते गते भानावाश्वत्थसमिधोहुनेत्॥
अर्द्धरात्रे तिलैः कृष्णै राज्येनाक्तैस्तु भक्तितः।
अष्टोत्तर शतं यावत् कारयेद्धोममुत्तमं॥
मन्त्रेणानेन तत्रैव सर्व्वाशुभविनाशनात्।
वरदेन सुसिद्धेन पुष्टिशीतविधायिना॥

ओँ क्रीँ नमः। कृष्णवाससा सप्तसहस्रकोटिसिंहवाहने सहस्रवदने महाबलेऽपराजिते प्रत्यङ्गिरे सर्व्वसैन्यपरकर्म्मनिर्व्वासिनि परमन्त्रच्छेदनि सर्व्वसत्त्वोन्मादनि सर्व्वभूतदमनि। सर्व्वदोषात्त्वंधयवधय विद्याउच्छेदय निकृन्तय सर्व्वदुष्टान् भक्षय भक्षय ज्वालाजिह्वकरालवक्त्रे सर्व्वजन्तून मयस्फोटय शृङ्खलान् त्रोटय त्रोटय प्रत्यङ्गिरे नमोऽस्तु ते स्वाहा।

होमं कृत्वा बलिन्दद्याचरु सर्व्वदिशासु च।
कृशराज्येन रक्तेन पयसा योजितेन च॥
कृशराज्यैः सुराचीरैः कृतञ्च सुबलिं दद्यात्।
कुर्य्यात् सप्तदिनञ्चैव सप्तमेङ्कि शृणुष्व वै॥
आहुतीः पञ्च पञ्चवा बलिदशकं हुनेत्।

सप्ताह बलिहोमे तत्र सप्तमेऽहनि पञ्चपञ्चाशता निवज्ञाव्यस्तमहा-
व्याहृतीः कृत्वा दशकं जुहुयात् दशपूर्णाहुत्यर्थः पृथक् सङ्ख्या ।

चतुर्भिः स कुलोत्पन्नैस्त्रिरेकसप्तशर्व्वरी ।
उषित्वावाथ नक्तेन स्थातव्यं ह्यर्चनाय वै ॥

सप्तरात्रं त्रिरात्रमेकरात्रं यथा शक्त्युपवासेन बलिहोमौ
कृत्वा पूजां कुर्व्वीत नक्तेन पश्चोधारणीयः ।

पञ्चमे पूजनं वत्स कर्त्तव्यं विधिवत्सदा ।
धर्म्मयज्ञोद्भवैः१ र्व्विप्रैस्तुष्टार्थन्तत्वतः शृणु ॥

धर्म्मयज्ञोद्भवैः शैवैः ।

दिनानि सप्तसप्तैकं चन्दनागुरुणा तथा ।
देव्याः परमया भक्त्या चालयेन्मुखमण्डलं ॥
लेखलेख्यस्य कर्त्तव्या चालनेयं मुखस्य तु ।

इयं चन्दनागरुवर्णा पूर्व्वकृता ॥

प्रतिमा मृण्मयी या तु स्थाप्य तां पूजयेत्सदा ।
प्रक्षाल्य मन्त्रपूतेन प्रमृज्यामलवाससा२ ॥
मधुना मधुपर्कन्तु कारयेत् पूजयेत्ततः ॥
ततोमृतं पुनर्योज्य मुखं गात्रञ्च३ कारयेत् ।
प्रदक्षिणं ततोभूयोदण्डवत्प्रणिपत्य च ॥
धर्म्मपालोद्भवेतानुमन्त्तव्या सुस्तवेन वै ।

---

१ सर्वयज्ञोद्भवैति पुस्तकान्तरे पाठः ।

२ अमृण्मयीमथालेख्यालेख्याभ्यां मन्त्रपूतकं वारि मधुनेति क्वचित् पाठः ।

३ मुखमात्रमिति पाठान्तरं ।

धर्म्मपालीभक्तस्यनामस्तोत्रं।

स्तुत्वा च तत्रैव भक्त्या ब्राह्मणान् विधिवत्ततः।
काञ्चनैरर्चयेद्वत्स समांसैर्द्धर्म्मयोजितैः॥
पुनर्गीतं तथा नृत्यं वाद्यञ्चैव विशेषतः।
देव्याश्च पुरतोत्यन्तयत्नादेवन्तु कारयेत्॥
स्वाल्पमेव क्रतं वत्स गृह्णाति भक्तितः सदा।
सर्व्वस्वञ्चैव मे युक्तं मद्भक्ताय ददाम्यहं॥
प्रीत्यर्थं ममवन्त्वे ण शुचिः स्नात्वा जितेन्द्रियः।
दान्त्याचन्त्या समायुक्तां तथाभक्तिं समाचरेत्॥
न धारयेन्मलङ्कारे यतस्तस्यायमीरितं।
न चैतं वैनयेत्स्वर्गं नतपोमोत्तमेव च॥
एवं निष्पादयित्वा तु गृहं गच्छेच्छनैस्ततः।
गत्वा प्राश्य शुचिर्भूत्वा पञ्चगव्यं मुदान्वितः॥
अष्टौ चैव कुमारीश्च अष्टौ च द्विजसत्तमान्।
होमयेद्विधिवद्गौरीमामुद्दिश्य च मातरं॥

मातरं मातृ गणानादिवाष्टौ।

अष्टौचैव द्विजान् भोज्य व्रतस्थान् शिवधार्म्मिकान्।
उद्दिश्य शङ्करं देवं तत्पत्नीं च विनायकं॥
प्रत्येकमष्टौ समाथ होतारञ्च विशेषतः।
ततः क्षमापयेत्पश्चात् प्रणिपत्य मुहुर्मुहुः॥
एतत्सर्व्वं समुद्दिष्टं भक्त्या विस्तरतो भवेत्।
दीनान्धकृपणांश्चैव कारुण्यात्तत्र भोजयेत्॥
यद्दत्तं वेद विप्रेभ्यो यद्दत्तं ब्रह्मचारिणे॥

ततोऽतिथिषु१ यद्दत्तं कारुन्यान्नैव तत्तथा ।
तत्सर्व्वमक्षयं दानं वैमूल्येन विधानतः ॥
नूनञ्च वैश्वरे दत्तं सत्यमेतन्नसंशयः ।
अर्हानर्हाश्च सम्भोज्याः सर्व्वे चैवोत्सवे मम ॥
आशया परया प्राप्ताः२ स्त्रीबालविकलाखिलं ।
बन्धुभिश्च ततः सार्द्धमुदया परया युतः ।
हुतमुग्यन्नशेषन्तु भुञ्जीत प्रयतात्मवान् ॥
अकाले कौमुदीं कुर्य्यात् कृष्णपक्षे च यः सदा ॥

अकालकौमुदी दीपालिकोत्सवं ।

मासि चाश्वयुजेष्टम्यामारभेत्पर्व्वणाचरेत् ।
उषित्वा वाथ नक्तेन एकभक्तेन वा पुनः ॥
विहाय पापसङ्घातं स गच्छेत्परमां गतिं ।

पर्वणा पञ्चदश्या, अयमुत्सवो व्रतस्योत्तराङ्गं, अतएव देवकीकार्य्यः ।

ब्राह्मणाः क्षत्रियाः पार्थ वैश्या वा शूद्रजातयः ।
चरिष्यन्ति व्रतञ्चेदन्तेऽपि यास्यन्त्यनामयं ॥
एवन्तु विधिवत् कुर्य्यात् पुत्रवान् सधनो भवेत्३ ॥
नालिङ्गन्त्यापदोघोराः शत्रुभिर्न च बाध्यते ।४
कालीव्रतमिदं ख्यातं कर्त्तव्यं सत्कुलोद्भवैः ॥

---

१ निधिषु दत्त मिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

२ आशया प्रवराविभा इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

३ धर्मतोभवेदिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

४ शत्रुभिश्चनबाध्यं इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

शान्ति पुष्टिरमाकामै[१] र्विद्याकामैश्च यत्नतः।

रमाकामैर्लक्ष्मीकामैः।

सिंहायुतसहस्रेण उह्यमानेन सञ्चरेत्।

विमानेनार्कवर्णेन दिवं गच्छेद्यश्चाचरेत्॥

एतद्व्रतं तदा त्वं हि मयोक्तं पापनाशनं।

भक्त्या च परया वत्स कर्त्तुमर्हस्यतन्द्रितः॥

अतिजातिषु सम्बन्धं यः करिष्यति शङ्करं।

हीनवर्णेन कुर्व्वंश्च स्यादनेनापकारकः॥

इति कालिकापुराणोक्तं कालरात्रिव्रतं।

———ooo@ooo———

ब्रह्मोवाच।

आश्विने वाथ माघे वा चैत्रे वा श्रावणेऽपि च।

कृष्णादारभ्य कर्त्तव्यं व्रतं शुक्लावधिं हरेत्॥

शुक्लावधिर्भवति शुक्लपक्षावधिः।

एतच्चोक्तमासेष्वेव वक्ष्यमाण प्रकारेण कृष्णाष्टम्यामारभ्य शुक्लाष्टमीं यावत् कर्त्तव्यं।

अष्टमीमाश्विनीं कृष्णा मेकभक्तेन कारयेत्।

मङ्गलारूपिणीं देवीमथवा रुरुघातिनीम्॥

पूजयेन्नवभेदेन गन्धमाल्यनिवेदनैः॥

नवभेदेन नवकृत्वो गन्धधर्षणेन।

कन्यका भोजयेद्वत्स देवीभक्तांश्च मानवान्॥

१ शान्ति पुष्टिक कामैश्च इति पुस्तकान्तरे पाठः।

नक्तेन नवमी कार्य्या यावन्न दशमीं क्षिपेत् ।
एकादश्यामुपवसेत् पुनरेष विधिर्भवेत् ॥

पुनरेषविधिरिति यथा कृष्णाष्टम्यां दिनचतुष्कमेक भक्तानक्ता याचितोपवासात्परमपि दिनचतुष्कत्रयं नेयमित्यर्थः ।

याचच्छुक्लाष्टमीं शक्र उपोष्य तु विधानतः ।
दानं होमो जपः पूजा कन्याभोज्यन्तु प्रत्यहं ॥
कर्त्तव्यं जितरोषेण देव्या भक्तिरतेन च ।
नवधा पशुघातेन महिषाजाविकादिषु ॥
कर्त्तव्यं भूतवैताले नचैवात्मचिकीर्षया ॥
कन्या ह्यलङ्कृतास्तत्र[१] द्विजा देवीपरायणाः ।
नवधापशुघातेन नखण्डकरणे न च[२] ॥

भूतवेताले भूतवेतालार्थं आत्मचिकीर्षया आत्मभोगेच्छया । अलङ्कृताः कार्य्याइति विशेषः ।

नट नर्त्तन प्रेक्षासु[३] रथयात्रा सजागरं ।
दानं देयं यथाशक्त्या सर्व्वेषामपि शक्तितः ॥
महाभैरवरूपेण अस्थिमालाधराश्च ये ।
पूजनीया विशेषेण वस्त्रशोभाः पुरादिषु ।
कर्त्तव्याः सर्व्वकामार्थप्रापणाय सुरोत्तम ॥
अनेन विधिना शक्र यथेष्टं लभते फलं ॥

---

१ त्सददिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

२ नखण्डकरणेनैव इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

३ नट नर्त्तन मुख्यासु इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

मङ्गला भैरवी दुर्गा वाराही त्रिदशेश्वरी।
उमा हैमवती कन्या कपाली कैटभेश्वरी॥
काली ब्राह्मी महेशी च कौमारी मधुसूदनी।
वाराही वासवी चर्चा नामान्येतानि वै जपेत्।
पूजयेद्भोजयेत् कन्याः शास्त्रदृष्टेन कर्म्मणा॥
वस्त्रालङ्कारकांस्यादिकरकाः कटिसूत्रकाः।
दातव्या चात्मनः शक्त्या देव्या भक्तैः सुखार्थिभिः॥
अथवा नवरात्रञ्च सप्तपञ्चत्रिकं हि वा।
एकभक्तेन नक्तेनायाचितोपोषितैः क्रमात्॥

नवरात्रिरेकभक्तेन सप्त नक्तेन पञ्चायाचितेन तिस्र उपवासेनेति क्रमः। अष्टमीमन्ते कृत्वा नवादिगणना। पूर्व्वं चासमर्थस्यैते पक्षाः।

क्षपयेताश्विने शक्र यावच्छुक्ला तु अष्टमी।
पूजयेन्मङ्गलां तत्र मण्डले विधिवत्कृते॥
सर्व्वसम्भारसम्पन्ने सर्व्वसिद्धिविधायके।
सर्व्वकामप्रदे शक्र सर्व्वकामानवाप्नुयात्॥
अर्थकामस्य अर्थन्तु राज्यकामस्य राज्यदं।
आरोग्यं पुत्रदं वत्स महापातकनाशनं॥
सर्व्ववर्णैश्च कर्त्तव्यं पुंस्त्रीबालनपुंसकैः।
सर्व्वदा सर्व्वगा देवी यस्माच्छक्र महाफला॥
अनेन विधिना वत्स स ददाति विचारणा।
सर्व्वेषां व्रतयोनीनां सर्व्वव्रतमहाफलं॥
नवम्याख्यं महापुण्यं तव सम्यक् प्रकाशितं।

नाख्येयं भक्तिहीनस्य मूर्खस्य हेतुवादिनः ॥
देयं भक्ताय शान्ताय शिवविष्णुरताय च ।
देवीभक्तः सदाचारः कन्यापूजारतो नरः ॥
इहैव सर्व्वकामानि साधयेदविचारणात् ।
विप्रा यथा च पूज्यानां दानानां काञ्चनं यथा ॥
भूर्लोकः सर्व्वलोकानां तीर्थानां जाह्नवी तथा ।
यथाश्वमेधोयज्ञानां मथुरा मुक्तिकाङ्क्षिणां ॥
वीणां यथाहिभुक् श्रेष्ठो देवानामच्युतो यथा ।
तथा सर्व्वव्रतानान्तु वरोक्तं भीष्मपञ्चकं ॥
वसिष्ठभृगुगर्गाद्यैश्चीर्णं कृतयुगादिषु ।
नभोगैरम्बुरीषाद्यैश्चीर्णं त्रेतायुगादिषु ॥
वीरभद्रादिभिर्व्विप्रैः शूद्रैरन्यैः कलौ युगे ॥
दिनानि पञ्च पूज्यानि चीर्णमेतन्महाव्रतं ।
ब्राह्मणैर्ब्रह्मचर्य्येण जपहोमक्रियादिभिः ॥
क्षत्रियैश्च तथा सत्यशौचव्रतपरायणैः ।
नाधयो व्याधयस्तस्य न च शत्रुभयं भवेत् ॥
संसारपूजितो नित्यं[१] महानेकोपिजायते ।
श्रवणात् सर्व्वकार्य्याणि सिध्यन्ति नात्र संशयः ॥

## इति देवीपुराणोक्तं मङ्गलाव्रतं।

---

१ मङ्गलापूजितानित्यमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

## अथ भीष्मपञ्चकव्रतं।

नारदीयपुराणात्।

नारद उवाच।

यदेतदचलं पुण्यं व्रतानां परमं व्रतं।
कर्त्तव्यं कार्त्तिके मासि प्रयत्नाद्भीष्मपञ्चकं॥
विधानं तस्य विस्पष्टं[१] फलञ्च सुरसत्तम।
कथयस्व प्रसादान्मे मुनीनां हितकाम्यया॥

ब्रह्मोवाच।

प्रवक्ष्यामि महापुण्यं व्रतं व्रतवताम्बर॥
भीष्मेणैतद्यतः प्राप्तं व्रतं पञ्चदिनात्मकं।
सकाशाद्वासुदेवस्य तेनोक्तं भीष्मपञ्चकं॥
व्रतस्यास्य गुणान्वक्तुं कः शक्तः केशवादृते।
व्रतञ्चैतन्महापुण्यं महापातकनाशनं॥
अतो नरैः प्रयत्नेन कर्त्तव्यं भीष्मपञ्चकं।
कार्त्तिकस्यामले पक्षे स्नात्वा सम्यग्यतव्रतः॥
एकादश्यान्तु गृह्णीयाद्व्रतं पञ्चदिनात्मकं॥
प्रातस्स्नात्वा विधानेन मध्याह्ने च तथाव्रती।
नद्यां निर्झरगर्त्ते वा समालभ्यञ्च गोमयं॥
यवव्रीहितिलैः सम्यक् पितॄन् सन्तर्पयेत् क्रमात्।
स्नात्वा मौनं ततः कृत्वा धौतवासा दृढव्रतः॥

---

१ विधानं तस्यदृष्टफलमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

ततः संपूजयेद्देवं सर्व्वपापहरं हरिं।
स्नापयेदच्युतं भक्त्या मधुक्षीरघृतादिभिः॥
तथैवं पञ्चगव्येन गन्धचन्दनवारिणा।
चन्दनेन सुगन्धेन कुङ्कुमेनाथ केशवं॥
कर्पूरोशीरमिश्रेण लेपयेद्गरुडध्वजं।
अर्च्चयेदुचितैः पुष्पैर्गन्धधूपसमन्वितैः॥
गुग्गुलुं घृतसंयुक्तं दहेदक्षयभक्तिमान्१।
दीपकन्तु दिवारात्रौ दद्यात् पञ्चदिनानि तु॥
नैवेद्यं देवदेवस्य परमान्नं निवेदयेत्।
एवमभ्यर्च्य देवेशं स्तुत्वाचैव प्रणम्य च॥
ओं नमोभगवते वासुदेवेति जपेदष्टोत्तरं शतं।
जुहुयाच्च घृताभ्यक्तं तिलव्रीहियवं व्रती॥
षडक्षरेण मन्त्रेण स्वाहाकारान्वितेन च॥

ओं नमोविष्णवेति षडक्षरोमन्त्रः।

उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां प्रणम्य गरुडध्वजं।
जपित्वा पूर्व्ववन्मन्त्रं क्षितिशायी भवेन्नरः॥
सर्व्वमेतद्विधानन्तु कार्य्यं पञ्चदिनेष्वपि।
विशेषोक्तं व्रते चास्मिन् यदन्यूनं२ शृणुष्व तत्॥
प्रथमेऽह्नि हरेः पादौ पूजयेत् कमलैर्नरः।
द्वितीये विल्वपत्रेण जानुदेशं समर्चयेत्॥
पूजयेच्च तृतीयेऽह्नि नाभिं भृङ्गारकेण तु।

१ दहेदच्युतभक्तिमानिति पुस्तकान्तरे पाठः।
२ यदपूर्व्वमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

वाण-विल्व-जयाभिश्च तत स्कन्धौ समर्चयेत्।
ततोऽनुपूजयेच्छीर्षं मालत्या चक्रपाणिनं॥
कार्त्तिक्यां देवदेवस्य भक्त्या तद्गतमानसः।
पूजयेज्जपमन्त्रेण गन्धधूपं निवेदयेत्॥
अर्चयित्वा हृषीकेशमेकादश्यां समाहितः।
त्रिःप्राश्य गोमयं सम्यक् एकादश्यामुपावसेत्॥
गोमूत्रं मन्त्रवद्भूयो द्वादश्यां पूजयेद्व्रती।
क्षीरञ्चैव त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां तथा दधि।
संप्राश्य कायशुद्धार्थं लङ्घनीयञ्चतुर्द्दिनं१॥

प्राशनं, होममन्त्रेण।

पञ्चमे तु दिने स्नात्वा विधिवत्पूज्य केशवं।
भोजयेद्ब्राह्मणान् भक्त्या तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणां॥
तथोपदेष्टारमपि पूजयेद्वस्त्रभूषणैः।
ततोनक्तं समश्नीयात्पञ्चगव्यपुरःसरं॥
एवं सम्यक् समाप्यं स्यात् यथोक्तं व्रतमुत्तमं।
सर्व्वपापहरं पुण्यं प्रख्यातं भीष्मपञ्चकं॥
जन्मप्रभृति जन्मांसन्त्यक्त्वा पुण्यमवाप्नुयात्।
तत्फलं समवाप्नोति सन्त्यक्त्वा भीष्मपञ्चके॥
मद्यपोयः पिबेन्मद्यं जन्मनोमरणान्तिकं।
तद्भीष्मपञ्चके त्यक्त्वमम्याप्नोत्यधिकं फलं॥

भविष्योत्तरात्।

१ लङ्घयेत्तु, चतुर्द्दिनमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

कृष्ण उवाच ।

कार्त्तिके शुक्लपक्षस्य शृणु धर्मं पुरातनं ।
एकादश्यां समारभ्य विज्ञेयं भीष्मपञ्चकं ॥
दुष्करं सत्वहीनानामशक्यं बालचेतसां ।
पापधीः परिहर्त्तव्या ब्रह्मचर्येण निश्चया ॥
मद्यं मांसमसत्यञ्च वर्ज्जयेत् पापभाषणं ।
शाकाहारेण मुन्यन्नैः कृष्णार्चनपरैर्नरैः ॥
स्त्रीभिर्व्वाक्येन कर्त्तव्यं१ स्वसत्यः पुण्यवर्द्धनं ।
विधवाभिस्तु कर्त्तव्यं पुत्राणां शुभवृद्धये२ ॥
सर्व्वकामसमृद्ध्यर्थं मोक्षार्थञ्चैव पाण्डव ।
नित्यं स्नानेन दानेन कार्त्तिकीं यावदेव तु ॥
वैश्वदेवस्तु कर्त्तव्यो विष्णुध्यानपरायणैः ।

वैश्वदेवः सर्व्वदेवताहोमः ताश्च विष्णुविभूतित्वेन भावनीयाः ।

या यस्य प्रतिमा कार्या रौद्रवक्त्रातिभीषणा३ ।
खड्गहस्तातिविकृता सा हि दंष्ट्राकरालिनी ॥
तिलप्रस्थोपरि स्थाप्या कृष्णवस्त्रेण वेष्टिता ।
रक्तपुष्पाकृतापीड़ां ज्वलत्काञ्चनकुण्डलां ॥
संपूज्य परया भक्त्या धर्म्मराजस्य नामभिः ।

---

१ स्त्रीभिर्वाक्यैर्नकर्त्तव्यमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

२ विधवाभिस्तु कर्त्तव्या पुराण शुभवृद्धये इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

३ रौद्रचक्रातिभीषणाइति पुस्तकान्तरे पाठः ।

इममुच्चारयेन्मन्त्रं गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥
यदन्यजन्मनि कृतमिह जन्मनि वा पुनः ।
पापं प्रशममायातु तवपादप्रसादतः ।
एवं संपूज्य विधिवत् प्रतिमाञ्च सकाञ्चनां ॥

सकाञ्चना सुवर्णदक्षिणायुक्ता ।

वाचकाय प्रदातव्या धर्म्मो मे प्रीयतामिति ॥
तद्वच्च देवदेवस्य कृष्णस्याक्लिष्टकारिणः ॥

तद्वदिति हरिप्रतिमा देया ।

कृत्वा पूजां यथा शक्त्या विप्राणां वेदवेदिनां ।
दद्याद्धिरण्यं गाञ्चैव कृष्णो मे प्रीयतामिति ॥
अन्येषामपि दातव्यं सत्कृत्य वसुवाञ्छितं ।
कृतकृत्यः स्थितोभूत्वा विरक्तः संयतोभवेत् ॥
शान्तचेता निराबाधः परम्पदमवाप्नुयात् ।
नीलोत्पलदलश्यामश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्भुजः ॥
अष्टपादैकनयनः शङ्कुकर्णो महास्वनः ।
जटी द्विजिह्वस्ताम्रास्यो मृगराजतनुच्छदः ॥
चिन्तनीयो महादेवो यस्य रूपं न विद्यते ।

व्रतदेवताया महाविष्णोरिदं रूपं चिन्त्यं पूजा देया च मृगराजतनुच्छदः सिंहत्वक् ।

इदं भीष्मेण कथितं शरतल्पगतेन मे ।
तदेतत्ते मया ख्यातं दुष्करं भीष्मपञ्चकं ॥
व्रतं तद्राजशार्दूल प्रवरं भीष्मपञ्चकं ।

यस्तस्मिंस्तोषयेद्भक्त्या तस्मै मुक्तिप्रदोऽच्युतः॥
ब्रह्मचारी गृहस्थोवा वानप्रस्थोऽथवा यतिः।
प्राप्नोति वैष्णवं स्थानं तत् कृत्वा भीष्मपञ्चकं।
ब्रह्महा मद्यपस्तेयी गुरुगामी सदानृती।
मुच्यते पातकात् सम्यक् कृत्वैकं भीष्मपञ्चकं॥
अथास्मिंस्तोषितोविष्णुर्नृणां मुक्तिप्रदोभवेत्।
श्रुत्वैतत् पठ्यमानन्तु पवित्रं भीष्मपञ्चकम्॥
मुच्यते पातकान्मर्त्यः पाठकोविष्णुलोकभाक्।
धन्यं पुण्यं पापहरं युधिष्ठिर महाव्रतं॥
यच्चीर्त्वा ब्रह्महा गोघ्नः सर्व्वपापैः प्रमुच्यते।
यद्भीष्मपञ्चकमिति प्रथितं पृथिव्या
मेकादशीप्रभृति पञ्चदशीनिरुद्धं।
मुन्यन्नभोजनपरस्य नरस्य तस्मि
न्निष्टं फलं दिशति पाण्डवशार्ङ्गधन्वा॥

## इति भीष्मपञ्चकव्रतं।

——000——

व्यास उवाच।

यदजर्भोद्दानवा पूर्व्वं चार्च्चयित्वा जनार्दनं।
तां योगनिद्रामसृजद्देवीं रक्षार्थमात्मनः॥
एकांशतोभगवती सिद्धिमेकां तदेव तु।
शुक्लपक्षे तु संपज्या कार्त्तिके केशवाज्ञया॥

चतुर्थ्यामथवाष्टम्यां नवम्यां वा सुसिद्धिदा।
चतुर्दश्यामथो स्त्रीभिः सुस्नाताभिर्यथाक्रमं॥
गृहाद्वाह्ये तु यत्र स्यादेकान्ते तु फलद्रुमः।
तत्तथा पुष्पधूपान्नसम्पदा पूजयेच्च तां॥
एका पुत्रवती नारी मनोवाक्कायसंयुता।
सर्वोपकरणैर्युक्तं गृहीत्वा ग्रासमुत्तमं॥
ततो ददाति श्वेनाय सुप्रीता प्रीतिकामिनी॥
इममासनवस्त्राद्यं भगवत्यै निवेदय।
इत्युक्त्वा स्वगृहं याति ततः पूर्णमनोरथाः॥
कृते युगे प्रसिद्धोऽयं दासवद्भृतको यथा।
दासइव भृतक इव प्रेष्यत्वेन कृते युगे प्रसिद्धइत्यर्थः।
अथोपरिचरो राजा ऋतुपर्णः पुरे स्वके।
निधाय प्रददौ नेतुं श्वेनाय स्वां प्रियां प्रति॥
युगेष्वन्येषु मन्त्रन्तु जपेत्वनलइत्यपि।
जहाति भूमौ संप्राप्ता१ प्राङ्मुखो याति वेश्म च॥
आमन्त्रणन्तु यस्यास्ति पक्षिणा निर्मितं पुरा।
स एव पक्षी गृह्णाति सग्रासमिति निश्चयः॥
आदौ गृहे ततो भुङ्क्ते सा नारी सुसमाहिता।
पश्चात् गृहपति र्भुङ्क्ते समृत्यज्ञातिबान्धवः॥
गृहदेवी तु तेनैव विधिना पूजयेत् पतिं॥
श्वेनग्रासो न देयश्च न च तुच्छं समाश्रये।

---

१ तं ग्रासमिति पुस्तकान्तरेपाठः।

किन्तु गुप्तं गृहेत्वार्य्या पूजयीत पतिव्रता ॥
युगेष्वन्येषु सद्भावो दम्पत्योर्नो भवेद्यदा ।
तदा स्वकुलधर्म्मन्तु तावन्मात्रं करोति सः ॥

याश्वेनयापत्युरनुज्ञां विना तु श्येनया गृह एव देवी पूजयितव्येत्यर्थः ।

## इत्यादित्य पुराणोक्तं श्येनग्रासनविधिः ।

———000———

ईश्वर उवाच ।

अतःपरं प्रवक्ष्यामि व्रतानान्तु यथाक्रमं ।
अष्टम्यान्तु चतुर्द्दश्यां पक्षयोरुभयोस्तथा ॥
उपोष्य संयतो भूत्वा त्रिविधेनान्तरात्मना ।
ततोपराह्णे शुचिना विशेषात् पूजयेच्छिवं ॥
पूर्व्वोक्तेन विधानेन जपहोमादिमाचरेत् ।
पूजयेत्परया भक्त्या गुरुं वा साधनादिकैः ॥
ततस्तु पञ्चगव्येश्च प्राशयेच्छुलुकत्रयं ।
समानश्चोपसंस्पृश्य हविष्यान्नेन वर्त्तनं ॥
अनेन विधिना यत्नाद्यावज्जीवं व्रतं चरेत् ।
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥
वसन्ति शिवलोकेषु शिवव्रतप्रभावतः ।
एतच्छिववव्रतं नाम व्रतानामुत्तमोत्तमं ॥

## इति कालोत्तरोक्तं शिवव्रतं ।

———000———

मैत्रेय उवाच ।

कार्त्तिकः खलु मासो वै सर्व्वदेवमयोमहान् ।
कृष्णपक्षे विशेषेण तत्र पञ्चदिनानि तु ॥
पुण्यानि तेषु यद्दत्तमक्षयं सर्व्वकामिकं ।
एकादश्यां परैर्दत्तं दीपं प्रज्वाल्य मूषिका ॥
मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य पराङ्गतिमवाप सा ।
लुब्धकोऽपि चतुर्दश्यां पूजयित्वा जनार्दनं ॥
निर्भक्तिः परसंगत्या विष्णुलोकं जगाम सः ।
श्वपाकाद्त्रियोदश्यां दीपान् दत्त्वा परैः कृतान् ।
वेश्या लीलावती भूत्वा जगाम स्वर्गमक्षयं ।
कोपः कश्चिदमावास्यां पूजां दृष्ट्वा च शार्ङ्गिणः ॥
मुहुर्डयस्त्वजापालो राजराजेश्वरोभवेत् ।
तस्माद्दीपाः प्रदातव्या रात्रावस्तमितेरवौ ॥
गृहेषु सर्व्वगोष्ठेषु चैत्येष्वायतनेषु च ।
देवानाञ्चैव रथ्यासु श्मशानेषु सरःसु च ।
नक्ताशिना शुभार्थाय यदा पञ्चदिनानि तु ॥
पापिनः पितरो ये च लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ।
चतुर्दश्याममावश्यां पिण्डदस्याप्नुवन्ति ते ॥
स्वर्गतिमितिशेषः ।
तत्र श्रीः पूजनीया तु मनुष्याणां प्रयत्नतः ॥
श्रीकामैस्तत्रशर्व्वर्य्यां क्रीड़ितव्यं प्रयत्नतः ।
बन्धुभिः सहितैः पत्न्या नृत्यगीतप्रजागरैः ॥

यदि हर्षं प्रयातीह तस्य संवत्सरं जयं ।
द्युते तु क्रीड़िते हानौ हानिःस्याद्विजये ध्रुवं ॥
सुखप्रीतिसुलाभःस्याद्वत्सरं मनुजस्य तु ।
गौर्य्या जिता पुरा शम्भुर्नग्नोद्यूतैर्विसर्जितः ॥
तेनासौ शङ्करो दुःखी सर्व्वदोमा सुखान्विता ।
श्रिया सार्द्धं जगद्योनिः शेते विष्णुः सुखान्वितः ।
तस्यां रात्रौ जनानान्तु अतोऽर्थं सुखसुप्तिका(१) ॥
नन्दा सुनन्दा सुरभी सुशीला सुमना तथा ।
निर्गता मथ्यमानाब्धौ उषः स्नानं शुभप्रदं ॥
कामधेनोराविर्भावभावितस्वदेहात् उषः प्रशस्त इत्यर्थः ।
तत्र स्नात्वा समभ्यर्च्च धेनुं पूज्य प्रयत्नतः(२) ।
गोदानफलमाप्नोति नरो विगतकल्मषः ॥
एकादश्यामुपोष्याथ नरो दिनचतुष्टयं ।
घृतेन स्नापयेद्विष्णुं गव्येन पयसापि वा ॥
नक्ताशी गोरसैर्हव्यैः पूजयेन्मधुसूदनं ।
गन्धपुष्पैः सुनैवेद्यैर्वस्त्रालङ्कारकुण्डलैः ॥
शङ्खासिचक्रोद्धृतबाहुविष्णोः
गदाब्जहस्तस्य तु शार्ङ्गपाणेः ।
अर्घ्यं प्रयच्छामि जनार्द्दनस्य
श्रिया युतस्यापि धराधरस्य ॥

(१) सुख पूजिका इति क्वचित् पाठः ।

(२) धेनूः पञ्च प्रयत्नत इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

श्रियःपतिं श्रीधरमेव कान्तं
श्रियः सखायं हि श्रियोनुमूलं।
नामान्यहं श्रीधरश्रीनिवासं
समर्चितो मे प्रददातु कामान्॥

एवं पूज्य विधानेन श्रियायुक्तन्तु नामभिः।
पृथक् जागरणं कुर्य्यात् श्रिया सार्द्धं जगत्पतेः॥
या देवी भार्गवं तेजः कुलं सर्वत्र पूजिता।
आयातु सा गृहे नन्दा सुप्रीता वरदा मम॥
याङ्गिरसं सदा देवी सुनन्दा प्रत्युपस्थिता।
आयातु मे गृहे सा तु सुप्रीता वरदा सती॥
सुरभी या भरद्वाजं कामधेनुः सुकामदा।
सदा भजेत् गृहं सात्र ममायातु सुरार्चिता॥
सुशीला कश्यपं या तु भजे सर्व्वत्र कामदा।
सा मे भवतु सुप्रीता कामधेनुर्गृहे सदा॥
सुमना या वसिष्ठन्तु संप्राप्य मुमुदे शुभा।
सा मे गृहं सदायातु कामदा सुरपूजिता॥
एवं पूज्य विधानेन प्रभाते विमले शुभे(१)।
शुक्लाम्बरधरःस्नातः शुक्लमाल्यानुलेपनः॥
कृतनित्यक्रियो हृष्टः कुण्डलाङ्गदभूषितः।
प्रातःप्रतिपदि प्रीतः कामधेनुप्रदो भवेत्॥

कामधेनुस्तु वह्निपुराणोक्ता विज्ञेया सा च दानखण्ड एव द्रष्टव्या॥

(१) शुभमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

वर्ष्यं हरे: सर्व्वमिदं पवित्रं
तत्रापि वर्ष्या शरदेव तासां(१) ।
तस्मिञ्छुभ: कार्त्तिकनाममास
स्तत्रापि पुण्यो हि बभूव दर्श: ॥
यस्यां हरोदैत्यभयाद्विमुक्तो
उरस्थलं प्राप्य सुखेन शेते ।
लक्ष्म्यां पुराद्यापि विनिर्म्मिता वै
कामप्रदा धेनव एव यत्र ॥
वह्निर्म्मखे यत्र दिने समस्ता:
सुधेनवो भूमितले भ्रमन्ति ।
गृहेन यस्मिन् कथयन्ति लीला
हानिश्चयस्तत्र च सत्यमेतत् ॥
तस्मात्त्वमत्रैव च कामधेनुं
दद्या: समुद्दिश्य तु केशवन्तु ।
विप्राय वै सर्व्वगुणाय यत्र
कृत्वा व्रतं कृत्स्नमतो हरेस्तु ॥
सप्तापरान् सप्तावरानात्मानञ्चैव मानव: ।
सप्तजन्मकृतात्पापात् मोचयत्यवनीपते ॥
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानव: ।
दानानामेव सर्व्वेषामुत्तमं परिकीर्त्तितं ॥
सर्व्वकामप्रदं धन्यं पापघ्नं सर्व्वदं शुभं ।

(१) वर्षं हरे सर्व्वमिदं पवित्रं तत्रापि वर्ष्या: शरदेव तासामिति पाठान्तरं ।

सर्व्वेषामेव पापानां पापानां(१) महतामपि ॥
प्रायश्चित्तमिदं शस्तं कथितं ब्रह्मणा नृप ।
ब्रह्मविट्क्षत्रशूद्राणां कर्त्तव्यञ्च व्रतं नृप ॥
सर्व्वकाम फलार्थाय कामधेनुव्रतं सतां ।
व्रतान्ते(२) तिलहोमश्च कामधेनोः प्रयत्नतः ॥

## इति वह्निपुराणोक्तं कामधेनुव्रतं१ ।

———000@000———

सनत्कुमार उवाच ।

अमावास्यान्तु देवाश्च कार्त्तिके मासि केशवं ।
अभयं प्राप्य सुप्तास्तु सुखात्क्षीरोद(३) सानुषु ॥
लक्ष्मीर्दैत्यभयान्मुक्ता सुखं सुप्ता भुजोदरे ।
चतुर्भुजस्य हस्तान्ते ब्रह्मा सुप्तस्तु पङ्कजे ॥
अतोऽर्थं विधिवत् कार्य्या मनुष्यैः सुखसुप्तिका ।
दिवा तत्र न भोक्तव्यमृते बालातुरान् जनान् ॥
प्रदोषसमये लक्ष्मीं पूजयित्वा ततः क्रमात् ।
दीपवृक्षाश्च दातव्याः शक्त्या देवगृहेषु च ॥
चतुष्पथे श्मशानेषु नदीपर्व्वतवेश्मसु ।
वृक्षमूलेषु गोष्ठेषु चत्वरेषु गुहासु च ॥

---

(१) यातानामिति पाठान्तरं ।

(२) सृष्टाज्येन क्वचित् पाठः ।

(३) क्षीर्णाब्धिति पाठान्तरं ।

वस्त्रैः पुष्पैः शोभितव्याः क्रयविक्रयभूमयः ।
दीपमालापरिक्षिप्ते प्रदेशे तदनन्तरं ॥
ब्राह्मणान् भोजयित्वादौ विभज्य च वुभुक्षितान् ।
अलङ्कृतेन भोक्तव्यं नववस्त्रोपशोभिना ॥
स्निग्धैर्मुग्धैर्विदग्धैश्च वान्धवैर्निभृतैः(१) सह ।
शङ्करस्तु पुरा द्यूतं ससर्ज्ज सुमनोहरं ॥
कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु प्रथमेऽहनि सत्यवत् ।
जितश्च शङ्करस्तत्र जयं लेभे च पार्व्वती ॥
अतोऽर्थं शङ्करो दुःखी उमा नित्यं सुखोषिता ।
तस्माद्द्यूतं प्रवर्त्तव्यं प्रभाते तत्र मानवैः ॥
तस्मिन् भवेज्जयोयस्य(२) तस्य संवत्सरं शुभं ।
पराजये विरुद्धन्तु लब्धनाशस्ततोभवेत् ॥
श्रोतव्यं गीतवाद्यादि स्वनुलिप्तैः स्वलङ्कृतैः ।
विशेषवच्च भोक्तव्यं प्रशस्तैर्वान्धवैः सह ॥
तस्यां निशायां कर्त्तव्यं शय्यास्थानं(३) सुशोभनं ॥
गन्धपुष्पैस्तथा वस्त्रै रत्नैर्माल्यैरलङ्कृतं ।
दीपमालापरिक्षिप्तं तथा धूपेन धूपितं ॥
दयिताभिश्च सहितैर्नेया सा च भवेन्निशा ।
नवैर्वस्त्रैश्च संपूज्य द्विजसम्बन्धिवान्धवान् ॥

इत्यादित्यपुराणोक्तं सुखसुप्तिव्रतं ।

---

(१) लिखितै इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

(२) तस्मिन् द्यूते जयी यस्येति पाठान्तरं ।

(३) शय्यास्थानमिति पाठान्तरं ।

अथ कौमुदीमहोत्सवः।

पद्मपुराणे।

कार्त्तिके मास्यमावास्या तस्यां दीपप्रदीपनं।
शालायां ब्रह्मणः कुर्यात् स गच्छेत्परमं पदं॥
प्रतिपदि ब्राह्मणस्य गुडमिश्रैः सदीपकैः।
वासोभिरहतैः पूज्या गच्छेद्वै ब्रह्मणः पुरं॥
गन्धैः पुष्पैर्नवैर्वस्त्रैः सम्मानं भूषयेत्तु यः।
तस्यां प्रतिपदा या तु स गच्छेद्ब्रह्मणः पदं॥
महापुण्या तिथिरियं बलिराज्यप्रवर्त्तिनी।
ब्रह्मणस्तु प्रिया नित्यं बलेर्या परिकीर्त्तिता॥
ब्राह्मणान् भोजयेत् योऽस्यामात्मानञ्च विशेषतः।
स याति परमं स्थानं विष्णोरमिततेजसः॥
चैत्रे मासि महाबाहो पुण्या प्रतिपदा वरा।
तत्र यस्तु तिलांस्पृष्ट्वा स्नानं कुर्यान्नरोत्तमः॥
न तस्य दुरितं किञ्चिन्नाधयो व्याधयोनृप।
भवन्ति कुरुशार्दूल तस्मात् स्नानं समाचरेत्॥
दिव्यनीराजनं तद्वत् सर्व्वरोग प्रणाशनं।
गोमहिष्यादि यत्किञ्चित्तत्सार्द्धं भूषयेन्नृप॥
तैलवस्त्रादिभिः सर्व्वान्तोरणाधस्ततोनयेत्।
ब्राह्मणानां ततोभोज्यं कुर्या कुरुकुलोद्वह॥
तिस्र एताः पुरा प्रोक्ताः तिथयः कुरुनन्दन।
कार्त्तिकाश्वयुजे मासि चैत्रे वापि तथा नृप॥

स्नानं दानं शतगुणं कार्त्तिकायां तथा नृप।
बलिराज्येषु शुभदा पांशुनाशुभनाशनी॥

वामनपुराणे।

बलिं प्रति त्रिविक्रम उवाच।

तथा यदुद्भवं पुण्यं वृत्ते शक्र महोत्सवे।
वीरप्रतिपदा नाम तव भावी महोत्सवः।
तत्र त्वां नरशार्दूल हृष्टाः पुष्टाः स्वलङ्कृताः॥
पुष्पधूपप्रदानेन अर्चयिष्यन्ति यत्नतः।
तत्रोत्सवो मुख्यतमो भविष्यति दिवानिशं॥
यथैव राज्ये भवतस्तु साम्प्रतं
तथैव भाविन्यपि कौमुदी च।

भविष्योत्तरात्।

श्रीकृष्ण उवाच।

पुरा वामनरूपेण प्रार्थयित्वा धरामिमां।
बलियज्ञे हरिः पूर्व्वं क्रीतवान् विक्रमैस्त्रिभिः॥
इन्द्राय दत्तवान् राज्यं बलिं पातालवासिनं।
कृत्वा दैत्यपतेर्दत्तमहोरात्रत्रयं नृप॥
एकमेवार्थभोगार्थं बलिराज्येति चिह्नितं।
सरहस्यं तदेतत्ते कथयामि नरोत्तम॥
कार्त्तिके कृष्णपक्षस्य पञ्चदश्यां निशागमे।
यथेष्टचेष्टं दैत्यानां राज्यन्तेषां महीतले॥

युधिष्ठिर उवाच।

विशेषेण हृषीकेश कौमुदीं ब्रूहि मे प्रभो।
किमर्थं दीयते दानं तस्यां का देवता भवेत्॥
किञ्च तत्र भवेद्देयं केभ्यो देयं जनार्द्दन।
प्रहर्षः कोऽत्र निर्दिष्टः क्रीड़ा कात्र प्रकीर्त्तिता॥

श्रीकृष्ण उवाच।

कार्त्तिके कृष्णपक्षे तु चतुर्दश्यां दिनोदये।
अवश्यमेव कर्त्तव्यं स्नानं नरकभीरुभिः॥
अपामार्गान् पल्लवान् वा भ्रामयेच्छिरसोपरि।
शीतलोष्णसमायुक्त सकण्टकदलान्वित॥
हर पापमपामार्ग भ्राम्यमाणः पुनः पुनः।

ब्राह्मण मन्त्रः।

पल्लवान् क्षीरद्रुमाणां।
ततश्च तर्पणं कार्य्यं धर्म्मराजस्य नामभिः।
यमाय धर्म्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च॥
वैवस्वताय कालाय सर्व्वभूतक्षयाय च।
औडुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने॥
वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः।
नरकाय प्रदातव्यो दीपः संपूज्य देवताः॥
ततः प्रदोषसमये दीपान् दद्यान्मनोरमान्।
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां भवनेषु मठेषु च॥

कूटागारेषु चैत्येषु सभासु च नदीषु च।
प्राकारोद्यानवापीषु प्रतोलीनिस्कुटेषु च॥
सिद्धार्हद्बुद्ध चामुण्डाभैरवायतनेषु च।
मन्दरेषु विविक्तेषु हस्तिशालासु चैव हि॥
एवं प्रभातसमये ह्यमावास्यां नराधिप।
स्नात्वा देवान् पितॄन् भक्त्या संपूज्याथ प्रणम्य च॥
कृत्वा तु पार्व्वणश्राद्धन्दधिक्षीरघृतादिभिः।
भोज्यैर्नानाविधैर्विप्रान् भोजयित्वा क्षमापयेत्॥
ततोऽपराह्णसमये घोषयेन्नगरे नृपः।
स्वस्वराज्यं बलेर्लोको यथेष्टं चेष्टतामिति॥
लोकश्चापि पुरा हृष्टः सुधाधवलिताजिरे।
कृत्तचन्दनमालाभिस्तार्चिते च गृहे गृहे॥
द्यूतपानरतोद्रिक्तनरनारीमनोहरे।
नृत्यवादित्रसन्तुष्टसंप्रज्वलितदीपके॥
अन्योन्यप्रीतिसंहृष्टदत्ततालनके जने।
ताम्बूलहृष्टवदने कुङ्कुमक्षोदचर्चिते॥
दुकूलपट्टनेपथ्यस्वर्णमाणिक्यभूषणे।
अद्भुतोद्भूतशृङ्गारप्रदर्शितकुतूहले॥
युवतीजनसङ्कीर्णे वस्त्रोज्ज्वलविहारिणि।
दीपमालाकुले रम्ये विध्वस्तध्वान्तबन्धने॥
प्रदोषरहिते शस्ते दोषादिरहिते शुभे।
यात्राविहारसञ्चारजयजीवेति वादिभिः॥

क्षुद्रोपसर्गैरहिते चौरजायाभयोद्धृते।
मित्रस्वजनसम्बन्धिसुहृत्प्रेमाभिरञ्जिते(१)॥
ततोऽर्द्धरात्रसमये स्वयं राजा व्रजेत्पुरं।
अवलोकयितुं रम्यं पद्मामेव शनैः शनैः॥
महता तूर्य्यघोषेण ज्वलद्भिर्हस्तदीपकैः।
हर्म्यशोभान्तु संपश्यन् चतरच्चैः स्वकैर्नरैः॥
संदृष्ट्वा महदाश्चर्य्यं चिन्तयित्वात्मनः शुभं।
वलिराज्यप्रमोदश्च ततः स्वगृहमाव्रजेत्॥
एवं गते निशीथे तु जने निद्रार्द्धलोचने।
तावन्न नरनारीभिः सूर्प्यडिण्डिमचन्दनैः॥
निष्क्राम्यते प्रहृष्टाभिरलक्ष्मीः स्वगृहाङ्गणात्।
ततः प्रवुद्धे(२) सकले जने जातमहोत्सवे॥
माल्यदीपकहस्ते च स्नेहनिर्भरवत्सले।
वेश्या विलासिनी स्वार्थं स्वस्तिमङ्गलचारिणी॥
गृहात् गृहं व्रजन्ती च पादाभ्यङ्गप्रदायिनि।
पिष्टकोद्वर्त्तनपरे गुरुशुश्रूषणाकुले॥
द्विजाभिवादनपरे सुखरात्र्यादिवादिनि।
सुवासिनीभ्यो दाने च दीयमाने यदृच्छया॥
राजा प्रभातसमये यथार्हं पूजयेज्जनं।
सद्भावेनैव सन्तोष्या देवाः सत्पुरुषा द्विजाः॥
इतरेवान्नपानेन वाक्प्रदानेन पण्डिताः॥

(१) प्रभृति रञ्जिते इति पाठान्तरं।

(२) प्रसुप्त इति पुस्तकान्तरे पाठः।

वस्त्रैस्ताम्बूलदानैश्च पुष्पकर्पूरकुङ्कुमैः।
भक्ष्यैरुच्चावचैर्भोज्यैरन्तःपुरविलासिनी॥
ग्रामैर्विषय(१) दानैश्च पुष्पकर्पूरकुङ्कुमैः।
भक्ष्यैरुच्चावचैर्भोज्यैरन्तःपुरविलासिनी॥
ग्रामैर्विषमदानैश्च सामन्तनृपतीन् धनैः।
पदातिजनसंलग्नान् ग्रैवेयैः कण्ठकैः शुभैः॥
स्वनामाङ्कैः स्वयं राजा तोषयेत् स्वजनान् पृथक्।
यथार्हं तोषयित्वा तु ततो मल्लान् भटान् नटान्॥
वृषभान् महिषांश्चैव युध्यमानान् परैः सह।
गजानश्वांश्च योधांश्च पदातीन् समलंकृतान्॥
मञ्चारूढः स्वयं पश्येन्नटनर्त्तनचारणान्(२)।
क्षुधापयेत्त्रासयेच्च गोमहिष्यादिकं ततः॥
वृषान् हर्षापयेद्गोभिरुक्तिप्रत्युक्तिवादितान्।
ततोऽपराह्णसमये पूर्व्वस्यां दिशि भारत॥
मार्गपालीं प्रबध्नीयाद्दुर्गे स्तम्भे च पादपे।
कुशकाशमयीं दिव्यां लम्बकैर्बहुभिर्नृप॥
दर्शयित्वा(३) गजानश्वान् सायमस्यस्तले नयेत्।
गावो वृषाः समहिषा मण्डिता(४) घण्टिकोत्कटाः॥

---

(१) वृषभ इति पुस्तकान्तरे पाठः।
(२) वारणानिति पुस्तकान्तरे पाठः।
(३) दीचयित्वेति पुस्तकान्तरे पाठः।
(४) महतीघण्टिकोत्कटा इति पुस्तकान्तरे पाठः।

कृते होमे द्विजेन्द्रैश्च बध्नीयान्मार्गपालिकान् ।
दुर्गामन्त्रेण होमस्तु सर्व्वलोकसुखप्रदः ॥

घृतेनाष्टोत्तरशतं ।

नमस्कारं ततः कुर्य्यात् मन्त्रेणानेन सुव्रत ।
मार्गपालि नमस्तेऽस्तु सर्व्वलोकसुखप्रदे ॥
विषयैः पुत्रदाराद्यैः पुनरेहि व्रतस्य मे ।
राष्ट्रभोज्येन वै राजा सहस्रेण शतेन वा ॥
स्वशक्त्यपेक्षया वापि गृह्णीयात् ग्राम्यभोजनैः ।
मातुःकुलं पितृकुलं बालांश्च सह बन्धुभिः ॥
सन्तारयेत् ससकलं मार्गपालीं ददाति यः ॥

यथोत्तरे दानफलाधिक्यार्थं शतसहस्रायुतलक्षभोजनान्येतानि प्रतिज्ञया मार्गपालीं स्वीकृत्य सर्वेभ्यश्च तुष्ट्यर्थं यो ददाति तस्येदं फलं ।

ग्रामराष्ट्रशब्दावयुतलक्षोपलक्षणौ ।

नीराजनञ्च तत्रैव कार्य्यं राष्ट्रजयप्रदं ।
मार्गपालीतले नेत्थं यान्ति गावो गजा वृषाः ॥
राजानो राजपुत्राश्च ब्राह्मणाः शूद्रजातयः ।
मार्गपालीं समुलङ्घ्य नीरुजः स्युः(१) सुखान्विताः ॥
कृत्वैतत्सर्वमेवेह रात्रौ दैत्यपतेर्बलेः ।
पूजां कृत्वा नृपः साक्षाद्भूमौ मण्डलके व्रते ॥
बलिमालिख्य दैत्येन्द्रं वर्णकैः पञ्चरङ्गकैः ।

---

(१) निरुजः स्यात् सुखी सदा इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

सर्व्वाभरणसंपूर्णं विन्ध्यावल्या सहासिनं ॥
कूष्माण्डश्च जयोद्दाम उरुदानवसंवृतं।
संपूर्णहृष्टवदनं किरीटोत्कटकुण्डलं ॥
द्विभुजं दैत्यराजानं कारयित्वा नृपः स्वयं।
गृहमध्ये च शालायां विशालायान्ततोऽर्चयेत् ॥
भ्रातृमातृजनैः सार्द्धं सन्तुष्टो बन्धुभिस्ततः।
कमलैः कुसुमैः पुष्पैः कह्लारै रक्तकोत्पलैः ॥
गन्धपुष्पान्ननैवेद्यैरक्षतैर्गुडपूपकैः।
मद्यमांससुरालेह्यदीपवर्त्त्युपहारकैः ॥
मन्त्रेणानेन राजेन्द्र समन्त्री सपुरोहितः।
बलिराज नमस्तुभ्यं विरोचनसुत प्रभो ॥
भविष्येन्द्र सुराराते पूजेयं प्रतिगृह्यतां।
एवं पूजां नृपः कृत्वा रात्रौ जागरणं ततः ॥
कारयेत् प्रेक्षणीयादिनटनृत्यकथानकैः।
लोकश्चापि गृहस्यान्तः शय्यायां शुक्लतण्डुलैः ॥
संस्थाप्य बलिराजानं फलैः पुष्पैश्च पूजयेत्।
बलिमुद्दिश्य दीयन्ते दानानि कुरुनन्दन ॥
यानि तान्यक्षयान्याहुर्म्मयैव संप्रदर्शितं।
यदस्यां दीयते दानं स्वल्पं वा यदि वा बहु ॥
तदक्षयं भवेत्सर्व्वं विष्णोःप्रीतिकरं परं।
विष्णुना वसुधा लब्धा तुष्टेन बलये पुनः ॥
उपकारकरं दत्तमसुराणां महोत्सवं।
ततः प्रभृति राजेन्द्र प्रवृत्ता कौमुदी शुभा ॥

सर्वोपद्रवविद्रावा सर्वविघ्नविनाशनी ।
लोकशोकहरी काम्या धनपुष्टिसुखावहा ॥
कुशब्देन मही ज्ञेया मुदहर्षे ततोद्वयं ।
धातुज्ञैर्निगमज्ञैश्च तेनैषा कौमुदी स्मृता ॥
कौ मुदन्ति जना यस्मान्नानाभावैः परस्परं ।
हृष्टास्तुष्टाः सुखाया स्तास्तेनैषा कौमुदी स्मृता ॥
कुमुदानि वलेर्यस्माद्दीयतेऽस्मै युधिष्ठिर ।
अथार्घ्यैः पार्थिवैः पार्थ तेनैषा कौमुदी स्मृता ॥
एवमेकमहोरात्रं वर्षे वर्षे विशाम्पते ।
दत्तं दानवराजस्य आदर्शमिव भूतले ॥
यः करोति नरो(१)राष्ट्रे तस्य व्याधिभयङ्कुतः ।
कुत इति तत्र भयं नास्ति मृत्युकृतं भयं ॥
सुभिक्षं क्षेममारोग्यं सस्यसम्पदमुत्तमं ।
नीरुजश्च जनः सर्व्वः सर्व्वोपद्रववर्जितः ॥
कौमुदीकरणाद्राजन् भवतीह महीतले ।
यो यादृशेन भावेन तिष्ठत्यस्यां युधिष्ठिर ॥
हर्षदैन्यादिरूपेण तस्य वर्षं प्रयाति हि ।
रुदितो रोदिति(२) वर्षं हृष्टो वर्षं प्रहृष्यति ॥
भुक्तो भोक्ता भवेद्वर्षं स्वस्थःस्वस्थो भविष्यति ।
तस्मात् प्रहृष्टैस्तुष्टैश्च कर्त्तव्या कौमुदी नरैः ॥

---

(१) नृप इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

(२) रुदितमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

वैष्णवी दानवी चेयं तिथिः(१) पैत्री युधिष्ठिर ।
दीपोत्सवेन जनित सर्व्वजनप्रमोदे
कुर्व्वन्ति ये सुमनसो बलिराजपूजां ।
दानोपभोगसुखवृद्धिशताकुलानां
राजन् प्रयान्ति सकलं प्रमुदैव हर्षं ॥

इति भविष्योत्तरोक्तः कौमुदीमहोत्सवः ।

---

अथ भूतमहोत्सवः ।

स्कान्दपुराणात् ।

रतावसानं संप्राप्य निष्क्रान्ते पार्व्वतीपतौ ।
उत्थाय शयनाद्देवी शौचंचक्रेतिशौचदा ॥
ततः स्नान्त्यां पार्व्वत्यां वारिधारासरःप्रभा ।
अभवदिति शेषः । सरो निर्झरः ।
चिन्ता समभवत्तस्या न पुत्रो दुहितापि वा ।
तस्याश्चिन्तयमानाया हृदयाम्बुसमुद्भवा ॥
जज्ञे कमलपत्राक्षी कन्या मृण्मयपङ्किता ।
नीलवस्त्राभिवसना रक्तावस्त्रावगुण्ठिता ॥
गिरिकन्यान्तु तां कन्यां हृदयाम्बुसमुद्भवां ।
उवास संपरित्यज्य मूर्ध्नि चाघ्राय पार्वती ॥
भूमिपङ्काङ्कलिप्ताङ्गी सम्भूतासि यदङ्गने ।

---

(१) निधिरिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

तस्मादुदकसेवेति(१) भविष्यति महोत्सवः ॥
यस्मिन्निन्द्रमहोलोके दिनेपातमुपैष्यति ।
तस्मिन् दिने तव जना आराध्यन्ते महोत्सवं ॥
यः कामो भैरवस्यासीत् भगवत्या भवस्य च ।
स महाभैरवो भूत्वा कन्यां गृह्य करे स्थितः ॥
ततोऽम्बिका भगवती पत्नी भगवतः प्रिया ।
पुमांसमब्रवीत् कस्त्वं किञ्च गृह्णासि मे सुतां ॥
ततो दंष्ट्राकरालास्यो भैरवो भैरवाकृतिः ।
उमां नीचैस्ततः प्राह विद्युन्मत्तइवाम्बुदः ॥
योभवद्भैरवः कामो भगवत्या भवस्य च ।
तत्सम्भूताविमौ चैषा भार्या मम भविष्यति ॥
दम्पती विकृताङ्गौ तौ कुवेशाच्छादनौ स्थितौ ।
वीक्ष्यां चक्रे सोमभूषः काविमाविति शङ्कितः ॥

तावुभावपि भवो भवपाल
श्चन्द्रचिह्नितजटस्त्रिपुरारिः ।
प्राह पादपतितः स्वसमीपे
कौ युवां भवथ किञ्च करोमि ॥
अम्बिकाथ च वदतिस्म गिरीशं
सूर्य्यकोटितडिदग्निसवर्णा ।
हासपूर्णवदना वदमाना
लीलयात्र भवती चलमाना ॥

(१) उत्कटसेवेति पुस्तकान्तरे पाठः ।

योऽभवत्तव ममेह च कामो
भैरवो भयकरस्त्रिदशानां ।
एष ते किल पुमान् भवजातः
स्त्रीयमेव मम यो मदनाग्निः ॥

सोमलक्षस्ततः प्रोक्तः उमया सोमभावनः ।
गोपवेषधरो देवो दम्पतीत्यब्रवीद्वचः ॥
यदैव हि त्वया ध्याने ध्यातेयं स्त्री वराङ्गणा ।
तदैव मत्प्रभावेन भैरवो ह्येष तेऽभवत् ॥
नाहं त्वया विना देवि त्वं वापि न मया विना ।
अत एष मया तेऽद्य दत्तो लम्बोदरेण च ॥
उत्सवस्तेषु भविता त्वया प्रोक्तो मम प्रिये ।
पूर्व्वागमोऽस्य भविता दत्तकामं महोत्सवं ॥
अतस्तदात्मको लोकः सर्व्वः सुरवरार्च्चिते ।
सज्जन्ते तेन चान्योन्यं नरा नार्य्यश्च पार्व्वति ॥
लिङ्गेषु हृदयं स्त्रीणां भगेषु हृदयं नृणां ।
भगलिङ्गाङ्कितं सर्व्वं तदिदं जगदङ्गने ॥
भगलिङ्गसमुत्क्रोशं कुर्व्वाणाः सामरा नराः ।
अन्योन्यं पातयिष्यन्ति प्रक्रोशन्तः परस्परं ॥
आरम्भेवावसाने च भविता भैरवोत्सवः ।
उदसेविकया(१) शेषं कालञ्च भवितोत्सवः ॥
यत्पुरं नगरं ग्रामं भैरवोयं प्रवेक्ष्यति ।
उन्मत्तमिव तत् सर्व्वं सस्त्रीवृद्धो भविष्यति ॥

---

(१) उजकसे विषयान्विति पाठान्तरं ।

उन्मत्तवदनुन्मत्तं चातुर्वर्ण्यं गिरेः सुते।
भविष्यति पुरं सत्तं भैरवागमहर्षितम्॥
यथा नियुक्ताः पित्रर्थे विशन्ते देवता द्विजान्।
एवं भैरवि माहात्म्याद्भैरवो विशते नरान्॥
ततो राससमारूढाः शकृत्कर्दमलेपनाः।
कटुका ताम्बूवल्लीभिः कृतवेष्टनभूषणाः॥
तत् फलाबद्धकुचकाः प्रकटोत्कटनिस्वनाः।
भस्मभूषितसर्व्वाङ्गा विण्मूत्रमलपङ्किलाः॥
तालतालैर्वाद्यमानैः कूरावद्धवचोन्वितैः।
अबद्धमसंबद्धं पूर्व्वापरानन्वितं यद्वच इत्यर्थः।
सूच्यमाने(१) वरारोहे भैरवो भार्य्यया सह॥
प्रवेक्ष्यति पुरं ह्येष उत्सवं जनयन्नृणां।
प्रविष्टे भैरवे भीरु पुरुहूतार्च्चितं पुरं॥
जनस्य रोचको घोरो भविष्यति तदोत्सवः।
रोचकः प्रियः। घोरः उत्कटः।
येषां वर्षशतम्भीरु जरयाचैव जर्ज्जराः।
तेऽपि वत्सकवत्सर्वे करिष्यन्त्युत्सवं नराः॥
नानाभूषणमृष्टाङ्गाः कुङ्कुमागुरुभूषिताः।
पीतैरनेकैर्व्वस्त्रैश्च वासोभिः परिवेष्टिताः॥
कर्णपूरैः समाल्यैश्च सदामालाः सचूड़िनः।
सदामालाः सस्रजः सचूड़िनः सबाहुभूषणाः।
तद्वत्पुष्पैश्चम्पकाद्यैः कल्पितु शिरोरुहाः।

(१) सूवमाने इति पुस्तकान्तरे पाठः।

आस्फोटयन्तो गात्राणि श्रावयन्ति प्रियाणि च ॥
रथ्यासु राजमार्गेषु श्रावयन्तो यतस्ततः ।
कुलपुत्राः कुलस्त्रीणामनङ्गप्रकृतानि च ॥
व्यङ्गानि यानि गुह्यानि कुलाङ्गनाकृतानि च ॥
तेषां च सर्वसन्देहं दर्शयन्तः पदे पदे ॥
गायन्तश्च प्रनृत्यन्तः कुर्व्वन्तश्चिन्तितानि च ।
पूर्व्वं सलज्जा भूत्वा च निर्लज्जत्व मुपागताः ।
लज्जनीयेष्वपि गुरूनाक्रोशन्तः परानपि(१) ॥
उद्दामरुचयो मर्त्त्याः करिष्यन्ति यथा मनः ।
न मातुर्लज्जते पुत्रो न पुत्रस्य तथारणी ॥
पितुर्न पुत्रः पुत्रस्य न पिता न पितामहः ।
न मातुलस्य स्वस्रीयः स्वस्रीयस्य न मातुलः ॥
मुहूर्त्तेनैव स्वजने निर्लज्जत्वमुपागते ।
अन्योन्यरूक्षवचनैस्तर्ज्जयिष्यन्ति मूढवत् ॥
ब्रह्मरूक्षा(२) वचो रूक्षा श्वेताङ्गा हृदयापि च ।
भस्तिच्छिद्विलिप्ताङ्गाश्चार्व्वङ्गाश्चारुचेष्टिताः ॥
सारमेयानुद्वहन्त आरूढा गर्द्दभीषु च ।
दाड़िम्बवेषा गोपवेषा वहुवेषाविशः परे ॥
राजवेषात्मवेषाश्च तरुणा ब्रह्मरूपिणः ।
नापितानाञ्च वेषेण नयतामपि चापरे ॥
पलाण्डुं सीधुवर्षञ्च स्वशक्त्युन्मिश्रितं भृशं ।

(१) नाक्रोशन्तपरम्परमिति क्वचित् पाठः ।
(२) भस्मरुचेति पुस्तकान्तरे पाठः ।

धूपं सञ्चारयिष्यन्ति प्राणवैराग्यकारकं॥
जलेचरमलञ्चान्ये नरा नृणामजानतां।
नासिकायां प्रदास्यन्ति दुर्गन्धमशुभैः समं॥
अन्येषु पुरुषा देवि देववेशविभूषिताः।
काव्यानि श्रावयन्तो हि ते हृष्यन्ति यथा नराः।
अश्वानां क्रोशते तव यथा नाक्रोशते परं।
बिभ्यति तस्य पितरो ब्रह्मघ्ने तु यथा तथा॥
राजानो हि यथाश्वानां कुञ्जराणां यथा नराः।
हिताय जायते तद्वत् नराणां मुद्सेचिका॥
न तस्य देव अश्नाति हविः पितर एव च।
मध्यस्य भावं कुरुते उद्सेविकया हि यः॥
नत्वन्तुष्यति नैवाहन्तस्य तुष्यामि पार्व्वति।
विरमेच्च महाशोका पुत्रालाभे त्वया कृते॥
उद्सेविकमात्वेवं भवती भैरवागमे।
अतुला हर्षसम्पत्तिः पश्चादेति यथा तव॥
न भ्राजते यथाचेदं तच्छोकाद्भवनं तव।
उद्सेविकया हीनं यथा तद्भविता पुरं॥
नरानार्य्येश्च गिरिजे भस्मना कर्द्दमेन च।
निःष्प्रभाणि करिष्यन्ति गृहाण्यायतनानि च॥
चौरैरुद्वासितमिव पुरं देवि भविष्यति।
मृत्पिण्डभस्मविरूत्वैर्नरैः प्रेतैरिवावृतं।
भैरवोयं मृतइति घोषयन्तस्ततो नराः॥
तृणैश्छन्नतरस्तत्र संवेश्याम्बरसंवृतं।

इति वाचा प्रकुर्वाणा भैरवीयं जहाति नः ॥
निर्हरिष्यन्ति तं मर्त्त्या मृतं गुप्तमृतं प्रियं ।
तड़ागकूले तं न्यस्य सरित्कूले तथापि वा ॥
स्नानान्निर्मुक्तकलुषा प्रयास्यन्ति ततो गृहं ।
संसाध्य भैरवस्नाता उत्सवोत्कूलवेदिताः ॥
मुनिव्रता इव नरा भविष्यन्ति प्रियायुताः ।

यथैव ते पार्व्वति भैरवागमे
नराः सलज्जा मुहुरेव लज्जिताः ।
तथैव सम्भावितभैरवाः पुनः
बभूवुरेकान्ततपोधनावृताः ॥
इमन्तु यः सुन्दरि भैरवोत्सवं
पठेद्धि विप्रो द्विजदेवसंसदि ।
पुत्रप्रपौत्रः समये च वर्द्धते
महागणेशत्वमवाप्नुयात् शुभं ॥

इति भविष्योत्तरात् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

भूतमातेति संहृष्टो ग्रामे ग्रामे पुरे पुरे ।
गायन् नृत्यन् हसन् लोकः सर्व्वतः परिधावति ॥
उन्मत्तवत् प्रलपति क्षितौ पतति मत्तवत् ।
क्रुद्धवद्धावतितरां मृतवत् क्रन्दते(१)बहिः ॥
मुखाङ्गभङ्गं कुरुते लोकोवायुगृहीतवत् ।

(१) कम्पते इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

भूतवद्गत्समूत्रन्तु कर्द्दमानवगाहते ॥
किमेषशास्त्रनिर्द्दिष्टो मार्गः किमुत लौकिकः।
मुह्यते मे मनः कृष्ण त्वमेव वक्तुमर्हसि ॥

श्रीकृष्ण उवाच।

शृणु पार्थ प्रवक्ष्यामि यत्ते किञ्चिन्मनोगतं।
आस्तिकः श्रद्दधानश्च भवानीति मतिर्मम ॥
पार्व्वत्या सहितः पूर्व्वं मन्दरे चारुकन्दरे।
क्रीड़न्नास्ते मुदायुक्तो दिव्यक्रीड़नकैर्हरः ॥
पीनोन्नतनितम्बेन कुम्भभ्राजत्कुचद्वयां।
शीतांशुवदनां हृष्टां दृष्ट्वा गौरीं जगद्गुरुः ॥
दग्धकामतरोः कन्दकदलीमिव विस्तृतां ॥
कामयामास मुदितो महार्हशयने शिवः।
रममाणा महाकान्तं दिव्यंवर्षशतं यदा ॥
तदा देवी समुत्थाय निरोधान्निर्गता वहिः।
मूत्रोत्सर्गात्समुत्तस्थौ नारी निर्द्दारितोदरात् ॥
कृष्णा करालवदना पिङ्गाक्षी रक्तमूर्द्धजा।
कपालमालाभरणा वद्धमुण्डावपीड़का ॥
खट्टाङ्गकङ्कालधरा मुद्राङ्कितकरा शिवा।
द्वीपिचर्म्माम्बरधरा रणत्किङ्किणीमेखला ॥
डमरुमरुकाराच फेत्कारापूरिताम्बरा।
तस्यास्तु पार्श्वगायान्या(१)गीतवाद्यलयानुगाः ॥

(१) पार्श्वे या चान्येति पुस्तकान्तरे पाठः।

उत्तालतालमतुलं नृत्यन्ति च हसन्ति च ।
कपालखट्वाङ्गधरा गजचर्म्मावगुण्ठिता ॥
तथैव शङ्कराज्जातस्तद्रूपाभरणः पुमान् ।
अनुगम्यमानो बहुभिर्भूतैरतिभयङ्करैः ॥
सिंहशार्दूलवदनै रदनोल्लिखिताम्बरैः ।
एकीभूतौ क्षणेनैव तौ भवानीभवोद्भवौ ॥
दृष्ट्वा हृष्टमना देवः प्राह देवीं सुविस्मितां ।
कल्याणि पश्य पश्यैतौ मत्त्वदङ्गसमुद्भवौ ॥
वीभत्साद्भुतशृङ्गारभयानकविदारिणौ ।
भ्रातृभाण्डौ यथा देवि तद्वदेतौ मतौ मम ॥
नानयोरन्तरं किञ्चित् सादृश्यात् प्रतिभाषते ।
भ्रातृभाण्डा भूतमाता तथैवोदकसेविका ॥
संज्ञात्रयं तयोः कृत्वा ततः प्रादाद्वरं हरः ।
भग्नार्थावागताञ्चैनां जगत्तरुतले स्थितां ॥
सेवयिष्यन्ति ये भक्त्या जलसम्पूर्णगण्डुकैः ।
चन्दनेन समालभ्य पुष्पधूपैरथार्चयेत् ॥
भोजयेत् क्षिप्रं संयाव कृशरापूपपायसैः ।
य एवं कुरुते देवि पुरुषो भक्तिभावितः ॥
स पुत्रपशुवृद्धिञ्च शरीरारोग्यमाप्नुयात् ।
न शाकिन्यो गृहे तस्य न पिशाचा न राक्षसाः ॥
क्रीड़ां कुर्वन्ति शिशवो यान्ति वृद्धिं निरामयाः ।

युधिष्ठिर उवाच ॥

कदा पूजा प्रकर्त्तव्या भूतमातुः सुखार्थिभिः ।

पुरुषैः पुरुषव्याघ्र एतन्मे वक्तुमर्हसि॥

श्रीकृष्ण उवाच।

सर्वदैषा भगवती बालानां हितकारिणी॥
नामभेदैः क्रियाभेदैः कालभेदैश्च पूज्यते।
प्रतिपत्प्रभृति ज्यैष्ठे यावत्पञ्चदशी तिथिः॥
पौर्णमास्यान्तमासाभिप्रायेण ज्यैष्ठइत्युक्तिः।
तावत् पूजा प्रकर्त्तव्या प्रेरणैः प्रेक्षणीयकैः॥
विकर्म्मफलनिर्द्देशः पाषण्डानां विडम्बनं।
प्रदर्श्यते हास्यपरैर्नरैरद्भुतचेष्टितैः॥
विप्रस्य धनलोभेन स्वाध्यायी नियतः पथि।
आरोप्यमाणं शूलाग्रे ये न पश्यन्ति पश्यत:॥
दृष्टो भवद्भिः संहृष्टः परदारावमर्षकः।
छित्वास्य हस्तौ क्षिप्तोऽयं विभुना पुष्करोदके॥
शीर्णः सूर्य्यातपत्रेण बालातालानुमोदितः।
शुक्लसिंहासनारूढ़ः सुकृती यात्यसौ सुखं॥
हे जनाः किन्न पश्यध्वं स्वमिन्द्रत्वं करे परं।
करपत्रैर्द्दीर्य्यमानमुच्छलच्छोणितच्छटं॥
चौरः किलासौ संप्राप्तः सर्व्वोद्वेगाकरः परं।
दण्डप्रहाराभिहतो नीयते दण्डपाशकैः॥
प्रेक्षकैर्वेष्टितस्तेनो रटद्भिर्यमडिण्डिमैः।
संयम्य नीयते हन्तुं सुखमभ्यवलेक्षण।
शितकेशं शितश्मश्रुं सिताम्बरधरं द्विजं॥
विटवेश्याचपेटाभिर्हन्यमानञ्च पश्यतः।

गृहान्निष्क्रम्यतां रण्डा वृद्धिं नीत्वा यथोदरं॥
कस्मादसौ च कुरुते मूढ़ो भरणपोषणं।
भैरवाभैरवानेतान् वालान् वालोपजीविनः॥
प्रवृत्ततातण्डवपदा न्यस्यध्वं घृतदीपकान्।
निर्वेदः कोऽस्य हृदये चेतस्त्रीधनकारितः॥
गृहीतं यदनेनापि वालेनापि महाव्रतं।
रक्तोदककाकक्षाङ्गं स चरन् किन्नपश्यति॥
तरुकोटरान्तर्गतां विचित्रां-शुकसारिकां।
वहुभिः कोष्ठकीकृत्य शरीघैः सवलीकृतां॥
विमुक्तहिक्काहुङ्कार सुप्रहारनिरीक्षितां।
इमां कृष्णार्द्धवदनां गृहीतासि दुहितृका॥
विमुक्तकेशां नृत्यन्तीं पश्यध्वं योगिनीमिव।
गम्भीर्य्यतूर्य्यध्वनिना प्रवृद्धोद्धततातण्डवा॥
उन्मत्तवेषाभरणा भाव्येषा डिण्डिमण्डली।
कटीतटस्थपिटका कालकम्बलधारिणी॥
आरटन्त्यटतेड़ोम्बी तन्वी सूर्य्यग्रहात् गृहं।
इत्येवमेभिर्बहुभिः प्रेक्षणैः प्रेक्षणीयकैः॥
प्रेरयेत्तान् जहातीथ्यं पुत्रभ्रातृसुहृद्गतं।
एकादश्यां नवम्यां वा दीपमप्रज्वाल्य कुण्डके॥
रक्षिभिर्बहुभिर्गुप्तं तूर्य्यध्वनिपुरःसरं।
नयेत् प्रदोषसमये यत्र देवी जनैर्वृता॥
वीरचर्य्यासु कथिता दीपः सर्व्वार्थसाधकः।
एवं निष्क्रामयेद्दीपं यावत्पञ्चदशी तिथिः॥

पञ्चदश्यां प्रकुर्वीत भूतमातुर्म्महोत्सवं।
स्नापयेत् पूजयेद्द्यान्नैवेद्यं पललोदनं॥
प्रणम्य स्वजनैः सार्द्धं क्षमयित्वा गृहं व्रजेत्।
य एवं कुरुते पार्थ वर्षे वर्षे महोत्सवं॥
तस्य संवत्सरं यावत् गृहे विघ्नं न जायते।
ये मानयन्ति जनहासकरैर्व्विलासै
रासेचयेदभयदां भुविभूतधात्रीं।
ते भ्रातृभृत्यसुतबन्धुजनैः सहाब्दं
सर्व्वोपसर्गरहिताः सुखिनो भवन्ति॥

इति भूतमात्रुत्सवः।

———

पृथिव्युवाच।

पितृमातृपतिभ्रातृपुत्रशोकविवर्जिता।
व्रतेन येन भवति नारी तद्वद केशव॥

वराह उवाच।

दक्षः प्रजापतिः पूर्व्वं तस्य कन्याभवत्सती।
महादेवाय सा दत्ता धर्म्मपत्नी शुभव्रता॥
दक्षेण यज्ञः प्रारब्धो देवाः सर्व्वे निमन्त्रिताः।
अर्च्चिताश्च यथान्यायं शङ्करो न निमन्त्रितः॥
तेनापमानिता देवी देहन्त्यक्त्वाभवत् पुनः।
हिमवत्पर्वतसुता जाता जातिस्मृता धरे॥
स्रग्नमेरुधरा तत्र वर्त्तमानाष्टवार्षिकी।

वार्य्यमाणा पितृ-भ्रातृ-मातृभिस्तपसे गता ॥
उग्रं तपः समास्थाय सखीभिः सहिताचले ।
याते वर्षं सहस्रन्तु शुष्कपर्णमभुङ्क्त सा ॥
अन्यवर्षसहस्रन्तु जलपानेन सा स्थिता ।
तृतीयञ्च पुनस्तद्वदाहाराभावतो महत् ॥
एवं वर्षसहस्राणि दश तप्तं तया तपः ।
तथापि च न तुष्टोऽसौ देवेशो वृषशूलधृक् ॥
तथा खिन्नापरा दीना कृशासावनिशन्ततः ।
पुनरग्निप्रवेशाय मतिं चक्रे रुषान्विता ॥
ततः काली समुत्थाय कृत्वा पूर्व्वाह्णिकीं क्रियां ।
कथा स्थनेकाश्च ततः सहसा चावदत् क्षिते ॥
सखीभिर्भक्तियुक्ताभिर्वेष्टिता स्थानकाङ्क्षिणी ।
देवर्षिर्नारदः प्राप्तो लोकालोकविचारणः ॥
हिमवद्दुहिता गौरी शिवाराधनतत्परा ।
भर्त्तारं देवमिच्छन्ती तथा वर्षगणान् बहून् ॥
देवो न तुष्यति यदा निर्व्विन्नेयं तदामुने ।
अग्निं प्रवेष्टुमुद्युक्तेत्याह गौर्य्याः सखी मुनिं ॥
तस्या वाक्यमिदं श्रुत्वा नारदः करुणान्वितः ।
तत्समीपे ततोगम्य वाक्यमाह वसुन्धरे ॥

नारद उवाच ।

हिमवद्दुहिता कामं नाग्निं प्राविश शोभने ।
हरस्तुष्यति येनेह कर्म्मणा तत् शृणुष्व मे ।
व्रतं सङ्घाटनं नाम तत् कुरुष्वाचलात्मजे ॥

व्रतं सङ्घाटकं कृत्वा ततः प्राप्स्यसि तं पतिं।

देव्युवाच।

तद्व्रतं मे कृपां कृत्वा कथयस्व मुने मम।
प्राप्स्येऽहं तेन चीर्णेन वै भर्त्तारं तं महेश्वरं॥

नारद उवाच।

शृणुष्वैकमना भद्रे सङ्घाटकमिदं व्रतं।
कथयामि महापूर्व्वं ब्रह्मणा कथितं मम॥
मासस्य कार्त्तिकस्यापि शुक्लप्रतिपदि व्रतं।
गृह्णीयादेकभक्तन्तु कृत्वा दन्तादिशोधनं।
सायं सङ्कल्प मादाय द्वितीयायामुपावसेत्॥
तृतीयायामपि तथा चतुर्थ्यां पारणं भवेत्।
शिवं संपूजयेद्भक्त्या उपवासद्वयेऽपि च॥
यव विनोपचारेण(१) रात्रौ दद्यात्ततो भुवि।
स्वपेत् प्रातः समुत्थाय स्नात्वा देवं समर्चयेत्॥
दुग्धेन विना वरं यत्र दध्यान्नं ददते न रक्तं।
भोजयेद्ब्राह्मणान् सप्त शक्तितो वापि भोजयेत्॥
तेभ्योपि दक्षिणां दत्त्वा नमस्कृत्य विसर्जयेत्।
पश्चाच्च पारणं कार्य्यं सप्तसंघाटके विधिः॥
उपोष्य तु ततः सप्तमासैः सार्द्धं त्रिभिः शुभैः।
उद्यापनं ततः कार्य्यं सङ्घाटे सप्तमे ततः॥

(१) भक्तिचित्तोपचारेणेति पुस्तकान्तरे पाठः।

एतच्च व्रतं शुक्लपक्षेऽपि कर्त्तव्यं(१)। एवं पक्षद्वये कुर्व्वन् ततः सार्द्धैस्त्रिभिर्मासैः समस्तसङ्घाटका भवन्ति ।

विधिवद्ब्रह्ममुख्यस्य(२) तदिहैकमनाः शृणु ।
स्त्रीपुंसौ काञ्चनौ कार्य्यौ शक्तितो भक्तिपूर्व्वकं ॥
सर्व्वाभरणशोभाढ्यौ मञ्चकस्योपरि स्थितौ ।
पञ्चामृतेन संस्नाप्य ततो गन्धोदकेन तु ॥
सर्व्वौषधिजलेनापि कुङ्कुमेन समालभेत् ।
कौसुम्भवस्त्रसंछन्नैर्नानापुष्पस्रगन्वितैः ॥
मञ्चकोपरि विन्यस्य रात्रौ जागरमारभेत् ।
गीतवाद्यादिनृत्यैस्तु जागरं कारयेन्निशि ॥
महामाङ्गल्यनिर्घोषैर्मृदङ्गपटहादिकैः ।
निर्व्वर्त्य जागरं रात्रौ प्रभाते समुपस्थिते ।
विप्रान्निमन्त्र्य भक्त्या तु शक्तितो भोजनं ततः ॥
तेभ्योऽपि दक्षिणां दद्यात् स्त्रीपुंसौ मञ्चके स्थितौ ।
सर्व्वोपस्तरणैः सर्व्वमुपदिष्टं निवेदयेत् ॥
भार्य्यया सहितायैव वस्त्राद्यैः पूजिताय च ।
निवेदयेत् स्वयं सर्व्वं ततो विप्रं क्षमापयेत् ॥
पूजामन्त्रैः प्रकर्त्तव्या त्रिभिर्भक्तिसमन्वितैः ।
त्रिभिर्होमस्तथा कार्य्यो व्रतमेवं समाप्यते ॥

ॐ शम्भवाय नमः । उमया भवाय नमः(३) । ॐ शङ्कराय नमः ।

---

(१) एतच्च व्रतं शुक्लपक्षे समारभ्य कृष्णपक्षेऽपि कर्त्तव्यमिति पुस्तकान्तरेपाठः ।

(२) विधिवद्ब्रह्ममुख्यत्वमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

(३) मायाभवायनमइ त पुस्तकान्तरे पाठः ।

इति पूजामन्त्रः।

ॐ मयस्कराय नमः स्वाहा। ॐ शिवाय नमः स्वाहा। ॐ शिवतराय स्वाहा।

इति होममन्त्राः।

भार्य्यया सहितं विप्रं भोजयित्वा क्षमापयेत्।
समर्पयित्वा तत्सर्व्वं नमस्कृत्य विसर्जयेत्॥
समाप्यैवं व्रतं नारी सम्यं प्राप्नोति यत्फलं।
तत् शृणुष्व महाभागे कथयामि सुनिश्चितं॥
यावत् कल्पशतं नारी भवेज्जन्मनि जन्मनि।
पतिपुत्रवियोगोत्थशोकदुःखविवर्ज्जितं॥
तस्मिन् कुले स जायेत जन्मान्तरशतेष्वपि।
धनधान्यसमापूर्णं तत्कुलं जायते ध्रुवं॥
रूपसौभाग्यसंयुक्तं सुख सम्पत्समायुतं(१)।
माहात्म्येन व्रतस्यास्य भवेज्जन्मनि जन्मनि॥
पठ्यमानं व्रतं नारी नरो वा शृणुयाद्यदि।
सर्व्वदुःखविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते॥

वराह उवाच।

नारदः कथयित्वा तु व्रतं सम्यग्विधानतः।
गतो जविष्ठया गत्या देवी व्रतपराभवत्॥
सङ्कटव्रतमाहात्म्याच्छीघ्रं लब्धा पतिं शिवं।
सञ्जाता सुखिनी गौरी स्त्री तथान्यापि जायते॥

(१) सर्व्वदुःखविवर्ज्जितं इति पाठान्तरं।

एतत् श्रुत्वा धरित्रि त्वं व्रतमेतत् कुरु प्रिये ।
यथाभिलषितं सर्व्वं प्राप्स्यसे नात्र संशयः ॥

## इति वराहपुराणोक्तं सङ्कटकाव्रतं ।

———000———

पौर्णमास्याममावास्यामेकभक्तं समाचरेत् ।
तत्रैक भक्तं कुर्व्वाणो नरकं नोपसर्पति ॥
तत्र पुण्याहवाच्येन जयशब्दादिमङ्गलैः ।
हरिश्चैवार्च्चयेद्यत्नात् स्नाप्य सौवर्णपङ्कजैः ॥
ततस्तु पात्रमादाय गीतवेदादिनिस्वनैः(१) ।
कुर्य्यात् प्रदक्षिणं तस्मै विष्णवे प्रभविष्णवे ॥
ततश्चा मन्त्रय विधिवत् पूजयेत्तं विशेषतः ।
एकं प्रियन्तु(२) सम्भोज्य प्रणम्य च क्षमापयेत् ॥
एकं विप्राय संमन्त्र्य संपूज्य तत् प्रदक्षिणं ।
घृतयुक्तमन्नपात्रं सम्भोज्य च क्षमापयेत् ॥
ब्राह्मणान् परमान् भोज्य दक्षिणाभिश्च दक्षयेत् ।
व्रतिनश्चान्नदानेन वस्त्राद्येन च तर्पयेत् ॥
ये तु दीनान्धकृपणा अनिवार्य्यो दिनं व्रजेत्(३) ।

## इति नरसिंहपुराणोक्तं हरिव्रतं ।

———0———

(१) वाद्य शङ्खस्वनैः स्वयमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।
(२) एवं विप्रमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।
(३) अनिवार्य्योदनं व्रजेदिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

अनिलाद उवाच।

नरसिंहमथो रौक्मं कृत्वा देवं चतुर्भुजं।
ताम्रपात्रे प्रतिष्ठाप्य वज्रदंष्ट्रं प्रकल्पयेत्॥
बाहुभ्यां पद्मरागौ तु नखानां विद्रुमास्तथा।
पुष्परागौ स्तनोद्देशे कर्णयोर्नीलकावुभौ॥
राजावर्त्तञ्चरणं कृत्वा(१) नीलवैदुर्य्यमस्तकं।
कृत्वा रूपमिदं रम्यं तत्पात्रे मधुना युते।
पूरयेद्वारिमिश्रेण पूरितन्तु पुनर्द्ददेत्॥

इदं रूपं तत्पात्रे मधुयुक्तेन कृत्वा संस्थाप्य वारिमिश्रेण मधुना पात्रं पूरयेत्। पुनरन्यत्पात्रं मधुवारिपूर्णं तदुपरि-दद्यात्।

वस्त्रयुग्मेनवाच्छन्नमासने विनिवेशयेत्।
गन्धपुष्पैस्तथाधूपैः पूजनञ्चास्य कल्पयेत्॥
नैवेद्यं कल्पयेद्द्रव्यं भक्तैर्नानाविधैर्बुधः।
वितानोपरि संयुक्तं पुष्पदामभिरर्चयेत्॥
कार्त्तिक्यां वाथ वैशाख्यामाश्रित्य द्वादशीमथ।
कृत्वा निवेदयेत् सम्यक् यतस्तत्पदमश्नुते॥

द्वादशीमाश्रित्य तदादिदिनचतुष्टयं हस्तिक्रीडा यतस्तमुत्सवं कृत्वा कार्त्तिक्यां वैशाख्यां वा दानं कर्त्तव्यं।

अरण्ये वाथ संग्रामे दस्युसङ्घसमाकुले।
नभयं जायते तस्य सकृद्यस्त्विदमाचरेत्॥
नविशन्त्यापदो धीरा धनमायुः प्रयच्छति।

(१) मणिराजाचरणौ कृत्वे इति पुस्तकान्तरे पाठः।

सन्ततिञ्चैव रूपञ्च सौभाग्यं च मनोरमं ॥
एतत्ते कथितं सम्यक् हरेः क्रीडायनं महत् ।
तत्स्थानप्रापकञ्चैव धर्म्माः संक्षेपतः क्रियाः ॥
श्रुत्वा यातिपदं पुण्यं सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ।
धनमायुर्व्विवर्द्धेत श्रावणस्य विशेषतः ॥
श्रावणे दक्षिणां दद्याच्छत्त्रयायुग्मं विभूषयेत् ।
श्रोतव्यन्तेन वर्षासु पुराणञ्चापरेऽहनि ॥

## इति नरसिंहपुराणोक्तं हरिक्रीडायनं ।

———०४०———

यजिष्णुः पञ्चमीं षष्ठीं यमान् यो भोजयेद्द्विजान् ।
अष्टमीमथ कौन्तेय शुक्लपक्षे चतुर्दशीं ॥
उपोष्य व्याधिरहितो रूपवानिति जायते ।

## इति महाभारतोक्तं यमव्रतं ।

———०००———

अनिलाद उवाच ।

महाव्रतमहोवक्ष्ये येनारोहति तत्पदं ।
सुरासुर मुनीनाञ्च दुर्लभं विधिना शृणु ॥
पर्वण्याश्वयुजस्यान्ते पायसञ्च घृतप्लुतं ।
नक्तं भुञ्जीत शुद्धात्मा चन्दनञ्चैचवान्वितं ॥

आश्वयुजस्यान्ते कार्त्तिके । पर्वणि अमावस्यायां कार्त्तिक्यन्त इत्यर्थः । ऐक्षवइक्षुरसः ।

आचम्याथ शुचिर्भूत्वा विल्वजं दन्तधावनं ।

भुक्त्वा चैतन्महादेवं नत्वा भक्तियुतो व्रती ॥
अहं देव व्रतमिदं कर्त्तुमिच्छामि शाश्वतं ।
तवाज्ञया महादेव तन्निर्व्वहनं कुरु ॥
उक्तिमन्नियमं गृह्णन् वर्षाण्येव तु षोडश ।
तिथेः प्रतिपदायास्तु पारयिष्याम्यनुत्तमं ॥
ततो मार्गशिरे मासि प्रतिपद्यपरेऽहनि ।
उपवासेन गुरुं पृष्ट्वा महादेवं स्मरन् मुहुः ॥
महादेवरतान्विप्रान् भस्मसंच्छन्नविग्रहान् ।
षोडशाष्टौ तदर्द्धं वा दम्पत्यश्च निमन्त्रयेत् ॥
देवञ्च भक्तमासाद्य दीपान् प्राज्वल्य षोडश ।
पशुनाथं महादेवं भक्त्या नत्वा निवेदयेत् ॥
आमन्त्र्य च गृहं गत्वा महादेवं स्मरन् क्षितौ ।
शुचिवस्त्रास्तृतायान्तु निराहारो निशि स्वपेत् ॥
अथोदये सहस्रांशोः स्नात्वाचादाय दीपकान् ।
नैवेद्यं स्नपनाद्यं वा सगच्छेत् शङ्करालयं ॥
गत्वा वितानकं तत्र वस्त्रयुग्मञ्च घण्टिकां ।
धूपोत्क्षेपं पताकांश्च दत्त्वा स्नानन्तु कारयेत् ॥
एवमभ्यर्च्यदेवेशं कशायैरुज्झयेद्धतं ।
स्नापयेत् पञ्चगव्येन घृतेन तदनन्तरं ॥
मधुना च तथा दध्ना भूयश्च पयसा तथा ।
रसेन वाथ खण्डेन फलैश्च स्नापयेत् पुनः(१) ॥
तिलाम्बुना ततः स्नाप्य पश्चादुष्णेन वारिणा ।

१ उपायेतपुनरिति पुस्तकान्तरे पाठः।

लेपयेत् सुघनं पश्चात् कर्पूरागुरुचन्दनैः ॥
एवं संपूज्य तं भक्त्या हेम न्यस्य व्रजेद्गृहं ।
हेम न्यस्य भुजोपरि सुवर्णपुष्पं निधाय ॥
नानावस्त्रफलैश्चैव दद्यान्नैवेद्यमेवहि ।
गृहं गत्वा यथान्यायं हिरण्यरेतसन्निभं ॥
जातवेदसमाधाय तर्पयेत्तिलसर्पिषा ।
व्रतिनश्च तथाचार्य्यं मिथुनानि च भोजयेत् ॥
हेमवस्त्रादिदानेन यथाशक्त्या तु दचयेत् ।
एवं विसृज्य तान् सर्व्वान् सार्द्धं वन्धुजनैः स्वयं ॥
पीत्वादौ पञ्चगव्यञ्च हृष्टोभुञ्जीत वाग्यतः ।
यत्किञ्चिदेतदुच्छिष्टं महादेवमुदीरयेत् ॥
तमुद्दिश्य च तत्सर्व्वं कर्त्तव्यं श्रेय इच्छता ।
प्रारम्भे तु विधिं कुर्य्याद् दरिद्रोऽप्यथवेश्वरः ॥
वित्तसामर्थ्यतश्चैव प्रतिमासञ्च कृत्स्नशः ।
स्वल्पवित्तोऽथ वा कश्चित् पुष्यादौ कार्त्तिकावधौ ॥
कृत्वा नक्तन्त्वमावास्यां प्रागुक्तविधिना ततः ।
प्रतिपदामुपोष्यैवं पञ्चगव्यं पिवेच्छुचिः ॥
महादेवं स्मरन् सार्द्धं भक्त्या भुञ्जीत लिङ्गिभिः ।
मासस्य कार्त्तिकस्यान्ते कृत्स्नं प्राग्विधिमाचरेत् ॥
प्रतिपदा द्वितीयाच उभेतिथी उपोषयेत् ।
एवं पौषे तु संप्राप्ते प्रतिपन्नक्तमाचरेत् ॥
द्वितीयेऽब्दे द्वितीयायामुपवसेत् कार्त्तिकावधौ ।
आददीत तिथिञ्चैकां मार्गमासे तथापरां ॥

पूर्व्ववत्सन्त्यजेत्पौषे प्रत्यब्दञ्चैवमाचरेत्।

अस्य श्लोकस्य फलितार्थः।

अमावस्यायां नक्तं प्रतिपद्युपवास इति प्रथमवर्षं प्रथमस्याममावास्यायां नक्तं प्रतिपदि द्वितीयायामुपवासः शेषेषु प्रतिपदि नक्तं द्वितीयायामुपवास इति द्वितीयं प्रथमे मासि प्रतिदि नक्तं द्वितीयातृतीययोरुपवासः शेषेषु द्वितीयायां नक्तं तृतीयायामुपवास इति तृतीयं। एवं शेषेषु वर्षेषु कृत्वैवं षोडशवर्षे पौर्णमास्याः कार्त्तिक्याः समुद्गमे उदयकाले।

पूर्व्ववद्देवमभ्यर्च्य कृशानुं धवितर्प्ययेत्।

धविं अर्च्चिषः।

महादेवाय गान्दद्याद्दीक्षिताय द्विजाय च॥
हेमशृङ्गां सवत्साञ्च सघण्टां कांस्यदोहनां।
शिवव्रत धरान् विप्रान् सहाचार्य्यांश्च षोडश॥
सम्भोज्य हेमवस्त्राद्यैर्य्यथाशक्ति तु दापयेत्।
छत्रोपानहकुम्भांश्च दद्यात्तेभ्यः पृथक् पृथक्॥
भोजयेत्तान्विसृष्ट्वैव मिथुनानि तु षोडश।

विसृष्ट्वा विसृज्य।

ब्राह्मणांश्च यथा शक्त्या भोजयेत् वेदपारगान्।
अन्येषां च क्षुधार्त्तानां दद्यादन्नञ्चतद्दिने॥
एवं महाव्रतञ्चैतद्ब्रह्मघ्नोऽप्यघमर्षणं।
भूर्भुवादिषु शेषेषु लोकेषु बहुभोगदं॥
चतुर्णामपि वर्णानां यत्तु सोपानवत्स्थितं -

तत् कुर्य्याद्यौवनं प्राप्य समुद्दिष्टमिहैव हि ॥
धन्यमायुःप्रदं नित्यं रूपसौभाग्यदं परं,
स्त्रीपुंसयोश्च निर्द्दिष्टं व्रतमेतत् पुरातनं ।
विधवयापि कर्त्तव्यं भवेदविधवा च या ॥
मुग्धयापि च कर्त्तव्यमवियोगाय तद्व्रतं ।
उपोष्य प्रतिमासन्तु भुञ्जीत व्रतिभिः सह ॥
एतद्द्वित्रिचतुर्भिर्व्वा(१) सर्व्वैष्वब्देषु शक्तितः ।
अन्ते च भिन्नवर्षाणां प्रारम्भे विधिमाचरेत् ॥
पुष्पसम्भारमन्विच्छन्ननामयपदञ्च तत् ।
अथारब्धव्रते कश्चिदसमाप्ते मृतो भवेत् ॥
सोऽपि तत् फलमाप्नोति सत्प्रारम्भप्रभावतः ।
वाचकः श्रावकश्चैव श्रोतारश्च व्रतस्य ये ॥
भवन्ति पुण्यसंश्लिष्टास्तत्पदाभिमुखाश्चये ।

## इति कालिकापुराणोक्तं महाव्रतं ।

———ooo———

उपोष्यैकादशीं शुक्लां माघमासेऽथ पूर्णिमां ।
कुर्य्याद्विधिमिमं सम्यक् सदा तस्य व्रजेत्पदं ॥
तद्विरूपप्रदञ्चैतद्व्रतं(२) सौभाग्य दायकं ।
पुत्रदं सुखदञ्चैव विधिना चरितं त्विदं ॥
व्रतस्यास्य प्रवक्तारं समयुक्तं गुणान्वितं ॥

(१) अन्ते चान्ते च वर्षाणामिति पुस्तकान्तरे पाठः ।
(२) तद्विरूपापूर्दञ्चैतद्व्रतमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

पूजयेद्भूमिकामोथ पादुकाद्यैः सुभावितः(१)।
रुक्ममाज्ययुतञ्चाथ पात्रंनीलाञ्च गामपि॥
अभावे च तथा हेम्नः कर्षार्द्धेन तु राजतं।
वस्त्रयुग्मं नवं सूक्ष्मं पुष्पप्रकरचित्रितं॥
आश्रित्य तत्र तत्पात्रं शुचौ देशे निवेशयेत्(२)।
ततो जागरणं कुर्य्यात् गीतवाद्यादिमङ्गलैः॥
प्रभाते तु नयेत्पात्रं हरेरायतनं महत्।
स्नाप्य क्षीरादिभिर्द्देवं विष्णुं संपूज्य वै स्वयं॥
निवेदयेत्तु तत्पात्रं प्रीयतामित्युदीरयेत्।
ततो नानाविधैर्भक्ष्यैः सुगन्धेनोदकेन च॥
दधिखण्डाज्य दुग्धाढ्यं नैवेद्यञ्च वलिं हरेत्।
ततो नत्वा गृहं गच्छेदाचार्य्यं प्रीणयेत् पुनः॥
प्रणम्य भोजयेद्भक्त्या व्रतिनश्च द्विजैः सह।
कल्पयेद्भोजनं श्रेष्ठं सर्व्वेष्वेवतपस्विषु॥
दीनान्धकृपणानाञ्च सर्व्वेषामनिवारितं।
अनेनापि व्रतेनैव सम्यक् प्राप्य पदं शुभं॥
मोदते सुचिरं कालमायुष्मान् धनवानिह।

इति नरसिंहपुराणोक्तं पात्रव्रतं।

———000———

(१) पूजयेद्भूमिकाद्यैस्तु तस्य भक्त्यासुभावित इति पाठान्तरं।
(२) निवेदयेदिति पुस्तकान्तरे पाठः।

युधिष्ठिर उवाच ।

जातिस्मरत्वं देवेश दुष्प्राप्यमिति मे मतिः ।
तदहं श्रोतुमिच्छामि प्राप्यते केन कर्म्मणा ॥

कृष्ण उवाच ।

ब्राह्मणश्चैव शूद्रोपि कुले महति जन्मवान् ।
दाता क्षमी धनी वाग्मी रूपवान् भद्रकैर्भवेत् ॥
चत्वारि राजन् भद्राणि चतुष्पादानि तानि वै ।
तान्येव बहुविघ्नानि दुःष्प्राप्याण्य कृतात्मभिः ॥
मार्गशीर्षे तु प्रथमं द्वितीयं फाल्गुने तथा ।
ज्येष्ठे तृतीयं राजेन्द्र ख्यातं भाद्रपदे परं ॥
फाल्गुनामलपक्षादौ त्रीन् मासांस्तु नरोत्तम ।
त्रिपुष्करं समाख्यातमौदार्य्यकरणं परं ॥
ज्येष्ठस्य शुक्लपक्षादौ त्रीन्मासांश्च युधिष्ठिर ।
तत्त्रिपुष्कमाख्यातं सत्वशौर्य्यप्रदायकं(१) ॥
तथा भाद्रपदस्यादौ त्रीन्मासान् पाण्डु नन्दन ।
वरदानेन देवानामृषीणां सेवनेन वा ।
तीर्थस्नानेन वा देव तपोहोमव्रतेन वा ॥

कृष्ण उवाच ।

चत्वारि राजन् भद्राणि समुपोष्याणि यत्नतः ।
तत् प्रभावाद्भवेन्नूनं राजन् जातिस्मरो नरः ॥
शुभोदयः पुरा वैश्यो बभूव यमुना तटे ।

(१) रूपौदार्य्यगुणान्वित मिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

तेन व्रतपदच्चीर्णं मृतः कालक्रमादसौ ॥
सञ्जयस्य सुतो जातः स्वर्णष्ठीवीति विश्रुतः।
व्रतप्रभावाज्जातिस्मः स च चौरैर्निपातितः॥
नारदस्य प्रभावेन पुनरुज्जीवितोऽप्यसौ।
सस्मार पूर्व्ववृत्तान्तं सकलं व्रतधर्मतः॥

युधिष्ठिर उवाच।

सञ्जयस्य कथं पुत्रः स्वर्णष्ठीवीति वा कथं।
दस्युभिश्च कथं नीतो मृत्यवे जीवितः कथं॥

कृष्ण उवाच।

सञ्जयो नामराजासीत् कुशावत्यां नराधिप।
तस्य मित्रे च देवर्षी सदा नारदपर्व्वतौ॥
एकदा सञ्जयगृहं संप्राप्तौ तौ यदृच्छया।
स्वागतावन्नदानाद्यैरुपचारैरपूजयत्।
तेषामथोपविष्टानां पूर्व्ववृत्तान्तभाषिणां।
सञ्जयस्य सुता प्राप्ता वरुणी पितुरन्तिकं॥
पर्व्वतः प्राह राजानं कन्येयं वरवर्णिनी।
गुप्तगुल्फा संहतोरुःपीनश्रोणिपयोधरा॥
पद्मपत्रेक्षणनखा पद्मकिञ्जल्कसन्निभा।
आकुञ्चितमृदुस्निग्धैः केशैरतिततैर्घनैः॥
सविलासागजगता सुनासा कोमलस्वरा।
अहो रूपमहो धैर्य्यमहो लावण्य मुत्तमं॥
तिलपुष्पस्फुटा नासा रूपं सं परिलक्ष्यते।

कस्येयं भद्रका भद्रा ममातिहृदयङ्गमा ॥
एवं ब्रुवाणं तं विप्रं विस्मयोत्फुल्ललोचनं ।
राजा प्राह ततो ब्रह्मन् दुहिता मम पर्व्वत ॥
अथोवाच वचो धीमान्नारदः क्षुभितेन्द्रियः ।
राजन्निर्वेष्टुकामोऽहं कन्येयं दीयतां मम ॥
ईप्सितन्ते प्रदास्यामि वरमत्यन्तदुर्लभं ।
एवमुक्तो नारदेन प्रीतात्मा सञ्जयस्तदा ॥
कृताञ्जलिरुवाचेदं प्रहर्षोत्फुल्ललोचनः ।
पुत्रो मे दीयतां क्षिप्रमक्षीणकनकाकरः ॥
यस्य मूत्रं पुरीषं वा श्लेष्माणं क्षिपति क्षितौ ।
जातरूपं हि तत्सर्व्वं सुवर्णं भवतु स्थिरं ॥
एवमस्त्विति तं राजा नारदं प्रत्यभाषत ।
सुवर्णष्ठीविनं पुत्रं ददामि तव सुव्रत ॥
एवमुक्त्वा सतीं कन्यां सालङ्कारां सुमध्यमां ।
विवाहयामास तदा नारदो हृष्टमानसः ॥
तत्तस्य चेष्टितं दृष्ट्वा पर्व्वतः क्रोधमूर्च्छितः ।
उवाच नारदं रोषाद्दीप्तात्तस्फुरिताधरः ॥
मयेयं प्रार्थिता पूर्व्वं त्वया या स्याद्विवाहिता ।
तस्मान्मया समं स्वर्गान्नगन्तासि कदाचन ॥
दत्तस्त्वयास्य यः पुत्रो वरदानेन नारद ।
सोऽपि चौरैरुपहृतः पञ्चत्वमुपयास्यति ॥
एवमुक्तः पर्व्वतेन नारदः प्राह दुर्म्मनाः ।
न त्वं धर्म्मं विजानासि किञ्चिन्मूढोसि दुर्म्मते ॥

सामान्या सर्व्वभूतानां कन्या भवति सुव्रत।
न तस्या वरणे दोषं पश्यन्तीह बहुश्रुताः॥
न सेविता त्वया ब्रह्म तेन मां शपसे वृथा।
पाणिग्रहणमन्त्राणां निष्ठा स्यात् प्रथमे पदे(१)॥
यस्मादेतदविज्ञाय शपसे मामनागसं।
तस्मात्त्वमप्यहो स्वर्गं न गन्तासि मया विना॥
सृञ्जयस्य सुतःशापाद्यदि पञ्चत्वमेष्यति।
आनयिष्ये तथाप्येनं यमलोकान्न संशयः॥
एवं शप्त्वा तदान्योऽन्यं देवर्षी तावुभौ पुनः।
पूजितौ सृञ्जये नाथ जग्मतुः स्वाश्रमं प्रति॥
अथास्य सप्तमे मासि जातः पुत्रो नृपस्य सः।
स्वर्णष्ठीवीति(२) नामास्य यथार्थमकरोत्पिता॥
जातिस्मरः स्मरवपुः सुवर्णोत्पत्तिकारणं।
सर्व्वभूतस्य तज्ज्ञोऽभूद्व्रतफलादिह॥
तत्र श्लेष्मपुरीषादि यत् किञ्चित् क्षिपते क्षितौ।
जायते कनकं सर्व्वं प्रसादान्नारदस्य च॥
तेनासौ यजते राजा विधिवद्भूरिदक्षिणैः।
राजसूयादिभिर्यज्ञैर्विविधैरधिपूजितः॥
बभार भृत्यानितरान् पुपोष स्वजनातिथीन्।
चकार देवतागारान् सरारामादिवापिकाः।
जातस्नेहश्च तं पुत्रं ररक्ष रक्षिभिर्वृतं॥

(१) सप्तमे पद इति पुस्तकान्तरे पाठः।
(२) घर्माष्ठीवीति पुस्तकान्तरे पाठः।

राजयः कनकानाञ्च वभूवुर्भूपतेः सुतात् ।
अथास्य दस्यवः केचित् श्रुत्वा तं कनकाकरं ॥
धनलोभेन तं जघ्नुर्दाक्षिणात्या महोद्धताः ।
तस्मिन् विनष्टे तन्नष्टं वरदानसमुद्भवं ॥
कनकं नश्यते राज्ञो जगामान्योऽन्यतः क्षयं ।
घातितं दस्युभिः पुत्रं ज्ञात्वा राजा सुदुःखितः ॥
विललापाकुलमतिः सम्मोहेन पपात च ।
विलपन्तं तु तं दृष्ट्वा नारदः प्राह सत्वरं ॥
राजन् विषादं माकार्षीः शृणुमाम्भारतीं कथां ।
इत्युक्त्वा स समाचख्यौ चरितानि महौजसां ॥
विनष्टानां नरेन्द्राणां यतीनां दक्षिणावतां ।
श्रुत्वा राजा नरेन्द्राणां चरितानि महात्मनां ॥
विनष्टशोकः सहसा प्रकृतिस्थो वभूव सः ।
नारदोऽपि नरेन्द्रस्य मृतं पुत्रं यमालयात् ॥
आनयामास तरसा यथारूपं यथाहृतं ।
दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा स पुत्रन्तं परितुष्टेन चेतसा ॥
व्रीड़ितो विस्मितश्चैव कृताञ्जलिरथाब्रवीत् ।
किमाश्चर्य्यं प्रसन्नेन भवता मम नारद ॥
दत्तः पुत्रस्तथा भूतो दस्युभिर्निहतो यथा ।
षण्मासान्ते पुनरसौ जीवितं सर्व्वमेव तत् ॥
सस्मार पूर्व्ववृत्तान्तं जातिस्मरणकारणं ।
व्रतं व्रतश्रेष्ठमिदं किमन्यत् कथयामि ते ॥
तथा भाद्रपदस्यादौ त्रीन्मासान् पाण्डुनन्दन ।

तत्त्रिपुष्करमाख्यातं बहुविद्याप्रदायकं ॥
तथा मार्गशिरस्यादौ त्रीन् मासांश्च नराधिप।
तद्विष्णुपदमित्युक्तं सर्व्वधर्म्मप्रदायकं ॥
मुनिभिः कथितान्येवं भद्राख्येतानि भारत।
कर्त्तव्यानि नरैः स्त्रीभिर्ब्राह्मणानुमतेन वै ॥

युधिष्ठिर उवाच।

विस्तरेणैव मे ब्रूहि देवदेव जनार्दन।
भद्राणां नियमाधानं प्रधानं मधुसूदन(१) ॥

श्रीकृष्ण उवाच।

शृणु राजन्नवहितो भद्राणां विस्तरं परं।
कथयिष्ये न कथितं यन्मया कस्यचित् पुरा ॥
शुक्ला मार्गशिरस्यादौ चतस्त्रस्तिथयो वराः।
द्वितीया च तृतीया च चतुर्थी पञ्चमी तथा ॥
एकभक्ताशनस्तिष्ठेत् प्रतिपदि जितेन्द्रियः।
प्रभाते तु द्वितीयायां कृत्वा यत् करणीयकं ॥
प्रहरे वै समधिके गते स्नानं समाचरेत्।
मृद्गोमयं तु संगृह्य मन्त्रैरेभिर्विचक्षणः ॥
अहन्ते प्रवदिष्यामि विप्राणां विधिमुत्तमं।
एतन्न देयं देयान् वा कथयिष्यामि तानपि ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा ये सुधियोऽमलाः।
तेषां मन्त्राः प्रदेया वै न तु सङ्कीर्णधर्म्मिणां ॥

(१) प्रसीदमधुसूदन इति पुस्तकान्तरे पाठः।

या स्त्री भर्त्रा विमुक्तापि स्वाचारविरताः सदा।
सापि व्रतं प्रगृह्णीयात्सभर्त्री शीलसंयुता(१)॥
स्नानं नद्यां तड़ागेषु वापीकूपगृहेषु च।
दशवारं फलं ज्ञेयमधिकं हिं समन्त्रकं॥
मृदं मन्त्रेण संगृह्य सर्व्वगात्रेषु दापयेत्।
त्वं हि मृद्वन्दिता देवैः समला विमलाः कृताः॥
मयापि वन्दिता भक्त्या मामद्यैवामलं कुरु।
एवं जपन् मृदं दत्वा स्वहस्ताग्रे समन्त्रकं॥
जलावगाहनं कुर्य्यात् कुण्डमालिप्यधर्म्मवित्।
सिद्धार्थकैः कृष्णतिलैर्वचासर्व्वौषधैः क्रमात्॥
त्वमादिः सर्व्वदेवानां जगताञ्च जगन्मय।
भूतानान्तु विशुद्धानां रसानां पतये नमः॥
गङ्गासागरजन्तोयं पौष्करं नार्म्मदन्तथा।
यामुनं सन्निधातव्यं(२) सन्निधौ तदिहास्तु मे॥
शरीरालम्भनं कृत्वा पूर्व्वं मृद्गोमयाम्बुभिः।
एवं स्नात्वा समाप्लुत्य त्रिराचम्य तटस्थितः॥
निवस्य वाससी शुभ्रे शुचिः प्रयतमानसः।
देवान् पितॄन् मनुष्यांश्च तर्पयेत् सुसमाहितः॥
एवं गृहीतनियमो गृहं गच्छेत् शुचिव्रतः।
न हसेन्न च संजल्पेत् यावच्चन्द्रस्य दर्शनं॥
स्नात्वा चैव ततो नाम द्वितीयादौ चतुर्द्दिने॥

(१) स्वभर्त्तात्तदनुज्ञया इति पुस्तकान्तरे पाठः।

(२) यामुनं साम्निहत्यन्त इति पुस्तकान्तरे पाठः।

नमः कृष्णाच्युतानन्तहृषीकेशेति च क्रमात्।
चतुर्द्दिने द्वितीयादि देवमभ्यर्चयेद्व्रतं॥
प्रथमेऽह्नि स्मृता पूजा पादयोश्चक्रपाणिनः।
नाभिपूजा द्वितीयेऽह्नि कर्त्तव्या विधिवन्नरैः॥
पुरद्विषस्तृतीयेऽह्नि पूजां वक्षसि विन्यसेत्।
चतुर्थेऽह्नि जगद्धातुः पूजां शिरसि विन्यसेत्॥
पुष्पैर्विलेपनैर्धूपैरर्घ्यं दद्याद्विभूषणैः।
प्रवरैर्भूरिनैवेद्यैर्दीपदानैश्च भक्तितः॥
पूजयित्वा विधानेन विष्णुं विश्वेश्वरं व्रती।
ततो दिनावसाने तु मुहूर्त्ते विमले सती॥
अर्घ्यं प्रदद्यात्सोमाय भक्त्या तद्भावभावितः।
स चार्घ्यो यादृशो देय ऋग्भिर्मृद्भिस्तथेतरैः॥
तत्ते सम्यक् प्रवक्ष्यामि युधिष्ठिर निबोध मे।
चन्दनागुरुकर्पूरदधिदूर्वाक्षतादिभिः॥
रत्नैः समुद्रजैश्चान्यैर्वज्रवैदूर्य्यमौक्तिकैः।
पुष्पैः फलैश्च कल्लोलैः खर्ज्जूरैर्नारिकेलकैः॥
वस्त्राच्छादनगोवाजि भूमिहेमसमन्वितैः।
सत्त्व युक्तस्य कृत्स्नस्य विधिरेष प्रकीर्त्तिता॥
इतरस्य यथा शक्त्या फलपुष्पाक्षतोदकैः।
लवणाज्यगुडैस्तैलपयःकुम्भतिलैःसह॥
शशिन् चन्द्र शशाङ्केन्दो नामानि क्रमशो नरः।
द्वितीयादिषु चन्द्रस्य सङ्कीर्त्यार्घ्यं निवेदयेत्॥
अर्चयित्वा निशायान्तु शशिवृद्ध्या विवर्द्धयेत्।

प्रत्यहं वर्द्धयेदर्घ्यं शशिवृद्ध्या नृपोत्तम॥
एवमर्घ्यः प्रदातव्यः शृणु मन्त्रविधिक्रमं।
नवो नवोऽसि मासान्ते जायमानः पुनः पुनः॥
त्रिरग्निसमवेतान् वै देवानाप्याययसे हविः।
गगनाङ्गणसन्दीप दुग्धाब्धिमथनोद्भव॥
भाभासितदिगाभोग रामानुज नमोऽस्तु ते।
दत्त्वार्घ्यं द्विजराजाय तद्विप्राय निवेदयेत्॥
निर्वर्त्त्यार्घ्यं क्रमेणैव ततो भुञ्जीत वाग्यतः।
भूमिन्तु भाजनं कृत्वा पद्मपत्रसमाश्रितं॥
पालाशैर्मधुपत्रैर्वा(१) सुधौते वा शिलातले(२)।
समालभ्य धरां देवीं मन्त्रेणानेन मन्त्रवित्॥
त्वत्तले भोक्तुकामोऽहं देवि सर्व्वरसोद्भवे।
मदनुग्रहाय सुस्वादु कुर्व्वन्त्वमृतोपमं॥
एवं जप्त्वा च भुक्त्वा च शाकपाकगुणोत्तरं।
आचम्य स्वान्यथालभ्य स्मृत्वा सोमं स्वपेद्भुवि॥
भोक्तव्यन्तु द्वितीयायां चतुर्थ्यां गोरसोत्तरं(३)।
घृताक्ताः सगुड़ा राजन् पञ्चम्यां कृशरा भुवि॥
भोज्याः सर्व्वेषु भद्रेषु सदा श्यामाकतण्डुलाः।
प्रसाधितघृतं गव्यं फलं शाकमयान्वितं॥
प्रातः स्नानं ततः कृत्वा सन्तर्प्य पितृदेवताः।

---

(१) धर्म्मपत्रैर्वा इति पुस्तकान्तरे पाठः।

(२) शिवातले इति पाठान्तरं।

(३) चचारलवणं भुवि इति पुस्तकान्तरे पाठः।

भोजयेद्ब्राह्मणान् भक्त्या दत्त्वा दानं विसर्जयेत् ॥
भृत्यबन्धुजनैः सार्द्धं पश्चाद्भुञ्जीत कामयया।
एवं भद्रेषु सर्वेषु त्रिमासेषु यतव्रतः(१) ॥
करोत्येवं नरो भक्त्या वर्षमेकममत्सरी।
तस्य श्रीर्व्विजयश्चैव नित्यं सोमः प्रसीदति ॥
एतत्करोति या कन्या भव्यं प्राप्नोति सा पतिं।
दुर्भगा सुभगा साध्वी भवत्यविधवा सदा ॥
राज्यार्थी लभते राज्यं धनार्थी धनमाप्नुयात्।
पुत्रार्थी प्राप्नुयात् पुत्रानित्याह भगवान् रविः ॥
योषित्कुलाकुलविवाहमनोरमाणि
शय्यान्नपान(२) शयनाशनशोभितानि।
भद्राण्यवाप्य धनपुत्रकलत्रजातीः
जातिस्मरो भवति भारतभद्रकर्त्ता ॥

## इति भविष्योत्तरोक्तं भद्रचतुष्टयव्रतं।

———000———

सुमन्तुरुवाच।

शृणु कौरव कर्म्माणि तिथिगुह्याश्रितानि तु।
श्रुत्वैव पापहानिः स्यात् कृत्वानन्तं फलं लभेत् ॥
क्षीराशनः प्रतिपदि। पुष्पाहारो द्वितीयायां(३)।

(१) एवं भाद्रत्रिमासेषु नियतात्मा यतव्रत इति पुस्तकान्तरे पाठः।
(२) सस्यान्नपान इति पुस्तकान्तरे पाठः।
(३) पुष्पप्राशनो द्वितीयायामिति पाठान्तरं।

लवणवर्ज्जितं तृतीयायां। तिलान्नाशी(१) चतुर्थ्यां। चीरासनः पञ्चम्यां। फलाशनः षष्ठ्यां। शाकाशनः सप्तम्यां। विल्वाहारोऽष्टम्यां। पिष्टाशनो नवम्यां। अनग्निपक्वाहारी दशम्यां। एकादश्यामुपवासः। घृताशनो द्वादश्यां। पायसाहारस्त्रयोदश्यां। यवान्नाहारश्चतुर्दश्यां। गोमूत्राहारः कुशोदकप्राशनः पौर्णमास्यां। एवं प्राशनविधिः॥

उक्तानि प्राशनान्येवं विधिपूर्व्वमुदाहृतं।
चीरप्रतिपदायान्तु स सर्व्वासु विधीयते॥

स चीरप्रतिपदोक्तो विधिः कथ्यते॥ तत्र व्रतदिनात् पूर्व्वदिने त्रिकालस्नानमुपवासश्च पवित्रः सूक्तजपः शिरसा सह गायत्रीजपश्च तत्पूर्व्वदिने एकभक्तं विधायोपवाससङ्कल्पः व्रतदिवसे द्विजेभ्यो दक्षिणादानमिति एष पूर्व्वः प्राशनविधिस्तिथीनां। एवमनेन विधिना पक्षमेकं यो वर्त्तयति अश्वमेधफलं दशगुणं प्राप्नोति स्वर्गे मन्वन्तरं यावत् प्रतिवसति उपगीयमानाप्सरोगन्धर्व्वैः सह वासः। मासचतुष्टये तु सोऽश्वमेव राजसूयानां शतगुणं फलमाप्नोति। स्वर्गे उपगीयमानाप्सरोभिर्गन्धर्व्वैश्चतुर्युगानां सप्ततिं यावत् प्रवसति। समेकः संवत्सरः। य एवं नियमाद्राजन्नाश्वयुजनवम्यां वैशाखतृतीयायां कार्त्तिके पौर्णमास्यां वा तिथिव्रतानि गृह्णाति।

(१) तिलस्नायीति पुस्तकान्तरे पाठः।

ब्रह्मचारी गृहस्थो नारी नरो वा शुचिः प्रयतमानसः पुष्पदन्तविभुसालोक्यं व्रजति॥

पुष्पदन्तविभुः सूर्य्यः।

इति भविष्यत्पुराणोक्तं महाफलव्रतं।

---

ज्यैष्ठे पञ्चतपाः सायं हेमधेनुप्रदो दिवं।
यात्यष्टमी चतुर्द्दश्यौ रुद्रव्रतमिदं स्मृतं॥

अष्टमीचतुर्द्दश्याविति च। चत्वारि दिनानि पञ्चाग्निसाधनं तच्चतुर्थे दिने सायं सुवर्णधेनुं दद्यात्।

इति पद्मपुराणोक्तं रुद्रव्रतं।

---

द्वे पञ्चम्यौ हि मासस्य द्वे च प्रतिपदौ नरः।
सोपवासः सुगन्धाढ्यः शयीत प्रियया सह॥
खगनिश्चलचित्तस्तु रतिप्रीतिविवर्जितः।

खगनिश्चलचित्तः सूर्य्यध्यानपरः॥

समश्च स्मृतिशीलश्च तस्य पुण्य फलं शृणु।
दिव्यं वर्षसहस्रं तु दिव्यं वर्षशतं तथा॥
ततस्तु भावयत्येनं(१) महादेवं न संशयः।

इति भविष्यत्पुराणोक्तं सम्भोगव्रतं।

(१) तमश्नुते वत्येन इति पुस्तकान्तरे पाठः।

पौर्णमास्याममावास्यां चतुर्दश्याष्टमीषु च ।
नक्तमब्दन्तु कुर्व्वीत हविष्यैर्ब्रह्मचारिणी ॥
उमामहेशप्रतिमां हेम्ना कृत्वा सुशोभनां ।
राजतीं वापि कर्षार्द्धैः स्नापयित्वा घृतादिभिः ॥
गन्धपुष्पैरलङ्कृत्य वस्त्रयुग्मैश्च शोभनैः ।
भक्ष्यभोज्यैरशेषैश्च वितानध्वजचामरैः ॥
भोजयेच्छिवभक्तांश्च दीनानाथान् प्रतर्पयेत् ।
शक्त्या च दक्षिणां दद्याच्छिवमन्त्रैः क्षमापयेत् ॥
ताम्रकांस्यादिपात्रं वा सितवस्त्रावगुण्ठितं ।
कृत्वा वायतनं मध्ये प्रतिमान्तूपकल्पयेत् ॥
पात्रमेवायतनं उपकल्पयेत् स्थापयेत् ।
शिरस्याधाय तत्पात्रं शोभितं पुष्पमालया ॥
ध्वजशंखादिविभवैः शिवस्यायतनं नयेत् ।
लिङ्गमूर्त्तेर्महेशस्य व्रतस्यान्ते निवेदयेत् ॥
तद्वेधा स्थापयेत्पात्रमुपशोभासमन्वितं ।
शिवे प्रदक्षिणीकृत्य प्रणिपत्य क्षमापयेत् ॥
समाप्यैतद्व्रतं पुण्यं शृणु यच्च फलं लभेत् ।
द्वादशादित्यसंकाशैर्महायानैर्मनोहरैः ॥
यथेष्टमैश्वरे लोके रुद्रैः सार्द्धं प्रमोदते ।
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ॥
तदन्ते स महाभागो विष्णुलोके महीयते ।

इति शिवधर्म्मोक्तमुमामहेश्वरव्रतं ।

———ooo@ooo———

अष्टम्याञ्च चतुर्द्दश्यां नियतब्रह्मचारिणी ॥
वर्षमेकं न भुञ्जीत महाभोगजिगीषया।
वर्षान्ते प्रतिमां कृत्वा पूर्ववद्विधिमाचरेत् ॥
स्नानाद्यैस्तद्व्रतं प्राप्य पूर्व्वोक्तांस्तु गुणान् लभेत्।

अत्राप्युमामहेश्वर प्रतिमा कर्त्तव्या। पूर्ववदिति पूर्व्वव्रतोक्तवदित्यर्थः।

जाम्बूनदमयैर्यानैश्चतुर्द्वारैरलङ्कृतैः॥
गत्वा शिवपुरन्दिव्यं अशेषं भोगमाप्नुयात्।
उमामहेश्वरं नाम व्रतमीश्वरभाषितं॥
कारुण्यात् सर्व्वनारीणां नराणाञ्च विशेषतः।
तस्मात् सर्व्वप्रयत्नेन उमामहेश्वरव्रतं॥
कर्त्तव्यं नरनारीभिः सुखमक्षयमाप्नुयात्।
उमादेवीप्रियार्थन्तु नष्टेन परमार्थतः॥

## इति शिवधर्म्मोत्तरोक्तमपरमुमामहेश्वरव्रतं।

———000———

विल्ववृक्षं समाश्रित्य द्वादशाहमभोजनं।
यः कुर्य्याद् भ्रूणहात् पापान्मुक्तो भवति नारद॥
शिवोऽत्र देवता।

## इति सौरपुराणोक्तं पापमोचनव्रतं।

———000———

सूत उवाच ।

पौर्णमास्याममावास्यां वर्षमेकमतन्द्रिता ।
उपवासरता नारी नरो वा द्विजसत्तमाः ॥
वर्षान्ते सर्वगन्धाढ्यां प्रतिमाञ्च निवेदयेत् ।
साभवान्यास्तु सायोज्यं सारूप्यं वाथ सुव्रता ॥
लभते नात्र सन्देहः सत्यं सत्यं मुनीश्वराः ।

इति लिङ्गपुराणोक्तं भवानीव्रतं ।

——000——

द्वेधाष्टम्यौ तु मासस्य चतुर्द्दश्यौ तु द्वे तथा ।
अमावस्यापौर्णमास्यौ सप्तमीद्वादशीद्वयं ॥
संवत्सरमभुञ्जानः सततञ्च जितेन्द्रियः ।
ब्रह्मचर्य्य फलं यच्च यत्फलं सत्रयाजिनां(१) ॥
ऋतुगामिफलं(२) यच्च तदवाप्नोत्यभोजनात् ।
एषु तिथिस्वामिनो देवताः ।

इति यमस्मृत्युक्तं तिथियुगलव्रतपञ्चकं ।

——000@000——

चतुर्द्दश्यां तथाष्टम्यां पक्षयो शुक्लकृष्णयोः ।
योऽव्दमेकं न भुञ्जीत शिवार्च्चनरतः शुचिः ॥
यत्पुण्यमक्षयं प्रोक्तं सततं सत्रयाजिनां ।
तत् पुण्यं सकलं तस्यां शिवलोकञ्च गच्छति ॥

इति भविष्यत्पुराणोक्तं शैवोपवासव्रतं ।

(१) सर्वयाजिनामिति पुस्तकान्तर पाठः ।

(२) ऋतुगामिफलमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

कृष्णाष्टम्यां तु नक्तेन कृत्वा कृष्णचतुर्द्दशीं।
इह भोगानवाप्नोति(१) परत्र शिवमृच्छति ॥

## इति श्रीभविष्यत्पुराणोक्तं शिवनक्तव्रतं।

———ooo———

सूत उवाच।

अष्टम्याञ्च चतुर्द्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि।
वर्षमेकं ततो भुक्त्वा नक्तं यः पूजयेच्छिवं ॥
सर्व्वयज्ञफलं प्राप्य स याति परमाङ्गतिं।

## इति लिङ्गपुराणोक्तं महाव्रतं(२)।

———ooo———

पौषमासे तु संप्राप्ते पक्षयोरुभयोः सुत।
चतुर्द्दश्यामथाष्टम्यां पौर्णमास्यामथापि वा ॥
नित्यं निर्व्वर्त्य विधिवत् ततः काम्यं समाचरेत्।
विशेषपूजा तत्रैव कर्त्तव्या शुद्धचेतसा॥
नैवेद्यं यावकप्रस्थं खण्डं क्षीराज्यसंस्कृतं।
रुद्रसंख्यांस्तु वै विप्रान् भोजयेच्चैव दक्षयेत्॥
वितस्तिमात्रां प्रकृतिं यावपिष्टेन निर्म्मितां(३)।
सशृङ्गखुरलाङ्गूलीकृतभूषान्तु कारयेत्॥
शिवाय तु प्रदातव्या कपिला गुरवे ततः।
सवाहनसमायुक्ता व्रतपुण्यमतः शृणु॥

---

(१) इह लोकानवाप्नोतीति पुस्तकान्तरे पाठः।

(२) महेश्वर व्रतमिति पुस्तकान्तर पाठः।

(३) यवापिष्टेन निर्म्मितामिति पुस्तकान्तरे पाठः।

सूर्य्यकोटिप्रतीकाशैर्व्विमानैः सर्व्वकामिकैः ।
रुद्रवृन्दसमाकीर्णै रुद्रकन्यासमावृतैः ॥
वृषभस्यन्दनैर्युक्तो नानागीतरवान्वितः ।
त्रिःसप्तकुलसंयुक्तो यात्यसौ यत्र शङ्करः ।
यावत्तद्रोमसंख्यानं तत् प्रसूति कुलेषु च ॥
तावद्युगसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ।
सामीप्यं तु समासाद्य सायोज्यं याति वा ततः ॥
अनेन विधिमार्गेण खड्गं पिष्टमयं शिवे ।
समर्प्य च विधानेन चक्रवर्त्तिपदं लभेत् ॥
फाल्गुने तु तथा चक्रं निवेद्य तत्पदं लभेत् ।
चैत्रे शिवं पिष्टमयं निवेद्य च शिवाग्रतः ॥
स मुञ्चति ब्रह्महत्यां शिवलोकमवाप्नुयात् ।
वैशाखे मासि दण्डाग्रं शिवस्याग्रे निवेदयेत् ॥
हस्तार्द्धं(१)पिष्टजं कार्य्यं पूजान्ते तु निवेदयेत् ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो रुद्रलोके महीयते ॥
ज्यैष्ठे पिष्टमयं खड्गं शिवाय विनिवेदयेत् ।
मुच्यते तु कृतघ्नत्वाद्रुद्रलोके तु गच्छति ॥
आषाढ़े पिष्टजं पात्रं शिवाय विनिवेदयेत् ।
मुच्यते दुष्कृतैः सर्वैरिह जन्मनि सञ्चितैः ॥
ध्वजं पिष्टमयं यस्तु शिवस्याग्रे निवेदयेत् ।
श्रावणे तु विधानेन सोऽक्षयं मोक्षमाप्नुयात्(२) ॥

(१) हस्ताग्रमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

(२) सद्येमं मोक्षमाप्नुयादिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

मासे भाद्रपदे यस्तु गदां पिष्टमयीं ददेत्।
निधीशत्वं तु सम्प्राप्य शिवलोके महीयते॥
मासि चाश्वयुजे शूलं दत्त्वार्द्धपिष्टसम्भवं॥
शिवाय पुरतो देयं भ्रूणहत्यां व्यपोहति।
कार्त्तिके तु गदाचक्रं शिवस्याग्रे निवेदयेत्॥
सप्तजन्मकृतं पापं दहत्यग्निरिवेन्धनं।
मासे वै मार्गशीर्षे तु कमलं पिष्टसम्भवं॥
शिवाय विधिना देयं(१) सर्व्वैश्वर्य्यमवाप्नुयात्।
सर्व्वेषाञ्चैव नक्तन्तु व्रतानां कीर्त्तितं मया॥
नित्यपूजान्तु निर्व्वर्त्य काम्यपूजान्तु कारयेत्।
मासि मासि गुरोः पूजा कर्त्तव्यन्तु व्रतार्पणं॥
महापूजा(२) वत्सरान्ते कर्त्तव्या तु विधानतः।
गुरवो दक्षितव्यास्तु हेमवस्त्रान्नवाहनैः॥
ततः फलमियात्तूर्णं यथोक्तं कृत्तिकासु च।
वित्तशाठ्यान्महासेन इष्टापूर्त्तैर्वियुज्यते॥

इति कालोत्तरोक्तं शिवव्रतं।

---

(१) पुरतोदेयमिति पुस्तकान्तरे पाठः।
(२) महीपूजादिति पुस्तकान्तरे पाठः।

अथ शक्रध्वजोच्छ्रायविधिः ।

देवीपुराणे ।

शक्र उवाच ।

केन सा विधिना लब्धा मम वंशक्रमागतैः ।
ध्वजयष्टिर्व्विशेषेण तद्विधिं कथय प्रभो ॥

ब्रह्मोवाच ।

गङ्गायाः सिकतासंख्या क्रियते सुरसत्तम ।
न भवेद्दैत्यवंशस्य देवराज जिगीषतः ॥
विष्णुना घातिताः केचित् केचिद्देवेन शम्भुना ।
गुहेन निहताः केचित् मया केचिज्जिघांसिताः ॥
देवीभिर्व्बहवश्चान्ये न तथापि क्षयङ्गताः ।
सुवलोनाम दैत्येन्द्रो हंसकेतुर्म्महावलः ॥
मम वंशसमुत्पन्नोदण्डघातस्य वासव ।
तेन पूर्व्वं ज्जिता देवाः भानोर्म्मन्वन्तरे(१) विभो(२) ॥
समागताः समस्तास्तु सह शक्रेण वासव ।
यथा न शक्ताः समरे दैत्यान् योद्धुं पितामह ॥
शत्रुणा परिभूताश्च शरणं त्वाङ्गता वयं ।
तदाहं चिन्तयन्(३) शक्र विष्णुरर्च्चां दिवौकसां ॥

(१) भौत्यमन्वन्तरं विभोइति पुस्तकान्तरे पाठः ।
(२) मात्य मन्वन्तरं विभो इति पाठान्तरं।
(३) तथाहं चिन्तयन तेषां वधोपायं पराम्टषन्निति पुस्तकान्तरे पाठः

केतुना शम्भुदत्तेन उच्छ्रितेन न संशयः।
उक्ता मया सुराः सेन्द्रा विष्णुराराध्यतां प्रभुः॥
स दास्यति महाकेतुं सर्व्वदैत्यविमोहनं।
ते गता मम चादेशात् क्षीरोदे यत्र केशवः॥
परापरस्वरूपस्थमज-मव्यय-शाश्वतं।
श्रीवत्साङ्कं महाबाहुं कौस्तुभोरस्कभूषितं॥
स्तुवन्त्येते तदा सेन्द्रा देवाः शत्रुभयार्द्दिताः।
तुतोष केशवस्तेषां वरं ब्रूहि पुरन्दर॥
तदा तैर्याचितोदेवः केतुन्देहि सुरारिहं।
तेना सौ भूषयित्वा तु दत्तो देवभयापहः॥
श्वेतछत्रं महातेजः सुमालाकटकान्वितं।
सूर्यायुतसमप्रख्यं किङ्किणीरवकान्वितं॥
चामरव्यजनोपेतं शत्रुलक्षणलक्षितं(१)।
तं दृष्ट्वासौ वलं सैन्यं भग्नं स च निपातितः॥
तदा प्रभृति हे शक्र केतुस्तव कुलागतः।
अन्येषाञ्चैव राज्ञां तदुच्छ्रायो विजयावहः॥
मया हरेण देवेन विष्णुना वासवेन च।
दत्तं यः कश्चिदेवेमं नृपतिस्त्वं श्रयिष्यति(२)॥
स समस्ताधिपोभूमौ अजेयश्च भविष्यति।
एवं शक्रस्य ब्रह्मणा कथितं केतुकारणं॥
मयापि तव विद्योश सर्व्वन्तच्च प्रकाशितं।

(१) शत्रुलक्षण लक्षितमिति पुस्तकान्तरे पाठः।
(२) दत्तं यः कश्चिदेवेदं नृपतिस्तच्छ्रोयिष्यतीति पाठान्तरं।

नृपवाहन उवाच ।

भगवन् श्रोतुमिच्छामि तस्यचोच्छ्रायणं यथा ।
क्रियते दिनऋक्षे तु द्रव्यं मन्त्रविधिस्वद ॥

अगस्त्य उवाच ।

ब्रह्मणा कथितं शक्रे बृहस्पतिसमीपतः ।
यथा प्रवक्ष्यामि तथा विधिङ्केतोः समुच्छ्रये ॥
शुभाहे ऋक्षकरणे मुहूर्त्ते शुभमङ्गले ।
दैवज्ञः सूत्रधारश्च वनं गच्छेत् सहायवान् ॥
देवीप्रतिष्ठा विधिना यात्रा या च प्रचोदिता ।
यात्राविधिना च वनं गच्छेत् ।
गत्वा वृक्षं शुभं वीक्ष्य धवार्जुनप्रियङ्गुकं ।
उडुम्बराश्वकर्णौच पञ्चैते शोभना नृप ॥
प्रियङ्गुको वीजकः अश्वकर्णः सर्ज्जः ।
ध्वजार्थं वर्ज्जयेत् वत्स देवतोद्यानजान्द्रुमान् ।
कन्यमध्योत्तमा यष्टोः करमानेन कल्पयेत् ॥
एकादशकरा वत्स नवपञ्चकरापरा ।
अवनद्धां क्रमिचितां यथापक्षिनिकेतनां ॥
वल्मीकपितृवनजां सुशुष्कां कोटरान्तथा ।
कुब्जान्धषण्डसिक्ताश्च तथा स्त्रीनामगर्हितां ॥
विद्युद्वज्रहताश्चैव दग्धां च परिवर्जयेत् ।
अलाभे चन्दनं चाम्रं शालं शाकमयं तथा ॥
कर्त्तव्यं शक्रचिह्नार्थं नान्यवृक्षोद्भवं क्वचित् ।

शुभभूमिभवं ग्राह्यं शुभतोयं शुभावहं ॥
ततः संपूजयेद्वृक्षं प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा ॥
नमो वृक्षपते वृक्ष त्वामाचरति पार्थिवः।
ध्वजार्थं तत्त्वतोनाथ(१) नान्यथा उपगम्यतां ॥

पूजा मन्त्रः।

रात्रौ देयो बलिस्तत्र युगवृक्षे तथैव च।
वासवार्थं महावृक्ष कृत्वान्यत्र च गम्यतां ॥
ध्वजार्थं देवराजस्य न क्रान्तिस्तव तत्र च।

वलिमन्त्राः।

वराह संहितोक्तास्त्वत्र मन्त्राः।

यानीह वृक्षे भूतानि तेभ्यः स्वस्ति नमोस्तु ते।
उपहारं गृहीत्वेमं क्रियतां वासमर्पय ॥
पार्थिवस्त्वां वरयते स्वस्तितेस्तु नगोत्तम।
ध्वजार्थं देवराजस्य पूजेयं प्रतिगृह्यतामिति ॥
पूजयित्वा ततोवृक्षं वलिं भूतेषु दापयेत्।
प्रभाते च्छेदयेद्वृक्षं सुभस्वप्नादिदर्शनैः ॥
शुक्लाम्बरं नरञ्चैव समुद्रतरणं नदी।
वृक्षान् ग्रामान् शुभान् कौरानारोहेद्देवतालयं ॥
देवद्विजास्तथा साधुलिङ्ग ब्रह्महरेरपि।
प्रतिमा पूजिता स्वप्ने क्षिप्रं सिद्धिप्रदायका ॥
मत्स्यमांसं दधिलाभं रुधिरं मृतरोदनं।
अगम्यागमनं कृत्वा आशुसिद्धिफलप्रदा ॥

---

(१) ध्वजार्थं देवराजस्येति पाठान्तरं।

द्रुमाद्रिलङ्घनं धन्यं शत्रुनाशं तथाशुभं ।
फलं पुष्पं सितं दूर्व्वां स्वप्ने लब्ध्वा जयेन्महीं ॥
शङ्खा गावस्तथादन्तिलाभो राज्यप्रदायकः ।
गौः सवत्सा नवसूता दृष्टा पुत्रफलप्रदा ॥
पङ्कि उत्तरणं कूपे व्याधिमोचकरश्चिरात् ।
एवं स्वप्नान् शुभान् दृष्टा ततश्छिन्देत पादपं ॥
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा मधुवत् प्राक् पशुं ददेत्(१) ।
पूर्व्वोत्तरे पतन् शस्तो अशब्दो अव्रणः शुभः ॥
अनन्तपादपेचान्ये अन्यथा तु परित्यजेत् ।
अष्टाङ्गुलं त्यजेन्मूलमग्रांर्द्धन्तु जले क्षिपेत् ॥
अर्द्धं चतुरङ्गुलं शेषवृक्षं जले क्षिपेत् ।
तथा तमानयेवत्स शकटेन वृषैरपि ॥
तं जलक्षिप्तं वृक्षं ।
प्रधानैर्लक्षसम्पन्नैर्नयेत पुरतः पुरं ।
नीयमाना यदा यष्टिः समा वा चतुरस्रका ॥
वृत्ता वा भङ्गमाधत्ते राज्ञः पुत्रपुरोहितान् ।
आरभङ्गे बलिं भिंद्यान्नेम्यनाशे क्षयन्तथा ॥
[भिंद्यात् नाशयेत्] राजादीन् नेम्यन्नेमिसम्बन्धि काष्ठं ।
रथस्यअक्षभङ्गेन शान्तिस्तत्र तु कारयेत् ।
इन्द्रक्षत्रे तिमन्त्रेण जातवेदसयापि वा ॥
तथा नीत्वा शुभे लग्ने(२) पुरस्तादुपवेशयेत् ।

---

(१) मधुरक्ताक्तपां शुना इति पुस्तकान्तरे पाठः।

(२) यथा शक्त्य ति पुस्तकान्तरे पाठः ।

द्वारशोभां पथिरथ्यागृहे च देव कारयेत् ॥
पटुपटहनिनदांश्च वेश्याः शङ्खद्विजातयः ।
मङ्गलैर्वेदघोषैश्च नयेयुर्ध्वजं चोच्छ्रयः ॥
वस्त्रैरखण्डजलोमोत्थैः(१) शुभैःस्रग्भिर्यथाक्रमं ।
नन्दोपनन्दसंज्ञाश्च कुमार्य्यः प्रथमांशकाः ॥
देव्यो जयविजयाख्या षोडशांशव्यवस्थिताः ।
अधिके शक्रजननी जयन्तश्चैव देवताः ॥

षोडशेषु अधिके सति अयमर्थः । अथोत्तरं षोडशाधिकाः । ध्वजभागात्ध्वज(२) स्तम्भस्तस्य भाव्याः । तत्र प्रथमे द्वितीये च भागे प्रतिदिशं द्वे कुमार्य्यौ कार्य्ये तृतीयेऽेका । तासामायामविस्तारौ भागाविमौ तत्र प्रथमांशगाः कुमार्य्यः प्रतियुग्मं नन्दोपनन्दावेति द्वितीयांशगा जया विजया चेति । तृतीयांशगाः प्रत्येकं शक्रजननी देव्यो ज्ञेयाः । ध्वजमस्तके दत्तोपदत्ताचेयादेवताः ध्वजप्रमाणत्र्यंशोयं परिधिः प्रथमः (षोडशांशविहीनानि कुर्य्याच्छेषाणि बुद्धिमान् ।) वक्ष्यमाण भूषणानामिदं मानं । ध्वजं त्रिभागं कृत्वा एकस्य भागस्य दैर्घ्येण प्रथमभूषणपरिधिं निर्द्धार्य्य शेषाणि यथोत्तरं षोडशांशहीनपरिधीनि कुर्य्यात् । अतएव भूषणप्रवेशयोग्यं ध्वजस्य स्थौल्यं कार्य्यमित्युक्तं भवति । भूषणानि विचित्रवर्णानि स्वयम्भुवे प्रथमे दद्यात्(३) ।

(१) वीरुडीरथैरिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

(२) स्त्र्योभागादिति पाठान्तरं ।

(३) रत्नानां विचित्रवर्णां स्वयम्भुवे प्रथमोदद्यादिति पाठान्तरं ।

सुरक्तां चतुरस्राञ्च विश्वकर्म्माद्वितीयकां।
अष्टम्यान्तु स्वयं शक्रो नीलरक्तां प्रदापयेत्॥
कृष्णां यमस्य वृत्ताञ्च वरुणस्य षडस्त्रिका:।
मञ्जिष्ठाजलदाकारा वायुर्देवो मयूरकां॥
नीलवर्णां च तां दद्यात् स्कन्दो बहुविचित्रितां।
वृत्तान्तु दहनेर्दद्यात् स्वर्णाभां विष्णुमष्टमीं।
वैदूर्य्यसदृशमिन्द्रो ग्रैवेयन्दापयेत् स्वयं॥
अर्द्धचन्द्राकृतिः सूर्य्यो विश्वेदेवास्तु पद्मवत्।
ऋषयो निवसन्दद्यानीलनीलोपलोपमं॥
गुरुणा शुक्रेण ततो नक्षत्रैश्च समन्ततः।
न्यस्तं गृहे विचित्रञ्च तथैव बहुमातृभिः॥
यद्यद्येनैव दत्तन्तु केतो यस्तस्य भूषणं।
तद्दैवतं विजानीयाद्यत्राहनि समुच्छ्रयेत्॥
उच्छ्रयदिने तां तान्देवतां पूजयेदित्यर्थः।

प्रथमं प्रविशति भूमौ यष्टिः साहञ्च राष्ट्रञ्च प्रथमं पुरुष प्रयत्नात् पूर्व्वं उच्छ्रितमात्रैव। वालानां तालशब्दैर्दैशविघातं समाचष्टे। नृपवन्धकरी विशीर्णा शुभावहा सर्व्वशान्ता च शम्भुसूर्य्य-यमशक्रसोमधनदवारुणाः।

वह्नीश ऋषिमन्त्रैश्च होतव्यादधिवाक्षता:।
शम्भुब्रह्मार्द्दिश्वरः दध्यक्षतैश्चमिश्रा होतव्याः॥
शुक्रस्कन्दगुरुरुद्रअप्सरादीन् प्रपूजयेत्।
हुत्वा तु विधिवद्वह्निज्वालां लक्षेत बुद्धिमान्॥
सुतेजाः सुप्रभादीप्तः संहतो रविसप्रभः।

रक्तांशुकसमाकारोरथभेरी स्वनशुभः ॥
शङ्खदुन्दुभिमेघानां नादाः शस्तास्तु पावके।
ततः कदलीचुदण्डान् पताकांश्च समुच्छ्रयेत् ॥
अन्याश्च विविधाः शोभाः शक्रकेतुसमुच्छ्रये।
प्रोष्ठपदेतु अष्टम्यां शुक्लायां शोभनर्चके ॥
आश्विने वाथ शुक्लायां श्रावणे वा समुच्छ्रयेत्।
पौरजननम्मवृन्दैः पटुभेरीविनोदितं ॥
वितानध्वज शोभाढ्यं पताकाभिः समुज्ज्वलं।
विष्णोश्शक्रमन्त्रेण सिद्धरचाकृतेन च ॥
सिद्धं जनितानिशयं रचा कृते न भस्मना प्रयुक्ते न।
दृढ़ मातृकदण्डस्य शुभतोरणमङ्गलं ॥
मातृकदण्डौ तोरणस्तम्भौ।
अविलम्बितमुत्थानमभग्नपीटकं समं।
पीटकं भूषणं।
तद्दृतं वा समुत्थाप्य केतुवासवयोर्विभो।
वराह संहितायां।
छत्रं ध्वजादर्शफलार्द्धचन्द्र
विचित्रमालाकदलीचुदण्डैः।
सव्यालिसिंहैः पिटकैर्गवाचै
रलङ्कृतो दिच्चु च लोकपालैः ॥
अच्छिन्नरज्जुं दृढ़काष्टमातृकं
सुश्लिष्टयन्त्राग्रलयादृतोरणं।
उत्थापयेच्छक्रसहस्रचच्चुषः

सारद्रुमा भग्नकुमारिकाखिति ॥

उच्छिन्नं लक्षयेत् प्राज्ञः काकोलूककपोतकैः।
नचोपवेशनं दद्यादन्येषामपि पक्षिणां ॥
यथोद्देशं ततः कुर्य्यात्नखण्डितैर्य्यथाविधि।

उद्देशो भूभागः।

तथास्तु संस्थितं पूज्य सुखयन्त्रसुयन्त्रितां ॥
रात्रौ जागरणं कुर्य्यादिन्द्रमन्त्रानुकीर्त्तनैः।
पुरोहितः सदैवज्ञः शुभशान्तिरतः सदा ॥
यन्त्रपाते नृपं हन्यात्पातकान्महिषी वधं।
पिटके युवराजस्य सवितानानुकम्पने ॥
राष्ट्रे तोरण पातेन ध्वजे अन्नक्षयो भवेत्।

ध्वजे ध्वजोत्सवे क्रियमाणे।

पतने शक्रदण्डस्य नृप मन्युं समादिशेत्।
क्रमिजालकउत्थानशलभात्स्कराद्भयं ॥
सप्तमे संस्थिते शान्तिर्नृपस्य नगरस्य च।
यावच्चोच्छ्रित आस्तेतावत्पौराः सदा हृष्टाः ॥
केतोर्निरतायजने भुञ्जीरन् विप्रकन्याश्च।

भुञ्जीरन् भोजयेत्।

विहतश्छिन्नकेतुस्तिष्ठति दिवसाष्टकं यावत्।
याते पाते कुर्य्यादुच्छ्रायणे यादृशी पूजा ॥
रात्रौ शुभकृत्पतनन्नोदृष्टं काककपोतिकाद्यैः।
नृपं याति सहराष्ट्रं यस्त्वेवं कारयेत् केतुम् ॥
नगरे वा पुरे वा खेटे वा यद्येवं कुर्व्वन्ति पौराः।

पुरनगरस्य द्वारि वृषसिंहखगस्पृशेत् पुनःकेतुं ॥
समस्त दोषाणां नाशनं जयदं परं।
एवं पूर्व्वं हरिः केतुं प्राप्तवान् वृषवाहनात्।
तथा ब्रह्माप्यनेनैव ब्राह्मणः शक्रमागतः॥
तेन सोमाय दत्तोऽसौ ततो दक्षं समागतः।
तदा प्रभृति कुर्व्वन्ति नृपा अद्यापि वोत्सवं॥
एवं यः कारयेद्राजा केतुर्व्विजयकारकः(१)।
तस्य पृथ्वी वनोपेता सद्वीपा वशगा भवेत्(२)॥

विष्णुधर्म्मोत्तरात्।

पुष्कर उवाच।

शिविरात् पूर्व्वदिग्भागे भूमिभागे तथा शुभे।
प्रागुदक्प्लवने कुर्याच्छक्रार्थं भवनं शुभं॥
वासोभिः शयनैः शुभ्रैर्नानारागैस्तथैव च।
ततः शक्रध्वजस्थानं मध्ये संस्थाप्य यत्नतः॥
मघवन्तं पटेकुर्यात्(३) तस्य भागे तु दक्षिणे।
वामभागे पटेकुर्याच्छचीं देवीं तथैव च॥
प्रोष्ठपदे सितपक्षे प्रतिपत्प्रभृतिक्रमात्।
तयोस्तु पूजा कर्त्तव्या सततं वसुधाधिपैः॥

---

(१) केतुं विजयकारकमिति पुस्तकान्तरे पाठः।
(२) सप्तद्वीपा वशा भवेदिति पुस्तकान्तरे पाठः।
(३) मघवन्तं पटे कुर्य्यादिति पुस्तकान्तरे पाठः।

वनप्रवेशविधिना शक्रयष्टिं ततो नृपः ।
नानयेद्गोरथेनाथ नानयेत्(१) पुरुषैरथ ॥
अर्जुनस्याजकर्णस्य प्रियकस्य वचस्य च ।

प्रियको वीजकः ।

सुरदारुकस्य तथा(२) तथैवोडुम्बरस्य च ।
चन्दनस्याथ वा राम पद्मकस्याथ वापदि ॥
अलाभे सर्व्ववृक्षाणां यष्टिं कुर्वीत वैणवीं(३) ।
सुवर्णवर्णां धर्म्मज्ञस्तांश्च सम्यक् प्रवेशयेत् ॥
प्रौष्ठपदे सितपक्षे अष्टम्यां रिपुसूदन ।
द्रुमप्रमाणा विज्ञेया शक्रयष्टिर्द्विजोत्तम ॥
चतुर्भिरङ्गुलैर्हीना साग्रे भवति शर्म्मदा ।
अष्टाभिश्च तथा मूले च्छित्वा तोये च संक्षिपेत् ॥
तोयादुद्धृत्य नगरं सम्यगेव प्रवेशयेत् ।
तोयादुद्धृत्य(४) नगरं पताकाध्वजमालि च ॥
सिक्तराजपथं कुर्यात्तथालङ्कृत वालकं ।
नटनर्त्तक सङ्कीर्णं तथा पूजितदैवतं ॥
संपूजितगृहं राम तथा पूजितवाङ्मयं ।
पौरैरनुगतोराजा सुवेशैः फलपाणिभिः ॥

---

(१) नयनैः पुरुषै रथ इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

(२) दारुणस्य तथातिनेति पुस्तकान्तरे पाठः ।

(३) वैष्णवीमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

(४) यस्याः प्रवेश इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

अष्टम्यां वाद्यघोषेण तान्तु यष्टिं प्रवेशयेत्।
ततस्तु पटयोर्म्मध्ये यन्त्रन्यस्तां तु कारयेत्॥
तस्मिन्नेवाह्नि धर्म्मज्ञ वस्त्रछन्नां निधापयेत्।
प्राक्च्छन्नां तां ततः कुर्य्याद्वस्त्रैः सञ्छादितां शुभैः॥
पूजितां पूजयेत्तान्तु यावत्सा द्वादशी भवेत्।
एकादश्यां सोपवासो नृपः कुर्यात् प्रजागरं।
सम्वत्सरेण सहितो मन्त्रिणा सपुरोधसा॥
रात्रौजागरणं कार्य्यं नागरेण जनेन तु।
स्थाने स्थाने महाभागैर्देयाः प्रेङ्खास्तथा मधु॥
प्रेङ्खा हिन्दोलिका। मधु मद्यं।
पूजयेन्नृत्यगीतेन रात्रौ शक्रं नराधिपः।
द्वादश्यान्तु शिरस्नातो नृपतिः प्रयतस्ततः॥
मन्त्रेणोद्यापनं कुर्य्याच्छक्रकेतोः समाहितः।
देवीपुराणेऽष्टम्यामुद्यापनमुक्तं तेनानयोर्व्विकल्पः॥
सुयन्त्रितं तु कुर्य्यात्तद्दृढस्तम्भचतुष्टयं।
पूजयेत्तं महाभाग गन्धमाल्यान्नसम्पदा॥
नित्यञ्च पटयोः पूजां यष्टिपूजान्तु कारयेत्।
वलिभिस्तु विचित्राभिस्तथा ब्राह्मणपूजनैः॥
नित्यञ्च जुहुयान् मन्त्रान् स पुरोधाश्च वैष्णवान्।
नित्यं गीतेन नृत्येन तथा शक्रञ्च पूजयेत्॥
द्वादश्यां पूजयेद्राजा ब्राह्मणान् धनसञ्चयैः।
विशेषेण च धर्म्मज्ञ साम्वत्सरपुरोहितौ॥

उत्थाने च प्रवेशे च शक्रं सूयान्नराधिपः ।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण कालवित्सपुरोहितः ॥
प्रयतः पूजयेद्राजा तदा दिनचतुष्टयं ।
पञ्चमे दिवसे प्राप्ते शक्रकेतुं विसर्ज्जयेत् ॥
पूजयित्वा महाभाग वलेन च तुरङ्गिणा ।
नीत्वा करीन्द्रैस्त्रितयन्ततोनद्यां प्रवाहयेत् ॥

पटद्वयं ध्वजश्चेति त्रितयं ।

वाद्यघोषेण महता सङ्गीतिस्तत्र कीर्त्तिता ॥
पौरजानपदास्तत्र क्रीडां कुर्युस्तथाम्भसि ।
उत्सवश्च तथा कार्य्यो जलतीरगतैर्म्महान्॥

एतद्विधानं नृपतिस्तु कृत्वा
प्राप्नोति वृद्धिं धनवाहनानां ।
नाशन्तथा शत्रुगणस्य राम
महत् प्रसादन्त्रिदशाधिनाथात् ॥

इन्द्रध्वजशिरोभज्येत् पतेदिन्द्रध्वजो यदि ॥
भज्यते शक्रयष्टिर्वा नृपतेर्नियतम्वधः ।
यन्त्रभङ्गे तथाज्ञेयं रज्जुच्छेदे तथैव च ॥
मातृकायास्तथा भङ्गे परचक्रभयं द्विज ।

मातृका तोरणस्तम्भः ।

दिव्यान्तरिक्षभौमाश्च उत्पातास्तत्र वै सदा ।
तेषां तीव्रभयाग्नेयं फलमत्यन्तदारुणं ॥
निलीयते च क्रव्यादाः शक्रयष्टौ तथा द्विज ।
राजा वा म्रियते तत्र सर्व्वदेशो विनश्यति ॥

इन्द्रध्वजापकरणं यत्किञ्चिद्द्विजसत्तम।
विनाशोऽन्यस्य विज्ञेया पीड़ा नगरवासिनां॥

अन्यस्य एकतमस्य।

इन्द्रध्वजनिमित्ते तु प्रायश्चित्तमिदं स्मृतं।
इन्द्रयागं पुनः कुर्य्यात् सौवर्णे नन्दके वने(१)॥
राज्यं दत्त्वा च गुरवे बन्धनानि प्रमोचयेत्।
सम्राहं पूजयित्वा च ध्वजं दद्याद्द्विजातिषु॥
शान्तिरैन्द्रीभवेत्(२)कार्य्या ब्राह्मणानां दिने दिने।

गावश्च देया द्विजपुङ्गवेभ्यो
हिरण्यवासोरजतैः समेताः।
एवं कृते शान्तिमुपैति पापं
वृद्धिस्तथास्यान्मनुजाधिपस्य॥

श्रीराम उवाच।

शक्रोच्छ्रायेति ये मन्त्राः सोपवासो नृपः पठेत्।
तानहं श्रोतुमिच्छामि सर्व्वधर्म्मभृताम्बर॥

पुष्कर उवाच।

शृणु मन्त्रानिमान् सम्यक् सर्व्वकल्मषनाशनान्।
प्राप्ते शक्रध्वजोच्छ्राये यान् पठेत् प्रयतो नृपः॥
परखेन्द्रजितामित्र वृत्रहत्याकनाशन(३)।

(१) सौवर्णमिन्द्रकेतुना इति पुस्तकान्तरे पाठः।

(२) शान्तिरौद्री इति पाठान्तरं।

(३) वरखेन्द्रजितामित्र वृत्रहन्पाकशासन इति पाठान्तरं।

देव देव महाभाग त्वं हि भूयिष्ठताङ्गतः॥
त्वं प्रभुः शाश्वतश्चैव सर्व्वभूतहिते रतः।
अनन्ततेजा विरजा यशोविजयवर्द्धनः॥
प्रयतस्त्वं प्रभुर्नित्यमुत्तिष्ठ सुरपूजितः।
ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान् सर्व्वलोकपितामहः(२)॥
रुद्रः पिनाकभृद्दृप्तः शतरुद्रियसंयुतः।
यज्ञस्य नेता कर्त्ता च तथाविष्णुरुरुक्रमः॥
तेजस्तहर्द्धयत्यर्को नित्यमेव महाबलः।
तेजो धारय देवेश जय शक्र सुहृष्टिद॥
विष्णुर्गदाधरः श्रीमान् शङ्खचक्रासिशार्ङ्गवान्।
स ते तेजोदधात्वद्य जय शक्र महाबल॥
अनादिनिधनो देवो ब्रह्मकायः सनातनः।
अग्नितेजा महाभागो रुद्रात्मा पार्व्वतीसुतः॥
कार्त्तिकेयः शक्तिधरः षड्वक्त्रोऽसि गदाधरः।
स ते वरेण्योवरदः तेजोवर्द्धयतां प्रभो॥
देवसेनापतिस्कन्दः सुरप्रवरपूजितः।
आदित्या वसवो रुद्राः साध्या देवास्तथाश्विनौ।
भार्गवोऽङ्गिरसश्चैव विश्वेदेवा मरुद्गणाः॥
लोकपालास्त्रयश्चैव चन्द्रःसूर्य्योऽनिलोऽनलः।
देवाश्च ऋषयश्चैव यक्षगन्धर्व्वराक्षसाः॥
समुद्रा गिरयश्चैव नद्योभूतानि यानि च।

(२) ब्रह्मलोक पितामह इति पुस्तकान्तरे पाठः।

तेजस्तु प्राप्तिःसत्यञ्च लक्ष्मीः श्रीः कीर्त्तिरेव च ॥
प्रवर्त्तयन्तु ते तेजो जय शक्र शचीपते।
तवचापि जयं नित्यमिहसंपद्यते शुभं ॥
प्रसीद राज्ञां विप्राणां पूजनादपि सर्व्वशः।
तव प्रसादात् पृथिवी नित्यं सस्यवती भवेत्(१) ॥
शिवं भवतु निर्व्विघ्नं शाम्यन्तां मुनयोभृशं।
नमस्ते देवदेवेश नमस्ते बलसूदन ॥
नमो विघ्ननमस्तेस्तु सहस्राक्ष शचीपते।
सर्व्वेषामेवलोकानां त्वमेकः परमा गतिः ॥
त्वमेव परमः प्राणः सर्व्वस्यास्य जगत्पते।
ईशो ह्यसि च संहृष्टः त्वमनन्तः पुरन्दरः ॥
त्वमेव मेघस्त्वम्वायुस्त्वमग्निर्वैद्युतो रविः।
त्वमत्र घनविज्ञप्ता मेघवाहुः पुनर्घनः ॥
त्वञ्च तेजः परङ्घोरं घोषवांस्त्वम्बलाहक।
स्रष्टा त्वमेव लोकानां संहर्त्ता चापराजितः ॥
त्वं ज्योतिः सर्व्वलोकानां त्वमादित्यो विभावसुः।
त्वं महाभूतमाश्चर्य्यं त्वं राजा त्वं सुरोत्तम ॥
त्वं विष्णुस्त्वं सहस्राक्षस्त्वं देवस्त्वं परायणः।
त्वमेवमम्टतन्देव त्वं मोक्षः परमार्च्चितः ॥
मुहूर्त्तस्त्वं स्थितिः सर्व्वः नरस्त्वं वै पुनःक्षणः।
शुक्रस्त्वं वहुलश्चैव कलाः काष्ठास्त्रुटिस्तथा ॥
संवत्सरर्त्तवो मासा रजन्यश्च दिनानि च।

(१) सत्यवती भावेदिति पुस्तकान्तरे पाठः।

त्व मुहूर्त्तसगिरिवरा वसुन्धरा
स भास्करं वितिमिरमम्बरं तथा ।
महोदधिः सतिमिङ्गिलस्तथा
उर्म्मिमान् वहुकरमाकराकुलः ॥

महद्यशस्त्वमिह सदाभिपूज्यः
महर्षिभिर्मुदितमनोमहात्मभिः ।
अभिष्टुतः पिवसि च सोममध्वरे
वषट् कृतान्यपि च हवींषि भूतये ॥

त्वं विप्रैः सततमिहेज्य सफलार्थं
वेदार्थेष्वतुल वलोद्यगीयसे च ।
त्वं वेदैर्यजन परायणा द्विजेन्द्राः
वेदाङ्गान्यभियन्ति सर्व्ववेदैः ॥

यज्ञस्यहर्त्ता भुवनस्य गोप्ता
वृत्तस्य हन्ता नमुचेर्न्निहन्ता ।
कृष्णेवसाने च सदा महात्मा
सत्यानृते यो विविनक्ति लोके ॥

यं वाजिनं गर्भमेवासुराणां
वैश्वानरं वाहनमभ्युपैति ।
नमः सदास्मै त्रिदशेश्वराय
लोकत्रयेशाय पुरन्दराय ॥

अजोऽव्ययः शाश्वत एकरूपो
विष्णुर्वराहः पुरुषः पुराणः ।

त्वमध्वरः सर्व्वहरः कृशानुः
सहस्रशीर्षः तमशन्युरिन्द्रः॥

कविं सप्त जिह्वं चातारमिन्द्रं सवितारमिन्द्रं सुरेशं शशाङ्कं शङ्करं शङ्कशनुं वृत्रहणं सुसेन मस्माकं वीरा उत्तरे भवन्तु।

वातारमिन्द्रेन्द्रियकारणात्मा
जगत् प्रधानञ्च हिरण्य गर्भं।
लोकेश्वरं देववरं वरेण्य
मानन्दनित्यं प्रणतोस्मि नित्यं॥

एवं देववरस्य कीर्त्तनै
र्महात्मन स्त्रिदशपतेः सुसंयतः।
अवाप्य कामान् मनसोभिरामान्
स्वर्गांल्लोकानायाति च देह भेदैः॥

वराह संहितायां॥

संपूरणे वोच्छ्रयणे प्रवेशे
स्नानं यथा माल्यविधौ विसर्जे।
पठेदिमान्नृपतिः सोपचासो
मन्त्राः शुभाः पुरुहूतस्यकेतोः॥

संपूरणं पताकारोपणं तत्र विशेषमन्त्रश्च।

हरार्क वैवस्वतशक्र सोमै
र्धनेश वैश्वानर पारमृद्भिः॥
महर्षिसङ्घैः सदिगप्सरोभिः
शुक्राङ्गिरस्कन्द मरुद्गणैश्च।

यथार्जपूज्य स्करतैक रूपैः
समर्थितश्चा भरणैरुदारैः ॥
तथेहताम्याभरणानि देव
शुभानि संप्रीतमना गृहाण ।

इति शक्रध्वजो छायविधिः ।

श्रीमार्कण्डेय उवाच ।

इदमन्यत् प्रवक्ष्यामि पञ्चमूर्त्तिव्रतं तव ।
संवत्सरः स्मृतो वह्निस्तथार्कपरिवत्सरः ॥
इष्टापूर्त्तस्तथा सोमो अनुपूर्व्वः प्रजापतिः ।
उत्पूर्व्वश्च तथा प्रोक्तो देवदेवो महेश्वरः ॥
तेषां मण्डलविन्यासः प्राग्वदेवविधीयते ।
प्राग्वदिति नीलश्वेतरक्तश्वेत पीत कृष्णकैः ॥
मण्डल विन्यासाः कर्त्तव्याः ।
प्राग्वत् प्रपूजनं कार्य्यं होमः कार्य्यस्तथा विधिः ।
तिलैर्व्रीहियवैश्चैव घृतेन सितसर्षपैः ॥
तल्लिङ्गै रथकामन्त्रै र्नामभिः प्रत्यहं क्रमात् ।
नक्ताशनस्तथा तिष्ठेत् प्राग्वद्दिवसपञ्चकं ॥
चैत्रशुक्लं समारभ्य पञ्चमीप्रभृतिक्रमात् ।
संवत्सराख्ये वर्षेतु व्रतमेतत् समाचरेत् ॥
पूजावसाने दातव्याः सुवर्णाः पञ्च यादव ।
चतुर्व्वेदविदे देयं शाखाभेदेन यादव ॥
एकैकं पञ्चमं देयं तथा काल विदो भवेत् ।

यथेष्टं लोकमाप्नोति कामचारी विहङ्गमः॥
व्रतेनानेन धर्म्मज्ञः पूज्यमानः सुरासुरैः।

मानुष्य माषाद्य भवत्यरोगी
वरेण रूपेण बलेन युक्तः।
नृपप्रतापान्वितश्च सङ्घी
द्विजोत्तमो वा बहुयज्ञयाजी॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं संवत्सरव्रतं।

———000———

ब्रह्मोवाच।

भूयस्ते सम्प्रवक्ष्यामि देव्याराधनमुत्तमं।
यत् कृत्वा सर्वकामानां प्राप्तिस्तृप्तिर्भविष्यति॥
दन्तिदन्तमयैर्दण्डै र्हेमबन्धैः सुशोभनैः।
विचित्र पद्मरागाद्यैर्मणिभिस्तु सुशोभितं॥
तथातैः कारयेद्देव्याः सार्वभौमं मनोरमं।
दुकूलवस्त्रसञ्छन्नं अर्द्धचन्द्रोपशोभितं॥
घण्टाकिङ्किणिशोभाढ्यं दर्पणैरुपशोभितं।
तं रथं पूजयेच्छक्र जातीकुसुममल्लिकैः॥
पारिजातकपुष्पैश्च यक्षकर्दमचन्दनैः।
सुगन्धिधूपितं कृत्वा देवीं तत्र निवेशयेत्॥
प्रतिमां शोभनां वत्स महादैत्य क्षयं करीं।
पूजयेद्रथ विन्यस्तां विन्यस्तां सर्वमङ्गलां॥
दुर्गा कात्यायनी देवी वरदा विन्ध्यवासिनी।

निशुम्भशुम्भमथनी महिषासुरविमर्द्दिनी ॥
उमा क्षमावती माता शङ्करस्यार्द्धकायिनी ।
प्रसीदतु सदामेऽस्तु यच्च नो वाञ्छितं हृदि ।
अनेन बलिपूर्व्वेण नमस्कारयुतेन च ।
पूजयित्वा ततो राजासमन्ताद्भ्राम्य गीतकैः ॥
पञ्चमीसप्तमीपूर्णानवम्येकादशीषु च ।
तृतीयाशिवविघ्नेशदिवसेषूत्सवेषु च ॥
महानदीवनोत्सङ्गपर्वतश्रवणेषु च ।
तत्र मण्डपविन्यासं महदिष्टकनिर्म्मितं ॥
शैलं वा मृण्मयं वापि कृत्वा वास्तुविभागवित् ।
सर्वलक्षणसम्पूर्णां सर्वशोभासमन्वितां ।
पूर्वं च कारयेच्छक्र पश्चाद्यात्रां समारभेत् ॥
महाजनपदोपेतां महास्त्रीसङ्घसङ्कुलां ।
सर्व्वान्नपाननैवेद्यैः समस्तैरपि पूजयेत् ॥
दद्याच्चदिग्बलिं शक्र पूर्वदिक्षु समं ततः(१) ।
भूतवेतालसङ्घस्य मन्त्रेणानेन सुव्रत ॥
जयत्वं कालिका भूते सर्वभूतसमावृता ।
रक्ष मां निज भूतेभ्यो बलिं गृह्ण सदा प्रियं ॥
मातर्म्मातर्व्वरे दुर्गे सर्वकामप्रसाधनि ।
अनेन बलिदानेन सर्व्वान् कामान् प्रयच्छ मे(२) ॥
एवं दत्त्वा बलिं शक्र तथा देव्यावतारयेत् ।

(१) सर्व्वादिक्षु समन्तत इति पाठान्तरं ।

(२) दिव्यान् लोकान् प्रयच्छमे इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

विन्यसेद्भद्रपीठे तु मण्डलैरुपशोभितां ॥
तत्रस्थां प्रापयेद्देवीं हेमरूप्यैश्चताम्रजैः।
कलशैरष्टसहस्रेण गन्धोदकसुपूरितैः ॥
समस्तफलसम्पूर्णैर्ध्याञ्जियैरथ पल्लवैः।
स्नापयेदेकभक्तेन रत्नगर्भैर्नवैर्दृढैः ॥
वेदमङ्गलशब्देन शङ्खवादित्रनिस्वनैः।
वेणुवीणामृदङ्गैश्च घण्टाकिङ्किणिरावितैः ॥
स्नापयित्वा ततो देवीं निर्म्मञ्छेद्वर्णकैः शुभैः।

निर्म्मञ्छेन्नीराजयेत्।

गोमयादि कृतैः पद्मैः दीपवर्त्त्यादिबोधितैः।
स्वस्तिकैर्नन्दिकावर्त्तैः शङ्खैर्नीलोत्पलोद्भवैः ॥
यवशाल्यङ्कुरच्छिन्नैर्यवचारैर्निमन्थयेत्।

उद्जैः कमलैः।

पवचारैर्यवचूर्णैः।

प्रत्येकं तु दहेद्रूपं प्रत्येकं कलशं स्नपेत्।
तथा कर्पूरचोदेन चन्दनं कुङ्कुमेन च ॥
गोरोचना समे तेन देवीं मालिप्य पूजयेत्।
हेमजैर्जातिमाल्यैश्च रत्नन्यासैरनेकधा ॥
वासोभिः सुमनोभिश्च पादद्वयं समुत्क्षिपेत्।

वस्त्र पुष्पोपरि चंक्रमणं कारयेदित्यर्थः ॥

दर्चयेच्च तथा कन्याद्विजान् दीनान्सदुःखितान्।
भक्ष्य भोज्यान्नपानेन तत्र सर्व्वांश्च प्रीणयेत् ॥
भोजयित्वा क्षमापयेद्देवी मे प्रीयतामिति।

तथा देवीं रथे कृत्वा पुनरेव गृहं नयेत् ॥
महता जनसंघेन समस्तविभवान्वितैः ।
सान्तरेण रथं सर्व्वं पुष्पदूर्व्वाचतैर्जलैः ।
प्रक्षिप्यमाणैः कन्याभिस्त्रीभिर्म्मङ्गलवादिभिः ॥
सलिलेन पथे पांशुं कृत्वा पञ्च ततःक्रमात् ।
पुरशोभां पथः शोभां द्वारशोभां गृहे गृहे ॥
कारयीत तथाशक्र सर्व्ववाधां निवारयेत् ।
अच्छेद्यास्तरवस्तस्मिन् प्राणिहिंसां विवर्ज्जयेत् ॥
बन्धनस्थाश्च मोक्तव्या वध्याः क्रोधादिशत्रवः ।
अकाले कौमुदीं शक्र रथयात्रान्तु कारयेत् ॥
अकालेकौमुदीं दीपोत्सवः । तस्मिन्नकाले कुर्यादित्यर्थः ।
सर्व्वदा सर्व्वदेवैस्तु शङ्कराद्यैः प्रतिष्ठिता ।
रथयात्रा तथाशक्र सुरैःस्वर्गे सदा कृता ॥
तथा किन्नरगन्धर्व्वैर्भूपातालनिवासिभिः ।
रथयात्रा प्रभावेन मोदते दिवि देवता ॥
आदित्ये रथराजेन्द्र रथेन नभसः क्रमेत् ।
देवादित्याविमानस्था रथयात्राप्रभावतः ॥
क्रीड़न्ते विविधैर्भोगैः सर्व्वातङ्कविवर्जिताः ।
तथात्वमपि देवेन्द्र रथमात्राकरोभव ॥
शिवाया शिवदायास्तु परमेण समाधिना ।

अगस्त्य उवाच ।

रथयात्रा समं पुण्यं ब्रह्मणा वासवस्य तु ।

पूर्व्ववत् कथितं तात तत्ते सर्व्वं मयाखिलं॥
स्थापितं नात्र सन्देहो देवीमाहात्म्यमुत्तमं।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि भक्तिमान्नृप सत्तम॥
स सुखं यशः सौभाग्यं पुत्रप्राप्तिमभीप्सिताम्।
लभते नात्र सन्देह इत्येवं ब्राह्मणोऽब्रवीत्॥
सुवलेन हिते राज्ये पुराशक्रस्य कीर्त्तिता।
धनदस्य पुरीप्राप्तिर्व्वरुणस्य च वायुना॥
हृते स्थाने कृता तेन तथा श्रुत्वाच नैर्ऋते।
भुञ्जते परया तुष्ट्या पुरीं नागवतीं शुभां॥

## इति देवीपुराणोक्ता रथयात्रा।

———000———

रुद्र उवाच।

रथयात्रा कथं कार्य्या भास्करस्येह मानवैः।
फलञ्च किं भवेत्तेषां यात्रां कुर्व्वन्ति यत्र वै॥
विधिना केन कर्त्तव्या कस्मिन् काले सुरोत्तम।
कथञ्च भ्रामयेद्देवं रथारूढं दिवाकरं॥
देवस्येमं रथं भक्त्या भ्रामयन्ति ददन्ति च।
तेषां किञ्च फलं प्रोक्तं येच कृत्यकरा नराः॥
भ्रमन्तमर्च्चयन्त्येनं नृत्यगीतपरा नराः।
प्रजागरञ्च कुर्व्वन्ति भक्त्या श्रद्धासमन्विताः॥

तेषाञ्च किं फलं प्रोक्तं रथं यच्छन्ति ये रवेः ।
वर्षभक्तञ्च यो भक्त्या दंशकानिच भोजनं ॥
वर्षभक्तं धान्योदनं दंशकानि खाद्यानि ।
एतन्मे ब्रूहि निखिलं सुरश्रेष्ठ सुविस्तरं ॥
लोकानां श्रेयसे देव परं कौतूहलन्तु मे ।

ब्रह्मोवाच ।

साधु पृष्टोसि भूतेश गणेशेश त्रिलोचन ।
शृणुष्वैकमना वच्मि यथा पृष्टं सुविस्तरं ।
देवस्य रथयात्रेषा भास्करस्य महात्मनः ॥
इन्द्रोत्सवस्तथा रुद्र मतौह्येतौ समौ यतः ।
मर्त्यलोके शान्तिहेतोर्लोकालोक प्रपूजितौ ॥
प्रवर्त्तेते इमौ तस्मिन् देशे देशे महोत्सवौ(१) ।
इमौ इन्द्रध्वजरविरथौ ।
न तत्रोपद्रवाः सन्ति राजतस्करसम्भवाः ।
तस्मात् कार्य्याविभौ भक्त्या दुर्भिक्षस्योपशान्तये ॥
शुक्लपक्षे तु सप्तम्यां मासि मार्गशिरे हर ।
घृतेनाभ्यञ्जयेद्देवं पञ्च भूतान् यजेत वै ॥
अभ्यञ्जयेत् ग्रहेशं यः सर्पिषा श्रद्धयान्वितः ।
दिने दिने जगन्नाथप्रविष्टं वर्णके रविं ॥

वर्णके उद्वर्त्तन गृहे ।

स गच्छेद्यानमारूढो गैरिकं किङ्किणीवृतं ।

---

(१) देवौदेवमहोत्सवौ इति पाठान्तरं ।

वैश्वानरपुरन्दिव्यं गन्धर्व्वाप्सरशोभितं ॥
शाल्योदनं खण्डमिश्रं बहुवज्रसमन्वितम् ।
वज्रसमन्वितं आज्यसमन्वितमित्यर्थः(१) ।
वर्णभक्तं प्रयच्छेद्यो भास्कराय दिने दिने ॥
आरूढ़ः सद्विमानं तु ध्वजमालाकुलं शुभं ।
गच्छेन्मम पुरन्देव स्तूयमानो महर्षिभिः ॥
तस्मात् सर्व्वप्रयत्नेन भास्कराय नरैः सह ॥
वर्णभक्तं प्रदातव्यं प्रतिष्ठाप्येह वर्णकं ।
घृतपूर्णां खण्डवेष्टां कासारं मोदकांश्च यः ॥
दध्योदनं पायसञ्च संयावं गुड़पूपकान् ।
ये प्रयच्छन्ति देवस्य भास्करस्येह वर्णकं ॥
ते गच्छन्ति न सन्देहो नरा वै मन्दिरं मम ।
अहन्यहनि यो भक्त्या भास्कराय प्रयच्छति ॥
अभ्यङ्गाय घृतं देव स याति परमां गतिं ।
तथा यो वर्णभक्तञ्च अहन्यहनि भक्तितः ॥
सम्प्राप्येह शुभान् कामान् गच्छेत्सोपि ममालयं ।
चूर्णमुद्वर्त्तनं नित्यं यः प्रयच्छेच्छुभं रवेः ॥
स याति परमं स्थानं यत्र देवो दिवाकरः ।
ततस्तं तर्पयेद्देवं(२) पौषे मासि विधानतः ॥
सप्तम्यां शुक्लपक्षस्य शृणुष्वैकमना यथा ।
तीर्थोदकं समानीय अन्यद्वाथ जलं शुभं ॥

---

(१) वज्रं घृतमिति पाठान्तरं ।
(२) ततस्तं स्नापयेद्देवमिति पाठान्तरं ।

वेदोक्तेन विधानेन प्रतिमां स्नापयेद्बुधः।
जपेद्धि तीर्थनामानि मनसा संस्मरन् बुधः॥
प्रयागं पुष्करं चैव कुरुक्षेत्रं सनैमिषं।
पृथूदकं भद्रवटं सोमं गोकर्णमेव च॥
ब्रह्मावर्त्तं कुशावर्त्तं विल्वकं नीलपर्व्वतं।
गङ्गाद्वारं तथा पुण्यं गङ्गासागरमेव च॥
कालसूर्य्यं मित्रवनं मुण्डीरस्वामिनं तथा।
चक्रतीर्थं महापुण्यं रामतीर्थं तथा शिवं॥
गङ्गासरस्वतीसिन्धुचन्द्रभागाः सनर्म्मदाः।
विपाशा यमुना तापी शिवा वेत्रवती तथा(१)॥
गोदावरी पयोष्णी च कृष्णवेणी तथा नदी।
शतरुद्रा पुष्करिणी कौशिकी सरयूस्तथा॥
तथान्ये सागराश्चैव सान्निध्यं कल्पयन्त्विति।
तथाश्रमाः पुण्यतमा दिव्यान्यायतनानिच॥
एवं स्नानविधिं कृत्वा अर्चयित्वा प्रणम्य च।
धूपमर्घ्यं प्रदत्त्वा तु प्रतिमामधिवासयेत्॥
त्रिरात्रं सप्तरात्रं वा मासार्द्धं मासमेव च।
स्थितस्थानं गृहे देवं भोजयेद्भक्तितो नरः॥
ततस्त्वारोपयेद्वेदिं चतुरस्रां सुवेष्टितां।
कृष्णपक्षे तु माघस्य सप्तम्यां त्रिपुरान्तक॥
कृत्वाग्निकार्य्यं विधिवत् कृत्वा ब्राह्मणभोजनं।
शङ्खभेरीनिनादैश्च ब्रह्मघोषैश्च पुष्कलैः॥

(१) वैश्रवतीति पाठान्तरं।

पुण्याहघोषैर्विविधै र्ब्राह्मणस्वस्तिवाचनैः।
ततोऽस्य कारयेद्यात्रां शान्तिहेतोर्जनस्य च॥
रथेन दर्शनीयेन किङ्कीणीजालमालिना।
शुक्लपक्षे तु माघस्य रथमारोहयेद्रविं॥
कृत्वाग्निकार्य्यं विधिवत्तथा ब्राह्मणभोजनं।
प्रीणयित्वा जनं सर्वं दक्षिणाभोजनादिना॥
प्रपूज्य ब्राह्मणान् दिव्यान् होमांश्चापि सवाचकान्(१)।
इतिहासपुराणाभ्यां वाचका ब्राह्मणोत्तमाः॥
मतो देवश्च दृष्टश्च संपूज्योयं ततः सदा(२)।
माघस्य शुक्लपक्षस्य चतुर्थ्यामेकभोजनं॥
अयाचितं तु पञ्चम्यां षष्ठ्यां नक्तं प्रकीर्त्तितं।
सप्तम्यामुपवासस्तु अष्टम्यां रोहयेद्रविं॥
अग्निकार्य्यं ततः कृत्वा रथस्य पुरतः शिव।
षष्ठ्यां तु रात्रौ भूतेश रथस्येहाधिवासनं॥
ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु दिव्यान् भौमांश्च वाचकान्।
रथमारोपयेद्देवं सप्तम्यां भूतभावनं।
सितायां माघमासस्य तस्य देवालयाग्रतः॥
तत्रस्थस्यैव देवस्य कुर्य्याद्रात्रौ प्रजागरं।
नानाविधैः प्रेक्षणकैर्दीपवृक्षोपशोभितैः॥
शङ्खतूर्य्यनिनादैश्च ब्रह्मघोषैश्च पुष्कलैः।
कुर्य्यात् प्रजागरं तस्य देवस्य पुरतो निशि॥

---

(१) भोगांश्चापि सकचन्दनानिति पाठान्तरं।

(२) पितृवन्धुजनस्य चेति पुस्तकान्तरे पाठः

ततोऽष्टम्यामायतनं देवं रथगतं नयेत् ॥
नगरस्योत्तरं द्वारं शङ्खभेरीनिनादितं ।
ततः पूर्व्वं दक्षिणञ्च द्वारं वापि तथापरं ॥
एवं हि क्रियमाणायां यात्रायां वत्सरावधिः ।
मानवाः सुखमेधन्ते राजा जयति वाहिनीं ॥
नीरुजश्च जनाः सर्व्वे गवां शान्तिर्भवेत्तथा ।
कर्त्तारश्चापि यात्रायाः स्वर्गभाजो भवन्ति हि ॥
वोढारश्च तथा रुद्र सूर्य्यलोके व्रजन्ति वै ।

रुद्र उवाच ।

कथञ्च चाल्यते ब्रह्मन् स्थापिता प्रथमासकृत् ।
एवं नो वद देवेश सुमहान् संशयोऽत्र मे ॥

ब्रह्मोवाच ।

पूर्व्वमेव सहस्रांशोर्ध्यानं तस्य महात्मनः ।
संवत्सरस्यावयवैः कल्पितस्य रथो मया ॥
सर्व्वेषान्तु रथानां वै स रथः प्रथमः स्मृतः ।
तं दृष्ट्वा तु ततस्त्वन्ये स्यन्दना विश्वकर्म्मणा ॥
कल्पिताः सर्व्वदेवानां सोमादीनामनेकशः ।
विश्वकर्म्मकृतं प्राप्य रथं देवेन शङ्कर ॥
पूजार्थमात्मनोदत्तो मानवे क्रोधसम्भवः ।
मनुनेक्ष्वाकवे दत्तो मर्त्त्यैः संपूज्यते रविः ॥
अतस्तु रथयानेन चालनं विहितं रवेः ।
तस्मान्न चालने दोषः सवितुः शूलधारण ॥

तस्माद्रथेन पर्य्येति भास्करः पृथिवीमिमां।
गच्छन्नतिष्ठते चैतन्मण्डलं सवितुः सदा॥
प्रदिष्टं चलते यस्मात्तस्माद्वैचालनं स्मृतं।
तदेवं रथयात्रासु दृढं भानोर्म्मनीषिभिः॥
अन्येषां चालनन्नेष्टं देवानां पार्व्वतीप्रिय।
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां(१) स्थापितानां विधानतः॥
तस्माद्रथेन देवस्य यात्रा कार्य्या विधानतः।
प्रजानामिह शान्त्यर्थं प्रतिसंवत्सरं सदा॥
काञ्चनोवाथ रौप्यो वा दृढदारुमयाथ वा।
दृढाक्षयुगचक्रश्च तथा कार्य्यः सुयन्त्रितः॥
यस्मिन् रथवरश्रेष्ठे कल्पिते सुमनोरमे।
आरोप्य प्रतिमां यत्नाद्योजयेद्वाजिनः शुभान्॥
हरीन् लक्षणसंपन्नान् सुमुखान् वशवर्त्तिनः।
कुङ्कुमेन समालभ्य चामरस्रग्विभूषितान्॥
सदश्वान् योजयित्वा तु रथस्यार्घ्यं प्रदापयेत्।
विबुधान् पूजयित्वा तु ध्वजमाल्यानुलेपनैः॥
आहारैर्विविधैश्चापि भोजयित्वा द्विजोत्तमान्॥
दीनान्धकृपणादींश्च सर्व्वान् सन्तर्प्य शक्तितः।
न कंचिद्विमुखं कुर्य्यादुत्तमाधममध्यमं॥
सूर्य्यकृतौ सवितत एवमाहुर्म्मनीषिणः।
यः प्रयाति हि कल्माषः क्षुधार्त्तो व्याधिपीडितः॥
सदातुर्हि पितॄंस्तेन स्वर्गस्थानपि पातयेत्।

(१) ब्रह्मविष्णुशिवादीनां इति पुस्तकान्तरे पाठः।

यज्ञश्च दक्षिणाहीनः सवितुर्न प्रशस्यते ॥
तस्मान्नानाविधैः कामैर्भक्ष्यलेह्यसमन्वितैः ।
प्रीणयित्वा फलं सर्व्वमिममुच्चारयेद्बुधः ॥
वलिं गृह्णन्तु मे देवाः आदित्या वसवस्तथा ।
मरुतोथाश्विनौ रुद्राः सुपर्णाः पन्नगा ग्रहाः ॥
असुरा यातुधानाश्च रथस्था याश्च देवताः(२) ।
आकृष्णेन रजसा ऋच मेतामुदाहरेत् ॥
ततः पुण्याहशब्देन कृतवादित्रनिस्वनैः ।
रथप्रभ्रमणं कुर्य्याद्वर्त्मना स समेन तु ॥
पुरुषैश्चापि वोढव्यः सूर्य्यभक्तिसमन्वितैः ।
सुकृतप्रग्रहैर्दान्तैर्बलीवर्द्दैरथापि वा ।
यथा प्रशमनं दद्याद्विषमे पथि गच्छतः ॥
उपवासस्थितैर्विप्रैर्दिव्यैर्भोगैश्च सुव्रतैः ।
विंशद्भिः षोड़शैर्व्वापि प्रतिमां भास्करस्य तु ॥
स्थानात् प्रचाल्यते रुद्र रथमारोपयेच्छनैः ।
राज्ञी च निक्षुभा रुद्र भार्य्या तस्य महात्मनः ॥
शनैरारोपयेत्तत्र उभयोः पार्श्वयोरथे ।
निक्षुभा दक्षिणे पार्श्वे राज्ञी वाप्युत्तरे तथा ॥
द्वारे च ब्राह्मणौ तस्मिन् दिव्यौ भौमश्च पार्श्वयोः ।
ब्रह्मा चास्य तथा सोमः कुवेरस्योपरिस्थितः ॥
गरुडं पृष्ठतश्चास्य कल्पमानं प्रकल्पयेत् ।
आतपत्रं तथाश्वेतं स्वर्णदण्डमनुपमं ॥

(२) मानस्तोककथानकैरिति पाठान्तरं।

सुवर्णबिन्दुभिश्चित्रं मणिमुक्ताफलोज्ज्वलं।
ततस्त्विन्द्रधनुःप्रख्यं स्वर्णदण्डमथापरं॥
ध्वजं प्रकल्पयेत्तस्य पताकाभिरलङ्कृतं।
नानावर्णैर्विचित्राभिः सप्तभिः कामनाशन॥
ध्वजोपरि वरव्योम मुकाराधिष्ठितं महत्।
रथ्यासु सङ्गतो विप्रो नयेद्रथवरं रवेः॥
रथ्यारूढन्तु कुर्य्याद्वै श्रेयोर्थञ्चात्मनः सदा।
नारोहेत्तद्रथं शूद्रो यदीच्छेत्श्रेयात्मनः॥
रथमारोहतस्तस्य क्षयं गच्छति सन्ततिः।
सरथो देवदेवस्य वोढव्यो ब्राह्मणैः सदा॥
क्षत्रियैश्चैव वैश्यैश्च(१) न च शूद्रैः कदाचन।
येत्वन्यदेवता भक्ता ये च मद्यप्रवर्त्तकाः॥
न तैः शूद्रैश्च वोढव्यः तैर्नरैश्च मदोद्धतैः।
उपवाससमोपेतैर्व्वोढव्यः पार्व्वतीप्रिय।
स्वस्थानाच्चालितो रुद्र पूर्व्वद्वारं व्रजेत वै॥
दिनमेकं वसेत्तत्र पूज्यमानो नृपेण तु।
नानाविधैः प्रेक्षणकैः पुराणश्रवणेन च॥
नानाविधैर्ब्रह्मघोषैर्ब्राह्मणानाञ्च तर्पणैः।
स्थित्वा च अष्टमीं तत्र नवम्याञ्चालयेत्ततः॥
व्रजेत्तु दक्षिणं द्वारं नगरस्य त्रिलोचन।
तत्रापि दिनमेकन्तु तिष्ठते त्रिपुरान्तक॥
क्षत्रियैः पूज्यमानस्तु तथा राजा तथैव तैः।

(१) क्षत्रियैर्नैव वैश्यैश्च इति पाठान्तरं।

ततः परं व्रजेत्तस्य पश्चिमं द्वारमाशु वै ॥
तत्रापि दिनमेकन्तु तिष्ठते(२) मधुसूदन ॥
क्षत्रेतरैः पूज्यमानो यथा राजा तथा नृपैः।
तस्मादपि चरेद्रुद्रद्वारं यायात्तथोत्तरं ॥
तथापि पूज्यः शूद्रैस्तु विधिवत् प्रियदर्शनैः।
तस्मात्तु चालयेद्रुद्र व्रजेन्मध्यं पुरस्य तु ॥
तत्रस्थं पूजयन्त्येनं ब्राह्मणाः श्रद्धयान्विताः।
शङ्खवादित्रनिर्घोषैस्तथा प्रेक्षणकैर्वरैः ॥
ब्रह्मघोषैश्च विविधैः समन्ताद्दीपवृक्षकैः।
नानाविधैर्वित्तदानैर्ब्राह्मणानाञ्च तर्पणैः ॥
दीनान्धकृपणानाथतर्पणैस्त्रिपुरान्तक।
पुरमध्यात्तु चलितस्तिष्ठेत् प्राप्य स्वमन्दिरं ॥
इत्थं प्राप्य स्थितं देवं पुरतो मन्दिरस्य तु।
ततः स्थितः पूजनीयो भवेत्पौरेण कृत्स्नशः ॥
पूज्यमानस्त्वहोरात्रं रथारूढस्तु तिष्ठति।
परे दिने व्रजेत् स्थानं तं निरन्तरमादरात् ॥
त्रयोदश्यामतीतायां चतुर्दश्यां त्रिलोचन।
सदैव भ्रामयेद्देवं ग्रहेशं दुरितापहं ॥
परिवारकृतं रुद्रं सानुगं परमेश्वरं।

रुद्र उवाच।

कथं प्रचालयेद्ब्रह्मन् रथस्थं तमनाशनं।

---

(२) स्थापयेदिति पुस्तकान्तरे पाठः।

अनुगांश्च कथं चास्य केशवं अनुग क्रमात् ॥
भूयोभूयः सुरश्रेष्ठ विस्तरान्मम श्रेयसे ।
वेद सर्व्वजगन्नाथ परं कौतूहलं हि मे ॥

ब्रह्मोवाच ।

शनैः प्रचालयेद्रुद्र वर्त्मना शोभनेन तु ।
तथा न तस्य भङ्गः स्याद्विषमे पथि गच्छतः ॥
प्रतिहारं रथं पूर्व्वं नयेन्मार्गं विशुद्धये ।
तस्मादनन्तरं रुद्र दण्डनायकमादरात् ।
पिङ्गलञ्च ततस्तस्य पृष्ठगं चादरान्नयेत् ॥
पुरतो द्वारतस्तस्मात् रथारूढस्तु पृष्ठतः ।
रथारूढस्तथा दण्डिदेवस्य पुरत स्थितः ॥
तस्मादपि तथा रुद्र लेखको भास्करप्रियः ।
शनैःशनैर्नयेद्रुद्र रथं देवस्य हेलिनः ॥
रथस्य चक्रभङ्गोवा यथा नस्यात्त्रिलोचन ।
ईषा(१) भङ्गे द्विजभयमचे तु नृपतिच्चयः ॥
तुलालाभे तु वैश्यानां शम्यां शूद्रभयं व्रजेत् ।
युगभङ्गे त्वनावृष्टिः पीठभङ्गे प्रजाभयं ॥
परचक्रागमं विद्याच्चक्रभङ्गे रथस्य तु ।
ध्वजस्य पतनेचापि पितृमन्युं विनिर्द्दिशेत्(२) ॥
प्रतिमाद्यङ्गिकायान्तु राज्ञो मरणमादिशेत् ।
उत्पन्नेष्वेवमाद्येषु उत्पातेषु शुभेषु च ॥

---

(१) चोवे इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

(२) नृपमन्युं विनिर्द्दिशेदिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

बलिकर्म्म बुधः कुर्य्याच्छान्तिहोमन्तथैव च।
गोभ्यः शान्तिः प्रजाभ्यश्च जगतः शान्तिरस्तु वै॥
खे खे चास्तु तथा शान्तिः सर्व्वचास्तु तथा रवेः।
त्वं देव जगतः स्रष्टा पोष्टा चैव त्वमेव हि॥
प्रजापालिन् ग्रहेशान शान्तिं कुरु दिवस्पते।
इदमन्यच्च वच्यामि शान्त्याः परमकारणं॥
यत्तुकारणभूतस्य पुरुषस्य स्वजन्मनः।
दुष्टान् ग्रहांश्च विज्ञाय चग्रहशान्तिं(१) समाचरेत्॥
एवं कृत्वा प्रजाशान्तिं कृत्वा च स्वस्तिवाचनं।
पुनः सज्जं रथं कृत्वा कुर्य्यात् प्रक्रमणं हर॥
मार्गशेषं नयित्वा तु नयेद्देवालयं रविं।
पूजयित्वा ततः सर्व्वाः शास्त्रोक्ता अथ देवताः॥
यथा पूज्याः ग्रहाः सर्व्वे उक्तास्ते च त्रिलोचन।
रथदेवास्तथा पूज्या याश्चिता रथमाश्रिताः॥
चीरं यवागूं मम वै परमान्नन्तवेश्वर।
फलानि कार्त्तिके यस्य दद्याद्भूतेशप्रीतये॥
विवस्वते पशुमांसं तथा मद्यं सुरेश्वर।
पुरुहूताय भक्ष्याणि सानुगाय निवेदयेत्॥
हविष्यमग्नये दद्याद्दध्यन्नं विष्णवे तथा।
राक्षसेभ्यः समं देयं दद्यान्मांसोदनं हर॥
संस्कृतं पिशितान्नन्तु रेवन्ताय निवेदयेत्।
तिलान्नं पितृराजाय दद्यात्त्रिपुरसूदन॥

(१) ग्रहशान्तिं समाचरेदिति पाठान्तरं।

अश्विनाभ्यामपूपांस्तु वसुभ्यो मांसमोदनं।
पितृभ्यः पायसंदद्यात् घृताक्तं मधुना सह॥
कात्यायन्यै यवागूंश्च श्रियै दद्यात्तथा दधि।
सरस्वत्यै त्रिमधुरं वरुणायेक्षुरसौदनं॥
खाण्डवानां धनपतौ तव मित्रे त्रिलोचन।
सस्नेहेन तु तक्रेण मरुद्भ्यस्तर्पणं स्मृतं॥
माषानपूपान् मातृभ्यो भक्त्या तु विनिवेदयेत्।
उल्लोपिकाश्च भूतेभ्यो जलं स्वर्गाय वै हर॥
दद्याद्गणपतौ विद्वान् मोदकांस्त्रिपुरान्तक।
शष्कुलीनैर्ऋतेन्द्राय देया स्याद्गणनायक।
सर्व्वभक्ष्याणि विश्वेभ्यो(१) दातव्यानि समन्ततः॥
क्षीरोदनं ऋषिभ्यस्तु क्षीरं नागेभ्य एव च।
सूर्य्यरथाय च बलिं कुर्य्याद्वै सार्वभौतिकं॥
मांसोदन सुरामाज्यं तद्वद्धेभ्यश्च शङ्कर।
यूपानाज्ययुतान् दद्यात्तुभ्यं रुद्र तिलांस्तथा॥
स्वाहासुताय लाजाश्च दातव्यास्त्रिपुरान्तक।
भास्कराय सदा दद्यात् सुरदारु त्रिलोचन॥
राजवृक्षं सुरेन्द्राय हविष्यं पावकाय च।
चक्रिणे ससधान्यन्तु मांसमाज्यं सुभूषण(२)॥
यक्षेभ्यो विविधान् गन्धान् निर्य्यासो वेतसोण्डजः।
वैकङ्कती सदारुद्र यमाय परिकीर्त्तिता॥

(१) वैश्वेभ्योइति पाठान्तरं।

(२) गरुडेमात्स्यभूषण इति पुस्तकान्तरे पाठः।

देयं स्यात् कर्णिकारन्तु अश्विभ्यां वृषभध्वज ।
श्रियै देयानि पद्मानि(१) चन्द्रिकायै तु चन्दनं ॥
नवनीतं सरस्वत्यै विनतायै तथामिषं ।
पुष्पाण्यप्सरसां रुद्र मालत्याः परिकीर्त्तयेत् ॥
वरुणायाग्निमित्थन्तु फलमूलन्तु नैर्ऋतेः ।
विल्वं दद्यात् कुवेराय कपित्थं मरुतां तथा ॥
गन्धर्वेभ्यश्चारुगन्धं दद्यात्त्रिपुरसूदन ।
वसुभ्यश्चारु कर्पूरं दद्याच्चानुगणाधिपे ॥
पितृभ्यः पिण्डमूलानि भूतेभ्यश्च विभीतकं ।
गोभ्यो यवान् प्रदद्याद्वै मातृभ्यस्त्वक्षतान् हर ॥
गुग्गुलं विघ्नपतये विश्वेभ्यो देयमोदनं ।
ऋषिभ्यो व्रह्मवृक्षन्तु नागेभ्यो विषमुत्तमं ॥
भास्करस्येह देयानि सक्तूनि नराधिप ।
मधुसर्पिभ्यां तथाक्तानि गैरिकस्य त्रिलोचन ॥
न्यग्रोधस्तस्य वाहुभ्यो भक्त्या रुद्रे निवेदयेत् ।
सायं प्रातश्च मध्याह्ने सदैकाग्रमना हर ॥
सर्व्वेषां भक्षितः शक्त्या देहे रूपं विचक्षणः ।
मन्त्रतो देवशार्दूल यो यस्येह प्रकीर्त्तितः ॥
शान्त्यर्थं व्राह्मणेभ्यस्तु तिलान् दद्याद्विचक्षणः ।
वैश्वानरे यवान् जुहुयात् घृतेन सहितान् नरः ॥
देवानाममृतं घृतं पितृणां हि स्वधामृतं ।
शरणं व्राह्मणानाञ्च सदा ह्येतान्विदुर्वुधाः ।
कश्यपस्याङ्गजा ह्येते पवित्राश्च तथा हर ॥

(१) धान्यानीति पुस्तकान्तरे पाठः ।

स्नाने दाने तथा होमे तर्पणे ह्यशने वराः।
इत्थं देवान् ग्रहांश्चैव पूजयेद्देव प्रयत्नतः॥
अवतार्य्य रथाच्चैनं स्थापयेन्मण्डले पुनः।
कृत्वा त्रिरात्रिकं यत्नाद्दीप-तोय-फलाक्षतैः॥
कार्पास-वीज-लवणभस्मं दृष्टन्तु शान्तये।
वेदीमारोपयेत् पश्चात्पत्नीभ्यां सह सुव्रत॥
तत्रस्थं पूजयेद्देवं दिनानि दश सुव्रत।
दाशाह्निकेति विख्याता या भूता भूतले हर॥
तथा संपूजयेद्देव चतुर्थेन कृतो भव।
चतुर्थेऽहनि कर्त्तव्यं यत्नाद्विश्रमणं रवेः॥
अभ्यङ्गभोजनाद्यैश्च पूजासत्कारमण्डलैः।
अनेन विधिना पूज्य दशाहानि दिवाकरं।
ततो नयेद्वरं स्थानं यत्र पूर्व्वं सदाचलं॥
अनेन विधिना यस्तु कुर्य्याद्वा कारयीत वा।
यात्राम्भगवतो भक्त्या भास्करस्यामितौजसः॥
स परार्द्धन्तु वर्षाणां सूर्य्यलोके महीयते।
कुले न जायते तस्य दरिद्रो व्याधितोऽपि वा॥
अभ्यङ्गाय घृतं यस्तु भास्कराय प्रयच्छति।
कृत्वा सुवर्णतिलकं स गच्छेत् सुरभीपुरं॥
तीर्थोदकन्तु यो दद्यात् गङ्गायाश्च तथोदकं।
स्नानार्थमानयेद्यस्तु भास्कराय(१) त्रिलोचन॥
संप्राप्येहाखिलान् कामान् प्राप्नुयाद्वरुणालयं।
भक्तावर्णन्तु यो दद्यात् हविष्यान्नं गुड़ोदनं॥

(१) वास्तूभास्कराय इति क्वचित् पुस्तकान्तरे पाठः।

गच्छेत् सुरपुरं भद्रं यत्र देवः प्रजापतिः ।
स्नापयेद्यस्तु वै भक्त्या भास्करं पूजयेत्तथा ॥
स गच्छेद्दीप्तिमान् रुद्र सूर्य्यलोकं न संशयः ।
रथमारोपयेद्यस्तु रथमार्गं प्रमार्जति ॥
स याति सूर्य्यसालोक्यं वायुतुल्यपराक्रमः ।
रथस्य गच्छतो यस्तु मार्गे कुर्य्याच्च मङ्गलं(१) ॥
सलोकं प्राप्नुयात् पुण्यं मरुतां नात्र संशयः ।
सूर्य्यस्य गच्छतो भक्त्या यः कुर्य्यान्मार्गमादरात् ॥
पुष्पप्रकरशोभाढ्यं शुभतोरणमण्डितं ।
शङ्खतूर्य्यनिनादाढ्यन्तथा प्रेक्षणकान्वितं ॥
सयाति परमं स्थानं यत्र देवो विभावसुः ।
देवेन सहितो यस्तु नृत्यन् गायन् तथा स्वयं ॥
सर्व्वं महोत्सवं भक्त्या भास्करं भक्तवत्सलं ।
अथ संवत्सरं प्राप्ते भानोर्य्यत्र दिनोदये ॥
रथप्रक्रमणं तत्र न कथञ्चित् कृतं भवेत् ।
ततो द्वादशमे वर्षे कर्त्तव्यं भूतिमिच्छता ॥
इन्द्रवज्रस्य चाप्येवं यद्दिने यजनङ्कृतं ।
ततो द्वादशमे वर्षे कर्त्तव्या नान्तरा पुनः ॥
यात्रायाञ्चापि ते भङ्गं कुर्व्वते वृषभध्वज ।
मन्देहा नामतो ज्ञेया राक्षसा नात्र संशयः ॥
ये कुर्व्वन्ति तथायात्रां नरा धर्म्मध्वजस्य तु ।
इन्द्रादिदेवता ज्ञेया गताश्च परमं पदं ॥

(१) मण्डलमिति वा पाठः।

इत्येषा कथिता भद्र रथयात्रा दिवस्पतेः ।
यः श्रुत्वा वाचयित्वा तु सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥
श्रुत्वा च विधिवद्भक्त्या यान्ति सूर्य्यसदोनराः ।

**इति भविष्यत्पुराणोक्तो रथयात्रोत्सवः ।**

———on(D)uo———

श्रीकृष्ण उवाच ।

एकादश्यां माघमासे चतुर्द्दश्यष्टमीषु च ।
एकभक्तेन यो दद्यात् चेलकान्यर्जुनानि च ॥
उपानहौ कम्बलञ्च च्छत्रं चित्रं तथोदकं ।
करपात्रादिकं वस्त्र यथाशक्त्यार्थिने नृप ॥
आर्त्तत्राणपरो नित्यमश्वमेधफलं लभेत् ।
एतत्सौख्यव्रतं नाम आर्त्तत्राणकरं परं ॥

**इति भविष्यत्पुराणोक्तं सौख्यव्रतं ।**

———000———

नारद उवाच ।

श्रुता मया विधानोक्ता विष्णोराराधनक्रिया ।
त्वत्प्रसादात् सुरश्रेष्ठ जन्मदुःखजयप्रदा ॥
भूयोथ श्रोतुमिच्छामि सम्यक् पूजाफलप्रदा ।
अल्पग्रन्थेन देवेश महापुण्यफलप्रदं ॥
पवित्रारोहणं कृत्वा विष्णुभक्तिसमन्वितैः ।
किं फलं प्राप्यते देव नरैस्तद्गतमानसैः ॥

यस्मिन्काले च कर्त्तव्यं विधानञ्च तथा भवेत् ।
तिथौ यस्यां यथासूत्रं प्रमाणञ्च यथाविधि ॥
यावन्तस्तन्तवस्तस्मिन् तत्र यच्चानुमन्त्रणं ।
तत्त्वन्यासविधानन्तु तथा वै वाधिवासनं ॥
आरोहणविधानञ्च उपवीतस्य चक्रिणः ।
विसर्जनविधानन्तु पवित्रारोहणादिकं ॥
किं कृत्वा फलमाप्नोति हीयते किमकुर्व्वतः ।
एतत् सर्व्वं समाचक्ष्व विधानन्त्रिदशेश्वर ॥

ब्रह्मोवाच ।

शृणु वत्स परं गुह्यं विधानं देवनिर्म्मितं ।
मया श्रुतं पुरा सम्यक् सकाशाच्चक्रपाणिनः ॥
पवित्रारोहणं विष्णोर्भुक्तिमुक्तिप्रदायकं ।
आयुः कीर्त्तिर्य्यशो नृणां सुखसम्वर्द्धनावहं ॥
पुण्यानान्तु यथा पुण्यं सर्व्वपापहरं शुभं ।
पवित्रारोहणं तस्मात्पवित्रं परमं स्मृतं ॥
संवत्सरं नरो भक्त्या समभ्यर्च्य जनार्द्दनं ।
यत्फलं समवाप्नोति पवित्रारोहणेन तु ॥
न करोति विधानेन पवित्रारोहणन्तु यः ।
तस्य सांवत्सरी पूजा निष्फला मुनिसत्तम ॥
तस्माद्भक्तिसमायुक्तैर्नरैर्विष्णुपरायणैः ।
वर्षे वर्षे प्रकर्त्तव्यं पवित्रारोहणं हरेः ॥
श्रावणस्य सिते पक्षे कर्कटस्थे दिवाकरे ।

द्वादश्यां वासुदेवस्य पवित्रारोहणं स्मृतं ॥
सिंहस्थे वा रवौ कार्य्यं कन्यायान्तु गतेऽथवा।
तस्यामेव तिथौ सम्यक् तुलास्थे न कथञ्चन ॥
विष्णो रुद्रस्य सूर्य्यस्य विरिञ्चेः षण्मुखस्य च।
देव्या गणाधिनाथस्य मातॄणां धनदस्य च ॥
पवित्रारोहणं कार्य्यं अन्येषाञ्च यथाविधि।
अकृत्वा फलहानिः स्यात् संवत्सरकृतार्चनात् ॥
सर्वेषान्तु महत् पुण्यं पवित्रारोहणे कृते।
तिथयस्त्वत्त्वविन्यासाः पृथगुक्तास्तपोधन ॥
प्रतिपद्धनदस्योक्ता पवित्रारोहणे स्थितिः।
श्रियो देवा द्वितीयान्तु तिथीनामुत्तमातिथिः ॥
तृतीया तु भवान्यास्तु चतुर्थी तत्सुतस्य तु।
पञ्चमी सोमराजस्य षष्ठी प्रोक्ता गुहस्य च ॥
सप्तमी भास्करेप्रोक्ता दुर्गायाश्चाष्टमी स्मृता।
मातॄणां नवमी प्रोक्ता दशमी वासुकेः स्मृता ॥
एकादशी ऋषीणान्तु द्वादशी चक्रपाणिनः।
त्रयोदशीह्यनङ्गस्य शिवस्योक्ता चतुर्दशी ॥
मम देव मुनिश्रेष्ठ पौर्णमासी तिथिः स्मृता।
यथोक्ताः शुक्लपक्षे तु तिथयः श्रावणस्य च।
सर्वेषामेव देवानां कार्य्यं तासु यथा विधि ॥

नारद उवाच।

कस्मिन् सूत्रे तु कर्त्तव्यं पवित्रं चक्रपाणिनः।

प्रमाणं चैव तन्तूनां पुण्यं चैवेह कीदृशं ॥
कनिष्ठे मध्यमे चैव उत्तमे च पवित्रके।
कृते यथा फलं कर्तस्तद्वदस्व पितामह ॥

ब्रह्मोवाच।

शृणु वत्स यथाकार्यं यत् सूत्रं यत् प्रमाणकं।
विधानं च यथा तस्य फलं चैव यथा भवेत् ॥
प्रथमं दर्भसूत्रन्तु पद्मसूत्रं ततः परं।
ततः चौमं(१) सुपुण्यं स्यात्पट्टसूत्रं ततः परं ॥
शुचिकार्पाससूत्रेण तिन्मितं वा शुभाशुभं।
शुचिर्भूत्वा शुचौ देशे कारयीत प्रयत्नतः ॥
तद्विधानोपयुक्तन्तु यथोक्तफलदायकं।
कन्या कर्त्तयते सूत्रं नारी वाथ पतिव्रता ॥
विधवा साधुशीला वा सूत्रमेतत्तु कर्त्तयेत्।
केशयुक्तं च्युतं दग्धं मध्यरक्तादिदूषितम् ॥
मलिनं नीलरक्तं वा प्रयत्नेन विवर्जयेत्।
यथोक्तं सूत्रमादाय त्रिगुणं त्रिः प्रयोजयेत् ॥
पवित्रं तेन कुर्व्वीत कनिष्ठोत्तममध्यमं ॥
कनिष्ठन्तन्तुभिर्ज्ञेयं सप्तविंशतिभिः शुभं।
मर्त्यलोके तु तत् कीर्त्तिसुखायुर्धनपुत्रदं ॥
चतुःपञ्चशता ज्ञेयं तन्तूनां मध्यमं परं।
दिव्यभोगावहं पुण्यं स्वर्गवाससुखप्रदं ॥

(१) चौद्रमिति वा पाठः।

उत्तमं चैव तन्तूनां शतमष्टोत्तरं शतं।
दत्त्वा तद्वासुदेवाय विष्णुलोकं व्रजेन्नरः॥
अष्टोत्तरसहस्रं तु तन्तूनां परिसंख्यया।
वनमाला स्मृता विष्णोर्दत्त्वा भक्तिप्रदा हि सा॥
कनिष्ठं नाभिमात्रं स्यादूरुमात्रन्तु मध्यमं।
पवित्रं चोत्तमं प्रोक्तं जानुमात्रं प्रमाणतः॥
वनमालाप्रमाणेन प्रतिमायाः प्रणीयते।
नराणां जन्मसंसारदुःखमृत्युप्रणाशिनी॥
कनिष्ठे द्वादशैवोक्ता मध्यमे द्विगुणाः स्मृताः।
त्रिगुणास्तूत्तमे प्रोक्ता ग्रन्थयस्तु पवित्रके॥
शतमष्टोत्तरं कार्य्यं ग्रन्थीनां तु विधानतः।
मुनीन्द्रवनमालायां विष्णुपूजनतत्परः॥
अधिवासनसूत्रे तु ग्रन्थयो द्वादश स्मृताः।
तत्त्वन्यासविधानं तु श्रूयतां गुह्यकोत्तम॥
इदं विष्णुरिति ख्यातं मन्त्रमेतद्द्विजन्मनां।
शूद्राणां तत्त्वविन्यासः मन्त्रो वै द्वादशाक्षरः॥
तावदावर्त्तयेन्मन्त्रं यावन्तो ग्रन्थयः स्मृताः।
एकधा च द्विधाचैव त्रिधाचैव पवित्रके॥
सूत्रे प्रतिग्रन्थि सकृन्मन्त्रजपः मध्ये द्विःशेषेत्रिः।
कुङ्कुमोशीरकर्पूरैश्चन्दनादिविलेपनैः।
पवित्राणि विलिप्याथ तत्त्वन्यासन्तु योजयेत्।
अधिवासपवित्राणि एकादश्यामुपोषितः॥
पुष्पादिभिः प्रपूज्याथ न्यसेद्विष्णोः पुरेनिशि।

तत्त्वन्यासं परं कार्य्यं पवित्रारोहणं हरेः ॥
एकादश्यां च तद्रात्रौ मूलमन्त्रेण भक्तिमान् ।
एकादश्यां शुभैर्गन्धैः पुष्पधूपविलेपनैः ॥
नैवेद्यं दीपवस्त्राद्यैः पूजयेद्गरुड़ध्वजं ।
नृत्यगीतशुभाख्यानैर्मल्लयुद्धैः प्रचालितैः ॥
वाद्यैर्मारुतशङ्खाद्यैर्जागरं कारयेन्निशि ।
क्षीरक्षारसंयावबटकापूपमोदकैः ।
फलैः सुगन्धैर्मधुरैर्नैवेद्यं कारयेद्धरेः ॥
एकादश्यां नरो भक्त्या संपूज्य मधुसूदनं ।
पवित्रारोहणं कुर्य्याद्देवदेवस्य चक्रिणः ।
सोपवासः शुचिस्नातः कृतजप्यो जितेन्द्रियः ॥
दत्त्वा दानं द्विजाग्रेभ्यः पूजयित्वा जनार्दनं ।
पूर्व्वाधिवासितं सम्यक् समादाय पवित्रकं ॥
अतो देवेति मन्त्रेण विष्णोर्मूर्ध्नि निवेदयेत् ।
अयं मन्त्रो द्विजातीनां पवित्रारोहणे स्मृतः ॥
शूद्रस्य मूलमन्त्रो वा येन वै पूजयेद्धरिं ।

वा शब्दाद्द्वादशाक्षरो वा,येन वै पूजयेद्धरिमिति मूलमन्त्रव्याख्या ।

स्तुतिमङ्गलनिर्घोषैर्गीतवादितनिस्वनैः ।
पवित्रारोहणं कृत्वा देवताग्रास्त्विमं वरं ॥
मणिविद्रुममालाभिर्मन्दारकुसुमादिभिः ।
एषा सांवत्सरी पूजा तवास्तु गरुडध्वज ।
मन्त्रहीनं क्रीयाहीनं भक्तिहीनं जनार्द्दन ॥

यत् पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥
वनमाला यथादेव कौस्तुभः सततं हृदि।
पवित्रमस्तु ते तद्वत् पूजा च हृदयावहा ॥
कृत्वा पवित्रकं विष्णोर्व्वर्षंद्वादशवार्षिकं।
फलं प्राप्नोत्यकृत्वा तु पूजाहानिमथाप्नुयात् ॥
एवं संप्रार्थ्य देवेशं प्रणिपत्य पुनः पुनः।
भूयोऽपि दद्याद्विप्रेभ्यो हरिमुद्दिश्य दक्षिणां ॥
ततोनुभोजये(१)द्भक्त्या गुरुं ज्ञानप्रदायिनं।
वस्त्रगन्धानुलेपाद्यैः पुष्पैस्तु वरभूषणैः ॥
प्राप्यानुज्ञां गुरोः शिष्यो भक्त्या नार्चयते गुरुं।
स गच्छति विमूढात्मा नरकं हि नराधमः ॥
तस्मात् सर्व्वप्रयत्नेन यथा विष्णुं तथा गुरुं।
आनन्देनार्च्चयेद्यस्तु स मुक्तिफलमाप्नुयात् ॥
यथा विष्णुस्तथा विद्या यथाविद्यास्तथा गुरुः।
वित्तथं पूजयेद्यस्त स मुक्तिफलमर्हति ॥
ताम्बूलं पुष्पगन्धाद्यैः पूजयित्वा विसर्जयेत्।
ततो बन्धून् विशिष्टांश्च ज्ञातिमित्रसमाश्रितान् ॥
भोजयेदागतांश्चान्यान् भिक्षुकांश्च स्वशक्तितः।
एवं विधिं विनिर्व्वर्त्य पवित्रारोहणे हर ॥
विष्णोः सायुज्यमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभं।
स्थण्डिले देवदेवस्य एष एव विधिः स्मृतः ॥

---

(१) पूजयेदिति वा पाठः।

पवित्रारोहणे विष्णोर्विशेषः श्रूयतामिह ।
यावत्तन्तुसमायुक्तं भावयेत जनार्द्दनं ॥
तावदङ्गुलकं तस्य एष एव विधिः स्मृतः(१) ।
यावन्तो ग्रन्थयः प्रोक्ताः स्वतन्त्रे चानुमन्त्रणं ॥
तत्रैव मूलमन्त्रेण दद्याद्विष्णोः पवित्रकं ।
प्रतिमां स्थण्डिलेवाथ क्तत्वा विष्णोः पवित्रकं ॥
कुलनाशं समुद्धृत्य(२) विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ॥
एवं संपाद्य विधिना पवित्रारोहणं हरेः ।
अर्चयित्वा विधानेन हरिञ्च सपवित्रकं ॥
विसर्जयेत मन्त्रेण अनेनैव पवित्रकं ।
सांवत्सरीं शुभां पूजां संपाद्य विधिवन्मम ॥
व्रजेदानीन्तु गोविन्द विष्णुलोकं विसर्जितः ।
मन्त्रेणानेन तत्सूत्रं अवतार्य्य यथा विधि ॥
उत्तार्य्य ब्राह्मणे दद्यात्तोये वाथ विसर्जयेत् ।
यावत् पुण्यं स्मृतं सम्यक् पवित्रारोहणे क्तते ॥
उपवीते क्तते भक्त्या तत् फलं चाप्नुयान्नरः ।
अनेनैव विधानेन सर्वेषां त्रिदिवौकसां ॥
पवित्रारोहणं कुर्य्यात् स्थण्डिले प्रयतो नरः ।
अनेनैव विधानेन तस्य पूजाविसर्जनं ॥
प्रार्थनावाहनं दानं समस्तविधिमाचरेत् ।

(१) पवित्र मानवं स्मृतमिति पाठान्तरं ।
(२) कुलानां शतमद्धृत्येति पाठान्तरं ।

तत्त्वमन्त्रैः समावेश्य विसर्जनविधिक्रियां ॥
अर्चने तु सुरेन्द्राणां सर्वकामानावाप्नुयात्।
आयुर्बलं धनं विद्यामारोग्यं कीर्त्तिमव्ययां ॥
प्रयच्छन्ति यथा शक्त्या प्रसन्नास्तु दिवौकसः।
अर्चिते देवदेवेश शङ्खचक्रगदाधरे ॥
अर्चिताः सर्वदेवाः स्युर्यतः सर्व्वगतो हरिः।
अर्चिते सर्वलोकेशे सुरासुरनमस्कृते ॥
केशवे कंसकेशिघ्ने न याति नरकं नरः।
प्रातर्मध्येऽपराह्ले च सुरासुरगुरुं हरिं ॥
ये नमन्ति नरा नित्यं न ते नरकगामिनः।
तपस्तप्त्वा नरो घोरमरण्ये विजितेन्द्रियः ॥
यत्फलं समवाप्नोति स्मृत्वा तु गरुड़ध्वजं।
इति गुह्यतमं विष्णोः पूजाकल्पं मयोदितं ॥
समाचरति यो मर्त्यः स याति परमाङ्गतिं।

शिवागमे शिवपवित्रलक्षणं।

एकादशाथवा सूत्रैस्त्रिंशता वाष्टयुक्तया।
पञ्चाशता वा कर्त्तव्यं तुल्यग्रन्थ्यन्तरालकं॥
द्वादशाङ्गुलमानानि व्यासादष्टाङ्गुलानि च।
लिङ्गविस्तारमाणानि चतुरङ्गुष्ठिकानि वा ॥
तथैव पिण्डिकास्पर्शं चातुर्थं सार्वदैवतं।
गाङ्गावतारकं कार्य्यं पवित्रमतिसुन्दरं ॥

नारद उवाच ।

भगवन् देवदेवेश परं कौतूहलं हि मे ।
पवित्रारोहणं पुण्यं प्रसादाद्वक्तुमर्हसि ॥
पवित्रेति कथं संज्ञा कुत्रोत्पन्नं किमुच्यते ।
कृते च किं फलं प्रोक्तं विधानं तस्य कीदृशं ॥
द्रव्येन केन वा कुर्य्यात् किं प्रमाणं हि तत् स्मृतं ।
किं दैवत्यञ्च किंछन्दः को वा तस्य ऋषिः स्मृतः ॥
अध्यात्मं वाधिभूतं वा अधिदैवं कथं भवेत् ।
केन मन्त्रेण तत्कुर्य्याद्विधानं तस्य कीदृशं ॥
कस्मिन् काले तु कर्त्तव्यं नक्षत्रे वा तिथौ कथं ।
क्रियते वा कियत्कालमेतद्ब्रूहि सुरेश्वर ॥

श्रीभगवानुवाच(१) ।

साधु नारद धर्म्मज्ञ तोषितोऽहं त्वयानघ ।
शृणुष्व तव वक्ष्यामि पवित्रारोहणं क्रमात् ॥
पवित्रं तेन विख्यातं ब्रह्मतेजो हि गीयते ।
विष्ण्वाख्यया तु विख्यातं तदा लोके निगद्यते ॥
तदेव सूत्ररूपेण यज्ञेशः कर्मणः प्रभुः ।
तदेव त्रिगुणीभूतं मतं नारायणाख्यया ।
त्रिदेवात्मा त्रिदेवात्मा त्र्यक्षरः प्रणवः स्मृतः ॥
ते पर्व्वतात् समुद्भूता वराहाद्याङ्गमाश्रिताः ।
कुत एष समुत्पन्नइति प्रश्नस्य इदमुत्तरं ॥
सङ्घातेन च तन्तूनां नवात्मा परिकीर्त्तितः ।

(१) ब्रह्मोवाचेति पाठान्तरं ।

तन्तूणां प्रथमोदेवो वासुदेवो जगद्गुरुः॥
हलायुधो द्वितीयस्तु प्रद्युम्नश्च तृतीयकः।
अपरेत्वनिरुद्धस्तु ततो नारायणः प्रभुः॥
ब्रह्माविष्णुस्तथानृणां वरारोहे समाश्रिताः॥
अधिदैवेन रूपेण अध्यात्मेर च निबोध मे।
मनो बुद्धिरहङ्कारस्तन्मात्राणि तथैव च॥
जीवश्चेति नवैतच्च अध्यात्मेर सुव्यवस्थिता।
द्यौरन्तरिक्षं पृथिवी भूर्भुवस्स्तथैव च॥
आकारश्चाप्युकारश्च मकारश्चाधिभूतकम्।
अग्नित्रयं तथा कर्म त्रयश्च सदनत्रयं॥
ज्ञेयं पवित्रे तद्विद्वानधिदैवमुदाहरेत्।
छन्दश्चैवात्र गायत्री प्रद्युम्नो ऋषि रुच्यते॥
वासुदेवः परा तस्य देवता परिकीर्त्तिता।
योगोऽस्य ब्रह्म करणे ब्राह्मणानां विशेषतः॥
अलङ्कारो द्विजातीनां कर्त्तव्यःप्रतिवत्सरं।
सरिद्वर्षासु कुर्व्वीत पवित्रारोहणं शुभं॥
यावच्च धारयेत्तन्तूस्तावत् कुर्व्वीत वै व्रतं।
तथा पवित्रकं कृत्वा त्रीन्मासान्मासमेव वा॥
पक्षद्विमासं सद्यो वा त्रिरात्रं पञ्चएव वा।
अवधिंकार्त्तिकं कृत्वा सितपक्षाद्यनुक्रमात्॥
यथा शक्त्या यजन्तेरनं कालसङ्कल्पना तथा।
पवित्रे म्रियमाणे वै न त्याज्यं देवतान्तिकं॥
उपवीतीकृते पश्चात् पथिषु विचरेद्बुधः।

मङ्गलं शोभनं रुद्रं विजयं च चतुर्थकं ॥
आषाढ़ादिक्रमाद्देवं नामानीमानि धारयेत् ।
द्वादश्यां श्रावणे चापि पञ्चम्यामथवा द्विज ॥
अनुकूले तु(१) कर्त्तव्यं पञ्चदश्यामथापि वा ।
सूत्रं तु याज्ञिकं कृत्वा तृणवल्कलसम्भवं ।
कार्पासिकं तथा काश्यं दार्भिकं चापि कारयेत् ॥
ब्राह्मणीकर्त्तितं सूत्रमन्यद्धौतमथापि वा ।
त्रिगुणं त्रिगुणीकृत्य चालयेन्निर्मलाम्भसा ॥
यत्नेन शोधयेद्दोषान् केशाद्यांश्च स्वयं बुधः ।
अष्टोत्तरशतं कुर्य्यात् चतुःपञ्चाशदेव वा ॥
सप्तविंशतिरेवायं ज्येष्ठमध्यकनीयसः ।
अङ्गुष्ठपर्व्वमात्राणि तथा स्त्रीशूद्र एव तु(२) ॥
सर्व्वधर्म्माश्रिताः सर्वे भक्ताश्च मधुसूदने ।
पूर्वोक्तं गुरुमासाद्य भक्त्या सन्तोषयेच्च तं ॥
यज्ञार्थं प्रार्थयेत्पश्चादुद्धारं कुरु मे प्रभो ।
अङ्गुष्ठ पर्व्वमात्रास्तु ग्रन्थयश्चोत्तमाः स्मृताः ॥
तदर्द्धं मध्यमे चैव तदर्द्धमधमः स्मृतः ।
अधमं नाभिमात्रं स्यादुत्तमाङ्गं द्वितीयकं ॥
लम्बितो जानुमात्रे च प्रतिमायां निगद्यते ।
एवं हि रूपतः कुर्यादधमाधम-मध्यमं ॥
यथाशोभं प्रकुर्वीत ग्रन्थयो विषमाः स्मृताः ।

(१) आनुकूल्यम्, इति वा पाठः ।
(२) पवित्रं स्त्रिय इति पाठान्तरं ।

सैवप्रोक्ता भवेद्देव प्रोक्ता यत्र क्वचित् क्वचित् ॥
आरोग्यदं द्विजश्रेष्ठ एवं विद्याविचक्षण।
स्थण्डिले वाथ वक्ष्यामि प्रथमं कर्णिकान्तरं ॥
दिग्याग्रञ्च द्वितीयञ्च दिग्यापालान्तगं परं।
यथा शक्त्या तु कर्त्तव्यं प्रत्यवायोह्यतिक्रमात् ॥
पितृतोमातृतः शुद्धः आत्मशुद्धस्तथैव च।
सदाचारस्थितो मन्त्री वेदवेदाङ्गपारगः ॥
अलुब्धोऽपिशुनः सौम्यः सर्व्वभूतहिते रतः।
आचार्य्यः स तु विज्ञेयः सर्व्वकर्म्मरतो हि सः ॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यो यष्टियो मधुसूदनः।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्तथा स्त्रीशूद्र एव वा ॥
स्वधर्म्मावस्थिताः सर्वे भक्ताश्च मधुसूदने।
पूर्व्वोक्तं गुरुमासाद्य भक्त्या सन्तोषयेच्चतं ॥
यज्ञार्थं प्रार्थयेत् पश्चात् उद्धारं कुरु मे प्रभो।
पवित्रेनैव यष्टियो यज्ञियमधुसूदनः ॥
एवं करिष्यामीत्युक्ते सम्भारांश्च समाहरेत् ॥
हरेः सूत्रादि यत्सर्व्वं गुरवे तन्निवेदयेत्।
यथाशक्त्या पवित्रञ्च शुचिः कुर्य्यादतन्द्रितः ॥
अष्टाक्षरेण मन्त्रेण ग्रन्थ्यान्ते ग्रन्थयस्तथा।
कुङ्कुमं रोचनाञ्चैव कर्पूरेण समन्वितं ॥
आदावुक्तेन मन्त्रेण व्यस्तेन च विनिःक्षिपेत्।
समस्तेन ततो मन्त्री मन्त्रयेत विचक्षणः ॥
उक्तेनैव तु मन्त्रेण वर्ज्जयेत पवित्रकं।

ओमिति कुङ्कुमं निक्षिप्य नम इति तदुपरि रोचनां नारायणायेति तदुपरि कर्पूरमिति व्यस्तेन मन्त्रेण मेलयित्वा । ओं नमोनारायणायेति समस्तेन मन्त्रेण निमन्त्र्य समस्तेनैव पवित्रमलं कुर्यात् ।

इति विष्णुरहस्योक्तः पवित्रारोहणविधिः ।

———000———

ब्रह्मोवाच ।

चैत्रादौ कारयेत् पूजां मम वत्स यथाविधि ।
गन्धपुष्पार्चनादानैर्माल्याद्यैर्हमनोद्भवैः ॥
सदा संपूजयेद्देवं सर्व्वकामानवाप्नुयात् ।
सर्व्वतीर्थाभिषिक्तस्य फलंप्राप्नोति दानव ॥
उमां शिवं हुताशञ्च पूजयेत् प्रतिपत्तिथौ ।
पितामहं दमनकैर्द्वितीयायान्तु पूजयेत् ॥
हविष्यमन्नं नैवेद्यं देयं गन्धार्चनं पुरा ।
फलमाप्नोति विप्रेन्द्र उमया यत्प्रभाषितं ॥
तृतीयायां यजेद्देवीं शङ्करेण समन्वितां ।
कुङ्कुमागरुकर्पूरमणिवस्त्रस्रगर्चितां ॥
सुगन्धपुष्पधूपैश्च दमनेन सुमालितां ।
आन्दोले दोलयेद्वत्स शिवो मे तुष्यते सदा ॥
रात्रौ जागरणं कार्य्यं प्रातर्देया तु दक्षिणा ।
हेम-वस्त्रा-न्नपात्राणि ताम्बूलानि स्रजस्तथा ॥

सौभाग्याय सदा स्त्रीभिः कार्य्या पुत्रसुखार्थिभिः।
गणेशे कारयेत् पूजां लड्डुकादिभिरादृतां॥
चतुर्थ्यां विघ्ननाशाय सर्वकामसमृद्धये।
पञ्चम्यां पूजयेन्नागान् तथाद्यान्महोरगान्॥
क्षीरसर्पिस्तु नैवेद्यं देव सर्पविषापहं॥
षष्ठ्यां स्कन्दस्य कर्त्तव्या पूजा सर्वोपहारिकी।
इहैव सुखसौभाग्यमन्ते स्कन्दपदं व्रजेत्॥
भास्करस्य तु सप्तम्यां पूजा दमनकादिभिः।
कृत्वा प्राप्नोति भोगादि विगतारिमहातपाः॥
मातॄणामपि चाष्टम्यां पूजां सर्व्वान्नगन्धिकां।
कृतवाल्लभते वत्स सिद्धिमिष्टान्तु दमनकैः॥
नवम्यां पूजयेद्देवीं महामहिषमर्द्दिनीं।
कुङ्कुमागरुकर्पूरैर्धूपान्नध्वजतर्पणैः॥
दमनैर्म्मरुपत्रैश्च विजयाख्य पदंलभेत्॥
धर्म्मराजं दशम्यान्तु पूजा कार्य्यानुगन्धिकी।
धनवान् पुत्रवान् कान्तो ऋषिलोके महीयते॥
द्वादश्यां पूजयेविष्णुं कर्पूरागरुचन्दनैः॥
हविष्यान्नैर्म्महावाह्नो कर्त्ता विष्णुपदं लभेत्।
कामदेवस्त्रयोदश्यां पूजनीयो यथाविधि॥
रतिप्रीतिमायुक्तो अशोकमणिभूषितः।
वामे गृहीतधन्वा च पञ्चवाणकरः स्मृतः॥
कुम्भे वा सितवस्त्रे वा लेख्यं पञ्चफलादिभिः।

खण्डशर्करनैवेद्यैः सौभाग्यमतुलं लभेत् ॥
चतुर्दश्यान्तु देवेशं शशाङ्काङ्कितशेखरं ।
क्षीरादिस्नपनैःस्नाप्य धूपपुष्पैः सुगन्धिभिः ॥
पूजनीयो यथान्यायं मदनैर्हेमसन्निभैः ।
वस्त्रान्नमणिपूजा च कर्त्तव्या महती शिवे ॥
वितान-ध्वज-छत्रञ्च देवं कार्य्यञ्च जागरं ।
महापुण्यमवाप्नोति अश्वमेधफलादिकं ॥
पौर्णमास्यां तथा कार्य्या सर्व्वकामसमृद्धये ।
इन्द्राय सह शच्या च कामिकं लभते फलं ॥
एवं पञ्चदशाहन्तु ये च पूजां प्रकुर्वते ।
सर्व्वयज्ञतपोदानफलानीह लभन्ति ते ॥
विचित्रदेवभोगेषु क्रीड़न्ते दिवि स्वेच्छया ।
पुण्यक्षयादिहायाताः पृथिव्यां खलु ते नृपाः ॥
गतारयो न सन्देह इत्याह भगवान् शिवः ।

## इति देवीपुराणोक्तदमनकपूजाविधिः ।

———000———

सूर्य्य उवाच ।

शिवं ये पूजयिष्यन्ति दानं दास्यन्ति सुव्रताः ।
सर्व्वपापविनिर्मुक्ता दिवमेष्यन्ति ते द्विजाः ॥
यथा पशुपतिर्नित्यं दत्त्वा सर्वमिदं जगत् ।
न लिप्यते पुनः सोऽपि यो नित्यं व्रतमाचरेत् ॥
इह जन्मकृतं पापं पूर्वजन्मकृतञ्च यत् ।

व्रतं पाशुपतं नाम कृत्वा हन्ति द्विजोत्तम ॥
द्वादश्यामेकभक्ताशी त्रयोदश्यामयाचितं।
चतुर्द्दश्यां तथा नक्तं उपवासं परेऽहनि ॥

परेऽहनि अमावास्यायां।

गोवृषञ्चैव हिरण्यं रौप्यं ताम्रमयं तथा।
सौवर्णं कारयेत् पत्रं गुञ्जाशीत्या पृथक् पृथक्।
तत्रैवोल्लिखयेन्मूर्त्तिं शिवायाश्च शिवस्य च ॥
तत् प्रमाणं वृषं कुर्य्याद्रौप्यं हेम्नश्चतुर्गुणं।
रौप्याष्टगुणताम्रन्तु तदर्द्धं वापि कारयेत् ॥
तत्प्रमाणन्तु गुञ्जाशीतिप्रमाणं।

तदर्द्धमिति हेमरूप्यताम्रेषु योज्यं वृषत्रयं कार्य्यं वृषान् दद्यादिति वचनात्।

कुम्भे पत्रं समारोप्य वस्त्रोत्तमयुतं तथा।
त्रयोदश्यामेकभक्तं रिक्तायां नक्तमाचरेत् ॥

अनुकल्पोऽयं।

गन्धपुष्पैः सनैवेद्यैः वस्त्राभरणदीपकैः।
गङ्गाधरं समभ्यर्च्य प्रार्थयेत् प्रवरस्वरं ॥
गङ्गाधर महादेव सर्वलोकपरावर।
जहि मे सर्वपापानि पूजितस्त्विह शङ्कर ॥
गङ्गाधर धराधीश परात्परवरप्रद।
श्रीकण्ठ नीलकण्ठस्त्वमुमाकान्त नमोस्तु ते ॥
एवं पूज्य विधानेन प्रतिपद्युदिते रवौ।

हिरण्यादीन् गोवृषञ्च ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् ॥
यथा त्वं सर्व्वगः सर्व्वं सर्व्वावासस्तु सर्व्वकृत्।
न लिप्यसे विकुर्व्वाणस्तथामाङ्कुरु शङ्कर ॥
एवं श्रुत्वा नमस्कृत्य वृषान् दद्याद्यदीप्सितान्।
गुर्व्वादिभ्योद्विजेभ्यस्तांच्छङ्कर प्रीयतामिति।
एवं व्रतमिदं कृत्वा वृषं दद्याद्द्विजातये ॥

वृषोत्र, प्रतिमा।

यममार्गं महाघोरं न पश्यति कदाचन।
ततः श्रुत्वा स विप्रर्षिः पुनरायात् स्वकं पुरं ॥
यमलोकन्तु संदृश्य सूर्य्येण सहितस्तदा।
तैः समेत्य यथावृत्तं सर्व्वमाख्यातवान्नृपः ॥
ततः श्रुत्वा चकारासौ वृषदानं यतव्रतः।
सर्व्वपाप विनाशाय सहस्राद्यौहिणीपतिः ॥
सर्व्वे सत्त्वश्च ये प्रेतास्तथा वै चापरे शतं।
तैस्तैः सार्द्धं स राजर्षिः परलोकमवाप्नुयात् ॥
यः करोति व्रतञ्चैव सर्व्वपापप्रणाशनं।
न लिप्यति स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥
ब्रह्महत्यादिभिः पापैरगम्यागमनादिभिः।
मुच्यते पातकेभ्योद्याभक्ष्यापेयैः पुमान् शक्रत् ॥
यः करोति महाभाग दानं सर्व्वसुखावहं।
हत्वा पापान्यशेषाणि स्वर्गलोकं स गच्छति ॥

इति वह्निपुराणोक्तं पाशुपतव्रतं।

———ooo———

मैत्रेय उवाच।

पापप्रशमनायालं यच्च पुण्योपबृंहणं।
मनोरथप्रदं यच्च तद्व्रतं कथ्यतां मम॥

याज्ञवल्क्य उवाच।

प्राप्यते विविधैर्यज्ञैर्यत् फलं मासिकैर्नृभिः(१)।
उपवासैस्तदाप्नोति समाराध्य जनार्दनं॥
मनोरथानां संप्राप्तिकारकं पापनाशनं।
श्रूयतां मम धर्म्मज्ञ व्रतानामुत्तमं व्रतं॥
यत् कृत्वा नजडोनान्धो वधिरो भवदुःखितः।
नचैवेष्टवियोगार्त्तिं कश्चित् प्राप्नोति मानवः॥
नचाप्रियोस्य लोकस्य कदाचिदपि जायते(२)।
सप्तजन्मानि कल्याण सर्व्वपापैः प्रमुच्यते॥
विष्णुव्रतमितिख्यातं दर्शितं विष्णुना स्वयं।
पौषशुक्ल द्वितीयादि कृत्वादिनचतुष्टयं॥
पञ्चमासपारणप्रायं गृह्णीयात्परमं व्रतं।
पूर्वं सिद्धार्थकैः स्नानं ततः कृष्णतिलैः स्मृतं॥
वचयाथ तृतीयेऽह्नि सर्व्वौषध्या ततःपरं।
नाम्ना कृष्णाच्युताख्येन तथा तं तेन पूजयेत्(३)॥
तथैव च चतुर्थेऽह्नि हृषीकेशं च केशवं(४)।

(१) साध्विसाधुभिः रिति वा पाठः।

(२) नवाप्रियो मानुषाणां न रोगौतुवि जायते इति वा पाठः।

(३) स्नानं कृष्णाच्युताख्येन इति पुस्तकान्तरे पाठः।

(४) ध्यात्वादेवं प्रपूजयेदिति पाठान्तरं -

देवमभ्यर्च्य पुष्पैश्च पत्रैर्धूपानुलेपनैः ॥
उद्गच्छतश्च वालेन्दोर्दद्यादर्घ्यं समाहितः ।
पुष्पैः पत्रैः फलैश्चैव सर्व्वधान्यैश्च भक्तितः ॥
दिनक्रमेण चैतानि चन्द्रनामानि कीर्त्तयेत् ।
शशी चन्द्रः शशाङ्कश्च निशापतिरिति क्रमात् ॥
नक्तं भुञ्जीत सततं यावत्तिष्ठति चन्द्रमाः ।
अस्तङ्गते न भुञ्जीत व्रतभङ्गभयाच्छुभे ॥
एवं सर्व्वेषु मासेषु ज्यैष्ठान्तेषु यशस्विनि ।
कर्त्तव्यं वै व्रतश्रेष्ठं द्वितीयादिचतुर्दिनं ॥
विप्राय दक्षिणां दद्यात्पञ्चम्यां च यशस्विनि ।
एवं समापयेन्मासैः षड्भिः प्रथमपारणं ॥
पारणान्ते च देवस्य प्रीणनं भक्तितः शुभैः ।
यथाशक्त्या तु कर्त्तव्यं वित्तशाठ्यं विवर्ज्जयेत् ॥
आषाढादिद्वितीयाश्च षण्मासेन तपोधन ।
पारणं वै समाख्यातं व्रतस्यास्य शुभप्रदं ॥
व्रतमेतद्दिलीपेन दुष्मन्तेन ययातिना ।
तथान्यैः पृथिवीपालैरुपवासविधानतः ॥
उपवासो नक्तं ।
चरितं मुनिमुख्यैश्च मरीचिच्यवनादिभिः ।
सुमित्रयाच(१) कैकेय्या शाण्डिल्या धूमपिङ्गया(२) ॥

---

(१) सुरभयाच इति वा पाठान्तरं ।
(२) शाण्डिल्या च सुनीतया इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

सुदेष्णया च देवक्या मतिमत्या कृतं तथा।
सावित्र्या पूर्णमास्या च(१) वीरिण्याथ सुभद्रया॥
ब्राह्मणक्षत्रियविशा शूद्रैः स्त्रीभिरनुष्ठितं।
उर्वश्या रम्भया चैव सौरभेय्या तथा व्रतं॥
धराप्सरोभि(२)र्धर्म्मज्ञैः सेवितं पुण्यवाञ्छया।
प्रथमे पाद पूज्योस्य द्वितीयेनाभि पूजनं॥
तृतीये चक्षुषः पूजा चतुर्थे शिरसो हरेः।
एतच्चीर्त्वा समस्तेभ्यः पापेभ्यः श्रद्धयान्वितः॥
मुच्यते कलुषैश्चैव स प्राप्नोति मनोरथान्।
व्रतानामुत्तमं ह्येतत् स्वयं देवेन भाषितं॥
पापप्रशमनं शस्तं मनोरथफलप्रदं।
यच्च काममभिध्याय क्रियते नियतव्रतैः॥
व्रतमेतन्महाभागे तं संपूरयते नृणां।
मनोरथान् पूरयति सर्वपापं व्यपोहति॥
अव्याहतेन्द्रियत्वञ्च सप्तजन्मानि यच्छति॥
माघे स्नानस्य यत्पुण्यं प्रयागे पापनाशनं।
सकलं तदवाप्नोति शुत्वा विष्णुं व्रतन्त्विदं॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं विष्णुव्रतं।

———ooo———

(१) वेदवत्या तथा चीर्णमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

(२) धराधीरैश्च इति पुस्तकान्तरे पाठः।

श्रीमार्कण्डेय उवाच ।

योगभूतं हरिं देवं चातुर्मास्यमुपोषितं ।
अर्चयेत्पौर्णमास्यान्तु सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥

योगभूतं सकलं ।

ब्रह्मभूतममावास्यां पूजयेत्तामुपोषितः ।
राजसूयमवाप्नोति कुलमुद्धरति स्वकं ॥

ब्रह्मभूतं निष्कलं ।

ब्रह्मभूतममावास्यां पौर्णमास्यां तथैव च ।
योगभूतं परिचरन् केशवं महदाप्नुयात् ॥
अत्यर्थं प्रीतिमाप्नोति मासपक्षांस्तयोः सदा ।
पूजितः सोपवासेन भक्त्या देववरो हरिः ॥
महाव्रतमिदं ख्यातं सर्व्वकल्मषनाशनं ॥
संवत्सरमिदं कृत्वा नाकपृष्ठे महीयते ॥
सर्व्वपापोपशमनं व्रतमेतत् प्रकीर्त्तितं ।
स्वचित्तशक्तिरेवात्र सर्व्वकर्म्मसु कारणं ॥

कृत्वा व्रतं द्वादशवत्सराणि
प्राप्नोति लोकं पुरुषोत्तमस्य ।
तत्रोष्य कालं सुचिरं महात्मा
प्राप्नोति लोकं पुरुषस्ततोऽसौ ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं महाव्रतं।

———000@000———

मार्कण्डेय उवाच।

चैत्रशुक्लादथारभ्य प्रत्यहं दिनसप्तकं॥
एकदिनं क्रादिनीञ्चैव पावनीं चैव पूजयेत्।
सीतां चेक्षुं तथा सिन्धुं तथा भागीरथीं क्रमात्।
बहिःस्नानं(१) तथा कुर्य्यान्नित्यं नक्ताशनो भवेत्।
जले च जुहुयात् क्षीरं शान्तात्मा च दिने दिने॥
क्षीरपूर्णाश्च दातव्या वारिधान्यो द्विजातिषु।
क्षीराशनश्च तिष्ठेत तत्तथा दिनसप्तकं॥
एवं संवत्सरं कृत्वा पूर्णे संवत्सरे नरः।
द्विजातिषु ततो दद्याद्रजतस्य पलं शुभं॥
फाल्गुनस्यासिते पक्षे(२) सप्तम्यां दिवसे(३) क्रमात्।
तं लोकमाप्नोति नरो यत्र पायसकर्दमाः॥
नद्यः क्षीरवहा दिव्याः सर्व्वकामफलप्रदाः।

तत्रोष्य कालं सुचिरं महात्मा
मानुष्यमासाद्य भवत्यरोगः॥
गुणेन शीलेन धनेन युक्तो
राजाथ वा ब्राह्मणपुङ्गवश्च॥

इति श्रीविष्णुधर्मोत्तरोक्तं नदीव्रतं।

———000———

(१) हविष्याशमिति पुस्तकान्तरे पाठः।
(२) फाल्गुणस्य सिते पक्षे इति पाठान्तरं।
(३) त्रिदिनमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

मार्कण्डेय उवाच ।

अतःपरं प्रवक्ष्यामि तव लोकव्रतं शुभं ।
यास्तु व्याहृतयस्तत्र सप्तलोकाः प्रकीर्त्तिताः ॥
आचरेत् प्रत्यहं स्नानं बहिर्नित्यमतन्द्रितः ।
चैत्रशुक्लात्तथारभ्य क्रमेण दिनसप्तकं ॥
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकं ।
एकरात्रोपवासश्च क्रमेणैवं समाचरेत् ॥
महाव्याहृतिभिर्होमस्तिलैः कार्य्यो दिने दिने ।
संवत्सरान्ते दद्याच्च तथा विप्रेषु दक्षिणां ॥
सुवर्णसुमहद्वासः कांस्यधेनूस्तथैव च ।
संवत्सरमिदं कृत्वा व्रतं पुरुषसत्तम ॥
सर्वलोकवरः श्रीमान् स्वेच्छया स्यान्नराधिपः ।
यावत् कल्पावसानन्तु कल्पादौ पार्थिवोत्तमः ॥
स चक्रवर्त्ती नृपवर्य्यपूज्यः
सुरासुराणामधिकप्रभावः ।
संवत्सराणामयुतं शतानि
स याति पृथ्वीसकलाभिरामः ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं लोकव्रतं ।

———000———

मार्कण्डेय उवाच ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि तव शैलव्रतं शुभं ।
महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षवानपि ॥

विन्ध्यश्च पारिपात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः।
चैत्रशुक्लसमारम्भात् प्रत्यहं दिनसप्तकं॥
तेषां संपूजनं कृत्वा बहिःस्नानं समाचरेत्।
गन्धमाल्यनमस्कारधूपदीपान्नसम्पदा॥
यवैर्होमं तथा कुर्य्याद्दद्याद्विप्रे यवानपि।
नित्यं यवान्नमश्नीयात् कुर्य्यात् संवत्सरं व्रतं॥
तस्यावसाने दद्यात्तु यवप्रस्थांश्च विंशतिः।
वाचकाय द्विजेन्द्राय सुवर्णं काञ्चनस्य तु॥
व्रतेनानेन चीर्णेन चतुःसागरमेखलां।
भुनक्ति वसुधां राजा वशीकृत्वा रिपून्नृपः॥

भोगांस्तु भुक्त्वा त्रिदिवेश्वरस्य
मानुमासाद्य यथोक्तमेतत्।
प्राप्नोति सर्वं हि मयेरितं यत्
जन्मान्तराण्येवनरेन्द्रसत्तमः॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं शैलव्रतं।

---

मार्कण्डेय उवाच॥

अथातः संप्रवक्ष्यामि समुद्रव्रतमेव ते।
चैत्रशुक्लादथारभ्य प्रत्यहं दिनसप्तकं॥
लवणक्षीरं सघृतं दधिमण्डं सुरोदकं(१)।
तथैवेक्षुरसोदञ्च स्वादुदश्चैव पूजयेत्॥

(१) सरोदकमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

आचरेत् प्रत्यहं स्नानं सुचिर्भूत्वा तथावहिः ।
घृतेन होमं कुर्वीत सप्तम्याञ्च प्रदापयेत् ॥
हविष्याशी भवेन्नक्तं कुर्यात् संवत्सरं व्रतं ।
संवत्सरान्ते दद्याच्च तथा धेनुं पयस्विनीं ॥
व्रतेनानेन चीर्णेन सप्तसागरमेखलां ।
भुनक्ति वसुधां राजा सप्तजन्मान्तराणि तु ॥
आरोग्यकामः कुर्वीत व्रतमेतत्तथैव च(२) ।
धर्म्मकामोऽर्थकामश्च स्वर्गकामस्तथैवच ॥

मङ्गल्यमेतत्परमं पवित्रं
श्रीवर्द्धनं धर्म्मविवृद्धिकारि ।
कर्त्तव्यमेतत् प्रयतैर्म्मनुष्यै
राज्याभिकामैरचिरेण तैश्च ॥

## इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं समुद्रव्रतं ।

———ooo———

मार्कण्डेय उवाच ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि द्वीपव्रतमनुत्तमं ।
चैत्रशुक्लात्तथारभ्य प्रत्यहं दिन सप्तकं ॥
जम्बूशाककुशक्रौञ्च शाल्मलिद्वीपसंज्ञितं ।
गोमेदं पुष्करञ्चैव प्रत्यहं पूजयेत् क्रमात् ॥
नित्यमेव तदास्नानं वहिरेवं समाचरेत् ।
अधःशायी भवेन्नित्यं तदेव दिनसप्तकं ॥

(२) व्रतकाम इति पाठान्तरं।

पूर्णे संवत्सरे दद्याद्रजतञ्च विनिर्मितं।
फलानि तु विशेषेण संस्थानन्दीपवत् कृतं॥
व्रतमेतन्नरः कृत्वा पूर्णसंवत्सरं शुचिः।
स्वर्गलोकमवाप्नोति यावदाभूतसंप्लवं॥
मानुष्यमासाद्य स सप्तद्वीपां
भुनक्ति भूमिं विजितारिपक्षः।
संपूज्यमानस्त्रिदशैः सदैव
महर्षिभिर्ब्राह्मणपुङ्गवैश्च॥

## इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं दीपव्रतं।

———ooo@ooo———

श्रीमार्कण्डेय उवाच।

अथातः संप्रवक्ष्यामि श्रीव्रतं नाम ते व्रतं।
चैत्रशुक्लतृतीयायां स्नानमभ्यङ्गपूर्व्वकं॥
कृत्वा शुक्लाम्बरो राजञ्छुक्लमाल्यानुलेपनः।
तिष्ठेद्घृतोदनाहारो भूमौस्वप्यान्निशां च तां॥
चतुर्थ्याञ्च तथा स्नानं वहिरेव समाचरेत्।
पञ्चम्याञ्च विशेषेण शुक्लाम्बरधरः शुचिः॥
लक्ष्मीं संपूजयेत् पद्मैः कृत केकृतकैपि वा।
शुक्लेन गन्धमाल्येन घृतदीपेण वाप्यथ॥
लक्ष्मीरूपन्तु नारदीयपुराणात्।
पद्मा पद्मकरा कार्य्या पद्मपुष्पासनस्थिता।
चतुर्भुजा सुरूपाढ्या साक्षसूत्रकमण्डलुः॥

हरिद्रया च धान्येन आर्द्रकेन गुड़ेन च।
इक्षुलक्षुविकारैश्च लवणेन च भूरिणा॥
स्वशक्त्या च महाराज भूरिणा वलिकर्षणं(१)।
श्रीसूक्तेन ततोवह्नौ पद्मानि जुहुयाच्छुचिः॥
तद्दलानि च बिल्वानि तदलाभे तथा घृतं।
ब्राह्मणान् गोरसप्रायं घृतभूयिष्ठमाशयेत्॥
सुवर्णमाषकं दद्याद्ब्राह्मणस्य च दक्षिणां।
अनाहारस्ततः स्वप्यात् शुचौ देशे यथाविधि॥
ततस्तु पञ्चमीं प्राप्य पूर्वोक्ते पद्मिनीजले।
स्नात्वा संपूजनं कुर्यात् प्राग्वदेव तथास्थितः॥
भूय एतद्द्विजे दद्यात् पूर्णं कनकमाषकं(२)।
पद्माक्षमथवा विल्वं प्राश्नीयात्तदनन्तरं॥
ततो हविष्यमश्नीयाद्वाग्यतो मानवोत्तमः।
संवत्सरमिदं कृत्वा व्रतं पार्थिवसत्तम॥
फलमाप्नोति विपुलं राजसूयाश्वमेधयोः।
विना कनकदानेन व्रतमेतत् समाचरेत्॥
व्रतान्ते माषकं सर्व्वमग्निष्टोमफलं लभेत्।
संपूज्य सोपवासस्तु शुक्लपक्षस्य पञ्चमीं॥
नित्यमेव श्रियं देवीं श्रियमाप्नोत्यनुत्तमां।
बलमुत्तममाप्नोति रूपमारोग्यमेव च॥

(१) भूमिनावह्निकवपनमिति पाठान्तरं।

(२) कनकमासनमिति पाठान्तरं।

जगत् प्रधानां वरदाञ्च पुण्यां
विभावरीं सर्व्वगतां नरेन्द्रः।
श्रद्धान्वितः पूजयतीह यस्तु
कामानवाप्नोति स सर्व्वकालम्॥

## इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं श्रीव्रतं।

———000———

श्रीमार्कण्डेय उवाच।

अथापरं प्रवक्ष्यामि पञ्चमूर्त्तिव्रतं तव।
शङ्खचक्रगदापद्मं पृथ्वीञ्च महाभुज॥
गन्धैर्मण्डलिकां कृत्वा पञ्च पञ्च सुपूजयेत्।
चैत्रशुक्लां तथारभ्य पञ्चमीप्रभृतिर्नरः॥
सोपवासो बहिस्नातस्तथा शुक्लाम्बरः शुचिः।
गन्धमाल्यनमस्कारदीपधूपान्नसम्पदा॥
सर्वेषां पूजनं कृत्वा जुहुयाज्जातवेदसि।
सर्वेषामेव देवानां नामभिस्तु तथा गृहं॥
ब्राह्मणान् भोजयेच्चात्र तदा च सुरभोजनं।
संवत्सरमिदं कृत्वा व्रतान्ते वस्त्रपञ्चकं॥
पञ्च वेदविदां दद्यात् पञ्चवर्णं नराधिप।
व्रतेनानेन चीर्णेन राजसूयफलं लभेत्॥
मानुष्यमासाद्य भवत्यरोगी
बलान्वितोधर्म्मपरोविनीतः।

श्रुतेन रूपेण धनेन युक्तो
राजाधिराजोऽप्यथ वा द्विजेन्द्रः ॥

## इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं पञ्चमूर्त्तिव्रतं ।

---

कृष्ण उवाच ।

अन्नदानस्य माहात्म्यं कथयामि तवानघ ।
यत्प्रोक्तमृषिभिः पूर्व्वं तदिहैकमनाः शृणु ॥
१ ददस्वान्नं ददस्वान्नं ददस्वान्नं युधिष्ठिर ।
सद्यस्तृप्तिकरं लोके किञ्चिद्दत्तेपरेण तु ॥
रामेण दाशरथिना व्रतस्थेन निजानुजे ।
निर्वेदात्तु पुराप्युक्तं तच्चापि कथयामि ते ॥
पृथिव्यामन्नपूर्णाया वयमन्नस्य काङ्क्षिताः ।
सौमित्रेनान्नमस्माभिर्ब्राह्मणस्य मुखे हुतं ॥
यदुप्यते कर्म्मबीजं वत्सावश्यं फलं नरैः ।
प्राप्यते लक्ष्मणास्माभिर्नान्नं विप्रमुखे हुतं ॥
यन्नप्राप्यं न तत् प्राप्यं विद्यया पौरुषेण वा ।
प्राप्यते लोकवादोऽयमादत्तमुपतिष्ठते ।
भक्ष्योपयोगादन्यस्त्वदानं श्रेयस्करं परं ।
प्रकारान्तरभोज्यानि दानान्यायान्ति भारत ॥
अत्र मे परमं दानं सत्यवाक्यं परं पदं ।
क्षुत्पिपसात्यययोर्लाभः सन्तोषः परमं सुखं ॥
स्नातानामनुलिप्तानां भूषितनां विभूषणैः ।

न सुखं न च सन्तोषो भवेदन्नादृते नृणां॥
श्वेतोनाम महीपालः सार्व्वभौमोऽभवत् पुरा॥
तेनेष्टं बहुभिर्य्यज्ञैः संग्रामा बहवो जिताः।
दानानि च प्रदत्तानि धर्म्मतः पालिता मही॥
भुक्त्वा भोगान् सुविपुलान् शत्रूणां मूर्द्धनि स्थितः।
वानप्रस्थेन विधिना त्यक्त्वा राज्यश्रियं नृप॥
स्वर्गं जगाम तां भुक्त्वा पूज्यमानो मरुद्गणैः।
तत्रास्ते रममाणोऽसौ सार्कं विद्याधरोरगैः॥
प्रसिद्ध स्तूयते सिद्धैः सेव्यतेऽप्सरसाङ्गणैः।
गन्धर्व्वैर्गीयते हृष्टैः शक्रेनाप्यनुगम्य तेः॥
दिव्यमालाम्बरधरो दिव्याभरणभूषितः।
सच नित्यं विमानाग्रादवतीर्य्य महीतलं॥
स्वयमायाति कौन्तेय पूर्व्वन्त्यक्त्वा कलेवरं।
तच्छरीरं तथैवास्ते रचितं पूर्वकर्म्मभिः॥
स कदाचित् सुरे स्थाने ब्रह्माणं समुपास्थितः।
प्रणम्य प्राञ्जलिर्भूत्वा निर्वेदादिदमब्रवीत्॥
भगवंस्त्वत्प्रसादेन प्राप्तं स्वर्गसुखं मया।
सर्व्वेषामप्ययं पूज्यः सुराणां सुरपुङ्गव॥
किन्तु क्षुद्बाधतेऽत्यर्थं स्वर्गस्थऽस्यापि मे प्रभो।
यथामांसान्यहं स्वानि भक्षयाम्यशनं विना॥

ब्रह्मोवाच।

श्वेताभिजनसम्पन्नश्वेत शृणु वचो मम।
त्वया धीतं श्रुतं दत्तं गुरवः परितोषिताः॥

नाशनं भवता दत्तं क्षुधिताय द्विजोत्तम ।
ततः स्वाध्यायसम्पन्नं शास्त्रज्ञं संयतेन्द्रियं ॥
येन संपद्यते तृप्तिरक्षया जायते तव ।
विरिञ्चिस्तद्वचः श्रुत्वा त्वरायुक्तो महीपतिः ॥
अगस्त्यं भोजयामास भक्त्या भरतसत्तम ।
श्वेतस्तृप्तोगतः स्वर्गं दत्तान्नदक्षिणाव्रतं ॥
पौलस्त्ये निहते पश्चाद्देवदानवसङ्कटे ।
रामायैकावलीं प्रादादगस्त्यः परया मुदा ॥
८ एतद्वृतस्य महात्मंा कथयाम्यपरञ्च ते ।
तवान्नादपरं किञ्चिद्दानं सत्यं मयोदितं ॥
अन्नं वै प्राणिनः प्राणाः अन्नभोजी वलं सुखं ।
एतस्मात् कारणात् सद्भिरन्नदः सर्व्वदः स्मृतः ॥
सुहृदो ह्यात्मवर्गश्च गृहं सप्ताः वुभूक्षिताः ।
तृप्ताः प्रतिनिवर्त्तन्ते नकोन्यः सदृशः पुमान् ॥
दीक्षितः कपिला माता राजभिक्षुर्म्महोदधिः ।
दृष्टमात्राः पुनन्त्येते तस्माद्द्यात्तु नित्यशः ॥
एकस्याप्यतिथेरन्नं यः प्रदातुमशक्तिमान् ।
तस्यारम्भपरिक्लेशैः सर्व्वतः किं फलं गृहे ।
शक्यते पुष्करेचार्थैं चिररात्राय जीवितुं ॥
अन्नाहारविहीनेन शक्यं वर्त्तयितुं चिरं ।
भुक्त्वा गृहे गृहस्थस्य मैथुनं यस्तु सेवते ।
यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा इतिप्राहुर्मनषिणः ॥

दुष्कृतं हि मनुष्याणामन्नमाश्रित्य तिष्ठति।
कस्मान्न दीयते नित्यं तस्मादन्नन्तु दीयते॥
यस्येदृशी फलावाप्तिः कथिता सर्व्वसूरिभिः।
भिक्षां वा पुष्कलां वापि हन्तकारं द्विजायते॥
भोजनञ्च यथा लाभमदत्त्वा श्नाति किल्बिषं।
येन शतं सहस्रं वा भोजितं स्याद्विजन्मनां॥
तेन ब्रह्मगृहान्नन्तदनद्यन्तु च कुटीरकं।
वाराणस्यां पुरा पार्थ वणिजो वणिजीविनः॥
धनेश्वर इतिख्यातो देवब्राह्मणपूजकः।
तस्य पार्श्वेकदेशेतु मुक्ताण्डं पाण्डुरच्छविः॥
ससर्प सर्पस्तद्गेहे शाद्वणिङ्गृहा विशङ्कितः।
तदण्डं वणिजाहृत तेन दृष्टञ्च बुद्धिना॥
ततः प्रभृति रुदितं ररक्षच पुपोष च।
निर्जगाम दिनैः कैश्चिद्भित्वाण्डं सर्पपोतकः॥
वणिजा रक्षमाणस्य स्वेहाच्चाहरहर्निशं।।
चनकक्षीरपानाद्यैः सर्पभोगैरवर्द्धयेत्॥
लिलेह घृत भाण्डानि जगृहे गन्धसञ्चयात्।
भूयोपांसुप्रकारेव चकारवारिमध्यगं॥
जगाम सुमहान् कालोवत्सोणा च वर्षैः शुभैः।
अथैकस्मिदिने गङ्गां गतः स्नातुं त्रिलोचन।
वाणिः मार्गीखण्विन्द्यापथिलास्थितं मतं॥
व्यवहार समारब्धं वणिक्पुत्रेणधीमता।

ददाति प्रतिगृह्णाति यत्रतैलं घृतैश्चयं ॥
व्यवहारा कुल तया यादयेरन्तरेण सः ।
सर्प्पत्वया रजायत्याइगितत्किन्तीव सक्तः ॥
जानन्नपि सद्वृत्तान्तं निदानं नियते वशा ।
नासात्सन्तर्ज्जयामास पलेनपलष्ठभोजिनं ।
सम हतः समुत्थाय मूर्द्धानमधिगच्छति ॥
उवाच दारुणातमं स्वामिनं पन्नगाधमः ।
शरणागतपोषितश्च तव पित्रा प्रियङ्करं ॥
कस्मान्माहंसि दुष्टात्मा नमे जीवं विमोचसि ।
तदन्ते कलकलाःशब्दः सञ्जातो रोहणो नृणां ॥
धनेश्वर सुदेतोद्वष्टः सर्प्पं णाभि भृशाङ्कुलः ।
अच्युतानन्त गोविन्दं कृष्णेनैवेत्युदीरयेत् ॥
धनेश्वरोप्यनुप्राप्तः स्तुत मांकलयागिरा ।
किं किं कृत समेनेभि तव पन्नग विप्रियं ॥
वदत्वं भवता मूर्द्धि स्वाभोगेनाभि चेष्ठितं ।
मूर्खं मित्रं कुसम्बन्धं हीनजातिषु नोदयां ॥
यः करोत्यवुधोङ्गारान् स्वहस्तेनापि कर्षति ।
तत्वं मूर्खस्त्वं स्वसन् सर्प्पो वाप्येराह दयागिर ॥
निरापराधो भवतः पुत्रेणाहं समाहितः ।
सदाहं पश्यतस्तेय दशाम्येनं नराधिप ॥
यथा न भूयो भूतानां भवेदस्मात् कचिद्भयं ।

धनेश्वर उवाच।

उपकारं स्मृति वृत्तिं स्नेहपाशानपाश्य च।
धर्म्ममार्गमनक्रम्य प्रयातः केनवार्थ्यसे॥
क्षणमात्रं प्रतिच्छत्वं यावदेव शिशुर्मम।
और्द्धदेहिक कर्मेह करोति स्वयमात्मनः॥
एवमुक्ता गृहं दत्वा यतीनां ब्रह्मचारिणां।
सहस्रं भोजयामास घृतपायसभोजनैः॥
समुथ्याय ततः सर्व्वे ब्राह्मना हृष्टमानसाः।
वणिक्पुत्रो थोत्तमाङ्गेपि चिक्षिपुकुसुमाक्षतान्॥
वणिकुपुत्र चीरञ्जीव नश्यन्तुतव शत्रवः।
अभिष्टफल संशुद्धिरस्तु ते ब्राह्मणाज्ञया॥
ततः स दुष्टप्रकृतिर्व्वैक्ति वणिग्जन प्रतारितः।
पन्नगोनगसत्कारः पपात च ममार च॥
विपन्नं पन्नगं दृष्ट्वास्त्रश्चक्षुर्द्धनेश्वरः।
आः किमेतदिति प्रोक्ता विषादमगमत्परं॥
पोषितोयं मयावालो पालितोलिलास्तथा।
ममोपकारात्पञ्चत्व प्रपन्नः पवनाशनः॥
उपकारिषुयः साधुः साधुत्वे तस्य को गुणः।
अपकारिषुयः साधुः साधुत्वामिति मे मतिः॥
इत्येवं सं प्रधार्य्यासौ दुःख सन्तप्तमानसः।
वुभुजे नाकुलतया तत्र मुक्तगणोऽनिशं॥
ततः प्रभाते गङ्गायां स्नात्वा सन्तर्प्य देवताः॥

सहस्रं भोजयामास पुनरेव द्विजन्मनां।
समास्तैरिष्टसंसिद्धा ब्राह्मणानुमोदिता:॥
विणिगाह समाभिष्टं गङ्गोवतिः हपन्नगः।
ततो द्विजवरो मुक्तैरंवुभि: परिषिञ्चतैः॥
उद्तिष्ठ द्दहीनाङ्ग सहसाहि महाकुला।
प्रहर्षं मतुलं लेभे तं दृष्ट्वा पुरतस्थितं॥
प्रत्यग्रावयवं हृष्टं रुक्मिणीं परिनेलिह।
दानाय प्राज्ञैः प्रशशंसुर्धनेश्वरं।
पुरीनिवासिनः सर्वे विस्मयोत्फुल्ललोचनः॥
सहस्रभोज्य माहात्म्यं कथितं ते युधिष्ठिर॥
सम्यक् श्रद्धा प्रयुक्तस्य किमन्यसेत् कथयामिते।

इच्छन्तियस्त्वनुदिनं द्विजपुङ्गवाना
मन्नं विशुद्धमनसेट्टशमागतानां।
मर्त्ये विहृत्य सुचिरंसु सुहृत् जनास्ते
प्रेत्येहं यान्ति भवनं मुदिता मुरारे॥

इति श्रीभविष्योत्तरे सदाव्रतं नामान्न दानमाहात्म्यं।

---

युधिष्ठिर उवाच।

भगववन् केन तपसा व्रतेन नियमे न वा।
दानेन केन वा लोके स्रोज्यलन्त प्रजापते॥
अतितेजो महादीप्तं दीप्तां शुकिरणोज्ज्वालं।
शरीरं जायतेयेन तन्मे वक्तुमर्थार्हसि।

कृष्ण उवाच ।

मथुरायां पुरापार्थ पिङ्गलोनाम तापसः ।
आगतः समेपत्नया जाम्बवत्या च पूजितः ॥
पृष्टश्च प्रश्न मे वैतं स चरेद्यो यथातथं ।
नयासि मे समाख्यातं तत्सर्व्वं ते वदाम्यहं ॥
यदायदा नृपश्रेष्ठ पुण्यकालः प्रपद्यते ।
संक्रान्ति सूर्य्यग्रहणे चन्द्रपर्व्व वैधृतौ ॥
पुनरेत्वयनेप्राप्ते दक्षिणे विषुवे तथा ।
एकादश्यां शुक्लपक्षे चतुर्द्दश्यां दिनक्षये ॥
सप्तम्यामथवाष्टम्यां स्नात्वा व्रतपरो नरः ।
नारी वा भूमिदेवेभ्यः प्रयच्छन् प्रयताङ्गणे ॥
घृतकुम्भेन दीपं वा स्वर्ण प्रज्वालन्तं प्रदीपकं ।

युधिष्ठिर उवाच ।

भूमिदेव इति प्रोक्तं यत्वया मधुसूदन ।
किमेतत् कौतुकं मेस्ति संशयञ्छेतु मर्हसि ॥

कृष्ण उवाच ।

पुराकृतयुगस्यादौत्रिशङ्कुर्नाम पार्थिव ।
स स्वर्गं गन्तु कामोऽभूत् स शरीरी नृपोत्तमं ॥
ततश्चण्डालता नीतो वसिष्ठेद महात्मना ।
त्रिशङ्कुः सर्व्वमाचख्यौ विश्वामित्राय धीमते ॥
सोऽपि मन्युवशाद्यज्ञं चकार हयदैवतं ।
नते रुचिः प्रतिग्टह्य ततः क्रुद्धः कुशात्मजः ॥

विश्वामित्रस्तु कोपेन चकारान्यान् सुरोत्तमान् ।
शृङ्गाटकानारिके रान्यवचान्न जेडकान् ॥
मोधार पट्टन्ता वा गौड़ कुष्माण्डकान् द्रुमा ।
उष्ट्रान् मनुद्दिमुख्यांश्च क्रोधान्मनिरवासृजन् ॥
चकारान्यान् समुषितान् प्रतिमासु सुरोत्तमान् ।
ततः शक्रं समागम्य विश्वामित्रं प्रसाद्य वै ॥
सृष्टिं निवारयामास ये सृष्टास्ते तथापि च ।
मेघलोकेषु ते सर्व्वे देवा देवकुलेष्वथ ॥
मन्त्रैनिवद्धा पिण्डीषु स्थिता मूर्द्धिमतो यथा ॥
ब्रह्मा विष्णु स्तथा रुद्रोयेचान्येदेवतागणाः ।
लोकाना सुपकाराय मर्त्त्यलोक मुपागताः ॥
प्रतिमा सुस्थितां शश्वत् भोगान् भुञ्जन्ति शाश्वतान् ।
वरान् प्रयच्छति भक्तानामिति ते गुह्यमीरितं ॥
तेभ्यः पुरस्तादातव्यं प्रच्छान्तं तं प्रदीपकं ।
सूर्य्याय रक्तवस्त्रेण पूर्णावर्त्तिं घृतेन तं ॥
चतुः प्रस्थेः प्रज्वलन्तौ मन्त्रेणानेन दापयेत् ।
तद्विष्णोः परमं पदं सदापश्यन्ति सूरयः ॥

दिवीव चक्षुराततं नमः ।

पीतवस्त्रेणकृष्णाय श्वेतवस्त्रेण शूलिने ।
कौसुम्भ वस्त्रेणाद्येन गौरीमुद्दीश्चदापयेत् ॥
लाक्षारक्तेन दुर्गायै पूर्णवर्त्तिं प्रवोधयेत् ।
नीलवस्त्रेण कामाय वाणनाथाययथादिरं ॥

नागेभ्यः कृष्णवस्त्रेण ग्रहेभ्य इषिकायुधां।
देवाग्नेन पितृवर्त्तिका। नागोभ्यो नागवर्त्तीति प्रवोधयेत्।
विशेषं शृणु सूर्य्याय पूर्णवर्त्तिर्निगद्यते।
शिवायेतिश्वरवर्त्तीं भोगवर्त्तीं जनार्दने॥
पद्मवर्त्तीं विरिञ्चेस्तु गौर्य्याः सौभाग्यवर्त्तिका।
नागोभ्यौ नागवर्त्तीति ग्रहवर्त्तीं युधिष्ठिर॥
नवयद्येन मधुना घृतेन मधुवण्डके।
अर्पिते चर्चिते चैवलं लितायै प्रवोधयेत्॥
मन्त्रेणानेन राजेन्द्र तन्निशामय वैदिकं।
ऋग्भिरेषां कामपाङ्गिरातुचं नाङ्गिरश्च सविश्वाः सुचितयः पृथक्।
अग्निकामाय जेगिरे अग्रियेषु धामसु।
कामोभूतस्य भोव्यस्य सम्रातिकौ विराजाभ्यांनमः स्वाहा।
एवमेतेन विधिना यः प्रयच्छतिदीपकं।
विस्तीर्णे विपुले पात्रे घृतकुम्भे नियोजितं॥
यान्तिते ब्रह्मसदनं विमानेनार्कवर्चसा।
तिष्ठन्ति पावमानास्ते यावदाभूतसंप्लवं॥
सदीपेतु तथैवोर्द्धङ्गतिर्य्यथा देशैवचसि वलवन्ति हि।
तथादीपस्य दातारो भवन्ति स फलेचणाः॥
यथैवोर्द्धगतिर्नित्यं राजन् दीपशिखः शुभाः।
दीपदातुस्तथैवोर्द्धं गतिर्भवति शोभना॥
घृतेन दीपो दातव्यो राचन् तैलेन वा पुनः।

वसामज्जादिभिर्दीपो न तु देयः कथञ्चन ॥
दीपतैलेन कर्त्तव्यं न तु कर्म्मविजानता ।
निर्वाणाद्यान्तु दीपस्य हिंसनञ्च निगर्हितं ॥
यः कुर्य्यात्तेन कर्म्माणि स्यादसौ पुष्पितेक्षणः ।
दीपहर्त्ता भवत्यन्धः काणोभिर्व्वापको भवेत् ॥
पद्मपत्रोद्भवां वर्त्तिं गन्धतैलेन दीपकम् ।
विरोगश्चैवा सुभगः नघीभवति मानवः ॥
प्रहेभ्यो देवदेवस्य कर्पूरेण तु दीपकं ।
अश्वमेधमवाप्नोति कुलञ्चैव समुद्धरेत् ॥

एतन्मयोक्तं तव दीपदान
फलं समग्रं कुरुवंशचन्द्र ।
श्रुत्वा यथोक्तं स ततं प्रदेयो
दीपस्त्वयाविप्र सुरालयेषु ॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनं ।
दीपदानात्तिलदानात् पदमाप पुरानघ ॥
आसीच्चित्ररथोनाम विदर्भेषु महीपतिः ।
तस्य पुत्र शतं राज्ञो जज्ञे पञ्चदशोत्तरं ।
एकैवकन्या तस्यासील्लतानामन मतः ॥
सर्व्वलक्षणसम्पन्ना रूपेणाप्रतिमा भुवि ।
तां ददौ काशिराजाय चार्वङ्गींचारुधर्म्मिणीं ॥
शतान्यन्यानि भार्य्याणां त्रीण्यासंश्चाबुधर्म्मिणः ।
तासां मध्येग्रमहिषी ललिता वाम्यथा भवेत् ॥

विष्णो रायतने सातु सहस्रं परिदीपकान्।
प्रज्वालयत्यनुदिनं दिवारात्र मनिर्वृतं ॥
तामिश्वमाश्व यक्पक्षं शुक्ल पक्षञ्च कार्त्तिकं।
तस्याः प्रज्वलभोदीप उच्चस्थान क्षतः शुभः॥
तस्मिन् काले तथा नित्यं ब्राह्मणावसथे तु सा।
व्यग्राभवति सायाह्ने दीपप्रेषणतत्परा॥
चतुष्पथेषु रथ्यासु देवतायतनेषु च।
चैत्यवृक्षेषु वृक्षेषु गोष्ठेषु पर्व्वतेषु च॥
पुलिनेषु नदीनाञ्चकूपमूलेषु पाण्डव॥
तां सपत्न्योऽथ सङ्गम्य प्रच्छुरिदमादृताः।
ललिते वद भद्रन्ते ललिते वदनं तथा॥
न तथा वलिपुष्पेषु न तथा द्विज पूजने।
भवत्याः सुमहान् यत्नोदीपप्रज्वालने यथा॥
तदेतत् कथयास्माकं ललिते कौतुकं परं।
मन्यामहेन्त्व यावश्यं दीपदान फलं श्रुतं॥

ललितोउवाच।

नाहं मत्सरिणी भद्रानवनागादिभाषिता।
एक पत्न्याः श्रिताः साध्यो भवत्योममम नदाः॥
अपृथग्धर्म्म चरणा शृण्वन्तु गदितं मम।
मयैतद्दीपदानस्य यथेष्टं भुज्यते फलं॥
हिरण्यदयिताभार्य्या शैलराज सुतावरा।

उमादेवीति भद्रेषु देविकामा सरिद्वरा।
नारायणानुकम्पार्थं ब्राह्मणाद्यवतारिता॥
क्षुषिता तुषिता वृष्या देविका पापनाशनी।
तस्यां स्नात्वा सकृन्नद्यां गाणपत्यमवाप्नुयात्॥
तस्यामथ नृसिंहाख्यं तीर्थं कल्मषनाशनं।
हरिणा नृसिंहवपुषा यस्यां स्नानं कृतं पुरा॥
सौवेरराजस्य पुरा मैत्रेयोऽभूत् पुरोहितः।
तेन चायतनं विष्णोः कारितं देविकातटे।
अहन्यहनि शुश्रूषा पुष्पधूपानुलेपनैः॥
दीपदानादिभिश्चैव चक्रे तत्र स वै द्विजः।
कार्त्तिक्यां दीपकस्तत्र प्रदत्तस्तेन चैकदा॥
आसीन्निर्वाणभूयिष्ठे देवावासुरतो निशि।
देवतायने वासी तत्राहमपि मूषिका॥
प्रदीपवर्त्तिहरणे कृतबुद्धिर्वरानने।
गृहीतेयं मया वर्त्तिर्वृषदंशो रुरोध१ मां॥
नष्टा चाहं ततस्तस्य मार्जारस्य भयातुरा।
वक्त्रप्रान्तेन पश्यन्त्या स दीपः प्रेरितो मया॥
जज्वाल पूर्ववद्दाप्त्या तस्मिन्नायतने पुनः।
मृताहं तु पुनर्जाता वैदर्भे राजकन्यका॥
जातिस्मरा महीपस्य महिषी चारुधर्म्मणः॥
एष प्रवादो दीपस्य कार्त्तिके मासि शोभनः।
दत्तस्यायतने विष्णोर्यस्येयं व्युष्टिरुत्तमा॥

१ रोदसि वा इति पुस्तकान्तरे पाठः।

असङ्कल्पितमप्यस्य प्रेरणं यन्मया कृतं।
केशवालयदीपस्य तस्येदं भुज्यते फलं॥
एतस्मात् कारणाद्दीपानहमेतानहर्निशं।
प्रयच्छामि हरेर्गेहे जातमस्य महाफलं॥
एवमुक्तासपत्नास्ता दीपदानपरायणाः।
बभूवुर्देवदेवस्य केशवस्य महागृहे॥
ततः कालेन महता सह राज्ञा महात्मना।
विष्णुलोकमनुप्राप्ता पञ्चत्वं प्राप्य मानदा॥

तं लोकमासाद्य नृपेण सार्द्धं
सराजपत्नी कमलाभनेत्रा।
रेमे महीपाल मुदा समेता
दीपप्रदानात् सकला न हीनाः॥
दीपप्रदानमपि पुण्यतरं वदन्ति
विप्राग्निगोगृहसुरैकगृहाङ्गणेषु।
तद्दानदीप्तवपुषास्य यथान्धकारे
गच्छन्नरःपतति नो सलिले कदाचित्॥

इति श्रीभविष्योत्तरे दीपदानविधिः।

———000———

## अथ स्कन्दपुराणोक्तं मौनव्रतं।

कैलासशिखरासीनो देवदेवो जगद्गुरुः।
त्रिलोचनो दशभुजो जटाखण्डेन्दुमण्डितः॥
भस्मार्चितशरीरस्तु पञ्चवक्त्रसमन्वितः।
शूलपाणिर्महातेजा द्वादशादित्यसन्निभः॥

शेषवद्धजटाजूटः सुखासीनः सहोमया।
तत्र देवासुरा यक्षगणगन्धर्व्वकिन्नराः॥
अन्येऽपि हृद्वतपसो मृत्युकालसमप्रभाः।
एभिः संसेव्यमानोऽसौ पार्वतीप्राणवल्लभः॥
कस्मिंश्चिदपिकुलेऽसौ पार्वतीप्राणवल्लभः।
विसृज्य देवानेकान्ते पार्व्वत्या सह तिष्ठति॥
प्रणम्यातीव सस्नेहं रोमाञ्चिततनूरुहं।
तत्त्वं पृच्छति सा देवी शृणु सर्व्वसुरेश्वर॥
लोकनाथे प्रसुप्ते तु लोकामात्यजने रताः॥
सूर्य्यादीनाञ्च देवानां विश्वेशे भक्तितत्पराः।
किमर्थं तद्व्रतं नास्ति ब्रूहि मे सुरसत्तम॥

ईश्वर उवाच।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यत्पृष्टोऽहं त्वयाधुना।
व्रतमेतत् पुरा चीर्णं सीतया राघवेण च॥
अन्यैरपि जनैः सर्व्वैः सञ्चीर्णं व्रतमुत्तमं।
नभस्यत्र व्यतिक्रान्ते नभस्ये च प्रवर्त्तिते।
नभाः, श्रावणः, नभस्योभाद्रपदः तौ चात्र पूर्णिमान्तौ ग्राह्यौ।
एवं कालक्रमेणैव श्रावणी पूर्णिमा गता।
तद्दिनं प्राप्य विप्रेणेत्यग्रे नैवाभिधानात्।
व्रतमेतत्तु कर्त्तव्यं षोड़शैव दिनानि तु।
एतच्छ्रुत्वा ततो देवी प्रहृष्टा वाक्यमब्रवीत्॥

पार्व्वत्युवाच।

किं-विधानं पुरा प्रोक्तं व्रतं मौनव्रतात्मकं।

तत्समस्तं समाचक्ष्व प्रसादं कुरु मे प्रभो ॥

ईश्वर उवाच।

तद्दिनञ्चैव संप्राप्य सभार्य्यः सह बान्धवैः।
गत्वा प्रभातसमये स्नानार्थं जलसन्निधौ।
तड़ागे वा नदीदेशे गत्वा प्रस्रवणेऽथ वा॥
स्नानं कार्य्यं तदा सर्व्वैः शिवध्यानपरायणैः।
दूर्व्वाकाण्डं सुसंगृह्य षोड़षग्रन्थिसंयुतम्॥
तत्सूत्रञ्च करे न्यस्य स्त्रिया वामे नृदक्षिणे॥
एवं विधानं कर्त्तव्यं यावत् स्यात् प्रतिपद्दिनम्।
तद्दिने चैव संप्राप्ते समाप्त्यर्थं व्रतस्य तु॥
मौनेनैवानयेत्तोयं मौने गोधूम पेषणम्।
मौनेनैव च कर्त्तव्यं नैवेद्यं भोजनादिकम्॥
सर्व्वोपस्करमादाय गत्वा च जलसन्निधौ।
स्नानं कार्य्यं तदा तत्र नित्यकर्म्म ततः परम्॥
देवर्षिमनुजानाञ्च पितृणाञ्चैव तर्पणम्।
पश्चाद्देवाधिदेवेशं मन्त्रैः संपूजयेत्ततः॥
शूलपाणे वृषारूढ अर्द्धचन्द्रविभूषण।
तोयेन स्नापितो देव पवित्रं कुरु मां सदा॥
देवैस्तु वन्दिता धेनुः सर्व्वपापप्रणाशनी॥
तत्क्षीरस्नापितो देव नित्यं मे वरदो भव।
कामतोऽकामतोवापि यन्मया दुष्कृतं कृतम्॥
तत्सर्व्वं विलयं यातु दध्ना स्नानेन भोः शिव।
रसालमुत्तमं साज्यं देवानाञ्च सदा प्रियम्॥

तेन त्वं स्नापितो देव निधिकान्तिप्रदो भव ।
यस्योच्चारणमात्रेण तृप्तिं यान्ति पितामहाः ॥
मधुना स्नापितो देव नित्यं शोकहरो भव ।
यमलोकभयत्रस्तः शरणं त्वां गतः शिव ॥
खण्डस्नानेन देवेश मां कुरुष्व सुमानुषम् ।
यस्य दर्शनमात्रेण शुद्धः पापाच्च जीवितम् ॥
तेनैवोत्तमतोयेन स्नातो देहि प्रियं ध्रुवं ।
सुगन्धं चन्दनं देव कुङ्कुमेन समन्वितम् ॥
अर्च्चितोऽसि मया भक्त्या शिवलोकप्रदो भव ।
अक्षयान्बन्धुपुत्रादीन् कायश्चैवाक्षिवाञ्जनः ॥
अन्ते चैवाक्षयं लोकमक्षतैरर्च्चितः कुरु ।
सन्तानः पारिजातश्च ये चान्ये सुरपादपाः ॥
तेषां पुष्पैर्मया देव पूजितः सुखदो भव ।
धूपोऽयं गृह्यतां देव सुन्दरो गन्धवान् शुचिः ॥
ईप्सितं मे वरं देहि परत्र च शुभाङ्गतिम् ।
शुद्धा शुक्ला चारुवर्त्तिराज्येन च समन्विता ॥
दीपवर्त्तिप्रदानेन प्रीतःस्यादीश्वरो मम ।
सर्व्वमन्नप्रदानञ्च देवानाञ्च सदा प्रियम् ॥
तेनैवान्नप्रदानेन सुप्रीतो वरदो मम ।

शाखाप्रशाखा न सिता च दूर्व्वा
विस्तारभूता धरणीतले यथा ।
ममापि सन्तानवरं तथाक्षयं
कुरुष्व दूर्व्वे शिव पूजने रता ॥

नानाविधं फलं मुख्यं सुपुष्पाचतचन्दनम्।
भक्त्या च परया दत्तं गृहाण त्वं सुरेश्वर॥
जन्मजन्मान्तरेष्विव भावाभावेन यत् कृतम्।
चन्तव्यं देव तत्सर्व्वं[1] शुद्धो भूत्वा समाहितः॥
शिवपूजां प्रकुर्व्वाणः कृतकृत्यो भवेन्नरः।

इति पूजा।

एवं संपूज्य विधिना सङ्कल्पः क्रियते ततः।
सदा सम्यन्नपूजायां प्रीयतां मम शङ्करः॥
संप्रीतो भव देवेश भक्त्या पाहि सदाशिव।
एवं पञ्चामृतैः स्नानं यः कारयति मानवः॥
आजन्मोपार्जितात् पापात् शुध्यते नात्र संशयः।
विभागश्च प्रदातव्यो ब्राह्मणाय शिवाय च॥
आत्मना चैव भोक्तव्यं पक्वान्नं विधिवत् शुभं।
एवं क्रमेण कर्त्तव्यं सहेष्टजनबान्धवैः।
व्रतिना हितकामार्थं द्विजो भोज्यः सदक्षिणः॥
दातव्यं प्रीतिपूर्व्वेण याचेताच्छिद्रकं द्विजम्।
ततश्च शिवपूजादि भावाभावेन यत् कृतम्॥
तत्सर्व्वं मम पूर्णं स्याद्धर्म्मकामार्थसाधनं।
पुत्रपौत्रप्रदं ह्येतत् सर्व्वकामप्रदं व्रतं॥
एतत्सर्वं मया ख्यातं त्वदग्रे प्रीतिपूर्वकं।
श्रुतमात्रेण देवेशि सर्व्वपापैः प्रमुच्यते॥

---

१ मौनेनेति पुस्तकान्तरे पाठः।

देव्युवाच।

यदेतदतुलं पुण्यं व्रतादस्मादुदाहृतं।
प्रत्ययार्थं तु मे किञ्चित् कथयस्व सुरेश्वर॥

ईश्वर उवाच।

शृणु देवी यथा वृत्तं प्रत्ययार्थं सुरेश्वरि।
हरिश्चन्द्रस्य राज्ये तु यद्वृत्तं परमाद्भुतं॥
राज्यं शास्ति महीपालः चात्रधर्म्मेण धर्म्मवित्।
नाधर्मो विद्यते देवि तस्मिन् राज्ञि प्रशासति॥
न हीनवदनः कश्चिन्न दुःखी न दरिद्रवान्।
न च व्याधिभयं किञ्चिदल्पायुर्न्नातुरो भवेत्॥
एवं पालयतो राज्यं हरिश्चन्द्रस्य धीमतः।
षट्कर्म्मनिरता नित्यं विप्रा यजनतत्पराः॥
स्वधर्मे निरताः सर्वे नित्योत्साहसमन्विताः।
तस्मिन् पुरवरे विप्रो ऋषिशर्मेऽति तापसः॥
तत्समीपे वणिक्पुत्रः श्रीकरो नाम विश्रुतः।
वणिक्पुत्रो महापापी धर्म्ममार्गपराङ्मुखः॥
निन्दको देवतानां च ब्राह्मणानां च निन्दकः।
सदा पापरतात्मासौ वणिक्पुत्रः सुरेश्वरि॥
ऋषिशर्मा द्विजो नित्यं पूजयेदिष्टदेवताः।
षट् कर्मनिरतो विप्रो व्रताचारी सदैव हि॥
एवं कालक्रमेणैव श्रावणी पूर्णिमा गता।
तद्दिनं प्राप्य विप्रेण स्नानं कृत्वा नदीजले॥

तद्दिनं श्रावण्युत्तरद्दिनं।

देवर्षिमनुजानान्तु पितॄणां तर्पणं कृतं।
शङ्करं पूजयित्वा तु द्विजान् भोज्य तथातिथीन्॥
सपुत्रः स्वजनैः सार्द्धं भोजनं कृतवान् द्विजः१।
इष्टधर्म्मवशाद्देवि वणिग्वेश्मगतो द्विजः॥
दूर्व्वाक्षतं च सूत्रं च वणिग्हस्ते न्यवेदयत्।
सन्यस्ते च तदा सूत्रइदं वाक्यमुवाच ह॥

ऋषिशर्म्मोवाच।

भोभो मित्र वणिक्पुत्र शिवमौनव्रतं कुरु।
पुत्रपौत्रप्रदं लोके शिवस्थानप्रदं तथा।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा श्रवणध्यानमास्थितः॥
स्वचित्ते चिन्तयत्येवं व्यवसायस्य भङ्गतः।
पर्व्वजन्मान्तरे त्वं मे मित्रत्वं समुपागतः॥
न करोमि यदा वाक्यं तदा शापं प्रदास्यसि।
अद्य यावन्मया पूर्व्वं न श्रुतं न कृतं व्रतं॥
संप्रत्यहं करिष्यामि त्वद्वाक्यभयशङ्कितः।
व्रतसंख्या विधानं च ब्रूहि मे द्विजसत्तम॥

ऋषिशर्मोवाच।

शृणु मित्र व्रतं पुण्यं धनपुत्रकलत्रदं।
तावद्व्रतमिदं कार्य्यं यावत् स्यात् प्रतिपद्दिनं॥
दिनानि षोड़शैवात्र व्रतमेतदुदाहृतं।
नित्यं जलाशयं गत्वा ईश्वरं पूजयेत्ततः॥

---

१ न्यवेशयदिति क्वचित् पाठः।

दूर्व्वाषोड़शकाण्डैश्च समीनं पूजयेच्छिवं ।
एकभक्तं ब्रह्मचर्य्यं यावद्व्रतं समाप्यते ॥
पूर्व्वोक्तं सविधानं च द्विजेन कथितं तदा ।
एतच्छ्रुत्वा वणिक्पुत्रो विस्मितो वाक्यमब्रवीत् ॥
एतन्मे मानुषाः सर्व्वे व्यवसायेन मे विना ।
वर्त्तिष्यन्ते कथं विप्र यावद्व्रतसमापनं ॥
मद्वेश्मनि दिनैकस्य व्ययशुद्धिर्न विद्यते ।

ऋषि शर्म्मोवाच ।

ईश्वरे नियता भक्तिर्दृढ़भावेन चेत्तव ।
एवं हि गृहचिन्तान्ते करिष्यति न संशयः ॥
एवं सम्बोधितस्तत्र ब्राह्मणेन महात्मना ।
वणिक्पुत्रो दरिद्रोऽपि व्रतार्थे निश्चितोऽभवत् ॥
चकार चैवं यत् प्रोक्तं व्रतस्यास्य विधानकं ।
ऋषिशर्म्मा द्विजश्रेष्टः श्रीकरश्च वणिक्सुतः ॥
व्रतमेतत् कृतं भव्यं लोकानुग्रहकाम्यया ।
पूर्व्वसंचितमेवासीद्दिष्टमन्नं गृहे तयोः ॥
व्रतप्रभावात्तत्सर्व्वं मक्षयत्वं जगाम वै ।
तयोस्तु प्रत्ययं दृष्ट्वा श्रद्धासीन्महतो तदा ॥
व्रतं समाप्य विधिवत्तदादानान्यनेकधा ।
गो-भू-वस्त्रहिरण्यानि फलं ताम्बूलवाससी ॥
विप्रेभ्यः श्रद्धया दत्त्वा जातौ तौ हर्षसंयुतौ ।
व्रतस्यास्य प्रभावेण गृहे लक्ष्मीःपराभवत् ॥

पुत्रपौत्रादिसंयुक्तो धनधान्यसमन्वितः।
बभूव स वणिक् पुत्रः स्वव्रतस्य प्रभावतः॥
स तु वर्षशतं साग्रं भोगान् भुक्त्वा महीतले।
ततश्चकार कायान्तं वणिक् पञ्चत्वमागतः॥
यमेन प्रेषिता दूताः पाशमुद्गरपाणयः।
रक्ताक्षा रक्तवक्त्राश्च रक्तकेशा भयानकाः॥
शुष्कोदरा महाकाया रक्तपुष्पैरलङ्कृताः।
तैर्गृहीतो वणिक्पुत्रो बद्धः पाशैरनेकशः॥
बद्धाःपाशैस्तदा दूताः प्रोचुश्च श्चीकरन्तदा।

दूताऊचुः।

यदि कालक्रमाद्वापि प्राप्ता ते मानुषी तनुः।
कस्मात् पापप्रभावेन यमलोकस्त्वयार्जितः॥
मनुष्यः कुरुते यत्तु यन्नशक्यं सुरासुरैः।
एवं ब्रुवाणास्तेदूता मुद्गरोद्यतपाणयः॥
प्रहर्त्तुंकामास्तं नेतुं निजालस्तो वणिक्सुतः।
तद्व्रतस्य प्रभावेन त्रासहीनो बभूव सः।
देहात्तस्य तु निष्क्रान्तः शक्तिस्तेजोमयी शुभा॥
मयापि प्रेषिता दूतास्तमानेतुं निजालयात्।
यमदूतैः समं युद्धं कृतन्तैस्तु सुदारुणं॥
ते स्वशक्त्या ममगणैर्यमदूता निवारिताः।
तस्मिन् काले च संप्राप्तं मद्विमानं प्रिये शुभं॥
सिद्धगन्धर्व्वयक्षाणां गणैश्चाप्सरसंवृतं।

समारूढ़ोवणिक्पुत्रो विमानं सर्व्वकामिकं ॥
ममालयं समायातो मत्प्रसादात् सुरेश्वरि ।
मया चागमनादेव दत्तं स्थानं तदात्मना ॥
तावच्छिवपुरे नन्द्याावदाभूतसंप्लवं ।
पश्चाद्भूपालपदवीं भुक्ता तेनाब्धिमेखलां ॥
एवं लब्धवरो भूत्वा चिक्रीड़े शिवशासने ।
एवं प्रकाशमायातं व्रतमेतत् सुरेश्वरि ॥
व्रतप्रभावाद्विप्रोपि सर्व्वधर्म्मसमन्वितः ।
प्राप्य धन्यतमं स्थानं शिवलोके च मोदते ॥
दुर्लभं स्वल्पवुद्धीनामाधिव्याधिविवर्जितं ।
मौनव्रतस्य माहात्म्यं मृत्युपापनिषूदनं ॥
सर्व्वसिद्धिप्रदं देवि योगक्षेमकरं परं ।
शिवलोकप्रदं पुण्यं गुह्याद्गुह्यतरं शुभं ॥
व्रतं प्रीतिप्रसादेन कथितञ्च तवाधुना ॥
रौद्रे कलियुगे देवी व्रतं कर्त्तुं न शक्यते ।
क्षमामूलं व्रतं ह्येतत् साक्षाद्यद्दुर्लभं कलौ ॥
एतस्मात् कारणात् पूर्व्वं मयैतन्न प्रकाशितं ।
दुःसाध्यं व्रतमेतद्वै मौनं सर्व्वार्थसाधनं ॥
तेषान्तु दिवसं प्राप्य सकलाघं विनश्यति ।
न च शोको भवेत्तस्य सततं सुखकारणं ॥
कुर्व्वन्ति मनुजा भक्त्या व्रतं किल्बिषतारणं ।
मौनप्रभावाद्धि शुभे शिवालये
वसन्ति मर्त्त्याः शुचिशुद्धदेहाः ।

संसेव्यमानाप्सरसाङ्गणेन
चरन्ति लोकान् विविधान् मनोरमान्॥
संसारपाशाच्च विमुच्यते दिवं
परं पदं यान्ति सुरार्चितास्तत इति।

इदञ्चव्रतं पूर्वविद्धायामेव कर्त्तव्यं रुद्रव्रतत्वात् न तु देवकार्य्यत्वेन पौर्व्वाह्णिक्यामुत्तरस्यां। रुद्रव्रतेषु सर्वेषु कर्त्तव्या सांमुखी तिथिरिति ब्रह्मवैवर्त्तवचनात्।

## इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं दीपव्रतं।

---

## अथ स्कन्दपुराणोक्तं मौनव्रतोद्यापनं।

———000@000———

पार्व्वत्युवाच।

मौनव्रतस्य माहात्म्यं कथा चैव सविस्तरा।
श्रुता यथावद्देवेश श्रुता च त्वन्मुखान्मया॥

व्रतस्योत्सर्जनमनन्तरं।

वस्त्रैराभरणैश्चैव छत्रोपानत्स्रगादिभिः।
आचार्य्यद्विगुणं प्रोक्तं तदर्द्धं ब्रह्मणे तथा।
कुण्डं समेखलं यज्ञकुण्डपार्श्वसमन्वितं॥
कृत्वा शिवस्य वै मूर्त्तिं पार्वत्याश्चैव कारयेत्।
सौवर्णीं राजतीं ताम्रीं कुर्य्यात् शाठ्यविवर्जितः

यथा विभवमानेन कुर्य्याद्देवं चतुर्भुजं ।
माषमात्रा सुवर्णस्य दरिद्रस्यापि कीर्त्तिता ॥
त्रिशूलमक्षमालाञ्च वरदाभयशोभितं ।

अक्षमालाञ्च विभ्राणमितिशेषः ।

देवीञ्च द्विभुजान्तद्वद्वराभयकरां शुभाम् ।
संस्नाप्य पञ्चगव्येन कषायैः पञ्चभिः शुभैः ॥
फलैश्च मृत्तिकाभिश्च ततः पञ्चामृतेन तु ।
नमोऽघोराय मन्त्रेण ततो गङ्गोदकेन तु ॥
षोड़शारे तथा चक्रेऽथवा लिङ्गोद्भवेपि वा ।
अव्रणं कलशं स्थाप्य ताम्रपात्रा युतं दृढ़ं ॥
तत्र संस्थापयेद्देवं सदेवीकञ्च दीक्षितः ।
आगमोक्तविधानेन न्यासान्देवस्य कारयेत् ॥
दीर्घभाजा प्रसादेन अङ्गानां न्यास ईरितः ।

प्रसादेन, प्रसादेन बीजेन ।

आदावात्मनि कुर्वीत पश्चाद्देवे समाचरेत् ।
देव्यास्तदनु कुर्वीत मायाबीजेन तत्त्वतः ॥
ततस्तु वाससी दद्यादुपवीतमतः परं ।
चन्दनं पुष्पधूपञ्च दीपं नैवेद्यमातरान् ॥
ताम्बूलञ्च सकर्पूरं फलानि विविधानि च ।
एवं संपूज्य देवेशं ग्रहयज्ञमथारभेत् ॥
द्वात्रिंशद्देवताः पूज्याः पुष्पधूपादिभिः क्रमात् ।
ग्रहयज्ञविधानेन ततोऽग्निस्थापनं मतं ॥

होमं तत्र प्रकुर्वीत वहुपात्त्रसमिधैः शुभैः।
वहुपात्त्रसमिधैः, वटसमिद्भिः।
घृतैश्च चरुभिश्चैव तिलैश्च सघृतैस्तथा॥
अष्टोत्तरशतं यावत्त्र्यम्बकेन हुनेत च॥
समाप्य शिवयज्ञञ्च ग्रहहोममथारभेत्।
ग्रहपूजां पुनः कृत्वा वलिदानमथारभेत्॥
ततः पूर्णाहुतिं दत्त्वा आचार्य्यं पूजयेत्ततः।
धेनुं दत्त्वा हिरण्यञ्च तथान्नं वसनानि च॥
अन्येभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च दद्याच्च वसनादिकं।
षोड़शान् कलशान् दद्यान्मालावस्त्रैरलङ्कृतान्॥
देवञ्च देव्यासहितमाचार्य्याय निवेदयेत्।
तथा चैव प्रकर्त्तव्यमाचार्य्यस्तुष्यते यथा॥
तेन तुष्टेन देवेशस्तुष्टो भवति नान्यथा।
अतुष्टे विफलो यागो भवतीह न संशयः॥
दीनानाथविशिष्टेभ्यो दद्याद्भोज्यं सदक्षिणं।
भस्माङ्गिभ्योऽपि देयं स्यात् भोजनञ्च सवस्त्रकं॥
यथा विभवतो वापि वित्तशाठ्यविवर्जितः।
ततः समाप्य सर्व्वन्तु भुञ्जीयाद्वाग्यतः शुचिः॥
शिष्टैरिष्टैश्च सहितः पक्वान्नैर्घृतपाचितैः।
प्रभातायान्तु शर्व्वर्य्यामारम्भोऽस्य विधीयते॥
सायं समाप्तिरुद्दिष्टा भोजनन्तु ततः परं।
आचार्य्यन्तु सपत्नीकं परिधाप्य विधानतः॥

पार्व्वतीसहितो रुद्रः प्रीयतामितिवाग्यतः।
एवं यः कुरुते देवि मौनस्योद्यापनं शुभं॥
बहुप्रजो बहुधनो भवेत् जन्मनि जन्मनि।
पश्चाच्छिवपुरं गत्वा वसेच्च शिवसन्निधौ॥

इति मौनव्रतोद्यापन।

———ooo———

सूत उवाच।

कैलासशिखरासीनं देवदेवं जगद्गुरुं।
प्रणम्य पार्व्वती प्राह शङ्करं लोकशङ्करं॥
व्रतं कथय किञ्चिन्मे रूपसौभाग्यदायक।

ईश्वर उवाच।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि व्रतं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
महालक्ष्मीरिति ख्यातं सर्व्वसंपत्करं शुभम्॥
पुरा विराजनगरे शिवशाद् नृपोऽभवत्।
तस्मिन्नेव पुरे राज्ञो ब्राह्मणी बालपुत्रिका॥
अथापश्यद्धरेर्दूरात्सरःपूर्णोदकं बृहत्।
तत्र पीत्वा पयः शीतं नीरस्थं स ददर्श ह॥
लवयानं रसस्तीरे लक्ष्मीमप्सरसाङ्गणम्।
गत्वा पार्श्वं स पप्रच्छ किमेतत् पूज्यते शुभाः॥
ता ऊचुर्द्विजदेवी च महालक्ष्मीरिति श्रुता।
अस्माकं वचनात् मर्त्त्ये प्रकाशय महाद्युते॥
तवापि सर्व्वकल्याणं भविष्यति न संशयः।

इत्युक्तान्तर्दधे तत्र सर्वैप्सरसाङ्गणः।
अथ राजापि मृगयासंसक्तोवनमभ्यगात्।
वटुं विलोक्य नृपतिः क्षुधितोऽन्नमयाचत॥
सोऽन्नन्ददौ तदा राज्ञे तेन पृष्टो नु कारणं।
व्रतमाहात्म्यमित्युक्ता व्रतं चास्मै न्यवेदयेत्॥
महाराज निबोधेदं महालक्ष्मीव्रतं शुभं।
भद्र भाद्रपदे मासि शुक्लाष्टम्यां नरोत्तम॥
स्नुत्वाभ्यर्च्य महालक्ष्मीमेकभक्तं प्रकल्पयच।
कुङ्कुमाक्तष्टतं सूत्रं षोड़शग्रन्थिसंयुतम्॥
तन्तुभिस्तत्प्रमाणैश्च बध्नीयात्तु करे गुणम्।
दूर्वाक्षतप्रवालानां षोड़शैव तु षोड़श॥
पुनरेराश्विने मासि कृष्णाष्टम्यां दिने शुभे।
उत्सवं कारयेद्दिव्यास्तूर्यैपशतनादितं॥
कृत्वा च स्वगृहं दिव्यं वितानवरमण्डितम्।
मौक्तिकालम्बितप्रान्तं पुष्पमाल्यविभूषितम्॥
स्वस्तिकैर्व्वर्द्धमानैश्च पूर्णकुम्भैः समन्वितम्।
काष्टमृच्चन्दनाकारामथचित्रगतां पुनः॥
चतुर्भुजां महालक्ष्मीं वाजिपृष्टगतान्तथा।
दण्डाक्षसूत्रवरदां तथैवाभयपाणिकां॥
पद्मासनां पद्महस्तां पद्मां पद्मदलेक्षणाम्।
दिग्गजैः स्नाप्यमानाञ्च काञ्चनैः कलशोत्तमैः॥
ततोयालापयेद्याने निमग्नायां गृहे तथा।

स्नानं कुर्य्यादसम्भ्रान्तो मन्त्रवच्चोपचारतः॥
देवान् पितृंश्च सन्तर्प्य ततो देवगृहं व्रजेत्।
श्रीसूक्तेन च संस्नाप्य कुर्य्यात् पूजाविधिन्ततः॥
शालिपिष्टं यवान्नञ्च गोधूमानाञ्च चूर्णकं।
पायसं घृतसंमिश्रं पञ्चप्रसृतिसंख्यया(१)॥
शुद्धत्रिफलया वापि पाचयेन्मोदकान् शुभान्।
ब्राह्मणेभ्यः प्रदीयेत आत्मानं प्राशयेत्ततः॥
फलानि च समाहृत्य प्रदीपानष्टसंख्यया।
एवं सम्भृतसम्भारस्ततः पूजां समारभेत्।
सितचन्दनलिप्ताङ्गीं सितपुष्पावलम्बितां॥
सितवस्त्रयुगच्छन्नां श्वेतपुष्पैः(२) प्रपूजयेत्।
चपलायै नमः पादौ चञ्चलायै च जानुनी॥
कटिं कमलवासिन्यै नाभिं चान्त्यै नमोनमः।
स्तनौ मन्मथवासिन्यै ललितायै भुजद्वयं॥
उत्कण्ठिन्यै नमः कण्ठं मायायै मुखमण्डलम्।
नमः श्रियै शिरः पश्चाद्दद्यान्नैवेद्यमादरात्॥
दद्यादर्घ्यं विधानेन नारिकेरादिभिः फलैः।
कूष्माण्डैः कर्कटीवृन्दैरन्यैस्तत्कालसम्भवैः॥
षोड़शाष्टौ प्रदेयानि यथा शक्त्याथ वा पुनः।
चन्द्रोदये ततो दद्यात् अर्घंचन्द्रस्य भक्तितः॥
प्रवालफलसन्दीपैः पुष्पैः षोड़शभिस्तथा।

(१) पञ्चप्रभृतिसंख्यया इति पुस्तकान्तरे पाठः।

(२) श्वेतवस्त्रैरिति क्वचित् पाठः।

नवो नवोऽसि मासान्ते जायमानः पुनः पुनः॥
क्षीराब्धि समवेतस्त्वं देवानाप्यायसे हरिः।
क्षीरोदार्णवसम्भूत अत्रिनेत्रसमुद्भव॥
भाभासितदिगाभोग रमानुज नमोऽस्तु ते।
कुर्य्यादेवं नृपश्रेष्ठ वर्षाणां द्वादश संख्यया।
वर्षे वर्षे सपत्नीकं ब्राह्मणं पूजयेत् सुधीः॥
हिरण्य-वस्त्र-गोदानैर्दक्षिणाभिश्च भूरिशः।
एवं यः कुरुते भक्त्या तस्य श्रीर्गृहमाविशेत्॥
इति श्रुत्वा नृपश्चक्रे यथोक्तं व्रतमादरात्।
कालेन गच्छमानेन विस्मृतः स च डोरकः॥
तस्य राज्ञी समादाय ज्वलितेऽग्नावथासृजत्।
अन्यत् चीरगतं कृत्वा स्वहस्तस्थञ्चकार ह॥
तस्याः कर्म्मविपाकेन दौर्भाग्यं पतितं तथा।
अन्यथा भर्त्तृसम्मानं राज्ञा लक्ष्मीसमुद्भवं॥
य इदं कुरुते देव्या वर्षे वर्षे महोत्सवम्॥
तस्य श्रीर्जन्मनितयं न कदाचिद्विमुञ्चति।
आयुरारोग्यमैश्वर्य्यं धनं पूजाञ्च विन्दति॥
अथेश्वरो विशेषेण कुर्य्याल्लक्ष्मीव्रतं शुभं।
व्रतात् समाप्नुयात् लक्ष्मीं वासुदेवप्रसादजां॥
नारी वा कुरुते यातु प्राप्यानुज्ञां स्वभर्तृतः।
सुभगा दर्शनीया च बहुपुत्रा च जायते॥
यः शोभनं व्रतमिदं दयितं मुरारे-
र्भक्त्या समाचरति पूज्य भृगोस्तनूजाम्।

राज्यं श्रियं स भुवि भव्यजनोपभोग्यां
भुक्त्वा प्रयाति भवनं मधुसूदनस्य ॥

इति स्कन्दपुराणोक्तं महालक्ष्मीव्रतं ।

———०००———

मार्कण्डेय उवाच ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि चतुर्मूर्त्तिव्रतं तव ।
द्विधा तु देवदेवस्य मूर्त्तिर्भवति यादव ॥
घोरा सौम्या शिवा चान्याऽघोरा भवति पावका ।
शिवा चाग्निपति(१)र्यस्मादग्नीषोमात्मकं जगत् ॥
द्विधा घोरा विनिर्द्दिष्टा द्विधा सौम्या ततः पुनः ।
घोरा वह्निश्च सूर्य्यश्च सौम्या सोमजलाधिपौ ॥
तेषां तु पूजनं कार्य्यं प्रतिपत् प्रभृति क्रमात् ।
शुक्लपक्षात्तथारभ्य फाल्गुनस्य द्विजोत्तम ॥
आदित्यं पूजयेद्राजन् प्रथमेऽह्नि परः शुचिः ।
द्वितीयेऽह्नि तथा वह्निं तृतीयेऽह्नि जलाधिपम् ॥
चतुर्थेऽह्नि शशाङ्कञ्च यथावन्मानवोत्तमः ।
तेषां तु रूपनिर्माणं कृत्वा तानर्च्चयेद्बुधः ॥
गन्धमाल्यनमस्कारधूपदीपान्नसम्पदा ।
वचा हरिद्रया स्नानं प्रथमेऽह्नि समाचरेत् ॥
द्वितीये यदुशार्दूल स्नानमामलकैः शुभैः ।
प्रियङ्गुना तृतीयेऽह्नि चतुर्थे गौरसर्षपैः ॥

(१) चोडुपतिरिति क्वचित् पाठः ।

गोधूम-तिल-धान्यैश्च यवैश्च दिवसक्रमात्।
होमः कार्य्यश्च धर्म्मज्ञो दक्षिणां शृणु चाप्यथ॥
कुङ्कुमारक्तवस्त्रञ्च चन्दनं छत्रमेव च।
क्षीरेण चैव कर्त्तव्यं प्रत्यहं प्राणधारणम्॥
एतत्संवत्सरं कृत्वा व्रतं पूर्णं नरोत्तम।
सर्व्वकामसमृद्धस्य यज्ञस्य फलमश्नुते॥
विमानेनार्कवर्णेन स्वर्गलोकं स गच्छति।
ततोऽथ सुचिरं कालं कुले महति जायते॥

मानुष्यमासाद्य भवत्यरोगो
वसुन्धरेशो विजितारिपक्षः।
धर्मे स्थितः सत्यपरो विनीतो
जितेन्द्रियः सर्व्वजनाभिरामः॥

## इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं गुणावाप्तिव्रतम्।

——000——

श्रीमार्कण्डेय उवाच।

इदमन्यत् प्रवक्ष्यामि चतुर्मूर्त्तिव्रतं तव।
शक्रकीनाशवरुणधनाध्यक्षा यदूत्तम।
चतुरात्मा विनिर्द्दिष्टो वासुदेवो जगत्पतिः।
तेषान्तु रूपनिर्म्माणं कृत्वा तानर्च्चयेद्बुधः॥
गन्धमाल्यनमस्कारदीपधूपान्नसम्पदा।
आद्येह्नि(१) चैत्रशुक्लस्य यजेत त्रिदशेश्वरं॥

(१) चापीह्नीति पुस्तकान्तरे पाठः।

द्वितीयेऽह्नि यमं देवं तृतीये सलिलाधिपम्।
चतुर्थेऽह्नि धनाध्यक्षं प्रत्यहं स्नानमाचरेत्॥
नदीप्रदेशमासाद्य देवदिक्प्रवहक्रमात्।
यवैस्तिलैस्तथाज्येन होमःस्यात्तिलतण्डुलैः॥
रक्तं पीतं तथा कृष्णं श्वेतं वस्त्रं दिनक्रमात्।
शुभमेतद्व्रतं कृत्वा पूर्णसंवत्सरं नरः॥
नाकलोकमवाप्नोति यावदाभूतसंप्लवम्।

मानुष्यमासाद्य भवत्यरोगो
वसुन्धरेशो विजितारिपक्षः।
जनाभिरामः सुभगः प्रकृत्या
ततोऽपि विप्रत्वमुपैति भूयः॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं ब्रह्मण्यप्राप्ति व्रतम्।

———ooo@ooo———

मार्कण्डेय उवाच।

इदमन्यत् प्रवक्ष्यामि चतुर्मूर्त्ति व्रतं तव।
विष्णुर्भूमिर्नभो ब्रह्मा तस्य रूपचतुष्टयम्(१)।
तेषान्तु रूपनिर्म्माणं कृत्वा तानर्च्चयेद्बुधः॥
गन्धमाल्यनमस्कारदीपधूपान्नसम्पदा।
आद्येऽह्नि चैत्रशुक्लस्य विष्णुदेवं समर्च्चयेत्॥
द्वितीयादिषु धर्म्मज्ञ भुवं देवं(२) पितामहं।
पूर्वव्रतोक्तं सकलं विधानमपरं भवेत्॥

(१) मूर्त्तिश्चतुष्टयीति पाठान्तर।
(२) व्योम इति क्वचित् पाठः।

व्रतमेतन्नरः कृत्वा कल्पं स्वर्गमवाप्नुयात् ।
मानुष्यमासाद्य भवत्यरोगो
धर्म्माभिरामो द्रविणोपपन्नः ।
धनेन रूपेण सुखेन युक्तो
जनाभिरामो विजितारिपक्षः ॥

इति विष्णुधर्मोक्तं धनावाप्तिव्रतं ।

---

श्रीमार्कण्डेय उवाच ।

इदमन्यत् प्रवक्ष्यामि चतुर्मूर्त्तिव्रतं तव ।
बलं ज्ञानं तथैश्वर्य्यं शक्तिश्च यदुनन्दन ॥
विख्यातं देवदेवस्य तस्य मूर्त्तिचतुष्टयम् ।
यद्देवरूपं कूर्म्मस्य(१) बलस्योक्तं तथैव तु ॥
रूपं ज्ञानस्य ते प्रोक्तं नरसिंहं तथा नृप ।
रुद्ररूपं तथैश्वर्य्यं कथितन्तु मया तव ॥
पूर्व्वं बलमुखं तस्य वासुदेवमुखं भवेत् ।
दक्षिणं वदनं ज्ञानं देवं सङ्कर्षणं विदुः ॥
ऐश्वर्य्यं पश्चिमे वक्त्रं रौद्रं पापाहरं तथा ।
वाराहञ्च तथावक्त्रमनिरुद्धं प्रकीर्त्तितं ॥
त्रिरात्रोपोषितश्चैत्रे पूर्वं संपूजयेन्मुखम् ।
शुक्लपक्षप्रतिपदि वैशाखे मासि दक्षिणम् ॥
ज्यैष्ठे च पश्चिमे वक्त्रमाषाढ़े च तथोत्तरं ।

---

(१) धर्म्मस्य इति वा पाठः ।

गृहोपयोगि दातव्यं चैत्रे मासे द्विजातये॥
रणोपयोगि दातव्यं वैशाखे यादवोत्तम।
योगोपयोगि दातव्यं ज्यैष्ठे मासि द्विजातये॥
यज्ञोपयोगि दातव्यमाषाढ़े तथैव च।
व्रतमेतन्नरः कृत्वा पूर्णमासचतुष्टयम्॥
पारणं प्रथमं कृत्वा स्वर्गलोके महीयते।
श्रावणादिषु मासेषु द्वितीयं पारणं भवेत्॥
दशवर्षसहस्राणि स्वर्गं भुक्त्वा यथोदितम्।
सौभाग्यादिषु भोगेषु तृतीयं पारणं भवेत्॥
तृतीयं पारणं कृत्वा भोजयेद्ब्राह्मणाञ्छुचिः॥
भोजनं गोरसप्रायं मृद्वीकाशर्करायुतम्।

प्राप्ते द्वितीये व्रतपारणे तु
प्राप्नोति देवस्य सलोकतां सः।
स्वर्गेन्द्रलोके च यथोक्तकालं
भुङ्क्ते सुखं सर्व्वसमृद्धिकामः॥

## इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं सर्व्वाप्तिव्रतम्।

———oo@oo———

श्रीमार्कण्डेय उवाच।

इदमन्यत् प्रवक्ष्यामि चतुर्युगव्रतं तव।
कृतादि च चतुर्युगं पूजयेत् सुसमाहितः॥
प्रथमे चैत्र शुक्लस्य दिने पूज्यं कृतं युगं।
श्वेतेन वस्त्रयुग्मेन गन्धमाल्यादिना तथा॥

चैत्रशुक्लसमारम्भे प्रथमेऽहनि पूजयेत् ॥
कृतं शुक्लेन सर्व्वेण गन्धमाल्यादिना द्विज।
द्वितीयेऽहनि रक्तेन तथा त्रेतान्तु पूजयेत् ॥
तृतीयेऽहनि पीतेन द्वापरं पूजयेद्बुधः।
चतुर्थेऽहनि कृष्णेन तिष्यं संपूजयेद्युगं ॥
सिद्धार्थकैः कुङ्कुमेन तथैव च हरिद्रया।
तथैवामलकैः स्नानममलैर्द्दिवसक्रमात् ॥
क्षीरेण प्राणयात्रान्तु कुर्य्यात् प्रत्यहमेव च।

कृत्वा व्रतं वत्सरमेतदेकं
चतुर्युगं मोदति नाकपृष्ठे।
संपूज्य देवं युगमूर्त्तिसंज्ञं
चतुर्युगं शास्ति महीं समग्रां ॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं चतुर्युगव्रतम्।

———000———

श्रीमार्कण्डेय उवाच।

इदमन्यत् प्रवक्ष्यामि चतुर्मूर्त्तिव्रतं तव।
ईशानञ्च तथा वह्निं विरूपाक्षं समीरणं ॥
जानीहि यदुशार्दूल देवमूर्त्ति चतुष्टयम्।
तेषान्तु रूपनिर्म्माणं कृत्वा तानर्च्चयेद्बुधः ॥
गन्धमाल्यनमस्कारदीपधूपान्नसम्पदा।
चैत्रशुक्लां महाभाग प्रतिपत्प्रभृतिक्रमात् ॥
कौप-नादेय-ताड़ाग-काशारैः स्नानमाचरेत्।

दध्ना तिलैर्यवैर्होमो घृतेन च तथा भवेत् ।
कर्पूरं कुङ्कुमञ्चैव तथैवागुरुचन्दनम् ॥
ब्राह्मणेषु प्रदातव्यं तथा राजन् दिनक्रमात् ।
दिनत्रयं तथाश्नीयात् सायं प्रातरयाचितम् ॥
दिनमेकन्तु वाश्नीयात् व्रतचारी नरोत्तमः ।
एतत् संवत्सरं कृत्वा व्रतं पुरुषसत्तम ॥
सर्व्वकामसमृद्धस्य यज्ञस्य फलमश्नुते ।

मानुष्यमासाद्य भवत्यरोगो
वसुन्धरेशो विजितारिपक्षः ।
जन्मान्तरेस्याद्द्विजवर्य्यमुख्यो
वेदप्रसक्तो बहुयज्ञयाजो ॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं देवमूर्त्तिव्रतम् ।

———ooo———

मार्कण्डेय उवाच ।

अतःपरं प्रवक्ष्यामि सप्तमूर्त्तिव्रतं तव ।
चैत्रमासाद्यथारभ्य प्रतिपत्प्रभृति क्रमात् ॥
सुभास्वरा वर्हिषदोप्यग्निष्वात्तास्तथैव च ।
क्रव्यादापहताश्चैव आज्यपाश्च सुकालिनः ॥
पूजयेत् प्रत्यहं राजन् गन्धमाल्यानुलेपनैः ।
नैवेद्यं कृशरं कुर्य्यात् तिलानग्नौ च होमयेत् ॥
कृशरं भोजयेद्विप्रान् तिलान् दद्याच्च दक्षिणाम् ।
नक्ताशनस्तथा तिष्ठेद्भविष्याशी नराधिप ॥
संवत्सरमिदं कृत्वा व्रतं पुरुषसत्तम ।

व्रतावसाने दद्यात्तु रजतस्य फलं(१) द्विजे ॥
व्रतेनानेन चीर्णेन सप्तलोकगतिर्भवेत्।
त्रिदशैः पूज्यमानस्तु कामचारो विहङ्गमः॥
जन्मावसानं पुरुषस्तु कृत्वा
संसारमोक्षं लभते नरेन्द्रः।
कृत्वा तथा द्वादशवत्सराणि
मानुष्यमासाद्य महीपतिः स्यात्॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं पितृव्रतम्।

——न——

मार्कण्डेय उवाच।

चैत्रमासादथारभ्य कृष्णपक्षे दिने दिने।
पातालपूजनं कुर्य्यात् प्रतिपत्प्रभृतिक्रमात्॥
रौक्षं भौमं स्निग्धभौमं पातालं नीलमृत्तिकम्।
रक्तभौमं पीतभौमं श्वेतकृष्णमृदावपि॥
सुवर्णैर्गन्धमाल्यैश्च नैवेद्येन च भूरिणा।
घृतदीपप्रदानेन वह्निसन्तर्पणेन च॥
एवं नक्ताशनः कृत्वा व्रतं संवत्सरं सदा।
व्रतावसाने दद्यात्तु दीपकान् द्विजवेश्मसु॥
शुक्लवस्त्राणि राजेन्द्र यथा वर्णानि वाप्यथ।
व्रतमेतन्नरः कृत्वा नृपराड्पतिर्भवेत्॥
पातालगतन्तु नरं दैत्यकन्यासहस्रशः।

(१) पद्ममिति क्वचित् पाठः।

रमयन्ति महाराज यावदिन्द्राश्चतुर्द्दश ॥
कालेन वासाद्य मनुष्यलोकं
राजा भवेच्छत्रुगणप्रमाथी।
बलेन रूपेण धनेन युक्तो
महामतिः सर्व्वजगत्प्रधानः ॥

## इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं पातालव्रतम्।

———000———

मार्कण्डेय उवाच।

चैत्रशुक्लाद्‌यारभ्य प्रत्यहं दिनसप्तकम्।
सुप्रभां काञ्चनाक्षीञ्च विशालां मानसोद्भवाम् ॥
मेघनादां सुवेणुञ्च तथैव विमलोदकां।
नित्यं संपूजयेद्भक्त्या बहिःस्नानं समाचरेत् ॥
तासाञ्च प्रत्यहं नाम्ना दध्ना होमं समाचरेत्।
ब्राह्मणान् भोजयेच्चात्र दध्ना युक्तं सुभोजनम् ॥
घृतोदनं तथाश्नीयात्सकृदेव तथा निशि।
एवं संवत्सरं कृत्वा व्रतं सारस्वतं नरः ॥
तत्तोऽथ सुचिरं कालं मानुष्ये जायते यदा।
तथा नरेन्द्रो जितशत्रुपक्षो
द्विजोत्तमो वा बहुयज्ञयाजी।
रूपेण धान्येन धनेन युक्तः
सुतान्वितः स्याच्च जनाभिरामः ॥

## इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं सप्तसागरव्रतम्(१)।

(१) सारस्वतव्रतमिति क्वचित् पाठः।

श्रीमार्कण्डेय उवाच।

चैत्रशुक्लादथारभ्य प्रत्यहं दिनसप्तकम्।
मरीचिमत्र्यङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्॥
वशिष्ठञ्च महाभागं पूजयेत् दिवसक्रमात्।
कालोद्भवैः फलैः पुष्पैः गोरसैश्च फलान्वितैः(१)।
आचरेत् प्रत्यहं स्नानं वहिर्नक्ताशनो भवेत्॥
महाव्याहृतिभिर्होमं तिलैर्नित्यं समाचरेत्।
तर्पयेद्ब्राह्मणांश्चात्र फलमूलैश्च गोरसैः॥
वारिधान्यश्च दातव्याः क्षीरपूर्णा द्विजातिषु।
एवं सम्वत्सरं कृत्वा व्रतान्ते चाहिताग्नये॥
दद्यात् कृष्णाजिनं राजन् यथापूर्वं मयेरितम्।
व्रतमेतन्नरः कृत्वा मोक्षोपायञ्च विन्दति॥
मोक्षोपायं समासाद्य मोक्षं प्राप्नोत्यसंशयम्।

प्राप्नोति लोकं यदि वा सुराणां
देवस्य विष्णोर्यदि वेश्वरस्य।
पितामहस्य प्रपितामहस्य वा
व्रतेन तेनाशु(२)महानुभावः॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं सप्तर्षिव्रतम्।

---

(१) पृथग्विधैरिति वा पाठः।

(२) न्टपव्रतेनाश्विति वा पाठः।

ईश्वर उवाच ।

नवमी चाष्टमी चैव पौर्णमासी चतुर्द्दशी ।
यो भूङ्क्ते देवि नैतेषु सुपर्वसु नरः समं ॥
गाणपत्यं स लभते निःसपत्नमनिन्दितं ।

इति मत्स्यपुराणोक्तं नवम्याद्युपवासव्रतम् ।

---

श्रीकृष्ण उवाच ।

कृष्णाष्टमीं तु नक्तेन यस्तु कृष्णां च सप्तमीं ।
उपवसेदिति शेषः ।
इहैव सुखमाप्नोति परत्र च शुभां(१) गतिम् ।

इति भविष्यत्पुराणोक्तं सुखव्रतम् ।

---ooo---

आदित्य उवाच ।

सप्तम्यांच तथा षष्ठ्यां(२) पक्षयोरुभयोरपि ।
योऽब्दमेकं नक्तभोजी नियतात्मा जितेन्द्रियः ॥
यत्पुण्यं परमं प्रोक्तं सततं सत्रयाजिनां ।
सत्यवादिषु यत् पुण्यं यत् पुण्यमृतुगामिनां ॥
तत्फलं सकलं प्राप्य मम लोकमुपैति सः ।

इति भविष्यत्पुराणोक्तमर्कव्रतम् ।

---

(१) सुसुखामिति वा पाठः ।

(२) आदित्यमथवा षष्ठ्यामिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

अष्टम्याञ्च नवम्याञ्च पक्षयोरुभयोरपि।
योऽब्दमेकं न भुञ्जीत चण्डिकाराधने रतः॥
स याति परमं स्थानं यत्र सा चण्डिका स्थिता।

## इति भविष्योत्तरोक्तं चण्डिकाव्रतं।

———०४०———

अत्रिरुवाच।

पूजयन्त्याश्च ललितां सर्वसौख्यप्रदायिनीं।
स्त्रियो व्रतपरा यास्तु न वैधव्यं भवेत् क्वचित्॥
याः काश्चिद्देवताः सर्व्वा मनुजोरगराक्षसाः।
ताः सर्व्वा वशमायान्ति ललितापूजने कृते॥
दशाश्वेन पुरा चीर्णं वृद्धि-सन्तानकारणात्।
ययातिर्मुचुकुन्दश्च जनकश्च पुरूरवाः॥
एते चान्ये च वहवो राज्यं प्राप्तमेकण्टकम्।
तस्मात्सर्व्वप्रयत्नेन पूजयेल्ललितां शुभाम्॥

अनुसूया उवाच।

एतद्व्रतवरं ब्रह्मन् कस्मिन्मासे(१) च का तिथिः।
के मन्त्राः कस्य पूजेयं दानं कस्य विधीयते॥

अत्रिरुवाच।

शृणु त्वमनवद्याङ्गि ललिताराधनक्रियाम्।
आश्विनस्य सिते पक्षे दशम्यां नक्तभोजनम्॥
प्रतिमां हेममयीं दिव्यां सर्व्वालङ्कारभूषितां।

(१) कस्मिन्काले इति वा पाठः।

वापी कार्य्या शुभे देशे तन्मध्ये वेदिका शुभा ॥
हस्तमात्रा वितस्त्यर्द्धा दशधान्यसमन्विता ।
वेदीकोणेषु संस्थाप्या मृण्मयेः पञ्चदेवताः ॥
सिक्ता जलेन तन्मध्ये देवी स्थाप्या प्रयत्नतः ।
अव्रणं सजलं कुम्भन्ताम्रपात्रसमन्वितम् ॥
तत्र स्वर्णमयी देवी स्थाप्या च ललिता शुभा ।
चन्द्रन्तु रोहिणीयुक्तं राजतं कारयेत् पुरः ॥
दक्षिणे त्रीश्वरं स्थाप्य वामतो विघ्ननाशनं ।
मूलमन्त्रेण गायत्र्या सर्वं तत्र प्रपूजयेत् ॥
अभयं वरदं सव्यं वामे च वीजपूरकं ।
कुम्भोपरि सवस्त्रांतु प्रतीमामर्चयेद्बुधः ॥
समीपे करकं स्थाप्य सपुष्पफलचन्दनं ।
प्रथमे घृतपूरांश्च करकोपरि संस्थितान् ॥
गन्धपुष्पादिनैवेद्यैः पूजयेत् प्रतिमां शुभां ।
प्रथमे शतपत्रैस्तु द्वितीये जातिपुष्पकैः ।
तृतीये चम्पकैश्चैव चतुर्थे पाटलैस्तथा ॥
पञ्चमे कुमुदैश्चैव षष्ठे नीलोत्पलैस्तथा ।
सप्तमे विल्वपत्रैश्च अष्टमे यूथिकोद्भवैः ॥
नवमे कूष्माण्डिकापुष्पैः दशमे स्वर्णपुष्पकैः ।
ओं त्वं देवी देवदेवानां त्वं माता त्वं जगत्पिता ।
त्वत्प्रसादेन मे देवि न वैधव्यं भवेदिह ॥

प्रार्थनामन्त्रः ।

सदा त्वं ललिता देवी पूजनीया सुरासुरैः ॥

रूपसौभाग्यमायुश्च त्वत् प्रसादात् सदास्तु मे।

अर्च्चनामन्त्रः।

नीलोत्पलदलश्यामे पुण्डरीकशुभानने।
पुष्पं गन्धं फलं तोयं गृहाणार्घ्यं नमो नमः॥

अर्घ्यमन्त्रः।

ललितेति शिरःपूज्य उमा पादौ प्रपूजयेत्।
गिरिजा जानुनी पूज्य आस्यदेशे रतिः स्मृता॥
नाभौ तु पूजयेद्देवीं चन्द्रिकां(१) कुक्षिदेशयोः।
लक्ष्मीं स्तनप्रदेशे तु भुजयोर्मेनकात्मजाम्॥
मुखेच सुभगा नाम ललाटे शङ्करप्रिये।
एवं पूज्या तु सा देवी नैवेद्यं प्रतिपादयेत्॥
ईदृशी प्रतिमा पूज्या प्रत्यहं दशवासरान्।
घृतपूरा दश देया नैवेद्यार्थं तु भक्षयेत्॥
द्वितीया लड्डुकैः पूज्या सोमालिस्फुटकारिणैः।
सुधाफलैः खण्डमण्डैः पूरिकाखण्डवेष्टकैः॥
उदुम्बरं कीकरसं प्रत्यहं परिपूजयेत्।
करके चैव नैवेद्यं दशैकैकं प्रदापयेत्॥
कालोद्भवैः फलैः पुष्पैः पूजयेद्दशभिर्दिनैः।
नारङ्ग नारिकेराणि मातुलिङ्गानि दापयेत्॥
रञ्जितैश्चैव वस्त्रैश्च सर्व्वालङ्कारभूषणैः।
पत्रैः पुष्पैः फलैः पूज्या दिनानि दशसंख्यया॥
दशमे दिवसे प्राप्ते रात्रौ चन्द्रोदये तथा।

(१) चण्डिकामिति क्वचित् पाठः।

देवीं संपूज्य विधिवत् चन्द्रायार्घ्यं निवेदयेत् ॥
शङ्के तोयं समादाय सपुष्पफलचन्दनं ।
नवो नवोऽसि मासान्ते जायमानः पुनः पुनः ॥
गृहाणार्घ्यं शशाङ्केशं रोहिण्या सहितो मम ।

चन्द्रार्घ्यमन्त्रः ।

करकान् जलसंपूर्णान् फलभोज्यैः समन्वितान् ।
एवं करोति नियतः कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥
अनेन विधिना योषित् न वैधव्यं लभेत् क्वचित् ॥
एतद्व्रतं मया पूर्वं कृतं यन्मुनिसत्तम(१) ।
करकं भक्ष्यसंयुक्तं सुवासिन्यै प्रदापयेत् ॥
दशाहे प्रतिमां दिव्यामाचार्य्याय निवेदयेत् ।
आचार्य्यं वस्त्ररत्नैश्च सभार्य्यं परिपूजयेत् ॥
वर्षे वर्षे प्रदातव्या प्रतिमा चारुलोचने ।
अनेन विधिना यस्तु प्रकुर्य्याद्दशवासरान्(२) ॥
वर्षाणियावद्देवस्य पूजनियाः सुरासुरैः ।
वर्षैकैकेन येनैवं फलं प्राप्तं त्वया शुभे ॥
एतत्ते सर्व्वमाख्यातं अन्यजन्मकृतं शुभे ।
न स्पृशन्ति च पापानि ब्रह्महत्यासमानि वै(३) ॥
धनं धान्यञ्च सौभाग्यं पुत्रः पौत्रश्च वर्द्धते ।

---

(१) कृतञ्च ऋषिसन्निधाविति वा क्वचित् ।

(२) वत्सरानिति क्वचित् पाठः ।

(३) नश्यन्ति विविधानिवेति क्वचित् पाठः ।

यः पठेत् प्रातरुत्थाय शृणोति नु तथा नरः ॥
सर्व्वपापविनिर्मुक्तः परां सिद्धिमवाप्नुयात् ॥

इति स्कन्दपुराणोक्तं दशरथ ललिताव्रतं।

——o——

युधिष्ठिर उवाच।

पुनर्मे देवदेवेश त्वद्भक्त्या भावितं मनः।
कथ्यमानमिहैवासि श्रोतुन्धर्म्मपदं महत् ॥
यत्राण्वपि दत्तं हि इष्टं वा सुमहद्भवेत्।
श्रुतं वा कथितं वापि पुण्याख्यानं जनार्द्दन ॥

श्रीकृष्ण उवाच।

शृणु पाण्डव ते वच्मि रहस्यं देवनिर्म्मितं।
यन्मया कस्यचिन्नोक्तं सुप्रियस्यापि भारत ॥
वैशाखमासस्य तु या तृतीया
नवम्यसौ कार्त्तिकशुक्लपक्षे।
नभस्यमासस्य तु कृष्णपक्षे
त्रयोदशी पञ्चदशी च माघे ॥
वैशाखस्य तृतीया तु समा कृतयुगेण सा।
नवमी कार्त्तिके यातु त्रेतायुगसमा हि सा ॥
त्रयोदशी नभस्ये तु द्वापरेण समा मता।
माघे पञ्चदशी राजन् कलेरादिरिहोच्यते ॥
एतास्चतस्रोः राजेन्द्र युगानां प्रभवाः स्मृता।
युगादयश्च कथ्यन्ते तेनैताः पूर्व्वसूरिभिरिति ॥

उपवासस्तपोदानं जपहोमक्रियास्तथा।
यदासु क्रियते किंचित् सर्वं कोटिगुणं भवेत्॥
वैशाखस्य तृतीयायां श्रीसमेतं जगद्गुरुं।
नारायणं पूजयेद्यः पुष्पधूपविलेपनैः॥
वस्त्रालङ्कार सम्भारैर्नैवेद्यैर्विविधैस्तथा।
ततस्तस्याग्रतो धेनुर्लवणस्याढ़केन तु॥
कार्य्या कुरुकुलश्रेष्ठ चतुर्भागेन वत्सकं।
अविचर्मोपरि स्थाप्य कल्पयित्वा विधानतः॥
शास्त्रोक्तक्रमयोगेन ब्राह्मणायोपपादयेत्।
श्रीधरः श्रीपतिः श्रीमान् श्रीशःसंप्रीयतामिति॥
अनेन विधिना दत्त्वा धेनुं विप्राय भारत।
गोसहस्रप्रदानस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयं॥
तथैव कार्त्तिके मासि नवम्यां नक्तभुग्नरः।
स्नात्वा नद्यां तड़ागे वा देवखातेथवा पुनः॥
उमासहायं वरदं नीलकण्ठमथार्चयेत्।
पुष्पधूपादिनैवेद्यैर्दीपगन्धादिभिस्तथा॥
धेनुं तिलमयींदद्यात् पुराणोक्तविधानतः।
अष्टमूर्त्तिर्नीलकण्ठः प्रियतामिति कीर्त्तयेत्॥
तदनु प्राप्यते पुण्यं पार्थ नक्तेन वर्ण्यते।
दत्वा तिलमयीं धेनुं शिवलोकमवाप्नुयात्॥
त्रयोदशी नभस्येया पितॄन् तत्र समर्चयेत्।
पितॄन् पायसदानेन सुमनोभिर्घृतेन च॥

भोजयेद्ब्रा(१)ह्मणान् भक्त्या वेदवेदाङ्ग पारगान्।
पितॄनुद्दिश्य दातव्या सवत्सा कांस्य दोहना॥
प्रत्यक्षा गोर्महाभाग तरुणी सुपयस्विनी।
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः॥
मातामहप्रभृतयस्तथैवात्र त्रयो मम।
प्रियताङ्गोप्रदानेन इति दत्त्वा विसर्जयेत्॥
कृतेनानेन राजेन्द्र यत्पुण्यं प्राप्यते पुनः।
तदन्येन न शक्यन्तु वक्तुं(२) वर्षशतैरपि॥
पुत्रांश्च पौत्रांश्च धनं सर्व्वं सुमहदीप्सितं।
इहैवाप्नोति पुरुषः परत्र च पराङ्गतिं॥
पञ्चदश्यान्तु माघस्य पूजयित्वा पितामहं।
गायत्र्या सहितं देवं वेदवेदाङ्गभूषितं॥
नवनीतमयीं धेनुं फलैर्नानाविधैर्युतां।
सहिरण्यां सवत्सान्तु ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥
कीर्त्तयेत् प्रीयतां मेऽद्य पद्मयोनिः पितामहः(३)।
यत्स्वर्गेयच्चपाताले यन्मर्त्त्ये किञ्चिद्दुर्लभ(४)।
तदवाप्नोत्यसन्दिग्धं पद्मयोनेः प्रसादतः॥
यानि चान्यानि दानानि दीयन्ते सुवहून्यपि।

---

(१) पूजयेदिति पाठान्तरं।

(२) प्राप्तुमिति कस्मिंश्चित् पुस्तके पाठः।

(३) सनातनइति वा पाठः।

(४) स्थानं स्वर्गेय पाताले यन्मर्त्ये किञ्चिद्दुर्लभमिति वा पाठः।

युगादिषु महाराज अक्षयाणि भवन्ति हि ॥
वित्तहीनः स्वशक्त्या यो ददाति स्वल्पकं वसु ।
तदप्यक्षयतां याति नात्रकार्य्या विचारणा ॥
वित्तानुसारं स्वन्दद्याद्धनी वा निर्द्धनोपि वा ।
अन्यमल्पं हि यः कश्चित् प्रदद्यान्निर्धनोपि सन् ॥
तदक्षयं भवेत्सर्व्वं युगादिषु न संशयः ।
अनुसारेण वित्तस्य श्रद्धाध्येन समाधिना ॥
भू-हिरण्यं गृहं वासः शयनान्यासनानि तु ।
छत्री-पानह-यानानि देयानि शुभमिच्छता ॥
एवं दत्त्वा यथा शक्त्या भोजयित्वा द्विजानपि ।
पश्चाद्भुञ्जीत सुमनाः वाग्यतो बन्धुभिः सह ॥
यत्किञ्चिद्वाचिकं पापं मानसं कायिकं तथा ।
तत्सर्व्वं नाशमायाति युगादितिथिपूजनात् ॥
गीयमानोथ गन्धर्व्वैः पूज्यमानः सुरासुरैः ।
कल्पमेकं वसेत्पार्थ रुद्रलोके न संशयः ॥

यद्दीयते किमपिकोटिगुणं तदाहुः
स्नानं जपो नियतमक्षयमेव सर्व्वं ।
स्यादक्षयास्तु युगपर्व्वतिथीषु राजन्
व्यासादयो मुनिवरा इह नान्यथैतत् ।

इति भविष्योत्तरोक्तं युगादिव्रतं(१) ।

———o———

(१) युगादिकृत्यमिति वा पाठः ।

सनत्कुमार उवाच।

वैशाखमासि शुक्लायां तृतीयायां जनार्द्दन॥
यदानुत्पादयामास युगञ्चारब्धवान् कृतं।
ब्रह्मलोकात्त्रिपथगां पृथिवीतलमानयेत्(१)॥
भगीरथश्च नृपतिः सागराणां सुखावहः।
तस्यां कार्यो यवैर्होमो यवैर्विष्णुं समर्चयेत्॥
यवान् दद्याद्द्विजातिभ्यः प्रयतः प्राशयेद्यवान्।
स्नानं दानं जपः श्राद्धं तथा होमजपादिकं(२)॥
श्रद्धया क्रियते तत्र तदानन्त्याय कल्पते।
सिन्धौ सरिद्विशेषेण सर्व्वमक्षयमुच्यते॥

इत्यादिपुराणोक्तो युगादिविधिः।

---

ब्रह्मोवाच।

मासि प्रौष्टपदे यत्तु कृष्णपक्षे त्रयोदशी।
अवतीर्णं युगं तस्यां त्रेतायान्तु समाहितः(३)॥

त्रेतायां विनिवृत्तायां एतस्यां तिथौ युगमवतीर्णमिति-सम्बन्धः अर्थाद्द्वापरमितिलभ्यते।

गोमूत्रं गोमयं दूर्व्वां समालभ्य च मृत्तिकां।
स्नायाद्ध्रदे तड़ागे वा तिथौ तस्यां समाहितः॥

---

(१) पृथिव्यामवतारयेदिति क्वचित् पाठः।

(२) जपहोमादिकञ्चयदिति वा पाठः।

(३) तपोधन इति वा पाठः।

कृतन्तेन भवेच्छ्राद्धं गयायान्तु न संशयः ।
युगादौ यस्त्रिलोकेशं स्नापयेद्गरुड़ध्वजं ॥
घृतक्षीरजलैः पुण्यैः स गच्छेद्वैष्णवीं पुरीं ।
स्नापितोथ विलिप्तोथ पूजितोथ नमस्कृतः ॥
युगादौ युगकर्त्ता तु नृणां मुक्तिप्रदो हरिः ।
व्रते वै सर्व्वयत्नेन युगादौ जगतीपतिः ॥
पूजनीयो जनैर्भक्त्या सर्वदुःखहरो हरिः ॥

इति भविष्यत्पुराणोक्तं युगावतारव्रतं ।

———000———

इति श्रीमहाराजाधिराज श्रीमहादेवस्य समस्तकरणाधीश्वर
सकलविद्याविशारद श्रीहेमाद्रिविरचिते
चतुर्वर्गचिन्तामणौ व्रतखण्डे
नानातिथीव्रतानि ॥

———

# अथ द्वाविंशोऽध्यायः।

——oo(p)oo——

अथ वारव्रतानि।

आदित्यादिक्रममनुसरन् सप्तवारव्रतानि
ब्रूते संप्रत्यवहितमतिष्ठसोद्य हेमाद्रि सूरिः।
आनन्दाय प्रभवति सतां यस्य वाचा विलासी
नित्यं लक्ष्मीर्द्दयितचरितस्तोत्रमैत्रीपवित्रः॥

तत्र तावदादित्यव्रतानि।

डिह्नी उवाच।

ये त्वादित्यव्रते ब्रह्मन् पूजयन्ति दिवाकरं।
स्नानदानादिना तेषां किं फलं यद्ब्रवीहि मे॥

ब्रह्मा उवाच।

ये त्वादित्यदिने प्राप्ते श्राद्धं कुर्वन्ति मानवाः।
सप्तजन्मानि ते प्राप्ताः सम्भवन्ति विरोगताः॥
वैराग्यमिह वै प्राप्य सुर्य्यलोकं व्रजन्ति ते॥
उपवासन्तु कुर्वन्ति ये त्वादित्यव्रते सदा।
जपन्ति तु महाश्वेतामीप्सितं लभते फलं॥
विशेषादादित्य दिने जपमानो गणाधिपान्।
षड़क्षरं महाश्लितं जपन् वैरोचनं पदं॥

आदित्यहृदयं, यन्त्रं।

महाश्वेतां क्रीं क्रीं स इतिमन्त्रः षड़क्षरः।
क्लांसीं स सूर्य्यायेति नमः।
यो यः सूर्य्यदिने भानुं संपूज्य श्रद्धयान्वितः।
नक्तं करोति पुरुषः स यात्यमरलोकतां॥

इति भविष्योत्तरोक्तमादित्यव्रतं।

——000——

आदित्य उवाच।

योऽब्दमेकं प्रकुर्वीत नक्तं हि मद्दिने नरः।
ब्रह्मचारी जितक्रोधो ममार्चनपरःखग॥
संवत्सरान्तमासाद्य मद्भक्तांश्च द्विजोत्तमान्।
भोजयित्वा प्रीतो ब्रूयात् प्रीयतां मे दिवाकरः॥
यश्च भक्तिसमायुक्तो मम लोकं स गच्छति।
स च भानुकृतं लोकं ध्रुवं संप्राप्नुयान्नरः॥

इति भविष्यत्पुराणोक्तमादित्यव्रतं।

——000@000——

हस्तयुक्ते वार्कदिने सौरनक्तव्रतं चरेत्।
स्नात्वाभ्यर्च्य तु विप्रान् वै विरोगो जायते नरः॥

इति नृसिंहपुराणोक्तं सौरनक्तव्रतं।

——000——

अथादित्यवारे नन्दादिविधिः।

ब्रह्मोवाच।

द्वादशां हस्तभं वारो आदित्यस्य महात्मनः।
नन्दो भद्रस्तथा सौम्यः कामदः पुत्रदस्तथा।
जयो जयन्तो विजय आदित्यादिमुपाश्रितः॥
हृदयो रोगहा चैव महारोगविनाशनम्।
मालतीकुसुमानीह श्वेतचन्दनमुत्तमम्॥
धूपं गुग्गुलश्रेष्ठेन नैवेद्यं पूपमेव तु।
दत्त्वापूपांस्तु विप्राय ततो भुञ्जीत वाग्यतः॥
प्रस्थमात्रं भवेत्पूपं गोधूमोत्थमनुत्तमम्।
यवोद्भवं वा कुर्व्वीत सुगन्धसर्षपान्वितम्॥
सहिरण्यन्तु दातव्यं ब्राह्मणेभ्यो हितेप्सुना।
भौमे दिव्येऽथवा देयं न्यसेदापूरणं रवेः॥
दैवा, ब्राह्मणाः, भौमाः, तदितरे ब्राह्मणाः।
दातव्यो मन्त्रवत् पूपो मण्डको गृह्य एव तु।
पूपादिशनकैर्भक्त्या आदित्यपरमश्च तु।

दानमन्त्रः।

आदित्यतेजसोत्पन्नं राज्ञीकरविनिर्म्मितम्।
श्रेयसे मम विप्र त्वं प्रतीच्छापूपमुत्तमम्॥

ग्रहणमन्त्रः।

कामदं सुखदं धन्यं पुत्रदं धनदं तथा।
सदा ते तु प्रयच्छामि मण्डकं भास्करप्रियं॥

एतावेव महामन्त्रौ दानादाने रविप्रियौ।
अपूपस्य गणश्रेष्ठ अद्य मे नात्र संशयः॥
एष मन्त्रविधिः प्रोक्तो नराणां श्रेयसे विभो।
अनेन विधिना यस्तु देवं पूजयते रविं॥
सर्व्वपापविनिर्मुक्तः सूर्य्यलोके महीयते।
न दारिद्र्यं न रोगास्तु कुले तस्य महात्मनः॥
यश्चैनं पूजयेद्भानुं अक्षयन्तनुते सदा।
सूर्य्यलोकाश्रयं कृत्वा राजा भवति भूतले॥
बहुज्ञातिसमायुक्तः स नरो रविसन्निभः।

## इति भविष्यत्पुराणोक्तो नन्दाविधिः।

---

मासि भाद्रपदे वीर शुक्लपक्षे तु या भवेत्॥
षष्ठी कुरुकुलश्रेष्ठ सा भद्रा परिकीर्त्तिता।
तत्र नक्तञ्च यः कुर्य्यादुपवासमथापि वा॥
हंसयानं समारूढो याति हंससलोकतां।
मालतीकुसुमानीह तथा श्वेतन्तु चन्दनं॥
विजयञ्च तथा धूपं नैवेद्यं पायसं परं।
विजयो, धूपः भविष्यत्पुराणोक्तोयथा॥
अव्रणं सिह्लकं विप्र श्रीखण्डमगरुन्तथा।
कर्पूरञ्च तथा मूलं शर्करा सत्वचं द्विज॥
इत्थं संपूज्य देवेशं मध्याह्ने भुवनाधिपं।
दत्त्वा तु दक्षिणां शक्त्या ततो भुञ्जीत वाग्यतः॥

पायसं सगुड़ं देयं गुड़ञ्च सर्पिषा सह।
सर्व्वान् कामानवाप्नोति पुत्रकामधनादिकान्॥

## इति भविष्यत्पुराणोक्तभद्राविधिः।

——000——

नक्षत्रं रोहिणी वीर यदा वारो रवेर्भवेत्॥
जात्या स सौम्यता वीरः स सौम्यः परिकीर्त्तितः।
स्नानं दानं जपो होमस्तथा देवादिपूजनं॥
अक्षयं स्यान्नसन्देहस्तस्य वारे महात्मनः।
नक्तं समाहितो यत्र पूजयेद्भास्करं नरः॥
याति लोकं स देवस्य भास्करस्य महात्मनः।
रक्तोत्पलानि वै तत्र तथा रक्तञ्च चन्दनं॥
सुगन्धश्चापि धूपोऽत्र नैवेद्यं पायसं परं।
ब्रह्मेति, मे भावितं मनः॥
इति संपूजितः पुत्र भास्करः पुत्रदो भवेत्।
अतोऽयं पुत्रदो वारो देवस्य परिकीर्त्तितः॥

## इति भविष्यत्पुराणोक्तः पुरापुत्रदो विधिः।

——०——

दक्षिणे त्वयने यःस्यात् स जयः परिकीर्त्तितः॥
अत्रोपवासो नक्तन्तु स्नान दानं जपस्तथा।
भवेच्छतगुणं देव भास्करस्य दिने कृतं॥
तस्मान्नक्तादि कर्त्तव्यमस्माच्छतगुणो विधिः॥

## इति भविष्यत्पुराणोक्तो जयविधिः।

जयन्त उत्तरचैये आदित्यगणनायक।
वारो देवस्य चैवात्र पूज्यो देवो गणाधिपः॥
पूजितस्तत्र देवेशः सहस्रगुणितं फलं।
फलं ददाति देवेशः स्नानदानादिकर्म्मणि॥
घृतेन पयसा ह्यत्र स्नानमिक्षुरसेन तु।
विलेपनं कुङ्कुमस्य प्रशस्तं भास्करप्रियं॥
धूपक्रिया गुग्गुलुना नैवेद्यं माषकं प्रिये।
इत्थं संपूज्य देवेशं कुर्य्याद्वा मन्त्रवत् किल॥
ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चात् मोदकांस्तिलशष्कुली॥
इत्थं यः पूजयेद्भानुं प्राजापत्यर्चसंयुतः॥
स शोकविजयो नाम सर्वपापभयापहः।
तत्र कोटिगुणं सर्वं फलं पुण्यस्य कर्मणः॥
ददाति भगवान् देवः पूजितः सगणाधिपः।
स्नानं दानं जपो होमः पितृदेवादिपूजनं॥
नक्तं वा सोपवासो वा संपूज्योऽत्र दिवाकरः।
सर्व्वलोकाधिपो भूत्वा प्राप्यते सप्तसप्तिकः॥

इति भविष्योत्तरोक्तं सूर्यस्य वारे त्रिपुरसूदनव्रतं।

———ooo———

प्रातः कृत्वा ततः स्नानं पूजयित्वा दिवाकरं।
आदित्याभिमुखस्तिष्ठेद्यावदस्तमनं रवेः॥
जपमानो महाश्वेतां स्तम्भमाश्रित्य भक्तितः।
महादेवस्य भक्त्या तु देवदेवं दिवाकरं।
पश्यन् जपन् महाश्वेतां तिष्ठेदस्तमयं रवेः।

गन्धपुष्पोपहारैश्च पूजयित्वा दिवाकरं ॥
विप्राय दक्षिणां दद्यात्ततो भुञ्जीत वाग्यतः।
इत्थमेव व्रतं कुर्य्याद्भास्करप्रीतये नरः॥
भानुमांस्तस्य तु प्रीतो दद्यात् सर्वमनोरथान्।

इति भविष्यत्पुराणोक्तो आदित्याभिमुखविधिः।

———000———

रविसंक्रमणे यस्मात् रवेर्वारोगणाधिप।
आदित्यहृदयो नाम आदित्यहृदयप्रियः॥
मां तत्र नक्तमाश्रित्य देवं संपूज्य यत्नतः।
गत्वा मम पुरं पश्चात् पृथिव्यां स्यान्नराधिपः।
गच्छेदायतनं भानोरादित्याभिमुखस्थितः।
जपेदादित्यहृदयं संख्ययाष्टशतं बुधः॥
यो नरः पूजयेद्भानुं भक्त्या श्रद्धासमन्वितः।
स कामान् लभते सर्वान् आदित्यहृदये स्थितः॥

इति भविष्यत्पुराणोक्तं आदित्यहृदयविधिः।

———000———

कृष्णे वारे यदाभौमं भवेद्भगदैवतं॥
स वरो हि महाप्रोक्तः सर्वरोगभयापहः।
भगदैवतं, पूर्व्वाफल्गुनि।
योऽत्र पूजयते भानुं शुभगन्धविलेपनैः॥
सर्वरोगविनिर्मुक्तः स याति भास्वतेर्गृहं।
अर्कपत्रं पुटे कृत्वा पुष्पार्कैं चैव सुव्रत॥

देवस्य पुरतोरात्रौ भक्त्या संपूजयेद्बुधः ।
पूजयेदत्र वै भक्त्या एतेन विधिना द्विजं ॥
सर्वरोगैर्विर्युक्तस्तु गच्छेदादित्यकालयं ।
तस्मादपि व्रजेल्लोकं हुङ्काररहितस्ततः ॥

द्विजं, सूर्य्यं हुङ्काररहितो, ब्राह्मणः ।

## इति भविष्योत्तरोक्तो रोगघ्नविधिः ।

——o——

यस्त्वादित्यग्रहेशस्य वारो देवस्य सुव्रत ।
पूजयेत् स प्रियोनित्यं ख्यातो गोश्रुतिभूषणः ॥

गोश्रुतिः, चक्षुः श्रवाः

स भूषणं यस्य स सर्पभूषणइत्यर्थः ।

यस्तु संपूजयेन्नित्यं पतङ्गं पन्नगाधिपं ।
गन्धपुष्पादिधूपैस्तु स्तोत्रैर्व्वा विविधैस्तथा ॥
सोपवासो गणश्रेष्ठ आदित्यग्रहणे शुचिः ।
जपमानो महाश्वेतां स्वशाखोक्तग्रहाधिपम् ॥
ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु ततो भुञ्जीत वाग्यतः ।
आदित्यग्रहयुक्तोऽस्मिन् वारे त्रिपुरसूदन ॥
एतत् कर्म्मकृतं पुण्यं तत्सर्वं शुभदं भवेत् ।
स्नानदानजपादीनां कर्म्मणां वृषभध्वज ॥
अनन्तं हि फलन्तेषां भवत्यस्मिन्न संशयः ।
कृतानां तु गुणश्रेष्ठ भास्करस्य वचो यथा ।
तस्मात् सूर्य्यदिने कार्य्यं पुण्यं कर्म विचक्षणैः ॥
एवं भुक्त्वा च नक्तं च उपवासमथापि वा ।

ये त्वादित्यदिने कुर्युस्ते यान्ति परमां गतिं ॥
धन्यं पुण्यं यशस्यञ्च आयुष्यं कामदं तथा।
तस्मिन् यद्दानमपरं तद्गोदानसमं मतं ॥
द्वादशैते महाबाहो बाचा भानोर्म्महात्मनः।
अनुष्ठितास्तु कथिताः सर्वपापभयापहाः ॥
कृत्वैतदेषां विधिवद्द्वारं वृषभवाहनम्।
ततो यायाद्धरं लोकं वृषकेतोर्महात्मनः ॥

## इति भविष्योत्तरोक्तं नन्दादिव्रतविधिः।

——o——

श्रीनारायण उवाच।

कृत्वा भूमौ लिखेत्पद्मं शोभनं कर्णिकाचितम्।
पत्रैर्द्वादशभिर्युक्तं शोभमानं मनोरमं ॥
तेषान्तु मध्ये चत्वारि तन्मध्ये भास्करं न्यसेत्।

तेषां द्वादशपत्राणांसम्बन्धीनि चत्वारि पत्राणि पद्ममध्ये कर्णिकासंलग्नानि कार्य्याणि अष्टौ तु तद्वाह्ये, पत्रं द्वादशदले इत्यर्थः

पूर्व्वपत्रे न्यसेत् सूर्य्यमाग्नेय्यान्तु दिवाकरं।
याम्यायान्तु विवस्वन्तं नैर्ऋत्यान्तु भगं न्यसेत् ॥
वरुणं पश्चिमे पत्रे वायव्ये इन्द्रमेव तु।
आदित्यमुत्तरे चैव सवितारं ततःपरं ॥
कर्णिका पूर्व्वपत्रेषु न्यसेदेकस्य वाजिनः।
दक्षिणेन सहस्रांशुं मार्त्तण्डं पश्चिमे दले ॥

उत्तरे तु रविं देवं मध्ये भास्करमेव च।
एवं विन्यस्य सर्व्वासु दिक्षु सूर्य्यार्चनं भवेत्॥
करवीरार्कपुष्पैर्वा चन्दनागुरुचम्पकैः।
कालोद्भवैश्च पुष्पैश्च पूजयेत् सर्व्वतोमुखं॥
जन्ममृत्युजराशोकसंसारभयनाशनं।
दारिद्र्यव्यसनध्वंसं श्रीमान् कुरु दिवाकर॥
नमस्कारेण मन्त्रेण व्याहृत्या प्रणवादिभिः।
अग्निमीले नमस्तुभ्यं जातवेद नमोस्तुते॥
ईषेत्वाय नमस्तुभ्यं ईषेत्वेर्ज्जे नमोनमः।
अग्न आयाहि वीतये अग्निगर्भ नमोस्तु ते॥
शन्नो देवी नमस्तुभ्यं जगच्चक्षुर्णमोनमः।
आदित्यवारं हस्तेन पूर्वं गृह्णीत पाण्डव।
ततः प्रत्यादित्यदिनं सप्तवारान् प्रपूजयेत्।
एकभक्तेन नक्ताशी ब्राह्मणान् पूजयेत् दिवा।
दक्षिणां तु यथा शक्त्या दद्यात् विप्राय भक्तितः॥
स्थित्वाग्रत इदं ब्रूयाद्भास्करः प्रीयतामिति।
ततस्तवीति तिग्मांशुं स्तोत्रेणानेन भक्तितः॥
त्वं भानोजगतश्चक्षुस्त्वमस्मत्सर्वदेहिनां।
त्वं गतिः सर्व्वसांख्यानां योगिनां त्वं परायणं॥
अनावृत्तार्गलद्वारं त्वंगतिस्त्वं मुमुक्षूणां।
त्वया सन्धार्यते लोकस्त्वया लोकः प्रकाश्यते॥
त्वया पवित्री क्रियते निर्वीजं पाल्यते त्वया।
त्वामुपस्थाय काले तु ब्राह्मणा वेदपारगाः॥

स्वशाखाविहितैर्मन्त्रैरर्च्य ऋषिगणार्च्चितः।
तव दिव्यं रथं यातुः पातु पाता वरार्थिनः॥
सिद्धचारणगन्धर्व्वा यक्ष-गुह्यक-पन्नगाः।
त्रयस्त्रिंशच्च वै देवा देवा वैमानिका-गणाः॥
सोपेन्द्राश्च महेन्द्राश्च त्वामिष्ट्वा सिद्धिमागताः।
उपयान्त्यर्चयित्वा वै प्राप्ताश्चैव मनोरथाः॥
दिव्यमन्दारमालाभिः स्वर्गविद्याधरोपमाः।
दिव्याः पितृगणाश्चैव ससूर्य्या ये च मानुषाः॥
ते पूजयित्वा त्वामेव गच्छन्त्याशु प्रधानतां।
वसवो मरुतो रुद्रा ये च साध्या मनीषिणः॥
वालखिल्यादयः सिद्धा श्रेष्ठत्वं प्राणिनाङ्गताः।
सब्रह्मघोषलोकेषु समस्त्वं ह्यखिलेषु च॥
नतद्भूतमहं मन्ये यदर्कादतिरिच्यते।
सन्ति चान्यानि सत्वानि वीर्य्यवन्ति महान्ति च॥
न तु तेषां तथा दीप्तिः प्रभावो वा यथा तथा।
ज्योतींषि त्वं हि सर्व्वाणि त्वं सर्व्वज्योतिषाम्पतिः।
त्वयि सत्यमसत्यञ्च सर्व्वभावाश्च सात्विकाः॥
त्वं वज्रसात् कृतं चक्रं सुनाभं विश्वकर्म्मणा।
त्वं वलिश्च च मदोपेतो नाशितः शार्ङ्गधन्वना॥
त्वामादायांशुभिस्तेजो निदाघे सर्व्वदेहिनां।
सर्वौषधिरसानाञ्च पुनर्वर्षासु मुञ्चसि॥
तपन्त्यन्ये दहन्त्यन्ये गर्जन्त्यन्ये महाघनाः।
विद्योतन्ते प्रवर्षन्ति तव प्रावृषि रश्मयः॥

न तथा सुखयत्यग्निर्न प्रावारा न कम्बलाः ।
शीतवाताहितं लोकं यथा तव मरीचयः ॥
त्रयोदशद्वीपपतिं नौमि भासयते मही ।
त्रयाणामपि लोकानां हितायैकः प्रवर्त्तसे ॥
तव यद्युदयो न स्यादन्धं जगदिदं भवेत् ।
न च धर्म्मार्थकामेषु प्रवर्त्तेरन् मनीषिणः ।
प्रधानं पशुबन्धेष्टिमन्त्रयज्ञतपःक्रियाः ।
त्वत्प्रसादादवाप्यन्ते ब्रह्मक्षत्रविशाङ्गणैः ॥
यदहर्ब्रह्मणः प्रोक्तं तदहर्युगसम्मितं ।
तस्य त्वमादिरन्तश्च कालज्ञैः परिकीर्त्तितः ॥
संवर्त्तकाग्निस्त्रैलोक्यं भस्मीकृत्यावतिष्ठते ।
त्वद्दीधितिसमुत्पन्ना नानावर्णा महाघनाः ॥
सैरावताः साशनयः कुर्व्वन्तिभूत(१) संस्कृतं ।
कृत्वा द्वादशधात्मानं द्वादशादित्यताङ्गतः ॥
संहृत्यैकार्णवं सर्व्वन्त्वं शोषयसि रश्मिभिः ।
त्वमिन्द्रमाहुस्त्वं रुद्रस्त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः ॥
त्वामग्निन्त्वां मनःसूक्ष्मं प्रभुस्त्वं ब्रह्मशाश्वतः ।
त्वं हंसः सविता भानुरंशुमाली वृषाकपिः ॥
विवस्वान्मिहिरः पूषा मित्रो धर्म्मस्तथैव च ।
सहस्ररश्मिरादित्यस्तपस्त्वं त्वं गवांपतिः ॥
मार्त्तण्डोऽर्को रविः सूर्य्यः शरण्यो दिनकृत्तथा ।
दिवाकरः सप्तसप्तिर्व्योमकेशो विरोचनः ॥

---

(१) कुर्वन्त्यद्भुतमिति क्वचित् पाठः ।

आशुगामी तपोघ्नश्च हरिताश्वश्च कीर्त्त्यसे।
सप्तम्यामथवाष्टम्यां भक्त्या पूजां करोति यः॥
अनिर्व्विस्मान्दकारी लक्ष्मीस्तं भजते नरं।
न तेषामापदः सन्ति नाधयो व्याधयस्तथा॥
एतावानन्यमनसा कुर्व्वन् पद्येन वन्दनम्।
सर्व्वरोगैर्व्विरहिताः सर्व्वपापविवर्जिताः॥
त्वद्भावभक्ताः सुखिनो भवन्ति चिरजीविनः।
त्वं ममाप्यत्र कामस्य सर्व्वार्थं विचिकीर्षतः॥
अन्नमन्नपतेर्दातुमभितं श्रद्धयार्हसि।
ये चान्येनुचराः सर्व्वाः पादोपान्तं समाश्रिताः॥
माठरारुणदण्डाद्या स्तां स्तां चैव सनिक्षुभान्।
क्षुभया सहिता मैत्री पार्श्वभूतसमादराः॥
ताश्च सर्व्वा नमस्यामि पातु मां शरणागतं।

इमं स्तवं पूतमनाः समाधिना
पठेदिहान्योऽपि वरं समर्थयन्।
नतस्य दद्याच्च रविर्मनीषितं
तदाप्नुयाद्यद्यपि तत्सुदुर्लभं॥

उभे सन्ध्या पठेन्नित्यं नारी वा पुरुषो यदि।
आपदं प्राप्य मुच्येत वन्ध्या सुतधनं लभेत्॥
कामजं क्रोधजं वापि मदजं दर्पजं तथा।
अपि जन्मसहस्रोत्थं पापं नश्येत तत्क्षणात्॥
धनधान्यसमायुक्तो नरः सौभाग्यमश्नुते।
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च॥

विमानवरमारूढः सूर्य्यलोके महीयते ।
अपुत्रा या भवेन्नारी धनसौभाग्यवर्जिता ॥
सुरूपा लभते पुत्रान् धनं सौभाग्यमेव च ।

इति भविष्यत्पुराणोक्तं दिवाकरव्रतं ।

———o———

स्कन्द उवाच ।

शृणु दिव्यं परं पुण्यमादित्याराधनं परं ।
यत्कृत्वा सर्व्वकामानां सकलं फलमाप्नुयात् ॥
समुद्रतीरे प्रावारा पुरी द्वारवती शुभा ।
वासुदेवे यदुवरे युवराज्यं प्रशासति ॥
दुर्व्वासा शङ्करस्यांशः आजगामावलोककः ।
कृष्णेन पूजितस्तत्र अर्घ्यपाद्यासनादिभिः ॥
भोजनं तस्य यद्दत्तं यथाभिलषितं मुनेः ।
सम्पूजितः स कृष्णेन यावद्गच्छत्यसौ मुनिः ॥
शाम्बेन कथितं तस्य सुतेन सहसा किल ।
क्रुद्धोपि मुनिशार्दूलः कोपं स कृतवान् स्वयं ॥
पूजितेन मयेदानीं मन्युं कर्त्तुं कथं क्षमः ।
स गत्वा नारदं प्राह शाम्बेन हसितोस्मि भोः ॥
प्रकारान्तरतः कार्य्यं तस्य शिक्षापनं त्वया ।
इत्युक्तो नारदः प्रायात् द्वारकां कृष्णसन्निधौ ॥
स्वकं सैन्यं दर्शयस्व मम देवकिनन्दन ।
देव जानाम्यहं कृत्वा हस्त्यश्वरथसङ्कुलं ॥
नारदेनैव मुक्तस्तु तथैव कृतवान्विभुः ।

दर्शिते तु बले प्राह नात्र शाम्बः प्रदृश्यते॥
मयैवानीयते शीघ्रं द्वारवत्यास्तवान्तिकं।
गत्वैवमुक्तो मुनिना शृणु जाम्ववतीसुत॥
स शृङ्गारस्तथानीतो मकरध्वजदर्शनात्।
गत्वालिङ्ग्य चुचुम्बुस्तं गोप्यः कृष्णपरिग्रहाः।
नारदः प्राह भगवान् दुश्चरित्रं तथानघ॥
क्रुद्धेन सौरिणा शप्तः कुष्ठी भव नराधिपः।
एवमुक्ते तथा पुत्रः कुष्ठरोगातुरोऽभवत्॥
शाम्बः प्रणम्याह पितः किमर्थं शपितस्त्वया।
स्वशक्तिज्ञानदृष्ट्या तु विचारय सुनिश्चयं॥
ध्यानाद्दुर्व्वाससो ज्ञाता विक्रिया ह्यस्य कारणं।
अनुग्रहो मया पुत्र कार्य्यस्तेह्ययने शुचौ॥
आदित्यस्य व्रतञ्चैव कुरु कुष्ठविनाशनं।

शाम्व उवाच।

कथन्त्वेतत् मया कार्य्यं व्रतं सर्व्वफलप्रदं।
किं विधानन्तु के मन्त्राः किं दानं किञ्च पूजनं॥

श्रीकृष्ण उवाच॥

मासमाश्वयुजं प्राप्य यदादित्यदिनं भवेत्।
तदा व्रतमिदं ग्राह्यं नरैस्त्रीभिर्विशेषतः॥
यावत्संवत्सरं तावद्विधिनानेन पुत्रक।
गोमयेन चितौ कुर्य्यात् मण्डलं वर्त्तुलं पुनः।
रक्तपुष्पै रक्षताभिरर्घ्यं तत्र प्रदापयेत्॥
मन्त्रेणानेन भासन्तमाचार्य्य प्रतिवासरं।

यथाशा विमलाः सर्व्वाः सूर्य्यभास्करभानुभिः॥
तथाशा सकला मह्यं कुरु नित्यं मयार्च्चितः।

अर्घ्यमन्त्रः।

एवं तमर्च्चयेत्तावद्यावद्वर्षं समाप्यते।
समाप्ते तु व्रते वत्स कुर्य्यादुद्यापने विधिं॥
गोमयेनानुलिप्तायां भूमौ मण्डलमालिखेत्।
रक्तचन्दनरेखाभिः कुङ्कुमेन विशेषतः॥
तन्मध्ये द्वादशदलं पद्ममाकारयेद्बुधः।
सिन्दूरपूरितदलं जवाकुसुमपूरितं॥
तन्मध्ये स्थापयेत् कुम्भं प्रवालाङ्कुरसन्निभं।
शालितण्डुलसंपूर्णं शर्कराचन्दनान्वितं॥
तस्योपरि न्यसेत्पात्रं ताम्रं शक्त्या विनिर्म्मितं।
सौवर्णं भास्करं कृत्वा पद्महस्तं स्वशक्तितः॥
आदित्यरूपन्तु निक्षुभाभास्करसप्तमीव्रतोक्तं वेदितव्यं।
रक्तवस्त्रयुगोपेतं पात्रोपरि निवेशयेत्॥
स्नाप्य पञ्चामृतेनादौ जवाकुसुमलेपितं।
रक्तपुष्पैस्तु नैवेद्यैः फलैः कालोद्भवैस्तथा॥
पूजयेज्जगतामीशं दीपधूपैस्तथोत्तमैः।

सूर्य्याय नमः। वरुणाय नमः। माधवाय नमः। धात्रे नमः। हरये नमः। भगाय नमः। सुवर्णरेतसे नमः। अर्य्यम्णे नमः। दिवाकराय नमः। तपनाय नमः। भानवे नमः। हंसाय नमः। इति द्वादशभिः पूजा कार्य्या।

नमोनमः पापविनाशनाय
विश्वात्मने सप्ततुरङ्गमाय।
सामर्ग्यजुर्धामनिधे विधात-
र्भवाब्धिपोताय नमः सवित्रे॥

प्रार्थनामन्त्रः।

अनेन मन्त्रेणार्घ्यं।

एवं संपूज्य भानुन्तु नक्तं भुञ्जीत वाग्यतः।
आचार्य्यं पूजयित्वा तु वस्त्रैराभरणैः शुभैः॥
तस्मै तां प्रतिमां कुम्भं सहिरण्यं प्रदापयेत्।
प्रीयतां भगवान् देवो मम संसारतारकः॥
ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चाद्दद्यान्नादिविस्तरैः।
तेभ्यस्तु कलशान् दद्याद्यथा शक्त्या तु दक्षिणां॥
एवं यः कुरुते सम्यक् व्रतमेतदनुत्तमं।
आशादित्येति विख्यातं तस्य पुण्यफलं महत्॥
निर्व्याधिर्निपुनो(२) जस्वी पुत्र-पौत्रसमन्वितः।
भुक्त्वा च भोगानमलानमरैरपि दुर्लभान्॥
देहान्ते रविसायुज्यं प्राप्नुयादुत्तमोत्तमं(१)।
प्राप्स्यसे परमामृद्धिं विमुक्तः कुष्टरोगतः॥
आशाभङ्गो न तस्यास्ति कदाचिज्जन्मजन्मनि।
एतस्मात् कारणाद्वत्स कुरुष्व व्रतमुत्तमं॥
एतच्छ्रुत्वा वचः शाम्बः पित्रा कृष्णेन भाषितं।

---

(१) प्राप्नुयान्नात्र संशय इति पाठान्तरं।

(२) निरोगोश्स्वीति पाठान्तरं।

व्रतं चरित्वा संप्राप्तः सर्वसिद्धिं सुदुर्लभां ॥
इदं यः शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वापि मानवः ।
तावुभौ पुण्यकर्माणौ रविलोकमवाप्नुतः ॥

इति स्कन्दपुराणोक्तं आशादित्यव्रतं ।

———000———

अथातः संप्रवक्ष्यामि रहस्यं ह्येतदुत्तमं ।
येन लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टि पुष्टिःकान्तिश्च जायते ॥
सर्व्वग्रहाः सदा सौम्या जायन्ते यत् प्रसादतः(१) ।
आदित्यवारहस्तेन पूर्व्वं संगृह्य भक्तितः ॥
मन्त्रोक्तविधिना सर्व्वं कुर्य्यात्पूजादिकं रवेः ।
प्रत्येकं सप्तनक्तानि कृत्वा भक्तिपरो नरः ॥
ततस्तु सप्तमे प्राप्ते कुर्य्याद्ब्राह्मणवाचनं ।
भास्करं शुद्धसौवर्णं कृत्वा यत्नेन मानवः ॥

आदित्यरूपं, आशादित्यव्रतवद्वेदितव्यं ।

ताम्रपात्रे स्थापयित्वा रक्तपुष्पैः प्रपूजयेत् ॥
रक्तवस्त्रयुगच्छन्नं छत्रोपानद्युगान्वितं ।
घृतेन स्नापयित्वा तु लड्डुकान्विनिवेद्य च ॥
होमं घृततिलैः कुर्य्याद्रविनाम्ना तु मन्त्रवित् ।
समिधोष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिरेव वा ॥
होतव्या मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना चैव घृतेन वा ।

समिधोत्र, अर्कसमिधः ।

(१) येन पाण्डव इति पाठान्तरं ।

मन्त्रेणानेन विदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत्।
आदिदेव नमस्तुभ्यं सप्तसप्ते दिवाकर॥
त्वं रवे तारयस्वास्मानस्मात् संसारसागरात्।
व्रतेनानेन राजेन्द्र भवेदारोग्यमुत्तमं॥
द्रव्य-संपत्सुतप्राप्तिरिति पौराणिका विदुः।
अविसम्बादिनी चेयं शान्तिः पुष्टिः सदा नृणां(१)॥

## इति भविष्यपुराणोक्तमादित्यशान्तिव्रतम्।

——००——

नारद उवाच।

यदारोग्यकरं नृणां यदनन्तफलप्रदं।
व्रतं तत् ब्रूहि मे नन्दिन् सर्व्वपापप्रणाशनं॥

नन्दिकेश्वर उवाच।

यत्तद्विश्वात्मनो धाम परं ब्रह्म सनातनं।
सूर्य्याग्नि चन्द्ररूपेण त्रिधा जगति संस्थितं॥
तदाराध्य शुभं विप्र प्राप्नोति कुशलं सदा।
तस्मादादित्यवारेण सदा नक्ताशनो भवेत्॥
यदा हस्तेन संयुक्तमादित्यस्य च वासरं।
उत्पद्यते यदा भक्तिर्भानोरुपरि शाश्वती।
तदा दित्यदिने कुर्य्यादेकभक्तं विमत्सरः॥
तदारभ्य सदा कार्य्यं नक्तमादित्यवासरे।
नक्तमादित्यवारेण भोजयित्वा द्विजोत्तमान्॥
ततोऽस्तसमये भानो रक्तचन्दनपङ्कजं।

(१) सूर्य्यघोरा सुघोरास्तु ख्याता शान्तिः शुभप्रदा इति पुस्तकान्तरे पाठः।

विलिख्य द्वादशदलं पूज्य सूर्येति पूर्व्वतः॥
दिवाकरं तथाग्नेये विवस्वन्तमतःपरं।
भगन्तु नैर्ऋते देवं वरुणं पश्चिमे दले॥
महेन्द्रं मारुतदले आदित्यन्तु तथोत्तरे।
शान्तमीशानभागे तु नमस्कारेण विन्यसेत्।
कर्णिका पूर्व्वभागे तु सूर्य्यस्य तुरगान्न्यसेत्॥
दक्षिणे यमनामानं मार्त्तण्डं पश्चिमे दले।
उत्तरेण रविं देवं कर्णिकायान्तु भास्करं॥
अर्घ्यं दत्त्वा ततो विप्र सतिलारुणचन्दनं।
यवाक्षतसमायुक्तमिमं मन्त्रमुदीरयेत्॥
कालात्मा सर्वभूतात्मा सविता सर्व्वतोमुखः(१)।
यस्मादग्नीन्द्ररूपस्त्वमतः पाहि प्रभाकरः॥
अग्निमीले नमस्तुभ्यमिषेत्वोर्जेति भास्करः।
अग्न आयाहि वरद नमस्ते ज्योतिषाम्पते॥
अर्घ्यं दत्त्वा विसृज्याथ निशि तैलविवर्जितं।
भुञ्जीत भावितमना भास्करं संस्मरन् मुहुः॥
प्राक्तनेऽह्नि शनौ चैव तैलाभ्यङ्गं विवर्ज्जयेत्।
वत्सरान्ते कारयित्वा काञ्चनं कमलोत्तमं॥
पुरुषन्तु यथा शक्त्या कारयेद्द्विभुजन्तथा(२)।
सुवर्णशृङ्गीं कपिलां महार्घ्यां
रौप्यैः खुरैः कांस्यदोहां सवत्सां।

(१) वेदात्मा सर्व्वतो मुख इति पाठान्तरं।
(२) कारयेच्च द्विजोत्तममिति वा पाठः।

पूर्णं गुडस्योपरि ताम्रपात्रे
निधाय पद्मं पुरतश्च दद्यात्॥
संपूज्य रक्ताम्बरमाल्यधूपै:
द्विजश्च रक्तैरथवा पिशङ्गैः।
प्रचालयित्वा पुरुषं सपद्मं
दद्यादनेकव्रतदानकाय॥
अव्यङ्गरूपाय जितेन्द्रियाय
कुटुम्बिने शुद्धमनुव्रताय।
नमोनमः पापविनाशनाय
विश्वात्मने सप्ततुरङ्गमाय॥
सामर्ग्यजुर्धामनिधे विधात्रे
भवाब्धिपोताय जगत् सवित्रे।
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः
त्रिलोकनाथाय नमो नमस्ते॥

इत्यनेन विधानेन वर्षमेकन्तु यो नरः॥
नक्तमादित्यवारेण कुर्य्यात्स निरुजो भवेत्।
धनधान्यसमायुक्तः पुत्र-पौत्रसमन्वितः॥
मर्त्त्ये स्थित्वा चिरं कालं सूर्य्यलोकमवाप्नुयात्।

कर्म्मसंचयमवाप्य भूपति-
र्दुःख-शोक-भय-रोगवर्ज्जितः।
द्वीपसप्तकपतिः पुनः पुन-
र्धर्म्ममूर्त्तिरमितौजसा युतः॥

या च देवगुरुभक्तितत्परा
वेदमूर्त्तिदिननक्तमाचरेत्।
सापि लोकममरेशपूजिता
याति नारद रवेर्न संशयः॥

वेदमर्त्तिः सूर्य्यस्तद्दिने नक्तमित्यर्थः।

यः पठेदथ शृणोति वा नरः
पश्यतीदमथवानुमोदयेत्।
सोपि शक्रभवने दिवौकसैः
कल्पकोटिशतमेव मोदते॥

इति मत्स्यपुराणोक्तं सूर्य्यनक्तव्रतं।

---

## अथ वेश्याव्रतं।

---

युधिष्ठिर उवाच।

वर्णाश्रमाणां प्रभवः पुराणेषु मया श्रुतः।
पण्यस्त्रीणां समाचारं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥
का ह्यासां देवता कृष्ण किं व्रतं किमुपोषितं॥
केन धर्मेण चैवैताः स्वर्गमाप्स्यन्त्यनुत्तमं।

कृष्ण उवाच।

मम पत्नीसहस्राणि शतं पाण्डव षोडश।
रूपौदार्य्यगुणोपेता मन्मथायतनाः शुभाः॥
ताभिर्व्वसन्तसमये कोकिलालिकुलाकुले।
पुष्पितोपवनोत्फुल्लकल्हारसरसस्तटे॥

निह्नरापानगोष्ठीभिरथदानैरलङ्कृतः ।
कुसुमानयनः श्रीमान् मालतीकृतशेखरः ॥
गच्छेत् समीपमेतासां साम्बः पुरपुरञ्जयः ।
साक्षात् कन्दर्परूपेण सर्व्वाभरणभूषितः ॥
अनङ्गशरतप्ताभिः साभिलाषमवेक्षितः ।
प्रवृद्धो मन्मथस्तासां सर्व्वाङ्गक्षोभदायकः ॥
तदीक्षितं मया सर्व्वं विकारं ध्यानचक्षुषा ।
अशपं रुषितः सर्व्वा हरिष्यन्तीह दस्यवः ॥
मयि स्वर्गमनुप्राप्ते भवतीः काममोहिताः ।
एतद्वाक्यमुपाश्रुत्य वाष्पपर्य्याकुलेक्षणः ॥
मामूचुर्वद गोविन्द कथमेतद्भविष्यति ।
भर्त्तारं जगतामीशं त्यक्त्वा यामो परान्तिकं(१) ॥
दिव्यानुभावञ्च पुरीं रत्नवन्ति गृहाणि च ।
द्वारकावासिनः सर्व्वे देवरूपाः कुमारकाः ।
भगवन् सर्व्वलोकस्य कथं भोगं भजाम्यहं ॥
दासभावमनुप्राप्ता भविष्यामः कथं पुनः ।
को धर्म्मः कः समाचारः कथं वृत्तिर्भविष्यति ॥
तथा लालप्यमानास्ता वाष्पपर्य्याकुलेक्षणाः ।
मया प्रोक्ता युवतयः सन्तापं त्यजतामिमं ॥

पद्मपुराणे दाल्भ्य गोपी सम्वादे ।

दाल्भ्य उवाच ।

जलक्रीड़ाविहारेषु पुरा सरसि मानसे ।

---

(१) तं वान्तमापराणि तमिति क्वचित्पाठः ।

भवतीनाञ्च सर्व्वासां नारदोऽभ्यासमागतः॥
हुताशनसुताः सर्व्वा भवत्योऽप्सरसः पुरा।
अप्रणम्यावलेपेन परिपृष्टः स योगवित्॥
कथं नारायणोऽस्माकं भर्त्ता स्यादित्युपादिश।
तस्माद्वरप्रदानञ्च शापश्चायमभूत्पुरा॥
यस्माद्देषा प्रधानैव मधमाधव मासयोः।
सुवर्णोपस्करोत्सर्गं द्वादशी शुक्लपक्षतः।
भर्त्ता नारायणो नूनं भविष्यत्यन्यजन्मनि॥
यदकृत्वा प्रणामं मे रूपसौभाग्यमत्सरात्।
परिपृष्टोऽस्मि ते नाथवियोगो वो भविष्यति॥
चौरैरपहृताः सर्व्वा वेश्या त्वं समवाप्स्यथ।
एवं नारदशापेन केशवस्य च धीमतः॥
वेश्यात्वमागताः सर्व्वा भवत्यः शापमोहिताः।
इदानीमपि यद्वच्मे तच्छृणुध्वं वराङ्गनाः।
पुरा देवासुरे युद्धे हतेषु शतशः सुरैः॥
देवतासुरसैन्येषु राक्षसेषु ततस्ततः।
तेषां नारी सहस्रेषु शतसोऽथ सहस्रशः(१)॥
परिनीतानि यानि स्युः बलादुक्तानि यानि च।
तानि सर्व्वाणि देवेश प्रोवाच वदताम्बर॥
वेश्याधर्मेण वर्त्तध्वमधुना नृपमन्दिरे।
भक्तिमत्यो वरारोहास्तथा देवकुलेषु च॥
राजानः स्वामिनस्तुल्यं ब्राह्मणाश्च बहुश्रुताः।

(१) तेषां शतसहस्राणि शतान्यपि च योषितामिति वा पाठः।

तेषां गृहेषु तिष्ठध्वं सुतकं वापि तत्समं ॥
भविष्यति च सौभाग्यं सर्व्वासां मयि भक्तितः।
न कदाचिद्रतिः कार्य्या पुंसि धनविवर्जिते ॥
अनुमानाः प्रसाद्यश्च शुल्कदो देववत्सदा।
सुरूपो वा विरूपो वा द्रव्यं तत्र प्रयोजनं॥
द्रव्योपहार्थमेवात्र सर्व्वदम्भविवर्जितं।
यः कश्चित् मुनिकृष्टोपि गृहमेष्यति वः सदा॥
निश्छद्मत्वेन सेव्यो वः स एवान्यत्र दाम्भिकान्।
द्वेषाचारो न कर्त्तव्यः स्वामिना सह कर्हिचित्॥
रूपयौवनदर्पेण धनलोभेन वा सदा।
कामश्च कान्ते या काचित् व्यभिचारं करोति च॥
स्वामिना सह पापिष्टा पापिष्टो यात्यधोगतिं।
देवतानां पितॄणाञ्च पुण्येह्नि समुपस्थिते॥
गो भू-हिरण्य-दानानि(१) प्रदेयानि च शक्तितः।
ब्राह्मणेभ्यो वरारोहा कार्य्याणि सुव्रतानि च॥
अथाप्यन्यत् व्रतं सम्यक् उपदेक्ष्यामि तत्त्वतः।
अविचारेण सर्व्वाभिरनुष्ठेयञ्च तत्पुनः॥
संसारोत्तरणायालमेतद्वेदविदो विदुः।
यदा सूर्य्यदिने हस्तः पुष्योवाथ पुनर्व्वसुः॥
भवेत्सर्व्वौषधीस्नानं सम्यङ्नारी समाचरेत्।
तदा पञ्चशरव्यापिसन्निधानत्वमिष्यति॥

(१) धान्यानीति क्वचित् पाठः।

अर्चयेत् पुण्डरीकाक्षमनङ्गस्यापिकीर्त्तनं ।
कामाय पादौ संपूज्य जरूवै मन्मथाय च(१) ॥
मेढ्रे कन्दर्पनिधये कटिं प्रीतिपतयेनमः ।
नाभिं सौख्यसमुद्राय वामनाय तथोदरं ॥
हृदयं हृदयेशाय स्तनावाह्लादकारिणे ।
उत्कण्ठायेति वै कण्ठमास्यमानन्दजाय च ॥
वामांशं पुष्पचापाय पुष्पवानाय दक्षिणं ॥
ललाटं पुष्पवाणेति शिरः पञ्चशराय वै ।
नमोऽनङ्गाय वै मौलिं विलोमायेति जङ्घयोः(२) ॥
सर्व्वात्मने शिरःपूज्यं देवदेवस्य पूजयेत् ।
नमः श्रीपतये तार्च्यध्वजाङ्कुशधराय च ॥
गदिने पद्महस्ताय(३) शङ्खिने चक्रपाणये ।
नमोनारायणायेति कामदेवात्मने नमः ॥
नमः शान्त्यै नमस्तुष्टै, नमो रत्यै नमः श्रियै(४) ।
नमः स्तुष्टै, नमपुष्टै, नमः सर्व्वप्रदेति च ॥
एवं संपूज्य गोविन्दमनङ्गात्मकमीश्वरं ।
गन्धैर्म्माल्यैस्तथा धूपैर्नैवेद्यैर्नवभामिनि(५) ॥
तत आहूयः धर्मज्ञं ब्राह्मणं वेद पारगं ।

---

(१) जङ्के व्यामोहकारिणे इति क्वचित् पाठः ।

(२) ध्वजमिति वा पाठः ।

(३) पीतवस्त्राय इति वा पाठः ।

(४) नमः शक्त्यै नमः शान्त्यै इति क्वचित् पाठः ।

(५) शोभने इति वा पाठः ।

अथ्यंगावयवं पूज्य गन्धापुष्पादिभिस्तथा(१)॥
शालेयतण्डुलप्रस्थं घृतपात्रेण संयुतं।
तस्माद्विप्राय दातव्यं हृच्छयः प्रीयतामिति।
यथेच्छाहारभुग्भक्तं तमेव द्विजसत्तमं॥
रत्यर्थं कामदेवोयमिति चित्तेन धार्य्यतां(२)।
यद्यदिच्छति विप्रेन्द्रस्तत्तत् कुर्य्यात् विलासिनी॥
सर्व्वाभावेन चात्मानमर्पयेत् स्मितभाषिणी।
एवमादित्यवारेण सदा तद्व्रतमाचरेत(३)॥
तण्डुलप्रस्थदानादियावन्मासास्त्रयोदश।
ततस्त्रयोदशे मासि संप्राप्ते तस्य कामिनी॥
विप्रस्योपस्करैर्युक्तां शय्यां दद्याद्विलक्षणां(४)।
सोपधानकविश्रामं स्वास्तरावरणां शुभां॥
दीपकोपानहच्छत्रपादुकासनसंयुतां।
सपत्नीकमलंकृत्यहेमसूत्रांगुलीयकैः॥
सूक्ष्मवस्त्रैः सकटकः धूपमाल्यानुलेपनैः(५)।
कामदेवं सपत्नीकं गुडकुम्भोपरिस्थितं॥
कामदेवरूपन्तु मदनत्रयोदशीव्रतोक्तं विज्ञेयं।
ताम्रपात्रासनगतं हैमनेत्रपटावृतं।

(१) पुष्पतण्डुल चन्दनैरिति वा पाठः।
(२) यथाचित्तेवधारयेदिति क्वचित्पाठः।
(३) सर्व्वमेतत् समाचरेदिति वा पाठः।
(४) विप्रभ्योस्करैर्युक्तां शय्यांदद्याद्विचक्षण इति वा पाठः।
(५) गन्धमाल्यानुलेपनैरिति क्वचित् पाठः।

सुकांस्यभाजनोपेतमिक्षुदण्डसमन्वितं ॥
दद्याद्यथोक्तविधिना (१) तथैकां गां पयस्विनीं।
यथान्तरं न पश्यामि कामकेशवयोः सदा ॥
तथैव सर्व्वकामाप्तिरस्तु विष्णोः सदा मम।
यथा न कमला देहात् प्रयाति मम केशवे ॥
तथा ममापि देवेश शरीरस्थं पतिं कुरु(२) ॥
तथैव काञ्चनं देवं प्रतिगृह्य द्विजोत्तमः।
कोदादिति पठेन्मन्त्रं ध्यायंश्चेतसि माधवं ॥

कोदादिति, यजुर्व्वेदशाखाप्रसिद्धोमन्त्रः।

ततः प्रदक्षिणीकृत्य विसृज्य द्विजपुङ्गवं।
शय्यासनादिकं सर्व्वं ब्राह्मणस्य गृहं नयेत्।
ततः प्रभृति योन्योपि(३) रत्यर्थी गृहमागतः ॥
स सम्यक् सूर्य्यवारेण स सुपूज्यो यथेच्छया (४)।
एवं त्रयोदशं यावत् मासमेकं द्विजोत्तम ॥
तर्पयीत यथा कामं प्रोषितो रविमन्दिरे।
तदनुज्ञां निषेवेत यावदस्यागमो भवेत्।
एवमेकं द्विजं शान्तमाचारज्ञं विचक्षणं ॥
संपूजयेच्चतुःप्राज्ञमपरं वरदाज्ञया।
आत्मनोपि यदा विघ्नं गर्भसूतकजन्मजं(५) ॥

(१) यथोक्तमन्त्रेणेति क्वचित पाठः।
(२) वशगं स्वं पतिं कुर्व्विति क्वचित् पाठः।
(३) यो विप्रे इति वा पाठः।
(४) समान्यः सूर्य्यवारे च स्नानशय्यादिभोजनैरिति वा पाठः।
(५) गर्भसूतकराजकमिति वा पाठः।

दैवं वा मानुषं वास्यादुपरागेण वा पुनः।
लक्ष्मीर्वियुज्यते देव न कदाचिद्यथा तव ॥
शय्या ममापि शून्यास्तु तथैव मधुसूदन।
गीतवादित्रनिर्घोषं देवदेवस्य कारयेत् ॥
एतद्धि कथितं सम्यग्भवतीनां विशेषतः।
सुधर्म्मोयं परो भावो वेश्यानामिह सर्व्वथा ॥
पुरुहूतेन यत् प्रोक्तं दानवेषु पुरा मया।
तदिदं साम्प्रतं सर्व्वं भवतीष्वपि युज्यते ॥
सर्व्वपापप्रशमनमनन्तफलदायकं।
साचारानष्ट दश वा(१) यथा शक्त्या प्रपूजयेत् ॥
एषप्रोक्तं मया राजन् दानवेषु ततो मया।
तदिदञ्च व्रतं सर्व्वं वेश्यानाञ्च प्रकाशितं ॥
पुराणं धर्म्मसर्वस्वं वेश्याजनसुखप्रदं।

करोति वाशेषमखण्डमेतत्
कल्याणिनी माधवलोक संस्था।
सा पूजिता देवगणैरशेषै-
रानन्दकृत्स्थान मुपैति विष्णोः ॥

इति श्रीभविष्योत्तरे कामदाने वेश्याव्रतं नाम(२)।

———000@000———

(१) अष्टपञ्चाशदिति वा पाठः।

(२) इति पद्मपुराणोक्तं वेश्याव्रतमिति वा पाठः।

सूत उवाच ।

मेरुपार्श्वे भद्रपीठे सुखासीनं जगद्गुरुं ।
कश्यपं सृष्टिकर्त्तारं तापसं शुद्धमानसं ॥
नारदो वैष्णवश्रेष्ठस्त्रैलोक्यभ्रमणप्रियः ।
कदाचिद्दुर्दशां प्राप्य कश्यपं शरणं ययौ ॥

नारद उवाच ।

देव-दानव-गन्धर्व्व-ऋषि-पन्नग-मानवाः ।
स्रष्टा त्वं सर्वभूतानां धर्म्माधर्मौ हि वेत्सि च ॥
दुष्टग्रहाभिभूतानां दुर्दशाहतचेतसां ।
उपायं वद तेषां त्वं शरणागतवत्सल ॥

कश्यप उवाच ।

तां छेत्तुं ब्रूहि विप्रेन्द्र केन मुक्ता भवन्ति ते ।
साधु पृष्टं महाभाग जगदानन्दकारकः ॥
वक्ष्ये सौरव्रतं पुण्यं दुर्दशान्तकरं परं ।
दशाकरं हि भूतानां मनोरथकरं परं ॥
भानुवारे सिते पक्षे दशम्यां चैव नारद ।
प्रातः कालेऽथ मध्याह्ने स्नानं कुर्य्याद्यथाविधि ॥
भानुर्ध्यायेत्त्रिमूर्त्तिं हि सर्व्वदैन्यविनाशनं ।
सूर्य्यपूजा प्रकर्त्तव्या तथा गन्धानुलेपनैः ॥
उपचारैः षोड़शभिर्नैवेद्यैस्तु फलान्वितैः ।
पूजयेद्दुर्दशां तत्र लिखित्वा दशपुत्रिकाः ॥
दुर्मुखा दीनवदना मलिनाऽसत्यवादिनी ।

सुवुद्धिनाशिनी हिंस्रा वहुचिन्ताप्रदायिनी॥
उच्चाटकारिणी नाम दुश्चरित्रविरोधिनी।
एताः पूज्याः कृष्णवर्णा भक्तियुक्तेन चेतसा॥
आदौ पूज्या प्रयत्नेन गोमयेनोपलेपयेत्।
नित्यं पापकरा पापा देवद्विजविरोधिनी॥
गच्छ त्वं दुर्दशे देवि नित्यं शत्रुविवर्द्धिनि।
अनेन प्रार्थये लोहि प्रयत्नेन विसर्जयेत्॥
ततः पूजा प्रकर्त्तव्या डोररूपे च भास्करे।
दशग्रन्थिसमायुक्तं दशसूत्रोपशोभितं॥
डोरकं तु प्रतिष्ठाप्य पूजां कृत्वा करे न्यसेत्।
आवाहनादिदानान्तं पूजनं कारयेत्ततः॥
तत्र देवं क्षमाप्याथ दशापूजां समारभेत्।
भूमिभागे च पीठे वा लिखित्वा दशपुत्रिकाः।
सुवुद्धिदा सुखकरी सर्व्वसम्पत्तिदायिनी।
इत्यष्टभोगप्रदा लक्ष्मीः कीर्त्तिदा दुःखनाशिनी॥
वुद्धिदात्री सुखकरा सर्व्वसम्पत्तिदायिनी।
पुत्रक्षेम्या च विजया दशमी धर्म्मदायिनी॥
एभिस्तु नामभिर्मन्त्रैः पूजनीयाः पृथक् पृथक्।
प्रतिष्ठापूजनं कार्य्यन्नैवेद्यञ्च यथा विधि॥
विशुद्धवसनां देवीं सर्व्वाभरणभूषितां।
ध्यायेद्दशदशादेवीं वरदाभयदायिनीं॥
इति ध्यानं प्रकुर्व्वीत दशायाः प्राप्तये रतः।

फलस्तु दशसंख्याकैर्भुञ्जीयात्तैलवर्ज्जितं ॥
एवं व्रतं प्रकर्त्तव्यं दशाप्राप्तिकरं परं ।

नारद उवाच ।

कश्यप त्वत्प्रसादेन श्रुतं हि व्रतमुत्तमं ।
दशाव्रतं कृतं केन कस्य तुष्टो हि भास्करः ॥

कश्यप उवाच ।

पुरा तु नलभूपालश्चक्रवर्त्तिषु धार्म्मिकः ।
राज्यभ्रष्टो दशाहीनो द्यूतेनैव हि नारद ॥
तेनापि पूजितः सूर्य्यो व्रतं कृत्वा प्रयत्नतः ।
दुर्द्दशां नाशयित्वा तु राज्यं प्राप्तं स्त्रिया सह ।
ततश्च द्वापरे विप्राः पीड़या दुर्द्दशान्विताः ।
भ्रममाणा वने घोरे प्राप्ताः सत्यवतीसुतं ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

राज्यभ्रष्टो दशाहीनो राजाहं केन कर्म्मणा ।
इदानीं मे हितं ब्रूहि राज्यप्राप्तिकरं परं ॥
इति श्रुत्वा मुनिश्रेष्ठो दृष्ट्वापि च दशाकरं ।
व्रतोपदेशनं चास्य चकार मुनिपुङ्गवः ॥
अस्य व्रतस्य सामर्थ्यात् प्राप्तं राज्यमकण्टकं ।
व्रतं कृत्वा च विधिना चतुर्भिर्भ्रातृभिः सह ॥
श्रुत्वेदं नारदो वाक्यं पुनः पप्रच्छ कश्यपं ।

नारद उवाच ।

केन कर्म्मविपाकेन दुर्द्दशाभिहतो नरः ।
जायते मुनिशार्दूल तत्त्वं मे वक्तुमर्हसि ॥

कश्यप उवाच।

शृणु नारद तत्त्वज्ञ दुर्द्दशा प्राप्यते नरैः।
तुष-भस्मा-स्थि-मुसलं कदाचिल्लङ्घयेन्न तु॥
कुमारी रजकी वृद्धा पशुयोनिरताश्च ये।
अयोनिगुदगामी च ब्राह्मणी गमनेन च॥
सन्ध्यासु पर्व्वसमये रमते च रजस्वलां।
पितृमातृपरित्यागी स्वामिनं रणसङ्कटे॥
त्यजेत् स्वधर्म्मपत्नीं यो दुर्द्दशा प्राप्यते नरैः।
तस्मात्सर्व्वप्रयत्नेन नान्यमार्गेण वर्त्तयेत्॥
तस्मात्तु तद्व्रतं कार्य्यं सर्व्वकामार्थसिद्धये।

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे कश्यपनारदसम्बादे दशादित्यव्रतं।

———oo@oo———

सौरधर्मे मान्धातृवशिष्ठ संवादे मान्धातोवाच।

भगवन् ज्ञानिनां श्रेष्ठ कथयस्व प्रसादतः।
त्वद्वक्त्राच्छ्रोतुमिच्छामि व्रतं पापप्रणाशनम्॥
सर्वकामप्रदञ्चैव सर्व्वामयविनाशनं।
पूजार्घ्यदानसहितं नैवेद्यं प्राशनाचितं॥
एतत् कथय सर्व्वं त्वं प्रसन्नो यदि मे प्रभो।

वसिष्ठ उवाच।

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि यद्गुह्यं व्रतमुत्तमं।
सर्व्वकामप्रदं पुंसां कुष्ठादिव्याधिनाशनं।
भानोस्तुष्टिकरं राजन् भुक्तिमुक्तिप्रदायकं॥
यस्योदये सुरगणा मुनिसङ्घाः सचारणाः।

देव दानव-यचाश्च कुर्व्वन्ति सतताचनम् ॥
यस्योदये तु सर्व्वेषां प्रबोधो नृपसत्तम ।
तस्य देवस्य वच्यामि व्रतं राजन् सविस्तरं ॥
पूजार्घ्यप्राशनं दानं नैवेद्यं शृणु तत्वतः ।
सर्व्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्व्वयज्ञेषु यत्फलं ॥
सर्व्वदानेन तपसा यत्पुण्यं समवाप्यते ।
प्रातःस्नानेन यत्पुण्यं यत्पुण्यं रविवासरे ॥
मार्गशीर्षादिमासेषु द्वादशस्वपि भूपते ।
सूर्य्यव्रतं करिष्यामि यावद्वर्षं दिवाकर ॥
व्रतं संपूर्णतां यातु त्वत्प्रसादात् प्रभाकर ।

नियममन्त्रः ।

ततः प्रातः समुत्थाय नद्यादौ विमले जले ।
स्नात्वा सन्तर्पयेद्देवान् पितॄंश्च वसुधाधिप ॥
उपलिप्य शुचौ देशे सूर्य्यं तत्र समर्चयेत् ।
संलिखेत्तत्र पद्मन्तु द्वादशारं सकर्णिकं ॥
ताम्रपात्रे तथा नद्या रक्तचन्दनवारिणा ।
तत्र संपूजयेद्देवं दिननाथं सुरेश्वरं ॥
मासे मासे च ये राजन् विशेषास्तान् शृणुष्व वै ।
मार्गशीर्षे यजेन्मित्रं नालिकेरार्घ्यमुत्तमं ॥
नैवेद्यं तण्डुला देयाः साज्याः सगुड़ाः स्मृताः ।
पत्नत्रयं तुलस्यास्तु प्राश्य तिष्ठेज्जितेन्द्रियः ॥
दद्याद्विप्राय भोज्यन्तु दक्षिणासहितं नृप ।
पौषे विष्णुं समभ्यर्च्य नैवेद्यं कृशरं तथा ॥

वीजपूरेण चैवार्घ्यं प्राश्यं घृतपलत्रयं।
दद्यात् घृतन्तु विप्राय भोजनेन समन्वितं॥
माघे वरुणनामानं संपूज्य सतिलं गुडं।
भोजनं दक्षिणां दद्यान्नैवेद्यं कदलीफलं॥
अर्घ्यं तेनैव दत्त्वा तु प्राश्या मुष्टित्रयन्तिलाः।
फाल्गुने सूर्य्यमभ्यर्च्य जम्बीरार्घ्यं निवेदयेत्॥
पलत्रयं दधि प्राश्यं नैवेद्यं सघृतं दधि।
दधितण्डुलदानञ्च भोजने समुदाहृतं॥
चैत्रे भानुन्तु संपूज्य नैवेद्यं घृतपूरिका।
फलं तु दाड़िमं प्रोक्तं प्राश्यं दुग्धपलत्रयं॥
विप्राय भोजनं दद्यात् मिष्टान्नन्तु सदक्षिणं।
वैशाखे तपनः प्रोक्तो माषान्नं सघृतं स्मृतं॥
अर्घ्यं दद्यात्तु द्राक्षाभिः प्राशनं गोमयस्य तु।
कुर्यान्मासानुमासन्तु सघृतं वै सदक्षिणं॥
इन्द्रं ज्यैष्ठे यजेद्राजन् नैवेद्यन्तु करम्भकम्।
अर्घ्यञ्च सहकारेण प्राश्यं जलाञ्जलित्रयं॥
दध्योदनसमायुक्तं भोजनं ब्राह्मणाय तु।
आषाढ़े रविमभ्यर्च्य पूजा विभीतकन्तथा॥
विप्राय भोजनं दद्यात् प्राशयेत् मरिचत्रयं।
गभस्तिमांश्छ्रावणेऽर्च्य स्तपुषाफलमेव च॥
मुष्टित्रयञ्च शक्तूनां प्राशने समुदाहृतं।
विप्राय भोजनं दद्याद्दक्षिणा सहितं नृप॥
यदा भाद्रपदे पूज्यः कुष्माण्डं तण्डुलात्मकं।

गोमूत्रं प्राशने युक्तं प्राह्मणे भोजनं तथा ॥
हिरण्यरेता आश्विने च नैवेद्यं शर्करा स्मृतं ।
दाडिमे नार्घ्यदानन्तु प्राश्यं खण्डपलत्रयं ॥
विप्राय परया भक्त्या भोजने शालिशर्करा ।
कार्त्तिके चैवरम्भायाः प्राशने फलमेव च ॥
पायसञ्चैव नैवेद्यं पायसं प्राशने स्मृतं ।
एवं व्रतं समाप्यैतत्तत उद्यापनं चरेत् ॥
ततो गुरुगृहं गत्वा गृह्णीयाच्चरणावुभौ ।
उद्यापनं करिष्येह मागच्छ मम वेश्मनि ॥
माषकेन सुवर्णस्य प्रतिमाङ्कारयेद्रवेः ।
रथो रूप्यमयः कार्य्यः सर्व्वोपस्करसंयुतः ॥
कृत्वा द्वादशपत्रन्तु कमलं रक्ततण्डुलैः ।
स्थापयेद्व्रणं कुम्भं पञ्चरत्नसमन्वितं ॥
तस्योपरि न्यसेत्पात्रं ताम्रं तण्डुलपूरितं ।
रक्तवस्त्रसमाच्छन्नं पुष्पमालाभिवेष्टितं ॥
पञ्चामृतेन स्नापयेत मत्पुत्तारणपूर्व्वकं ।
प्रतिष्ठाप्य ततः कृत्वा पूजां देवस्य कारयेत् ॥
चन्दनैः कुसुमैरन्यैर्विविधैः कालसम्भवैः ।
अखण्डपट्टवस्त्रैश्च कमण्डलुमुपानहौ ॥
वर्द्धनीत्रितयं तत्र स्थापयेद्देवसन्निधौ ।
संज्ञया वस्त्रयुग्मन्तु कौसुम्भन्तु महीपते ।
प्रतिपदेषु संपूज्यः सूर्य्यद्वादशनामभिः ॥
मित्रो विष्णुः सवरुणः सूर्यो भानुस्तथैव च ।

तपनेन्द्रो रविः पूज्यो गभस्तिः शमनः स्तथा ॥
हिरण्यरेता दिनकृत् पूज्य एते प्रयत्नतः।
मध्ये सहस्रकिरणः संपूज्य संज्ञया सह ॥
पूगीफलैर्धूपदीपैर्वस्त्र-नैवेद्यसंयुतैः।
नारिकेलेन चैवार्घ्यं दद्याद्देवस्य भक्तितः ॥
मन्त्रेणानेन राजेन्द्र व्रतस्य परिपूर्त्तये।
नमः सहस्रकिरण सर्व्वव्याधिविनाशन ॥
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं संज्ञया सहितो रवे।

अर्घ्यमन्त्रः।

आरात्रिकं ततः कृत्वा पूजा-सङ्कल्पमेव च।
संकल्पञ्च ततः श्राद्धं कार्य्यं वै सूर्य्यदैवतं॥
ब्राह्मणान् भोजयेद्भक्त्या मिष्टान्नैर्द्वादश प्रभो।
दम्पत्योर्भोजनं देयं परमान्नसमन्वितं ॥
ततस्तु दक्षिणां दद्यात् समभ्यर्च्य स्रगादिभिः।
उपहारादितत्सर्व्वं गुरवे प्रतिपादयेत् ॥
गुरुं तत्रैव सन्तोष्य ब्राह्मणांश्च विसर्ज्जयेत्।
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं विधिहीनन्तु यत्कृतं ॥
तत्सर्व्वं पूर्णतां यातु भूमिदेवप्रसादतः।
अनुव्रज्य गुरुं विप्रान् भोजनन्तु समाचरेत् ॥
वृद्धांश्च बन्धुभिः सार्द्धं नत्वा देवं दिवाकरं।
एवं यः कुरुते मर्त्त्यो वित्तसाठ्यविवर्जितः ॥
सूर्य्यव्रतं महाराज तस्य पुण्यफलं शृणु।
ब्राह्मणो लभते विद्यां क्षत्रियो राज्यमाप्नुयात् ॥

वैश्यो धनसमृद्धिञ्च शूद्रः सुखमवाप्नुयात् ।
अपुत्रो लभते पुत्रं कुमारी लभते पतिं ॥
रोगार्त्तो मुच्यते रोगात् बद्धो मुच्येत बन्धनात् ।
यं यञ्चिन्तयते कामं स तस्य भवति ध्रुवं ॥
य इदं शृणुयाद्भक्त्या ह्येकचित्तो नृपोत्तमः ।
सर्व्वान् कामानवाप्नोति प्रसादाद्भास्वतो नृप ॥

## इति सौरधर्म्मोक्तं सूर्य्यव्रतं समाप्तं ।

———000———

### अथ सोमवारव्रतानि ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि रहस्यं तदनुत्तमं(१) ।
येन लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिःकान्तिश्च जायते ॥
तद्वच्चित्रासु संगृह्य सोमवारं विचक्षणः ।
नक्तोक्तविधिना सर्व्वं कुर्य्यात् पूजादिकं विधोः ॥
सप्तमे तु तत प्राप्ते दत्वा ब्राह्मणभोजनं ।
कांस्यपात्रे तु संस्थाप्य सोमं रजतसम्भवं ॥
सोमरूपन्तु चतुर्द्दशीस्थमहाराजव्रतोक्तं वेदितव्यं ।
पात्रे कृत्वा सोमराजं(२) श्वेतवस्त्रैः प्रपूजितं ॥
पादुको-पानह-छत्र-भाजना-सनसंयुतं ।
होमं घृततिलैः कुर्य्यात्सोमनाम्ना तु मन्त्रवित् ॥
समिधोष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिरेव च ।
होतव्या मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना चैव घृतेन तु ॥

---

(१) ह्येतदुत्तममिति क्वचित् पाठः ।

(२) श्वेतवस्त्रयुगच्छन्नमिति क्वचित पाठः ।

पलाशसमिधो ज्ञातव्याः।
दध्यन्नशिखरे कृत्वा ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥
मन्त्रेणानेन राजेन्द्र सम्यग्भक्त्या समन्वितः।
महादेव जटावल्ली पुष्पगोक्षीरपाण्डुर ॥
सोम सौम्यो भवास्माकं सर्व्वदा ते नमोनमः।
एवं कृते महासौम्य सोमतुष्टिकरी भवेत् ॥
सन्तुष्टेऽत्रिसुते तस्य सर्व्वे सन्तु ग्रहा ग्रहाः।

## इति भविष्योत्तरोक्त चन्द्रनक्षत्रशान्तिः।

———000———

ईश्वर उवाच।

अथ व्रतविधानं हि कथयामि समासतः।
यथा चरन्ति मनुजाः सिद्धसर्व्वार्थं कामदं।
व्युत्क्रान्ते(१) कार्त्तिके मासि शुक्लमार्गदिने भवेत् ॥
प्रथमः सोमवारस्तु तं नक्तेन प्रपूजयेत्।
यदा श्रद्धा भवेत्कर्त्तुः सोमवारव्रतं प्रति ॥
तदा सर्व्वं कारयित्वा ब्राह्मणाद्यैः समारभेत्।
मार्गमासे(२) तथा चैत्रे गृह्णीयात् सोमवारकं ॥
यस्मिन्मासे प्रारभेत तस्मिन्मासे प्रपारयेत्(३)।
सुस्नातस्तु शुचिर्भूत्वा शुक्लाम्बरधरो नरः(४) ॥
काम-क्रोधाद्य-हङ्कार-द्वेष-शून्यविवर्जितः।

---

(१) प्रक्रान्ते इति क्वचित् पाठः।

(२) सर्व्वं शुक्लदिने भावदिति क्वचित् पाठः।

(३) माघे मासीति क्वचित् पाठः।

(४) तस्मिन् तत्प्रारभेद्व्रतमिति क्वचित् पाठः।

आहरेत् श्वेतपुष्पाणि मल्लिकामालतीस्तथा ।
श्वेतपद्मानि दिव्यानि चम्पकं विल्वपाटलाः ॥
कुन्दमन्दारजैः पुष्पैः पुन्नागशतपत्रकैः ।
चर्चयेन्मलयजेनाथ दिव्यधूपेन धूपयेत् ॥
अन्नानि यान्यभीष्टानि तानि सर्व्वाणि दापयेत् ।
पूजयेद्भक्तिभावेन सोमनाथं जगत्पतिं ॥
कामिकेन तु मन्त्रेण(१) प्रायकेन महेश्वरं ।
निवेदयेत सर्वमेव शृणु मन्त्रवरं हितं ॥
ओं नमो दशभुजाय त्रिनेत्राय पञ्चवदनाय शूलिने ।
श्वेतवृषभरूढ़ाय सर्व्वाभरण भूषिते(२) ॥
उमादेहार्द्धसंस्थाय नमस्ते सर्वमूर्त्तये ।
अनेनैव तु मन्त्रेण पूजाहोमन्तु कारयेत् ॥
सिध्यन्ति सर्वकार्य्याणि मनसा चिन्तितानि च ।
पूजयेन्नक्तवेलायामृक्षाणां दर्शनेन तु ॥
प्रदाय भोजनं पूर्व्वं ब्राह्मणाय सुभक्तितः ।
संयुक्तशाकताम्बूल-दक्षिणाभिस्तथैव च ॥
एतद्विधिसमायुक्तो रागद्वेषविवर्जितः(३) ॥
एकभक्तस्य यत्पुण्यं कथयामि समासतः ।
शतजन्मार्जितं पापमसह्यं(४) देवदानवैः ॥

---

(१) कामिकेन सुमन्त्रेणेति वा पाठः ।
(२) श्वेताभरणभूषिते इतिकश्चित् पुस्तके पाठः ।
(३) मद्भक्तोद्वेषवर्जित इति कचित् पाठः ।
(४) दानममेद्यमिति क्वचित् पाठः ।

नश्यते ह्येकभक्तेन नात्रकार्य्या विचारणा।
मासस्यैकस्य यत्पुण्यं शृणु तत्वेन(१) सुन्दरि॥
अभाग्यं जायते भाग्यं दुर्भगं सुभगं भवेत्।
पुत्रार्थी लभते पुत्रान् दरिद्रो धनवान् भवेत्॥
गृहे तस्य(२) वरारोहे सौख्यानि विविधानि च।
रुद्रांशो धनभागी स्या(३)द्विघ्नहीनः क्षितिञ्चरेत्॥
अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः।
स्वर्गे भुक्त्वाखिलान् भोगान् जायते मानवोत्तमः॥
नक्तानि सोमवारस्य पौषमासे महेश्वरि।
तेषां पुण्यफलं वक्ष्ये संक्षेपेण तवाग्रतः॥
अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलं शतगुणं भवेत्।
तत्फलं लभते देवि पूर्वद्वेषसमन्वितः॥
माघस्यैव तु मासस्य सोमवारेण पूजयेत्।
स्नापयेन्मधुदुग्धाभ्यां तथैवेक्षुरसेन तु॥
द्विजहत्यादिपापानि तानि सर्व्वाणि नाशयेत्।
विशुद्धस्तेजसा युक्तो जायतेत्यन्तनिर्म्मलः॥
बहुस्वर्णस्य यत्पुण्यं दुर्लभं त्रिदशैरिह।
लभते नात्र सन्देहो ममभक्तिप्रचोदितः॥
फाल्गुने कथयिष्यामि सोमवारफलं शुभं।
कृते नक्ते तु कल्याणि गुणास्ते विस्तरेण तु॥
चतुर्वेदसहस्राणि शतानि दशपञ्च च।

(१) माहात्म्यं शृणु यत्नेनेति वा पाठः।
(२) गृहस्थमिति क्वचित् पाठः।
(३) धर्म्ममार्गस्थो इति क्वचित् पाठः।

यज्ञानां सर्वशास्त्रज्ञैर्नानायाज्ञिकसत्तमैः ॥
गवां लक्षस्य दत्तस्य चन्द्रसूर्यग्रहे प्रिये ।
फलमप्यधिकं तस्य लभते नात्र संशयः ॥
चैत्रेऽपि शृणु कल्याणि ममैव ब्रुवतो वचः ।
सोमवारेण नक्तेन कृतेन सुरसुन्दरि ॥
यत्फलं लभते नारी लक्षैकेन तु पार्वति ।
गङ्गोदकस्य नीतस्य सोमनाथादिसङ्गमे ॥
घृतस्य मधुना वापि शतधा हि कृतं फलं ।
गुग्गुलस्य तथा पञ्चसहस्रं परमेश्वरि ॥
एवं पुण्यं भवेद्स्य मानवस्य न संशयः ।
वैशाखे कारयेन्नक्तं सोमवारे न संशयः ॥
पूजयेत्तत्केतपुष्पैश्च यथालब्धैः सुरेश्वरि ।
अपूपा हि प्रदातव्याः कदलीफलसम्भवाः(१) ॥
एकचित्तेन भावेन निर्म्मलेन यशस्विनि ।
कन्यानां सुरयोग्यानां सहस्रेण वरानने ॥
दानेन विधिवद्देवि नराणां रूपशालिनां ।
एतद्दानेन यत्पुण्यं लभते मानवो भुवि(२) ॥
तत्फलं लभते सत्यं सोमवारव्रतेन तु ।
ज्यैष्ठमासे महादेवि सोमवारव्रतस्य तु ॥
चीर्णस्य यद्भवेत् पुण्यं तत्सर्व्वं कथयामि ते ।
गवां सुवर्णशृङ्गीणां पुष्करे विधिवत् प्रिये ॥

---

(१) श्रद्धया हि प्रदातव्याः कदलीफलसञ्चयाः इति वा पाठः ।

(२) पुरुषोभुवीति वा पाठः ।

दत्तानां दशसाहस्रं फलं प्राप्नोति मानवः।
यदृच्च लभते पुण्यं दुर्लभं देवदानवैः॥
ईशस्य कल्पमयुतं क्रीड़ते तव सुन्दरि॥
आषाढ़े सोमवारस्य भाविताला चरेद्व्रतं।
विधिपूर्व्वन्तु कल्याणि श्रेयः शृणु वदामि ते॥
नरमेधशतैकेन(१) विधियुक्तेन यत्फलं।
तद्भवेन्मानवे देवि पुण्यं सर्वशुभान्वितं॥
साधितुं नैव शक्यन्ते देवि नक्तमिदं यतः।
तस्माद्व्रतमिदं सारं यतः कष्टेन सिद्ध्यति॥
श्रावणे तु महादेवं सोमवारेण पूजयेत्।
रात्रौ तु भोजनं कुर्य्यान्मदकौटिल्यवर्जितः॥
भवेद्गणवरः प्राणी जीवमानो महेश्वरि।
इह त्रेताष्टमी चेष्टा परत्र कथयामि ते॥
अश्वमेधशतं साग्रं पुण्यं प्राप्नोति मानवः।
मम लोके स वसति यावच्चन्द्रार्कतारकाः॥
भाद्रे च भावसंयुक्तः पूजयेत्परमेश्वरीं।
पुण्यं वानुत्तमं तस्य शृणु देवि विशेषतः॥
गवां कोटिप्रदानस्य सवत्सस्य सुशीलिनः।
यत्तत् फलमवाप्नोति मानवो नात्र संशयः॥
आश्विने कथयिष्यामि त्वग्निष्टोमफलं शतं।
रसधेनुसहस्रस्य गुड़धेनुशतस्य च॥
सूर्य्यग्रहे कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणे वेदपारगे।

---

(१) द्यवमेधशतैकेनेति क्वचित् पाठः।

दत्तस्य फलमाप्नोति मानवो नात्र संशयः॥
कार्त्तिके वरदं देवि कामिकं मोक्षदायकं।
स्मरणात्पापसंघानां भेदकं परमेश्वरि॥
सोमवारव्रतपरो विधिवत् पूजयेच्छिवं।
नक्ताशी श्रद्धयायुक्तो दयासत्यसमन्वितः॥
दत्तस्य वेदपारज्ञे(१) रथानाञ्च शतस्य च।
वाजिभिः शुभचिह्नैश्च युक्तानां वेदवादिभिः॥
चतुर्वेदेषु विप्रेषु प्रदत्तस्य च यत्फलं।
तत्फलं लभते देवि मानवो भक्तिसंयुतः॥
व्रतान्ते प्रतिमां कुर्य्याद्रौप्यं सोमं चतुर्भुजं।
त्रयोदशघटान् श्वेतवस्त्रयुग्मसमन्वितान्(२)॥
संपूर्णानि सुभक्ष्यैश्च वंशपात्राणि पार्वति।
तेषामुपरि यत्नेन दद्यात्सर्वार्थसिद्धये॥
सुशुभेन सुगन्धेन सुस्निग्धेनोज्ज्वलेन च।
भक्तेन घृतपक्वैश्च(३) मुद्गशालिघृतैस्तथा॥
ब्राह्मणानथ संपूज्य भक्तियुक्तेन चेतसा।
त्रयोदशघटान् दद्याद्गाश्च श्वेता मनोरमाः॥
तथानेन विधानेन विप्रा वस्त्रविचित्रिताः(४)।

---

(१) वेदशास्त्रज्ञ इति वा पाठः।

(२) पयोन्वितानिति वा पाठः।

(३) पूर्णपात्राणीति वा पाठः।

(४) कर्णिकास्य पविचका इति वा पाठः।

उपानद्दयुताः कार्य्याश्चित्तवित्तानुसारतः॥
दद्यात् स्वाचारसंपन्नब्राह्मणेषु मनीषिषु।
दचयेत् गृहसारेण पुनरेव चमापयेत्॥
ततो गुरुं भक्तिपूर्वमासने चोपवेशयेत्।
अर्चयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्धूपदीपविलेपनैः॥
न गुरोः सदृशी माता न गुरोः सदृशः पिता॥
संसाराद्दुद्धरेद्योहि व्रतदानोपदेशतः।
गोस्वामी पूजितो यस्मात्पार्व्वत्या सहितः प्रभुः॥
तस्मात् संपूजयेद्भक्त्या गुरुं भार्य्यासमन्वितं।
अर्चयेत् प्रथमं तत्र पूजया पादसंस्थया॥
दद्याद्वस्त्राणि दिव्यानि सुवर्णाभरणानि च।
अमूल्यानि तु रत्नानि(१) ग्रामचेत्रपुराणि च॥
नगराणि गृहं दिव्यं यच्चान्यत् सुरसुन्दरि।
वाहनानि विचित्राणि गजवाजिरथादिकं॥
अन्यानि यान्यभीष्टानि तानि सर्वाणि दापयेत्।
गौर्गुरोः संप्रदातव्या सुवस्त्राच्च सुरूपिणी॥
स्वर्णशृङ्गी रौप्यखुरा कांस्यदोहा पयस्विनी।
ताम्रपृष्ठा सुशीला च वस्त्रप्रावृतदेहिका॥
अश्वर्क्ष विधिना दद्याद्व्रतसंपूर्णहेतवे।
सप्तधान्यं यथाशक्त्या दापयेत् प्रयतो व्रती॥
दीपदानं प्रकर्त्तव्यं गुरवे ज्ञानदायिने।
एवं गुरुं प्रणम्याथ शक्त्या दक्षिणया यजेत्॥

(१) वरत्नानीति वा पाठः।

दीपदानं प्रकर्त्तव्यं गुरवे ज्ञानदायिने।
क्षमापयेच्च तत् सर्व्वं देवादिप्रतिमां ददेत्॥
ततस्तपस्विनां देवि मम दर्शनहेतुना॥
सुगन्धघृतसंमिश्रपूपैः कृशरपायसैः।
धारिकाशोकवल्लीभिः पूरिकामण्डकैस्तथा॥
दधिदुग्धसमोपेतं भोजनं दापयेत् सुधीः।
तपस्विनो ब्राह्मणांश्च लिङ्गमूर्त्तिंश्चतुर्विधा॥
मम रूपमिदं यस्मात् तस्मात् पूज्यं चतुष्टयं।
शिवाङ्कितैश्च शास्त्रज्ञैर्दैशकैर्द्धर्म्मचिन्तकैः॥
जटामुद्रादिसंयुक्तैर्भस्मोच्छलितविग्रहैः।
ब्रह्मचर्य्यरतैः शान्तैर्लोभमत्सरवर्जितैः॥
ईदृशैः शिवपात्रैश्च भुक्तैः फलमनुत्तमम्।
भोजनान्ते प्रदातव्यं ताम्बूलं मुखवासकम्॥
श्वेतचन्दनकौपीनं दत्त्वा तांश्च विसर्ज्जयेत्।
शक्तितो भोजनं देयं यथा विभवविस्तरैः॥
कृपणानाथदीनानां सुहृदां याचतामपि।
एवं विधिसमायुक्तो गच्छते परमं पदं॥
भोगान् भुङ्क्ते सर्व्वलोके शतकोटियुगान्तरेत्।
कन्याभिर्वेष्टितो देवि रमते स्वेच्छया प्रिये॥
मम लोके वसेत्तावद्यावदाभूतसंप्लवं।
मम वीर्य्यबलोपेतस्त्रिनेत्रः शूलपाणिकः॥
माहात्म्यात् सोमवारस्य अन्ते मुक्तिमवाप्नुयात्।
पूर्वं कृष्णेन सञ्चीर्णं तथा वै पद्मयोनिना॥
देवदानवगन्धर्वैः पिशाचोरगराक्षसैः।

ऋषिभिः क्षितिपैस्तद्वत् स्वायम्भुवमुखैः प्रिये॥
अन्यैश्च मानवैः शुद्धैरास्तिकैर्द्धर्म्मतत्परैः।
न देयं दुष्टचित्ताय शुद्धिहीनाय न क्वचित्॥
शास्त्रधर्म्मद्विषे नैव विडम्बकजनाय च।
आचार्य्यदेवविप्राणां व्रतिनां व्रतशीलिनां॥
वह्निवेदसुतीर्थानां निन्दकाय न वै क्वचित्।
आर्त्तौ नैव परित्याज्यं व्रतमेतत् सुदुर्लभं॥
व्रतत्यागान्महादोष इति ज्ञात्वा समारभेत्॥
गुरोः समीपे कुर्व्वीत व्रतमेतन्न संशयः।
अन्यथा गुरुहीनस्य निष्फलं जायते व्रतं॥
सन्देहः सर्व्वकार्य्येषु गुरुहीनस्य वै भवेत्।
तस्मात्सर्व्वप्रयत्नेन गुरुमेव समाश्रयेत्॥
अथ संक्षेपतो वक्ष्ये व्रतमाहात्म्यमुत्तमम्।
ये चरन्ति नरा देवि स्त्रियश्चापि सुभाविताः॥
तेषां जन्मसहस्रेऽपि न शोको जायते क्वचित्॥
न दारिद्र्यं न रोगश्च सन्ततिच्छेद एव च।
कुलकोटिं समुद्धृत्य स्थापयेदिन्द्रसद्मनि॥
इत्थं शृणोति माहात्म्यं पठ्यमानं व्रतस्य च।
श्रावयेद्भक्तिसंयुक्तो रुद्रस्यानुचरो भवेत्॥
क्रियमाणं तथा पश्येद्व्रतमेतत् प्रियं मम।
भक्तियुक्तो नरः श्रुत्वा यश्चैवानुप्रमोदते॥
मतिं ददाति यश्चापि स याति शिवमन्दिरं॥

इति स्कन्दपुराणोक्तसोमव्रतं।

---

## अथ भौमव्रतं।

——000——

स्वात्यामङ्गारकं गृह्य क्षपयेन्नक्तभोजनः।
सप्तमे त्वथसंप्राप्ते स्थापितं ताम्रभाजने॥
हैमं रक्ताम्बरच्छन्नं कुङ्कुमेनानुलेपनं।
नैवेद्यं गुड्भक्तं सारं पूज्य पुष्पाक्षतादिभिः॥
मन्त्रेणानेन तं दद्यात् ब्राह्मणाय कुटुम्बिने।
कुजन्मप्रभवोपि त्वं मङ्गलः पठ्यते बुधैः॥
अमङ्गलं निहिंस्याशु सर्वदा यच्छ मङ्गलम्।

### इति भविष्योत्तरोक्तं भौमव्रतं।

——000——

भौमोयमेश्वरः पुत्रः पृथिव्यां जनितो महान्।
रूपेणैव सदा रम्यो वरदानाद्दिवौकसां॥
अस्यैव दिवसे प्राप्ते ताम्रपात्रं सुशोभनं।
परिपूर्णं गुडेनैव वर्षमेकं प्रदापयेत्॥
व्रतान्ते दापयेद्धेनुं यथोक्तफलसंयुतां।
ब्राह्मणाय सुरूपाय अव्यङ्गितशरीरिणे॥
एवं व्रतविधिं दिव्यं यः कश्चित् कुरुते नरः।
रूपवान् धनवांश्चैव जायते नात्र संशयः॥

### इति स्कन्दपुराणोक्तं भौमवारव्रतं।

——000——

युधिष्ठिर उवाच।

देवदेव जगन्नाथ पुराणपुरुषोत्तमः।
सर्व्वार्थसाधनं पुण्यं व्रतं कथय मे प्रभो॥
भौमीयमर्चनं ब्रूहि माहात्म्यं तस्य मे प्रभो।
व्रतेन येन चीर्णेन नरो दुःखात् प्रमुच्यते॥

श्रीभगवानुवाच।

यदुक्तं कथयिष्यामि सर्व्वकामार्थसाधनं।
ग्रहाणामधिपोभौमः पूजयेद्भौमवासरे॥
मङ्गलो भूमिपुत्रश्च ऋणहर्त्ता धनप्रदः।
स्थिरासनो महाकायः सर्वकामार्थसाधकः॥
लोहितो लोहिताङ्गश्च सामगानां कृपाकरः।
धरात्मजो कुजो भौमो भूतिदो भूमिनन्दनः॥
अङ्गारको यमश्चैव सर्वरोगापहारकः।
सृष्टिकर्त्ता प्रहर्त्ता च सर्वकामफलप्रदः॥
एतानि कुजनामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
ऋणं न जायते तस्य धनं प्राप्नोत्यसंशयं॥
त्रिकोणञ्च सदाकार्य्यं मध्ये छिद्रं प्रकल्पयेत्।
कुङ्कुमेन सदा लेख्यं रक्तचन्दनमेव च।
कोणे कोणे प्रकल्प्यानि त्रीणि नामानि भूमिज॥
आरं वक्रं भूमिजञ्च रक्तगन्धैश्च पूजयेत्।
स्थापयेद्व्रणे कुम्भे जलपूर्णे सवस्त्रके॥
रक्तधान्यैश्च नैवेद्यैरर्घ्यं रक्तफलैस्तथा।
रक्तगन्धैश्च धूपैश्च पुष्पदीपादिभिस्तथा॥

मङ्गलं पूजयेद्भक्त्या मङ्गलेऽहनि सर्व्वदा।
ऋणरेखा प्रकर्त्तव्या अङ्गारेण तदग्रतः॥
तान्तु प्रमार्जयेत्पश्चाद्वामपादेन संस्पृशन्।
एकविंशतिनामानि पठित्वा तु दिनान्तके॥
रूपवान् धनवांश्चैव जायते नात्र संशयः।
एककालं द्विकालं वा यः पठेत् सुसमाहितः॥
एवं कृते न सन्देहो ऋणं हत्वा सुखी भवेत्।
पूजितो देवदेवेशो मङ्गलो मङ्गलप्रदः॥
उज्जयिन्यां समुत्पन्नो भौमो भौमश्चतुर्भुजः।
भरद्वाजकुले जातः शक्तिशूलगदाधरः॥
वरदो मेषमारूढः स्कन्दप्रायस्तडित् प्रभः।
स्योनापृथिवी मन्त्रेण दले याम्ये प्रतिष्ठितः।

प्रतिष्ठामन्त्रः।

भूमिपुत्रो महातेजाः कुमारो रक्तवस्त्रकः।
ज्वलदङ्गारसदृशो भौनः शान्तिं प्रयच्छ मे॥

पूजामन्त्रः।

प्रसीद देवदेवेश विघ्नहर्त्ता धनप्रद।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं मम शान्तिं प्रयच्छ वै(१)॥
भूमिपुत्रोमहातेजाः स्वेदोद्भवः पिणाकिनः।
धनार्थी त्वां प्रपन्नोऽस्मि गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥

अर्घ्यमन्त्रः।

गौतमेन पुरा दृष्टो लोहिताङ्गो महाग्रहः।

---

(१) प्रदोभवरति वा पाठः।

कथय त्वं महाभाग गुह्यं पूजार्चने विधिम्(१) ॥

गौतम उवाच।

मन्त्रमाराधनं ब्रूहि सर्व्वप्राणिभयापहं।
सर्वपाप प्रशमनं सर्व्वोपद्रवनाशनं ॥
सर्वयज्ञफलं येन सर्वदानफलं लभेत्।
तपोजप्यान्यनेकानां फलं येनैव लभ्यते ॥
रूपञ्च सकलं येन वाहनायुधसंयुतं।
येन पूजितमात्रेण जायते सुखमुत्तमं(२) ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां कालेनवफलप्रदं(३)।
सर्वपापप्रशमनं सर्वव्याधिविनाशनं(४) ॥
सर्वसौख्य प्रदानानां फलं येन च लभ्यते।
तद्व्रतं ब्रूहि मे देव लोहिताङ्गो महाग्रहः ॥

भौम उवाच ॥

शृणु साधो महाभाग धर्म्मशारद गौतम।
व्रतं पूजा परं दानं यज्ञोप्य भुवनत्रये ॥
आसीत् पूर्वं सुनन्दिको ब्राह्मणो वेदपारगः।
तस्य भार्य्या सुनन्दीका वन्ध्या तु बहुलोभिनी ॥

---

(१) शुभमिति पाठान्तरं।
(२) प्राप्यते परमं सुखमिति वा पाठः।
(३) कालेनैवाभयप्रदमिति वा पाठः।
(४) सर्व्वोपद्रवनाशनमिति वा पाठः।

तस्यापत्यं न सञ्जातं वृद्धत्ववन्ध्यभावतः ।
तेनान्यस्य सुता जातु सुशीला रूपसंयुता ॥
ब्राह्मणस्य कुले जाता गृहीत्वा पोषिता स्वयं ।
सर्वलक्षणसंपूर्णा मद्भक्तेन तु गौतम ॥
पूर्वजन्मनि तेनाहं पूजितश्चैव भावितः ।
तां पुत्रीञ्च गृहे तस्य ब्राह्मणी साह्यपालयेत् ॥
नित्यं प्रसूयते(१) स्वर्णं अष्टाङ्गात् कनकद्युतिः ।
तेन स्वर्णेनासौ विप्रो धनाढ्यो वेदपारगः ॥
कोटि कोटीश्वरो विप्रो राजते भूमिमण्डले ।
वर्षैः कतिपयैर्व्विप्र सा कन्या यौवनोत्तमा ॥
दृष्ट्वा नन्दीकविप्रेण दशवर्षां मनःस्विनीं ।
विवाहार्थन्तु विप्रस्य दत्त्वा सोमेश्वरस्य च ॥
वेदोक्तविधिना तत्र विवाहमकरोत्तदा(२)।
वर्षैः कतिपयैर्विप्रस्तां कन्यां प्रौढ़यौवनां ॥
आदाय श्वशुरगृहान्निर्गता शुभवासरे ।
स्वदेशोपरिमार्गेण गच्छमानस्त्वहर्निशम् ॥
वनान्ते गह्वरे घोरेऽरण्ये पर्व्वतमध्यगे ।
सुनन्दी च वने तस्मिन् मन्दलोभप्रभावतः ॥
सर्वसुन्ये वने तस्मिन् महालोभेन भावितः ।
मार्गे चलति विप्रोऽसौ घाति तुं विद्यतिं स्वकं ॥
तेनासौ घातितो विप्रश्चोररूपेण सादरात् ।

(१) पुष्टीयते इति वा पाठः ।
(२) शुभवासरे इति वा पाठः ।

पतिं मृतञ्च तं दृष्ट्वा सा नारी भयपीड़िता(१) ॥
यावत् प्रक्षिप्य काष्ठानां मध्ये चैव हुताशनं।
पतिदेहमुपादाय चिक्षेप चितिमध्यतः ॥
पतिना सह विप्रेण मरणे कृतनिश्चया।
पतिर्ब्रह्मन्यं देवं ध्यायन्तीच पदेपदे ॥
पतिं प्रदक्षिणी कृत्य चितायाश्च समीपतः।
चित्यां यावत् प्रविशति तदाहमवदञ्च तां ॥
तस्मिन् काले च तुष्टोहं याचयस्व मनोरथं।

ब्राह्मणी उवाच।

यदि तुष्टोसि मे देव तदा जीवतु मे पतिः।

भौम उवाच।

अजरोप्यमरो वत्से त्वद्भर्त्तायं भविष्यति।
अन्यथा च महासाध्वि चिरां त्रिभुवनक्षमं ॥

ब्राह्मणी उवाच।

यदि तुष्टोसि देवेश ग्रहाणामधिप प्रभो।
ये त्वां पटे समालिख्य रक्तचन्दनचर्चितं।
रक्तपुष्पैश्च संपूज्य प्रत्यूषे भौमवासरे ॥
वैधव्यन्तु क्षणं तेषां व्याधिराजभयं तथा।
सर्पाग्निशत्रुसम्बादं वियोगं स्वजनस्य च ॥
माकुरुष्व महीपुत्र यदि तुष्टोसि मे प्रभो ॥

श्रीभौम उवाच।

एक विंशति भौमाश्च मङ्गलाश्च जितेन्द्रियाः।

(१) शोकपीडितेति वा पाठः।

एकाहारैः सीतान्नैश्च चतुर्द्दीपालिकैर्गृहे ॥
अर्घ्यैस्तु सकलैर्मन्त्रैर्व्वेदपौराणिकोद्भवैः ।
स्वशक्त्या भोजनं विप्रे दातव्यं सहिरण्यकं ॥
युवानं रक्तमनड्वाहं सर्वोपस्करसंयुतं ।
तेषां पीड़ा कदा कस्य ग्रहस्य न भविष्यति ॥
भूतवेतालशाकिन्यः प्रभवन्ति न हिंसकाः ।
एवमस्तु तदा तस्य इत्युक्त्वान्तरधीयते ॥
व्रतमात्रे तु ये लोकाः पीड़िता विपदं गताः ।
यः पठति इमं व्रतं स प्राप्नोति विष्णुपुरं ॥
तत्प्राप्नोति नरः सम्यक् गतिःस्याच्च प्रभावतः ।
उद्यापनं प्रकर्त्तव्यं मद्व्रतस्य समाप्तये ॥
उद्यापनं विना विप्र फलं पूर्णं न जायते ।
एकविंशतिभौमाश्च कर्त्तव्या एकभावतः ॥
आपदो विलयं यान्ति सुखञ्चैव प्रवर्द्धते ।
यः शृणोति व्रतं विप्र मानवः संयतेन्द्रियः ॥
तस्य मासकृतं पापं विलयं यान्ति वर्द्धते(१) ।
सदा नियमसंयुक्तः प्रत्यूषेसु समाश्रितः(२) ।
यावज्जीवं व्रतं पुण्यं करोति भुवनत्रये ॥
सुसमृद्धो भवेद्विप्रः पुत्रपौत्रैस्तु वर्द्धते ।
अन्ते चापि परं स्थानं यत्र सूर्य्यादयो ग्रहाः ॥

---

(१) तत्क्षणादिति पाठान्तरं।

(२) सुसमाहित इति पाठान्तरं।

एवमुक्त्वा तदा तत्र मङ्गलोऽपि दिवङ्गतः ॥
इदं व्रतं त्वया ख्यातं सर्व्वसौख्यप्रदायकं।
इदं व्रतं करिष्यन्ति तेषां पीड़ा न जायते ॥
स्त्रीभिर्व्रतं प्रकर्त्तव्यं पुरुषैश्च विशेषतः।
तेषां मुक्तिर्नसन्देहः स्वर्गवासो न संशयः ॥

इति पद्मपुराणे भौमव्रतं।

---

कनकमयशरीरस्तेजसादुर्निरीक्ष्यो
हुतवहसमकान्तिर्म्मालवे लब्धजन्मा।
अवनितनय एष स्तूयते भारतेयो
ददतु मम विभूतिं मङ्गलः सुप्रसन्नः ॥

गौतम उवाच(१)।

उद्यापनविधिं तस्य सम्यग्ब्रूहि प्रसादतः।
येन ज्ञातेन जगत उपकारो महान् भवेत् ॥

मङ्गल उवाच।

विद्ध्(२)यौमण्डप स्वस्मिंस्त्वष्टहस्त प्रमाणतः।
स्थण्डिलं मध्यतः कार्य्यं हस्तैकस्य प्रमाणतः ॥
मण्डलन्तु प्रकर्त्तव्यं मामकं रक्तशालिनं।
पूर्वोक्तानि च नामानि मण्डले पूजयेत्ततः ॥

---

(१) मङ्गलउवाचेति पाठान्तरं।

(२) विद्धि इति पाठान्तरं।

मण्डलन्तु प्रकर्त्तव्यं पञ्चविंशतिभिर्युतं(१)॥
द्वारोपद्वारसहितं वीथिकाकरकैर्युतं।
पूजा तत्र प्रकर्त्तव्या रक्तचन्दनपूर्विका॥
जवापुष्पैस्तु पूज्यानि मम नामानि पूर्व्वतः।
सगुग्गुलधूपदानञ्च नैवेद्यं पौलिकः स्मृतं॥
पूजाफलैर्म्महार्घ्यञ्च दातव्या नारिकेलयुक्।
जवापुष्पेण दातव्यो(२) व्रतोद्यापनसिद्धये।
कुम्भे मे प्रतिमां स्थाप्य सौवर्णीञ्च स्वशक्तितः॥
रक्तवस्त्रेण संच्छाद्य पूजां पूर्व्वोक्तमन्त्रतः।
अष्टोत्तरशतं होमं पूजान्ते कारयेद्बुधः।
जवायाः कुसुमानान्तु घृतस्य तु यथाविधि।
तिलाक्षतानामाचार्य्यैऋत्विग्भिर्वेदपारगैः॥
अग्निर्मूर्द्धेतिमन्त्रेण रक्तशालिचरुस्तथा।
शान्तिकन्तु प्रकर्त्तव्यं यथोक्तेन(३) विधानतः॥
पद्ममध्ये कर्णिकायां मम सूक्तमतन्द्रितः।
पूजयेद्व्ययमानस्तु शेषनामानि पूर्व्वतः॥
मङ्गलाय नमः पादौ भूमिपुत्राय जानुनी॥
ऋणहर्त्रे नमस्तूरू कटिं धनप्रदाय च।
स्थिरासनाय गुह्ये तु महाकायय चोरसि।
सर्व्वकामप्रदात्रे तु वामबाहुं प्रपूजयेत्॥

(१) पावकैरिति पाठान्तरं।
(२) पूर्व्वमन्त्रेण दातव्य इति पाठान्तरं।
(३) स्वशाखोक्त इति वा पाठः।

लोहिताय द्व्यवाहौ लोहिताक्षाय कण्ठतः ।
आस्ये संपूजयेन्माघ सामगानां कृपाकरं ॥
धरात्मजं नासिकायां कुजञ्च नयनद्वये ।
भौमं ललाटपट्टे च भूमिजाय नमो भ्रुवौ ॥
मूर्द्ध्नि संपूजयेन्माघ भूमिनन्दननामतः ।
अङ्गारकं शिखायान्तु यमङ्कवचदेशतः ॥
सर्व्वरोगापहारञ्च अस्त्रे संपूजयेत्सदा ।
आकाशे सृष्टिकर्त्तारं प्रहर्त्तारमधस्तथा ॥
सर्व्वाङ्गेषु प्रपूज्योस्मि सर्वकामफलप्रदः ।
एवं पञ्चोपचारेण पूजान्ते व्रतकारिणा ॥
अच्छिद्रं याचनीयन्तु भक्तियुक्तेन चेतसा ।
आचार्य्यमृत्विजो ब्रूयुः संपूर्णं व्रतमस्त्विति ॥
व्रतान्ते पूजयेद्विप्रं गुरुं पत्नीसमन्वितं ।
रक्तवस्त्रं परीधाप्य पदं दद्याद्यथोदितं ॥
शय्यां सोपस्कराञ्चैव भोजनं विविधं तथा ।
भक्त्या दद्यादनड्वाहं(१) व्रतान्ते मम तुष्टये ॥
ऋत्विजोऽपि तदा पूज्या मत्प्रीत्यर्थं स्वशक्तितः ।
भोजनाच्छादनाद्यैश्च संस्कारैर्विविधैर्गिरा ॥
इत्थमुद्यापनं ये तु कुर्व्वन्ति व्रतकारकाः ।
तेषां पीड़ा कदा कस्य ग्रहस्य न भविष्यति ॥
भूतवेतालशाकिन्यः प्रभवन्ति न हिंसकाः ।
न ऋणञ्च भवेत्तेषां धनं तेषां भवेद्ध्रुवं ॥

---

(१) दद्याद्रक्तमिति पाठान्तरं ।

येषां सन्तानवाञ्छा स्यात् ते लभन्ते बहून् सुतान् ।
इत्युक्त्वा गौतमस्याग्रे दिवं प्राप्तो महाग्रहः ॥
व्रतमात्रे तु ये लोकाः पीड़िता विपदाङ्गणैः(१) ।
आपदो विलयं यान्ति सुखञ्चैव प्रवर्द्धते(२) ॥
य स्तवीति व्रतं भक्त्या मानवस्तु जितेन्द्रियः ।
तस्य मासकृतं पापं विलयं याति तत्क्षणात् ॥
सदा तु नियमारूढ़ः प्रत्यूषे सुसमाहितः ।
यावज्जीवं व्रतं पुण्यं करोति भुवनत्रये ॥
सुसमृद्धो भवेद्विप्रः पुत्रपौत्रैः स वर्द्धते ।
अन्ते याति परं स्थानं यत्र सूर्य्यादयो ग्रहाः ॥
अवाप्नोति नरः सम्यग्(३)व्रतस्यास्य प्रभावतः ।
यावज्जीवं न शक्नोति व्रतं कर्त्तुं नरो यदि ॥
उद्यापनं विधायैव मोक्तव्यं व्रतमुत्तमं ।
उद्यापनन्तु शास्त्रोक्तं कर्त्तव्यं सुसमाहितैः ॥
अशक्तो ब्राह्मणानुज्ञां गृहीत्वा तु विसर्ज्जयेत् ।
अन्यथा कुरुते यस्तु कुष्ठी चान्धः(४) प्रजायते ॥
तस्मात्सर्व्वप्रयत्नेन ब्राह्मणानुज्ञया व्रतं ।
कर्त्तव्यन्तु सुसंपूर्णमुद्यापनसमन्वितं ॥

---

(१) विपदागमे इति पाठान्तरं ।
(२) सर्व्वास्तेषान्तु तत्क्षणादिति पाठान्तरं ।
(३) व्रतस्य सततं सम्यगिति पुस्तकान्तरे पाठः ।
(४) कुष्ठी वन्ध्यश्च जायते इति पाठान्तरं ।

धरामराणां वचनैरवस्थिता(१)
दिवौकसस्तीर्थमखैःसमेताः(२)।
न लङ्घयेत्तापि वचांसि तेषां
श्रेयोऽभिकामी पुरुषो विजानन्॥

इति पद्मपुराणोक्तं मङ्गलव्रतोद्यापनं।

---

## अथ बुधव्रतं।

——o——

कृष्ण उवाच।

विशाखासु बुधं प्राप्य सप्त नक्तानि चाचरेत्।
बुधं हेममयं कृत्वा स्थापितं कांस्यभाजने॥
शुक्लमाल्याम्बरधरं शुक्लगन्धानुलेपनं(३)।
गुड़ौदनोपहारन्तु ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥
बुधस्त्वं बुद्धिजननो बोधदः सर्व्वदा नृणां।
तत्त्वावबोधं कुरुते राजपुत्राय ते नमः॥

इति भविष्योत्तरे बुधव्रतं।

---

(१) वचनैर्व्यवस्थिता इति पुस्तकान्तरे पाठः।

(२) व्रतैः समेता इति पाठान्तरं।

(३) शुक्लवस्त्रयुगच्छन्नं शुक्लमाल्यानुलेपनमिति पाठान्तरं।

## अथ गुरुव्रतं ।

अनुराधास्वथाचार्य्यं देवानां पूज्य भक्तितः ।
पूर्व्वोक्तक्रमयोगेन सप्त नक्तान्यथाचरेत् ॥
हैमं हेममये पात्रे स्थापयेच्च बृहस्पतिं ।
पीताम्बरयुगच्छन्नं पीतयज्ञोपवीतकं ॥
पादुकाच्छत्रसहितं सदण्डं सकमण्डलुं ।
संपूज्य पुष्पनिकरैर्धूपदीपाक्षतादिभिः ।
खण्डखाद्योपहारञ्च द्विजाय प्रतिपादयेत् ॥
धर्म्मशास्त्रार्थशास्त्रज्ञ ज्ञानविज्ञानपारग ।
प्रलम्बबुद्धिगाम्भीर्य्य देवाचार्य्य नमोऽस्तु ते ॥

इति भविष्योत्तरोक्तं गुरुव्रतं ।

## अथ शुक्रव्रतं ।

शुक्रं ज्येष्ठासु संप्राप्य(१) पूजयेन्नक्तभोजनः ।
पूर्व्वोक्तक्रमयोगेन द्विजसन्तर्पणेन तु ॥
सप्तमेऽत्वथ संप्राप्ते सौवर्णं कारयेत्सितं(२) ।
रौप्ये वा कांस्यपात्रे वा स्थापयित्वा भृगोः सुतं ॥
संपूज्य परया भक्त्या श्वेतवस्त्रानुलेपनैः ।
अग्रे तस्य प्रदातव्यं पायसं घृतसंयुतं ॥

(१) शुक्रं ज्येष्ठासु संदृष्ट्वा चपयेन्नक्तभोजन इति पुस्तकान्तरे पाठः
(२) कारयेच्छुभमिति पाठान्तरं।

दद्यादनेन मन्त्रेण ब्राह्मणाय विचक्षणः।
भार्गवो भृगुशिष्यो वा शुक्रः क्रमविशारदः॥
हत्वा ग्रहकृतान् दोषान् आयुरारोग्यदो भव॥

इति भविष्योत्तरोक्तं शुक्रव्रतं।

---

विषमस्थे भृगुसुते महाशान्तिकरं व्रतं।
कर्त्तव्यं मनुजैर्यत्नान्महापातकनाशनं॥
होतव्यं मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना क्षीरैर्घृतेन च।

इति भविष्योत्तरोक्ता महाशान्तिः।

---

## अथ शनिव्रतं।

भविष्य पुराणात्।

श्रीकृष्ण उवाच।

कदाचिदाश्रमपदं पिप्पलादस्य नारदः।
जगाम कामचारेण पर्य्यटन्नवनीतलं॥
तमातिथेयः श्रेयोऽर्थी पिप्पलादोऽथ नारदं।
विहितायां सपर्य्यायां योगक्षेममथाब्रवीत्(१)॥
अस्मिन् वने चिरं कालमालम्ब्य स्थितवानहं।
अश्वत्थवृक्षमश्नीयाच्छायमायतसत्फलं॥

(१) पर्य्यायागतमब्रवीदिति पाठान्तरं।

क्व गतौ मां निधायेह मदीयौ पितरौ मुने।
तं प्राह नारदः पूर्वं सर्व्वलोकाशनिः शनिः(१) ॥
पीड़यामास वसुधां सर्वेषामसुधारिणां(२)।
रोगांश्चकार देहेषु गेहेषु धनसंक्षयं ॥
तदा पुण्यान्यरण्यानि परिभ्रम्य फलादिकं।
आदाय कायपोषाय सायमायाति ते पिता ॥
क्लीवभावं पुरस्कृत्य शनेर्दुर्भिक्षनिर्मितं।
त्वां विहाय सचापत्नु गतश्चेतस्ततः क्वचित्।
एवमुक्तः शिशुः क्रोधात् प्रज्वलन्निव पावकः।
आलोक्य गगनाद्भूमौ पातयामास वै शनिं ॥
यतमानो गिरेः शृङ्गे लग्नः खञ्जो बभूव ह।
धरण्यां पतितं दृष्ट्वा भास्करात्मजमातुरं ॥
ननर्त्त भुजमुत्क्षिप्य नारदो हृष्टमानसः।
हर्षाद्देवानथाहूय दर्शयामास तं शनिं ॥
अथ देवास्तदा प्राप्ता ब्रह्मरुद्रेन्द्रपावकाः।
शनिन्ते सान्त्वयामासुः क्रोधमुग्धं मुनिश्च तं ॥
स्वस्ति तेऽस्तु महाभाग पिप्पलाद महामुने।
भद्रन्तेऽत्र कृतं नाम नारदेन महर्षिणा ॥
अन्वर्थयुक्तं विप्रेन्द्र जीवितं पिप्पलादनात्।

(१) सर्व्वलोकानलः शनिरिति पाठान्तरं।
(२) क्रीडया पीडयामास वहुधासमुधारिणामिति पाठान्तरं।

अतस्त्वं पिप्पलादेति लोके ख्यातिं गमिष्यसि ॥
ये च त्वां पूजयिष्यन्ति स्नात्वा पुष्पाक्षतादिभिः।
गृहाश्रमपदे रम्ये क्षिपेयुर्भक्तिभाविताः ॥
सप्तजन्मान्तरं यावत् पुत्रपौत्रानुगामिनी।
तेषां लक्ष्मीर्न दूरस्था भविष्यति कदाचन ॥
स्मरिष्यन्ति च येऽपि त्वां पिप्पलादेति नामतः।
तेषां शनैश्वरकृता न पीड़ापि भविष्यति ॥
क्षमस्वास्य महाभाग निर्दोषोऽयं ग्रहाग्रणीः।
चरन् ऋक्षं(१) शनैरेष शुभाशुभफलप्रदः ॥
हठसाध्या ग्रहाश्चैते न भवन्ति कदाचन।
बलिहोमनमस्कारैः शान्तिं यच्छन्ति पूजिताः ॥
अतोऽर्थमस्य दिवसे स्नानमभ्यङ्गपूर्व्वकं।
कार्य्यं देयञ्च विप्राय तैलमभ्यङ्गहेतवे ॥
यस्तु संवत्सरं यावत् प्राप्ते शनिदिने नरः(२)।
तैलं ददाति विप्राणां स्वशक्त्याभ्यजनस्य तु ॥
ततः संवत्सरस्यान्ते प्राप्ते तस्य दिने पुनः।
लोहघटार्पितं सौरिं तैलकुम्भे विनिक्षिपेत् ॥
लोहे वा मृण्मये वाथ कृष्णवस्त्रयुगान्वितं ॥

---

(१) चरन् भचक्रमिति पाठान्तरं।

(२) प्रतिदिने नर इति पुस्तकान्तरे पाठः।

शनिरूपन्तु मत्स्यपुराणात् ।

इन्द्रनीलद्युतिः शूली वरदो वृषवाहनः(१) ।
बाणबाणासनधरः किरीटार्कसुतः सदा ॥
कृष्णगोदक्षिणायुक्तं कृष्णकम्बलशायिनं ।
अभ्यङ्गेन स्वयं स्नात्वा कृष्णपुष्पैश्च पूजयेत् ॥
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैः(२) कृशरान्नैस्तिलोदनैः(३) ।
पूजयित्वा सूर्य्यपुत्रं क्षमस्वेति पुनः पुनः ॥
कृष्णाय द्विजमुख्याय तदभावेतराय च(४) ।
देयः शनैश्चरो भक्त्या मन्त्रेणानेन वै द्विज ॥
शन्नोदेवीति विप्राणामितरेषां शृणुष्व यः(५) ।
क्रूरावलोकनवशाद्भुवनं नाशयति यो ग्रहो रुष्टः ।
तुष्टो धनकनकसुखं ददाति सोऽस्मान् शनैश्चरः पातु ॥
यः पुरा नष्टराज्याय नलाय परितोषितः(६) ।
स्वप्ने ददौ निजं(७) राज्यं स मे सौरिः प्रसीदतु ॥
कोणं नीलाञ्जनप्रख्यं मन्दचेष्टाप्रसारिणं ।
छायामार्तण्डसम्भूतं नमस्यामि शनैश्चरं ॥

---

(१) गृध्रवाहन इति पुस्तकान्तरे पाठः ।
(२) सुगन्धगन्धपुष्पैश्च इति पाठान्तरं ।
(३) सरलैस्तिलमोदकैरिति पाठान्तरं ।
(४) तां गां दद्याच कम्बलमिति पाठान्तरं ।
(५) इतरेषाञ्च वर्णानां शृणु मन्त्रं द्विजोत्तम इति पुस्तकान्तरे पाठः ।
(६) नलाय प्रददौ किल इति पुस्तकान्तरे पाठः ।
(७) स्वप्ने तस्मै निजमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

नमोऽर्कपुत्राय शनैश्चराय
नीहारवर्णाञ्जनमेचकाय।
श्रुत्वा रहस्यं तव कामदस्त्वं
प्रसन्नो मे भव सूर्य्यपुत्र॥

नमोऽस्तु प्रेतराजाय कृष्णदेहाय वै नमः(१)।
शनैश्चराय क्रूराय शुद्धबुद्धिप्रदायिने॥
य एभिर्नामभिस्तौति तस्य तुष्टो ददात्यसौ।
तदीयन्तु भयं तस्य स्वप्नेऽपि न भविष्यति॥
इत्यनेन विधानेन शक्तिं दत्वा विसर्ज्जयेत्।
एतद्व्रतन्तु ये विप्र चरिष्यन्तीह मानवाः॥
शनेस्तु वासरे प्राप्ते वत्सरं यावदेव तु।
तेषां शनैश्चरी पीड़ा देशेऽपि न भविष्यति॥

भविष्योत्तरात्। कृष्ण उवाच।

पुरा त्रेतायुगे पार्थ नावर्षत्पाकशासनः।
कथञ्चिद्दुर्णयाद्राज्ञस्तस्य राष्ट्रे समन्ततः॥
ततोराष्ट्रं क्षुधाविष्टं बभूवातीव दारुणं।
पतङ्गमूषकाकीर्णं चोरव्यालभयाकुलं॥
तस्मिन् घोराकुले काले सपत्नीकः सबालकः।
कौशिकः स्वगृहं त्यक्ता परराष्ट्रमगाच्छनैः॥
मार्गे च गच्छता तेन येन केन महर्षिणा।
त्यक्तः स बालकस्त्वेको दुर्भरं हि कुटुम्बिकं॥
तस्मिन् काले विशेषेण क्षीणे ह्योषधिसञ्चये।

(१) कृष्णदेह य वै नम इति पुस्तकान्तरे पाठः।

ज्ञात्वा तन्निर्घृणं कर्म्म ततोऽसौ कौशिको गतः ॥
सोऽपि बालः क्षुधादीनो दिशो वीक्ष्य तृषा अपि ।
उत्थाय पिप्पलस्याधोमूलान्यत्तुं प्रचक्रमे ॥
कूपे जलं पपौ नित्यं तत्रैवाश्रममण्डले ।
ज्ञात्वा समाश्रितो रौद्रं तेपे च विपुलं तपः ॥
अथाजगाम भगवान्नारदो वेदपारगः ।
तं दृष्ट्वा दीनवदनं क्षुधार्त्तं द्विजपोतकं ॥
तदाऽसौ तस्य संस्कारं चक्रे मौञ्जादिबन्धनं ।
वेदानध्यापयामास सरहस्यपदक्रमात् ।
ददौ च वैष्णवं मन्त्रं द्वादशाक्षरमाच्युतं ॥
वेदाभ्यासरतस्यास्य विष्णुध्यानपरस्य च ।
फलार्हं पिप्पलादस्य विष्णुः प्रत्यक्षतां ययौ ॥
वैनतेयसमारूढ़ो नीलोत्पलदलच्छविः ।
चतुर्भुजः पीतवासाः शङ्खचक्रगदाधरः ॥
स उवाच तदा तुष्टो वरं ब्रूहि यमिच्छसि ॥
तच्छ्रुत्वा नारदमुखं समालोक्य शिशुस्तदा ।
नारदेनाभ्यनुज्ञातो योगविद्यामवाप च ॥
दत्त्वा ज्ञानं सोपदेशं योगाभ्यासञ्च निर्म्मलं ।
नागारिगमनो विष्णुस्तत्रैवान्तरधीयत ॥
ततोऽभवन्महाज्ञानी महर्षिः स शिशुस्तदा ।
नारदं परिपप्रच्छ केनाहं पीड़ितो मुने ॥
ग्रहेण ग्रहरूपेण बालरूपोऽतिदुःखितः ॥
न मे पिता न मे भ्राता जीवितोऽस्म्यस्य पीड़या ॥

ब्राह्मण्यं भवता दत्तं मम दैवाद्द्विजोत्तम ॥
एतच्छ्रुत्वा ततो वाक्यं कथयामास नारदः ॥
शनैश्चरेण क्रूरेण ग्रहेण त्वं हि पीड़ितः ।
पीड़ितश्च समस्तोऽपि देशोऽयं मन्दचारिणा ॥
तथैव च फलं प्राप्त एष सौरिः शनैश्चरः ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

एवमुक्ता सुराः सर्व्वे प्रतिजग्मुर्य्यथागतं ।
शनैश्चरोऽपि स्वे स्थाने ग्रहत्वेण प्रतिष्ठितः ॥
पिप्पलादोऽपि ब्रह्मर्षि र्ब्रह्माज्ञां प्रतिपालयन् ।
शनैश्चरन्तु संपूज्य तुष्टाव रचिताञ्जलिः ॥
कोणस्थः पिङ्गलो वक्रः कृष्णो रौद्रोऽन्तकोपमः ।
सौरिः शनैश्चरो मन्दः प्रीयतां मे ग्रहोत्तमः ॥
शनैश्चरमितिस्तुत्वा पिप्पलादो महामुनिः ।
रवेर्ज्ज्वलन् विमानस्थो दृश्यतेऽद्यापि मानवैः ॥
इदं शनैश्चराख्यानं ये पठिष्यन्ति मानवाः(१) ।
तेषां कुरुकुलश्रेष्ठ पुनः पीड़ा न बाधते ॥

कृष्णायसेन घटितां ग्रहराजमूर्त्तिं
लौहे निधाय कलशे तिलतैलपूर्णे ।
यो ब्राह्मणाय रविजं प्रददाति भक्त्या
पीड़ा शनैश्चरकृता न हि बाधते तं ॥

---

(१) ये श्रोष्यन्ति समाहिताः इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

इति भविष्योत्तरे शनैश्चरव्रतं ।

——oo()oo——

श्रीकृष्ण उवाच ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि रहस्यं ह्येतदुत्तमं ।
येन लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिः कान्तिश्च जायते ॥
मूलेन सूर्य्यतनयं गृहीत्वा भरतर्षभ ।
तस्मिन्दिने पूजनीयं ग्रहत्रितयमादरात् ॥
शनैश्चरश्च राहुश्च केतुश्चेति क्रमान्नृप ।
होमं घृततिलैः कुर्य्याद्ग्रहनाम्ना च मन्त्रवित् ॥
पृथगष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिरेव वा ।
होतव्या मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना चैव घृतेन तु ।
यथाक्रमं शमीदूर्व्वाकुशाश्च समिधस्तु ताः ॥
सप्तमे चैव संप्राप्ते नक्षत्रे सूर्य्यसुतस्य च ।
ग्रहास्त्रयोऽपि कर्त्तव्या राजन् लौहमयाः शुभाः ॥
लौहपात्रे स्थिताः सर्वे सौवर्णे वा कुरूद्वह ।
कृष्णवस्त्रयुगं दद्यादेकैकस्य क्रमान्नृप ॥

अत्र शनिरूपं निरन्तरव्रतोक्तं वेदितव्यं ।

राहुकेतोश्च, मत्स्यपुराणात् ।

करालवदनः खड्गचर्म्मशूली वरप्रदः ।
नीलसिंहासनयुतो राहुरत्र प्रशस्यते ॥
धूम्रा द्विबाहवः सर्व्वे गदिनो विकृताननाः ।
गृध्रासनगता नित्यं केतवस्युर्व्वरप्रदाः ॥
मृगनाभ्या समालेप्य धूपं कृष्णागुरुस्तथा ।

दत्त्वा नैवेद्यकं सार्वं ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥
शनैश्वर नमस्तुभ्यं नमस्ते राहवे तथा ।
केतवेऽथ नमस्तुभ्यं सर्व्वशान्तिप्रदो भव ॥
एवं कृते भवेद्यत्तु तन्निबोध द्विजोत्तम ॥
यदि सौरी रवियुतो भास्करो राहुणा सह ।
केतवो मूर्द्ध्नि तिष्ठन्ति सर्व्वे पीड़ाकरा ग्रहाः ॥
अनेन व्रतमात्रेण सर्वे शाम्यन्त्युपद्रवाः ॥
य एवं कुरुते राजन् सदा भक्तिसमन्वितः ।
तस्य सानुग्रहाः सर्व्वे यच्छन्ति विजयं सुखं ॥
य एतां शृणुयाच्छान्तिं ग्रहाणां पठतेऽपि वा ।
तस्य सानुग्रहाः सर्व्वे शान्तिं यच्छन्ति भूपते ॥
सूर्य्यं विधुं कुजबुधौ गुरुशुक्रसौरीन्
हस्तादिऋक्षसहितानुदिनक्रमेण ।
संपूज्य हेमघटितान् द्विजपुङ्गवाय
दत्त्वा पुमान् ग्रहगणेन न पीड्यतेऽत्र ॥
शनैश्चरं राहुकेतून् लौहपात्रे व्यवस्थितान् ।
कृष्णागुरुः स्मृतो धूपो दक्षिणा चात्मशक्तितः ॥

इति भविष्योत्तरोक्ता शनैश्चरादिशान्तिः(१) ॥

———000@000———

नक्षत्रतिथियोगेन तिथीनां ग्रहयोगतः ।
पुनरेव प्रवक्ष्यामि व्रतानि तु यथा स्थितं ॥
रोहिण्याश्चाष्टमीयोगो यदा भवति सौम्यके ।

(१) ग्रहनक्षत्रादिशान्तिरिति पाठान्तरं ।

विशेषपूजा कर्त्तव्या पुत्रकामेन यत्नतः॥
पुष्ये शुक्लचतुर्द्दश्यां गुरुयोगो यदा भवेत्।
अथवा सोमसंयोगे विशेषात् पूज्य शङ्करम्॥
पायसं घृतसंयुक्तं शिवाय विनिवेदयेत्।
धूपदीपोपहाराद्यैः पूर्व्ववत् पूजयेच्छिवं॥
प्राशनन्तु घृतं कार्य्यं सर्व्वकामप्रदं व्रतम्॥
आदित्यरेवतीयोगश्चतुर्द्दश्यां यदा भवेत्।
अष्टम्यां वा मघायोगे शिवं संपूज्य पूर्व्ववत्॥
तिलास्तु प्राशने शस्ता आदित्यव्रतमीरितं।
आरोग्यं जायते तस्य पुत्रबन्धुगणैः सह॥
रोहिणीचन्द्रयोगश्च चतुर्द्दश्यां यदा भवेत्।
अष्टम्यां सोमसंयोगात्तदा चन्द्रव्रतं चरेत्॥
प्रागुक्तेन विधानेन शिवं संपूज्य यत्नतः।
दधि क्षीरन्तु नैवेद्यं प्राशनं क्षीरमेव च।
कीर्त्तिमारोग्यमैश्वर्य्यं प्राप्नुयान्नानृतं वचः॥
अश्विनीभौमसंयोगश्चतुर्द्दश्यां यदा भवेत्।
अष्टम्यां भरणीयोगस्तदा भौमव्रतं चरेत्॥
संपूज्य परया भक्त्या शिवं पञ्चोपचारतः।
रक्तोत्पलप्राशनन्तु साम्राज्यं प्राप्नुयाच्छुभं॥
रोहिणीबुधसंयोगश्चतुर्द्दश्यां यदा भवेत्।
अष्टम्यां वा समासेन बुधव्रतं समाचरेत्॥
शिवः पूज्यो विधानेन महास्नानपुरःसरं।
महावर्त्तिसमोपेतं प्राशनं पायसङ्घृतं।

पुत्रार्थं दाराश्च यशो वर्द्धते तस्य नान्यथा॥
रेवतीगुरुसंयोगश्चतुर्द्दश्यां यदा भवेत्।
अष्टम्यां तिष्यसंयोगाद्गुरुव्रतं तदा चरेत्॥
प्राशनं कपिलाज्यन्तु ब्राह्मीरससमन्वितं।
वागीशत्वमवाप्नोति व्रतस्यास्य प्रभावतः॥
श्रवणं भार्गवयुतं चतुर्दश्यां यदा भवेत्।
शुक्रव्रतं तदा विद्धि पुनर्व्वस्वष्टमी यदा॥
संपूज्य परमेशानं यथाविभवविस्तरैः।
प्राशनं मधु चैवात्र कर्त्तव्यं संयतात्मना।
महाफलमवाप्नोति व्रतस्यास्य प्रभावतः॥
भरणीशनियोगस्तु चतुर्द्दश्यां यदा भवेत्।
आर्द्रायोगस्तथाष्टम्यां तदा शनिव्रतं चरेत्॥
शिवं संपूज्य विधिवत् प्राशनं सस्यमेव च।
शनिरेकादशस्थो हि फलं यच्छति शोभनं॥
विरुद्धं शोभते वत्स तदर्थं व्रतमाचरेत्।
हेमकुप्यप्रवालञ्च कम्बलन्तु क्रमेण च॥
शङ्खञ्च तीक्ष्णलौहञ्च क्रमाद्यत्नेन दापयेत्।
यथा सम्भवते वत्स आचार्य्याय प्रयत्नतः॥

इति कालोत्तरोक्तानि तिथिनक्षत्रवारव्रतानि।

———000———

इन्द्र उवाच।

स्वल्पेनैव तु द्रव्येण महापुण्यं यथा भवेत्।
तदहं श्रोतुमिच्छामि ग्रहयागं सुरेश्वर॥

ब्रह्मोवाच ।

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि यथा त्वं परिपृच्छसि ।
अल्पक्लेशान्महापुण्यं ग्रहर्क्षतिथियौगिकं ॥
भृगुपौष्णाष्टमीयोगं शिवयोगेषु चोत्तमं ।
मृदुवर्गंस्थौ भाग्यं भद्रया भृगुवासरे ॥
दैवयोगाद्यदा षष्ठी पुष्यर्क्षरविवासरे ।
स्कन्दयागस्तदा कार्य्यः सर्व्वकामप्रसाधकः ॥
वारे चैव यदा सूर्य्ये सप्तमी विजया मता ।
तदा तु शोभनो योगो भवेत् सर्व्वगुणावहः ॥
शशिरिक्तासु संयोग आर्द्रर्क्षस्य सुरेश्वर ॥
नवम्यां मङ्गलो योगो भानुभूतदिनं यदा ।
अष्टम्यां चाथ चन्द्रो हि श्रवणेन सुखावहः ॥
अहिर्बुध्ने कुजाहे तु गणनाथस्य चाहनि ॥
पुनर्वसौ गुरोर्व्वारे द्वादश्यां श्रवणेन च ।
सोमगर्भं तदा यागं विष्णोः सर्व्वार्थसाधकं ॥
द्वितीयायां यदा सौम्ये कृत्तिकर्क्षं भवेत् क्वचित् ।
ग्रहयागस्तदा कार्य्यः सर्व्वशान्तिप्रदायकः ॥
स्वात्यां शनिचतुर्थी च उमायागे वरा स्मृता ॥
उत्तरासु च पूर्व्वासु भानुपूर्णाष्टमीषु च ।
ग्रहशान्त्यादिकं कृत्वा सर्व्वान् कामानवाप्नुयात् ।
गुरोरेकादशीपुष्ये रोहिण्यां वा शनैश्चरे ।
सुतसौभाग्यकामाय यागो रौद्रविनायकः ॥
पूर्णिमासु च सर्व्वासु अष्टमीद्वादशीषु च ।

चतुर्द्दश्यां तृतीयासु ग्रहर्क्षेषु शुभेषु च।
सर्व्वेषां सम्भवेद्यागो भक्तिपूर्व्वो महामुने॥
मन्त्रसाधनमिष्टाप्य रुद्रयागादवाप्यते॥
श्रीमेधाज्ञानमायुष्यमुमायागान्महामुने।
योगज्ञानं यशः सिद्धिं महादेवादवाप्नुयात्॥
आरोग्यं सुव्रतीयत्वं भास्करात् प्राप्यते ध्रुवं।
गतिमिष्टां यथाकामं प्रयच्छति त्रिविक्रमः॥
विज्ञानं सम्भवेत्तस्य यस्तु पश्येद्विनायकं॥
विगतारिर्भवेत् षष्ठ्यां दृष्ट्वा स्कन्दन्तु तत्क्षणात्।
मातृयागान्महासिद्धिः सर्व्वेषामपि जायते।
रूपवांश्च धनवान् पुंसां प्रथमाहे हुताशनात्॥
स्वर्गापवर्गसंसिद्धिर्दुर्गायागात् प्रजायते।
मायाद्यैर्मङ्गलाद्यैश्च ज्येष्ठायां ब्रह्मवित्तमैः॥
ईशाद्यैः कालिकाद्यास्तु यष्टव्या विधिना मुनेः॥
इत्याद्ये देवीपुराणे ग्रहतिथ्यर्च्चयागमाहात्म्यकीर्त्तनम्।

इति श्रीमहाराजाधिराजश्रीमहादेवस्य समस्तकरणाधीश्वर-
सकलविद्याविशारदश्रीहेमाद्रिविरचिते-
चतुर्व्वर्गचिन्तामणौ व्रतखण्डे
वारव्रतानि।

---

# अथ त्रयोविंशोऽध्यायः।



अथ नक्षत्रव्रतानि।

मनीषी हेमाद्रिर्नयविनयसम्पत्तिभवनं
द्विजन्मा सन्मार्गप्रथितपदसञ्चारचतुरः।
त्रिलोकीलोकानामविकलफलश्रेणिरचना
विचित्रं नक्षत्रव्रतगणमिदानीं वितनुते॥

पुष्कर उवाच।

अतः परं प्रवक्ष्यामि काम्यं कर्म्म तवानघ।
उपोषितौ सदा पुष्णि यजमानपुरोहितौ।
अश्विन्यृक्षे शुभे स्नानं कुर्य्यातां तन्निबोधत॥
अकीलभूमौ द्वौ कुम्भौ मधूककुसुमान्वितौ।
अश्वगन्धयुतौ कृत्वा स्थाप्यावथ सदा समौ॥
ततः संपूजयेद्विद्वान्नासत्यौ शशिनन्तथा।
अश्विनीं वरुणञ्चैव शुचिवासास्तथा हरिं(१)।
गन्धमाल्यनमस्कारैर्दीपधूपान्नसम्पदा॥
ततोऽश्वमिथुनं कार्य्यं सर्व्वौषधियुतं मृदा।
प्रणतेन ततो मूर्द्धा नासत्याभ्यां निवेदयेत्॥
धूपमष्टाङ्गकं दद्याद्देवानान्तु द्विजोत्तम॥
अश्वलोम तथाश्वत्थफलमूले च वा सदा।

(१) शुक्लवासास्तथाहरिमिति पाठान्तरं।

एकत्र निभृतं कृत्वा मणिर्द्धार्य्यस्तु शोभनः॥
अलं दधत्त्वाश्विनमेतदेव
स्नानं प्रकुर्व्वन् प्रयतो मनुष्यः।
अश्वानवाप्नोति निरस्तसङ्ग्यान्
कुलोद्भवान् वीर्य्यबलोपपन्नान्॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं(१)अश्विनीस्नानं।

——000——

ब्रह्मोवाच।

इत्येते कथिताः कृष्ण तिथियोगा मया तव।
नक्षत्रदेवताः सर्व्वाः नक्षत्रेषु व्यवस्थिताः॥
इष्टान् कामान् प्रयच्छन्ति यथास्थानं सुरेश्वर।
चन्द्रमा यत्र नक्षत्रे यदा समधितिष्ठति।
उक्तास्तु देवयज्ञस्तु तदा स सफलो भवेत्॥
देवताश्च प्रवक्ष्यामि नक्षत्राणां यथातथं।
नक्षत्राणि च सर्वाणि यज्ञश्चैव पृथक् पृथक्॥
अश्विन्यामाश्विनाविष्टा दीर्घायुर्ज्जायते नरः।
व्याधिभिर्मुच्यते क्षिप्रं योऽत्यर्थं व्याधिपीड़ितः॥
भरण्यां यमराड़िष्टः कुसुमैरसितैः शुभैः।
तथा गन्धादिभिः शुभ्रैरपमृत्युं विमोचयेत्॥
अनलः कृत्तिकायान्तु ऋद्धिं संपूजितः परां।
रक्तमाल्यादिभिर्द्द्याद्घृतहोमेन च ध्रुवं॥
प्रजाः प्रजापतिः प्रीत इष्टो(२) दद्यात्पशूंस्तथा।

(१) भविष्योत्तरोक्तमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

(२) पूज्यः प्रजापतिः प्रीत इष्टमिति पाठान्तरं।

रोहिण्यां देवशार्दूल गोजन्माह जगत्पते ॥
मृगशीर्षे तथा सोमं जातिमारोग्यमेव च ॥
आर्द्रायान्तु शिवं पूज्य पशून् विजयमेव च।
सितैः पद्मादिभिर्हिव्यैर्हैवत्वं पयसा च वै।
पुत्रान् पुनर्व्वसौ दद्याच्चरुणा तर्प्पिता दितिः॥
तिष्ये बृहस्पतिर्बुद्धिं विपुलं सुखमेव तु।
भोगान् गन्धादिभिर्नागा अश्लेषायां प्रपूजिताः॥
तर्पिताश्च प्रयच्छन्ति भक्ष्याद्यैर्मधुरैः शुभैः।
मघासु पितरः पुष्टिं घृतपायसतर्पिताः॥
पूर्व्वायां विजयं दद्याद्भगो देवः सुतर्पितः॥
भक्त्या प्रपूजितो दद्यादुत्तरायां तथार्य्यमा।
भर्त्तारमीप्सितं नार्य्याः पुंसश्च वरयोषितं॥
नीरोगत्वं तथायुष्यं सम्पदं चारुरूपतां।
पुष्पवस्त्रार्च्चितो हस्ते दद्यात्तेजोनिधिस्तथा॥
चित्रासु पूजितस्त्वष्टा दद्यादारोग्यमेव च(१)।
स्वात्यां संपूजितो वायुः पुत्रानिष्टान् प्रजच्छति(२)॥
इन्द्राग्नी तु विशाखायां पीतरक्तैः प्रपूज्य च।
धनं राज्यञ्च लब्ध्वेह तेजस्वी निवसेत्सदा॥
रक्तैर्मित्रमनूराधास्वेवं संपूज्य भक्तितः।
प्रियो जनानां सर्व्वेषां चिरञ्जीवति सर्व्वदा॥
ज्येष्ठायां पूर्व्ववच्चेन्द्रमिष्ट्वा पुष्टिमवाप्नुयात्।

---

(१) राज्यं मित्रञ्च चित्रायां निःसपत्नं प्रयच्छतीति पाठान्तरं।

(२) इष्टस्त्वष्टार्च्चितः प्रीतः स्वात्यां वायुर्ब्बलं परमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

गुणैः सर्वैस्तु संपूर्णः कर्म्मणा वचनेन च ॥
मूले निर्ऋतिमिष्ट्वा च भक्षैस्तु पललादिभिः।
पूर्व्ववत् फलमाप्नोति स्वस्थाने च ध्रुवो भवेत् ॥
अप इष्ट्वा जलैरेतैर्हुत्वा तत्रैव पूर्व्ववत्।
सन्तापान्मुच्यते चिप्रं शारीरान्मानसात्तथा ॥
आषाढ़ासु तथा विश्वविरिञ्चिगतुरयोगतः।
संपूज्य श्रियमाप्नोति परं विजयमेव तु(१) ॥
श्रवणे पूजितो विष्णुः सर्व्वान् कामान् प्रयच्छति(२)।
धनिष्ठासु वसूनिष्ट्वा न भयं प्राप्नुयात् क्वचित् ॥
महतोऽपि भयात्तीर्णो गन्धपुष्पादिभिः शुभैः(३)।
वरुणं शतभिषास्वर्च्य व्याधिभिर्मुच्यते नरः ॥
अजश्चाद्रपदायान्तु शुद्धस्फटिकसन्निभं।
संपूज्य मुक्तिमाप्नोति नात्र कार्य्या विचारणा ॥
उत्तरायामहिर्बुध्नं परां शान्तिमवाप्नुयात् ॥
रेवत्यां पूजितः पूषा ददाति विविधान् पशून्।
सितैः पुष्पैस्तथा दीपैर्धूपैर्व्विजयवर्द्धनैः ॥
य एते वै समाख्याता यज्ञाः संचेपतो मया।
नक्षत्रदेवतानां हि साधकानां हिताय वै।
तस्माद्वित्तानुसारेण भवन्ति फलदायकाः ॥
गन्तुमिच्छेद्यदान्यत्र क्रियाप्रारम्भ एव च।

(१) विश्वासं परमं लब्ध्वा स्वर्गमाप्नोति मानव इति पाठान्तरं।
(२) दीपैर्धूपैश्च भक्तित इति पाठान्तरं।
(३) रक्तैश्च कुसुमैः शुभैरिति पाठान्तरं।

नक्षत्रदेवतायज्ञं कृत्वा तं सर्व्वमाचरेत्॥
एवं कृते हि तत्सर्वं यात्राफलमवाप्नुयात्।
क्रियाफलन्तु संपूर्णमित्युक्तं भानुना स्वयं॥

इति भविष्यत्पुराणोक्तो नक्षत्रपूजाविधिः।

———000———

श्रीराम उवाच।

अन्यं दैवमवाप्नोति शत्रुनाशमथापि वा।
स्वेच्छया कर्म्मणा केन सदा मनुजपुङ्गव॥
पूजयेद्वासुदेवन्तु कुङ्कुमेन सुगन्धिना।
श्वेतैश्च कुसुमैर्हृद्यैर्धूपं दद्याच्च गुग्गुलं॥
घृतेन दीपं दद्याच्च रक्तवस्त्रं तथैव च।
निवेदनीयं देवाय तथा सर्व्वं निवेदयेत्॥
होतव्यञ्च समृद्धेऽग्नौ तथैव च सुरर्षभ।
आयुधानि च देयानि ब्राह्मणेभ्यस्तु दक्षिणा॥
कृत्वैतदग्र्यं रिपुनाशकारि
कार्य्यं सदा शत्रुगणप्रमाथि।
कृत्वैतदग्र्यं रिपुनाशमाशु
प्राप्नोति मर्त्यो न हि संशयोऽत्र॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं शत्रुनाशनव्रतम्।

———000———

श्रीराम उवाच।

कर्म्माणि श्रोतुमिच्छामि काम्यानि गृहिणामहं।
त्वत्तः सर्व्वज्ञ धर्मज्ञ यादोगणनृपात्मज।

पुष्कर उवाच।

कृतोपवासो याम्यर्चे सोपवासस्य भार्गव।
पुरोधाःस्नपनं कुर्य्यात् कृत्तिकासु यथाविधि॥
प्रकीर्णमूलैः कलशैर्मृन्मयैरथ काञ्चनैः।
पूर्णैः सर्व्वौषधिगणैस्तथा तीर्थोदकैः शुभैः॥
अश्वत्थशिरीषाणां न्यग्रोधानां फलैस्तथा।
पात्रपूर्णैस्तथा युक्तैस्तिलैः कृष्णैर्द्विजोत्तम॥
रक्तमाल्येन सूत्रेण बद्धकण्ठैस्तथैव च।
आग्नेय्याशामुखः स्थाप्यो नीलवासा द्विजोत्तमः॥
वह्निं कुमारं शशिनं खड्गं वरुणमेव च।
पूजयेत् कृत्तिकास्वेव गन्धमाल्यान्नसम्पदा॥
पीतरक्तैस्तथा वस्त्रैर्घृतदीपैस्तथैव च।
दध्ना गव्येन लाजाभिरग्निमन्त्रेण वाप्यथ॥
कृशरापूपिकाभिश्च अपूपैश्च पृथग्विधैः।
देवतानां यथोक्तानां प्रियङ्गुं जुहुयात्ततः॥
गर्द्दभाश्वमयूराणां लोमानि मनुजोत्तम।
धारयेद्दक्षिणे सम्यक् शक्त्या कनकमेव च।
श्वेतवासास्ततः पश्चात्पूजयेन्मधुसूदनं।
कर्मैतत्सततं कृत्वा गच्छेद्वह्नेः पुरं सदा॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं कृत्तिकास्नानं।

———000———

नन्दिरुवाच।

रोहिणी जन्मनक्षत्रं साक्षाद्देवस्य चक्रिणः

ताम्ररुक्ममयीं कृत्वा पञ्चरत्नेन संयुतां॥
स्थापयेद्वस्त्रयुग्मेन पुष्पधूपैः(१) प्रपूजयेत्।
कालोद्भवफलैर्हृद्यैर्नैवेद्यैश्च तथाचितैः॥
द्वितीयेऽह्नि समाप्यैतद्ब्राह्मणायोपपादयेत्।
श्रोत्रियाय सुरूपाय भिक्षुकाय कुटुम्बिने॥
स्वयं नक्तेन भुञ्जीत रोहिण्या दर्शने कृते।
एवं विधं व्रतं दिव्यं दिवि देवाश्च चक्रिरे॥
वर्षे वर्षे समायाते देवाश्चाद्यापि कुर्व्वते।
यं यं काममभिध्यायन् तं तमाप्नोत्यसंशयं॥

## इति स्कन्दपुराणोक्तं रोहिणीव्रतं।

———000———

पुष्कर उवाच।

उपोषितौ कृत्तिकासु यजमानपुरोहितौ।
रोहिण्यां स्नपनं कुर्य्याद्यजमानस्य भार्गव॥
क्षीरवृक्षप्ररोहाज्यसितमाल्यविभूषितान्।
प्रियङ्गुचन्दनोपेतान् पञ्च कुम्भान् प्रकल्पयेत्॥
प्राङ्मुखो व्रीहिराशिस्थं कुम्भैस्तैरभिषेचयेत्।
विष्णुं शशाङ्कं वरुणं रोहिणीञ्च प्रजापतिं॥
पूजयेत्संयतः स्रग्वी गन्धमाल्यानुलेपनैः।
धूपः प्रजापतेर्देयस्तथा विष्णुशशाङ्कयोः॥

(१) गन्धधूपैरिति पाठान्तरं।

पञ्च पिष्टवृषान् दिव्यान् धूपञ्च विनिवेदयेत्।
पूजासिद्धाय होमन्तु देवतानाञ्च कारयेत्॥
घृतेन सर्व्वबीजैश्च शुक्लवासा जितेन्द्रियः।
दक्षिणा गुरवे देया कांस्यं गौर्व्वाससी शुभे॥
सुवर्णञ्च महाभाग विप्राणामथ भक्तितः।
पांशुकर्द्दमसंयुक्तमश्वलोम शफं तथा॥
शृङ्गञ्च त्रिवृतं कृत्वा मणिर्धार्य्यः शुभप्रदः।
अलं क्रियार्थं तदिदं सदैव
स्नानन्तु कुर्व्वन् पुरुषोऽथवा स्त्री।
पुत्रानवाप्नोति तथेप्सितांश्च
पुष्टिं तथाग्र्यां विपुलाञ्च कीर्त्तिं॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं रोहिणीस्नानं।

——ooo——

मनुरुवाच।

ग्रहदोषोपसृष्टस्य राज्ञो राजसुतस्य च।
महिष्यो वा मृतापत्या द्विजादिष्वथ वा जने।
विपद्यते फलं यत्र सुप्रयत्नकृतोद्यमे।
गजाश्वगोवृषाणाञ्च यत्र हानिः प्रजायते॥
यत्र भौमान्तरीक्षे च उपसर्गः प्रदृश्यते।
तत्र कुर्य्यान्महाभाग यागं पुष्याभिषेचनं॥
मूलं राजा समाख्यातस्तस्य शाखा प्रजादिकं।
उपसंहारसंस्कारे शुभे वाप्यशुभेऽपि वा॥

यत्नः कार्य्यः सदा वत्स मूले शाखादिकं भवेत् ।
मूले विनष्टे नश्यन्ति शाखाद्याः फलसञ्चयाः ॥
तदर्थं मूलरक्षायां यतितव्यं महामुने ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां स हि हेतुः प्रपद्यते ॥
ब्रह्मणा या पुरा शान्तिर्महेन्द्रार्थं बृहस्पतेः ।
व्याख्याता कीर्त्तयिष्यामि तान्ते शौनक शृणुष्व ॥
पुष्यस्नानं महापुण्यं सर्व्वपापप्रणाशनम् ।
उत्पातशमनं दिव्यं यत्र कुर्वीत शार्ङ्ग ॥
वल्मीकतुषकेशास्थिकण्टककण्टकिवर्जिते ।
शिग्रुश्लेष्मातदौर्गन्ध्यविगते च महीतले ।
कङ्कापोतगृध्रोलूककाकानदिवर्जिते ॥
सुप्लुते चम्पकाशोकवकुलाम्रातशाद्वले ।
तरुणवल्लिवितते निरुपहतरक्षान्विते ।
सुमधुरवृक्षप्राये(१) फलपल्लवशोभिते ।
पक्षिशावगणाकीर्णे ह्लकवाकूपशोभिते ।
जीवजीवकहारीतशतपत्रशुकाकुले ॥
चकोरचाससंयुते चक्रवाकोपशोभिते ।
शिखिपारावताश्लीककोककोकिलनादिते ॥
मधुपुष्पासवसुरामधूककुसुमाकुले ।
यागं कुर्य्याद्वनोद्देशे हेमेऽरण्येऽथवा शुभे ॥
हिमाद्रावुज्जयन्ते वा सह्ये विन्ध्ये दर्दुरेऽपि वा ।
नदीनां पुलिने वापि सङ्गमे वा सरोरुहे ॥

(१) सुमधुरवृक्षच्छाये इति पाठान्तरं ;

गोरोचनालक्तकरक्तशङ्खकुङ्कुमशोभिते ।
समुद्रतीरे कुर्य्याच्च आश्रमे वा गृहेऽपि वा ॥
पूर्वोदक्प्लवभूभागे प्रदक्षिणपथे जले ।
श्वाविमूषिकविरते कर्कटावासवर्जिते ॥
वर्णगन्धरसोपेता घना स्निग्धा समा मही ।
या क्लृष्टबीजरोहाद्यैर्व्वहुशः सुपरीक्षिता ॥
गत्वा तां सुमुहूर्त्तेऽथ कौवेर्य्यामधिवासयेत् ।
बलिपुष्पोपहारञ्च मन्त्रयुक्तं निवेदयेत् ॥
आगच्छन्तु सुराः सर्व्वे येऽत्र पूजाभिलासिनः ।
दिशो नगा द्विजाश्चैव ये चान्ये अंशभागिनः ॥
आवाह्यैवन्ततः सर्व्वानेवं ब्रूयात्पुरोहितः ।
श्वः पूजां प्राप्य यातारो दत्त्वा शान्तिं महीभुजे ॥
कृत्वा पूजां ततस्तेषां रात्रौ तस्यां व्रती वसेत् ।
स्नात्वा शुभाश्वगोवत्सदधिशर्षपदर्शनं ॥
पुष्पदूर्व्वाक्षतफललाजदर्शनमेव च ।
छत्रचामरशङ्खाब्जभिन्नवस्त्रादिदर्शनं ।
लाभो वा सर्व्वकामानां पूरणाय प्रकीर्त्तितः ॥
फलपुष्पयुता वृक्षाः क्षीरिणः शुभदा मताः ।
तेषामारोहणं श्रेष्ठं प्रासादेभनृपादिषु ॥
चन्द्रार्कग्रहणं शस्तं पर्व्वतारोहणं शुभं ।
निगडं बन्धनं स्वप्ने विद्विषश्च जयावहः ।
परिवर्त्तं गिरेः कुर्य्याच्छक्रं वाचावगूहति(१) ॥

(१) च्छत्रं वाचावगूहते इति पाठान्तरं ।

वेष्टयेद्यस्तु प्रासादं स्वप्ने तस्य जयो भवेत् ।
लभते चेप्सितं सर्वं लाभो तस्य तु वै भवेत् ॥
मृतरोदनहीनस्त्रीगमनञ्च शुभावहं(१) ।
स्वप्ने तु कूपपङ्केषु गर्त्तेषु तरणं शुभं ।
नदीषु तरणं शस्तं समुद्रतरणं तथा ।
निर्ज्जित्य शत्रुसैन्यञ्च जयं प्राप्नोति मानवः ॥
कटकाद्या अलङ्काराः पुत्रराज्यसुखप्रदाः ।
सुहृद्स्वजनवैपञ्चीलाभाः स्त्रीधनदायकाः ॥
रुधिरारम्भः पिवेद्यस्तु तरते वा यदि क्वचित् ।
मांसास्थिभक्षणे लाभो लभते वा हितं फलं ॥
हास्यनृत्यचरोत्साहपतनाः कलिकारकाः ॥
याम्ये यातागताकृष्टानयनं भयमृत्युदं ।
पश्चिमे यानगामित्वं तथाकूपप्रवेशनं ।
उत्तरे भयदः स्वप्ने रक्तमाल्याम्बरागमः ॥
खरोष्ट्रकपिकापोतवराहाहिनिशाचरान् ।
दृष्ट्वाशुभान् जयः कार्य्यो घातपातफलप्रदान् ॥
वातपित्तकफोत्थेषु यानाग्नितरणादिषु ।
ग्रीष्मशरद्वसन्तेषु प्रपादानफलप्रदाः ॥
श्रुतानुकीर्त्तणं दृष्टमनुभूतं विगर्हितं ।
न चेष्टा यदि वा दृष्टाः प्रदोषप्रथमे तथा ॥
मध्ये मध्यफलाः सर्व्वे चान्ते शीघ्रफलप्रदाः ।
गोविसर्गेञ्च ये दृष्टास्ते तथा परिकीर्त्तिताः ॥

---

(१) अगम्यागमनं शुभमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

दृष्ट्वा स्वप्नान् शुभान् यागं कुर्य्यात्त्विष्टन्तु कारयेत्।
स्नानं देवार्च्चनं होमं जयं शान्तिं समारभेत्॥
कृत्वा सर्व्वान् लभेत् वत्स ततो मण्डलमालिखेत्।
चतुर्हस्तं समारभ्य यावद्धस्तशतं भवेत्॥
मण्डलं तत्र कर्त्तव्यमत ऊर्द्धं न कारयेत्।
विमलं विजयं भद्रं विमानं शुभदं शिवं॥
वर्द्धमानञ्च देवञ्च लताख्यं कामदायकं।
सचक्रं स्वस्तिकाख्यञ्च इति द्वादश मण्डलाः॥
सितादिहरितानाञ्च रजःकार्य्यैः सुशोभनः॥
शालिषष्टिककौसुम्भरजनीहरिपत्रजाः।
मणिविद्रुमरागाश्च भस्मना अभिमन्त्रिताः।
सितसर्षपधूपाढ्यं रजः कृत्वा तु पातयेत्॥
अस्त्रराजं न्यसेन्मन्त्री सम्भवन्ति पदानि वा।
सौम्यं स्थानं शुभङ्कृत्वा गोमयेनोपलेपितं॥
चन्दनागुरुकर्पूरक्षोदधूपादिवासितं।
भूभागं सुमितं सिद्धं पूर्व्वं पश्चिममुत्तरं।
याम्यं स्वस्तिकशङ्खाद्यैः सूत्रैः काण्डकमण्डितैः।
पद्मपत्राष्टकं मध्ये त्रिगुणं त्रिगुणीकृतं॥
द्वाराणि समसूत्राणि कर्णिकाकेशरोज्ज्वलं।
पद्मं तथा च शेषाणि स्वस्तिकान्यत्पकानि च॥
सर्व्वेऽवलम्ब्य हस्ते तु रजःपातं समारभेत्।
मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैरतःरिटाद्ययेच्छया॥
अधोमुखाङ्गुलीं कृत्वा पातयेत्तु विचक्षणः।

समा रेखा तु कर्त्तव्याविच्छिन्ना पुञ्जवर्ज्जिता ॥
अङ्गुष्ठपर्व्ववत्स्थूला समा कार्य्या विजानता ॥
ससक्तं विषमं स्थूलं विच्छिन्नं कृशलावृतं ।
पर्य्यन्तमर्पितं रूक्षमालिखेन्न कदाचन ॥
ससक्ते कलहं विद्याद्वक्ररेखे च विग्रहं ।
अतिस्थूले भवेद्व्याधिर्नित्यं पीड़ा विमिश्रिते ॥
बिन्दुभिर्भयमाप्नोति शत्रुपच्चान्न संशयः ।
कृशायाञ्चार्थहानिः स्याद्विच्छिन्ने मरणं ध्रुवं ।
वियोगो वा भवेत्तस्य इष्टद्रव्यसुतस्य च ॥
अविदित्वा लिखेद्यस्तु मण्डलन्तु यथेच्छया ।
सर्व्वदोषानवाप्नोति ये दोषाः पूर्व्वभाषिताः ॥
चतुरस्रं चतुर्द्वारं लिखेन्मण्डलमुत्तमं ।
मण्डलस्य प्रमाणेन पद्मं द्वारे समालिखेत् ॥
हस्तोनं न च कर्त्तव्यं पद्मं विप्र कदाचन ।
नाधिकं चतुरूर्द्धन्तु लिखितव्यं विजानता ॥
प्रतापायुः श्रियो धर्म्मो राज्यस्त्रीरूपसम्पदः ।
अवाप्यन्तेऽर्थलाभश्च पूर्व्वद्वारे च मण्डले ॥
बुद्धिर्मेधा यशः सौख्यमारोग्यं जनवल्लभं ।
सर्व्वकामार्थसिद्धिश्च उत्तरद्वारि मण्डले ॥
पुत्र आयुर्बलञ्चैव सौभाग्यं रिपुमर्द्दनं ।
यज्ञकर्म्माभिवृद्धिश्च पश्चिमद्वारि मण्डले ॥
तस्य मध्ये पुनः पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकं ।
चतुर्वितस्तिकं विप्रे राजन्ये त्रिवितस्तिकं ।

अर्द्ध द्वयन्तु वैश्यस्य स्त्रीशूद्रैर्द्धि वितस्तिकं ॥
पद्मस्यैवानुपूर्व्वेण नालन्तदनुपूर्व्वशः ।
वारुणीन्दिशमाश्रित्य नालन्तु परिकल्पयेत् ॥
सप्तपातालगं नालं भुवनान्तं प्रकीर्त्तितं ॥
कर्णिका तु भवेन्मेरुर्व्वीजैश्चं द्रगणैस्थिता ।
केशरस्तु भवेन्नद्यः कर्णिकैः पर्व्वतास्थिताः
अष्टौ दला दिशः प्रोक्ता ऋषयः पद्मसंस्थिताः ॥
सप्तपातालभूलोको नालन्तु परिकीर्त्तितं ।
ईदृशं कल्पितं पद्मं देवदेवेन शम्भुना ॥
ध्वजतोरणसंयुक्तं पताकाभिरलङ्कृतं ।
भूर्लोकस्तु दला ज्ञेया दिगात्मा शून्यगोचरः ॥
स्वर्लोकः कर्णिका ख्यातस्त्रैलोक्यं पद्मसंश्रितं ।
कर्णिकायां न्यसेद्देवं पूजाकाले महेश्वरं ॥
मातरो ग्रहनागाश्च यक्षरक्षोदिवाकराः ।
वसवो मुनिलोकेशाः सरुद्रा भुवनाधिपाः ॥
कलाः काष्ठाः(१) चणा यामा रात्र्यहः ससितासिताः ।
पक्षा मासा ऋतुर्भागाः समा युगयुगान्तराः ।
कल्पान्ताश्च महाकल्पाः पद्मे चैवं समालिखेत् ॥
प्रथमे मण्डले देवं शिवं विघ्नेशसंयुतं ।
गणनायकसंयुक्तं द्वितीये वरणे यजेत् ॥
सग्रहं भास्करं प्राच्यां ऐशान्यान्तु पिनाकिनं ॥
सौम्यास्यं केशवं रचेत् पश्चिमास्यं पितामहं ।

(१) लवाः काष्ठा इति पाठान्तरं ।

तृतीये वरणे चैवं मेदिन्यामुपकल्पयेत् ॥
नानारत्नाकराकीर्णे भूयो देवान् समालिखेत्।
पुरोहितो यथास्थानं नागान् यक्षान् पितॄन् सुरान् ॥
गन्धर्वाप्सरसश्चैव मुनीन् सिद्धान्निवेशयेत्।
ग्रहांश्च सह नक्षत्रैः सरुद्राश्चैव मातरः ॥
स्कन्दं विष्णुं विशाखाञ्च लोकपालान् सुरस्त्रियः।
सुवर्णैर्विविधैः कृत्वा हृद्यैर्गन्धगुणान्वितैः ॥
यथा संपूजयेद्विद्वान् गन्धमाल्यानुलेपनैः।
भक्ष्यैरन्यैश्च विविधैः फलमूलादिभिस्तथा ॥
पानैश्च विविधैर्हृद्यैः सुराक्षीरासवादिभिः।
विशेषाद्विहिता पूजा ग्रहयज्ञे मया पुरा ॥
मातॄणाञ्च सुराणाञ्च साप्यत्रैवोपकल्पते।
पिशाचान् दानवान् रक्षान् मांसमद्यैः प्रपूजयेत् ॥
अभ्यञ्जनाञ्जनतिलैर्मांसेन पितरस्तथा।
मुनयः सामगर्जुभिर्माल्यैस्त्रिमधुरेण च ॥
नागानशेषैरत्नैश्च वर्णकैश्चैव पूजयेत्।
धूपाद्याहुतिदानैश्च देवान् रत्नैः प्रदक्षिणैः ॥
गन्धर्वाप्सरसो गन्धैर्माल्यैः सुमनसा तथा।
शेषांस्तु सर्व्वान् बलिभिः पुष्पगन्धैश्च पूजयेत् ॥
प्रतिनाम्ना पताकाश्च वस्त्राण्याभरणानि च।
सर्व्वेषाञ्च प्रदेयानि सुयत्नोपहितानि च ॥
दक्षिणे पश्चिमे वापि वायव्यां मण्डलस्य च।
ग्रहयज्ञविधानेन होमं मातृमखोदितं ॥

कृत्वा द्रव्यैरिमैर्वत्स यथोक्तैर्लक्षणान्वितैः।
लाजाक्षतघृतं क्षौद्रं दधि क्षीरं तु सर्षपाः॥
सिद्धार्थाः सुमनोगन्धा धूपाश्च ससितोत्कटाः।
गोरोचना तिला दर्भा मुद्गजातिफलानि च॥
घृतपायससम्पूर्णान् सरावान् विनिवेदयेत्।
पश्चिमायान्तु वै वेद्यां पूजायां स्नातको भवेत्॥
कलशान् सुदृढ़ान् कुर्य्यात् लक्षणेन वदामि ते।
उत्पत्तिलक्षणं स्थानं कथयामि महामुने।
वाचकाः कलशाश्चैव येन लोके प्रकीर्त्तिताः॥
अमृते मथ्यमाने तु सर्व्वैर्देवैः सदानवैः।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिं॥
उत्पन्नममृतं तत्र महावीर्य्यपराक्रमं।
तस्य सन्धारणार्थाय कलशः परिकीर्त्तितः॥
कलां कलां गृहीत्वा च देवानां विश्वकर्म्मणा।
निर्म्मितोऽयं सुरैर्यस्मात् कलशस्तेन उच्यते॥
कलशस्य मुखे ब्रह्मा ग्रीवायान्तु महेश्वरः।
मूले तु संस्थितो विष्णुर्मध्ये मातृगणाः स्थिताः॥
शेषास्तु देवताः सर्व्वा वेष्टयन्ति चतुर्द्दिशं॥
कुक्षौ तु सागराः सप्त सप्त द्वीपास्तु मध्यतः।
नक्षत्राणि ग्रहाःसर्व्वे तथैव कुलपर्व्वताः॥
हिमवान् हेमकूटश्च निषधो मेरुरेव च।
रोहितो माल्यवांश्चैव सूर्य्यकान्तिश्च पर्व्वताः॥
गङ्गा सरस्वती सिन्धुसुभगा यमुना नदी।

ऐरावती शतद्रुश्च तथा वैतरणी नदी।
गोदावरी नर्म्मदा च मही नाम महानदी॥
कुरुक्षेत्रं प्रयागश्च एकहस्तं पृथूदकं।
अमरेशं पुण्डरीकं गङ्गा सागर एव च॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि कलशे निवसन्ति वै।
स्वाहा शान्तिश्च पुष्टिश्च प्रीतिर्गायत्रिरेव च॥
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदस्तथैव च।
अथर्व्ववेदसहिताः सर्व्वे कलशसंस्थिताः॥
नवैव कलशाः पुण्याः शम्भुमूर्त्तिसमुद्भवाः।
गोभ्योपगोभ्यो मरुतः सुमन्दश्च तथापरः॥
मनोहरः खलुभद्रः पञ्चमः परिकीर्त्तितः।
विरूजस्तनदूषश्च षष्ठसप्तमकावुभौ।
अष्टमस्त्विन्द्रियातीतो नवमो विजयः स्मृतः॥
नवैव कलशाः ख्याता अधिदैवं निबोध मे।
शृणु वत्स यथा तेषान्दिशोन्यासे व्यवस्थिताः॥
नवमो यः समाख्यातो विजयो नाम नामतः।
शिवस्तत्र स्थितः साक्षात्सर्व्वपापहरः शुभः॥
स तु पञ्चमुखः ख्यातो लोके सर्वार्थसाधकः।
पञ्चब्रह्मात्मको यस्मात्तेन पञ्चमुखः स्मृतः॥
पश्चिमे तु मुखे सद्यो वामदेवस्तथोत्तरे।
पूर्व्वे तत्पुरुषं विद्यादघोरञ्चापि दक्षिणे॥
ईशानः पञ्चमो मध्ये सर्व्वेषामुपरिस्थितः।
एते पञ्च मुखा वत्स पापघ्ना ग्रहनाशनाः॥

रुद्रे जातो भवेच्छुक्लो वामदेवस्तु पीतकः।
रक्तस्तत्पुरुषो ज्ञेयो अघोरः कृष्ण एव च॥
ईशानः पश्चिमे तेषां सर्व्ववर्णैः समन्वितः।
कामदः कामरूपी स्यात् ज्ञानाधारः शिवात्मकः॥
क्षितीन्द्रो ज्येष्ठकलशो द्वितीयो जलसम्भवः।
तृतीयः पवनश्चैव चतुर्थस्तु हुताशनः।
पञ्चमो यजमानस्तु षष्ठश्चाकाशसम्भवः॥
सोमस्तु सप्तमः प्रोक्त आदित्यश्च तथाष्टमः।
एते चोत्पादिता दिव्याः शिवेनाधिष्ठिताः पुरा॥
इन्द्रस्य मूर्त्तयश्चाष्टौ सूर्य्यस्य तु नव स्थिताः।
क्षितीन्द्रः पूर्व्वतो न्यस्यः पश्चिमे जलसम्भवः॥
वायव्ये वायवो न्यस्य आग्नेये अग्निसम्भवः।
नैर्ऋते यजमानस्तु ऐशान्यां कामसम्भवः॥
सौम्य उत्तरतो योज्यः सौरं दक्षिणतो न्यसेत्।
न्यस्यैवं कलशानान्तु पूर्व्वरूपं विचिन्तयेत्॥
कलशानां मुखे ब्रह्मा ग्रीवायां विष्णुरेव हि।
मध्ये मातृगणाः सर्व्वे सेन्द्रा देवाश्च पन्नगाः(१)॥
कुक्षौ तु सागरास्तेषां सप्तद्वीपा च मेदिनी।
श्रिया चैव तथोमा च गन्धर्वा ऋषयस्तथा।
पञ्चभूतास्तथा घोरास्तेषामधरतः स्थिताः॥
पूर्णाः पूतेन तोयेन सितास्त्वेकान्ततोज्ज्वलाः।
सरित्सरःखातजेन ताड़ागेन जलेन वा।

(१) रुद्रा देवाश्च इति पाठान्तरं।

वापीकूपादितोयेन सामुद्रेण सुखावहाः ॥
सर्व्वमङ्गलमाङ्गल्याः सर्व्वकिल्बिषनाशकाः ।
अभिषेके सदा ग्राह्याः कलशा ईदृशाः शुभाः ॥
यात्राविवाहकाले वा प्रतिष्ठायज्ञकर्मणि ।
योजनीया विशेषेण सर्व्वकामप्रसाधकाः ॥
मृतापत्या तु या नारी या च वन्ध्या प्रकीर्त्तिता ।
मूढ़गर्भा त्वगर्भा च दुर्भगा व्याधिपीड़िता ।
एतासाञ्च सदा कार्य्यं स्नापनं पुष्पमण्डले ॥
सर्व्वरत्नौषधीगन्धफलपुष्पसमन्विताः ।
ग्रहदोषे प्रकर्त्तव्याः कल्याणे मङ्गले तथा ॥
ग्रहान् चारयते यस्मान्मातरो विविधास्तथा ।
दुरितांश्च महाघोरांस्तेन ते चारकाः स्मृताः ॥
एकैकान्तु कलां मूर्त्तैः क्षित्याद्यैश्च यथाक्रमं ।
संहृत्य संस्थिता यस्मात्तेन ते कलशाः स्मृताः ॥
हैमराजतताम्रा वा मृन्मया लक्षणान्विताः ।
पञ्चाङ्गुलाश्च विस्तीर्णा उत्सेधाः षोड़शाङ्गुलाः ॥
कलशानां प्रमाणन्तु मुखमष्टाङ्गुलम्भवेत् ।
अष्टमूर्त्तिस्थितो योऽसौ स शिवः पद्मसम्भवः ॥
मूर्त्तयोऽष्टौ गणास्तस्य कर्णिकायां शिवः स्थितः ।
ये गणास्ते दला नागा ये नागाः कलशाश्च ते ॥
कलशाश्च ग्रहाः प्रोक्ता लोकपालाः दिशश्च ते ।
एतैः सर्व्वमिदं व्याप्तमाब्रह्मभुवनं जगत् ॥
दुराधर्षैर्महासत्त्वैः सर्व्वपापविनाशकैः ।

रत्नानि वीजपुष्पाणि फलानि कलशे क्षिपेत्।
पुष्पमालाश्च वस्त्राणि सितचन्दनचर्चिताः॥
वज्रमौक्तिकवैदूर्य्यमहापद्मैश्च स्फाटिकैः।
सर्व्वैः शुभैः फलैर्विल्वनारङ्गोडुम्बरैस्तथा॥
वीजपूरकजम्बीरआम्राम्रातकदाड़िमैः।
यवशालिनिवारैश्च गोधूमसितशर्षपैः॥
कुङ्कुमागुरुकर्पूरमदरोचनचन्दनैः।
मांस्येलाकुष्ठकर्पूरपत्रचण्डासुराजलं॥
निर्य्यासाम्बुदशैलेयसर्ज्जदेवदलं फलं।
जातीपत्रकनागाह्वाः पृक्का गौरी सपर्णिका॥
वचा रात्रिः समञ्जिष्ठा तुरुष्कं मङ्गलाष्टकं।
दूर्व्वा मोहनभृङ्गारं शतमूली शतावरी॥
बाला नागबला देवी सहदेवीजयाक्षमाः।
पुन्नागोमासितापाठा गुञ्जा सुरसिकालता॥
वालकं गजदन्तन्तु शतपुष्पा(१) पुनर्नवा।
ब्राह्मी देवी शिवा रुद्रा सर्व्वगन्धानि काञ्चनं।
समाहृत्य शुभान्येवं कलशेषु निधापयेत्॥
कल्याणं विजयं धूपं चन्द्रं दद्यात् समङ्गलं।
सर्व्वरत्नमलङ्कारं रोचनाख्यन्तु पट्टकं॥
द्व्यङ्गुलं द्व्यङ्गुलं वृद्ध्या षट्‌त्रिंशदङ्गुलावधि।
वृत्तं वा चतुरस्रं वा पद्मकं त्रिकगार्भिकं॥
वासवं पद्ममध्ये तु भगस्वस्तिविनायकैः।

(१) शतपत्रमिति पाठान्तरं।

श्रीश्रीवृक्षसमारोहैः सर्व्वदेवैः शुभान्वितं ।
सर्व्वरत्नसमोपेतं पद्मं कुर्य्याद्द्विहस्तकं ॥
हस्तविस्तारमुच्छ्राये दशाङ्गुलसुशोभनं ।
स्नानाख्यं सार्द्धहस्तन्तु पद्मं वृन्तसमन्वितं ॥
शय्याख्यं द्विगुणं दद्याद्धनुर्म्मानं सपीठकं ।
गजसिंहपदाकीर्णं हेमरत्नविभूषितं ॥
सिंहाख्यं सार्द्धविस्तारं दण्डासनमथापि वा ।
समपादं ग्रहाख्यं वा हेमपत्रविभूषितं ॥
वज्रेन्द्रनीलवर्णाख्यं महार्घमणिचर्च्चितं ।
चतुष्पादोऽथवा कार्य्यस्त्रिमण्डलसमोऽपिवा ॥
व्याघ्रचित्रकपद्मैर्वा उपधानानि कारयेत् ।
अन्यैर्व्वा रञ्जितैर्वस्त्रै र्मृदुतूलकपूरिता ॥
शय्या [illegible]

सहस्रकिन्नरीमानं सप्तपञ्चशतैरपि॥
नृपेशं सर्व्वलोकानां त्रिशतन्द्विशतम्परं।
तूला शय्यासमा कार्य्या मृदुकोष्ठकपूरकैः।
उपधानं विचित्रन्तु कर्त्तव्यं मृदु वर्तुलं॥
वृत्तं शृङ्गाटकाकारं श्रवणाख्यानमुत्तमं।
यानं शय्यासनं कार्य्यं वृत्तपादं सुशोभनं।
वितस्ति उच्छ्रितं कार्य्यं पादस्थानं सुशोभनं॥
एवं समस्तं प्रत्यग्रं कृत्वा शय्यासनादिकं।
वस्त्रालङ्कारशोभाढ्यमभिषेकं समारभेत्॥
ततो वृषस्य योधस्य चर्म्मरोहितमव्ययं।
सिंहस्याथ तृतीयस्य व्याघ्रस्य च ततः परं॥
चत्वारि तानि चर्म्माणि तस्यां वेद्यामुपस्तरेत्।
शुभे मूहूर्त्ते सम्प्राप्ते पुष्ययुक्ते निशाकरे॥
हैमं वा राजतन्ताम्रं चीरवृचमयं शुभं।
भद्रासनं प्रकर्त्तव्यं सार्द्धहस्तं समुच्छ्रितं॥
सपादहस्तमानन्तु राज्ञां मण्डलिके तथा।
सुसंहृष्टमना राजा होमान्ते चाथ संविशेत्॥
दैवज्ञामात्यकञ्चुकिवन्दिपौरसुहृहृतः।
द्विजवेदध्वनियुतः शुभवाद्यरवान्वितः॥
मृदङ्गशङ्खतूर्य्यैश्च शब्दकैश्च शुभावहैः।
अहतक्षौमनिवसं नृपं कम्बलशायिनं
कलशैर्व्विपुष्पाद्यैः सर्पिःपूर्णैश्च स्नापयेत्॥
अष्टषोड़शत्रिंशाष्टशतमष्टाधिकं भवेत्।

कलशानां समाख्यातमधिकन्तूत्तरोत्तरं ॥
कल्याणेन तु मन्त्रेण मङ्गलेन जलेन वा ।
देवीगन्धसवेनाथ स्नायादाज्येन वा विभो ॥
आज्यन्तेजः समुद्दिष्टं आज्यम्पापहरं शुभं ।
आज्यं सुराणामाहारमाज्ये लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥
भौमान्तरिक्षं दिव्यं वा यत्किल्बिषनाशनं ।
सर्व्वन्तदाज्यसंस्पर्शात् प्रणाशमुपगच्छतु ॥

कम्बलमुपनीय ततः पुष्पाम्बुपूरितैः कलशैः स्नापयेद्राजानमाचार्योऽनेन मन्त्रेण ।

सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ये च सिद्धाः पुरातनाः ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च साध्याश्च समरुद्गणाः ॥
आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च भिषग्वरौ ।
अदितिर्देवमाता च स्वाहा सिद्धिः सरस्वती ॥
कीर्त्तिर्लक्ष्मीर्धृतिः श्रीश्च सिनीवाली कुहूस्तथा ।
दितिश्च सुरसा चैव विनता कद्रुरेव च ॥
देवपत्न्यश्च पूर्व्वोक्ता देवमातर एव च ।
सर्व्वास्त्वामभिषिञ्चन्तु शुभाश्चाप्सरसाङ्गणाः ॥
नक्षत्राणि मुहूर्त्ताश्च पक्षाहोरात्रसन्धयः ।
संवत्सरदिनेशाश्च कलाःकाष्ठाः क्षणा लवाः ॥
सर्व्वे त्वामभिषिञ्चन्तु कालस्यावयवाः शुभाः ।
वैमानिकाः सुरगणा मनवः सागरैः सह ॥
सरितश्च महाभागा नागाः किंपुरुषास्तथा ।
वैखानसा महाभागा वानप्रस्थद्विजैः सह ॥

द्विजा वैहायसा घोरा ध्रुवस्थानानि यानि च ।
मरीचिरत्रिपुलहः पुलस्त्यः क्रतुरङ्गिराः ॥
भृगुः सनत्कुमारश्च सनकोऽथ सनन्दनः ॥
सनातनश्च दक्षश्च तथा सनकनन्दनः ॥
एकतश्च द्वितश्चैव त्रितो जावालिकश्यपौ ।
दूर्व्वासा दुर्व्विनीतश्च कण्वः कात्यायनस्तथा ॥
मार्कण्डेयो दीर्घतपाः शुनःशेफो विदूरथः ।
अर्व्वः सम्वर्त्तकश्चैव च्यवनोऽत्रिः पराशरः ।
द्वैपायनो यवक्रीतो देवरातः सहानुजः ॥
एते चान्ये च मुनयो वेदव्रतपरायणाः ।
सशिष्यास्तेऽभिषिञ्चन्तु सदाराश्च तपोधनाः ॥
पर्व्वतास्तरवो वल्लाः पुण्यान्यायतनानि च ।
प्रजापतिर्द्दितिश्चैव गावो विश्वस्य मातरः ॥
वाहनानि च दिव्यानि सर्व्वलोकाश्चराचराः ।
अग्नयः पितरस्तारा जीमूताः खन्दिशो जलं ॥
एते चान्ये च बहवः पुण्यसङ्कीर्त्तनाः शुभाः ।
तोयैस्त्वामभिषिञ्चन्तु सर्व्वोत्पातनिवर्हणैः ॥
कल्याणन्ते प्रकुर्व्वन्तु आयुरारोग्यमेव च ।
अथाभिषिक्तो मघवानेतैर्मुदितमानसैः ॥
इत्येवं शुभदैरेतैर्म्मन्त्रैर्द्दिव्यैस्तथापरैः ।
शैवैर्नारायणै रौद्रैर्व्वाह्मशक्रसमुद्भवैः ॥
आपोहिष्ठा हिरण्येति शन्नवेति तथैव च ।
सर्व्वमङ्गलमाङ्गल्यैर्व्वस्त्रं कार्पासिकन्धियात् ॥

शङ्खवेणुरवैस्तूर्य्यैराचान्तो मङ्गलैर्नृपः ।
ततः सम्पूजयेद्देवान् गुरून् विप्रान् ध्वजायुधान् ॥
छत्रं वाद्यङ्गजानश्वान् परिजप्तानि धारयेत् ।
वेदेन च जयेनेति अलङ्काराणि पार्थिवः ॥
द्वितीयायां ततो वेद्यां गत्वा कुर्य्याद्धुताशनं ।
देवानां वदने स्थाने निमित्तानि तु लक्षयेत् ॥
स्वाहा रुद्राय चन्द्राय(१) विष्णवे ब्रह्मणे शिवे ।
प्राजापत्ये कुमाराय विघ्नहाय विनायके ॥
सूर्य्याय ग्रहराजाय वराहाय त्रिविक्रमे ।
मातृणां वरदे मातृ चामुण्डायै स्वधेति च ॥
नागराजअनन्ताय ततो राजा समाहरेत् ।
क्रमेण संस्थिते चर्मस्वुपविष्टो नराधिपः ॥
वृषस्य वृषदंशस्य खराश्वपृषतस्य च ।
तेषामुपरि सिंहस्य व्याघ्रस्य च ततः परं ॥
उपविष्टे पुनर्होमन्तैर्मन्त्रैः सघृतैस्तिलैः ।
कृत्वा शेषसमाप्तिं स प्राञ्जलिः संस्थितो वदेत् ॥
यान्तु देवगणाः सर्व्वे पूजामादाय पार्थिवात् ।
सिद्धिन्दत्त्वा सुविपुलां पुनरागमनाय च ॥

आपोहिष्टा इतितृचं। हिरण्यवर्णा इति चतुर्भिर्ऋचं। नमः शम्भवे च मयो भवेत्यादिमन्त्रं स्नाप्यमानो जपेदिति शेषः ।

यदाह गर्गः।

आपोहिष्टातृचञ्चैव हिरण्येति चतुर्ऋचं ।

(१) स्वाहा रुद्रायचेन्द्राय इति पुस्तकान्तरेपाठः ।

पुण्याहशङ्खनिनदैर्जपेत् स्नातो नराधिपः।
धृत्वा चैवाहते वस्त्रे युगवस्त्राभिमन्त्रिते॥

इति सर्व्वमङ्गलमाङ्गल्यैश्चन्दनादिभिः सह धौतं कार्पासयुतं बिभृयात्।

विष्णुधर्म्मोत्तरे।

—o—

एवं स्नातो घृते दृष्ट्वा वदनं दर्पणे तथा।
मङ्गलालम्भनङ्कृत्वा धौतवासाः समाहितः॥
अभ्यर्चनं ततः कुर्य्याद्देवादीनां पृथक् पृथक्।
आयुधाभ्यर्चनङ्कृत्वा वाहनाभ्यर्चनन्तथा॥
राजचिह्नार्चनं कृत्वा ह्यलङ्कुर्य्यात्तनुं स्वकं।
अनुलेपनमादद्यात् श्रीसूक्तेनाभिमन्त्रितं॥
श्रियन्धातर्म्मयि धेहि मन्त्रः सुमनसां लभेत्।
आयुष्यं वर्चस्यमिति मन्त्रोऽलङ्करणे स्मृतः॥
ततोऽनुलिप्तसुरभिः स्रग्वी रुचिरभूषणः।
केशवाभ्यर्चनं कृत्वा वह्निस्थानं व्रजेदिति॥

अथर्व्वपरिशिष्टे।

पुण्याहं वाचयित्वास्य प्रारम्भं कारयेद्बुधः।
तिथिनक्षत्रसंयुक्तमुहूर्त्तकरणे शुभे॥
उच्चैर्घोष इति तूर्य्याण्यभिमन्त्र्य पुरोहितः।
सर्व्वतूर्य्यनिनादेन ह्यभिषेके ह्यलङ्कृतः॥
ततः सम्पूजयेदिति शेषः।

अभिषेकानन्तरं धौतवासाः स्वाचान्तो देवगुरुविप्रान्

सम्पूजयेत्। ध्वजायुधादीनि तु सम्पूज्य स्वस्वमन्त्राभिमन्त्रितानि अपरस्मात् पुष्पस्नानाद्यथाकालं धारयेत्। दैवेनेत्यादिविजयाख्येन देवीमन्त्रेण शैवागमप्रसिद्धेनालङ्कारधारणं।

ध्वजादिमन्त्रास्तु। विष्णुधर्म्मोत्तरे।

——oo@oo——

राम उवाच।

छत्राश्वकेतुकरिणां पताकाखड्गचर्म्मणां।
तथा दुन्दुभिचापानां ब्रूहि मन्त्रान्ममानव॥

पुष्कर उवाच।

शृणु मन्त्रान् महाभाग भगवान् यान् पराशरः।
गालवाय पुरोवाच सर्व्वधर्म्मभृताम्बरः॥
यथाम्बुदश्छादयति शिवायेमां वसुन्धराम्।
तथाच्छादय राजानं विजयारोग्यवृद्धये॥

छत्रमन्त्रः।

गन्धर्व्वपत्रराजस्त्वं माभूधाः कुलदूषकः।
ब्रह्मणः सत्यवाक्येन सोमस्य वरुणस्य च॥
प्रभावाच्च हुताशस्य वर्द्धस्व त्वं तुरङ्गम।
तेजसा चैवसूर्य्यस्य मुनीनान्तपसा तथा।
रुद्रस्य ब्रह्मचर्य्येण पवनस्य बलेन च॥
स्मर त्वं राजपुत्रोऽसि कौस्तुभं च मणिं स्मर।
यां गतिं ब्रह्महा गच्छेत् पितृहा मातृहा तथा॥
भूम्यर्थेऽनृतवादी च क्षत्रियश्च पराङ्मुखः।

सूर्य्याचन्द्रमसौ वायुर्य्यावत्पश्यति दुष्कृतं।
व्रजेतैताङ्गतिं चिप्रं तच्च पापं भवेत्तव ॥
निष्कृतिं यदि गच्छेन्नो युद्धे तस्मिन् तुरङ्गम।
रिपून् विजित्य समरे सह भर्त्रा सुखी भव ॥

अश्वमन्त्रः।

शक्रकेतो महावीर सुपर्णस्त्वामुपाश्रितः।
पविचार्द्देन ते यस्तु तथा नारायणध्वजः॥
कश्यपेयोऽमृताहर्त्ता नागारिर्विष्णुवाहनः।
आयामयो दुराधर्षो रणे देवारिसूदनः॥
गरुत्मान्मारुतगतिस्त्वयि सन्निहितःस्थितः।
साश्ववर्म्मायुधान् योधान् यत्नास्माकं रिपून् दह ॥

ध्वजमन्त्रः।

कुमुदैरावणः पद्मः पुष्पदन्तोथऽवामनः।
सुप्रतीकोऽञ्जनो नील एतेऽष्टौ देवयोनयः॥
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च बलान्यष्टौ समाश्रिताः।
भद्रो मन्द्रो मृदुश्चैव गजः सङ्कीर्ण एव च ॥
वने वंशे प्रसूतास्ते स्मर योनिं महागज।
पान्तु त्वां वसवो रुद्रा आदित्याः समरुद्गणाः।
भर्त्तारं रक्ष नागेन्द्र समयः प्रतिपाल्यतां॥
अवाप्नुहि जयं युद्धे गमने स्वस्ति नो व्रज।
श्रीस्ते सोमाद्बलं विष्णोस्तेजः सूर्य्याज्जवोऽनिलात् ॥
स्थैर्य्यं मेरोर्ज्जयं रुद्राद्यशो देवात् पुरन्दरात्।
युद्धे रक्षन्तु नाग त्वां दिशश्च सहदैवतैः।

अश्विनौ सहगन्धर्वैः पान्तु त्वां पर्व्वताः सदा ॥

हस्तिमन्त्राः ।

हुतभुग्वसवो रुद्रा वायुः सोमो महर्षयः ।
नागकिन्नरगन्धर्वा यक्षभूतगणग्रहाः ॥
प्रमथास्तु सहादित्यैर्भूतेशो मातृभिः सह ।
शक्रः सेनापतिस्कन्दो वरुणश्चाश्रितस्त्वयि ।
प्रदहन्तु रिपून् सर्व्वान् राजा विजयमृच्छतु ॥
यानि प्रयुक्तान्यरिभिर्भूषणानि समन्ततः ।
पतन्तूपरि शत्रूणां हतानि तव तेजसा ॥
कालनेमिवधे यद्वद्यद्वत्त्रिपुरघातने ।
हिरण्यकशिपोर्य्यद्वद्वधे सर्व्वासुरेषु च ।
नीलां श्वेतामिमां दृष्ट्वा नश्यन्त्याशु नृपारयः ॥
व्याधिभिर्व्विविधैर्घोरैः शस्त्रैश्च युधि निर्जिताः ।
पूतना रेवतीनाम्ना कालरात्रीति पठ्यते ।
दहत्वाशु रिपून् सर्व्वान् पताके त्वामुपाश्रितः ॥

पताकामन्त्रः ।

असिर्व्विशसनः खड्गस्तीक्ष्णधारो दुरासदः(१) ।
श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्म्मपालो नमोऽस्तु ते(२) ॥
इत्यष्टौ तव नामानि स्वयमुक्तानि वेधसा ।
नक्षत्रं कृत्तिकाख्यं त्वं गुरुर्देवो महेश्वरः ॥
रोहिण्यश्च शरीरन्ते दैवतन्तु जनार्द्दनः ।

---

(१) तीक्ष्णधर्म्मा दुरासद इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

(२) चर्म्मदारस्तथैव च इति पाठान्तरं ।

पिता पितामहो देवः स त्वं पालय सर्व्वदा ॥

खड्गमन्त्रः।

चर्म्मप्रदस्त्वं समरे चर्म्मसैन्योपमो ह्यसि।
रक्ष मां रक्षणीयोऽहन्तवानघ नमोऽस्तु ते ॥

चर्म्ममन्त्रः।

दुन्दुभे त्वं सपत्नानान्तथा विजयवर्द्धनः।
यथाजीमूतघोषेण हृष्यन्ति जलचारिणः।
तथास्तु तव शब्देन हर्षोऽस्माकं मुदावह ॥
यथाजीमूतशब्देन स्त्रीणान्त्रासोऽभिजायते ॥
तथा च तव शब्देन त्रस्यन्त्वस्मद्द्विषो रणे ॥

दुन्दुभिमन्त्रः।

सर्व्वायुधमहामात्र सर्व्वदेवारिसूदन।
चाप त्वं सर्व्वदा रक्ष साकं शरवरैः सदा ॥

चापमन्त्रः।

द्वितीयायां वेद्यामिति पूर्व्वन्तावद्वेदित्रयं कार्य्यमित्युपपादितं। तत्र पश्चिमवेद्यां स्नानं। दक्षिणवेद्यां ग्रहयज्ञाः। इयन्तु ग्रहहोमापेक्षया वक्ष्यमाणद्वितीयहोमसम्बन्धितया वायव्यवेदी वस्तुगत्या तृतीयापि द्वितीयाशब्देनोच्यते। देवानां वदने स्थान इति स्वगृह्यकल्पोक्तविधिना कृते अग्निमुखे रुद्रादिदेवताभ्यः पूर्व्वंपूजितमण्डलदेवताभ्यश्च प्रणवादिभिश्चतुर्थ्यन्तैः स्वाहायुक्तैर्नामभिः प्रत्येकमष्टाविंशतिः अष्टोत्तरशतं वा घृताहुताहुतीर्जुहुयात्।

तदुक्तं विष्णुधर्म्मोत्तरे ।

तेषामेव ततो वह्नौ चतुर्भिर्त्तैःस्वनामभिः ।
ओंकारपूर्व्वं जुहुयाद्घृतं बहु पुरोहित इति ॥

निमित्तानीत्यादि होमे क्रियमाणे प्रदक्षिणशिखत्वमुद्दामदीप्तत्वं शुभध्वनित्वमधूमत्वमित्यादीनि शुभसूचकानि निमित्तानि वह्नौ लयेत् ।

आह गर्गः ॥

ततः पुरोहितो वह्नावन्वारब्धे नृपे यजेत् ।
त्र्यम्बकं यजामहे यत इन्द्रं भजामहे ॥
बृहस्पते परिदीयत इदं विष्णुर्विचक्रमे ।
आवायो भूषशुचिना मन्त्रैरेतैर्यथाक्रमं ॥
समित्तिलाज्यदूर्व्वाभिस्तथा विल्वफलैरपि ।
प्रत्येकं शतमष्टौ च होमो वा स्युईश्वावराः ॥

आथर्व्वणपरिशिष्टे ।

चतुर्होत्रविधानेन जुहुयाच्च पुरोहितः ।
चतुर्दिक्षु स्थितैर्विप्रैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ॥
विल्वाहारः फलाहारः पयसा वापि वर्त्तयेत् ।
सप्तरात्रं घृताशी वा ततो होमं प्रयोजयेत् ॥
गव्येन पायसं कुर्य्यात् सौवर्णेन स्रुवेण तु ।
वेदानामादिभिर्मन्त्रैर्महाव्याहृतिपूर्व्वकैः ॥
शर्म्मवर्म्मगणश्चैव तथा स्यादपराजितः ।
आयुष्याश्चाभयश्चैव तथा स्वस्त्ययनो गणः ॥

एतान् पञ्च गणान् हुत्वा वाचयेत्तु द्विजोत्तमान्॥

शर्म्मवर्म्माद्यः सपत्न इत्यादिः।

अपराजितः विश्वस्य मान इत्यादिः। आयुष्याद्यः प्राणापानाद्येत्यादिः। अभयः स्वस्तिदाविशामित्यादिः। स्वस्त्ययनो सूपारेपातमित्यादिः। ततो गृह्योक्तविधिना पुण्याहवाचनं। ततोराजासनमिति। ततो होमानन्तरं तस्यामेव वेद्यामग्नेरुत्तरभागे प्रागुक्तानडुहानि चर्म्माण्यास्तीर्य्य तदुपरि राजासनं सिंहासनमाहृत्य स्थापयेत्। तस्य तस्योपरिक्रमेण वृषदंशादिचर्म्माण्यास्तीर्य्य राजोपवेशयेत्। उपविष्टे तु राजनि स्वस्वमन्त्रैस्ताभ्य एव देवताभ्यः घृतप्लुतैस्तिलैः पुरोहितो हुत्वा शेषस्य स्विष्टकृत् प्रायश्चित्तपूर्णाहुत्यन्तस्योत्तरोत्तरस्य समाप्तिं कृत्वा यान्तु देवगणा इत्यादिमन्त्रेण प्राञ्जलिर्द्देवताविसर्जनं कुर्य्यात्।

तदुक्तं विष्णुधर्म्मोत्तरे।

———ooo@ooo———

वह्नेरुत्तरदिग्भागे तथा प्रागुक्तचर्म्मणा।
सिंहासनं न्यसेत् पृष्ठे शुभास्तरणसंयुतं॥
ततस्तु तत्र चर्म्माणि प्राग्ग्रीवाणि तु विन्यसेत्॥
वृषस्य वृषदंशस्य रुरोश्च पृषतस्य च।
तेषामुपरि सिंहस्य व्याघ्रस्य च ततः परं॥
ध्रुवोसिऽध्योरसि मन्त्रेण नृपं तत्रोपवेशयेत्।

वृषोबलीवर्द्दः। वृषदंशो मार्जारः। रुरुर्गौरमृगः। पृषतश्चित्रमृगः।

दर्भपाणिर्भवेद्राजा तथैव च पुरोहितः ।
तयोर्हस्तगतावन्यो दर्भौ संग्रन्थयेद्द्विजः ॥

तयोर्नृपपुरोहितयोः पाणिगतौ दर्भावन्यो द्विजो होमकाले ग्रहदेशे संग्रन्थयेत् ।

ततः पुरोधा जुहुयाद्ब्राह्मैर्मन्त्रैर्घृतं शुचिः ।
रौद्रवैष्णववायव्यशक्रसौम्यैः सवारुणैः ।
बार्हस्पत्यैस्ततः कुर्य्यात्तन्त्रमुत्तरसंज्ञकं ॥

ब्राह्मैर्ब्रह्मजज्ञानमित्यादयः । रौद्रा अस्मेरुद्रा इत्यादयः । वैष्णवा विष्णोर्नुकमित्यादयः । वायव्या आवाय इत्यादयः । शक्रः त्रातारमिन्द्र इत्यादयः । सौम्या आप्यायस्वेत्यादयः । वरुणा इमं मे वरुण इत्यादयः । बार्हस्पत्या बृहस्पते अतीय इत्यादयः ।

नृपतिस्त्वथ दैवज्ञान् पुरोधसमथार्च्चयेत् ।
गोभूहिरण्यरत्नैश्च अन्यानपि क्रमागतान् ॥
स्थानदेवान् पुरोदेवान् नदीकूलं चतुष्पथं ।
अभयञ्च जने देयं गोगोत्सर्गं समाचरेत् ॥
अलङ्कृत्य यथान्यायं सितौ तौ वस्त्रभूषितौ ।
देवन्देवीञ्च विज्ञाप्य बन्धनस्थांश्च मोचयेत् ॥
न मोचेद्राज्ञः सन्दुष्टानन्तःपुरकृतागसः ।
विभवानुरूपभावैः पुरे पूजां समारभेत् ॥
सिंहासनं समास्थाय चतुष्कोष्ठतद्योतितैः ।
दीपै रजतपात्रस्थैस्तोयार्घाष्टतवन्दितैः ।
रोचनादि तथा पश्येद्दर्पणं मङ्गलानि च ॥

ततो ज्योतिषिकान् पुरोहितञ्च गोभूहिरण्यादिभिरभ्यर्च्य अन्यानपि श्रोत्रियादीन् क्रमागतांश्च सम्पूज्य गृहदेवान् पुरोदेवांश्च नदीकूलञ्च चतुष्पथञ्च पूजोपहारैरर्चयेत्। 'गोगोत्सर्गं गोमिथुनमित्यर्थः'। तौ च धेनुवृषभौ श्वेतवर्णौ वस्त्रालङ्कारादिभूषितौ। देवं महेश्वरं देवीञ्च भगवतीं प्रीत्यर्थं उत्सृजामीति विज्ञाप्योत्सृजेत्। नृपशरीरे अन्तःपुरे च कृतापराधान्विहाय बन्धनं मोचयित्वा पताकातोरणादिभिः पुरे पूजां कुर्य्यात्। चतुष्की रङ्गवल्लीरचना सभादिशेषो वा। दीपैर्नीराजित इति शेषः। वन्दितं वन्दनं विशेषणे तृतीया। ततो गोरोचनादधिदूर्व्वादीनि च दर्पणं मङ्गलानि च पश्येत्।

आथर्वणपरिशिष्टे।

प्रोक्तानि मङ्गलान्यष्टौ ब्राह्मणो गौर्हुताशनः।
भूमिसिद्धार्थकाः सर्पिः शमो व्रीहियवौ तथा(१)॥
एतानि सततं पश्यन् स्पृशन्नप्यर्चयन्नपि।
न प्राप्नोत्यापदं राजा श्रियं प्राप्नोत्यनुत्तमां॥
तथा सिंहासनं रुह्य पताकां वा क्रमागतां।
चामरच्छत्रसंयुक्तं प्रतीहारविभूषितं।
मत्तद्विपं चतुष्कञ्च चतुर्दिक्षूपकल्पयेत्॥
उपविष्टस्ततो राजा प्रजानां कारयेङ्गितं।
आकरा ब्राह्मणा गावस्त्रीबालजड़रोगिणः॥
ततस्तु दर्शनं देयं ब्राह्मणानां नृपेण तु।
श्रेणीप्रभृतिमुख्यानां स्त्रीजनञ्च नमस्करेत्॥

---

(१) हिरण्यं सर्पिरादित्य आपोराजा तथाष्टम इति क्वचित् पाठः।

आशिषश्च प्रदद्युस्ते तुष्टा जनपदा भुवि।
एवं प्रजानुरज्येत पृथ्वी च वशगा भवेत्॥
पुरोहितं मन्त्रिणञ्च सेनाध्यक्षं तथैव च।
अश्वाध्यक्षं गवाध्यक्षं कोष्ठागारपतिं तथा॥
भाण्डागारपतिं वैद्यं दैवज्ञञ्च यथाक्रमं।
यथार्हेण तु योगेन सर्व्वान् संपूजयेन्नृपः॥
दूर्व्वासिद्धार्थकान् सर्पिः शमीव्रीहियवौ तथा।
शुक्लानि चैव पुष्पाणि मूर्ध्नि दद्यात् पुरोहितः॥
अथर्व्वविहितो ह्येष विधिः पुष्याभिषेचने।
राजा स्नातो महीं भुङ्क्ते शक्रलोकञ्च गच्छति॥

देवीपुराणे।

एवं पुष्ये अवाप्नोति कर्त्ता राज्यायुसम्पदः।
विनापि चार्द्धफलदं पुण्यं पुष्याभिषेचनं॥
राष्ट्रोत्पातोपसर्गेषु धूमकेतोश्च दर्शने।
ग्रहोपमर्द्दने चैव पुष्यस्नानं समाचरेत्॥
नास्ति लोके स उत्पातो यो ह्यनेन न शाम्यति।
मङ्गलञ्चापरं नास्ति यदस्मादतिरिच्यते॥
आधिराज्यार्थिनो राज्ञः पुत्रजन्माभिकाङ्क्षिणः।
तत्पूर्व्वमभिषेके च विधिरेष प्रशस्यते॥
देवेन ब्रह्मणे दत्तं तेनाप्युशनसे पुनः।
उशनसो गुरोःप्राप्तं ततो देवसभाङ्गतं॥
महेन्द्रार्थमुवाचेदं बृहत्कीर्त्तिर्बृहस्पतिः।
स्नानमायुःप्रजावृद्धिसौभाग्यकरमुत्तमं॥

अनेनैव च तोयेन हस्त्यश्वं स्नापयेन्नृपः।
तच्चामयविनिर्मुक्तं परां वृद्धिमवाप्नुयात्॥
प्रतिसंवत्सरं कार्य्यमभिषेकन्तु पार्थिव।
मण्डलीकनरेन्द्राणां सामन्ताधिपतेरपि॥
सामन्तानां सदा कार्य्यं विघ्नेश्वरमखं शुभं।
स्त्रियो लक्षणयुक्ताया यस्या न भवने सुखं।
तस्येदङ्कारयेत् स्नानं सर्व्वकामप्रसिद्धिदं॥

इति पुष्यस्नानविधिः।

उदगयन आपूर्य्यमाणपक्षस्यैकरात्रमवरार्द्धमुपोष्य तिष्येण पुष्टिकामः स्थालीपाकं श्रपयित्वा महाराजमिष्ट्वा तेन सर्प्पिष्मता ब्राह्मणान् भोजयित्वा पुष्ट्यर्थेन सिद्धिं वाचयेत्। एवमपरापरस्मात्तिष्याद्वौ द्वितीये त्रींस्तृतीये एवं संवत्सरमभ्युच्चयेन महान्तम्पोषं पुष्णाति आदित एवोपवासः। अवरार्द्ध अवरं। अवरतात्रैकरात्रोपवासस्यापूतस्य पुंसोबह्नुपवासपक्षापेक्षया 'महाराजः कुवेरः। तेन हुतशिष्टेन चरुणा पुष्ट्यर्थेन सिद्धिं वाचयेत् पुष्टिः सिद्धिरस्त्विति वाचयेत्। एवं पूर्व्ववच्चरुणा महाराजेष्टिब्राह्मणभोजनादि कार्य्यं। द्वौ द्वितीये द्वौ ब्राह्मणौ द्वितीये पुष्ये भोजयेदित्यर्थः। एवं संवत्सरमभ्युच्चयेन पूर्व्ववत्तृतीयं चतुर्थं तिष्येषूत्तरोत्तरवृद्ध्या ब्राह्मणा भोजनीया इत्यर्थः। आदित एव प्रथमपुष्ये पूर्व्वं ह्युत्तरे चेत्यर्थः।

इत्यापस्तम्बोक्तं पुष्यव्रतं।

दाल्भ उवाच।

स्त्रीणां धर्म्मं द्विजश्रेष्ठ उपवाससमुद्भवं।

कथयस्व यथातत्त्वमुपवासविधिश्च यः॥
कुमार्य्याः स्वगृहस्थाया विधवायाश्च सत्तम।
धर्म्मं प्रब्रूह्यशेषेण भगवन् प्रीतिकारकं॥

पुलस्त्य उवाच।

श्रूयतामखिलं ब्रह्मन् यदेतदनुपृच्छसि।
उपकाराय च स्त्रीणां त्रिषु लोकेषु विश्रुतं॥
प्रश्नमेतं पुरा देवी शैलराजसुता पतिं।
पप्रच्छ शङ्करं ब्रह्मन् कैलासशिखरस्थितं॥

देव्युवाच।

कुमारीभिश्च देवेश गृहस्थाभिश्च केशवः।
विधवाभिस्तथा स्त्रीभिः कथमाराध्यते वद॥

ईश्वर उवाच।

साधु साधु त्वया पृष्टमेतन्नारायणाश्रयं।
उपवासादियत् कर्म्म श्रूयतामस्य यो विधिः॥
यत्त्वं परिसमासाद्य नारीह सुखमेधते।
दुःशीलेऽपि हि कामार्थौ नारी प्राप्नोति भर्त्तरि॥
अनाधारा जगन्नाथं सर्व्वलोकेश्वरं हरिं।
कथमाप्नोति चेन्नारी सर्व्वलोकगुणान्वितं॥
सुकलत्रयुतन्तस्माद्व्रतमच्युततुष्टिदं।
कर्त्तव्यं लक्षणं तस्य श्रूयतां वरवर्णिनि॥
यच्चोक्त्वा सर्व्वनारीणां श्रेयः प्राप्नोत्यसंशयं।
ऐहिकञ्च सुखं प्राप्य मृता स्वर्गसुखान्यपि॥
अनुज्ञाप्य स्वपितरौ मातृतश्च कुमारिका।

पूजयेत्तु जगन्नाथं भक्त्या पापहरं हरिं ॥
त्रिषूत्तरेष्वथर्क्षेषु पतिकामा कुमारिका।
माधवायेति वै नाम जपेन्नित्यमतन्द्रिता ॥
प्रियङ्गुणा रक्तपुष्पैर्म्मधुकैः कुसुमैस्तथा।
समभ्यर्च्चाच्युते दद्यात् कुङ्कुमेनानुलेपनं ॥
सर्व्वौषधिभिः सुस्नाता तमाराध्य जगत्पतिं।
नमोऽस्तु माधवायेति होमयेन्मधुसर्पिषा ॥
सदैवमुत्तरायोगे समभ्यर्च्य जनार्द्दनं।
शोभनं पतिमाप्नोति प्रेत्य स्वर्गञ्च गच्छति ॥
अतिबाल्ये च यत्किञ्चित्तया पापमनुष्ठितं।
तस्माद्विमुच्यते पापात् सुखिनी चैव जायते ॥
अब्देनैकेन तन्वङ्गि व्रतं प्राप्ता यदिच्छति।
तदेव प्राप्नुयाद्भद्रे नारायणपरायणा ॥
षण्मासप्रीणनं कार्य्यं यथाशक्त्या च वै हरेः।
पारणान्ते महाभागे भोजयेद्ब्राह्मणोत्तमान् ॥

**इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं सुकलत्रप्राप्तिव्रतं।**

———000———

## अथ ज्येष्ठाव्रतं।

तत्र लिङ्गपुराणात्।

ऋषय ऊचुः।

मायाबित्वं श्रुतं विष्णोर्द्देवदेवस्य चक्रिणः।
कथं ज्येष्ठासमुत्पत्तिर्द्देवदेवाज्जनार्द्दनात्।
वक्तुमर्हसि चास्माकं रोमहर्षण तत्त्वतः ॥

सूत उवाच ।

अनादिनिधनः श्रीमान् ध्यात्वा नारायणः प्रभुः ।
जगद्द्विधमिदञ्चक्रे मोहनाय जगत्पतिः ॥
विष्णुर्वै ब्राह्मणान् वेद वेदधर्म्मान् सनातनान् ।
श्रियं पद्मां तथा योज्य भागमेकमकारयत् ॥
ज्येष्ठामलक्ष्मीमशुभां वेदबाह्यां नराधमान् ।
अधर्म्मञ्च महातेजा भागमेकमकारयत् ॥
अलक्ष्मीमग्रतः सृष्ट्वा पश्चात्पद्मां जनार्द्दनः ।
ज्येष्ठा तेन समाख्याता ह्यलक्ष्मीर्द्विजसत्तमाः ॥
अमृतोद्भवबेलायां सुधानन्तरमुत्थिता ।
अग्रतः सा समुत्पन्ना ज्येष्ठा इति च वैश्रुता ॥
श्रीरनन्तरमुत्पन्ना पद्मा विष्णुपरिग्रहा ॥
दुःसहो नाम विप्रर्षिरुपयेमेऽशुभान्तदा ।
ज्येष्ठां तां परिपूर्णार्थो मनसा वीक्ष्य निष्ठितां ॥
लोके चचार हृष्टात्मा तया सह मुनिस्तदा ॥
यस्मिन् घोषो हरेश्चैव हरस्य च महात्मनः ।
वेदघोषस्तथा विप्रा होमधूम्रस्तथैव च ॥
श्रोत्रियो वाथ यत्रासीत् तत्र तत्र भयार्द्दिता ।
पिधाय कर्णौ संयाति धावमाना इतस्ततः ॥
ज्येष्ठामेवं विधां दृष्ट्वा दुःसहो मोहमागतः ।
तया सह वनं गत्वा चचार स तदा मुनिः ॥
तत्रायान्तं महात्मानं मार्कण्डेयमपश्यत ।
प्रणिपत्य महात्मानं दुःसहो मुनिमब्रवीत् ॥

भार्य्येयं भगवन् मह्यं न स्थास्यति कथञ्चन ॥
किं करिष्यामि विप्रर्षे ह्यनया सह भार्य्यया।
प्रविशाम्यनया कुत्र कुत्र न प्रविशामि वै॥

मार्कण्डेय उवाच।

शृणु दुःसह सर्व्वं त्वमकीर्त्तिरशुभान्विता।
अलक्ष्मीरतुला चेयं ज्येष्ठा इत्यभिशब्दिता॥
नारायणपरा यत्र वेदमार्गानुसारिणः।
रुद्रभक्ता महात्मानो भस्मोद्धूलितविग्रहाः।
स्थिता यत्र जना नित्यं न विशेथाः कथञ्चन॥
नारायण हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष माधव।
अच्युतानन्द गोविन्द वासुदेव जनार्द्दन।
नृसिंह वामनाचिन्त्य राघवेति च ये जनाः।
वच्यन्ति सन्ततं हृष्टास्तेषां धनगृहादिषु।
आरामे चैव गोष्ठेषु न विशेथाः कथञ्चन॥
ज्वालाजालकरालं यत् सहस्रादित्यसन्निभं।
चक्रं विष्णोरतीवोग्रन्तेषां हन्ति सदाशुभं॥
स्वाहाकारो वषट्कारो गृहे यस्मिन् प्रवर्त्तते।
तद्दिधा चान्यतो गच्छ सामघोषेऽथ यत्र वा॥
वेदाभ्यासरता नित्यं नित्यकर्म्मपरायणाः।
वासुदेवार्च्चनरता दूरतस्तान् विसर्जय॥
अग्निहोत्रं गृहे येषां लिङ्गार्चा वा गृहेषु च।
वासुदेवननुर्व्वापि चण्डिका यत्र तिष्ठति॥
दूरतो व्रज तान् हित्वा सर्व्वपापविवर्ज्जितान्।

नित्यनैमित्तिकैर्य्यज्ञैर्ये यजन्ति महेश्वरं ।
तान् हित्वा व्रज वान्यत्र दुःसह त्वं सहानया ॥
श्रोत्रिया ब्राह्मणा गावो गुरवोऽतिथयः सदा ।
रुद्रभक्ताश्च पूज्यन्ते यैर्नित्यं तान् विसर्ज्जय ॥
दुःसह उवाच ।
यस्मिन् प्रवेशो योग्यो मे तद्ब्रूहि मुनिसत्तम ।
त्वद्वाक्याद्भयनिर्मुक्तो विशाम्येषां गृहे सदा ॥
मार्कण्डेय उवाच ।
यत्र भार्य्या च भर्त्ता च परस्परविरोधिनौ ।
सभार्य्यस्त्वं गृहं तस्य विशेथा भयवर्ज्जितः ॥
देवदेवो महादेवो रुद्रस्त्रिभुवनेश्वरः ।
विनिन्द्यो यत्र भगवान् विशेथा भयवर्ज्जितः ॥
वासुदेवे रतिर्नास्ति यत्र नास्ति सदा हरिः ।
जपहोमादिकं नास्ति भस्म नास्ति गृहे नृणां ॥
पर्व्वण्यभ्यर्च्चनं नास्ति चतुर्द्दश्यां विशेषतः ।
कृष्णाष्टम्याञ्च रुद्रस्य सन्ध्यायां भयवर्जितः ॥
चतुर्द्दश्यां महादेवं न यजन्ति च यत्र वै ।
विष्णोर्नामविहीनास्तैरशुभास्तैर्दुरात्मभिः ॥
नमस्कारञ्च सर्व्वाय शिवाय परमेष्ठिने ।
ब्राह्मणे च नरा मूढ़ा न वदन्ति दुरात्मकाः ।
तत्र वै सततं वत्स सभार्य्यस्त्वं समाविश ॥
वेदघोषो न यत्रास्ति गुरुपूजा न यत्र च ।
पितृकर्म्मविहीनाश्च सभार्य्यस्त्वं समाविश ॥

रात्रौ रात्रौ गृहे यस्मिन् कलहो वर्त्तते मिथः।
अनया सार्द्धमनिशं विश त्वं भयवर्जितः॥
लिङ्गार्च्चा नास्ति यस्यैव यस्य नास्ति तपो दमः (१)।
रुद्रभक्तिविनिन्दा वा तत्रैव विश निर्भयः॥
अतिथिः श्रोत्रियो वापि गुरुर्व्वा वैष्णवोऽपि वा।
न सन्ति यद्गृहे गावः सभार्य्यस्त्वं समाविश॥
बालानां प्रेक्ष्यमाणानां यत्र दृष्टं हि भक्षकं।
भवन्ति तत्र संहृष्टः सभार्य्यस्त्वं समाविश॥
अनभ्यर्च्च्य महादेवं वासुदेवमथापि वा।
अहुत्वा विधिवद्धव्यं यत्र तत्र समाविश॥
पापकर्म्मरता मूढा दयाहीनाः परस्परं।
गृहे यस्मिन् समासन्ने देशे तत्र समाविश॥
प्राकारागारभिद्याऽसावन्ववेद्या कुटुम्बिनी।
तद्गृहन्तु समासाद्य वस नित्यमनन्यधीः॥
यत्र कण्टकिनो वृक्षा यत्र निष्पाववल्लरी।
ब्रह्मवृक्षश्च यत्रास्ति सभार्य्यस्त्वं समाविश॥
अगस्त्यार्कोदयौ वापि बन्धुजीवो गृहेषु वै।
करवीरं विशेषेण नन्द्यावर्त्तमथापि वा।
मल्लिका वा गृहे येषां सभार्य्यस्त्वं समाविश॥
कन्या च यत्र वै वल्ली रोहितोऽथ जटी गृहे।
वकुलः कदली यत्र सभार्य्यस्त्वं समाविश॥
तालस्तमालो भल्लातस्तिन्तिड़ीखण्डमेव च।

(१) जपोदम इति पुस्तकान्तरे पाठः।

कदम्बः खदिरं वापि सभार्य्यस्त्वं समाविश ॥
न्यग्रोधो वा गृहे येषामश्वत्थश्च तथैव च ।
उडुम्बरः सपनसः सभार्य्यस्त्वं समाविश ॥
यस्य काको गृहं विन्देदारामे वा गृहेऽपि वा ।
डिम्बेन मुण्डितो वापि सभार्य्यस्त्वं समाविश ॥
एकच्छागं द्विरावेयं त्रिगवं पञ्चमाहिषं ।
षडश्वं सप्तमातङ्गं सभार्य्यस्त्वं समाविश ॥
यस्य काली गृहे देवी प्रेतरूपा च डाकिनी ।
क्षेत्रपालोऽथवा तत्र सभार्य्यस्त्वं समाविश ॥
भिक्षुविम्बञ्च वै यस्य गृहे क्षपणकं तथा ।
बौद्धं वा विम्बमाहृष्टं तत्र तूर्णं समाविश ॥
शयनासनकालेषु भोजनासनवृत्तिषु ।
येषां वदति वै वाणी नामानि न हरेः सदा ।
तद्गृहन्ते समाख्यातं सभार्य्यस्त्वं समाविश ॥
पाषण्डा वारनिरताः श्रौतस्मार्त्तबहिष्कृताः ।
विष्णुभक्तिविनिर्मुक्ता महादेवविनिन्दकाः ।
नास्तिकाश्च शवा यत्र सभार्य्यस्त्वं समाविश ॥
ब्रह्मा च भगवान् विष्णुः शक्रः सर्व्वसुरेश्वरः ।
शिवप्रसादजाश्चेति न वदन्ति दुरात्मकाः ॥
ब्रह्मा च भगवान् विष्णुः शिवस्य सम एव च ।
वदन्ति मूढ़ाः खद्योतं भानोर्वा मूढ़चेतसः ॥
तेषां गृहे तथा क्षेत्रे आवासे वा सहानया ।
विश भुङ्क्ष्व गृहे तेषां मिष्टान्नं त्वमनन्यधीः ॥

अश्नन्ति केवलं मूढ़ाः पक्कमन्नं विचेतसः।
स्नानमङ्गलहीनाश्च तेषां त्वं गृहमाविश॥
या नारी शौचविभ्रष्टा देहसंस्कारवर्जिता।
सर्व्वभक्षरता नित्यं तस्या स्थानं समाविश॥
मद्यपानरताः पापा मांसभक्षणतत्पराः।
परदाररता मर्त्त्यास्तेषां त्वं गृहमाविश॥
पर्व्वण्यनर्चनरता मैथुने वा दिवा रताः
सन्ध्यायां मैथुने वापि गृहे तेषां समाविश॥
पृष्ठतो मैथुनं स्त्रीणां स्नानवस्त्र गवञ्च यः।
जले वा मैथुनं कुर्य्यात् सभार्य्यस्त्वं समाविश॥
रजस्वलाङ्गनां गच्छेच्चाण्डालीं वा नराधमः।
कन्यां वा गामजां वापि सभार्य्यस्त्वं समाविश॥
बहुना किं प्रलापेन नित्यकर्म्मबहिष्कृताः।
रुद्रभक्तिविहीना ये गृहे तेषां समाविश॥
शृङ्गैर्हि व्यौषधैः चौद्रैः शेपमालिप्य गच्छति।
भगद्रावं करोत्यस्य सभार्य्यस्त्वं समाविश॥
इत्युक्त्वा स मुनिः श्रीमान् निमील्य नयने तदा।
ब्रह्मर्षिर्ब्रह्मसङ्काशस्तत्रैवान्तरधीयत॥
दुःसहोऽपि यथोक्तानि स्थानानि समुपेयिवान्॥
विशेषाद्देवदेवस्य विष्णोर्निन्दारतात्मनां।
सभार्य्यो मुनिशार्दूल सैषा ज्येष्ठा इति स्मृता।
दुःसहस्तामुवाचेदं तड़ागाश्रयसंस्तरे।
आसस्व त्वमत्र चैवाहं प्रपश्यामि रसातलं।

आवयोः स्थानमालोक्य निवासार्थं ततः पुनः ॥
आगमिष्यामि ते पार्श्वमित्युक्ता तमुवाच सा ।
किमश्नामि महाभाग को म दास्यति वै बलिं ॥
इत्युक्तस्तां मुनिः प्राह यास्त्रियस्त्वां यजन्ति वै ।
बलिभिः पुष्पधूपैश्च न तासान्त्वं गृहं विश ॥
इत्युक्का प्राविशत्तत्र पातालनिलयङ्गतः ।
अद्यापि स च नायातस्तेन सा जलसंस्तरे ।
ग्रामे कर्कटवाद्ये तु नित्यमास्तेऽशुभा पुनः ॥
प्रसङ्गाद्देवदेवेशो विष्णुस्त्रिभुवनेश्वरः ।
लक्ष्मीजुष्टस्तथाऽलक्ष्मीः सा तमाह जनार्द्दनं ॥
भर्त्ता गतो महाबाहो बलिं त्यक्ता मम प्रभो ।
अनाथाहं जगन्नाथ वृत्तिं देहि नमोऽस्तु ते ॥
इत्युक्तो भगवान् विष्णुः प्रसह्याह जनार्द्दनः ।
ज्येष्ठामलक्ष्मीं देवेशो माधवो मधुसूदनः ॥
ये रुद्रमनघं सर्व्वं शङ्करं नीललोहितं ।
अम्बां हैमवतीं वापि जनित्रीं जगतामपि ॥
मद्भक्ता निन्दयन्त्यत्र तेषां वित्तन्तवैव च ॥
एवमेव महादेवं विनिन्द्यैव यजन्ति मां ।
मूढ़ा ह्यभाग्या मद्भक्ता अपि तेषां धनन्तव ॥
यस्याज्ञया ह्ययं ब्रह्मा प्रसादाद्दसते सदा ।
ये विनिन्द्य यजन्त्येनं मत्पदर्भ्रंशकारकाः ॥
मद्भक्ता नैव ते भक्ता एवं वर्त्तन्ति दुर्म्मदाः ।
तेषां धनं गृहं क्षेत्रं इष्टापूर्त्तन्तवैव च ॥

इत्युक्त्वा तां परित्यज्यालक्ष्मीं लक्ष्मीजनार्द्दनः।
अवाप भगवान् रुद्रमलक्ष्मीक्षयसिद्धये॥
तस्मात् प्रदेयस्तस्यै च बलिर्निन्द्योनरेश्वरैः।
विष्णुभक्तैर्न सन्देहः सर्व्वं यत्नेन सर्व्वदा।
अङ्गनाभिः सदा पूज्या बलिभिर्विविधैर्द्विजैः॥

भविष्योत्तरात्।

युधिष्ठिर उवाच।

मृतवत्सा तु या नारी काकवन्ध्या तथाऽपरा।
गर्भस्रावा तृतीया च नानादोषैश्च दूषिता॥
निर्द्धनाश्च नराश्चैव दारिद्र्योपहता स्थिताः।
कर्म्मणा केन मुच्यन्ते तन्मे ब्रूहि जनार्द्दन॥
व्रतेन केन तत्सर्व्वं सुखं प्राप्नोति मानवः।
चीर्णेन च जगन्नाथ तत्सर्व्वं कथयस्व मे॥

श्रीकृष्ण उवाच।

मासे भाद्रपदे शुक्ले पक्षे ज्येष्ठा यदा भवेत्।
रात्रौ जागरणं कृत्वा गीतवादित्रनिःस्वनैः।
एवंविधविधानेन एभिर्मन्त्रैः सुपूजयेत्॥
एह्येहि त्वं महाभागे सुरासुरनमस्कृते।
ज्येष्ठे त्वं सर्व्वदेवानां मत्समीपा सदा भव॥

आवाहनमन्त्रः।

श्वेतसिंहासनस्था तु श्वेतवस्त्रैरलङ्कृता।
वरञ्च पुस्तकं पाशं बिभ्रत्यै ते नमोनमः॥

आसनमन्त्रः ।

ज्येष्ठे श्रेष्ठे तपोनिष्ठे ब्रह्मिष्ठे ब्रह्मवादिनि ।
क्षीराब्धौ च समुद्भूते अर्घ्यं ज्येष्ठे नमोऽस्तु ते ॥

अर्घ्यमन्त्रः ।

शार्ङ्गबाणैश्च खड्गैश्च तोरनारोहदर्पणैः ।
अन्यैरप्यायुधैर्युक्तां ज्येष्ठे त्वामर्चयाम्यहं ॥

प्रार्थनामन्त्रः ।

सुरासुरनरैर्वन्द्या यक्षकिन्नरपूजिता ।
पूजितासि मया देवि ज्येष्ठे त्वामर्चयाम्यहं ॥
पुत्रदारसमृद्ध्यर्थं लक्ष्म्याश्चैव विवृद्धये ।
अलक्ष्म्याश्च विनाशाय ज्येष्ठे त्वामर्चयाम्यहं ॥

पूजामन्त्रः ।

मन्त्रेण पूजयेज्ज्येष्ठां स्त्री वाऽथ पुरुषोऽपि वा ।
लक्ष्मीः सन्तानवृद्धिश्च अणिमादिगुणो भवेत् ॥
अर्चिता चर्चिता ज्येष्ठा सदा काले नृपोत्तम ।
गुरुं संपूजयेद्भक्त्या वस्त्रैराभरणादिभिः ॥
द्वादशैव च वर्षाणि पूजनीया प्रयत्नतः ।
यावज्जन्म तथा पूज्या विधिनानेन मानवैः ॥
ददाति वित्तं पुत्रांश्च अर्चनीया सदा स्त्रिया ।
अनेन विधिना युक्तो यो हि पूजयते नरः ॥
नारी च पूजयेज्ज्येष्ठां तस्या लक्ष्मीर्विवर्द्धते ।
वन्ध्या च लभते पुत्रान् दुर्भगा सुभगा भवेत् ॥
मृतवत्सा जीववत्सा काकवन्ध्या प्रजावती ।

दुःखितो हि नरः कश्चिन्न सुखी वसते सदा॥
एवं विधविधानेन ज्येष्ठां यस्त्वर्चयेत्सदा।
विघ्नन्तस्य प्रणश्येत यथाप्सु लवणं तथा॥
एतद्व्रतं महाश्रेष्ठं पुण्यं पापविनाशनं।
तन्मया कथितं सर्व्वं ज्येष्ठायास्ते व्रतं महत्॥
यथा ग्राह्यं कुरुश्रेष्ठ ज्येष्ठाव्रतं सुशोभनं।
नीराजने कृते चैव दीपो ग्राह्यः सुभक्तितः॥
नैवेद्यसहितं प्राश्य व्रतस्याग्रे युधिष्ठिर।
गुरुहस्तात्सदा ग्राह्यो दीपः प्रज्वलितो महान्॥
व्रतस्थो भक्तियुक्तस्तु शुचिः प्रयतमानसः।
अनेन विधिना चैव व्रतं ग्राह्यं युधिष्ठिर॥
ज्येष्ठा नाम परा देवी भुक्तिमुक्तिफलप्रदा।
यस्तु पूजयते राजंस्तस्मै स्वर्गं प्रयच्छति॥

स्कन्दपुराणे। ईश्वर उवाच।

मासे भाद्रपदे पक्षे शुक्ले ज्येष्ठार्क्षसंयुते।
तस्मिन् काले दिने कुर्य्यात् ज्येष्ठायाः परिपूजनं॥
तत्राष्टम्यां यदा भानुदिनं ज्येष्ठर्क्षमेव च।
नीलज्येष्ठा तु सा प्रोक्ता दुर्लभा बहुकालिका।
कृतस्नानो नरः कुर्य्यात्तस्यामन्यत्र वा दिने॥
भक्तियुक्तः शुचिः कुर्य्यात् ज्येष्ठादेव्याः प्रपूजनं।
नद्याः पूर्व्वेद्यु आहृत्य सिकताः शुद्धदेशजाः॥
देवीरूपन्तु तत्रैव ध्यात्वा वै ब्राह्मणैः सह।
मण्डले तान्तु संस्थाप्य देवीं हेममयीन्ततः॥

स्थापयेद्राजतीन्तास्त्री लेख्यां वा द्विजसत्तम(१)।
आवाहयेत्ततो देवीमथवा पुस्तकेऽपिवा ॥
त्रिलोचनां शुक्लदन्तीं विभ्रतीं राजतीं तनुं ।
विततां रक्तनयनां ज्येष्ठामावाहयाम्यहं ॥
एह्येहि त्वं महाभागे सुरासुरनमस्कृते ।
ज्येष्ठा त्वं सर्व्वदेवानां मत्समीपगता भव ॥
इति मन्त्रेण तां देवीमावाह्य सुव्रतव्रती ।
दद्याद्गन्धजलैः पाद्यं पादयोरुभयोर्द्विजः ॥
श्रीखण्डकर्पूरयुतन्दद्याद्भस्तथार्हणं ।
भक्त्या प्रयत्नेन मया यद्‌च दीयते तव ।
तद्गृहाण सुरेशानि ज्येष्ठे श्रेष्ठे नमोनमः ॥
इत्युच्चार्य्य सुवर्णादिपात्रेणाञ्जलिनापि वा ।
अर्घ्यं दत्त्वा स्मरेद्देवीं गन्धधूपैस्तथार्चयेत् ।
गोधूमयवशाल्यादितद्द्रव्यैः सुपारयेत् ॥
पञ्चप्रसृतिमात्रैस्तैः पूरिकादीनि सर्पिषा ।
निवेदयेच्च तैरेव दद्याद्देव्यै यतव्रतः ॥
तत स्तुत्वा महादेवीं सर्व्वकामफलप्रदां ।
ज्येष्ठायै ते नमस्तुभ्यं श्रेष्ठायै ते नमो नमः ॥
ज्येष्ठे श्रेष्ठे तपोनिष्ठे वरिष्ठे सत्यवादिनि ।
एह्येहि त्वं महाभागे अर्घ्यं गृह्ण सरस्वति ॥

अर्घ्यमन्त्रः ।

स्तुत्वा स्तोत्रकथानृत्यगीतानि पुरतस्ततः ।

(१) लेख्यां वा मटकुडत्रयोरिति पुस्तकान्तरेपाठः ।

सौवीरे चैव संयुक्तां दद्यात्क्षुद्रेभ्य एव च ॥
सुवासिनीभ्यः शक्त्या तत् प्रदद्यात् सुकृतव्रती।
देवीमनुव्रयार्चित्वा ततो भुञ्जीत वाग्यतः ॥
सखिभिः सह चान्नानि स व्रती सुकृतव्रतः।
भुक्त्वा पीत्वा तदाचम्य देवीं नत्वा पुनः पुनः।
शयीत ब्रह्मचर्य्येण कुर्य्यात् प्रातर्विसर्जनं ॥
एवमेव प्रकुर्य्याद्वै व्रतन्तु प्रतिवत्सरं।
विसर्जनान्ते तु ततः शिवां तां वारिणि क्षिपेत् ॥
अपूपवटकान्दद्याद्ब्राह्मणेभ्यस्ततो द्विजः।
कुर्य्यादेवं प्रयत्नेन स्नायं वाथ विसर्जयेत् ॥
विद्यार्थी प्राप्नुयाद्विद्यां स्त्रीकामस्त्रियमाप्नुयात्।
शिरस्त्राणकारी तु देव्यै दद्यादसंशयः ॥
सौवर्णं राजतन्ताम्रं कृतकृत्यो भवेत्तदा।
व्रतं स्वयञ्च कृतवान् सिद्धिं वाथ कृतार्हणः ॥

देव्या महत्त्वं कथितन्तवेदं
विधिश्च मन्त्रार्चनसंप्रयुक्तः।
मन्त्रोऽपि सायुज्यकरी व्रतस्य-
स्तस्यां सदाचारवतां सदैव ॥

यस्याः सिंहो रथे युक्तो व्याघ्रश्चापि महाबलः।
ज्येष्ठामहमिमान्देवीं प्रपद्ये शरणं शुभां ॥

तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्म्मफलेषु जुष्टां दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये। सुतरसितरासनाय नमः। इत्यावाहयत्।

आपोहिष्ठेति तिसृभिर्हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका इति तिसृभिरभिषेकं कुर्यात् ।

नाम्नाथ विष्टरन्दत्त्वा पाद्यमर्घ्यमथासनं ।
वस्त्रमाचमनं(१) चैव मधुपर्कादि सर्व्वतः ॥
गन्धं पुष्पन्तथा धूपं दीपं नैवेद्यमेव च ।
पुनराचमनञ्चैव कारयित्वा विसर्जयेत् ॥

ओं ज्येष्ठायै नमः । ओं सत्यायै नमः । ओं काल्यै नमः । ओं कपालाय नमः । ओं कलिप्रियायै नमः । ओं विघ्नायै नमः । ओं विनायकाय नमः । ओं भाग्यै नमः । ओं तार्क्ष्यै नमः । ओं श्रियै नमः । ओं कृष्णायै नमः । ओं कृष्णपिङ्गलायै नमः । एभिर्नामभिस्तर्पणं ।

होमं दधिमधुक्षीरघृतैः कुर्यात् सुसंयतः ।
हविष्यं स्वयमश्नीयाद्ब्राह्मणांस्तेन भोजयेत् ॥
अनेन विधिना यस्तु वत्सराणाञ्चतुष्टयं ।
व्रतान्ते प्रतिमां कुर्यात् सौवर्णीं फलसंस्थितां ।
कृष्णवस्त्रेण संयुक्तामाचार्य्याय निवेदयेत् ॥
वस्त्राभरणमाल्यैस्तु लेपनैः पूजितं द्विजं ।
प्रणिपत्य ततः पश्चात्तस्मै सर्व्वं निवेदयेत् ॥
ब्राह्मणा भुक्तवन्तस्ते प्रकुर्य्युः स्वस्तिवाचनं ।
एवं कृते व्रते सम्यक् सर्व्वशान्तिः प्रजायते ।
धनधान्यसमृद्धिश्च आरोग्यञ्चैव जायते ॥

इति ज्येष्ठाव्रतं ।

---

(१) स्नानमाचमनमिति पाठान्तरं ।

पुष्कर उवाच।

शक्रे तूपोषितो विद्वान् यजमानमुपोषितं।
मूलेन स्नापयेन्नित्यन्तत्स्नाम्याशामुखस्थितं॥

तत्स्नाम्याशामुखं नैर्ऋत्यभिमुखं।

पूर्व्वोक्ताशासम्मुखं वा पूर्णेन सुदृढ़ेन च।
कुम्भद्वयेन स्नातस्तु पूजयेन्मधुसूदनं॥
विरूपाक्षं सवरुणं चन्द्रं शूलन्तथैव च।
गन्धमाल्यनमस्कारदीपधूपान्नसम्पदा॥
एतेषामेव जुहुयात्तथा नाम्ना घृतं द्विजः।
पीतवासास्ततो भूत्वा मत्स्यं कूर्म्मञ्च शूकरं॥
सुराक्षशरसंयावैः स्नानोक्ताशामुखस्थितः।
बलं नृपतये दद्याज्जानु कृत्वा ततः क्षितौ॥
ततोऽष्टादशभिः पुष्पैर्मूलैः पञ्चभिरेव च।
सुवर्णगर्भन्तु मणिं विद्वान् शिरसि धारयेत्॥
कृत्वैतत् सकलं कर्म्म कृषिं बहुफलां लभेत्॥
दक्षिणाश्चात्र ये दद्युर्मूलानि च फलानि च।
सितानि चैव वस्त्राणि कनकं रजतं तथा।
भोजनञ्चात्र दातव्यं ब्राह्मणानामभीप्सितं।

अलङ्घयन्मूलमिदञ्च कुर्व्वन्
स्नानं सदा भार्गववंशमुख्यः।
कृषिं ससमाप्नोति सदैव वृद्धिं
यथेप्सितं नात्र विचारमस्ति॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं मूलस्नानं।

गर्गं मुनिवरश्रेष्ठं भार्गवः परिपृच्छति।
नैऋतेन तु ऋक्षेण शिशोर्ज्जातस्य किं फलं॥
पादे पादे तु यत् प्रोक्तं तन्ममाचक्ष्व सुव्रत।
स्नानदानादिहोमांश्च दर्शनीयं कथं भवेत्॥

गर्ग उवाच।

प्रथमे पितरं हन्ति द्वितीये हन्ति मातरं।
तृतीये च धनं हन्ति चतुर्थे शोभनं भवेत्॥
प्रथमे छेदनं कृत्वा रक्तस्रावो विधीयते।
द्वितीये दीयते बालः परस्त्रीपुरुषस्य वा॥
अथवास्य तृतीये तु पश्चाच्छान्तिन्तु कारयेत्।
चतुर्थे शस्यते स्नानं कृत्वा चैव शिशोः पिता॥
स्वयमुत्पाटयेत् प्राज्ञो मूलानाञ्च शतं पिता।
मङ्गल्याश्च पवित्राश्च ओषध्यः कथयाम्यहं॥
लक्ष्मणा शतमूला च शिरीषो वेतसस्तथा।
सिंहका श्वेतमूला च विष्णुक्रान्ता च शङ्खिनी।
सर्पाक्षी मीननेत्रा च पुत्रापरि कृताञ्जली॥
पलाशो विल्वकश्चैव रोचना चन्दनद्वयं।
कृष्णमांसी मुरीशीरं धवकञ्च तथामलं(१)॥
गोजिह्वा तुलसी दूर्व्वा शतपुष्पा शताङ्कली।
ब्रह्मदण्डी द्रोणपुष्पी प्रियङ्गुःश्वेतसर्षपाः॥

---

(१) वाल्यार्कञ्च तथामलमिति पाठान्तरं।

पिप्पलः काकजङ्घा च त्रायमाणा उडुस्तथा।
ज्योतिष्मती च गान्धारी निर्गन्धा पूर्णकोशिका॥
भगच्छुमा सुभद्रा च गुडूची सैन्द्रवारुणी।
अलम्बुका च दन्ती च कदली कैतकस्तथा॥
गोक्षुरः शतपत्री च अरिष्टकापराजिता।
चित्रपर्णी शतपला च निकुम्भोऽथ सुवर्चला॥
अश्वगन्धा हस्तिकर्णी हरिद्राद्वितयं तथा।
उदुम्बरो मधुकारश्च अश्वत्थो वकुलस्तथा॥
सर्जराजो अपामार्गो मन्दारश्चातिमुक्तकः।
मालती स्वर्णपुष्पी तु श्रीकर्णी श्रीफलस्तथा॥
दर्भमूलं करवीरं सदयन्ती विकङ्कतः।
पाटला सुरदारुश्च षड्ङ्कुदनिका तथा॥
फलं मन्मथवृक्षस्य पलाशस्य च पल्लवं।
रास्ना नन्दीवृक्षमूलं सुरदारुर्विदारिका॥
श्वेतवीर्यो श्वेतपाका नीलोत्पलं तथैव च।
नागकेशरसिन्दूरी कुमारी चैव निक्षिपेत्॥
तीर्थाम्बु पञ्चगव्यञ्च सर्व्वौषध्यश्च काञ्चनं।
यथासम्भवतो वापि ग्राह्यं मूलीशतं शुभं।
वीरत्वचा समेतञ्च शतच्छिद्रे घटे न्यसेत्॥
नद्या उभयकूलस्था गोशृङ्गखनिता च या।
वह्निर्मूलगता या च तथा मातङ्गहोद्भवा।
वल्मीकपल्वलस्था च रजसा रक्तकाश्च ये॥
रजसा रक्तकाः, गोरजोरञ्जिता रथ्यामृत्तिका इत्यर्थः।

स्नानकाले तु सा प्रोक्ता मृत्तिका पापनाशनी ।
तत्काले करकैः शान्तिस्ते चाष्टौ तोयपूरिताः ॥
चत्वारो वाथ तां दत्त्वा शिरस्नाने विवेष्टिताः ।
सवाल्लायास्ततः कुर्य्याद्विलिप्ते मण्डले शुभे ॥
वेदमङ्गलघोषैश्च मन्त्रैः पुण्याभिषेचनैः ।
आचार्य्यः कलशन्दिव्यं अभिमन्त्र्य ततः स्नपेत् ॥
स्नानं कार्य्यमिदं दिव्यं सूतकान्ते ततः शिशोः ।
मातरं स्नापयेत्पश्चाद्ग्रहपूजान्तु कारयेत् ॥
आचार्य्यं पूजयित्वा तु ब्राह्मणानाञ्च पूजनं ।
सौवर्णं पुरुषं दद्यादाचार्य्याय गुणान्वितः ॥
धेनुं दद्यात्तथा धान्यं शतमानञ्च दक्षिणां ।
प्रदक्षिणं ततः कृत्वा प्रणिपत्य क्षमापयेत् ॥
तैर्व्वैतैर्नुजातस्य ग्रहरिष्टोद्भवस्य च ।
गण्डान्ते चैव भावस्य बालस्येति विधीयते ॥
कृष्णतिलानान्तु षष्ट्या हैरण्यं मानमुच्यते ॥

षष्टिकृष्णतिलमितं सुवर्णमानं । निकुम्भो दन्तीभेदः सुवर्चसा सूर्य्यसक्ता । हस्तिकर्णी एरण्डः । उष्ट्रवः पीलुः । मधुकारी मधुकः । सर्जराजी वीजकः । अपामार्गः घाटकः । अतिमुक्तं माधवी । मालतिः जातिः । स्वर्णपुष्पी सुफला । श्रीफलं विल्वं । मदयन्ती पूतिका ।

अर्द्धसूदनिका पालङ्की । मन्मथवृक्षश्चाम्रः । सुरदारुः देवदारुभेदः । विदारिका कुष्माण्डी । श्वेतवीर्य्या गिरिकर्णिका । श्वेतपाका गुञ्जा । शेषाणि स्नानप्रसिद्धानि ।

इन्द्राय स्वाहा। अग्नये स्वाहा। सोमाय स्वाहा। पवमानाय स्वाहा। मरुते स्वाहा। यमाय स्वाहा। मृत्यवे स्वाहा। अन्तकाय स्वाहा। अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा॥ त्रातारमिन्द्र। त्वन्नो अग्ने। सुगन्नुपन्थां। असुन्वन्तं। तत्त्वायामि मानोनियुद्भिः। वयं सोम। तमीशानं। अस्मैरुद्रा। स्योना पृथिवी। इत्यादि मन्त्राः।

## इति मूलशान्तिः।

———000@000———

राम उवाच।

काम्यं कर्म्म समाचक्ष्व वाणिज्यं येन सिध्यति।
कृषिश्च बहुलाचैव कर्म्मणा केन वाप्नुते॥

पुष्कर उवाच।

मूलेषूपोषितः कुर्य्यादिदं कर्म्म पुरोहितः।
उपोषितस्य धर्म्मज्ञ यजमानस्य नित्यशः॥
आषाढासु पूर्व्वाषाढासु प्राङ्मुखं स्नपयेन्नरं।
युक्तैर्वंतसमूलैश्च शङ्खमुक्ताफलैस्तथा॥
मणिभिश्च यथालाभं कनकेन तथैव च।
अकालमूलैः कलशैश्चतुर्भिर्भृगुनन्दन॥

अकालमूलैः, नवैः।

ततस्तु पूजयेद्देवं शङ्खचक्रगदाधरं।
प्राङ्गणे तु तथैवाच वरुणञ्च निशाकरं॥
गन्धमाल्यनमस्कारदीपधूपान्नसम्पदा।

एतेषामेव जुहुयात्तथा नाम्ना घृतं द्विजः।
नीलवासास्तथा भूत्वा क्षिपेदप्सु समाहितः॥
नीलानि चैव वासांसि देयानि विविधानि च।
चन्दनञ्च(१) सुरा चैव गैरेयं विविधन्तथा॥
शुक्लानि चैव माल्यानि धूपं दद्याद्वृती तथा।
निष्पत्तिमकरस्यास्थि शङ्खमुक्ताफले तथा।
सुवर्णान्तरितं कृत्वा धारयेच्च तथा मणिं॥
कृत्वैतत् सिद्धिमाप्नोति वाणिज्ये नात्र संशयः॥
समुद्रयाने च तथा कर्षणे च न सीदति।
नीलानि सप्त वासांसि दक्षिणा चात्र शस्यते॥
शङ्खं सुवर्णं रूप्यञ्च(२) तथा मुक्ताफलानि च।
रत्नं कर्त्तं द्विजेभ्यस्तु सर्व्वमेतद्विधीयते।
ब्राह्मणान् भोजयेच्चात्र परमान्नं सुसंस्कृतं॥

अभ्यर्च्य प्रत्येकमथाष्टमूर्त्तीः
करोति कर्मैतदनिन्दितात्मा॥
न जातु लाभाद्विनिवर्त्ततेऽसौ
समुद्रयानादिव निम्नगा वै॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं वाणिज्यलाभव्रतम्।

———000———

सूत उवाच।

ब्रह्मणो मानसः पुत्रो वशिष्ठ इति विश्रुतः।

---

(१) चोदनञ्च सुराचैवेति पुस्तकान्तरे पाठः।

(२) शङ्खं सुवर्णं कुप्यञ्चेति पाठान्तरं।

तस्य शक्तिरभूत्पुत्रस्तस्य पुत्रः पराशरः॥
तपश्चकार सुमहद्दुष्करं देवदानवैः।
पुत्रार्थी ब्रह्मचारी च ततो लब्धवरो भवेत्॥
सुपुत्रं लप्स्यसेऽत्येवं भवेत्तोमहात्मभिः।
कुरु संवत्सरं स्नानं श्रवणे श्रवणे मुने॥
सोऽपि पुत्रानवापाष्टौ चकार श्रद्धयान्वितः।
पाराशर्य्यः सुतं लेभे व्रतस्यास्य प्रभावतः॥
एवमन्योऽपि राजेन्द्रस्तावत् सिद्धिमवाप्नुयात्।
पुत्रान् पौत्रांश्च लभते सुखञ्चात्यन्तमश्नुते॥

इत्यादित्यपुराणोक्तं पुत्रोत्पत्तिव्रतं।

---

श्रीराम उवाच।

स्नानानामिह सर्व्वेषां यः स्नानमतिरिच्यते।
तन्ममाचक्ष्व सकलं सर्व्वकल्मषनाशनं॥

पुष्कर उवाच।

शृणु पादोदकस्नानं सर्व्वकल्मषनाशनं।
चतुरात्मा हरिर्य्यत्र भवत्यन्वागतो द्विज॥
तत्र कार्य्यमिदं स्नानं सर्व्वकल्मषनाशनं।
ततः कार्य्यं प्रयत्नेन श्रवणर्क्षे विशेषतः॥
अथोत्तराषाढ़ासु निराहारो जितेन्द्रियः॥
सर्वौषधैः सर्व्वगन्धैर्द्देवदेवस्य शक्तितः।
पादं प्रक्षालयेद्विद्वान् क्रमेण चतुरात्मनः॥
ततः सुकलशान् कुर्य्याच्चतुरः सुदृढ़ान्नवान्।

सौवर्णं राजतं ताम्रमथवापि महीमयान् ॥
ततो निरुद्धचरणः कूपाद्भिः चालयेत्ततः ॥
ताभिस्तु कलशम्पूर्णं स्थापनीयं तदग्रतः ॥
ततः प्रद्युम्नचरणौ चाल्यौ प्रस्रवणोदकैः ।
तैस्तु संपूर्णकलशं भवेत् स्थाप्यन्तदग्रतः ॥
संकर्षणस्य चरणौ चाल्यौ तोयैश्च सारसैः ।
कलशं पूरितन्तैश्च स्थाप्य तस्याग्रतो भवेत् ॥
वासुदेवस्य चरणौ नादेयैः चालयेद्बुधः ।
कलशं पूरितं तैश्च स्थापनीयं तदग्रतः ॥
ततस्तु पूजा कर्त्तव्या तथा वै चतुरात्मनः ।
कलशान् पूरयेत्तांश्च गन्धमाल्यफलाक्षतैः ॥
ततः प्राप्ते द्वितीयेऽह्नि स्नातः पूर्व्वमुपोषितः ।
सम्मुखश्चानिरुद्धस्य स्नाप्यश्चोत्कटुको भवेत् ॥
प्रद्युम्नस्य च देवस्य ततः सङ्कर्षणस्य च ।
ततश्च वासुदेवस्य सर्व्वावासस्य चक्रिणः ॥
पवित्रमन्त्रैः सर्व्वेषां घटानामभिमन्त्रणं ।
कर्त्तव्यं सान्त्वयेनाथ शुचिना भार्गवोत्तम ॥
अथ मन्त्रान् प्रवक्ष्यामि चतुर्षु कलशेषु ते ।
मङ्गल्यांश्च यशस्यांश्च सद्योऽघविनिषूदनान् ॥
अरुद्धमार्गः सर्व्वत्र सर्व्वगश्चापराजितः ।
वायुमूर्त्तिरचिन्त्यात्मा सोऽनिरुद्धः स्वयं प्रभुः ॥
पादोदकेन दिव्येन शिवेनाघविनाशनं ।
तथाद्यमुपहत्याशु स्नयं वर्द्धयतु प्रभुः ॥

लोकान् प्रद्योतयति यः प्रद्युम्नो भास्करः प्रभुः।
हुताशनः स तेजस्वी मङ्गलं विदधातु मे॥
कामदेवो जगद्योनिः सर्व्वगः प्रभुरीश्वरः।
रोगहर्त्ता जगन्नाथो मङ्गलानि ददातु मे॥
जगतां कर्षणाद्देवो यः स संकर्षणः प्रभुः।
रुद्रमूर्त्तिरचिन्त्यात्मा सर्व्वगः सर्व्वदारकः॥
कामपालोऽरिदमनः सर्व्वभूतवशङ्करः।
विश्वयोनिर्महातेजा मङ्गलानि ददातु मे॥
सर्व्वावासो वासुदेवो भूतात्मा भूतभावनः।
सर्व्वगश्चाप्रमेयश्च पुरुषः परमेश्वरः॥
अनन्तः सर्व्वदेवेशो जगत्तारणकारणः।
अघापहारी वरदो विदधातु श्रियं मम॥
एवं स्नातस्तुतिं कृत्वा परिधाप्य सुवाससी।
शुक्लवासा उपस्पृश्य पूजां कुर्य्यात् क्रमेण तु॥
गन्धैः पुष्पैः फलैः पुण्यैर्दीपधूपैः सुगन्धिभिः।
नैवेद्यैर्विविधैश्चैव पायसान्नैस्तु पूजनैः॥
एवं देवार्च्चनं कृत्वा सम्यतात्मा गताशुभः।
भोजनं गोरसप्रायं कृत्वा तिष्ठेदतन्द्रितः॥
प्रादुर्भावानि मुख्यानि शृणुयात् केशवस्य च।
पाषण्डपतितानाञ्च वर्ज्जयेद्दर्शनं तथा॥
इतिपादोदकस्नानं प्रोक्तं रक्षोहणं तव।
मङ्गल्यम्पापशमनमलक्ष्मीनाशनं परं॥
सर्व्वविघ्नप्रशमनं सर्व्वबाधाविनाशनं।

सर्व्वदुष्टोपशमनं सर्व्वव्याधिहरं परं ॥
यात्रासिद्धिकरं पुण्यं कर्म्मणां सिद्धिकारकं ।
शत्रुघ्नं बुद्धिदं मध्यं बलायुःस्मृतिवर्द्धनं ।
सौभाग्यदं कामपरं यशःपुत्रविवर्द्धनं ॥
अमोघवीर्य्यं पुरुषोत्तमस्य
पादोदकस्नानमिदं प्रतिष्ठं ।
स्नानोत्तमन्ते रणचन्द्रवेग-
भुवस्तु ते किं करवाणि राम ॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं पादोदकस्नानं ।

——000——

श्रीराम उवाच ।

आरोग्यकारकं स्नानं द्वितीया प्रतिपत्तथा ।
आरोग्यदं व्रतं चैव वैष्णवं कथयस्व मे ॥

पुष्कर उवाच ।

धनिष्ठासु महाभाग यजमानपुरोहितौ ।
उपोष्य वारुणं स्नानं यजमानस्य कारयेत् ॥
कृत्वा कुम्भशतं पूर्णं शङ्खमुक्ताफलोदकैः ।
भद्रासनोपविष्टः सन् स्नातश्चैवाहताम्बरः ॥
केशवं वरुणं चन्द्रं नक्षत्रं वारुणं तथा ।
पूजयेत् प्रयतो राम गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥
दीपधूपनमस्कारैस्तथा चैवान्नसम्पदा ।
देवतानां यथोक्तानां कुर्व्वीतावाहनन्ततः ॥
सर्व्वौषधैस्तथाज्येन यथाशक्ति विचक्षणः ।

गुरवे वाससी देये रसगोकुम्भकाञ्चनं।
ब्राह्मणानान्तु दातव्याऽवित्तशाठेन दक्षिणा॥
शमीशाल्मलिजैः पत्रैर्व्वं शाग्रेण तथैव च।
त्रिवृतस्तु मणिर्द्धार्य्यः सर्व्वरोगविनाशनः॥
शाकानि हरितं माल्यं सर्व्वशस्यानि वाससी।
वरुणाय विनिक्षिप्य गन्धधूपं निवेदयेत्॥
अलङ्घ्यानस्य हि वारुणं तत्
स्नानेन दानेन कृतेन सम्यक्।
रोगाः समग्राः प्रशमं प्रयान्ति
बद्धस्तथा मोक्षमवाप्नुयाच्च॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं शतभिषास्नानं।

———000———

अतःपरं प्रवक्ष्यामि काम्यं कर्म्म तवानघ।
कर्त्ता तूपवसेत्तत्र कारकश्च तथैव च॥
पूर्व्वभाद्रपदायोगे अहिर्ब्रध्नगते तथा।
स्नानं निशान्ते कुर्वीत द्वितीये इति शास्त्रवित्॥
उडुम्बरस्य पत्राणि पञ्चगव्यं कुशोदकं।
रोचना चन्दनं वासः क्षिपेत् कुम्भद्वये बुधः॥
कुम्भद्वयं ततः कुर्य्याद्गन्धमाल्याञ्जनैर्दृढं।
अकालमूलं संस्नाप्यः कर्त्ता तेन तदा भवेत्॥
स्नात्वा गोबालचीराणि परिधानि समाहितः।
पूजयेच्चाप्यहिर्ब्रध्नमादित्यं च तथैव च॥

वरुणञ्च शशाङ्कञ्च गन्धमाल्यान्नसम्पदा ।
दीपधूपनमस्कारैस्तथैव बलिकर्म्मणा ॥
अक्षतानान्तु पात्राणि ततो राम चतुर्द्दश ।
अहिब्रध्नाय रुद्राय सफरीश्च निवेदयेत् ॥
षड़ङ्गेन तु दद्याद्वै तथा धूपं द्विजोत्तमः ।
ततस्तु पूजा कर्त्तव्या देवदेवस्य चक्रिणः ॥
ओंकारपूर्व्वमाज्यन्तु सर्व्वासां जुहुयात्ततः ।
देवतानां यथोक्तानामेकैकस्य शतं शतं ॥
गोपालशफशृङ्गैस्तु तद्वतं कारयेन्मणिं ।
धारणं तस्य कर्त्तव्यं करे मूर्द्धाथ वा भुजे ॥
कर्त्रे चैवोपदेष्ट्रे तु शक्त्या देया च दक्षिणा ।
ब्राह्मणानाञ्च सर्व्वेषां यथावदनुपूर्व्वशः ॥

अलङ्घयन्भाद्रपदामथान्यां
करोति यः स्नानमिदं सदैव ।
भवन्ति तस्यायुतशस्तु गावः
परामवाप्नोति तथैव वृद्धिं ॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं अहिब्रध्नस्नानं ।

———ooo———

वलगुरुवाच ।

व्रतान्यन्यानि मे ब्रूहि काम्यानि द्विजपुङ्गव ।
नारीणां पुरुषाणाञ्च सर्व्वज्ञस्त्वं यतो मम ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

कृत्तिकास्वर्च्चयेद्देवं कार्त्तिकीप्रभृतिक्रमात् ।

यावत्स्यात्कार्त्तिको भूयो नरसिंहमुपोषितः ॥
अनुलेपनपुष्पाद्यैः सर्व्वरत्नैः सदैव तु ।
व्रतावसाने दद्याद्गां तथा श्वेतां द्विजातये ॥
श्वेतवस्त्रयुताञ्चैव (१) रजतञ्च तथा नृप ।
उपोषितः सदा कुर्य्याद्व्रतं स्याच्छत्रुवर्ज्जितः ।
मार्गशीर्षमथारभ्य मृगर्क्षे पूजयेन्नरः ।
अनन्तशयनासीनमनन्तं सर्व्वकामदं ॥
अनन्तपुष्पोपचयमनन्तसुखसम्पदं ।
यथाभिलषितावाप्तिः कुरु मे पुरुषोत्तम ॥
इत्युदीर्य्याभिपूज्यैनमुपोषणपरो नरः ।
विप्राय दक्षिणां दद्यादनन्तः प्रीयतामिति ॥
पौषमासादथारभ्य पुष्ये नित्यमुपोषितः ।
यावत्पौषो भवेद्भूयो बलदेवमथार्चयेत् ॥
अनुलेपनपुष्पाद्यैः सर्व्वरत्नैस्तथैव च ।
व्रतावसाने दातव्यं (२) कांस्यं कनकमेव च ।
भक्त्या विप्राय भवति नित्यं पुष्टियुतो नरः ॥
माघमासादथारभ्य मघासु सततं नरः ।
वराहमर्चयेद्देवं तथा नित्यमुपोषितः ॥
घृताभ्यङ्गेन विधिवच्चन्दनेन सुगन्धिना ।
तथा च परमान्नेन घृतहोमेन वाप्यथ ॥
दद्याद्व्रतावसाने तु घृतधेनुं नराधिपः ।

---

(१) श्वेतवस्त्रयुताञ्चैवेति पाठान्तरं ।
(२) सघृतं कांस्यमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

पितृप्रसादमाप्नोति कृत्वैतद्व्रतमुत्तमं ॥
फल्गुनीतस्तथारभ्य फाल्गुनीषु समर्चयेत् ।
नरनारायणौ देवौ यावत्स्यात् फाल्गुनी पुनः ।
व्रतावसाने शयनं स्वास्तीर्णं प्रतिपादयेत् ॥
व्रतेनानेन नारी स्यात् सभर्त्री समलङ्कृता ।
भार्य्यां नरस्तथाप्नोति रूपद्रविणसंयुतां ॥
अनुकूलां प्रियां नित्यं तथा पत्रवतीं नृप ।
अवियोगमवैधव्यं करोत्येतन्महाव्रतं ॥
चैत्रमासादथारभ्य नित्यं चित्रास्वथार्चयेत् ।
यावच्चैत्री भवेद्भूयो नित्यं विष्णुमुपोषितः ॥
व्रतावसाने दद्याच्च चित्रं वस्त्रं द्विजन्मने ।
व्रतेनानेन पुरुषः पुत्रानाप्नोत्यथेप्सितान् ॥
नारी वा पुरुषश्चापि नात्र कार्य्या विचारणा ।
वैशाखे च तथा विष्णुं विशाखासु समर्चयेत् ॥
यावद्भूयात्तु वैशाखी सोपवासः पृथुं विभुं ।
दत्त्वा व्रतान्ते कनकं ज्ञातिश्रेष्ठं नरोत्तमः ॥
ज्यैष्ठमासे तथा ज्येष्ठामुपोषितो नरः सदा ।
कृष्णञ्च पूजयेद्देवं वस्त्रालङ्कारभूषणैः ॥
व्रतावसाने दातव्यं गवां शतमनुत्तमं ।
वस्त्राणि कनकं भूरि कृष्णसायुज्यमाप्नुयात् ॥
आषाढीतस्तथारभ्य दिनद्वयमुपोषितः ।
आषाढास्वर्च्चयेद्देवं प्रद्युम्नमपराजितं ॥
भूयः स्यात्तु यदाषाढी दद्याच्च शयनं ततः ।

विस्तीर्णं तेन चाप्नोति नित्यं रूपयुता स्त्रियः॥
श्रावणीतस्त्वथारभ्य ग्रहेण संयुतं हरिं।
पूर्व्ववत्सोपवासस्तु यावत्स्यात् श्रावणी पुनः॥
व्रतावसाने दद्याच्च ब्राह्मणाय घृतं बहु।
व्रतेनानेन चीर्णेन दीर्घजीवितमाप्नुयात्॥
आरभ्य प्रौष्ठपादीतो नित्यभ्भाद्रपदाह्वये।
सङ्कर्षणं पूजयेत्तु यावद्भाद्रपदी पुनः॥
व्रतावसाने दद्याच्च गवां मिथुनमुत्तमं।
व्रतेनानेन भवति नित्यमाज्ञायुतो नरः॥
आश्वयुज्यामथारभ्य नित्यमेवाश्विनीषु च।
अर्च्चयेत्पद्मनाभन्तु वासुदेवमुपोषितः।
व्रतावसाने दद्याच्च कांस्यं रौप्यं घृतं तथा॥

व्रतान्यथैतानि मया नरेन्द्र
प्रोक्तानि ते पापहराणि नित्यं।
नाकप्रदान्युत्तमपूरुषाणां
कामाप्तिदान्येव यथेष्टदानि॥

एतद्रूपाण्याह विश्वकर्म्मा।
बलभद्रो नीलवासा लाङ्गली मुषली शितः।
नरनारायणौ नीलौ साक्षात् शुक्लजटाजिनौ॥
रथस्थैकैकचरणौ मध्यस्थौ सट्टग्रीतन्।
बाणबाणासनयुतौ द्विचतुर्बाहुधारिणौ॥
पृथुः सचापो द्विभुजो राजलक्षणलक्षितः।
शङ्खकौमोदकीपद्मचक्री प्रद्युम्न उच्यते।

सङ्कर्षणः शङ्खपद्मचक्रकौमोदकीधरः ॥
शेषाणि धरणीव्रते विलोकनीयानि।

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं सर्व्वकामाप्तिव्रतं।

———000———

युधिष्ठिर उवाच।

अप्राप्तेन यथा दुःखमैश्वर्य्यादेर्नरोत्तम।
तथा मनोरथैर्लब्धनाशाद्दुःखं भवेन्नृणां ॥
ऐश्वर्य्याद्विच्युते वापि सन्ततेर्वापि लोपतः।
अभीष्टादन्यतो वापि स्वपदाद्येन विच्युतिं।
नरो नाप्नोति नारी वा व्रतं तद्ब्रूहि मे मुने ॥

कृष्ण उवाच।

सत्यमेतन्महाभाग दुःखप्राप्तिश्च संचयः।
ऐश्वर्य्यस्यैव वित्तस्य बन्धुवर्गसुतस्य च ॥
तदेव श्रूयतां पार्थ यथा नेष्टात्पदच्युतिः।
स्वर्गादिर्जायते सम्यगुपवासव्रते नृणां ॥
द्वादशर्च्चाणि राजेन्द्र प्रतिमासन्तु यानि वै।
पुष्पैर्धूपैस्तथाम्भोभिरभीष्टैरपरैरपि ॥
आदितः कृत्तिकां कृत्वा कार्त्तिके नृपसत्तम।
कृशरामान्ननैवेद्यं पूर्व्वंमासचतुष्टयं ॥
निवेदयेत् फाल्गुनादौ संयावन्तु ततः परं ॥
आषाढ़ादिषु (१) देवाय पायसं विनिवेदयेत् ॥

(१) आषाढ़ादिचतुर्म्मासमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

तेन कृशरामान्ननैवेद्यं पूर्व्वमासचतुष्टये निवेदयेत्। फाल्गुनादिषु संयावं ततः परं आषाढ़ादिषु चतुर्षु मासेषु पायसं विनिवेदयेत्।

तेनैवान्नेन राजेन्द्र ब्राह्मणान् भोजयेद्बुधः।
पञ्चगव्यजले स्नानं तस्यैव प्राशनाच्छुचिः॥
सम्यक् संपूज्य राजेन्द्र तमेव पुरुषोत्तमं।
प्रणम्य प्रार्थयेद्विद्वान् शुचिस्नातो यथाविधि॥

नमो नमस्ते मम संक्षयोऽस्तु
पापस्य वृद्धिं समुपैतु पुण्यं।
ऐश्वर्य्यवित्तादि सदाक्षयं मेऽ
क्षया च मे सन्ततिरच्युतास्तु॥
तथाच्युत त्वं परतः परात्मा
ब्रह्मात्मभूतः परतः परात्मा।
यथाच्युतं मे कुरु वाञ्छितं तत्
पापं हरे मे तु हराप्रमेयं॥

अच्युतानन्द गोविन्द प्रसीद यदभीप्सितं।
तदक्षयममेयात्मन् कुरुष्व पुरुषोत्तम॥
एवं देवं समभ्यर्च्य प्रार्थयित्वा यथाविधि।
नैवेद्यं स्वयमश्नीयान्नित्यं श्रद्धासमन्वितः॥
ततः संवत्सरस्यान्ते सुखं सुप्तोत्थितेऽच्युते।
सघृतं ताम्रपात्रन्तु ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥
शक्तितो दक्षिणां दद्यादच्युतः प्रीयतामिति।
एवं त्रिसप्तमे वर्षे कुर्य्यादुद्यापनन्ततः॥

तदग्रे ब्राह्मणी स्थाप्या स्थविरा शाम्भरायणी ।
महासती रौप्यमयी तन्मनार्हा सदैव सा ॥
ततस्ते पूजयित्वा तु माल्यवस्त्रानुलेपनैः ।
मन्त्रेणानेन राजेन्द्र प्रणिपत्य विधानतः ॥
प्रतिसंवत्सरं दद्यादन्नपानं द्विजातये ।
ब्राह्मणाय तिलान् दद्यात् सहिरण्याज्यसंयुतान् ॥
गाश्चाथ दद्याद्विप्राय सवत्साः कांस्यदोहनाः ।
शय्याञ्च शक्तितो दद्याद्भक्त्या तिष्ठेत्तु केशवः ।
घटसप्तात्र निर्द्दिष्टाः स्थाप्याः पूर्णजलोज्ज्वलाः ॥
छत्रोपानद्युगैः सार्द्धं दत्त्वा न च्यवते नरः ।
तस्मात् सर्व्वप्रयत्नेन दत्त्वा विप्रान् विसर्जयेत् ॥
नृत्यगीतेन राजेन्द्र नरः प्राप्नोति वाञ्छितं ।
सन्ततिं स्वर्गसौभाग्यमैश्वर्य्यञ्च तथैव च ॥
तद्दत्तिमितमत्यन्तं ततो न च्यवते नरः ।
तस्मात् सर्व्वं प्रयत्नेन आत्मना चैव पूजयेत् ।
यतेताक्षयकामस्तु सदैव पुरुषोत्तम ॥

कृष्ण उवाच ।

अत्रापि श्रूयते काचित् सिद्धा स्वर्गे महाव्रता ।
नारी तपस्विनी भूत्वा प्रख्याता शाम्भरायणी ॥
समस्तसन्देहहरा सदा स्वर्गौकसां हिता ।
कस्मिंश्चिदेव काले तु देवराजः शतक्रतुः ।
पूर्वेन्द्रचरितं राजन् पप्रच्छेदं बृहस्पतिं ॥
पूर्व्वेन्द्रात्परतः पूर्व्वं ये बभूवुः सुरेश्वराः ।

तेषां चरितमिच्छामि श्रोतुमङ्गिरसां वर ॥
एवमुक्तस्तदा तेन देवेन्द्रेणामलद्युतिः।
प्राह धर्म्मभृतां श्रेष्ठः परमर्षिर्वृहस्पतिः॥
आत्मनः समकालीनं मामवेहि सुरेश्वर।
ततः परमयं देवो वृहस्पतिसमन्वितः॥
ययौ यत्र महाभागा सम्यगास्ते तपस्विनी।
सा तौ दृष्ट्वा समायातौ देवराजवृहस्पती॥
सम्यग्धर्म्मेण संपूज्य प्रणिपत्याह सुव्रता।
नमोऽस्तु देवराजाय तथैवाङ्गिरसे नमः॥
यद्वा कार्य्यं महाभागैः सकलन्तदिहोच्यतां।
यदि कर्तुं मया शक्यं तत् करिष्येऽविमृश्य च॥

वृहस्पतिरुवाच।

आवाभ्यामागतौ भद्रे प्रष्टुमनाभिकाङ्क्षिणौ।
यच्च कार्य्यं महाभागे तत्पृष्टं कथयस्व मां॥
यदि स्मरसि कल्याणि पूर्वेन्द्रचरितानि वै।
तदाख्याहि महाभागे देवेन्द्रस्य कुतूहलं॥

प्राभारायण्युवाच।

यस्ते पूर्व्वं सुरेन्द्रस्य ततश्च प्रथमो हि यः।
तस्मात् पूर्व्वतरा ये च तस्यापि प्रथमश्च यः॥
तेषां पूर्व्वतरा ये वै विद्मि तानखिलानहं।
तेषाञ्च चरितं कृत्स्नं जानाम्यङ्गिरसां वर॥
मन्वन्तराण्यनेकानि सृष्टयस्त्रिदिवौकसः।
सप्तर्षींश्च बहून् विद्मि मनूनाञ्च सुतांश्च यान्॥

एवमुक्ता सुरेन्द्राणां सा शक्रं शाम्भरायणी।
कथयामास आचार्य्यं तद्दापि कथयामि ते॥
शृणु वत्स नकुकर्णो देवदैवतदुर्ज्जयः।
स लोकपालान् समरे विजित्य सहदैवतैः।
इन्द्रस्यायतनं पश्चात् प्रविवेश सुनिर्भयः॥
तं दृष्ट्वा सहसा प्राप्तं शक्रः शय्यातले लुठन्।
जुगोप सहसा भ्रान्तं नकुकर्णभयाद्दिवं।
दानवं शक्रशयने प्रणिपातपुरःसरः॥
वासुदेवस्तु दुर्वृत्तं दृष्ट्वा दैवतकण्टकं।
चकार कण्ठग्रहणं वासवस्तेन हर्षितः॥
ततः कृष्णश्च तरसा गृह्य दोर्भ्यां शनैः शनैः।
पीड़यामास विहसन् मदन्तं भैरवान् रवान्॥
ममार दानवेन्द्रोऽसौ बलाद्भग्नार्त्तपञ्जरः।
निर्जगाम ततः सोऽपि शय्यामूलमवाक् गिरः॥
तुष्टाव हरिमासीनः शङ्खचक्रगदाधरं।
एतद्दृष्टं मया शक्र उवाच सुरराट् प्रति॥
ततः कुरु तपो रौद्रं देवराजस्तपस्विनीं।
उवाच जानासि कथं त्वमेतत् शाम्भरायणि॥

शाम्भरायण्युवाच।

सर्व्व एव हि देवेन्द्र स्वर्गस्था ये सुरेश्वराः।
बभूवुश्चरितं तेषां श्रुतं दृष्टन्तथैव च।

इन्द्र उवाच।

किन्दृष्टं वद धर्मज्ञे त्वयानघे यदृच्छया।
स्वर्लोके वसतिं प्राप्ता यथान्यायेन केनचित्॥
अहो सर्व्वव्रतानाञ्च ह्युपोषितमयोहृतं।
प्रधानतरमत्यन्त स्वर्गवासप्रदं मतं॥
एवमुक्ता ततस्तेन देवेन्द्रेण तपस्विनी।
प्रत्युवाच महाभागा यथा तच्छाम्भरायणी॥
समर्थैरर्च्चितो देवः प्रतिमासं सुरेश्वर।
यथोक्तव्रतमासाद्य सप्तवर्षाणि पूजितः॥
तस्येयं कर्म्मणो व्याप्तिरच्युताराधनस्य मे।
देवलोकादभिमताद्देवराज यदच्युतिः॥
स्वर्गं द्रव्यमथैश्वर्य्यं सततं यानि वाञ्छति।
नरः प्राप्नोति तत्सर्व्वं तोषणीयस्ततः प्रभुः॥
एतत्ते पूर्व्वं देवेन्द्रचरितं सकलं मया।
स्वर्गवासाक्षयत्वञ्च मासादच्युतपूजनात्॥
यथा च कथितं देव पृच्छतस्त्रिदशेश्वर।
धर्म्मार्थकाममोक्षञ्च वाञ्छितं विबुधाधिपैः।
विष्णोराराधनायान्यत्परमं सिद्धिकारणं॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा देवराजबृहस्पती।
तां तथेत्यूचतुः साध्वीं चेरतुश्चापितद्व्रतं॥
तस्मात्पार्थ प्रयत्नेनप्र तिमासं समाहितः।
मासि मास्यच्युतं पूज्य भवेथास्तन्मनास्तदा।
ये शाम्भरायणि कथां चरितव्रतेन
वर्षाणि सप्त विधिना सुधियो नयन्ति।

ते स्वर्गलोकमभिलभ्य कृताधिवासाः
कल्पायुतं सुतशतैरपि न च्यवन्ति ॥

इति श्रीभविष्योत्तरे आम्भरायणीव्रतं ।

———०४०———

वशिष्ठ उवाच ।

शृणुष्व च महीपाल व्रतं विष्णुपदत्रयं ।
सर्व्वपापप्रशमनं यज्जगाद पुरा हरिः ॥
दक्षः प्रजापतिः पूर्व्वं विष्णुमाराध्य पृष्टवान् ।
बहुशश्च विपन्नायां स सृष्टावरिसूदनः ॥

दक्ष उवाच ।

भगवन् सर्व्वकर्त्तृत्वमादिष्टं मे स्वयम्भुवा ।
ब्रह्मणा देवदेवेन तवादेशेन केशव ॥
विपन्नेन जगन्नाथ समसृष्टिः कृता तव ।
विघ्नाशङ्कविनाशमात्त्वमाचक्ष्व चाच्युत ॥

वशिष्ठ उवाच ।

इत्येवमुक्तो दक्षेण देवदेवो जनार्द्दनः ।
आचष्ट दुःखक्षयदं व्रतं विष्णुपदत्रयं ॥
सर्व्वारम्भविनिष्पत्तिकारकं पापनाशनं ।
संसारोच्छेदकै र्धीरैर्यथेष्टं स्थिरबुद्धिभिः ॥
तदहं तव राजेन्द्र व्रतानामुत्तमोत्तमं ।
कथयामि समाचष्ट यथापूर्व्वं समासतः ॥
आषाढ़े मासि राजेन्द्र पूर्व्वाषाढ़ासु पार्थिव ।

समभ्यर्च्य जगन्नाथमच्युतं नियतः शुचिः।
पुष्पैर्धूपैस्तथाहृद्यैर्गन्धैः सागुरुचन्दनैः॥
यथाविभवतश्चान्यैरन्नैर्वासोभिरेव तु।
चीरस्नेहस्थितं तद्वद्दद्यैर्विष्णुपदत्रयं॥
समभ्यर्च्य यथाशक्त्या केशवस्याग्रतो न्यसेत्।
यवांश्च दद्याद्विप्राय श्रीपतिः प्रीयतामिति॥
नक्तं भुञ्जीत राजेन्द्र हविष्यान्नं सुशोभनं।
तथैवोत्तरषाढ़ासु श्रावणे मासि मानवः॥
तथैवाभ्यर्च्य गोविन्दं तथा विष्णुपदत्रयं।
विप्राय च घृतं दत्त्वा प्रीणयित्वा भुवःपतिं॥
भुञ्जीत गोरसप्रायं मानवो मौनमास्थितः।
स्त्री वा राजेन्द्र पूर्व्वासु तथा भाद्रपदासु वै॥
फाल्गुने फाल्गुनी पूर्व्वा भवेदिति यदा नृप॥
त्रिविक्रमं तदा देवं पूर्व्वोक्तविधिनार्च्चयेत्।
पदत्रयन्तु देवस्य समभ्यर्च्य तु पार्थिव॥
हिरण्यं दक्षिणां दद्यात् स्वर्गतिः प्रीयतामिति।
नक्तं भुञ्जीत राजेन्द्र आज्यपाकविवर्जितं॥
एष एवोत्तरायोगे चैत्रे मासि विधिः स्मृतः।
अपुत्रो लभते पुत्रमपतिर्लभते पतिं॥
समागमं प्रवासञ्च तथा प्राप्नोति बान्धवैः।
भद्रमैश्वर्य्यमारोग्यं सौभाग्यं वानुरूपतां॥
प्राप्नुयादखिलानेतान् पूजयित्वा पदत्रयं।
यान् यान् कामान्नरः स्त्री वा हृदयेनाभिवाञ्छति॥

तांस्तानाप्नोति निष्कामो विष्णुलोकं प्रपद्यते ॥
पूर्व्वं कृत्वापि पापानि नरः स्त्री वा नराधिप।
पदत्रयं व्रतश्चात्र मुच्यते सर्वकिल्बिषैः॥

इति विष्णधर्मोत्तरोक्तं विष्णुपदव्रतं।

———000———

दक्ष उवाच।

अपुत्रता महादुःखमतिदुःखं कुपुत्रता।
कुपुत्रः सर्व्वदुःखानां हेतुभूतो यतो मम॥
धन्यास्ते तु सुतं प्राप्य सर्व्वदुःखविवर्ज्जिताः।
शक्तं प्रशान्तबलिनं भक्तं गुणविचक्षणं॥
स्वकर्म्मनिरतं नित्यं देवद्विजपरायणं।
असक्तं वेदधर्म्मज्ञं दीनानाथसमाश्रयं॥
दैवानुकूलतायुक्तं युक्तं सम्यग्गुणेन तु।
प्राप्नोति पुत्रं वै योऽस्मान्नान्यो धन्यतरो भुवि॥
सोऽहमिच्छामि तत् श्रोतुं त्वत्तः कर्म्म महामुने।
येन तल्लक्षणः पुत्रो लभ्यते मानवैरिह॥

पुलस्त्य उवाच।

एवमेतन्महाभाग पित्रोः पुत्रसमुद्भवं।
सर्व्वदुःखोपशमनं येनैतत् कथयामि ते॥
कृतवीर्य्यो महीपालो हैहयानामभूत्पुरा।
तस्य शीलवतीनाम्नी बभूव वरवर्णिनी॥
सा त्वपुत्रा महाभागा मैत्रेयीं पर्य्यपृच्छत।

गुणांश्च पुत्रलाभस्य क्वतासनपरिग्रहा।
कथयामास मैत्रेयी नाम्नानन्तव्रतं शुभं॥
मैत्रेय्युवाच।
योऽयमिच्छेन्नरः कामं नारी वा वरवर्णिनी।
स तं समाराध्य विभुं सम्यगाप्नोति केशवात्॥
मार्गशीर्षे मृगशिरऋचं यस्मिन्दिने भवेत्।
तस्मिन् सम्प्राश्य गोमूत्रं स्नात्वा नियतमानसः॥
पुष्पैर्धूपैस्तथा गन्धैरुपहारैश्च भक्तितः।
वामपादमनन्तस्य पूजयेद्वरवर्णिनि॥
अनन्तः सर्व्वकामाय अनन्तं भगवान् फलं।
ददात्वनन्तञ्च पुनस्तदिहैवान्यजन्मनि॥
अनन्तपुण्योपचयङ्करीत्येतन्महाव्रतं।
तथाभिलषितावाप्तिं कुरु मे पुरुषोत्तम॥
इत्युच्चार्य्यार्चनं तस्य यथाविधिविधानतः।
समाहितमना भूत्वा प्रणिपातपुरःसरं॥
विप्राय दक्षिणान्दद्यादनन्तः प्रीयतामिति।
इत्युच्चार्य्य तथा नक्तं भुञ्जीयात्तैलवर्जितं॥
तथैव पुरुषं पौषे पुष्यर्चे भगवत्कटिं।
वामामभ्यर्च्य कर्त्तव्यं गोमूत्रप्राशनन्ततः।
अनन्तः सर्व्वकामानामिति वोच्चारयेत् पुनः॥
भुञ्जीत च तथान्यायं वाचयित्वा द्विजोत्तमान्।
माघे मघासु तद्वद्वै वाहू देवस्य पूजयेत्॥
स्कन्धञ्च फाल्गुनीयोगे फाल्गुने मासि भामिनि।

चतुर्ष्वेतेषु मासेषु गोमूत्रप्राशनं मतं ॥
ब्राह्मणाय तथादद्यात्तिलान् धान्यकमेव च ।
देवस्य दक्षिणं स्कन्धञ्चैवे चित्रासु पूजयेत् ॥
तथैव प्राशयेच्चात्र पञ्चगव्यं महीपते ।
किञ्चित्तु कनकं दद्याद्यावन्मासचतुष्टयं ॥
वैशाखे तु विशाखायां वाहुं संपूज्य दक्षिणं ।
तथैव दद्यात् कनकं नक्तं भुञ्जीत वाग्यतः ॥
ज्येष्ठासु च कटिं पूज्य ज्यैष्ठे मासि शुभव्रत ।
आषाढ़ासु तथाषाढ़े कुर्य्यात् पादार्च्चनं विभोः ॥
पादद्वयन्तु श्रवणे श्रावणे मासि पूजयेत् ।
घृतं विप्राय दातव्यं प्राशयीत यथाविधि ॥
कार्त्तिकान्तेषु मासेषु प्राशनं दानमेव तु ।
मुखं प्रौष्ठपदायोगे मासि भाद्रपदेऽर्चयेत् ॥
तद्वदेवाश्विने पूज्य हृदयञ्चाश्विनीषु च ।
कुर्य्यात्समाहितमना स्नानं प्राशनमर्च्चनं ॥
अनन्तशिरसः पूजां कार्त्तिके कृत्तिकासु च ।
यस्मिन् यस्मिन् दिने पूजा तत्र तत्र दिने दिने ॥
नाम तस्य तु जप्तव्यं क्षुतःप्रस्खलितादिषु ।
घृतेनानन्तमुद्दिश्य पूर्व्वं मासचतुष्टयं ॥
ततश्चतुर्षु मासेषु मधुना कुलनन्दन ।
क्षीरेण श्रावणादौ च होमो मासचतुष्टयं ॥
प्रशस्तं सर्व्वमासेषु हविष्यान्नेन भोजनं ।
एवं द्वादशभिर्म्मासैः पारणत्रितयं भवेत् ॥

व्रतावसाने चानन्तं सौवर्णं कारयेच्छुभं॥
राजतं मुषलञ्चैव तत्पार्श्वे विनिवेदयेत्।
पुष्पधूपादिनैवेद्यं पूजा कार्य्या यथाविधि॥
नाम्ना पीठोपरि हरिं मन्त्रैरेभिर्यथाक्रमं।
नमोऽस्त्वनन्ताय शिरः पादौ सर्व्वात्मने नमः॥
शेषाय जानुयुगलं कामायेति कटिं नमः।
नमोऽस्तु वासुदेवाय पार्श्वे संपूजयेद्धरेः॥
सङ्कर्षणायेत्युदरं भुजौ सर्व्वास्त्रधारिणे।
कण्ठं श्रीकण्ठनाम्ना वै मुखमिन्दुमुखाय च॥
हलञ्च मुषलञ्चैव स्वनाम्ना पूजयेद्बुधः।
एवं संपूज्य गोविन्दं सितवस्त्रविभूषितं।
छत्रोपानत्समायुक्तं स्रग्दामालङ्कृतं तथा॥
नक्षत्रदेवताः पूज्या नक्षत्राणि च सर्व्वशः(१)।
सोमं नक्षत्रराजानं मासान् संवत्सरं तथा॥

नक्षत्रदेवतास्तु भविष्यत्पुराणात्।

अश्विनौ यमराड़ग्निर्धाता चन्द्र उमापतिः।
अदितिर्व्वाक्पतिः सर्पाः पितरश्च भगोऽर्य्यमा॥
रविस्त्वष्टा मरुच्चैव शक्राग्नी मित्र एव च।
मघवा निर्ऋतिस्तोयं विश्वेदेवाः श्रियःपतिः॥
वसवो वरुणस्तस्मादजोऽहिर्ब्रध्नपूषणौ।
नक्षत्रदेवता ह्येता कथितास्तव देवताः॥
द्वादशात्र घटाः कार्य्याः सतोयाश्चान्नसंयुताः॥

(१) नक्षत्राणि चतुर्द्दश इति पुस्तकान्तरे पाठः।

एवं संपूज्य विधिवद्देवदेवं जनार्द्दनं।
ब्राह्मणान् पूजयित्वा तु वस्त्रैराभरणैः शुभैः॥
एकं वा वेदवेदाङ्गपारगं संयतेन्द्रियं
पुराणज्ञं धर्म्मविदं अव्यङ्गन्तु प्रियम्वदं॥
तस्य देयं समस्तं तदनन्तः प्रीयतामिति।
अन्येषां ब्राह्मणानान्तु देयं वित्तानुसारतः॥
अनेन विधिना भद्रे व्रतञ्चैतत् समाप्यते।
पारिते च समाप्नोति सर्व्वानेव मनोरथान्॥
पुत्रार्थिभिर्व्वित्तकामैर्भृत्यदारानभीप्सुभिः।
प्रार्थयद्भिश्च मर्त्त्यैश्चिन्नारोग्यबलसम्पदः।
एतद्व्रतं महाभागे पुण्यं स्वस्त्ययनं परं॥
अनन्तव्रतसंयुक्तं सर्व्वपापप्रणाशनं।
तत् कुरुष्वेतदेव त्वं व्रतं शीलधनप्रदं।
वरिष्ठं सर्व्वलोकस्य यदि पुत्रमभीप्ससि॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तमनन्तव्रतं।

———000———

पुरूरवा उवाच।

श्रोतुमिच्छामि भगवन् रूपसत्रं महाफलं।
यत्समाप्तो भविष्यामि दिव्यरूपधरो मुने॥

अत्रिरुवाच।

तदेतद्व्रतकामेन अन्विष्यो ब्राह्मणो गुरुः।
ज्योतिषं योऽभिजानाति इतिहासांश्च कृत्स्नशः॥
तत् प्रदिष्टेन विधिना पादाद्यप्रभृतिक्रमात्।

फाल्गुन्यां समतीतायां कृष्णपक्षाष्टमी तु या।
समूलां तां तु संप्राप्य व्रतं गृह्णीत मानवः॥
उपोषितव्यं नक्षत्रं नक्षत्रस्य च दैवतं।
वरुणञ्च तथा चन्द्रं पूजयेद्विधिना नरः॥
पूजयेद्देवदेवञ्च भगवन्तं जनार्द्दनं।
उपोष्याङ्गानि देवस्य प्रयत्नेन च पूजयेत्॥
ततोऽग्निहवनं कृत्वा पूजयित्वा तथा गुरुं।
उपवासस्तु कर्त्तव्यो द्वितीयेऽहनि पार्थिव॥
उपोष्य ऋक्षे विगते स्नात्वा संपूज्य केशवं।
कृत्वाग्निहवनं शक्त्या पूजयित्वा द्विजोत्तमान्॥
हविष्यान्नञ्च भोक्तव्यं शृणु चाङ्गक्रमं मम(१)।
पादयोः कथितं मूलं प्राजापत्यन्तु जङ्घयोः॥
अश्विनी जानुयुगलं ऊरुयुग्मे च पार्थिव।
सहिते द्वे तथाषाढ़े गुह्यञ्च सहिते स्मृते॥
पूर्व्वोत्तरे च फाल्गुन्यौ कृत्तिका च कटिर्भवेत्।
पार्श्वयोः कुक्षियुतयोर्नक्षत्रत्रितयं समं।
उभे प्रोष्ठपदे राजन् रेवती च तथा भवेत्॥
उरोऽनुराधासु पृष्ठं धनिष्ठासु प्रकीर्त्तितं।
भुजौ ज्ञेयौ विशाखासु हस्ते प्रोक्तौ तथा करौ॥
अङ्गुल्यश्च तथा प्रोक्ता राजसिंह पुनर्व्वसौ।
अश्लेषायां नखाः प्रोक्ता ज्येष्ठायां नृप कन्धरः॥
श्रवणे श्रवणौ ज्ञेयौ मुखं पुष्ये प्रकीर्त्तितं।

(१) शृणु चाङ्गव्रतं मम इति पाठान्तरं।

दन्ताः स्वाती शतभिषा हनुः प्रोक्ता तथा नृप ॥
मघायां नासिके प्रोक्ते मृगशीर्षे च लोचने ।
चित्रा ललाटे विज्ञेया भरण्याञ्च तथा शिरः ॥
शिरोरुहास्तथार्द्रासु व्रतस्यान्ते नराधिप ।
चैत्रशुक्लावसाने तु सत्रं परिसमाप्यते ॥
यद्यन्तरायं न भवेत् किञ्चिच्छौचं निमित्तजं ।
अङ्गक्रमेण सकलमृक्षवर्गमुपोषितः ॥
व्रतान्ते प्रयतः स्नात्वा पूजयेन्मधुसूदनं ।
चन्दनागुरुकर्पूरमृगदर्भैः सकुङ्कुमैः ॥
जातीफलैः सकक्कोलैर्लवङ्गकुसुमैस्तथा ॥
बालगुग्गुलुनिर्य्यासैः पुष्पैः कालोद्भवैः शुभैः ॥
धूपो नरेन्द्रागुरुणा चन्दनेन सुगन्धिना ।
दीपाश्च देया राजेन्द्र तिलतैलेन पूरिताः ॥
अशेषा वर्त्तयः कार्य्या महारजतरञ्जिताः ।
नैवेद्यञ्च तथा कार्य्यं परमान्नेन पूरिणा ॥
दध्ना चीरघृताभ्याञ्च मधुना च गुडेन च ।
सितया च तथा भक्ष्यैः फलैर्मूलैर्यथाविधि ॥
अपूपैः पानकैर्हृद्यैः शीतलैश्च सुगन्धिभिः ॥
लवणस्य च पात्राणि कृशरञ्च निवेदयेत् ।
सर्व्वबीजानि राजेन्द्र भूषणानि च शक्तितः ।
महार्हाणि च वस्त्राणि भक्त्या प्रयतमानसः ।
तद्विष्णोः परमित्येवं होमः कार्य्यो ह्यनन्तरं ॥
द्वादशाचरको मन्त्रस्त्रीशूद्रेषु विधीयते ।

घृतमाक्षिकसंयुक्तान् जुहुयात्तिलतण्डुलान् ॥
ततस्तु दक्षिणा देया गुरवे नृपसत्तम ॥
नागानि च प्रदेयानि ग्रामाणि विविधानि च।
तुरगाणि च मुख्यानि रत्नानि विविधानि च ॥
ब्राह्मणस्तु पिता ज्ञेयो रूपसत्त्रप्रदर्शकः।
रूपसौभाग्यलावण्यजन्मारोग्यप्रदायकः ॥
राज्यस्य वा द्विजत्वस्य बहुवित्तस्य दायकः।
न तस्य निष्कृतिः शक्या गन्तुं दानेन भूरिणा ॥
गुरुप्रसाद एवात्र दक्षिणा न तु कारणं।
तस्मात् प्रसादमाकाङ्क्षेद्रूपसत्त्रप्रदर्शकः॥
अवश्यं तस्य दातव्यं घृतपूर्णन्तु भाजनं।
चतुःपलन्तु कांस्यस्य सुवर्णं काञ्चनस्य च ॥
ततः परं भोजनीयाः स्वशक्त्या द्विजपुङ्गवाः।
लवणक्षीरदध्याज्यगुड़भक्षसितोत्कटं ॥
भोजनं पानकोपेतं पश्चाद्देया च दक्षिणा।
वस्त्रयुग्मं प्रदातव्यं ब्राह्मणाय नवं शुभं।
बहुमूल्यं शुभञ्चैव महारजतरञ्जितं ॥
सप्त वीजानि देयानि लवणं कुप्यमेव च।
यच्चान्यदप्यभीष्टं स्याच्छत्रोपानहमेव च ॥
वित्तशाठ्यं न कर्त्तव्यं छत्रदाने महीपते।
अवश्यदेयं सत्रेऽस्मिन् घृतपूर्णन्तु भाजनं॥
चतुःपलन्तु कांस्यस्य सुवर्णं काञ्चनस्य च।
व्रतेनानेन चीर्णेन देहत्यागे दिवं व्रजेत् ॥

तत्रास्ते सुचिरं कालं मानुष्ये यदि जायते ।
राजा भवति धर्म्मज्ञो ब्राह्मणो वा धनान्वितः ॥
कुले महति सम्भूतो रूपेणाप्रतिमो भुवि ।
आरोग्यं महदाप्नोति सौभाग्यमपि चोत्तमं ॥
लावण्यं बुद्धिमेधाञ्च मतिं धर्मेऽतिशाश्वतीं ।
संपूर्णचन्द्रप्रतिमः सर्व्वसत्त्ववशंकरः ॥
नरो भवति राजेन्द्र नारी चाप्सरसां समा ।
सुभगा दर्शनीया च लावण्यगुणसंयुता ॥
बहुधान्या बहुधना बहुभूषणसंयुता ।
भर्त्तुश्चात्यन्तदयिता लोके ख्याता च सद्गुणैः ।
नित्यारोग्यवती कान्ता सर्व्वदोषविवर्जिता ॥

चन्द्रानना नीलसरोजनेत्रा
त्रैलोक्यकान्ता पतिवल्लभा च ।
भवत्यवश्यं सुभगा सुशीला
लावण्ययुक्ता यशसा श्रिया च ।

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं रूपसत्रव्रतं ।

———000———

अथ नीराजनविधिः ।

राम उवाच ।

नीराजनं विधिन्त्वत्तः श्रोतुमिच्छामि सत्तम ।
कथं कार्य्या नरेन्द्रस्य शान्तिर्नीराजनी प्रभो ॥

पुष्कर उवाच ।

पूर्व्वोत्तरे तु दिग्भागे नगरे च मनोहरे (१)।
विस्तीर्णं कारयेद्राजन् सुमनोहरमाश्रमं॥
कटैर्गुप्तं कुशास्तीर्णं पताकाध्वज शोभितं।
तोरणत्रितयं तत्र प्राङ्मुखं कारयेच्छुभं॥
कार्य्यं षोड़शहस्तन्तु तोरणन्तु समुच्छ्रयेत्।
वैपुल्यं दशहस्तन्तु तथा कार्य्यं भृगूत्तम॥
तोरणाद्दक्षिणे भागे तत्र कार्य्यमथाश्रमं।
देवतार्च्चा भवेत्तत्र तथाग्निहवनक्रिया॥
अष्टहस्तायतोत्सेधमुल्मुकानान्तु वामतः।
कार्य्यं भवति शुष्काणां कूटं भृगुकुलोद्वह॥
पञ्चरङ्गकसूत्रेण शतग्रन्थि मनोरमा।
मध्यमे तोरणे कुर्य्याच्छतपाशान्तु मध्यगां।
छादयित्वा कुशैस्तान्तु मृदा संछादयेत्पुनः॥
तस्याश्च लङ्घनं वर्ज्ज्यं प्रयत्नात् सर्व्वजन्तुभिः।
न लङ्घिता च यावत्स्यात् प्रथमं राजहस्तिना॥
चित्रान्त्यक्त्वा यदा स्वातिं सविता प्रतिपद्यते।
ततः प्रभृतिकर्त्तव्या यावत् स्वातौ रवि स्थितः॥
आश्रमे प्रत्यहं देवाः पूजनीया द्विजोत्तम।
ब्रह्मा विष्णुश्च शम्भुश्च शक्रश्चैवानिलानलौ॥
विनायकः कुमारश्च वरुणो धनदो यमः॥
विश्वे देवा महाभागा उच्चैःश्रवस एव च॥

---

(१) पूर्व्वोत्तरे तु नगरे देशे तु सुमनोहरे इति पुस्तकान्तरे पाठः।

अष्टौ महागजाः पूज्यास्तेषां नामानि मे शृणु ।
कुमुदैरावणः पद्मः पुष्पदन्तोऽथ वामनः ॥
सुप्रतीकोऽञ्जनो नील एतेऽष्टौ देवयोनयः ॥
पूजा कार्य्या ग्रहर्क्षाणां तथैव च पुरोधसा ।
ततस्तु जुहुयाद्वह्नौ पुरोधाः सुसमाहितः ।
यथाभिहितदेवानां मन्त्रैस्तल्लिङ्गसंज्ञकैः ॥
तथा च मन्त्रहीनानां प्रणवेन महाभुज ॥
समिधः क्षीरवृक्षाणां तथासिद्धार्थकानि च ।
हुत्वा च कलशान् कुर्य्यात् सोदकान् घनसंयुतान् ॥
पूजितान्माल्यगन्धैश्च वनस्पतिविभूषितान् ।
पञ्चरङ्गकसूत्रेण कुर्य्याद्वस्त्रयुगन्तथा ।
भल्लातशालिसिद्धार्थवचाकुष्ठप्रियङ्गवः ॥
तोरणात् पश्चिमे भागे कलशैः पूर्व्वकल्पितैः ।
स्नातः संस्नापनीयाः स्युर्मन्त्रपूतैर्गजोत्तमाः ॥
तुरगाश्च महाभाग अलङ्कृत्य ततस्तु तान् ।
ततोऽभिषेकं नागस्य तथा तं तुरगस्य च ॥
अन्नपिण्डं ततो देयमभिमन्त्र्य पुरोधसा ।
तस्याभिनन्दने राज्ञो विजयः परिकीर्त्तितः ॥
त्यागे च तस्य विज्ञेयं महद्भयमुपस्थितं ।
निष्क्रामयेत्तोरणैस्तु ततोहि प्रथमं गजं ॥
तत्रापि प्रथमं राम अभिषिक्तं गजोत्तमं ।
तस्यादौ तुरगश्चैव राज्ञो मरणमादिशेत् ॥
दुर्भिक्षं तत्र विज्ञेयं गोखरोष्ट्रस्य लङ्घने ॥

लङ्घयेद्वामपादेन यदि तं नृप कुञ्जरं।
राज्ञीपुरोहितामात्यराजपुत्राहितं भवेत्॥
राज्ञस्तु मरणं ब्रूयादाक्रामेत्तं पदा यदा।
राज्ञो विजयमाचष्टे लङ्घयेद्दक्षिणेन तं॥
राजहस्तिनि निष्क्रान्ते सान्वयस्य क्षयो भवेत्।
निष्क्रामेयुस्ततः सर्व्वे प्राङ्मुखास्तोरणैर्गजाः॥
ततोऽश्वाः सुमहाभाग ततस्तु नरसत्तम।
ततश्छत्रं ध्वजञ्चैव राजलिङ्गानि यानि च॥
ततस्तु तानि संस्थाप्य पूजयेदायुधानि च।
पञ्चरङ्गकसूत्रेण यास्ताः प्रतिसराकृताः॥
दृष्टादृष्टेति मन्त्रेण निबध्नीयात् पुरोहितः।
सर्व्वेषां नृप नागानान्तुरङ्गाणाञ्च भार्गव॥
स्वगृहेष्वथ ते नेयाः कुञ्जरास्तुरगैः सह।
स्वातिस्थः सविता यावत् तावच्छालासु संस्थितान्॥
पूजयेत् सततं राम माक्रोशेन्न च ताड़येत्।
राजचिह्नानि सर्व्वाणि पूजयेदाश्रमे सदा॥
पूजयेद्वरुणं नित्यं तथा सुविधिवद्द्विजान्।
भूतेज्या च तदा कार्य्या रात्रौ बलिभिरुत्तमैः॥
आश्रमो रक्षणीयः स्यात् पुरुषैः शस्त्रपाणिभिः।
वसेतामाश्रमे नित्यं संवत्सरपुरोहितौ॥
अश्ववैद्यप्रधानश्च तथा नागभिषग्वरः।
दीक्षितैश्च तथा भाव्यं ब्रह्मचारिभिरेव च॥
स्वातिं त्यक्त्वा यदा सूर्य्यो विशाखां प्रतिपद्यते॥

अलङ्कुर्य्याद्दिने तस्मिन् वाहनन्तु विशेषतः ।
पूजिता राजलिङ्गाश्च कर्त्तव्या नरहस्तगाः ॥
हस्तिनन्तुरगं छत्रं खड्गञ्चापञ्च दुन्दुभिं ।
ध्वजं पताकां धर्म्मञ्च चापन्तमभिमन्त्रयेत् ॥
अभिमन्त्र्य ततः सर्व्वान् कुर्य्यात्कुञ्जरधूर्गतान् ।
कुञ्जरोपरिगौ स्यातां संवत्सरपुरोहितौ ॥
अश्ववैद्यप्रधानश्च तथा नागभिषग्वरः ।
ततोऽभिमन्त्रितं राजा समारुह्य तुरङ्गमं ॥
निष्क्रम्य तोरणैर्नागमभिमन्त्रितमारुहेत् ।
तोरणेन विनिष्क्रम्य कुर्य्यात् सुरविवर्ज्जितं ॥
बलिं विभज्य विधिवद्राजा कुञ्जरधूर्गतः ।
रत्नैरलङ्कृतः सर्व्वैर्वीज्यमानश्च चामरैः ॥
उल्मुकानान्तु निचयमदीपितमनन्तरं ।
राजा प्रदक्षिणीकुर्य्यात् त्रीन्वारान् सुसमाहितः ॥
चतुरङ्गबलोपेतः सर्व्वसैन्यसमन्वितः ।
पौरैः किलिकिलाशब्दैः सर्व्ववादित्रनिस्वनैः ।
बलितैश्च पदातीनां दृष्ट्वा तान् मनुजोत्तम ॥
एवं कृत्वा गृहं गच्छेद्राजसैन्यपुरःसरः ।
जनं संपूज्य च महत्सर्व्वमेव विसर्जयेत् ॥
शान्तिर्नीराजनाख्येयं कर्त्तव्या वसुधाधिपैः ।
क्षेमवृद्धिकरी राम नरकुञ्जरवाजिनां ॥
धन्या यशस्या रिपुनाशनी च
सुखावहा शान्तिरनुत्तमा च ।

कार्य्या नृपैराष्ट्रविवृद्धिहेतोः
सर्व्वप्रयत्नेन भृगुप्रवीर॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तो नीराजनविधिः।

———०———

भीष्म उवाच।

उपवासेष्वशक्तस्य तदेव फलमिच्छतः।
अनभ्यासेन रोगाद्वा किमिष्टं व्रतमुच्यतां॥

पुलस्त्य उवाच।

उपवासेष्वशक्तानां नक्तं भोजनमिष्यते।
यस्मिन् व्रते तदप्यत्र श्रूयतां वै व्रतं महत्॥
आदित्यशयनं नाम यथावच्छङ्कराचंनं।
येषु नक्षत्रयोगेषु पुराणज्ञा प्रचक्षते॥
यदा हस्तेन सप्तम्यामादित्यस्य दिनं भवेत्।
सूर्य्यस्य वाथ संक्रान्तौ सा तिथिः सर्व्वकामिकी॥
उमामहेश्वरस्यार्च्चामर्च्चयेत् सूर्य्यनामभिः।
सूर्य्यार्चां शिवलिङ्गञ्च उभयं पूजयेदतः॥
उमापते रवेर्व्वापि न भेदः क्वचिदिष्यते।
यस्मात्तस्मान्नृपश्रेष्ठ गृहे शम्भुं समर्च्चयेत्॥

अर्चा प्रतिमा। उमामहेश्वररूपन्तु प्रथमकृष्णाष्टमीव्रतोक्तं वेदितव्यं।

हस्तेन सूर्य्याय नमोऽस्तु पादा-
वर्काय चित्रासु च गुल्फदेशं।

स्वातीषु जङ्घे च सुरोत्तमाय
धात्रे विशाखासु च जानुदेशं॥
तथानुराधासु नमोऽस्तु पूज्य
ऊरुद्वयं देवसहस्रभानोः।
ज्येष्ठास्वनङ्गाय नमोऽस्तु गुह्य-
मिन्द्राय सोमाय कटिश्च मूले॥
पूर्वोत्तराषाढ़युगे च नाभिं
त्वष्ट्रे नमः सप्ततुरङ्गमाय।
तीक्ष्णांशवे तु श्रवणे च वक्षः
कक्षे धनिष्ठासु विकर्त्तनाय॥
वक्षस्थलं ध्वान्तविनाशनाय
जलाधिपर्क्षे प्रतिपूजनीयं।

जलाधिपर्क्षं, शततारा।

पूर्वोत्तराभाद्रपदद्वये च
बाहू नमश्चन्द्रकराय पूज्यौ॥
साम्नामधीशाय करद्वये च
संपूजनीयं नृप रेवतीषु।
नखानि पूज्यानि तथाऽश्विनीषु
नमोऽस्तु सप्ताश्वधुरन्धराय॥
कठोरधाम्ने भरणीषु पृष्ठं
दिवाकरायेत्यभिपूजनीया।
ग्रीवाग्निऋक्षेऽधरमम्बुजेषं
संपूजयेद्वारतरोहिणीषु॥

अग्निरुक्तचान्तु कृत्तिका।

मृगोत्तमाङ्गे दशनाः पुरारेः
संपूजनीया हरये नमस्ते।
नमः सवित्रे इति शाङ्करे तु
नासाक्षिपूज्याथ पुनर्व्वसौ च॥
शाङ्करमार्द्रा।
ललाटमम्भोरुहवल्लभाय
पुष्ये ऽलकान्वेदसमीरणाय।
सार्प्येऽथ मौलिं विबुधप्रियाय
मघासु कर्णाविति गोगणेशः॥

सार्प्यं अश्लेषा।

पूर्व्वासु गोब्राह्मणनन्दनाय
नेत्राणि संपूज्यतमानि शम्भोः।
अथोत्तराफाल्गुनिषु भ्रुवौ च
विश्वेश्वरायेति च पूजनीयौ॥
नमोऽस्तु पाशाङ्कुशपद्मशूल
कपालसर्पेन्दुधनुर्द्धराय।
गजासुरानङ्गपुरान्धकारे
विनाशमूलाय नमः शिवाय॥
इत्यादि चास्त्राणि च पूज्य नित्यं
विश्वेश्वरायेति शिरोऽभिपूज्यं।
भोक्तव्यमत्रैव मतैलमन्न-
ममांसमक्षारमभक्तशेषं॥

इत्येवंविधनक्तानि कृत्वा दद्यात् पुनर्द्विषं ।

शालितण्डुलप्रस्थमुड़म्बरमये घृतं ।

उड़म्बरमये, ताम्रमये ।

संस्थाप्य पात्रे विप्राय सहिरण्यं निवेदयेत् ।

सप्तमे वस्त्रयुग्मञ्च पारणे त्वधिकं भवेत् ॥

चतुर्द्दशे तु संप्राप्ते पारणे भारताब्दिके ।

आब्दिके, सांवत्सरिके । सप्तविंशत्या दिवसैरेकैकस्पारणमिति-संवत्सरे अष्टादशदिनाधिके चतुर्द्दशपारणानि भवन्ति ।

ब्राह्मणान् भोजयेद्भक्त्या गुड़क्षीरघृतादिभिः ॥

कृत्वाथ काञ्चनं पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकं ।

शुद्धमष्टाङ्गुलं तच्च पद्मरागदलान्वितं ॥

शय्यां विलक्षणां कृत्वा विरुद्धग्रन्थिवर्ज्जितां ।

सोपधानकविश्रामां स्वास्तीर्णां चरणाश्रयां ॥

पादुकोपानहच्छत्रचामरासनदर्पणैः ।

भूषणैरपि संयुक्तां फलवस्त्रानुलेपनैः ॥

तस्यां निधाय तत्पद्ममलंकृत्य गुणान्वितं ।

कपिलां वस्त्रसंयुक्तामतिशीलां पयस्विनीं ॥

रौप्यखुरां हेमशृङ्गीं सवत्सां कांस्यदोहनीं ।

दद्यान्मन्त्रेण पूर्व्वाह्णे वह्निनाभिविलङ्घयेत् ॥

यथैवादित्यशयनमशून्यं तव सर्व्वदा ।

कान्त्या धृत्या श्रिया रत्या तथा मे सन्तु सिद्धयः ॥

यथा न देवाः श्रेयांसि त्वदन्यमनघं विदुः ।

तथा मामुद्धराशेषदुःखसंसारसागरात् ।

ततः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य च विसर्जयेत्॥
शय्यासनादि तत्सर्व्वं द्विजस्य भवनं नयेत्।

इदं महापातकभिन्नराना
मक्षय्यं वेदविदो वदन्ति।
न बन्धुपुत्रेण धनैर्वियुक्तः
पत्नीभिरानन्दकरःसुराणां।
नाभ्येति रोगं न च दुःखशोकं
याचाप्य नारी कुरुतेऽथ भक्त्या॥
इति पठति शृणोति वा य इत्थं
हरिशयनं पुरुहूतवल्लभः स्यात्।
अपि नरकगतान् पितॄनशेषा-
नपि दिवमानयतीह यः करोति॥

## इति पद्म पुराणोक्तमादित्यशयनव्रतं।

——oo@oo——

अश्विन्यामहोरात्रं वा दिनानि तिः त्रिंश रोगो जायते। अश्विनौ देव ते। क्षीरलड्डुकनैवेद्यं। नीलोत्पलपुष्पं। घृतगुग्गुलुधूपः। देवस्येति पूजामन्त्रः। क्षीरवृक्षस्य समिधो होमद्रव्यं॥ १॥

भरण्यां मृत्युः सन्देहो वा। दिनानि एकविंशतिः। यमो देवता। गुड़पूपाकनैवेद्यं। कृष्णसुरभिपुष्पं। सुरभी तुलसी। पुत्रकेशगुड़धूपः। त्र्यम्बकं यजामहे इति पूजामन्त्रः। घृतमधुतिलान् जुहुयात्॥ २॥

कृत्तिकायां दिनानि सप्त । अग्निर्द्देवता । घृतौदनं नैवेद्यं । यूथिकापुष्पं । सर्प्पिर्धूपः । पुनन्तु मां देवजना इति पूजामन्त्रः । घृतं प्रधानद्रव्यं ॥ ३ ॥

रोहिण्यां दिनान्यष्टौ । प्रजापतिर्द्देवता । क्षीरौदनं नैवेद्यं । कमलपुष्पं । सरलो धूपः । नमो ब्रह्मणे नमोऽगस्तय इतिमन्त्रेण पूजा । सर्व्वधान्यानि जुहुयात् ॥ ४ ॥

मृगशिरसि पञ्चदिनानि । सोमो देवता । पायसनैवेद्यं । कुङ्कुमपुष्पं । दशाङ्गोधूपः । नवोनवो भवति इति पूजामन्त्रः । गव्यं पयः प्रधानद्रव्यं ॥ ५ ॥

आर्द्रायां मृतुः । रुद्रोदेवता । सोहालिका नैवेद्यं । वीरिकापुष्पं जीवकः धूपः । नमः शम्भवायेति पूजामन्त्रः । मध्वाज्यं प्रधानद्रव्यं ॥ ६ ॥

पुनर्व्वसौ दिनानि सप्त । अदितिर्द्देवता । गुडौदनं नैवेद्यं । मल्लिकापुष्पं । मलयजधूपं । अदितिर्द्यौरदितिरिति पूजामन्त्रः । घृततण्डुलं प्रधानद्रव्यं ॥ ७ ॥

पुष्ये दिनानि सप्त । गुरुर्द्देवता । खण्डमण्डका नैवेद्यं । सरोरुहपुष्पं । षठिकाधूपः । बृहस्पते अतीयेति मन्त्रेण पूजा । घृतपायसम्प्रधानद्रव्यमिति ॥ ८ ॥

अश्लेषायां दिनानि दश नागादेवताः । घृतनैवेद्यं । अगस्तिपुष्पं । घृतगुड़धूपः । नमोस्तु सर्प्पेभ्य इति पूजामन्त्रः । दधिघृतशालियवं प्रधानद्रव्यं ॥ ९ ॥

मघायां मृत्युः सन्देहोवा । दिनान्येकत्रिंशतिः । पितरोदेवताः । घृतपुराणे नैवेद्यं । चम्पकपुष्पं । गुग्गुलुधूपः । पितु-

स्तुम्तोषसिति पूजामन्त्रः। तिलतण्डुलमधु घृतपात्राणि प्रधानद्रव्यं॥ १०॥

पूर्व्वफाल्गुन्यान्दिनानि पञ्चदश। भगोदेवता। कृशरानैवेद्यं। श्वेतकरवीरपुष्पं। विल्वफलधूपः। यन्मे गर्भवसतइति पूजामन्त्रः। सप्तव्रीहयः प्रधानद्रव्यं॥ ११॥

उत्तरफल्गुन्यान्दिनान्येकविंशतिः। अर्यमा देवता। रक्तशाल्योदनं नैवेद्यं। रक्तोत्पलपुष्पं। घृतगुग्गुलुधूपः। अहं रुद्रेभिर्वसुभिरिति पूजामन्त्रः। प्रियङ्गवः प्रधानद्रव्यं॥ १२॥

हस्ते मृतुरसन्देहो। दिनानि पञ्चदश। सविता देवता। अपूपनैवेद्यं। रक्तकरवीरपुष्पं। शल्लकीधूपः। उदुत्यञ्जातवेदसमिति पूजामन्त्रः। दधि प्रधानद्रव्यं॥ १३॥

चित्रायां दिनानि दश। त्वष्टा देवता। मोदकानैवेद्यं जयापुष्पं। यूथिकापर्णकधूपः। चित्रं देवानामिति पूजामन्त्रः। चित्रौदनं प्रधानद्रव्यं॥ १४॥

स्वात्यां मासा नवधा। वायुर्देवता। दध्योदनं नैवेद्यं। दमनकपुष्पं। कृष्णागुरुधूपः। सनः पितेव सूनव इति पूजामन्त्रः। घृतयवान्नद्रव्यं॥ १५॥

विशाखायां दिनानि पञ्चविंशतिः। इन्द्राग्नी देवते। घृणकोनैवेद्यं। तुम्बरिका पुष्पं। देवदारुधूपः। इन्द्राग्नी आगतमिति पूजामन्त्रः। दध्योदनं प्रधानद्रव्यं॥ १६॥

अनुराधायां दिनानि दश। मित्रोदेवता। कृशरानैवेद्यं। पौण्डरीकपुष्पं। चन्दनसिह्लरसधूपः। देव सवितः प्रसुव यज्ञमितिमन्त्रः। सूरणकन्दं प्रधानद्रव्यं॥ १७॥

ज्येष्ठायां दिनानि पञ्चदश। इन्द्रोदेवता। चित्रोदननैवेद्यं। कर्पूरागुरुधूपः। पाटलिकापुष्पं। इन्द्रोमायाभिरिति पूजामन्त्रः। सूरणकन्दमूलं प्रधानद्रव्यं॥ १८ ॥

मूले मृतुः। राक्षसो देवता। सम्तमांससुरापोलिकानैवेद्यं। कृष्णसोम्बरिका पुष्पं। मेषशृङ्गधूपः। ब्राह्मणाग्निसंविधान इति पूजामन्त्रः। मूलकन्दः प्रधानद्रव्यं ॥ १९ ॥

पूर्व्वाषाढ़ायां दिनानि सप्तविंशतिः। आपो देवता। मण्डको नैवेद्यं। कह्लारपुष्पं शैलजधूपः। किञ्चेदम्वरुणेति पूजामन्त्रः। रक्तशालयः प्रधानद्रव्यं॥ २० ॥

उत्तराषाढ़ायां दिनानि त्रिंशतिः। विश्वे देवा देवता। विल्वपञ्चकनैवेद्यं। पञ्चवर्ण पुष्पं। बालकधूपः। विश्वे देवास आगत इति पूजामन्त्रः। शल्लकीखण्डानि प्रधानद्रव्यं॥ २१ ॥

श्रवणे दिनानि नव। विष्णुर्देवता। क्षीरशर्कराघृतमण्डका-नैवेद्यं। जातीपुष्पं। दशाङ्गधूपः। अतोदेवा अवन्तु न इति पूजामन्त्रः। रक्ततण्डुलाः प्रधानद्रव्यं॥ २२ ॥

धनिष्ठायां दिनानि पञ्चदश वसवो देवता। वटवटका-नैवेद्यं। शतपत्रिका पुष्पं। घृतगुग्गुलधूपः। त्रायन्तामिह देवा इति पूजामन्त्रः। उडुम्बरउदकोद्भवानि प्रधानद्रव्यं(२३)।

शतभिषायां दिनानि दश। वरुणोदेवता। घृतवटका-नैवेद्यं। उदकोद्भवानि पुष्पं। कर्पूरागुरुधूपः। इमं मेङ्गेति पूजामन्त्रः। उदकोद्भवानि पुष्पाणि प्रधानद्रव्याणि च (२४)।

पूर्व्वभाद्रपदायां मृत्युः। अजैकपाद्देवता। दधिसर्पिषो नैवेद्यं। शतपत्रपुष्पं। सर्वौषधिधूपः। शमग्निरग्निभिः

करदिति पूजामन्त्रः। ग्राम्यं पूतिकरञ्जं कुष्माण्डखण्डानि च प्रधानद्रव्यं (२५)।

उत्तरभाद्रपदायां दिनानि पञ्चदश। अहिर्बुध्नो देवता। गुड़-पललशीतोदनं नैवेद्यं। कर्पूरपत्रिका पुष्पं। घृतनिम्बपत्र धूपः। विष्णुर्योनिं कल्पयतु इति पूजामन्त्रः। आर्द्रमेषरुधिर-दुग्धानि प्रधानद्रव्यं(२६)।

रेवत्यां दिनान्यष्टौ। पूषा देवता। तिललड्डुकपिन्याकं नैवेद्यं। मन्दारपुष्पं। गुग्गुलधूपः। हंसः शुचिषदिति पूजामन्त्रः। घृतदुग्धानि फलानि जुहुयात्॥ २७॥

यथोक्तब्राह्मणेन यस्य नक्षत्रस्य यदुक्तं द्रव्यं तदष्टोत्तरशतं जुहुयात् गायत्र्या।

यथोक्तविधिरेवैषः सद्यः प्रत्ययकारकः।
नक्षत्रतर्पणं यागस्तथारोग्यं प्रयच्छति॥

पूर्व्वसमिद्भि (१) स्तिलैः क्षीराज्येनाष्टशतं जुहुयात्। द्वादशनामानि मण्डले लिख्य पूजयेत्। मध्ये नक्षत्रदेवतां प्रति-ष्ठाप्य वस्त्रयुग्मेन वेष्टितां ब्राह्मणाय दद्यात्। रोगशान्तिर्भवति।

## इति गर्गोक्तो नक्षत्रहोमविधिः।

—o—

मार्कण्डेय उवाच।

यस्मिन् हि जननं यस्य जननन्तस्य तत् स्मृतं।
चतुर्थं मानसं तस्माद्दशमं कर्म्मसंज्ञितं॥

---

(१) सर्व्वसमिद्भिरिति पुस्तकान्तरे पाठः।

साङ्घातिकं षोड़शं स्याद्दिशं समुदयं स्मृतं ।
वैनाशिकन्तु नक्षत्रं कर्म्मर्क्षाख्यं त्रयोदशं ॥
षड़्नक्षत्रस्तु पुरुषः सर्व्वः प्रोक्तो महीपते ।
राजा च नवनक्षत्रो नक्षत्रत्रितयं शृणु ॥
नित्यमभ्यधिकं षड्भ्यः पार्थिवस्य नृपोत्तम ।
देशोऽभिषेकनक्षत्रं जातिनक्षत्रमेव च ।
जात्याश्रितानि वक्ष्यामि नक्षत्राणि तवानघ ॥
पूर्व्वात्रयमथाग्नेयं ब्राह्मणानां प्रकीर्त्तितं ।
पौष्णं मैत्रं तथा पित्र्यं प्राजापत्यं तथा स्मृतं ॥
आदित्यमाश्विनं हस्तं शूद्राणामभिजित्तथा ।
सार्पं विशाखा याम्यञ्च वैष्णवञ्च नराधिप ॥
प्रतिलोमोद्भवानाञ्च सर्वेषां परिकीर्त्तितं ।
इह देहार्थहानिःस्यात् जन्मर्क्षे तूपतापिते ॥
कर्मर्क्षे कर्म्मणां हानिः पीड़ा मनसि मानसे ।
मूर्त्तिंद्रविणबन्धूनां हानिः साङ्घातिके हते ॥
सन्तप्ते सामुदयिके मित्रभृत्यार्थसंक्षयः ।
वैनाशिके विनाशः स्याद्देहद्रविणसम्पदां ।
पीड़िते चाभिषेकर्क्षे राज्यभ्रंशं विनिर्द्दिशेत् ॥
देशर्क्षे पीड़िते पीड़ा देशस्य च पुरस्य च ।
पीड़िते जातिनक्षत्रे राज्ञो व्याधिं विनिर्द्दिशेत् ॥
ग्रहर्क्षजातां समवाप्य पीड़ां
पूजा तु कार्य्या विधिना स्वकेन ।
ततः शुभं विन्दति राजसिंह

विधूतपापः पुरुषः सदैव॥

शक्रन्मूत्रे तु संगृह्य श्वेतस्य वृषभस्य तु।

श्वेतगोः पयसा सार्द्धं स्नातव्यं कुशवारिणा॥

जन्मनक्षत्रपीड़ायां तस्मात् क्लेशाद्विमुच्यते।

शिरीषचन्दनाश्वत्थनागदानाम्बुभिर्नरः॥

स्नातस्तु मानसे तप्ते तस्माद्दोषाद्विमुच्यते।

सिद्धार्थञ्च प्रियङ्गुञ्च शतपुष्पां शतावरीं॥

स्नातव्यमम्भसि क्षिप्त्वा कर्म्मर्क्षे नृप पीड़िते।

प्रियङ्गुविल्वसिद्धार्थयवाश्वत्थसुराह्वया॥

सुराह्वा, देवदारुः।

चन्दनोदकसंयुक्तं स्नानं साङ्घातिके हितं।

सर्व्वगन्धोदकैः स्नानं तथासिद्धार्थकैः शुभैः॥

पीड़िते समुदायर्क्षे पुंसां कल्मषनाशनं।

वृषशृङ्गाहृतमृदा तथा विल्वोदकैः शुभैः॥

शतपुष्पासमोपेतैः स्नानं वैनाशिके भवेत्।

पीड़िते चाभिषेकर्क्षे सर्व्वरत्नोदकैस्तथा।

पीड़िते देशनक्षत्रे मृद्भिः स्नानं विधीयते॥

मृत्तिकाश्च प्रवक्ष्यामि शृणुष्व गदतो मम।

नद्याः कूलद्वयान्मध्यात् सङ्गमात्सरसस्तटात्॥

अश्वस्थानाद्गजस्थानाद्गोस्थानाद्गिरिमस्तकात्।

शक्रस्थानात् सवल्मीकाद्राजस्थानात्सुरालयात्॥

गजशृङ्गोद्धृताञ्चैव वृषशृङ्गोद्धृतां तथा।

सर्व्वबीजोदकैः स्नातो जातिनक्षत्रपीड़ने।

मुच्यते किल्बिषाद्राजन् नात्र कार्य्या विचारणा ॥
इदमापः प्रवहत: स्नानमन्त्रः प्रकीर्त्तितः ॥

स्नातस्तथैवं नृपचन्द्रपश्चात्
स्नानम्प्रकुर्वीत जथोपदिष्टः ।
पीड़ाकरस्याथ ततस्तु कार्य्यो
नक्षत्रयागो विहितो यथावत् ॥
पीड़ाकरस्याथ ततस्तु कार्य्यो
पूजा ग्रहेन्द्रस्य नरन्द्रचन्द्र ।
तं पूजयेद्वाप्यथ चन्द्रयुक्तं
ततः स दोषान् सकलान् जहाति ।

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्ता नवनक्षत्रशान्तिः ।

——oo@oo——

मनुरुवाच ।

यदीच्छसि सुभर्त्तारमिह जन्मन्यथापरे ।
कन्या कुर्य्यान्नृपश्रेष्ठ विष्णुना कथितं व्रतं ॥
सर्व्वपापहरं पुण्यं सर्व्वकामफलप्रदं ।
उमामहेश्वरं नाम कर्त्तव्यं विधिना यथा ॥
प्रोष्ठाश्विने तथा मासे मृगे भाग्येऽथ वा मुने ।
मैत्रे शाक्रेऽथवा कार्य्यं अष्टम्याञ्चाथ शाङ्करे ॥

प्रोष्ठो भाद्रपदो मासः । मृगो मृगशिरोनक्षत्रं । भाग्यं पूर्व्वफाल्गुनी । मैत्रं अनुराधा । शाक्रं ज्येष्ठा । शाङ्करं आर्द्रा ।

पूर्व्वेऽहनि सपत्नीकं ब्राह्मणं शुभसङ्गतं ।
एकभार्य्यं नरं वत्स सर्व्वधर्म्मव्रतान्वितं ॥

आमन्त्र्य मम चोद्दिशं प्रातः कार्य्यस्त्वनुग्रहः।
मुदान्वितस्तदा कुर्य्यात्कलिद्वन्द्वविवर्जितः॥
मधुरान्नेन भोज्यन्तु चीरेक्षुयवशालिभिः।
सितसूक्ष्मे तथा रक्ते शुभे देये च वाससी॥
निर्म्मले सदृशे वस्त्रे देवदेवीप्रसाधके।
स्नात्वा उमेश्वरं पूज्य स्थण्डिले प्रतिमासु च॥

उमामहेश्वरप्रतिमालक्षणप्रमाणन्तु अवियोगद्वादशीव्रते वेदितव्यं।

हुत्वा दिशां बलिं दत्त्वा वितानमवधारयेत्।
चतुरस्रं चतुर्द्वारं गोमयेनोपलिप्य च॥
चतुष्कं शालिगोधूमकर्णिकैरुपशोभितं।
दीपमालान्वितं कृत्वा दाम्पत्यं भोजयेत्ततः॥
शङ्करोमं समाध्याय शक्रास्यं शुभचर्च्चितं।
मदचन्दनकाश्मीरकर्पूरागरुधूपितं।
जातीपुन्नागमन्दारसितपत्रैस्तु कल्पितं॥
स्थाप्य युग्मं सुसंवीतं त्रिधा कृत्वा प्रदक्षिणं।
सुखलेपेन सम्भोज्य ध्यायेत्तु तमुमेश्वरं॥
आचम्य चार्घ्यपाद्यञ्च दद्याद्गन्धोदकं तथा।
सहिरण्यं सरत्नन्तु पुनर्द्दत्त्वा क्षमापयेत्॥
प्रीयतां मे उमाभर्त्ता सर्व्वदेवपतिः पतिः।
उमामन्त्रेण चैवोमामीशमन्त्रेण शङ्करं॥
पूजितः सर्व्वकामान्वै प्रयच्छत्यविचारतः।
अनेन प्राप्नुयान्नारी अवियोगं सुरेश्वर॥

इह जन्मनि सौभाग्यं धनपुत्रसुखानि च ।
मृता याति परं स्थानं शङ्करोमासमन्वितं ॥
तत्र भुक्त्वा महाभोगान्देहावाप्तिर्महाकुले ।
समृद्धिऋद्धिसम्पन्नं पतिं विन्दति शोभनं ॥
लावण्यरूपसम्पन्ना भर्त्तुरिष्टा सदा भवेत् ॥
श्लाघनीया समस्तस्य विभवान्तः पुरस्य च ।
सुपुत्रा जीववत्सा च आधिव्याधिविवर्ज्जिता ॥
भुक्त्वा यथेप्सितान् कामान् व्रजत्ते पतिपूर्व्विका ।
दिवं याति नृपश्रेष्ठ शङ्करोमार्च्चका च या ॥
नरो वानेन विधिना नारीणां जायते पतिः ।
सम्भवः सर्व्वभूतानां पतित्वमुपगच्छति ॥
शङ्करोमाव्रतं शक्रलक्ष्म्या पूर्व्वमनुष्ठितं ।
रत्या देव्या अरुन्धत्या रोहिण्या सुरसत्तम ॥
कृतमासीत् सुखार्थन्तु ताश्च भुञ्जन्ति तत्फलं ॥

## इति देवीपुराणोक्तं उमामहेश्वरव्रतं ।

———ooo@ooo———

इन्द्र उवाच ।

कथितं शङ्करोमाख्यं व्रतं मनसि तुष्टिदं ।
श्रोतुमिच्छाम्यहन्तात विष्णुशङ्करसंज्ञितं ॥

मनुरुवाच ।

यथा उमेश्वरन्तात तथा कार्य्यमिदं व्रतं ।
किन्तु पीतानि वासांसि केशवाय प्रकल्पयेत् ॥

गन्धपुष्पं तथा धूपं सुगन्धञ्च जनार्द्दने।
कार्य्यं पूजनसम्भारे लड्डुकादिरसं दधि॥
एवन्तौ पूजयित्वा तु प्रतिमास्थण्डिलेऽपिवा।
आहूय ब्राह्मणौ वत्स वेदवेदाङ्गपारगौ॥
यती वा व्रतसम्पन्नौ जटाकाषायधारिणौ।
तौ भोजयेद्विधानेन शूलपाणिजनार्द्दनौ॥
क्षमाप्य विधिना वत्स सर्व्वकामप्रसाधकौ।
हेमात्र दक्षिणां विष्णोर्मौक्तिकं शङ्कराय च॥
दत्त्वानुव्रजतो लोकौ क्रमाद्देहक्षये ततः।
भुक्त्वा भोगांस्तथा शक्र इहायातो सुरेश्वरः॥
कुले भवति भूपानां सुखी पुत्रादिसंयुतः।
पूर्व्वभावाद्भवेद्भक्तिः शिवे विष्णौ च शाश्वती।
योगं प्राप्य परं याति यत्र तत् स्थानमव्ययं॥

## इति देवीपुरानोक्तं शङ्करनारायणव्रतं।

———000@000———

अनेनैव विधानेन लक्ष्मीनारायणव्रतं।
ब्रह्मगायत्रिजन्तात चन्द्ररोहिणिजन्तथा।
भाववित्तानुसारेण सत्यमेव फलं लभेत्॥

## इति पद्मपुराणोक्तं(१) ब्रह्मगायत्रिचन्द्ररोहिणीव्रतं।

———000———

वृषङ्गाञ्च समादाय युवानौ लक्षणान्वितौ।

(१) देवीपुराणोक्तमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

हेमशृङ्गैः खुरै रौप्यैः सवस्त्रैः पूजयेन्मुने ॥
शिवोमे पूजयित्वा तु तद्दिने सम्प्रयच्छति ।

शिवश्च उमा च शिवोमे ।

शिवभक्ताय विप्राय रोहिण्या वा मृगेण वा ॥
न वियोगो भवेत्तस्य सुतपत्नीपतेः क्वचित्(१) ।
विमानैर्वा समारुह्य गच्छेच्छिवपुरं द्विजः ॥
तत्र भोगांश्चिरं भुक्त्वा इह चागत्य जायते ।
समृद्धैर्धनधान्याद्यैः पुत्रमित्रसमाकुलैः ।
विगतारिर्भवेद्ब्रह्म व्रतस्यास्य प्रभावतः ॥

## इति देवीपुरानोक्तं गोयुग्मव्रतं ।

——oo——

यो वा रत्नसमायुक्तं गोयुगं पूजयेन्मुने ।
प्रयच्छति शिवोमा च प्रीयतां भावितात्मनः ॥

यो वा रत्नसमायुक्तमिति पूर्व्वव्रतेन सह विकल्पादत्रापि पूर्व्वव्रतोक्त एव कालो विज्ञायते ।

स सर्व्वपापदुःखाभ्यां विमुक्तः क्रीड़ते सदा ।
इह लोके भवेद्धन्यो देहान्ते परमं पदं ।

## इति देवीपुराणोक्तं गोरत्नव्रतं ।

——o——

(१) सुतसम्पर्पणात् क्वचिदिति पुस्तकान्तरेपाठः ।

मनुरुवाच।

अतः परं प्रवक्ष्यामि रूपसौभाग्यकारकं।
नक्षत्रविधिना वत्स यथा तुष्यति शङ्करी॥
मृगादारभ्य मूलेन पादौ जातिस्रजा पुरा।
पूजयेत्सोपवासस्तु नक्षत्रान्ते तु पारणं॥
यवान्नं हविषा सिद्धं ब्राह्मेण जङ्घे प्रपूजयेत्।

ब्राह्मं रोहिणी।

कह्लारैर्भृङ्गराजैश्च तिलमासान्नभोजनः॥
तेनैव प्रथमं विप्रानश्विभ्यां जानुनी यजेत्॥
कुन्दैश्च शितपुष्पैश्च भोजनं दधि शर्करा।
आषाढ़द्वितये चारु बिल्वपत्रैश्च पूजयेत्॥
क्षीरान्नैर्भोजयेत्तत्र ब्राह्मणांस्तच्च पारणं।
गुह्यन्तु फाल्गुनीयुग्मे पारयन्त्या प्रपूजयेत्॥
पारयन्ती पुष्पविशेषः।
दधिभक्तन्तु नैवेद्यं कृत्तिकासु कटिं जयेत्।
दमनैःशितपुष्पैश्च लड्डुकैर्दधिभोजनैः।
पार्श्वं भाद्रपदायुग्मे पूजयेत् कुसुमैः शितैः॥
क्षीरान्नदधि विप्राणां नक्षत्रान्ते तु भोजनं।
पौष्णि कुक्षिद्वयं देव्याः सहकारस्रजा यजेत्॥
घृतमाषान्नभोज्यन्तु अनुराधायुगे यजेत्।
कर्णिकारैः शुभैः पीतैर्भोजनं घृतपाचितं॥
पृष्ठदेशं धनिष्ठासु हेमपुष्पैः प्रपूजयेत्।

हेमपुष्पैर्नागकेशरैः।

कर्णपता च नैवेद्यं दोर्विंशाखासु पूज्यते।

मरुपत्रैः सुगन्धैश्च देयं भोज्यञ्च पायसं॥

करौ करे पूजयीत उशीरतगरादिभिः।

गुड़क्षीरञ्च नैवेद्यमङ्गुलीश्च पुनर्व्वसौ॥

कुङ्कुमेनार्चयेद्देव्या देयं भोज्यञ्च षष्टिकं।

नखान् भुजङ्गदैवत्ये पुन्नागादिभिरर्चयेत्॥

भोजान्तु मौक्तिकं देयं (१) ग्रीवां ज्येष्ठासु पूजयेत्।

सितमालादिभिर्देव्या देयं भोज्यं घृतादिकं।

रम्भापुष्पदलैः कर्णौ पूजयेद्भोजयेद्दधि॥

रम्भा कदली।

पुष्ये मुखन्तु पद्माद्यैः शर्करान्नन्तु भोजयेत्।

स्वात्यान्तु रदना देव्याः सुरक्तैः कमलैर्यजेत्॥

हंसं शतभिषर्क्षे च नागकेशरचन्दनैः।

खर्ज्जूरशर्करा भोज्यं यजेन्नासां मघासु च॥

जयापुष्पैस्तथा भोज्यं गोधूमं घृतसंस्कृतं।

मृगे नेत्रद्वयं देव्याः सुगन्धैः कुसुमैर्यजेत्।

घृतमाषान्नभोज्यन्तु विचित्रं परिकल्पयेत्॥

चित्रां चित्रस्रजा पूज्यं ललाटं चित्रभोजनं।

भरणीषु शिरो देव्याः पद्मकादिस्रजा यजेत्॥

क्षीरान्नं भोजनं देयं केशानार्द्रासु पूजयेत्।

जात्यादि कुसुमैर्देव्याः सर्व्वान्नानि च भोजयेत्॥

---

(१) भोज्यन्तु मज्जिका देया। मज्जी शिखरिणी इति पुस्तकान्तरे पाठः।

नक्षत्रेष्विति पूज्यार्या रूपपुत्रार्थिभिः सदा।
शम्भुर्वाप्यथवा विष्णुर्दृष्टतहेमान्नदक्षिणा॥
देयं वस्त्रयुगं विप्रे सपत्नीके जितेन्द्रिये।
देवीशास्त्रार्थकुशले शिवज्ञानविशारदे॥
संपूर्णचन्द्रवदना पद्मपत्रायतेक्षणा।
शोभना दशना शुभ्राः कर्णौ चापि सुमांसलौ॥
षट्पदौघनिभैः केशैर्युता कोकिलवादिनी।
ताम्रौष्ठी पद्मपत्राभा सुहस्ता स्तननामिता॥
नाभिः प्रदक्षिणावर्त्ता रम्भादण्डनिभोरुका।
सुश्रोणी तनुमध्या च सुश्लिष्टाङ्गुलिशोभना।
प्रमदा सुभगा भर्त्तुर्मनुष्योऽपि महाभुजः।
पीनवक्षाः पृथुस्कन्धः पूर्णचन्द्रनिभाननः॥
सितदन्तो गजगामी महाबलपराक्रमः।
प्रियः सर्व्वस्य लोकस्य पद्मपत्रायतेक्षणः॥
सर्व्वशास्त्रार्थवेत्ता च स्त्रीणां चेतोपहारकः।
कामतुल्यो महावीर्य्या व्रतेनानेन जायते।
अवियोगश्च इष्टानामर्थानाञ्च समागमः।
नक्षत्रार्थं महापुण्यं व्रतानामुत्तमं व्रतं॥
आपत्स्वपि न भेदस्तु स्त्रिया कार्य्यं न दुष्यते।
अपि दोषात्मकैर्भावैर्न त्याज्यं मुनिसत्तम॥

इति देवीपुराणोक्तं नक्षत्रार्थव्रतं।

———000(D)000———

नारद उवाच।

श्रीमदारोग्यरूपायुःसौभाग्यसर्व्वसम्पदा।
संयुक्तस्तव विष्णोर्वा पुमानुद्र कथं भवेत्॥
नारी वाविधवा सर्व्वगुणसौभाग्यसंयुता।
क्रमान्मुक्तिपदं देव किञ्चिद्व्रतमिहोच्यतां॥

रुद्र उवाच।

सम्यक् पृष्टन्त्वया ब्रह्मन् सर्व्वलोकहितावहं।
श्रुतमप्यत्र यच्छान्त्यै तद्व्रतं शृणु नारद॥
नक्षत्रपुरुषं नाम परं नारायणार्चनं।
पादौ हि (१) कुर्य्यादिविधिवद्विष्णुनामानि कीर्त्तयेत्॥
प्रतिमां वासुदेवस्य मूलर्चाद्यभिपूजयेत्।
चैत्रमासं समासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनं॥

मूले नमो विश्वधराय पादा-
वनन्तदेवाय च रोहिणीषु।
जङ्घेऽभि पूज्ये वरदाय चैव
द्वे जानुनी वाश्विकुमारकर्क्षे॥
पूर्वोत्तराषाढ़युगे च पादौ
नमः शिवायेत्यभिपूजनीयौ।
पूर्व्वोत्तराफाल्गुनियुग्मके च
मेढ्रं नमः पञ्चशराय पूज्य॥
कटिं नमः शार्ङ्गधराय विष्णोः
संपूजयेन्नारद कृत्तिकासु।

(१) पदादि कुर्य्यादिति पुस्तकान्तरे पाठः।

तथार्चयेज्जानुपदाद्वये च
पार्श्वे नमः केशिनिसूदनाय।
कुक्षिद्वयं नारद रेवतीषु
दामोदरायेत्यभिपूजनीयं॥
अश्वेऽनुराधासु च माधवाय
नमस्तथोरस्थलमेव पूज्यं।
पृष्ठं धनिष्ठासु च पूजनीयं
मघासुविघ्नं सकराय तद्वत्॥
श्रीशङ्खचक्रासिगदाधराय
नमो विशाखासु भुजाश्च पूज्याः।
हस्ते तु हस्ता मधुसूदनाय
नमोऽभिपूज्या इति कैटभारेः।
पुनर्व्वसावङ्गुलिपर्व्वभागाः
साम्नामधीशाय नमोऽभिपूज्याः।
भुजङ्गनक्षत्रदिने नखानि
संपूजयेन्मत्स्यशरीरिणश्च।
कूर्म्मस्य पादौ शरणं व्रजामि
जेष्ठासु कण्ठे हरिरर्चनीयः॥
श्रोत्रे वराहाय नमोऽभिपूज्ये
जनार्द्दनस्य श्रवणे च सम्यक्॥
पुष्ये मुखन्दानवसूदनाय
नमो नृसिंहाय च पूजनीयं॥
नमो नमः कारणवामनाय
स्वातीषु दन्ताग्रमथार्चनीयं।

आस्यं हरेः कौतुकभार्गवाय
संपूजनीयं द्विज वारुणे तु ।
नामोऽस्तु रामाय मघासु नासा
संपूजनीया रघुनन्दनस्य ॥
मृगोत्तमांगे नयने च पूज्ये
नमोऽस्तु ते राम विघूर्णिताच्च ।

मृगोत्तमाङ्गं मृगशीर्षं

बुधाय शान्ताय नमो ललाटं
चित्रासु संपूज्यतमं मुरारेः ।
शिरोभिपूज्यं भरणीषु विष्णो
नमोऽस्तु विश्वेश्वर कल्किरूप ॥
आर्द्रासु केशाः पुरुषोत्तमस्य
संपूजनीया हरये नमस्ते ।
उपोषिते ऋचदिनेषु शक्त्या
संपूजनीया द्विजपुङ्गवाः स्युः ॥
पूर्णे व्रते सर्व्वगुणान्विताय(१)
वाग्रूपशीलाय च शामगाय ।
हैमीं विशालायतबाहुदण्डां
मुक्ताफलेन्द्रोपलवज्रयुक्तां ।
गूढ़स्य पूर्णे कलशे निविष्टा

(१) ब्राह्मणपुङ्गवाय इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

मर्च्चां हरेर्व्वस्त्रयुतां सहैमीं ।
शय्यां तथोपस्करभाजनादि-
युक्तां प्रदद्याद्द्विजपुङ्गवाय ॥
यद्यत् प्रियं किञ्चिदिहास्ति देयं
तत्तद्द्विजायात्महिताय सर्व्वं ।
मनोरथान्नः सफलीकुरुष्व
हिरण्यगर्भाच्युतरुद्ररूप ॥
स लक्ष्मीकं समभ्यर्च्याय काञ्चनं पुरुषोत्तमं ।
शय्यां दद्याच्च मन्त्रेण शस्यभेदविवर्ज्जितां ॥
यथा न विष्णुभक्तानां वृजिनं जायते क्वचित्।
तथा सुरूपतारम्यं केशवे भक्तिरुत्तमा ॥
यथा लक्ष्म्या न शयनं तव शून्यं जनार्द्दन ।
शय्या ममाप्यशून्यास्तु कृष्ण जन्मनि जन्मनि ॥
एवं निवेद्य तत् सर्व्वं वस्त्रमाल्यानुलेपनैः ।
नक्षत्रपुरुषज्ञाय विप्रायाथ विसर्जयेत् ॥
भुञ्जीतातैललवणं सर्व्वर्क्षेष्वप्युपोषितः ।
भोजयेच्च यथाशक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥
इति नक्षत्रपुरुषमुपोष्य विधिवत् स्वयं ।
सर्व्वान् कामानवाप्नोति विष्णुलोके महीयते ॥
ब्रह्महत्यादिकं किञ्चिद्यदत्रामुत्र वा कृतं ।
आत्मना चाथ पितृभिस्तत् सर्व्वं नाशमाप्नुयात् ॥
इति पठति शृणोति वातिभक्त्या
पुरुषवरो व्रतमङ्गनाथ कुर्य्यात् ।

कलिकलुषविदारणं मुरारेः
सकलविभूतिफलदश्च पुंसः ॥

इति मत्स्यपुराणोक्तं नक्षत्रपुरुषव्रतं ।

———000———

युधिष्ठिर उवाच ।

उपवासेष्वशक्तस्य तदेव फलमिच्छतः ॥
अनभ्यासेन रोगाद्वा किमिष्टं व्रतमुच्यतां ।
शिवस्योपरि यस्य स्याद्भक्तिः सूर्यस्य वा विभो ।
नक्षत्राख्यं व्रतं तेन कथं कार्य्यमिहोच्यतां ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

उपवासेष्वशक्तानां नक्तं भोजनमिष्यते ।
यस्मिन् व्रते तदप्यत्र श्रूयतामक्षयं महत् ॥
शिवनक्षत्रपुरुषं शिवभक्तिमतां नृणां ।
तस्मिन्नक्षत्रयोगे च पुराणज्ञाः प्रचक्षते ॥
फाल्गुनस्यामले पक्षे यदा हस्तः प्रजायते ।
तदा ग्राह्यं व्रतं चैतन्नक्तेनाभ्यर्च्य शूलिनं ॥
शिवायेति च हस्तेन पादौ संपूजयेद्विभोः ।
शङ्कराय नमो गुल्फौ पूज्यौ चित्रासु पाण्डव ॥
भीमाय जङ्घे स्वातीषु देवदेवस्य पूजयेत् ।
ऊरुद्वयं विशाखासु त्रिनेत्राय तु पूजयेत् ।
मेढ्रञ्चैवानुराधासु अनङ्गाय हरेति च ॥
सदा ज्येष्ठासु च तथा सुरज्येष्ठेति चार्च्चयेत् ।

नादाख्याय नमो नाभिः पूज्या मूलेन शूलिनः ॥
आषाढ़युगले पार्श्वे पार्व्वतीपतयेति च ॥
श्रवणेन ततः कुक्षौ पूज्यौ कापालिने नमः ।
वक्षस्थलं धनिष्ठासु सद्योजाताय वै नमः ॥
वामेति पूजयेत्पार्थ हृदयं शतभिषासु च ।
पूर्व्वोत्तरायुगे बाहू नमः खट्टाङ्गधारिणे ॥
पूज्यं रुद्राय च तथा रेवतीषु करद्वयं ।
नखाः पूज्याश्विनीयोगे नमस्कृत्य पिनाकिने ॥
भरणीषु ततः पृष्ठं वृषाङ्काय नमोऽस्त्विति ।
कृत्तिवस्त्राय वदनं कृत्तिकासु कृकाटिकां ॥
वाक् पूज्या रोहिणीयोगे नमो वाचस्पतेरपि ।
मृगोत्तमाङ्गे दशनान् भैरवायेति पूजयेत् ॥
आर्द्रास्वोष्ठाधरौ पूज्यौ स्थाणवेति युधिष्ठिर ।
नासा पुनर्व्वसौ पूज्या पूष्णो दन्तविघातिने ॥
पुष्ये नेत्रद्वयं पूज्यं नमस्ते सर्व्वदर्शने ।
अश्लेषायां ललाटन्तु त्र्यम्बकाय नमो नमः ॥
मघासु च जटाजूटं पूजयेदन्धकारये(१) ।
पूर्व्वफाल्गुनीयोगे च श्रवणौ सोमधारिणे ॥
नमोऽस्तु पाशाङ्कुशशूलपद्म
कपालसर्पेन्दुधनुर्द्धराय(२) ।
गजासुरानङ्गपुरान्धकादि-

(१) पूजयेत्त्र्यम्बकायचेति पुस्तकान्तरे पाठः ।
(२) सर्पेन्द्रधनुर्द्धराय इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

विनाशमूलाय नमः शिवाय ॥
शिरः संपूजयेद्दद्यात्ततो धूपविलेपने ।
ततस्तु रात्रौ भोक्तव्यन्तैलक्षारविवर्जितं ॥
शालेयतण्डुलप्रस्थं घृतपात्रेण संयुतं ।
दद्यात्सर्व्वेषु नक्तेषु ब्राह्मणानां नृपोत्तम ॥
अतदभावे न दोषः स्यादधिके ह्यधिकं फलं ।
नक्षत्रयुगले प्राप्ते नक्तयुग्मं समाचरेत् ॥
सूतकाशौचदोषेण पुनरन्यः समाचरेत् ।
एवं क्रमेण संप्राप्ते व्रतस्यैवास्य पारणे ॥
ब्राह्मणान् भोजयेद्भक्त्या गुड़क्षीरघृतादिभिः ।
काञ्चनं कारयेद्देवमुमया सह शङ्करं ॥
शय्यां सुलक्षणां कृत्वा विरुद्धग्रन्थिवर्जितां ।
सोपधानकविश्रामां स्वास्तराभरणां शुभां ॥
भाजनोपानहच्छत्रचामरासनदर्पणैः ।
भूषणैरपि संयुक्तां फलवस्त्रानुलेपनैः ॥
सवस्त्राङ्गांस्यदोहनीं हेमशृङ्गिविभूषितां ।
दद्यात्पूर्व्वाह्नसमये न किञ्चिदपि लङ्घयेत् ॥
मन्त्रेणानेन राजेन्द्र हृदि शम्भुं निधाय वै ।
यथा न देव शयने तव पर्व्वतजानघ ।
शून्यं वर्त्तते सततं तथा मे सन्तु सिद्धयः ॥
यथा न देव श्रेयांस्तु त्वद्दते विद्यते क्वचित् ।
तथा मामुद्धराशेषदुःखसंसारसागरात् ॥
ततः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणिपत्य विसर्जयेत् ।

शयनादिकञ्च तत् सर्व्वं द्विजस्य भवनं नयेत् ॥

नैतद्विशीलाय न नास्तिकाय
कुतर्कदुष्टाय विनिन्दकाय।
प्रकाशनीयं व्रतमिन्दुमौलेः
पश्चात्तिलेभ्योपहतान्तरात्मा ॥
भक्ताय दान्ताय गुणान्विताय
प्रदेयमेतच्छिवभक्तियुक्ते।
इदं महापातकिनां नराणा
मघक्षयं वेदविदो वदन्ति ॥
या काचिदेतत् कुरुतेऽथ भक्त्या
भर्त्तारमाश्रित्य शुभङ्करं वा।
न बन्धुपुत्रादिधनैर्वियोग-
माप्नोति दुःखं न सुहृत्समुत्थं ॥
इदं वसिष्ठेन पुराज्जुनेन
कृतं कुवेरेण पुरन्दरेण।
यत्कीर्त्तनादप्यखिलान्यघानि
विध्वंसमायान्ति न संशयोऽत्र ॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं शैवनक्षत्रपुरुषव्रतं।

———oo———

इति श्रीमहाराजाधिराजश्रीमहादेवस्य समस्तकरणाधीश्वर-
सकलविद्याविशारदश्रीहेमाद्रिविरचिते-
चतुर्व्वर्गचिन्तामणौ व्रतखण्डे
नक्षत्रव्रतानि।

## अथ चतुर्व्विंशोऽध्यायः ॥



त्यक्त्वा वैरं चिरपरिचितं मित्रभावं प्रपन्ने
वाणी लक्ष्मीः किल विलसती यस्य गेहेऽनुरागात् ॥
येनापूर्व्वं प्रकटितमिदं वैभवं पुण्यभाजाम् ।
सोऽयं योगव्रतसमुदयं वक्ति हेमाद्रिरस्मिन् ॥

### अथ योगव्रतानि ।



कृष्ण उवाच ।

विष्कुम्भादिषु योगेषु भवेदेकादशी नरः ।
यो ददाति क्रमात्पार्थ घृततैलपलैश्चवं ॥
यवगोधूमवरणं निष्पावाञ्छालितण्डुलान् ।
लवणं दधिदुग्धञ्च वस्त्रं कनकमेव च ॥
कम्बलं गोवृषं छत्रमुपानद्युगलन्तथा ।
कर्पूरं कुङ्कुमञ्चैव चन्दनं कुसुमानि च ॥
लौहं ताम्रञ्च कांस्यञ्च रौप्यञ्चेति युधिष्ठिर ।
स्नातः स्वशक्त्या विधिवत् सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ।
न वियोगमवाप्नोति योगव्रतमिदं स्मृतं ॥

इति भविष्योत्तरोक्तं योगव्रतं ।



धरण्युवाच।

यस्त्वयोक्तो व्यतीपातः कीदृशः स स्वरूपतः।
कस्य पुत्रः कथं पूज्यः पूजिते तत्र किं फलं॥

वराह उवाच।

यदा बृहस्पतेर्भार्यां ताराञ्जग्राह शीतगुः।
मित्रत्वात् प्राह तं सूर्यस्त्यज भार्यां बृहस्पतेः॥
चक्रे चन्द्रो न तद्वाक्यं हितं शिष्योऽपि तं यदा।
रुष्टस्तदा किलादित्यो दीप्तदृष्ट्या तदैक्षत॥
तावत् सोमोऽपि रुष्टोऽस्य ततोऽन्योऽन्यमवेक्षतां।
उभयोर्दृष्टिसम्पाते क्रुद्धयोः सोमसूर्ययोः।
उद्यतास्त्रो भवेद्घोरः पुरुषः पिङ्गलेक्षणः॥
दृष्टोष्ठदीर्घदशनो भ्रुकुटीकुटिलाननः।
कपिलश्मश्रुकेशान्तो लम्बभ्रूः सुकृशोदरः॥
करालो दीर्घजिह्वश्च सूर्याग्निसमसन्निभः।
सम्भोक्तुकामस्त्रैलोक्यं रवीन्दुभ्यां निवारितः।
क्रोधक्षुधौ मां बाधेते पाल्ये वै कुत्र ते मया॥

सूर्यसोमावूचतुः।

कोपदृष्टात्तो विविधादतिपाताद्भवानभूत्।
व्यतीपातस्ततो नाम भवान्भुवि भविष्यति॥
यस्मिन्काले त्वदुत्पत्तिस्तदा कल्याणकारिणः।
व्यतीपाताय भद्रन्ते त्वयि यः पापकारकः॥
तदन्नं क्षुधितो भुङ्क्ष्व तत्र कोपो निपात्यतां।
व्यतीपातस्ततो नाम भवान् भुवि भविष्यति॥

व्यतीपात उवाच ।

नमो वां पितरौ मेरुःकोटपातः सभोजनः ।
दत्तो भवद्भ्यामधुना प्रसादः क्रियते क्षमा ॥

रवीन्दू ऊचतुः ।

स्नानदानजपहोमपूर्व्वकं
यस्त्वदीयसमये समाचरेत् ।
तस्य पुण्यमिह ते प्रसादतो-
नन्तमस्तु सुतनोरनुग्रहात् ॥
तत्काले तव विदधाति पूजनं
यस्तस्येष्टं भवतु भवेत्सभद्रभूयः ।
पुत्रायुर्धनसुखकीर्त्तिपुष्टि-
रूपारोग्याद्यङ्गुलिजनवल्लभत्वपूर्व्वं ॥

वराह उवाच ।

एतस्मात्कारणाद्भूमी व्यतीपातोऽर्च्चितो नरैः ।
अर्च्चिते च फलं तस्य तदुक्तन्ते समाहितैः ॥
विस्तरेणार्च्चितफलं गदितुं केन शक्यते ।
येनार्च्च्यते व्यतीपातः स विधिः श्रूयतामिति ॥
शुभे व्यतीपातदिने विगाहयेत्
स पञ्चगव्येन महानदीजलं ।
उपावसेद्वै पवमानजापको
जपेत्तु शुद्धो व्यतिपात ते नमः ॥
छादिते ताम्रपात्रेण शर्करापूरिते घटे ।

काञ्चनाब्जे प्रतिष्ठाप्य हैममष्टभुजन्नरं ॥

अष्टभुजं अष्टादशभुजं। उत्पत्तिवाक्ये व्यतीपातमूर्त्तेरष्टादश भुजत्वात्। उत्पत्तिवाक्यानुसारत्वाच्च विनियोगवाक्यस्य यथा भगवद्गीतासु चत्वारोमनवस्तथेति चत्वारश्चतुर्द्दश।

गन्धपुष्पाचतैर्धूपदीपवस्त्रनिवेदनैः।
भच्चैर्भोज्यैः फलैश्चित्रैर्मासि मार्गशिरेऽर्चयेत् ॥
नमस्तेऽस्तु व्यतीपात सूर्य्यसोमसुत प्रभो।
यद्दानादिकृतं किञ्चित्तदनन्तमिहास्तु मे ॥
हुतुत्वा पञ्च रत्नाढ्यं सपुष्पाचतमञ्जलिं।
प्रच्चिप्य तत्चणादेव सर्व्वपापचयो भवेत् ॥
यदि द्वितीयेऽपि दिने व्यतीपाता भवेन्मही।
तदा पूर्व्वोपवासस्तु दद्यात्तत् सकलं गुरोः ॥
पारणं व्यतिपातान्ते कुर्य्यात् संप्राश्य गोमयं।
अथै कस्मिन्नेव दिने व्यतीपातो भवेद्यदि।
तत्रैवाह्नि तदा दत्त्वा उपवासं समाचरेत् ॥
कुर्य्यादेवं मासि मासि व्यतीपातस्त्रयोदश।
व्यतीपाते तु संप्राप्ते कुर्य्यादुद्यापनं बुधः ॥
व्यतीपाताय स्वाहेति चीरवृचसमन्वितं।
आज्यचीरतिलानाञ्च होतव्यं वै शतं शतं ॥
शर्क्कराघटपूर्णेन सहसोपस्करैर्युतां।
प्रतिमां काञ्चनीं कृत्वा प्रदद्याद्व्रतदेशिने ॥
वन्देव्यतीपातमहं महान्तं
रवीन्दुसूनुं सकलेष्टलब्ध्यै।

समस्तपापस्य मम क्षयोऽस्तु
पुण्यस्य चानन्तफलं ममास्तु ॥
इति समीक्ष्य गुरुः परिपूज्यते
कटक-कुण्डल-काञ्चन-भूषणैः।
सकलमेव समाप्य यथोदित-
मुपलभ्यमिहाश्नुते महीं ।
गां वै पयस्विनीं दद्यात्सुवर्णोत्तमदक्षिणां ।
तस्मै शय्यां समासाद्य सारदारुमयीं दृढ़ां ॥
दत्तपत्रवितानाभ्यां हेमपट्टैरलङ्कृतां ।
हंसतूलीप्रतिच्छन्नां शुभगण्डोपधानकां ॥
प्रच्छादनपटीयुक्तां धूपगन्धादिवासितां ।
ताम्बूलकुङ्कुमक्षोदकर्पूरागुरुसुन्दरां ।
दीपिकोपानहच्छत्रां प्रदद्याच्चामरासनां ।
देहान्ते सूर्य्यलोकाय विमानै रत्नसुप्रभैः ॥
अप्सरोगणसम्भोग्यैर्गीतनृत्यविलासिभिः ।
गत्वा कल्पार्बुदशतं मोदते त्रिदशार्चितः ॥
तदन्ते राजराजः स्याद्रूपसौभाग्यभाग्भवेत् ।
कीर्त्त्याढ्यो गुणपुत्रायुरारोग्यधनधान्यवान् ।
प्रतापवान् महैश्वर्य्ययुक्तभावो बहुश्रुतः ॥
जनसौभाग्यसम्पन्नो यावज्जन्माष्टकायुतं ।
दर्शे शतगुणं दानं तच्छतघ्नन्दिनक्षये ॥
शतघ्नन्तच्च संक्रान्तौ शतघ्नं विषुवे ततः ।
युगादौ तच्छतगुणं अयने तच्छताहतं ॥

सोमग्रहे तच्छतघ्नं तच्छतघ्नं रविग्रहे॥
असंख्येयं व्यतीपाते दानं वेदविदो विदुः।
उत्पत्तौ तल्लक्षगुणं कोटिगुणं भ्रमणनाड़िकायां।
अर्बुदगुणितं पतने जपदानाद्यक्षयं पतिते॥
जन्महाविंशतिनाड़ी भ्रमणन्त्वेकविंशतिः।
व्यतीपातस्य पतनं दशसप्तस्थितं विदुः॥

समर्पितं यद्व्यतिपातकाले
पुनः पुनस्तद्रविशीतरश्मी।
प्रयच्छतः कल्पशतार्बुदानि
विवर्द्धमानं नहि हीयते तत्॥
तस्मात्त्वमद्य त्वं व्यतिपातपूजां
कुरुष्व चेत् पुण्यमनन्तमिष्टं।
यदि स्थिरत्वं सततन्त्वभीष्टं
समस्तधारित्वमभीप्सितञ्च॥
गणयित्वा व्यतीपातकालं वा वेत्ति यो नरः।
सर्व्वपापहरौ तस्य भवतो भानुभेश्वरौ
पठति लिखति यः शृणोति वै
तत्कथयति पश्यति कारयत्यवश्यं।
रविशशिदिवमाप सोपि
दिव्यैश्चिरसमयं परिपूज्यमान आस्ते॥

इति वराहपुराणोक्तं व्यतीपातव्रतं।

———०००———

युधिष्ठिर उवाच ।

येन व्रतेन चीर्णेन नपश्येद्यमशासनं ।
परिपृच्छाम्यहं ब्रह्मन् पापघ्नं व्रतमुत्तमं ॥
तद्व्रतं ब्रूहि विप्रर्षे कृत्वा जगति वै कृपां ।

मार्कण्डेय उवाच ।

शृणु राजन् व्रतमिदं हर्य्यश्वेन पुरातनं ।
तेनैव राज्ञा तद्दत्तं शूकराय च दुःखिने ॥
एकदा तु मृषित्वा स हर्य्यश्वो राजसत्तमः ।
अन्तश्चरन् भवे राजन् दृष्ट्वा तत्रैव शूकरं ॥
दग्धपादकटिश्चैव दग्धग्रीवमुखोदरं ॥
दृष्ट्वा तथा विधन्तन्तु कृपाञ्चक्रे दयापरः ।
केन कर्म्मविपाकेन अवस्थां प्राप्तवानयं ।
अहोकष्टमहोकष्टं सूकरेणोपभुज्यते ।
अवश्यमनुसर्त्तव्यं कृतं कर्म्म शुभाशुभं ॥
इत्युक्त्वा तत् स्वरूपेण राजा तं प्राह शूकरं ।
इयती किमवस्था वै तन्मम ब्रूहि शूकर ॥
तच्छ्रुत्वा नृपतेर्वाक्यं निःश्वसन् शूकरो मुहुः ।
स्मृत्वा पुराकृतं कर्म्म प्रत्युवाचाथ तं नृपं ॥

शूकर उवाच ।

शृणु राजन्नहं पूर्व्वं वैश्यो विश्वसखाभवः ।
आशाकारी न दाताहमाश्रितेभ्यश्च किञ्चन ॥
श्रुताश्च बहवो धर्म्मा पुराणश्रुतिनोदिताः ।

तथापि पापबुद्धयाहं न करोम्यात्मनो हितं ॥
आशापाशमनुप्राप्ता भग्नाशास्ते विनिर्गताः।
कृतवान् पापमेवाहं न किञ्चित्सुकृतं कृतं ॥
एकदा तु द्विजः कश्चिद्व्यतीपाते गृहं मम।
आगतो याचते माञ्च न किञ्चिद्दत्तवानहं ॥
ततश्च कुपितो विप्रो मम शापमथाददत्।
आशाग्निर्दहते यद्वन्ममाङ्गानि पृथक् पृथक् ॥
तथैव तु तवाङ्गानि दावाग्निः पुरुषाधम।
अरण्ये निर्जने देशे निर्जले द्रुमवर्जिते ॥
तत्र शूकरयोनौ त्वं प्रसूतिं समवाप्नुहि।
प्रसादितो मया विप्रः पुनरप्युक्तवांस्तदा।
ज्ञानित्वं शूकरत्वेऽपि इत्युक्त्वाथ जगाम सः ॥
तेन शापेन राजेन्द्र शूकरत्वमवाप्नुयात्।
अहं दुःखी ह सञ्जातो निर्जने निर्ज्जले वने ॥

राजोवाच।

केन त्वं मुच्यते पापात् ममाचक्ष्वेह शूकर।
येन शक्यो मया कर्त्तुं तव शापस्य संचयः ॥

वराह उवाच।

श्रूयतां मम राजेन्द्र मुक्तिः स्याद्येन कर्म्मणा।
व्यतीपातव्रतं नाम कृतं राजंस्त्वया पुरा ॥
यथा माता सुतस्येह सर्व्वस्य हितकारिणी।
तथा व्रतमिदं राजन्निह लोके परत्र च।

यथैवाभ्युदितः सूर्य्यो ह्यशेषं च तमो दहेत् ॥
इदं व्रतं तथैवेह सर्व्वपापं व्यपोहति ॥
सकृत् स्मृतो यथा विष्णुर्नृणां परमनिर्वृतिं ।
ददात्येव न सन्देहस्तथा व्रतमिदं शुभं ॥
शतमिन्दुक्षये दानं सहस्रन्तु दिनक्षये ।
विषुवे शतसाहस्रं व्यतीपाते त्वनन्तकं ॥
व्यतीपातव्रतस्यास्य विधानं शृणु तत्त्वतः ।
माघे वा फाल्गुने वापि अन्यस्मिन्मासि वा भवेत् ॥
व्यतीपातो दिने यस्मिन् प्रारभेद्व्रत मुत्तमं ।
तिलैः पूर्णं शरावञ्च सगुड़ं गुरवेऽर्पयेत् ॥
एवं द्वितीये दातव्यं तृतीये तु समापयेत् ।
सघृतं पायसञ्चैव दातव्यं वोत्तरोत्तरं ॥
एवं संवत्सरस्यान्ते देवस्यार्चान्तु कारयेत् ।
शङ्खचक्रगदापाणिं पद्महस्तं हिरण्मयं ॥
वस्त्रयुग्मेन संवेष्ट्य पूजयेद्गरुड़ध्वजं ।
गोक्षीरेण च संपूर्णं कांस्यभाजनमुत्तमं ॥
स्थापयेद्देवदेवस्य स्थानन्तत्रैव कल्पयेत् ।
शय्या च सन्निधौ तस्य स्थाप्या देवमनुस्मरन् ॥
अनन्तशायिनं देवमनन्तफलदं शुभं ।
लक्ष्म्या सहान्वितं विष्णुं भक्त्या संपूजयेद्गुरुं ॥
वैदिकेनैव मन्त्रेण जातीपुष्पैः समर्चयेत् ।
पायसेनैव नैवेद्यं शर्करासंयुतेन च ॥
दत्त्वा निवेद्यं देवस्य प्रार्थनं प्रार्थयेद्व्रती ।

व्यतीपातव्रतं देव त्वयानन्त समर्पितं ॥
भवत्वनन्तफलदं मम जन्मनि जन्मनि।
देवदेवं हृषीकेशं प्रार्थयित्वा ततो व्रती ॥
तत्सर्व्वं गुरवे दद्याच्छ्रोत्रियाय कुटुम्बिने।
व्रतोपदेष्ट्रे विप्राय ब्रह्मज्ञाय विशेषतः ॥
भूमिर्वाथ सुवर्णं वा दक्षिणा तु विधीयते।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु व्रतमेतत् समापयेत् ॥
इदं व्रतं त्वया देव गृहीतं पूर्व्वजन्मनि।
स्वर्गापवर्गदं नृणामनन्तफलदं शुभं ॥
मुञ्चेदं किल्बिषादस्मात्शूकरत्वान्न संशयः।
तेनैव मुक्तो हर्य्यश्वः शूकरं वाक्यमब्रवीत् ॥
मया कृतमिदं सर्व्वं तत्फलन्ते ददाम्यहं।
एवमुक्त्वा नृपश्रेष्ठः शूकराय फलं ददौ ॥
तत्क्षणात्तेन दुःखेन शूकरो मुक्तकिल्बिषः।
मुक्तः शूकरदेहाच्च सर्व्वाभरणभूषितः ॥
दिव्यं विमानमास्थाय वाक्यञ्चेदमुवाच ह ॥
हे जनाः किन्नजानीध्वं व्यतीपातव्रतोत्तमं ॥
इहैव सुखदं नृणां परत्र च पराङ्गतिं।
दृष्ट्वा मां पापनिर्मुक्तं व्रतस्यास्य प्रभावतः।
विश्वासः क्रियतामस्मिन् व्यतीपातव्रतोत्तमे ॥
इत्युक्त्वा स्वर्गतः सोऽथ राज्ञो वै पश्यतस्तदा।
तं दृष्ट्वा विस्मितो भूत्वा राजापि श्रद्दधे व्रतं ॥
ततो राजा पुरङ्गत्वा व्रतं वाकारयज्जनान्।

सर्व्वं च कृतवांस्तत्र व्यतीपातव्रतं शुभं ॥
ततो राज्यं चिरं कृत्वा देवदेवस्य चक्रिणः ॥
हर्य्यश्वः प्राप्तवांस्तेन विष्णोस्तत्परमं पदं ।
अतस्त्वं कुरु राजेन्द्र व्यतीपातव्रतोत्तमं ॥
सर्व्वपापक्षयकरं नृणामिह सुखप्रदं ॥
इदं यः कुरुते मर्त्यः श्रद्धाभावसमन्वितः ।
सर्व्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥
यया तु पुत्रकामिन्या कृतं सा लभते सुतान् ।
स्त्रीकामेनेह तद्वत्स लभेन्नारीमनुत्तमां ॥
व्यतीपातव्रतमिदं व्यतीपातदिने यजेत् ।
ज्ञानवान् धनवान् श्रीमान् इहैव स सुखी भवेत् ।
य इदं शृणुयाद्भक्त्या विष्णुलोके महीयते ॥

इति नारदीयपुराणोक्तं व्यतीपातव्रतं ।

---

इति श्रीमहाराजाधिराजश्रीमहादेवस्य समस्तकरणा-
धीश्वरसकलविद्याविशारदश्रीहेमाद्रिविर-
चिते चतुर्व्वर्गचिन्तामणौ व्रत-
खण्डे योगव्रतानि ।

---

## अथ पञ्चविंशोऽध्यायः ।

———000———

## अथ करणव्रतानि ।

———

येनेदं निजगौरवेण दूरा-
दुत्कर्षञ्जगदपि नीयते स एषः ।
आचष्टे निखिलमनोषितार्थसिद्धैर
हेमाद्रिः करणगणव्रतानि ॥

सनत्कुमार उवाच ।

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि करणव्रतमुत्तमं ।
बवाख्यं बालवञ्चैव कौलवन्तैतिलङ्करं ।
वणिजं विष्टिरित्याहुः करणानि पुराविदः ॥
माघमासे तु सम्प्राप्ते शुक्लपक्षे यदा भवेत् ।
बवाभिधानकरणमुपवासस्तदा भवेत् ॥
पूजयेच्चाच्युतं देवं गन्धमाल्यविलेपनैः ।
सौवर्णी प्रतिमा कार्य्या विष्णोः कर्षमिता शुभा ॥
जपेदहर्निशं तत्र मन्त्रमष्टाक्षरं बुधः ।
कलशञ्च समानीय ताम्रपात्रं तथोपरि ॥
विन्यस्य पूजयेद्देवं सुवर्णकमलेन च ।
वितानं चामरं घण्टां देवाय प्रतिपादयेत् ॥

एवं सप्त विधेयानि ववाख्यान्यथ सप्तमे।
ववे तु करणे प्राप्ते पूर्व्वं पूर्व्वं समाचरेत्॥
ब्राह्मणान् भोजयेच्चात्र सप्तसंख्यान् सदक्षिणं।
अथैवं बालवादीनि विष्टान्तानि यथा क्रमं॥
उषित्वा सप्त सप्तैव पूर्व्वोक्तविधिना नृप।
समापयेद्व्रतं भूरिगोभूहेमादिदानतः॥
एवं कृते व्रते राजन् राजसूयाश्वमेधयोः।
समस्तं फलमाप्नोति सुखं कीर्त्तिं महच्छ्रियं।

इति ब्रह्माण्डपुराणोक्तं करणव्रतं।

—— ००० ——

युधिष्ठिर उवाच।

कृष्ण केयं जनैः सर्व्वैर्विष्टिभद्रेति चोच्यते।
कस्यात्मजेयं का ज्येष्ठा कथं वा पूज्यते नरैः॥

श्रीकृष्ण उवाच।

सुता मार्त्तण्डदेवस्य छायया जनिता पुरा।
शनैश्वरस्य भगिनी सोदर्य्यातिभयङ्करा॥
सा जातमात्रा भुवनं ग्रस्तुं समुपचक्रमे॥
निर्य्याति यदि कार्य्येण कश्चित्तस्य पुरस्थिता।
विघ्नं करोति स्वपतो भुञ्जानस्य स्थितस्य च।
यज्ञविघ्नकरी रौद्री समाजोत्सवनाशिनी॥
नित्योद्वेगकरी पार्थ विनाशयति सा जगत्।
तान्तु दुर्व्विनयां कस्मै यच्छाम्येनां सुमध्यमां

कन्यादुर्व्विनयान्निहे पिता दोषेण गृह्यते।
तस्मात्सर्व्वप्रयत्नेन कन्या देया विजानता॥
चिन्त्यैवमशुभां भद्रां यस्य यस्य प्रयच्छति।
तं तमेव क्षणेनैव सुरराक्षसकिन्नराः।
मण्डपं मण्डपारम्भे विनाशयन्ति तत्क्षणात्।
विवस्वान् चिन्तयामास कस्येयं प्रतिपाद्यते॥
विरूपा दुष्टहृदया गर्द्दभास्या त्रिपादिका॥
ऊर्द्दरोममहादंष्ट्री स्वेच्छाचारविहारिणी।
दत्ता येषामसौख्याय भवतीह कथञ्चन॥
एवं वितर्कयन् देव आस्ते यावद्दिवस्पतिः।
तावत्तया जगत्सर्व्वं दुष्टया समभिद्रुतं॥
अथाजगाम सवितुः पार्श्वं ब्रह्माण्डसम्भवः।
उपालभ्य ददौ चास्य विष्टेर्ह्यर्घ्यमशेषतः।
भास्करस्तमुवाचेदं स्वयम्भुम्भुवनेश्वरं॥
भवान् कर्त्ता च हर्त्ता च कस्मादेवं प्रभाषसे।
एवमुक्तस्तदा ब्रह्मा भास्करेणामितद्युतिः॥
तदोवाच विष्टिमार्य्यै शृणु भद्रे मयोदितं।
करणैः सह वर्त्तस्व ववबालवकौलवैः॥
सप्तमेऽह्नि दिने प्राप्ते यदभीष्टं कुरुष्व तत्।
यात्राप्रवेशमाङ्गल्यकृषिवाणिज्यकारकान्॥
भक्षयस्वाभिमुखगान् नरानुन्मार्गगामिनः।
नोद्विजनीयो हि जनो भवत्या दिवसत्रयं॥
पूज्या सुरासुराणां त्वं दिवसार्द्धं भविष्यति।

उल्लङ्घ्य ये प्रवर्त्तन्ते भद्रे त्वां निर्भया नराः ।
तेषां विनाशय शुभं कार्य्यमार्य्ये सुनिश्चितं ॥
एवमेषा समुत्पन्ना विष्टिरिष्टिविनाशनी ।
निवेदितेति कौन्तेय तस्मात्तां परिवर्ज्जय ॥
सिंहग्रीव सप्तभुजा त्रिपादा पुच्छसंयुता ।
खरोत्तमाङ्गवदना प्रेतरूढ़ा कृशोदरी ॥
ज्वलच्चक्षुश्च दधती हस्ते पाशासिशक्तयः ।
नरमुण्डाश्च मालाश्च मुद्रा सप्तविधा स्मृता ॥
सजलजलदवर्णा दीर्घनासोरुदंष्ट्रा
विपुलहनुकपोला पिण्डकोदण्डजङ्घा ।
अनलशतसहस्रं चोद्गिरन्ती समन्तात्
पतति भुवनमध्ये कार्य्यनाशाय विष्टिः ॥
भानोः सुता किन्तु शताग्रजाता
कृष्णा कुमूर्त्तिः सततं कुचेला ।
देवैर्नियुक्ता करणान्तसंस्था
विष्टिस्तु सर्व्वत्र विवर्जनीया ॥
मुखे तु घटिकाः पञ्च द्वे तु कण्ठे सदा स्थिते ।
हृदि चैकादश प्रोक्ताश्चतस्रो नाभिमण्डले ।
पञ्च कट्यान्तु विज्ञेयास्तिस्रः पुच्छे जयावहाः ॥
मुखे कार्य्यविनाशाय ग्रीवायां धननाशनी ।
हृदि प्राणहरा ज्ञेया नाभ्यान्तु कलहावहा ।
कट्यामर्थपरिभ्रंशो विष्टिपुच्छे ध्रुवञ्जयः ॥
पृथिव्यां यानि कार्य्याणि अशुभानि शुभानि च ॥

तानि सर्व्वाणि सिध्यन्ति विष्टिपुच्छे नृपोत्तम।
जलानलेन्दुक्रूरेश याम्यवातेन्द्रदिक्क्रमात्॥
संख्यासमानैः प्रहरैर्विष्टि दुष्टामुखे यतः।
कराली मन्दिनी रौद्री सुमुखी दुर्मुखी तथा॥
त्रिशिवा वैष्णवी हंसी ह्यष्ट चैतास्तु विष्टयः।
धन्या दधिमुखी भद्रा महामारी खरानना॥
कालरात्रिर्महारौद्री विष्टिश्च कुलपुत्रिका।
भैरवी च महाकाली असुराणां चयङ्करी॥
द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
न च व्याधिभयन्तस्य रोगी रोगात् प्रमुच्यते॥
ग्रहाः सर्व्वेऽनुकूलाः स्युर्न च विघ्नादि जायते।
रणे राजकुले द्यूते सर्व्वत्र विजयी भवेत्॥
यश्च पूजयते नित्यं शास्त्रोक्तविधिना नरः।
तस्य सर्व्वार्थसिद्धिस्तु जायते नात्र संशयः॥
एतद्भद्राव्रतं पूर्व्वमेतत्ते कथितं मया।
एवमेषा समुत्पन्ना विष्टिरिष्टविनाशनी।
तस्मात्तरेण कौन्तेय वर्ज्जनीया फलार्थिना॥
येनोपवासविधिना व्रतेन च युधिष्ठिर।
पूजिता तोषमायाति तदेव कथयामि ते॥
यस्मिन् दिने भवेद्भद्रा तस्मिन्नहनि भारत।
उपवासस्य नियमं कुर्य्यान्नारी नरोऽथ वा॥
यदि रात्रौ भवेद्विष्टिरेकभक्तं दिनद्वयं।
कार्य्यस्तेनोपवासः स्यादिति पौराणिकी विधिः॥

प्रहरस्योपरि यदा स्याद्विष्टिः प्रहरत्रयं ।
उपवासस्तथा कार्य्य एकभक्तमतोऽन्यथा ॥
सर्व्वौषधिजलस्नानं सुगन्धामलकैरथ ।
नद्यान्तड़ागेऽथ गृहे स्नानं सर्व्वत्र शस्यते ॥
देवान् पितृन् समभ्यर्च्य ततो दर्भमयीं शुभां ।
विष्टिं कृत्वा पुष्पधूपैर्नैवेद्यादिभिरर्चयेत् ॥
होमन्तु नामभिर्विष्टेः शतमष्टोत्तरं नृप ।
भुञ्जीत दत्त्वा विप्राय तिलान् पायसमेव च ।
सतैलं कृशरं भुक्त्वा पश्चाद्भुञ्जीत कामतः ॥
छायासूर्य्यसुते देवि विष्टिरिष्टार्थनाशनि ।
पूजितासि यथाशक्त्या भद्रे भद्रप्रदा भव ॥
उपोष्य विधिनानेन दश सप्त यथाक्रमात् ।
उद्यापनं ततः कुर्य्यात् पूर्व्ववत् पूज्य भामिनीं ॥
स्थापयित्वायसे पीठे कृशरान्नं निवेद्य च ।
परिधाय कृष्णवस्त्रयुगं मन्त्रेण तं पुनः ॥
ब्राह्मणाय पुनर्द्द्याल्लौहतैलांस्तिलांस्तथा ।
कृष्णां सवत्सां गामेकान्तथैव कृष्णकम्बलां ।
दक्षिणाञ्च यथा शक्त्या दत्त्वा भद्रां विसर्जयेत् ।
य एवं कुरुते पार्थ सम्यग्भद्राव्रतं नरः ।
विघ्नं न जायते तस्य कार्य्यारम्भे कथञ्चन ॥
राक्षसा वा पिशाचा वा पूतना शाकिनी ग्रहाः ।
न पीड़यन्ति तं मर्त्त्यं यो भद्राव्रतमाचरेत् ॥
न चैवेष्टवियोगः स्यान्नहानिस्तस्य जायते ।

देहान्ते याति सदनं भास्करस्य न संशयः।

सूर्य्यात्मजातिभयदाभगिनी शनेर्या
मर्त्त्यं भ्रमत्यविरतं करणक्रमेण।
तां कृष्णभासुरमुखीं समुपोष्य विष्टि-
मिष्टार्थसिद्धिमनिशञ्च पुमानुपैति॥

## इति भविष्योत्तरोक्तं विष्टिव्रतं।

———ooo———

कृष्ण उवाच।

तथान्यदपि ते वच्मि विष्टिव्रतमनुत्तमं।
यत्कृत्वा विष्टितो न स्याद्भयङ्कापि युधिष्ठिर॥
सुकरं सुगुणं श्रेष्ठं सर्व्वकामार्थदं नृणां।
परं प्रीतिकरं भानोः सर्व्वविघ्नोपशान्तिदं॥
मार्गशीर्षामले पक्षे चतुर्थ्यामारभेद्बुधः।
संपूज्य ब्राह्मणश्रेष्ठं विष्ण्यादौ भरतर्षभ॥
प्रागुक्तां पूज्य तां देवीं मन्त्रमेनमुदीरयेत्।
भद्रे भद्राय भद्रं हि चरिष्ये व्रतमेव ते॥
निर्विघ्नां कुरु मे देवि कार्य्यसिद्धिञ्च भावय।
सुस्नातः पूज्यतामेवं ब्राह्मणं च स्वशक्तितः।
ततो भुञ्जीत राजेन्द्र यावद्भद्रा न जायते॥
अथ वान्तेऽपि भद्रायाः कामतो वाग्यतः शुचिः।
न किञ्चिद्भक्षयेत्प्राज्ञो यावद्भद्रा प्रवर्त्तते।
अनेन विधिना पार्थ प्रतिभद्रां समाचरेत्।

नरो वा यदि वा नारी सर्व्वकामार्थसिद्धये ॥
ततः संवत्सरे पूर्णे प्रतिमाङ्कारयेद्बुधः।
लौहीं शैलमयीं वापि दारुजां वा स्वशक्तितः॥
शक्त्या चोद्यापनं कृत्वा स्थापयित्वा यथाविधि।
पूजयेद्भक्तिमान्विप्रो मन्त्रैरेभिरुदारधीः॥
पूजितासि यथा पूर्व्वमिन्द्रेण धनदेन च।
विष्णुना शङ्करेणाथ तथाऽद्य पूजयाम्यहं॥
निर्व्विघ्नेनार्थसंसिद्धिर्यथा तेषां कृता त्वया।
तथा ममापि भद्राय भद्रे भद्रप्रदा भव॥
अज्ञानादथवा दर्पात्त्वामुल्लङ्घ्य कृतं हि यत्।
तत्क्षमस्वाशुभे मातर्दीनस्य शरणार्थिनः॥
इति कुर्य्याद्यथाशक्त्या वित्तशाठ्यविवर्ज्जितः।
अशक्तः परकीयां वा पूजयित्वा नराधमः।
अभावे लेखजां कृत्वा विधिं निष्पादयेद्बुधः॥
एवं हि कुरुते यस्तु भक्त्या भद्राव्रतं नरः।
भद्रायामपि कार्य्याणि तस्य सिद्ध्यन्त्यसंशयः॥
इह लोके सुखं भुक्त्वा पुत्रैश्वर्य्यसमन्वितः।
अविघ्नेन नरव्याघ्र दीर्घायुर्व्याधिवर्ज्जितः।
ततोऽन्ते स्वर्गतिं प्राप्य मोदते सुरराडिव॥
एतत्पुरा महेन्द्रेण चीर्णं वृत्रजिघांसया।
विमानार्थं कुवेरेण चीर्णं यक्षिद्राविणा॥
शम्भुना त्रिपुरान्ताय पाञ्चजन्याय विष्णुना।
भद्रं हि भद्रं भवतीह सदैव पुंसां

ये भक्तिपूर्व्वकमिदं व्रतमादरेण।
भद्राभिधानमभिधाय मनोनुगं ये
कुर्व्वन्तु तेह्यखिलमेव नृपाप्नुवन्ति।

इति भविष्योत्तरोक्तं द्वितीयभद्राव्रतं।

इति श्रीमहाराजाधिराजश्रीमहादेवस्य समस्तकरणा-
धीश्वरसकलविद्याविशारदश्रीहेमाद्रि
विरचिते चतुर्व्वर्गचिन्तामणौ
व्रतखण्डे करणव्रतानि।

---

## अथ षड्‌विंशोऽध्यायः।

——oo@oo——

## अथ सङ्क्रान्तिव्रतानि।

——o——

परो रजोभिश्चरितैर्य्यदीयै-
रानन्दितो विस्मयमेति लोकः।
स एष हेमाद्रिसुधीरिदानीं
प्रक्रान्ति सङ्क्रान्तिगतव्रतौघं॥

वज्र उवाच।

भगवन् कर्म्मणा केन तिर्य्यग्योनौ न जायते।
म्लेच्छदेशे च पुरुषस्तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः॥

मार्कण्डेय उवाच।

मेषसंक्रमने भानोः सोपवासो नरोत्तम(१)।
पूजयेद्भार्गवं देवं रामं भक्त्या यथाविधि॥
वृषसंक्रमणे प्राप्ते तथा कृष्णञ्च पूजयेत्।
तथा मिथुनसंक्रान्तौ पूजयेद्भोगशायिनं॥
तथा कुलीरसंक्रान्तौ वराहमपराजितं।
नरसिंहं तथा देवं सिंहसंक्रमणे विभुं॥
कन्यासंक्रमणे देवं तथाश्वशिरसं यजेत्।

---

(१) सोमवारे नरोत्तम इति पुस्तकान्तरे पाठः।

तथा मकरसंक्रान्तौ रामं दशरथात्मजं ॥
कुम्भसंक्रमणे राजन् रामं यादवनन्दनं।
मीनसंक्रमणे मत्स्यं वासुदेवन्तु पूजयेत् ॥
पटे वा यदि वार्च्चायां गन्धमाल्यान्नसम्पदा।
प्रादुर्भावस्य नाम्ना च होमं कुर्वीत पार्थिव।
व्रतान्ते जलधेनुन्तु छत्रोपानत्समन्वितां ॥
वस्त्रयुग्मयुतां दद्यात् प्रतिमासं सकाञ्चनां।
रात्रौ तु दीपमालाभिर्द्देवदेवं प्रपूजयेत् ॥
कृत्वा व्रतं वत्सरमेतदिष्टं
म्लेच्छेषु तिर्य्यक्षु न चापि जन्म।
प्राप्नोत्यवाप्नोति चिरञ्च नाकं
कामंस्तथाप्नोति मनोऽभिरामं ॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं सुजन्मावाप्तिव्रतं।

---

ब्रह्मोवाच।

कुङ्कुमं रोचना मांसी मुराचन्दनबालकं।
हरिद्रासह संयुक्तं मेषे स्नानं ग्रहापहं ॥
रोचना गोरोचना। ग्रहापहं ग्रहदोषापहं।
प्रियङ्गुः पद्मकं कुष्ठं त्वचं मांसी निशाकरं ॥
रोचनागरुसंयुक्तं वृषस्नानं महाफलं ॥
प्रियङ्गु फलिनी। निशाकरं कर्पूरं ॥
उशीरं पद्मकं कुष्ठं रोचना ग्रन्थिपर्णकं।

कुङ्कुमागुरुसंयुक्तं मिथुने राज्यदं मतं ॥

उशीरं बालकं ।

रोचना बालकं मुस्तमुराशैलेयचन्दनं ।
सिंहस्नानं सुराध्यच्च राज्यायुःपुत्रवर्द्धनं ॥
हरिद्रा बालकं कुष्ठं मांसी चन्दनरोचना ।
कन्यास्नानं प्रकर्त्तव्यं सन्तानरतिवर्द्धनं ॥
रोचनारङ्गकुष्ठञ्च चन्दनोशीरपद्मकं ।
हरिद्राबालसंयुक्तं तुले दुष्कृतनाशनं ॥
प्रियङ्गुस्फटिकं मांसी पद्मकं रोचनागुरुः ।
मुस्ताकुष्ठसमोपेतं वृश्चिके राज्यदं मतं ॥
प्रवालं मौक्तिकं कुष्ठं रोचनाघनपद्मकं ।
मुरामांसी समोपेतं धनुःसंक्रमणे शुभं ॥

घनो मुस्ता ।

रोचनातावकं कुष्ठं चन्दनागुरुकुङ्कुमं ।
उशीरं पद्मकैर्युक्तं मकरे सर्व्वसौख्यदं ॥
ग्रन्थिपर्णं त्वचा वाला केसरं जातिपत्रकाः ॥
रोचनासह संयुक्तं कुम्भे पुत्रासुराज्यदं ।

केसरी नागकेसरः ।

कर्पूरफलमूलैर्वा मांसीचन्दनपद्मकं ।
बालकं सघनोशीरं त्वचा मीने शुभावहं ॥
द्वादशैते समाख्याताः स्नाताः सुरवरार्च्चिताः ।
अलक्ष्मीनाशना धन्या महापातकनाशनाः ॥
देवदारुमहाकुष्ठं चन्द्रशैलेयकुन्दरः ॥

पद्मकं पत्रकम्बोलं सुरसा गुग्गुलुस्तथा।
महिषाख्यमथान्यन्तु द्रव्याण्येकादशेति वै॥

चन्द्रं कर्पूरं। सुरसा तुलसी।

नक्षत्रे सोमदैवत्ये योजनीया नियन्त्रितः॥

सोमदैवत्ये मृगशिरसि।

विजयाविद्यया जप्तं कृतमङ्गलयोजितं।
विजयं नाम विख्यातं सर्व्वोपद्रवनाशनं॥
अलक्ष्मीशमनं धन्यं ग्रहकृत्यदुरापहं।
बालानां रक्षणार्थाय राजकार्येण (१) सिद्धिदं॥
एतत्तु कथितं शक्र समासेन मया तव।
स्नानं संक्रान्तिधूपस्तु यथावत्परिपृच्छतः॥

## इति देवीपुराणोक्तानि संक्रान्तिव्रतानि।

———000———

नन्दिकेश्वर उवाच।

अथातः संप्रवक्ष्यामि धान्यव्रतमनुत्तमं।
यत् कृत्वा हि नरो राजन् सर्व्वकामानवाप्नुयात्॥
अयने विषुवे चैव स्नानं कृत्वा विचक्षणः।
व्रतस्य नियमं कुर्य्याद्ध्यात्वा देवं दिवाकरं॥
करिष्यामि व्रतं देव त्वद्भक्तस्त्वत्परायणः।
तदविघ्नेन मे जातु तव देव प्रसादतः॥

(१) परकार्य्येषु इति वा पाठः।

इत्युच्चार्य्य लिखेत्पद्मं कुङ्कुमेनाष्टपत्रकं ।
भास्करं पूर्व्वपत्रेषु आग्नेये च तथा रविं ॥
विवस्वन्तं तथा याम्ये नैर्ऋत्ये पूषणं तथा ।
आदित्यं वारुणे पत्रे वायव्ये तपनन्तथा ॥
मार्त्तण्डमिति कौवेरे ऐशाने भानुमेव च ।
एवञ्च क्रमशोऽभ्यर्च्य विश्वात्मा मध्यदेशतः ॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा सर्व्वन्दद्यात्समन्त्रकं ।
कालात्मा सर्व्वभूतात्मा वेदात्मा विश्वतोमुखः ।
व्याधिमृत्युजराशोकसंसारभयनाशनः ॥

इत्यर्घमन्त्रः ।

पुष्पधूपैः समभ्यर्च्य शिरसा प्रणिपत्य च ।
रविन्ध्यात्वा ततो दद्याद्धान्यप्रस्थं द्विजातये ॥
प्रतिमासं पुनस्तद्वत् पूजयेदेवः सहस्रपात् ।
एवं सदा प्रदातव्यं धान्यप्रस्थं द्विजन्मने ॥
एवं संवत्सरे पूर्णे कुर्य्यादुद्यापनक्रियां ।
अर्घपात्रं हि सौवर्णं कारयेन्मण्डलं शुभं ॥
द्विभुजं पूजयेद्भानुं रक्तवस्त्रयुगान्वितं ।
धान्यद्रोणेन सहितं तदर्द्धेन स्वशक्तितः ॥
स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां कांस्यदोहां पयस्विनीं ।
रविरूपं द्विजं ध्यात्वा तस्मै वेदविदे तथा ॥
विद्यापात्राय विप्राय तत्सर्व्वं विनिवेदयेत् ।
अग्निष्टोमसहस्राणां फलमाप्नोति मानवः ॥

सप्तजन्मसहस्राणि धनधान्यसमन्वितः।
निर्व्याधिर्निरुजो धीमान् रूपवानपि जायते ॥

इति स्कन्दपुराणोक्तं धान्यसंक्रान्तिव्रतं।

———000(D)000———

नन्दिकेश्वर उवाच।

अतःपरं प्रवक्ष्यामि लवणसंक्रान्तिमुत्तमं।
संक्रान्तिवासरं प्राप्य स्नानं कृत्वा शुभैर्जलैः ॥
वस्त्रालङ्कारसंवीते भक्तिभावसमन्विते।
कुङ्कुमेन लिखेत्पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकं ॥
भास्करं पूजयेद्भक्त्या यथोक्तक्रमयोगतः।
तदग्रे लवणं पात्रं सगुडं स्थापयेद्बुधः ॥
पुष्पैर्धूपैः समभ्यर्च्य नैवेद्यैर्विविधैस्तथा।
प्रदक्षिणं ततः कृत्वा उपविश्य यथाविधि ॥
ध्यायेद्विजन्मने रूपं भास्करेण समन्वितं।
पूजितस्तु यथा शक्त्या प्रसीद मम भास्कर ॥
लवणं सगुडं पात्रं ब्राह्मणाय निवेदयेत्।
एवं संवत्सरे पूर्णे भानुं कृत्वा हिरण्मयं ॥
रक्तवस्त्रयुगच्छन्नं रक्तचन्दनचर्चितं।
कमलं लवणं पात्रं धेन्वा सार्द्धं द्विजातये ॥
प्रदद्याद्भानुमुद्दिश्य विश्वात्मा प्रीयतामिति।
एवं कृते तु यत्पुण्यं प्राप्यते भुवि मानवैः ॥
न केन गदितुं शक्यं वर्षकोटिशतैरपि।

लवणाचलदानस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥
सर्व्वकामसमृद्धात्मा विमानवरमध्यगः ।
सूर्य्यलोके वसेत् कल्पं पूज्यमानः सुरासुरैः ।

इति स्कन्दपुराणोक्तं लवणसंक्रान्तिव्रतं ।

---

नन्दिकेश्वर उवाच ।

वक्ष्येऽहं भोगसंक्रान्तिं सर्व्वलोकविवर्द्धनीं ।
संक्रान्तिवासरं प्राप्य योषितस्तु समाह्वयेत् ॥
कुङ्कुमं कज्जलञ्चैव सिन्दूरं कुसुमानि च ।
सुगन्धीनि च सर्व्वाणि ताम्बूलं शशिसंयुतं ॥
शशिसंयुतं कर्पूरसंयुतं ।
तण्डुलान् फलसंयुक्तान् प्रदद्याच्च विचक्षणः ।
अन्यान्यपि हि वस्तूनि भोगसाधनकानि च ॥
दद्यात् प्रहृष्टमनसा मिथुनेभ्यः प्रयत्नतः ।
भोजयित्वा यथा शक्त्या वस्त्रयुग्मं प्रदापयेत् ॥
एवं संवत्सरस्यान्ते रविं सम्पूज्य पूर्व्ववत् ।
सुवर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां सर्व्वोपस्करसंयुतां ।
धेनुं सदक्षिणां दद्यात्सपत्नीकद्विजातये ॥
एवं यः कुरुते भक्त्या भोगसंक्रान्तिमादरात् ।
स्यात् सुखी सर्व्वमर्त्त्येषु भोगी जन्मनि जन्मनि ॥

इति स्कन्धपुराणोक्तं भोगसङ्क्रान्तिव्रतं ।

---

नन्दिकेश्वर उवाच।

अथान्यदपि ते वच्मि रूपसंक्रान्तिमुत्तमां।
संक्रान्तिवासरं स्नानं तैलं कृत्वा विचक्षणः॥
हैमपात्रे घृतं कृत्वा हिरण्येन समन्वितं।
सुरूपं वीक्ष्य तत्पात्रं ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥
एकभक्तं ततः कृत्वा भक्त्या चैव समन्वितं।
व्रतान्ते काञ्चनं दद्याद्घृतधेनुसमन्वितं॥
अश्वमेधसहस्राणां फलमाप्नोति मानवः।
रूपयौवनसम्पत्त्या आयुरारोग्यसम्पदा॥
लक्ष्मीश्च विपुलान् भोगान् लभन्तीह न संशयः।
सर्व्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोकञ्च गच्छति॥

## इति स्कन्दपुराणोक्तं रूपसंक्रान्तिव्रतं।

———080———

नन्दिकेश्वर उवाच।

अथान्यां संप्रवक्ष्यामि तेजःसंक्रान्तिमुत्तमां।
संक्रान्ति वासरं प्राप्य स्नानं कृत्वा विचक्षणः॥
शालितण्डुलसंयुक्तं कारणं कारयेच्छुभं।
तन्मध्ये दीपकं स्थाप्य प्रज्वलन्तं स्वतेजसा।
तन्मुखे मोदकं स्थाप्य ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥
अर्घ्यञ्च पूर्व्ववत्कार्य्यमेकभक्तन्तु पूर्व्ववत्।
संवत्सरे तु संपूर्णे कुर्य्यादुद्यापन बुधः
शोभनं दीपकं कार्य्यं सुवर्णेन तु नारद।

ताम्रेण करकं कार्य्यं तन्मध्ये दीपकं न्यसेत् ॥
कपिला सह दातव्या करकेण द्विजातये ।
सुवर्णकोटिदानस्य तत्फलं प्राप्यतेऽनघ ॥
तेजसादित्यसङ्काशो वायोर्बलमवाप्नुयात् ॥
संक्रान्तिव्रतमाहात्म्याल्लभते नात्र संशयः ॥

## इति स्कन्दपुराणोक्तं तेजःसंक्रान्तिव्रतं ।

———000———

नन्दिकेश्वर उवाच ।

अथान्यां संप्रवक्ष्यामि सौभाग्यसंक्रान्तिमुत्तमां ।
शृणु नारद यत्नेन धनैश्वर्य्यप्रदायिनीं ॥
अयने विषुवे युक्ते व्यतीपातेन भानुना ।
संक्रान्तिदिवसे कुर्य्यादेकभक्तं विमत्सरः ॥
पूर्व्ववद्भानुमभ्यर्च्य तथा चैव सुवासिने ।
सौभाग्याष्टकसंयुक्तं वस्त्रयुग्मं सयोषिते ॥
विप्राय वेदविदुषे भक्त्या तत् प्रतिपादयेत् ।
एवं संवत्सरे पूर्णे कृत्वा ब्राह्मणभोजनं ।
पर्व्वतं लवणं कृत्वा यथा विभवसारतः ॥
काञ्चनं कमलं कृत्वा भास्करञ्चैव कारयेत् ।
गन्धपुष्पादिना पूज्य विप्राय प्रतिपादयेत् ॥
पुष्करे च कुरुक्षेत्रे गोसहस्रफलं लभेत् ।
सा प्रिया मर्त्यलोकेषु या करोति व्रतं त्विदं ॥

शङ्करस्य यथा गौरी विष्णोर्लक्ष्मीर्यथा दिवि।
मर्त्त्यलोके तथा सापि प्रियेण सह मोदते॥

इति स्कन्दपुराणोक्तं सौभाग्यसंक्रान्तिव्रतं।

———000———

स्कन्द उवाच।

अथान्यामपि ते वच्मि फलसंक्रान्तिमुत्तमां।
संक्रान्तिवासरं प्राप्य स्नानं कृत्वा तु पूर्व्ववत्॥
संपूज्य पूर्व्ववद्भानुं पुष्पधूपादिना तथा।
शर्करासहितं पात्रं फलाष्टकसमन्वितं॥
संक्रान्तिवासरं प्राप्य ब्राह्मणाय निवेदयेत्।
तदन्ते तु रविं कुर्य्यात्सुवर्णेन च नारद॥
कुम्भस्योपरि संस्थाप्य गन्धपुष्पैः प्रपूजयेत्।
फलाष्टकं ततो दद्याद्भक्तभोज्यसमन्वितं॥

इति स्कन्दपुराणोक्तफलसंक्रान्तिव्रतं।

———000———

नन्दिकेश्वर उवाच।

धनसंक्रान्तिमाहात्म्यं शृणु स्कन्द विधानतः।
यत्कृत्वा सर्व्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥
संक्रान्तिवासरं प्राप्य शुचिर्भूत्वा समाहितः।
कलशं निर्व्रणं गृह्य वारिपूर्णं निधापयेत्॥
सुवर्णयुक्तन्तं कृत्वा प्रतिमासन्तु दापयेत्।
विधिनानेन वर्षान्ते प्रीयतां मे दिवाकरः॥

पूजाविधानं सर्व्वञ्च धान्यसंक्रान्तिवद्भवेत् ॥
उद्यापनञ्च वक्ष्यामि संपूर्णव्रतमुत्तमं ।
सौवर्णं कमलं कृत्वा सूर्य्यञ्चोपरि विन्यसेत् ॥
हस्ते सुवर्णघटितं पङ्कजं वै निवेदयेत् ।
गोदानं तत्र दातव्यं एवं संपूर्णभावने ॥
एवं कृते तु यत्पुण्यं फलं ख्यातुं न चोत्सहे ।
जन्मनां शतसाहस्रं धनयुक्तो भवेन्नरः ॥
आयुरारोग्यसम्पन्नः सूर्य्यलोके महीयते ॥

## इति स्कन्दपुराणोक्तं धनसंक्रान्तिव्रतं।

———000———

नन्दिकेश्वर उवाच ।

अथान्यां संप्रवक्ष्यामि आयुःसंक्रान्तिमुत्तमां ।
शृणु वत्स विधानेन यथा पुण्यं प्रवर्द्धते ॥
संक्रान्तिदिवसे पूज्य पूर्व्ववच्च दिबाकरं ।
कांस्यं क्षीरघृतं दद्यात्सहिरण्यं स्वशक्तितः ॥
मन्त्र एव पृथग्दाने पूजा सैव प्रकीर्त्तिता ।
सक्षीरं सुरभीजातं पीयूषसमरूपधृक् ॥
आयुरारोग्यमैश्वर्य्यं मनो देहि द्विजार्पितं ।
अनेन विधिना सम्यक् सर्व्वं दद्यादतन्द्रितः ॥
उद्यापनादिकं सर्व्वं धान्यसङ्क्रान्तिवद्भवेत् ।
एवं कृते तु यत्पुण्यं शक्यं नेदं मयोदितं ॥
निर्व्याधिरपि दीर्घायुस्तेजस्वी सर्व्वजन्मसु ।

अपमृत्योर्भयं नास्ति जीवेच्च शरदः शतं॥

इति स्कन्दपुराणोक्तमायुःसंक्रान्तिव्रतं।

———000@000———

ब्रह्मोवाच।

आज्ञासङ्क्रान्तिमाहात्म्यं शृणु स्कन्द विधानतः।
यां कृत्वा सर्व्वलोकेषु आज्ञावान् जायते नरः।
सङ्क्रान्तिदिवसे पुण्ये प्रारभेन्नियमं व्रते।
पद्ममष्टदलं कृत्वा कुङ्कुमेन तु भास्करं॥
पूजयेन्मन्त्रमुच्चार्य्य विधिवद्गुरुसन्निधौ।
आज्ञा तेजस्करी पृष्ठे प्रभादीप्तियशस्करी॥
आज्ञां सर्व्वत्र मां देव मम देहि नमोऽस्तु ते।
पूज्यैवं कुङ्कुमेनाथ दद्याद्विप्राय भोजनं।
उद्यापने तु चण्डांशुं सौवर्णं सरथं तथा॥
एकचक्रस्य सप्ताश्वसहितेन समन्वितं।
यः कुर्य्याद्विधिनानेन आज्ञासङ्क्रान्तिमुत्तमां॥
अथाज्ञाऽस्खलिता लोके सूर्य्यतस्तस्य जायते।
गोमन्त्रमित्रसुतेष्टे आज्ञा सर्व्वत्र जायते।
रिपवः सङ्क्षयं यान्ति सुखं प्राप्नोत्यनुत्तमं॥

इति स्कन्दपुराणोक्तमाज्ञासंक्रान्ति व्रतं।

———000———

नन्दिकेश्वर उवाच।

कीर्त्तिसङ्क्रान्तिमाहात्म्यं शृणु स्कन्द विधानतः।

सङ्क्रान्तिवासरं प्राप्य रविबिम्बं लिखेद्भुवि ॥
तस्य मध्ये स्थितं देवं पूजयेत्सर्व्वमन्त्रतः ।
यथाविभवसारेण ततो विप्राय दक्षिणां ॥
प्रतिमासं तु वै श्वेतं वस्त्रयुग्मं प्रदापयेत् ॥
उद्यापने तु रौप्यञ्च सूर्य्यमन्त्रं प्रदापयेत् ।
श्वेतवस्त्रयुगच्छन्नं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥
एवं कृते पराकीर्त्तिर्जायते वापि वह्निज ।
फलं न शक्यते वक्तुङ्गिष्पतेरपि जिह्वया ॥
विमला कीर्त्ती राज्यञ्च जायते नात्र संशय: ।
आयुरारोग्यसम्पन्नो जीवेद्वर्षशतं नरः ॥

## इति स्कन्दपुराणोक्तं कीर्त्तिसंक्रान्तिव्रतं ।

———000@000———

नन्दिकेश्वर उवाच ।

वक्ष्याम्यपापसङ्क्रान्तिं शृणु स्कन्द विधानतः ।
संक्रान्त्यां नियतो भूत्वा तिलैः श्वेतैः समन्वितैः ॥
करकं वर्द्धमानञ्च प्रतिमासं निवेदयेत् ।

वर्द्धमान इति शरावः

मन्त्रेणानेन तु स्नायाद्भक्तिभावसमन्वितः ॥
तिलो माम्पातु पापेभ्यस्तव देव प्रसादतः ।
त्वञ्च मां रक्ष देवेश वाङ्मनःकायकल्मषात् ।
उद्यापने च देवस्य सौवर्णमाषकेण तु ।
द्विभुजा प्रतिमा कार्य्या रजतेनाथ कारयेत् ॥

तिलधेनुः प्रदातव्या व्रतेऽस्मिन्नात्र संशयः।
पूर्व्वं पापप्रणाशाय आयुरारोग्यहेतवे॥
एतत्सर्व्वं पुरा प्रोक्तं ब्रह्मणा विष्णवे तथा।
विष्णुरिन्द्राय जगदे तथा प्रोवाच शम्भवे॥
शम्भुश्चैव ममाचष्टे मया प्रोक्तं प्रभो तव।
सर्व्वसङ्क्रान्ति दिवसे प्रारभेद्व्रतमुत्तमं।
दक्षिणोत्तरसङ्क्रान्तौ सर्व्वास्विति च केन च॥
अध्रुवत्वाच्छरीरस्य यौगपद्यात् प्रशस्यते।
न चात्र विधिलोपः स्यात्सर्व्वत्रैकन्तु दैवतं॥
नानादेवव्रतानान्तु नैककालः प्रशस्यते॥

## इति स्कन्दपुराणोक्तमपापसंक्रान्तिव्रतं।

———oo@oo———

नन्दिकेश्वर उवाच।

अथान्यां संप्रवक्ष्यामि ताम्बूलाख्यामनुत्तमां।
विधानं पूर्व्ववत्कुर्य्याद्दान्यसङ्क्रान्तिवच्च तत्॥
ताम्बूलचन्दनाद्यञ्च प्रगृह्यात्रां द्विजोत्तमात्।
यावत्संवत्सरं पूर्णं रात्रौ रात्रौ ततः परं॥
याम्बूलं भक्षयेद्विप्रान् कारयच्चैव नान्तरं।
वत्सरान्ते तु कमलं कृत्वा चैव तु काञ्चनं॥
पत्रकोशञ्च कुर्व्वीत तथा पूगीफलालयं।
चूर्णभाण्डं प्रकुर्व्वीत पूगप्रस्फोटनं तथा।
सुखवासादिचूर्णानां भाण्डानि च द्विजर्षभ॥

द्विजदाम्पत्यमावाह्य सर्व्वोपस्करसंयुतैः।
द्रव्यैश्च पूजयेद्भक्त्या भोजयेत् षड्रसैर्द्विजान्॥
उपकल्पितञ्च यत्किञ्चिद्ब्राह्मणाय निवेदयेत्।
एवं करोति या नारी ताम्बूलाख्यं व्रतोत्तमं॥
सर्व्वकामानवाप्नोति मर्त्त्ये जातिकुलोद्भवे।
सौभाग्यन्तेज अतुलं प्राप्नोति द्विजसत्तम॥
भर्त्ता पुत्रैश्च पौत्रैश्च मोदते च गृहे गृहे।
मृता कालान्तरे पश्चात् सूर्य्यलोके महीयते॥
पतिना देववद्विप्र यावदाहूतसंप्लवं।
शृणोति युवती काचित् सापि तत्फलमश्नुते।
मुच्यते सर्व्वपापेभ्यः स्वर्गलोके महीयते॥

इति स्कन्दपुराणोक्तं ताम्बूलसङ्क्रान्तिव्रतं।

—o—

नन्दिकेश्वर उवाच।

अतः परं प्रवक्ष्यामि सङ्क्रान्तिञ्च मनोरथां।
गुड़ेन पूर्णकुम्भञ्च सवस्त्रञ्च स्वशक्तितः।
सङ्क्रान्तिवासरे दद्याद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने॥
एवं संवत्सरे पूर्णे स्वशक्त्योद्यापनं शुभं।
गुड़ेन पर्व्वतं कार्य्यं वस्त्ररत्नैश्च भूषितं॥
अयने चोत्तरे दद्याद्वित्तशाठ्यं न कारयेत्।
यं यं प्रार्थयते कामं तं तं प्राप्नोति पुष्कलं॥
सर्व्वपापविनिर्मुक्तः सूर्य्यलोके महीयते।

इति स्कन्द पुराणोक्तं मनोरथसंक्रान्तिव्रतं।

नन्दिकेश्वर उवाच ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि विशोकसङ्क्रान्तिमुत्तमां ।
अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाती भवेद्यदि ॥
एकभक्तं नरः कुर्य्यात्तिलैः स्नानन्तु कारयेत् ।
काञ्चनं भास्करं कृत्वा यथा विभवशक्तितः ॥
स्नापयेत्पञ्चगव्येन गन्धपुष्पैः सुपूजयेत् ।
वेष्टयेद्रक्तवस्त्राभ्यां ताम्रपात्रे निधापयेत् ॥
भास्कराय नमः पादौ रवे जङ्घेति वै नमः ।
आदित्याय नमो जानु ऊरू चैव दिवाकरः ॥
अर्य्यम्ने तु कटिं पूज्य भानुश्चैवोदरे तथा ।
नमः पूष्णे तु बाहुभ्यां अर्य्यम्ने तु पुनस्तनौ ॥
विवस्वते नमः कण्ठे सहस्रांशो मुखे स्मृतं ।
प्रभाकर नमो नेत्रे तेजोराशे नमः शिरः ॥
वरुणाय नमः केशान् पादादौ पूजयेद्रविं ।
अर्घ्यादि पूर्व्ववत्कार्य्यं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥
एवं संवत्सरे पूर्णे काञ्चनेन दिवाकरं ।
सपद्महस्तं सम्पूज्य यथाविभवशक्तितः ॥
कारयेत्पूजयेद्भक्त्या रक्तवस्त्रैश्च वेष्टयेत् ।
ततो होमं प्रकुर्वीत सूर्य्यमन्त्रैश्च नारद (१) ॥
द्वादश कपिला दद्याद्वस्त्रालङ्कारसंयुताः ।
अशक्तः कपिलामेकां वित्तशाठ्यविवर्ज्जितः ।

---

(१) सर्व्वमन्त्रैश्च नारद इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

ग्रहणे च कुरुक्षेत्रे सत्पात्रे च प्रदीयते ॥
कोटि कोटिसुवर्णस्य दत्तस्य लभते फलं ।
आयुरारोग्यमैश्वर्य्यं भार्य्यापुत्रसमन्वितं ॥

इति स्कन्दपुराणोक्तं विशोकसङ्क्रान्तिव्रतं ।

——oo——

इति श्रीमहाराजाधिराजश्रीमहादेवस्य समस्तकरणाधीश्वर-
सकलविद्याविशारदश्रीहेमाद्रिविरचिते
चतुर्व्वर्गचिन्तामणौ व्रतखण्डे
सङ्क्रान्तिव्रतानि ।

---

## अथ सप्तविंशोऽध्यायः ।

———000———

### अथ मासव्रतानि ।

येन त्रिलोकी धरणी कृतेयं
कर्पूरतुल्यप्रतिमैर्यशोभिः ।
हेमाद्रिसूरिः सुमहाप्रभावं
मासव्रतं व्रातमिहब्रवीति ॥

वज्र उवाच ।

भगवन् कर्मणा केन रूपवान् जायते नरः ।
एतन्मे संशयं छिन्धि त्वं हि सर्व्वविदुच्यते ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

फाल्गुन्यां समतीतायां प्रतिपत्प्रभृति क्रमात् ।
यावच्चैत्री महाराज तावत्स्नातो दिने दिने ॥
वह्निः संपूजयेद्देवं केशवं भोगशायिनं ।
एकभक्ताशनो नित्यमधःशायी तथा भवेत् ॥
त्रिरात्रोपोषितः पूजाञ्चैत्र्यां कुर्य्यात्तथैव च ।
स्वशक्त्या रजतन्दद्याद्वस्त्रयुग्मं तथैव च ॥

रूपार्थिनो मासमिदं मयोक्तं
व्रतोत्तमं नित्यमदीनसत्त्वं
कृत्वा तु नाकं मनुजस्त्ववाप
मानुष्यमासाद्य च रूपवान् स्यात् ॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं रूपावाप्तिव्रतं ।

ब्रह्मोवाच ।

धर्मराज निबोधेदं दमनादिमहोत्सवं ।
प्रवृत्तवरनारीकं पञ्चमोच्चारसुन्दरं ॥
संयुतो नन्दनवने आर्य्यया सह भार्य्यया ।
विस्मयोत्फुल्लनयनो बभ्रामोन्मत्तवच्छिवः ॥
स ददर्श वने फुल्ले विद्याधरगणान् बहून् ।
वसन्तर्त्तौ नर्त्तमानान् सुरासुरगणार्च्चितान् ॥
सन्तानपारिजाताभ्यां बद्धा वै माधवीलतां ।
कदाचिद्दोलनव्यग्राः समालिङ्ग्य घनस्तनीं ॥
गीतमान्दोलकारूढ़ा अभासन् परमस्त्रियः ।
येनैवोत्पाटयन्ति स्म स्वनाथमपिमन्मथं ॥
तद्दृष्ट्वा विस्मयाविष्टा भवानी प्राह शङ्करं ।
कौतुकं मे समुत्पन्नं पन्नगाभरण प्रभो ॥
आन्दोलकं मम कृते कारयस्व स्वलङ्कृतं ।
यथा समन्दोलयेऽहं यथा चैत्रे त्रिलोचन ॥
तद्गौरीवचनं चारु श्रुत्वाऽसौ वृषभध्वजः ।
आन्दोलङ्कारयामास समाहूय महासुरं ॥
स्तम्भद्वयङ्कारयित्वा इष्टकाष्टमयं दृढ़ं ।
सत्यञ्चैवोपरितनं श्रेष्ठं काष्ठमकल्पयत् ॥
वासुकिं दण्डिकास्थाने बद्धानेन सुसंहृतं ॥
तत्पुरा सञ्चयं पीठं कृतवान्मणिमण्डितं ॥
भूरिकार्पासकैश्चैव: सहस्त्रैर्वेष्टितेन वै ।
स्रग्दामालम्बितकरं मणिमौक्तिकशेखरं ॥

चेरयित्वा विचित्रान्तां दोलां वैजालिनीत्वरां।
संसिद्धां सिद्धगुरवे गौरवेण न्यवेदयत्॥
तत्राकूढ़स्तु भगवान् सोमः सोमविभूषणः।
मण्डनान्दोलयामास पार्श्वस्थैः पार्षदैः सह॥
वामपार्श्वे तु विजया दक्षिणे तु जया भवेत्॥
चामराक्रान्तवाह्वंगसमाश्लिष्टकुचद्वयं।
आन्दोलयन्त्या पार्व्वत्या तद्गीतं गद्गदाक्षरं॥
येन देवासुरस्त्रीणामासीदानन्दनिर्भरः।
जगुर्गन्धर्व्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥
उत्तालवाद्यानि तथा वादयन्ति स्म चारणाः।
चेलुः कुलाचलाः सर्व्वे चुक्षुभुः सप्त सागराः॥
ववुर्व्वाताः सनिर्घाता देवे दोलासमन्विते।
आलोक्य व्याकुलं लोकं देवाः शक्रपुरोगमाः।
उपेत्य प्रणिपत्योचुः सर्व्वपापहरं परं॥
उपारमस्व भगवन् भवतः क्रीड़यानया।
जगद्व्याघूर्णितं देव विचलज्जलसागरं॥
गीर्व्वाणगीर्भिः संहृष्टः शङ्करो लोकशङ्करः।
समुत्ततार दोलातः प्रहर्षोत्फुल्ललोचनः॥
उवाच वचनं शक्रः सुरसाधस्य पश्यतः।
सानुकम्पं सुललितं विस्फुटार्थपदाक्षरं॥

श्रीमहेन्द्र उवाच।

अद्य प्रभृति ये दोलाक्रीड़ां पुष्करिणीतटे।
वसन्ते कारयिष्यन्ति मण्डिते सिद्धशाङ्करे॥

नेत्रपट्टपटीच्छन्नं पद्मरागविभूषितं ।
छाद्यकैरुपसम्पन्नां विन्यस्तकनकान्दुकां ॥

अन्दुका शृङ्खला ।

विचित्राभरणां भूरिभाभासितदिगन्तरां ।
मालाविद्याधराक्रान्तां प्रान्तारोपितदर्पणां ॥
छत्रचामरसंछन्नां यथाशक्त्यथवा कृतां ।
अग्निकार्य्यं ततः कृत्वा दिक्षु दिक्षु दिशां बलिं ॥
तस्यामारोपयेद्देवमिष्टशिष्टजनावृतं ।
मूलमन्त्रेण देवाणां प्राप्तं दोलाधिरोहणं ॥
पार्श्वस्थो ब्राह्मणो विद्वान् पठेद्वा मन्त्रमुत्तमं ।

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात् ।
संबाहुभ्यां धमति सम्पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥

गम्भीरतूर्य्यनिर्घोषैः कलहानाद्ध्वनिःस्वनैः ॥
स्तुतिमङ्गलशब्दैश्च पुष्पधूपादिवासितं ।
कुङ्कुमक्षोदताम्बूलपुष्पमालाकुलो जनः ॥
तां विहाय जलक्रीडामन्यासां विदधीत च ।
पीतशीतजलाघाततािडतो यज्जनः सुखं ॥
मन्यते नियतं कोऽपि प्रभावोऽयमनङ्गजः ।
एवं येऽनुगमिष्यन्ति नरा दोलामुपागतां ॥
निरुजस्ते भविष्यन्ति सुखिनः शरदः शतं ।
पुत्रपौत्रसमायुक्ता धनधान्यसमायुताः ॥
विक्रत्येह सुखं मर्त्त्ये ततो यास्यन्ति तत्परं ।

मासे वसन्तसमये सुरसत्तमाना-

मान्दोलनं सुरवरानतु कुर्व्वते ये।
ते प्राप्नुवन्ति भुवि जन्मतरोः फलानि
दुःखान्वितः कुलशतान्यपि तारयन्ति॥

इति भविष्योत्तरोक्त आन्दोलनविधिः।

———०———

महाभारते।

चैत्रन्तु नियतोमासमेकभक्तेन यः क्षिपेत्।
सुवर्णमणिमुक्ताढ्यो कुले महति जायते॥

विष्णुधर्म्मे।

चैत्रं विष्णुपरो मासमेकभक्तेन यः क्षिपेत्।
सुवर्णमणिमुक्ताढ्यं गार्हस्थ्यं समवाप्नुयात्॥
अहिंस्रः सर्व्वभूतेषु वासुदेवपरायणः।
नमोऽस्तु वासुदेवायेत्यहन्यष्टशतं जपेत्॥
अतिरात्रस्य यज्ञस्य ततः फलमवाप्नुयात्॥

इति एकभक्तव्रतं।

———000———

अथ वैशाखव्रतानि।

———

श्रीकृष्ण उवाच।

वैशाखे पुष्पलवणं वर्जयित्वा तु गोप्रदः।
विष्णुलोकमवाप्नोति ततो राजा भवेदिह॥

एतत्कान्तिव्रतं नाम कान्तिसौभाग्यदायिनी ॥

विष्णुरत्र देवता।

इति पद्मपुराणोक्तं कान्तिव्रतं।

---

महाभारते।

निरन्तरैकभक्तेन वैशाखं यो जितेन्द्रियः।
नरो वा यदि वा नारी ज्ञातीनां श्रेष्ठतां व्रजेत् ॥

विष्णुधर्म्मे।

यः क्षिपेदेकभक्तेन वैशाखं पूजयेद्धरिं।
नरो वा यदि वा नारी ज्ञातीनां श्रेष्ठतां व्रजेत् ॥
अहिंस्रः सर्व्वभूतेषु वासुदेवपरायणः।
नमोऽस्तु वासुदेवायेत्यहस्राष्टशतं जपेत्।
अतिरात्रस्य यज्ञस्य ततः फलमवाप्नुयात् ॥

इति एकभक्तव्रतं।

---

वज्र उवाच।

भगवन् कर्म्मणा केन बुद्धियुक्तो भवेन्नरः।
एतदेव मनुष्याणां मनुष्यत्वमुपाहृतं ॥

मार्कण्डेय उवाच।

चैत्र्यान्तु समतीतायां यावन्मासं दिने दिने।
पूर्व्ववत् पूजयेद्देवं नृसिंहमपराजितं ॥

पूर्व्ववदिति चतमासोक्तरूपाथासिव्रतवदेकभक्तवह्निःस्नान-भूशय्यादिकं कर्त्तव्यमित्यर्थः।

होमश्च प्रत्यहं कुर्य्यात्तथा सिद्धार्थकैर्नृप।
ब्राह्मणान् भोजयेच्चान्न तथा त्रिमधुरं नृप॥

त्रिमधुरं मधुघृतशर्करा:(१)।

वैशाख्यां कनकन्दद्यात्त्रिरात्रोपोषितो नरः।
ज्ञानावाप्तिप्रदन्त्वेतद्व्रतं बुद्धिविवर्द्धनं॥

कृत्वा व्रतं मासमिदं यथोक्त-
मासाद्य नाकं सुचिरं मनुष्यः।
मानुष्यमासाद्य तु बुद्धियुक्तो
ज्ञानेन युक्तश्च तथा भवेच्च॥

## इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं ज्ञानावाप्तिव्रतं।

---

## अथ ज्यैष्ठव्रतानि।

महाभारते।

ज्यैष्ठामूलन्तु वै मासमेकभक्तन्तु यः क्षिपेत्।
ऐश्वर्य्यमतुलं श्रेष्ठं पुमान् स्त्री वाभिजायते॥

विष्णुधर्म्मे।

कृष्णार्पितमना ज्यैष्ठमेकभक्तेन यः क्षिपेत्।
अहिंस्रः सर्व्वभूतेषु वासुदेवपरायणः॥

---

(१) दुग्ध घृतशर्करा इति पाठान्तरं।

नमोऽस्तु वासुदेवायेत्यहन्याष्टशतं जपेत् ।
अतिरात्रस्य यज्ञस्य समग्रं फलमाप्नुयात् ॥

इति एकभक्तव्रतं ।

———000———

वज्र उवाच ।

श्रीविहीनस्य लोकेऽस्मिन् जीवितस्यापि किं फलं ।
तस्माद्व्रतं समाचक्ष्व येन स्याच्छ्रीयुतो नरः ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

वैशाख्यां समतीतायां प्रतिपत्प्रभृतिक्रमात् ।
पूर्व्ववत् पूजयेद्देवं श्रीसहायं दिने दिने ॥
पूर्व्ववदिति चैत्रादिरूपावाप्तिव्रतवत् ।
पुष्पमूलैः फलैश्चैव जुहुयाद्घृतानि च ।
विल्वांश्च वह्नौ सततं गोरसैर्भोजयेद्द्विजान् ॥
त्रिरात्रोपोषितो ज्येष्ठां कनकं प्रतिपादयेत् ।
वस्त्रयुग्मञ्च राजेन्द्र तेन साफल्यमश्नुते ॥

कृत्वा व्रतं मासमिदं यथोक्त-
मासाद्य मासं सुचिरं मनुष्यः ।
मानुष्यमासाद्य विवृद्धतेजाः
श्रिया युतः स्याज्जगति प्रधानं ॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं श्रीप्राप्तिव्रतं ।

अथाषाढव्रतानि ।

महाभारते।

आषाढ़मेकभक्तेन स्थित्वा मासमतन्द्रितः।
बहुधान्यो बहुधनो बहुपुत्रश्च जायते

विष्णुधर्म्मे।

आषाढ़मेकभक्तेन पूजयेद्विष्णुतत्परः॥

## इति एकभक्तव्रतं।

---oo---

वज्र उवाच।

भगवन् कर्म्मणा केन भोगमाप्नोति मानवः।
किन्तु भोगविहीनस्य कार्य्यमस्ति धनैर्द्विज॥

मार्कण्डेय उवाच।

ज्यैष्ठ्यान्तु समतीतायां प्रतिपत्प्रभृतिक्रमात्।
पूर्व्ववत् पूजयेद्देवं विश्वरूपधरंहरिं॥

अत्रापि पूर्व्ववदिति रूपावाप्तिव्रतवदित्यर्थः।

कृत्वा व्रतान्ते च तथा त्रिरात्रं
दत्त्वा सुयुक्तं शयनं द्विजाय।
स्वर्लोकमासाद्य चिरं नरेन्द्र
मानुष्यमासाद्य च भोगवान् स्यात्॥

## इति विष्णुधर्म्मोक्तं भोगावाप्तिव्रतं।

---ooo---

## अथ श्रावणव्रतानि।

सञ्जय उवाच ।

कदाऽब्रश्रावणी पूज्या क्रियते तु कदा व्रतं ।
कथमेषा क्षतेन्द्राख्या किं फलन्तद्ब्रवीहि मे ॥

विजय उवाच ।

प्राप्ते तु श्रावणे मासि शुक्लपक्षे मनोहरे ।
संस्थाप्य पार्व्वतीं देवीं पूजयेद्भक्तियन्त्रितः ॥
मासं यावन्नियमतः संस्मरन् पार्व्वतीं हृदि ।
श्वेतार्घ्यैः श्वेतकुसुमैः श्वेतचन्दनकेन च ॥
गन्धैर्धूपैश्च नैवेद्यैर्यथाकालोद्भवैः फलैः ।
अर्घ्यं दद्यात् फलेनैव कुसुमाक्षतचन्दनैः ॥
नमोऽर्द्धश्रावणी देवी सर्व्वपापक्षयङ्करी ॥
गृहाणार्घ्यं हि देवेशि शङ्करेण समं मम ॥

अर्घ्यमन्त्रः ।

नमो नमस्ते देवेशि अर्द्धश्रावणि पार्व्वति ।
नमस्तेऽस्तु जगन्मातर्नमस्ते हरवल्लभे ॥
नमो देवि नमस्तुभ्यं कात्यायनि नमोऽस्तु ते ॥
नमः कालि महाकालि शिवे दुर्गे नमोऽस्तु ते ।
नमो रुद्राणि सर्वाणि अपर्णे शङ्करप्रिये(१) ।
सर्व्वभूतहिते देवि त्राहि संसारसागरात् ।

पूजामन्त्रः ।

धूपोऽयं सर्व्वदेवानां आहारो ह्यमृतोपमः ।

---

(१) अवर्णे शङ्करप्रिये इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

धूपं गृहाण देवेशि अर्द्धश्रावणि नमोऽस्तु ते ॥
श्वेतवस्त्रं प्रदातव्यं धौतं वा निर्म्मले शुभे ।
श्रावणान्ते ततः पश्चात्समाप्य नियमं शुचिः ॥
गौरिणीर्भोजयेच्छक्त्या मिष्टान्नेन जये शुभे ।
द्विजांश्च भोजयेत्तत्र वस्त्राणि परिधापयेत् ॥
एवंविधविधानेन कृत्वार्द्धश्रावणीव्रतं ।
न तस्य स्याच्च दारिद्र्यं न चैवेष्टवियोजनं ॥
अष्ट पुत्रांल्लभेन्नारी भर्त्तारञ्च गुणाधिकं ।
सुरूपं गुणिनं कान्तं पण्डितं प्रियवादिनं ॥
एकभक्तेन नक्तेन कुर्य्यादेतद् व्रतं शुभं ।
इदं कृत्वा पुरेन्द्राणीन्द्रं लेभे पतिमुत्तमं ॥
रोहिणी पतिमालेभे चन्द्रं व्रतनिषेवणात् ।
रण्या देवी सुभर्त्तारं आदित्यं प्राप सत्पतिं ॥
इदन्ते कथितं भद्रे अर्द्धश्रावणिकाव्रतं ।
कुरुते या च पूर्णानि व्रतान्यस्या भवन्ति हि ॥
यदा ग्रहकृतैर्दोषैर्यदि देवो न वर्षति ।
कथाश्रवणमात्रेण देवो वर्षति वासवः ॥
दुर्भिक्षे डामरे घोरे सङ्ग्रामे राजविग्रहे ।
कथामेतां निशम्याशु दोषैः सर्वैः प्रमुच्यते ॥

इति ब्रह्माण्डपुराणोक्तमर्द्धश्रावणिकाव्रतं ।

———000———

युधिष्ठिर उवाच ।

स्वभर्त्तरि सम्बन्धे महास्नेहो यथा भवेत्।
कुलस्त्रीणां तथाचक्ष्व व्रतं मम जगद्गुरो॥

कृष्ण उवाच।

यमुनायास्तटे पूर्व्वं मथुरास्ति पुरी शुभा।
तस्यां शत्रुघ्ननामाभूद्राजा राघवनन्दनः॥
तस्य भार्य्या कीर्त्तिमाला नाम्नासीत् प्रथिता भुवि।
कदा प्रणम्य भगवान् वशिष्ठमुनिसत्तमः॥
पृष्टः कथं मुनिश्रेष्ठ सौभाग्यमतुलं लभेत्।
ब्रूहि मे तिलसम्बन्धं कारणं व्रतमुत्तमं॥
एवमुक्तस्तथा ज्ञानी वशिष्ठः कीर्त्तिमालया।
ध्यात्वा मुहूर्त्तमाचख्यौ कोकिलाव्रतमुत्तमं॥

वसिष्ठ उवाच।

आषाढ़पौर्णमास्यान्तु सन्ध्याकाले ह्युपस्थिते।
सङ्कल्पयेन्मासमेकं श्रावणीप्रभृति ह्यहं।
स्नानं करिष्ये नियता ब्रह्मचर्य्ये स्थिता सती।
भोक्ष्यामि नक्तं भूशय्याङ्करिष्ये प्राणिनान्दयां॥
इति सङ्कल्प्य पुरुषो नारी वा ब्राह्मणान्तिके।
प्राप्यानुज्ञान्ततः प्राह्णे सर्व्वसामग्रिसंयुतः।
पुरुषः प्रतिपत्काले दन्तधावनपूर्व्वकं॥
नद्याङ्गत्वाथवा वाप्यां ब्रह्मचर्य्ये स्थिता सती।
तुलसीमृत्तिकां गृह्णन् तड़ागे गिरिनिर्झरे॥
स्नानं कुर्य्याद्व्रती पार्थ सुगन्धामलकैस्तिलैः।

दिनाष्टकं ततः पश्चात् सर्व्वौषध्या पुनः पुनः ॥
यवया पिष्टया चाष्टौ दिनानि पृथगाचरेत् ।
स्नात्वा ध्यात्वा रविं सम्यक्तर्पयित्वा पितॄंस्तथा ।
तर्पयित्वा लिखेत् पिष्टैः कोकिलां पक्षिरूपिणीं ॥
कलकण्ठीं शुभैः पुष्पैः पूजयेच्चम्पकोद्भवैः ।
पात्रैर्वा धूपनैवेद्यैर्दीपालक्तकचन्दनैः ॥
तिलतण्डुलैर्दूर्व्वाग्रैः पूजयेत्तां क्षमापयेत् ।
नित्यं नित्यञ्चरेद्भक्त्या मन्त्रेणानेन पाण्डव ॥
तिलासक्ते हन्तिलास्तौल्यं तिलवर्णे तिलप्रिये ।
सौभाग्यधनपुत्रांश्च देहि मे कोकिले नमः ।
इत्युच्चार्य्य ततः पश्चाद्गृहमभ्येत्य संयतः ॥
कृत्वाहारं स्वपेत्पार्थ यावन्मासं समाप्यते ।
मासान्ते ताम्रपात्रे तु कोकिलां तिलपिष्टजां ॥
रत्ननेत्रां स्वर्णपक्षां ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।
वस्त्ररत्नैर्गुडैर्युक्तां श्वावण्यां कुण्डलेऽथवा ॥
श्वश्रुश्वशुरवर्गे वा दैवज्ञे वा पुरोहिते ।
व्यासे वा संप्रदातव्या व्रतिभिः शुभकाङ्क्षया ।
एवं या कुरुते नारी कोकिलाव्रतमादरात् ।
सप्तजन्मनि सौभाग्यं सा प्राप्नोति सुविस्तरं ॥
निःसपत्नं पतिं भव्यं सस्नेहं प्राप्य भूतले ।
मृता गौरीपुरं याति विमानेनार्कवर्च्चसा ॥
एतद्व्रतं वशिष्ठेन मुनिना गदितं पुरा ।
तथा चानुष्ठितं पार्थ समग्रं कीर्त्तिमालया ॥

तयाप्तं सर्व्वसम्पन्नं वशिष्ठ वचनादिह ।
पुत्रसौभाग्यसत्कारं भर्त्तुश्चस्य प्रसादतः ॥
एवमन्यापि कौन्तेय कोकिलाव्रतमादरात् ।
चरिष्यति ध्रुवं तस्याः सौभाग्यञ्च भविष्यति ॥

ये कोकिलां कलरवाकुलकण्ठपीठां
यच्छन्ति साज्यतिलपिष्टमयीं द्विजेभ्यः ।
ते नन्दनादिषु वनेषु विहृत्य कामं
मर्त्त्यं समेत्य मधुरध्वनयो भवन्ति ।

इति भविष्योत्तरोक्तं कोकिलाव्रत ।

———000———

महाभारते ।

श्रावणं नियतो मासमेकभक्तेन यः क्षिपेत् ।
यत्र तत्राभिषेकेण युज्यते ज्ञातिवर्द्धनः ॥

विष्णुधर्म्मे ।

क्षपयेच्चैकभक्तेन श्रावणं विष्णुतत्परः ।
अहिंस्रः सर्व्वभूतेषु वासुदेवपरायणः ।
नमोऽस्तु वासुदेवायेत्यह्न्यष्टशतं जपेत् ।
वाजपेयस्य यज्ञस्य समग्रं फलमश्नुते ।

———000———

इति एकभक्तव्रतं ।

वज्र उवाच।

भगवन् कर्म्मणा केन नित्यं धर्म्मपरो भवेत्।
धर्म्मवत्त्वं महाभाग जन्मसाफल्यकारणं॥

मार्कण्डेय उवाच।

आषाढ़्यां समतीतायां प्रतिपत्प्रभृति क्रमात्।
पूर्व्ववत् पूजयेद्देवं धर्म्मविग्रहधारिणं॥

पूर्व्ववदित्यनेन रूपावाप्तिव्रतानुक्तविशेषेण ग्रहणं।

मासस्य चान्ते नृप पौर्णमास्यां
कुर्य्यात्रिरात्रं कनकञ्च दद्यात्।
व्रतोत्तमं धर्म्मकरन्तवोक्तं
सर्व्वार्थदं नात्र विचारमस्ति।

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं धर्म्मावाप्तिव्रतं।

———ooo(०)ooo———

## अथ भाद्रपदव्रतानि।

———o8o———

महाभारते।

प्रोष्ठपादन्तु यो मासमेकाहारो भवेन्नरः।
धनाढ्यस्फीतमतुलमैश्वर्य्यं प्रतिपद्यते॥

विष्णुधर्म्मे।

एकाहारो भाद्रपदे यस्तु कृष्णव्रतं नयेत्।
अहिंस्रः सर्व्वभूतेषु वासुदेवपरायणः॥
नमोऽस्तु वासुदेवायेत्यहन्यष्टशतं जपेत्।

राजसूयस्य यज्ञस्य फलन्दशगुणं लभेत् ॥

इति एकभक्तव्रतं ।

———000———

वज्र उवाच ।

भगवन् कर्म्मणा केन धनवान् पुरुषो भवेत् ।
पुत्रवान् देवलोकेषु पूज्यो भवति मानवः ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

श्रावण्यां समतीतायां प्रतिपत्प्रभृति क्रमात् ।
पूर्व्ववत् पूजयेद्विष्णुं देवं सङ्कर्षणं विभुं ॥
अनुक्तान्तु रूपावाप्तिव्रताद्विज्ञेयं ।
नीलोत्पलदलैः पत्रैर्भृङ्गराजस्य पार्थिव ।
घृतेन परमान्नेन तथा विल्वैश्च पार्थिव ॥
त्रिरात्रोपोषितः सम्यक् प्रोष्ठपद्यां ततो नरः ।
गाञ्च दद्याद्द्विजेन्द्राय व्रतान्ते मनुजोत्तम ॥

कृत्वा व्रतं मासमिदं त्वयोक्त-
मासाद्य नाकं सुचिरं मनुष्यः ।
मानुष्यमासाद्य धनान्वितः स्यात्
व्रतेन चीर्णेन नरेन्द्रसिंह ॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं धनावाप्तिव्रतं ।



अथाश्विनव्रतानि ।

ब्रह्मोवाच।

मासि चाश्वयुजे शुक्ले एकादश्यामुपोषितः।
गृह्णीयात्तु व्रतं श्रेष्ठं कौमुदाख्यं महाफलं॥
अहिंसकः शुचिर्भूत्वा धौतवासा जितेन्द्रियः।
द्वादश्यामर्च्चयेत्स्नात्वा वासुदेवं जगद्गुरुं॥
विलिप्य तु सुगन्धैश्च चन्दनागुरुकुङ्कुमैः।
कमलोत्पलकह्लारैरक्तोत्पलसुगन्धिभिः॥
अर्च्चयेदच्युतं नित्यं मालत्या च सुगन्धया।
घृतेन पूरयेत्पात्रं न तु तैलेन पूरयेत्॥
दीपं दद्याद्दिवा नक्तं वर्त्त्या तु चिरया शुभं।
नैवेद्यं पायसापूपमोदकैर्विनिवेदयेत्॥
निवेद्य वासुदेवाय भक्त्या चैव जितेन्द्रियः।
व्रतमेतन्नरः कृत्वा धर्म्मं ध्यात्वा क्षमापयेत्॥
ओं नमो वासुदेवाय सततञ्च जपेद्बुधः॥
विप्रांश्च भोजयेद्भक्त्या दद्याच्चैव तु दक्षिणां।
अनेनैव विधानेन मासमेकं व्रतञ्चरेत्॥
यावद्विबुध्यते देवः कार्त्तिके गरुड़ध्वजः।
व्रतमेतन्महापुण्यं महापातकनाशनं॥
समं मासोपवासेन फलमस्याधिकं हि वा।
सर्व्वकामप्रदं पुण्यं पुत्रारोग्यधनावहं॥
व्रतमेतन्नरः कृत्वा विष्णुलोकमवाप्नुयात्।

इति विष्णुरहस्योक्तं कौमुदीव्रतं।

---

वज्र उवाच ।

भगवन् कर्म्मणा केन नरश्चारोग्यमाप्नुयात् ।
रूपसौभाग्यलावण्यं सरोगस्य निरर्थकं ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

प्रोष्ठपद्यामतीतायां प्रतिपत्प्रभृतिक्रमात् ।
यादवाय दिवार्च्चायामनिरुद्धं प्रपूजयेत् ।
पूर्व्वोक्तेन विधानेन यावदाश्वयुजी भवेत् ॥

पूर्व्वोक्तेन रूपावाप्तिव्रतोक्तेन ।

सारसैरर्च्चयेद्देवं जातीपुष्पैर्द्दिने दिने ।

सारसैः कमलैः ।

घृतेन जुहुयाद्वह्निं घृतं दद्याद्द्विजातये ।
भोजनं गोरसप्रायं तथा विप्रांश्च भोजयेत् ॥
त्रिरात्रोपोषितः सम्यगाश्वयुज्यान्ततो नरः ।
सघृतं ससुवर्णञ्च कांस्यपात्रं द्विजातये ॥
दद्यान्नृपतिशार्दूल नरस्त्वारोग्यवृद्धये ।
व्रतमेतद्विनिर्द्दिष्टं स्वर्गलोकप्रदं शुभं ॥

न केवलं रोगहरं प्रदिष्ट-
मायुःकरं रूपविवृद्धिदञ्च ।
व्रतोत्तमं ते कथितं नृवीर
यथेष्टकामाप्तिकरं नृलोके ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तमारोग्यव्रतं ।

---

महाभारते।

तथैवाश्वयुजं मासमेकभक्तेन यः क्षिपेत्।
भृत्यवान् वाहनाढ्यश्च बहुपुत्रश्च जायते॥

विष्णुधर्मोत्तरे।

नयंश्चाश्वयुजं विष्णुं पूजयन्नक्तभोजनः।
अहिंस्रः सर्व्वभूतेषु वासुदेवपरायणः॥
नमोऽस्तु वासुदेवायेत्यहन्याष्टशतं जपेत्।
अतिरात्रस्य यज्ञस्य ततः फलमवाप्नुयात्॥

इति एकभक्तव्रतं।

---

## अथ कार्त्तिकव्रतानि।

कार्त्तिकीमासः सर्व्वदैवत्योऽग्निश्च सर्व्वदेवानां मुखं तस्मात् कार्त्तिके मासि बहिः स्नायीत गायत्रीजपनिरतः।
सर्व्वदैवहविष्याशी संवत्सरकृतात्पापात् पूतो भवति॥

इति विष्णुस्मृत्युक्तः कार्त्तिकस्नानविधिः।

---

मैत्रेय उवाच।

कार्त्तिकः खलु मासो वै सर्व्वदेवमतोमहान्।
यानि कृच्छ्राणि (१) चीर्णानि सर्व्वपाप हराणि हि॥
कृतानि मुनिभिस्तानि भवन्ति मनुजाधिप।

---

(१) यानि कृत्स्नानि इति पाठान्तरं।

देवपितृमनुष्येभ्यो दत्तं घृतमधु प्लुतं ॥
तत्रान्नमक्षयं प्रोक्तं ब्रह्मणा लोककर्त्तृणा ।
समभ्यर्च्य हरिं भक्त्या दीपं दत्त्वा दिवानिशं ।
सर्व्वपापविशुद्धात्मा नरो याति दिवं नृप ॥

## इति वह्निपुराणोक्तं कार्त्तिकव्रतं ।

---

सनत्कुमार उवाच ।

दामोदरस्य वाक्यन्तु श्रुत्वा प्रश्नञ्चकार सः ।
केनोपायेन भगवन्नश्यते तन्महत्तमः ॥
नाकलोकसमं सौख्यं प्रेतलोके भवेत्कथं ।
भगवन् देवकीपुत्रस्तद्वाक्यस्योत्तरं ददौ ॥
उवाच परमं गुह्यं मनोरथफलप्रदं ।
भो शृणुष्व महाबुद्धे यत् प्रवक्ष्यामि ते वचः ॥
पूर्व्वं आश्वयुजे मासि पौर्णमास्यां समाहितः ॥
प्रथमे च निशारम्भे मनोवाक्कायसंयतः ।
नमः पितृभ्यः प्रेतेभ्यो नमो धर्म्माय विष्णवे ।
नमो यमाय रुद्राय कान्तारपतये नमः ॥
दद्यादनेन मन्त्रेण दीपं श्रद्धासमन्वितः ।
यः कार्त्तिकं समग्रन्तु वर्त्तन्ते तस्य सम्पदः ॥

दिवाकरेऽस्ताचलमौलिभूते
गृहाददूरे पुरुषः पुराणं ।
यूपाकृतिं यज्ञीयवृक्षदारु

मारोप्य भूमावथ तस्य मूर्द्धि॥
यवाङ्गुलच्छिद्रयुतास्तु मध्ये
द्विहस्तदीर्घाश्च सुपट्टिकासु।
कृत्वा चतस्रोऽष्टदला कृतिस्तु
याभिर्भवेदष्टदिगानुसारी॥

यवैर्मितमङ्गुलं यवाङ्गुलं।

तत्कर्णिकायान्तु महाप्रकाशो
दीपः प्रदेयो दलगास्तथाष्टौ।
खदिङ्मुखा दीपवरास्तु तैल-
घृतादियुक्तास्तु यथोपलब्धं॥
अनङ्गलग्नन्त्वथ वस्त्रखण्डं
नवं सुरक्तन्त्वथवा सुशुक्लं॥

अनङ्गलग्नं अपरिहितं॥

धन्यं प्रयोज्यं वसुकञ्च हृद्यं
स्निग्धं सुखत्वं सुसमं समस्तं।
तच्छालिपिष्टोपरिसन्निधेयं
यथा न नश्येन्न च कम्पते वा॥
सर्व्वं प्रकुर्य्यात्त्रिगुणप्रमाणं
मध्ये स्थितस्याप्यथ दीपराज्ञः।
दलेषु शोभाढ्यमतीव कुर्य्यात्
मनोरथानामुपलब्धये च॥
घण्टाष्टकं लम्बितपुष्पदाम
सुवस्त्रशोभान्वितमत्र पश्चात्।

संयोज्य भूमिं त्वथ गोमयेन
सचन्दनाक्तेन जलेन लिप्तां॥
अनेकवर्णैरथ मण्डले तु
कृत्वाष्टपत्रं कमलप्रमाणं।
फलानि मूलानि तथाक्षतानि
लाजा दधिक्षीरमथान्नपानं॥
नानाविधं भक्षविशेषणञ्च
सुनृत्यगीतं मधुरञ्च वाद्यं।
निवेद्य धर्म्माय हराय भूमौ
दामोदरायाप्यथ धर्म्मराज्ञे॥
प्रजापतिभ्यस्त्वथ सत्पितृभ्यः
प्रेतेभ्य एवाथ तमस्थितेभ्यः।
नैर्ऋत्यकोणादथ दक्षिणान्तं
धर्म्मादिभ्यः प्रेतपर्य्यान्तिकेभ्यः॥
ततोजलं शीतलमानयित्वा
सर्पिःसमभ्यक्तमतीव हृद्यं।
आपूर्य्य चाष्टौ कलशान् जलेन
नैर्ऋत्यकोणादथ सन्निधाय॥
हेमादिपात्रन्तिलमेव पूर्णं
दद्यात्पिधानञ्च सदक्षिणञ्च।
गोभूहिरण्यं रजतञ्च वस्त्रं
फलानि मूलानि यवञ्च धान्यं॥
गृहं रथं शयनं आहनञ्च

यद्वाथ किञ्चिद्धृदये मनोज्ञं।
निवेदयेद्ब्राह्मणसत्तमेभ्यो
नैर्ऋत्यकोणादथ संस्थितेभ्यः॥
एकैकशः प्रीणनञ्चाथ कुर्य्यात्
धर्म्मादिभ्यः प्रेतपुर्य्यान्तिकेभ्यः।
एतत्समग्रं विधिवच्च कुर्य्यात्
स्वशक्तिमादौ स्वधनं विचार्य्य॥
दीपान् समग्रानथ वर्जयित्वा
सर्व्वं नयेयुस्त्वपि विप्रमुख्यान्।
प्रदक्षिणीकृत्य वनाङ्गनान्तु
ततोभवेत्संयतनक्तभोजी॥
वनाङ्गनां वनदेवतां दीपस्तम्भमूर्त्तिं।
इतीदमीदृग्व्यवहारयुक्तं
निशागमे प्रत्यहमेव कुर्य्यात्।
मासं समग्रं परया च भक्त्या
समाप्यते कार्त्तिकपौर्णमास्यां॥
दिनत्रयं दीपमहोत्सवं वा
एकोऽथ वा दीपवरश्च देयः।
तथाश्वयुज्यादिसमग्रमासं
निशागमे प्रत्यहमेव भक्त्या॥
नमोऽस्तु कान्तारकदेवताभ्यः
इतीव मुक्त्वा स्वगृहस्य शान्त्यै।
नार्य्या नरेणाथ सुसंयतेन

भक्त्या युतेनाथ निशासु भोज्यं ॥
सन्ध्यात्रये दीपवराश्च देयाः
रात्र्यां समे कार्त्तिकपौर्णमास्यां।
दरिद्रवेश्मस्वथ गोकुलेषु
श्मशानदेवायतनेषु चैत्ये
नदीतटेषु स्वगृहान्तरे वा
अथैकलिङ्गे पथि चैकवृक्षे ॥
सहस्रमष्टाधिकमत्र तैल-
पलस्य पात्रे सुशुभे शतं वा ॥
ये नो तदर्द्धैरथवा तदर्द्धैः
प्रमाप्य रिक्तास्त्वथ पूरणीयाः।
हस्तान् स्वकीयांश्च चतुर्द्दशैव
प्रमाप्य वस्त्रं त्वथ सूत्रवर्त्तिं ॥
प्रज्वालयेत्ताञ्च निरुध्य धीमान्
स्त्रीणामलङ्कारशतैः प्रपूज्य।
देवी महावर्त्तिरतीव वन्द्या
पुण्या च साद्या भुवनप्रकाशी ॥
एतन्न कुर्य्यादथ यस्तु मन्द-
स्तस्यान्धकारस्य कुतोऽपि शान्तिः।
अयं हि दीपः किलकल्पवृक्ष-
श्चिन्तामणिर्भद्रघटोऽथ विष्णुः॥
अनेन दीपेन मनोरथानां
सम्प्राप्तिरस्तीति न संशयोऽत्र।

एतानि उक्ता कतिचिद्वचांसि
दामोदरश्चान्तरितोबभूव ॥

इत्यादिपुराणोक्तः प्रदीपविधिः।

---

वज्र उवाच।

भगवन् कर्म्मणा केन सर्व्वत्र जयमाप्नुयात्।
व्यवहारे रते द्यूते विवादे च द्विजोत्तम ॥
जयावाप्तिः परन्नास्ति सौख्यं लोकेषु सत्तम।
जयावाप्तिः परं सौख्यं तदपि व्रतमुच्यतां।

मार्कण्डेय उवाच।

आश्वयुज्यामतीतायां प्रतिपत्प्रभृतिक्रमात्।
पूर्व्ववत् पूजयेद्देवं लोकनाथं त्रिविक्रमं ॥
पूर्व्ववदिति रूपावाप्तिव्रतवत्।
त्रिरात्रान्ते तु कार्त्तिक्यां दद्याद्ब्राह्मणमुत्तमं।
सर्व्वशस्यधरङ्कृत्वा शक्त्यारत्नैरलङ्कृतः ॥
कृत्वा व्रतं मासमिदं यथोक्तं
प्राप्नोति लोकं सुचिरं नृवीर।
तत्रोष्य कालं सुचिरं मनुष्यः
प्राप्नोति सर्व्वत्र जयन्त्रिलोके ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं जयावाप्तिव्रतं।

---

ब्रह्मोवाच ।

सुपुण्ये कार्त्तिके मासि देवर्षिपितृसेविते ।
क्रियमाणे व्रते नृणां स्वल्पेऽपि स्यान्महाफलं ॥
कृत्स्नः संवत्सरः पुण्यस्तस्माद्वर्षासु पूजितः ।
वर्षायाः कार्त्तिकः पुण्यः कार्त्ति काद्भीष्मपञ्चकं ॥
नैवेद्यं पुष्पधूपञ्च अर्चनं सुविलेपनं ।
दत्त्वैकं कार्त्तिकं विष्णोः फलं सांवत्सरं लभेत् ॥
अतः कार्त्तिकमासाद्य सदैव शुभकाङ्क्षिभिः ।
हरिमुद्दिश्य कर्त्तव्यं सुशक्त्या सुकरं व्रतं ॥
कार्त्तिकस्यासिते पक्षे वायुभक्षश्चतुर्द्दशीं ।
समुपोष्य नरो भक्त्या पूजयेद्गरुड़ध्वजं ॥
उपवासस्तु कर्त्तव्यो वारिमध्ये स्थितेन च ।
जलकृच्छ्रमिदं कृत्वा विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ॥
दशम्यां पञ्चगव्याशी एकादश्यामुपोषितः ।
अर्चयेच्चाच्युतं देवं नियतश्च व्रतञ्चरेत् ॥
कार्त्तिकस्यासिते कृत्वा नरो देवव्रतञ्चरेत् ।
दामोदरं समभ्यर्च्य देवो वैमानिको भवेत् ॥
अपः क्षीरं दधि घृतं सप्तम्यादिचतुर्द्दिनं ।
कार्त्तिकस्यासिते पीत्वा एकादश्यामुपोषितः ॥
कृच्छ्रपैतामहं नाम कुर्व्वन् संपूजयेद्धरिं ।
प्राप्नोति परमं विष्णोः स्थानं त्रैलोक्यपूजितं ।
त्रिरात्रं पयसः पानमुपवासपरस्य च ॥
षष्ठ्यादौ कार्त्तिके शुक्ले कृच्छ्रो माहेन्द्र उच्यते ।

दामोदरं समभ्यर्च्य कृच्छ्रं माहेन्द्रमाचरेत् ॥
प्रयात्यसुलभन्देव विष्णुलोकमनुत्तमं।
त्र्यहं मुन्यन्नमश्नीयाद्‌यावकञ्च त्र्यहं ततः ॥

मुन्यन्नं नीवारान्नं।

त्र्यहञ्चोपवसेदन्त्यं कृच्छ्रोऽयं वैष्णवः स्मृतः।
कार्त्तिकस्य तृतीयादावर्चयेद्विष्णुमव्ययं।
शुक्लपक्षे नरो याति तद्विष्णोः परमं पदं ॥
पञ्चरात्रं पयः पीत्वा प्रतिपत्प्रभृतिक्रमात्।
दध्याहारो भवेत्पश्च एकादश्यामुपावसेत् ॥
कार्त्तिकस्य सिते कुर्व्वन् पूजयेद्गरुड़ध्वजं।
भास्कराख्यमिदङ्कृत्वा श्वेतद्वीपं व्रजेन्नरः ॥
यवागूं यावकं शाकं दधिक्षीरघृतज्जलं।
पञ्चम्यादि सिते पक्षे कार्त्तिकस्य समाचरेत् ॥
कृच्छ्रं सप्तर्षिदश्चेदं कुर्व्वन्विष्णर्च्चने रतः।
वैष्णवं लोकमाप्नोति पुनरावृत्तिवर्ज्जितं ॥
पलाशबिल्वपत्रैश्च कुशपद्मैरुडुम्बरैः।
सुश्टतञ्च पिबेत् क्षीरं षष्ठ्यामुपवसेद्दिनं ॥
कुर्व्वन् हि कार्त्तिके शुक्ले कृच्छ्रमाग्नेयमुत्तमं।
विष्णुलोकमवाप्नोति भक्त्याभ्यर्च्य जनार्द्दनं ॥
पयो बिल्वानि पद्मानि मृणालकवलानि तु।
सप्तम्यादौ नरः कृत्वा एकादश्यामुपावसेत् ॥
कार्त्तिकस्यामले पक्षे लक्ष्मीप्रदमिदं व्रतं।
केशवञ्च समभ्यर्च्य वैष्णवीं गतिमाप्नुयात् ॥

कृच्छ्राण्येतानि सर्व्वाणि सर्व्वपापहराणि च।
कर्त्तव्यानि नरैर्भक्त्या कार्त्तिके तु विशेषतः॥
गृहस्थो वा वनस्थो वा मुमुक्षुर्वाथ भिक्षुकः।
कृत्वा व्रतमवाप्नोति वैष्णवं पदमव्ययं॥
कृच्छ्राणि कुर्व्वन् सर्व्वाणि वाङ्मनोनियतेन्द्रियः।
धौतवासःशुचिस्नातः पूजयेद्देवमच्युतं॥
अहिंसको दानरतो जपहोमपरायणः।
अर्चयेद्वरदं विष्णुं कृच्छ्राणि तु समाचरेत्॥
व्रतद्रव्याणि सर्व्वाणि क्षीरादीनि सदा व्रती।
विप्रदत्तानि चाश्नीयाद्भिक्षया न प्रकामतः॥
यानि वै परकीयानि द्रव्याणि कथितानि तु।
तेषां पुण्यतमन्दानं यद्ददाति द्विजोत्तमे।
कुर्व्वन् कृच्छ्राणि पीड़ार्त्तः क्षुधया मुह्यतेऽथ वा॥
अमृतन्तु गवां क्षीरं पाययेत् पीड़ितन्नरं॥
अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः।
हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधं॥
यथोक्तेन विधानेन कृच्छ्राणि समुपाचरेत्।
कार्त्तिके कृष्णमभ्यर्च्य याति यत्र जनार्द्दनः॥
एवं नानाह्वयैर्नित्यं पूजितो गरुड़ध्वजः।
व्रतोपवासनियमैस्ते मुक्तिफलभागिनः॥

इति विष्णुरहस्योक्तानि कृच्छ्रव्रतानि।

---

मान्धाता उवाच।

संप्राप्य कार्त्तिकं मासं राजा रुक्माङ्गदो मुने।
मोहिनीं मोहसंयुक्तां कथं सम्भुजे वद॥
विष्णुभक्तस्तुतिपरः प्रवरः स महीक्षिताम्।
तस्मिन् पुण्योत्तमे मासि तस्यां किमकरोन्नृपः॥

वसिष्ठ उवाच।

संप्राप्य कार्त्तिकं मासं प्रबोधकरणं हरेः।
अतिमुग्धोऽप्यसौ राजा मोहिनीं वाक्यमब्रवीत्॥
बत देवि त्वया सार्द्धं बहून् संवत्सरान् मया।
तवापमानस्य भयान्न त्वं मुक्ता मया क्वचित्॥
साम्प्रतं व्रतकामोऽहं तन्निबोध वरानने।
त्वय्यासक्तस्य मे देवि बहवः कार्त्तिका गताः॥
न व्रतौ कार्त्तिके जातौ मुक्त्वैकं हरिवासरं।
सोऽहं कार्त्तिकमिच्छामि व्रतेन परिसर्पितुं॥
अव्रतेन गतो येषां कार्त्तिको मर्त्त्यधर्म्मिणां।
इष्टापूर्त्तं वृथा तेषां धर्म्मं पद्मोद्भवात्मजे॥
मांसाशिनो हि भूपाला अत्यर्थं मृगयागताः।
ते मांसं कार्त्तिके त्यक्त्वा गता विष्ण्वालयं शुभं॥
प्रवृत्तानां हि भद्राणां कार्त्तिके नियमे कृते।
अवश्यं विष्णुरूपत्वं प्राप्यते मुक्तिसाधनं॥
हृदयाह्लादकर्त्तृणि दीपदानाद्दिनं व्रजेत्।
तस्याप्यभावे सुभगे परदीपप्रबोधनं॥
कर्त्तव्यं भूतिकामेन सर्व्वदानाधिकं यतः।

एकतः सर्व्वदानानि दीपदानं हि चैकतः ॥
कार्त्तिके न समं प्रोक्तं दीपको ह्यधिकः स्मृतः ।
कार्त्तिके कार्त्तिकीं कृत्वा विष्णोर्नाभिभवोद्भवे ॥
आजन्मनः कृतात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः ।
व्रतोपवासनियमैः कार्त्तिको यस्य गच्छति ॥
देवो वैमानिको भूत्वा स याति परमं पदं ।
तस्मान्मोहिनि मोहन्तु परित्यज्य ममोपरि ॥
भव भूधरपूजायां निरता नीरजेक्षणे ।
अहं व्रतधरश्चैव भविष्ये हरिपूजने ॥

मोहिन्युवाच ।

विस्तरेण ममाख्याहि माहात्म्यं कार्त्तिकस्य च ।
सर्व्वपुण्याधिकः प्रोक्तो मासोऽयं राजसत्तम ॥
विशेषात् पुष्करे प्रक्तो द्वारावत्यान्तु सौकरे ।
श्रुत्वा कार्त्तिकमाहात्म्यं करिष्येऽहं यथेप्सितं ॥

रुक्माङ्गद उवाच ।

माहात्म्यमभिधास्यामि मासस्यास्य वरानने ।
येन ते जायते भक्तिर्भक्त्या येनार्च्यते हरिः ॥
कार्त्तिके कृच्छ्रसेवी यः प्राजापत्यरतोऽपि वा ।
षड्द्वादशाहं पक्षंवा मासंवा वरवर्णिनि ॥
क्षपयित्वा नरो याति तद्विष्णोः परमं पदं ।
एकभक्तोऽथवा नक्तं तथा सुभ्रु अयाचिते ॥
कृते नरैर्न्नराप्राप्तिर्भवेद्दै दीपमालया ।
तस्मिन् हरिदिने पुण्यं तथा वै भीष्मपञ्चकं ॥

प्रबोधनीं नरः कृत्वा जागरेण समन्विताम्।
न मातुर्जठरे याति अपि पापान्वितो नरः॥
तस्मिन्दिने वरारोहे मण्डलं यस्तु पश्यति।
विना सांख्येन योगेन स याति परमं पदं॥
कार्त्तिके मण्डलं दृष्ट्वा सौकरे शूकरं शुभे।
दृष्ट्वा कोकवराहन्तु न भूयस्तनपो भवेत्॥
त्रिविधस्य तु पापस्य दृष्ट्वा मुक्तिर्भवेन्नृणां।
मन्दारे चपलापाङ्गि कुब्जके श्रीधरं तथा॥
कार्त्तिके वर्जयेत्तैलं कार्त्तिके वर्ज्जयेन्मधु।
कार्त्तिके वर्ज्जयेत्कांस्यं कार्त्तिके मासि सन्धितं॥

तैलं राजिकादिसन्धानं।

निष्पावान् कार्त्तिके देवि यो भुङ्क्ते विष्णुतत्परः।
संवत्सरकृतात्पुण्याद्धानिर्भवति तत्क्षणात्॥
प्राप्नोति राजकीं योनिं सकृद्भक्षणसम्भवात्।
कार्त्तिके सौकरं मांसं यस्तु भुङ्क्ते सुदुर्म्मतिः॥
षष्टिर्व्वर्षसहस्राणि रौरवे परिपच्यते।
तन्मुक्तो जायते पापी विष्ठाशी ग्रामशूकरः॥
न मात्स्यं भक्षयेन्मांसं न कौर्म्मं नान्यदेव हि।
चण्डाली जायते राजन् कार्त्तिके मांसभक्षणात्॥
कार्त्तिकः सर्व्वपापघ्नः किञ्चिद्व्रतधरस्य तु।
गच्छेद्यस्य तु धर्म्मात्मा न स शोच्यः कृताकृते॥
कार्त्तिके तु कृता दीक्षा नृणां जन्मनिकृन्तनी।
तस्मात्सर्व्वप्रयत्नेन दीक्षां कुर्वीत कार्त्तिके॥

अदीक्षितस्य वामोरु कृतं सर्व्वं निरर्थकं।
पशुयोनिं समाप्नोति दीक्षया कुलजन्म च॥
न गृहे कार्त्तिकीं कुर्य्याद्विशेषेण तु कार्त्तिकीं।
तीर्थेषु कार्त्तिकीं कुर्य्यात् सर्व्वयत्नेन भामिनि॥
कार्त्तिके शुक्लपक्षस्य कृत्वा ह्येकादशीं नरः।
प्रातर्द्दत्त्वा शुभान् कुम्भान् स याति हरिमन्दिरं॥
संवत्सरव्रतानां हि समाप्तिः कार्त्तिके स्मृता।
पश्चाद्दा यत्र दृश्यन्ते विष्णोर्नाभिजसम्भवे॥
दिनानि यत्र चत्वारि तथैव वरवर्णिनि।
उत्तरायणहीनेऽपि शुद्धिर्लग्नं विना शुभे॥
दृश्यन्ते यत्र सम्बन्धाः पुत्रपौत्रविवर्द्धनाः।
तस्मान्मोहिनि कर्त्तास्मि कार्त्तिकव्रतसेवया।
अशेषपापनाशाय तव प्रीतिविवृद्धये॥

## इति नारदीयोक्तं कार्त्तिकमासव्रतं।

———ooo———

ब्रह्मोवाच।

क्षीराशी कार्त्तिके यस्तु देव्या भक्तिरतो नरः।
शाकपाचकनक्ताशी प्रातस्नायी शिवारतः॥
पूजयेत्तिलहोमस्तु मधुक्षीरघृतादिभिः।
कार्य्यस्तु देवीमन्त्रेण शृणु पुण्यफलं हरेः॥
महापातकसंयुक्तो युक्तो वा तूपपातकैः।
मुच्यते नात्र सन्देहो यस्मात्सर्व्वगता शिवा॥

अन्यो वा भावनायुक्तो अनेन विधिना शिवां ।
स्वयं वा अन्यतो वापि पूजयेत् पूजयेत वा ॥
न तस्य भवति व्याधिर्न च शत्रुकृतं भयं ।
नोत्पातं ग्रहदुःस्थं वा न च राष्ट्रं विनश्यति ॥
महास्वभावसम्पन्ना ऋतवः शुभदायकाः ।
निष्पत्तिः सर्व्वशस्यानां तस्करा न भवन्ति च ॥
प्रभूतपयसो गावो ब्राह्मणाः सत्क्रियापराः ।
स्त्रियः पतिव्रताः सर्व्वा नृपा निर्ह्नतवैरिणः ॥
फलपुष्पवती देवी वनस्पतिमती मही ।
भवने नात्र सन्देहश्चण्डिकाविधिपूजनात् ॥
जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी ।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वधा स्वाहा नमोऽस्तु ते ॥
अनेनैव तु मन्त्रेण जपहोमन्तु कारयेत् ।
प्रातः सम्यक् स्मृता वत्स महिषघ्नी प्रपूजिता ॥
अघं नाशयति क्षिप्रं यथा सूर्य्योदयस्तमः ।

इति देवीपुराणोक्तं देवीव्रतं ।

———ooo———

नारद उवाच ।

भगवन् श्रोतुमिच्छामि व्रतानामुत्तमस्य च ।
विधिं मासोपवासस्य फलञ्चास्य यथोदितं ॥
यथाविधा नरैः कार्य्या व्रतचर्य्या यथा भवेत् ।
आरभ्यते यथापूर्व्वं समाप्यं हि यथाविधि ॥

यावत्संख्यन्तु कर्त्तव्यं तावद्ब्रूहि पितामह ।
व्रतमेतत् सुरश्रेष्ठ विस्तरेण ममानघ ॥

ब्रह्मोवाच ।

साधु नारद यच्चैतत् पृष्टश्चर तपोधन ।
याहृग्व्रतिमतां श्रेष्ठ तच्छृणुष्व ब्रवीमि ते ॥
सुराणाञ्च यथा विष्णुस्तपताञ्च यथा रविः ।
मेरुः शिखरिणां यद्वद्वैनतेयस्तु पक्षिणां ॥
तीर्थानान्तु यथा गङ्गा प्रजानान्तु यथा वणिक् ।
श्रेष्ठं सर्व्वव्रतानान्तु तद्वन्मासोपवासनं ॥
सर्व्वव्रतेषु यत्पुण्यं सर्व्वतीर्थेषु यत्फलं ।
सर्व्वदानोद्भवं वापि लभेन्मासोपवासकृत् ॥
अग्निष्टोमादिभिर्य्यज्ञैर्विधिवद्भूरिदक्षिणैः ।
न तत्पुण्यमवाप्नोति यन्मासपरिलङ्घनात् ॥
तेन दत्तं हुतं जप्तं स्नानञ्चैव स्वधा कृता ।
यः करोति विधानेन नरो मासमुपोषणं ॥
प्रविश्य वैष्णवं यज्ञं तेनाभ्यर्च्य जनार्द्दनं ।
गुरोराज्ञां ततो लब्ध्वा कुर्य्यान्मासोपवासनं ॥
वैष्णवानि यथोक्तानि कृत्वा सर्व्वव्रतानि तु ।
द्वादश्यादीनि पुण्यानि ततो मासमुपाचरेत् ॥
अतिकृच्छ्रं पराकञ्च कृत्वा चान्द्रायणं ततः ।
मासोपवासङ्कुर्व्वीत ज्ञात्वा देहबलाबलं ॥
वानप्रस्थो यतिर्व्वापि नारी वा विधवा मुने ।
मासोपवासं कुर्व्वीत गुरुविप्राज्ञया ततः ॥

आश्विनस्यामले पक्षे एकादश्यामुपोषितः।
व्रतमेतत्तु गृह्णीयाद्यावत् त्रिंशद्दिनानि तु॥
वासुदेवं समुद्दिश्य कार्त्तिकं सकलं नरः।
मासञ्चोपवसेद्यस्तु स मुक्तिफलभाग्भवेत्॥
अच्युतस्यालये भक्त्या त्रिकालं कुसुमैः शुभैः।
मालतीन्दीवरैः पद्मैः कमलैः सुसुगन्धिभिः॥
कुङ्कुमोशीरकर्पूरैर्विलिप्य वरचन्दनैः।
नैवेद्यधूपदीपाद्यैरर्चयेत जनार्द्दनं॥
मनसा कर्म्मणा वाचा पूजयेद्गरुड़ध्वजं।
कुर्य्यान्नरस्त्रिसवनं दृढ़भक्तिर्जितेन्द्रियः॥
नाम्नामेव तथालापं विष्णोः कुर्य्यादहर्निशं।
भक्त्या विष्णोस्तुतिर्वाच्या मृषावादं विवर्ज्जयेत्॥
सर्व्वसत्त्वदयायुक्तः शान्तवृत्तिरहिंसकः।
सुप्तो वासनसंस्थो वा वासुदेवं प्रकीर्त्तयेत्॥
स्पृष्ट्यालोकनगन्धादिस्वादनं परिकीर्त्तनं।
अन्नस्य वर्ज्जयेत् सर्व्वं ग्रासानाञ्चाभिकाङ्क्षनं॥
गात्राभ्यङ्गं शिरोऽभ्यङ्गं ताम्बूलं सुविलेपनं।
व्रतस्थो वर्ज्जयेत् सर्व्वं यच्चान्यत्र निराकृतं॥
व्रतस्थो न स्पृहेत्किञ्चिद्विकर्म्मस्थान्न चालयेत्।
देवतायतने तिष्ठेन्न गृहस्थश्चरेद्व्रतं॥
कृत्वा मासोपवासन्तु सम्भृतात्मा जितेन्द्रियः।
ततोऽर्चयेत्ततः पुण्यं द्वादश्याङ्गरुड़ध्वजं॥
पूजयेत्पुष्पमालाभिर्गन्धधूपविलेपनैः।

वस्त्रालङ्कारवाद्यैश्च तोषयेदच्युतं नरः॥
स्नापयेत हरिं भक्त्या तीर्थचन्दनवारिणा।
चन्दनेनानुलिप्ताङ्गं पुष्पधूपैरलङ्कृतं॥
वस्त्रदानादिभिश्चैव भोजयेच्च द्विजोत्तमान्।
दद्याच्च दक्षिणां तेभ्यः प्रणिपत्य क्षमापयेत्॥
विप्रान् क्षमापयित्वा तु विसृज्याभ्यर्च्य पूज्य च।
एवं वित्तानुसारेण भक्तियुक्तेन शक्तितः॥
एवं मासोपवासन्तु कृत्वाभ्यर्च्य जनार्द्दनं।
भोजयित्वा द्विजांश्चैव विष्णुलोके महीयते॥
एवं मासोपवासं हि सम्यक् कृत्वा त्रयोदश।
निर्व्वापयेत्ततस्तान् वै विधिनानेन तच्छृणु॥
कारयेद्वैष्णवं यज्ञमेकादश्यामुपोषितः।
पूजयित्वा च देवेशमाचार्य्यानुज्ञया हरिं॥
अर्चयित्वा हरिं भक्त्या अभिवाद्य गुरुन्तथा।
ततोऽनुभोजयेद्विप्रान् भोजयीत यथाविधि॥
विशुद्धकुलचारित्रान् विष्णुपूजनतत्परान्।
पूजयित्वा द्विजान् सम्यग्भोजयित्वा त्रयोदश॥
तावन्ति वस्त्रयुग्मानि भाजनान्यासनानि च।
योगपट्टानि शुभ्राणि ब्रह्मसूत्राणि चैव हि॥
दद्याच्चैव द्विजाग्रेभ्यः पूजयित्वा प्रणम्य च।
ततोऽनुकल्पयेच्छय्यां शस्तास्तरणसंस्कृतां॥
साच्छादनशुभां श्रेष्ठां सोपधानामलङ्कृतां।
कारयित्वात्मनो मूर्त्तिं काञ्चनीन्तु स्वशक्तितः॥

न्यसेत्तस्यान्तु शय्यायामर्चयित्वा स्रगादिभिः।
आसनं पादुके छत्रं वस्त्रयुग्ममुपानहौ॥
पवित्राणि च पुष्पाणि शय्यायामुपकल्पयेत्।
एवं शय्यान्तु सङ्कल्प्य प्रणिपत्य च तान् द्विजान्॥
प्रार्थयेदनुमोदार्थं विष्णुलोकं व्रजाम्यहं।
एवमभ्यर्चिता विप्रा वदेयुर्व्रतिनं सदा॥
व्रज व्रज नरश्रेष्ठ विष्णोः स्थानमनामयं।
विमानं वैष्णवं दिव्यं सशय्यापरिकल्पितं॥
तेन विष्णुपदं याहि सदानन्दमनामयं।
ततो विसर्जयेद्विप्रान् प्रणिपत्यानुगम्य च॥
ततस्तु पूजयेद्भक्त्या गुरुं ज्ञानप्रदायकं।
तां शय्यां कल्पितां सम्यग्गुरुं व्रतसमापकं॥
प्रणम्य शिरसा शान्तो गुरवे प्रतिपादयेत्।
एवं पूज्य हरिं विप्रान् गुरुं ज्ञानप्रकाशकं॥
कृत्वा मासोपवासांश्च नरो विष्णुतनुं विशेत्।
कृतमासोपवासश्च विष्णुपूजनतत्परः॥
नयेच्छान्तमनाः कालं धर्मस्थः सुजितेन्द्रियः।
कृत्वा मासोपवासांश्च निर्व्वाप्य विधिवन्मुने॥
कुलानां शतमुद्धृत्य विष्णुलोकं व्रजेन्नरः।
तस्मिन् जातो महापुण्ये कुले मासोपवासकृत्॥
सर्व्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते।
नरो मासोपवासानां कर्त्ता पुण्यवतां नरः॥
पितृमातृकुलाभ्याञ्च समं विष्णुपुरीं व्रजेत्।

नारी वा सुमहाभागा यथोक्तं व्रतमास्थिता ।
कृत्वा मासोपवासांश्च व्रजेद्विष्णुं सनातनं ॥

नारद उवाच ।

सुदुष्करमिदं देव मूर्च्छाग्लानिकरं नृणां ।
व्रतं मासोपवासाख्यं भक्तिं जनयतेऽच्युते ॥
पीड़ितस्य भृशन्देव मुमूर्षोर्व्रतिनस्तदा ।
त्यागो वानुग्रहो वाथ किन्तु कार्य्यः पितामह ॥

ब्रह्मोवाच ।

व्रतस्थं कथितं दृष्ट्वा मुमूर्षुं वा तपोधन ।
दृष्ट्वा तु ब्राह्मणस्तस्य कुर्य्यात्सम्यगनुग्रहं ॥
अमृतं पाययेत् क्षीरमिच्छमानं सकृन्निशि ।
यथेह न वियुज्येत प्राणैः क्षुत्पीड़ितो व्रती ॥
अतिमूर्च्छान्वितं क्षीणं मुमूर्षुं क्षुत्प्रपीड़ितं ।
पाययित्वा शृतं क्षीरं रक्षेद्दत्त्वा फलानि च ॥
अहोरात्रञ्च यो नित्यं व्रतस्थं परिपालयेत् ।
पयो मूलं फलं दत्त्वा विष्णुलोकं व्रजेत सः ॥
एवं मासोपवासस्थमारूढ़ं प्राणसंशये ।
अव्रतघ्नगुणैर्हिं व्यैः परीक्षेद्ब्राह्मणाज्ञया ॥
नैते व्रतं विनिघ्नन्ति हविर्विप्रानुमोदितं ।
क्षीरौषधं गुरोराज्ञयापो मूलफलानि च ॥
एवं कृत्वाभिभक्षेत(१) सगुड़ं पायसं तदा ।

(१) एवं कृत्वाभिवाद्येति क्वचित् पाठः ।

पाययेद्दच्छितो यस्मात्समाप्नोति पुनर्व्रतं ॥
अथ विष्णुर्व्रतं विष्णुर्दाता विष्णुर्व्रती तथा।
सर्व्वं विष्णुमयं ज्ञात्वा व्रतस्थं चीणमुद्धरेत् ॥
यथा मुमूर्षुर्निश्चेष्टः परिग्लानोऽतिमूर्च्छितः।
तदा समुद्धरेत् चीणमिच्छन्तं विमुखस्थितं ॥
परिपाल्य व्रती देहं व्रतशेषं समापयेत्।
यथोक्तं द्विगुणं तस्य फलं विप्रमुखोदितं ॥
इन्द्रियार्थेष्वसंसक्ता सदैव विमला मतिः।
परितोषयते विष्णुं नोपवासीऽजितात्मनां ॥
किं तस्य बहुभिस्तीर्थैः स्नानहोमजपव्रतैः।
येनेन्द्रियगणो घोरो निर्जितो हृष्टचेतसा ॥
जितेन्द्रियः सदा शान्तः सर्व्वभूतहिते रतः।
वासुदेवपरो नित्यं न क्लेशं कर्त्तुमर्हति ॥
कृत्वा व्रतं(१) यथोक्तन्तु वैष्णवं पुरुषोत्तमं।
विष्णुलोकमवाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभं ॥
ये स्मरन्ति सदा विष्णुं विशुद्धेनान्तरात्मना।
ते प्रयान्ति भयं त्यक्त्वा विष्णुलोकमनामयं ॥
प्रभाते चार्द्धरात्रे च मध्याह्ने दिवसक्षये।
अच्युतं येऽनुकीर्त्तन्ति ते तरन्ति भवार्णवं ॥
आनन्दितोऽथ दुःखार्त्तः क्रुद्धः शान्तोऽथवा हरिं।
यो हि कीर्त्तयते भक्त्या स गच्छेद्वैष्णवीं पुरीं ॥

---

(१) कृत्वा नूनमिति क्वचित पाठः।

गर्भजन्म-जरारोग-दुःखसंसारबन्धनैः ।
न बाध्यते नरो नित्यं वासुदेवमनुस्मरन् ॥
स्थावरे जङ्गमे सत्त्वे स्थूले सूक्ष्मे शुभाशुभे ।
विष्णुं पश्यति सर्व्वत्र यः स विष्णुः स्वयं नरः ॥
सर्व्वं विष्णुमयं ज्ञात्वा त्रैलोक्यं सचराचरं ।
यस्य शान्ता मतिस्तेन पूजितो गरुड़ध्वजः ॥
अतिकल्पानुकल्पानां व्रतानामुत्तमस्य च ।
विष्णुलोकमवाप्नोति प्रसादाच्चक्रपाणिनः ॥
विधिर्मासोपवासस्य यथावत् परिकीर्त्तितः ।
सुतस्नेहाद्द्विजश्रेष्ठ सर्व्वलोकहिताय च ॥
कृत्वा श्रुत्वा च यं भक्त्या ततो विष्णुपुरीं व्रजेत् ।
नाभक्ताय प्रदातव्यं न देयं दुष्टचेतसे ॥

## इति विष्णुरहस्योक्तं मासोपवासव्रतं ।

———oo———

### महाभारते ।

कार्त्तिकन्तु नरो मासं यः कुर्य्यादेकभोजनं ।
शूरश्च बहुभाग्यश्च कीर्त्तिमांश्चैव जायते ॥

### विष्णुधर्म्मे ।

कार्त्तिके एकदा भुङ्क्ते यश्च विष्णुपरो नरः ।
शूरश्च कृतविद्यश्च बहुपुत्रश्च जायते ॥
अहिंस्रः सर्व्वभूतेषु वासुदेवपरायणः ।

नमोऽस्तु वासुदेवायेत्यहश्चाष्टशतं(१) जपेत् ।
अतिरात्रस्य यज्ञस्य ततः फलमवाप्नुयात् ॥

इत्येकभक्तव्रतं ।

---

## अथ मार्गशीर्षव्रतानि ।

---

महाभारते ।

मार्गशीर्षन्तु यो मासमेकभक्तेन संक्षिपेत् ।
भोजयेत्तु द्विजान् भक्त्या मुच्यते व्याधिकिल्बिषैः ॥
सर्व्वकल्याणसम्पूर्णः सर्व्वदुःखविवर्ज्जितः ।
उपोष्य व्याधिरहितो वीर्य्यवानभिजायते ।
कृषिभागी बहुधनो बहुधान्यश्च जायते ॥

विष्णुधर्मे ।

मार्गशीर्षन्तु यो मासमेकभक्तेन संक्षिपेत् ।
कुर्व्वन् वै विष्णुशुश्रूषां स देशे जायते शुभे ॥
अहिंस्रः सर्व्वभूतेषु वासुदेवपरायणः ।
नमोऽस्तु वासुदेवायेत्यहश्चाष्टशतं जपेत्(२) ।
वाजपेयस्य यज्ञस्य ततः फलमवाप्नुयात् ॥

इति एकभक्तव्रतं ।

---

(१) वासुदेवाय चाहश्चाष्टशतमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।
(२) वासुदेवाय चाहश्चाष्टशतं जपेति क्वचित् पाठः ।

वज्र उवाच ।

भगवन् कर्म्मणा केन नरो लावण्यमाप्नुयात् ।
लावण्यरहितं रूपं निष्फलं प्रतिभाति मे ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

कार्त्तिक्यां समतीतायां प्रतिपत्प्रभृतिक्रमात् ।
पटे वा यदि वार्च्चायां प्रद्युम्नं पूजयेद्विभुं ॥
बहिः स्नानं ततः कुर्य्यान्नक्तमश्नीत वाग्यतः ।
एकभक्तं महाराज हविष्यं प्रयतः सदा ॥
मार्गशीर्षं ततः प्राप्य त्रिरात्रोपोषितः शुचिः ।
सम्पूज्य देवप्रद्युम्नं हुत्वाग्नौ घृतमेव च ॥
भोजयेद्ब्राह्मणांश्चात्र भोजनं लवणोत्कटं ।
चूर्णितस्य ततः प्रस्थं लवणस्य द्विजातये ॥
महारजतरक्तञ्च वस्त्रयुग्मं तथा गुरोः ।
दद्याच्च कनकं राजन् कांस्यपात्रं तथैव च ॥

मासेन लावण्यकरं प्रदिष्टं
व्रतोत्तमं नाकगतिप्रदञ्च ।
न केवलं यादव सर्व्वकामान्
नरस्य दद्यात्पुरुषप्रधानं ॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं लावण्यावाप्तिव्रतं ।

—o—

## अथ पौषव्रतानि।

———000———

महाभारते।

पौषमासन्तु कौन्तेय भक्तेनैकेन यः क्षिपेत्।
सुभगो दर्शनीयश्च यशोभागी च जायते॥

विष्णुधर्म्मे।

पौषमासं तथा दाल्भ्य एकभक्तेन यः क्षिपेत्।
शुश्रूषणपरः शौरेररोगी जायते नरः॥
अहिंस्रः सर्व्वभूतेषु वासुदेवपरायणः।
नमोऽस्तु वासुदेवायेत्यहन्यष्टशतं जपेत्।
अश्वमेधस्य यज्ञस्य ततः फलमवाप्नुयात्॥

## इति एकभक्तव्रतं।

———000———

वज्र उवाच।

भगवन् कर्म्मणा केन शीलवान् पुरुषो भवेत्।
कुलजातिश्रुतेभ्यस्तु शीलमेव विशिष्यते॥

मार्कण्डेय उवाच।

आग्रहायण्यतीतायां मासमेकं दिने दिने।
पूर्व्ववत्पूजयेद्देवं वराहमपराजितं॥
घृतेन स्नापयेद्देवं घृतेन जुहुयाद्धरिं।
घृतं द्विजेभ्यो दद्याच्च घृतमेव निवेदयेत्॥
त्रिरात्रोपोषितः पौष्यां घृतपात्रेण च द्विजं।

पूजयेच्च सुवर्णेन यथाशक्ति नराधिप ॥
कृत्वा व्रतं मासमिदं यथोक्त-
मासाद्य नाकं सुचिरं मनुष्यः।
मानुष्यमासाद्य च शीलवान् स्यात्
प्राप्नोति पुष्टिं चिरजीवितञ्च ॥

## इति विष्णुधर्म्मोक्तं शीलावाप्तिव्रतं।

——oo@oo——

अथ शुक्लचतुर्द्दश्यां पौषमासे समाहितः।
चान्द्रायणव्रतं मासं ग्राहयेत्सर्व्वपापजित्।
पूर्णेन्दुपौर्णमास्यान्तु पूजयेत्प्रत्यहं जलैः ॥

पौषइति सामीप्ये सप्तमी। चतुर्द्दशीपूर्णमास्योः पूर्व्वमासावयवत्वात्।

मनोरथाय स्वाहेति तथा सन्ते पयांसि च।
तर्पयेदग्निरेताभिस्तिस्टभिश्च सदैव हि ॥
अन्नाहुतिभिरष्टाभिर्हुताभिश्च निशाकरं।
यद्देवादेव इत्यतैश्चतुर्भिर्मन्त्रसत्तमैः ॥
आज्येन तर्पयेद्वाहुं सर्व्वपापोपशान्तये।
तथा देवकृतस्येति समिद्भिर्नित्यमेव हि ॥
चरुभैक्ष्यं तथा सक्तुन्तक्रं यावकमेव च।
शाकं चीरं दधि घृतं फलमूलोदकानि च ॥

पौर्णमास्यामारभ्य प्रत्यहं तर्पणं होमञ्च कारयेदित्यर्थः।

हुतशिष्टञ्च वै पश्चात् प्राशयेदन्नमादरात् ॥

कुक्कुटाण्डोपमान् ग्रासान् पौर्णमास्याञ्च भक्षयेत्।
कला पञ्चदशैवाथ ह्रासयेत्तु दिने दिने॥
विंशत्या सहितं येन कृष्णपक्षे भवेच्छतं।
अमावस्यादिने चैव विप्रश्चोपवसेत्ततः॥
शुक्लप्रतिपदारभ्य चन्द्रवृद्धिक्रमेण तु।
विंशत्या सहितं भूयो ग्रासानां स्याच्छतं यथा॥
मासेन द्वे शते येन भवेतां द्वे च विंशती।
एकस्य प्रणवो मन्त्रोभूर्द्वयोश्च भवेदऽपि॥
भुवस्त्रयाणां स्वश्चापि चतुर्णां मह एव च।
भवेदथ च पञ्चानां षण्णाञ्जन उदाहृतः॥
सप्तानान्तु तपः सत्यमष्टानां परिकीर्त्त्यते।
ॐ नवानामिड़ावाथ दशानां मन्त्र एव च॥
एकादशानां योजस्त्र विजयस्त्र परम्भवेत्।
त्रयोदशानां पुरुषस्ततो धर्म्मः प्रकीर्त्तितः॥
शिवः पञ्चदशानान्तु ग्रासानां मन्त्र उच्यते।
स्वाहाकारनमस्कारयुक्तैर्मन्त्रैः पृथक् पृथक्।
अभिमन्त्र्य ग्रसेद्ग्रासान् दिनसंख्याक्रमेण च॥

ओं नमः स्वाहा भूर्नमः स्वाहेत्यादिमन्त्राः।

समाप्ते च व्रते दद्यान्गां वृषञ्च द्विजातये।
चान्द्रायणेन चैकेन सर्व्वपापक्षयो भवेत्॥
एवं संवत्सरं कृत्वा चन्द्रलोकमवाप्नुयात्।
इह लोके धनारोग्यं सुखं सौभाग्यसम्पदं॥

भवेदमरलोके च शक्रस्य सदने गतिः ।
भवेच्छिवन्तदभ्यासाज्जन्म ब्राह्मणजन्मनि ॥

## इति ब्रह्मपुराणोक्तं चान्द्रायणव्रतं ।

——oo——

## अथ माघमासव्रतानि ।

———

### नारदीयपुराणे ।

काष्ठकील उवाच ।

सम्प्राप्तो माघमासोऽयं तपस्विजनवल्लभः ।
यस्मिन् क्षीयन्ति पापानि यत्नस्नानवतां सदा(१) ॥
कृतानि सर्व्वदेहेषु ब्रह्महत्यासमान्यपि ।
दुर्लभो माघमासस्तु बहुदानप्रदायकः ॥
देवैस्तेजः परिक्षिप्तं माघमासे जले सदा ।
न वह्निं सेवयेत् स्नातो ह्यस्नातोऽपि वरानने ॥
होमार्थं सेवयेद्वह्निं शीतार्थं न कदाचन ।
यावत्प्रभा वरारोहे तावत् सूर्य्योदये स्मृता ॥
सरित्तोयाद्यभावे तु नवकुम्भस्थितं जलं ।
वायुना ताड़ितं रात्रौ गङ्गातोयसमं विदुः ॥
तन्नास्ति पातकं लोके यन्न स्नानाद्विनश्यति ।
अग्निप्रवेशादधिकं माघस्नानं वरानने ॥

(१) यतिस्नानवतां सदेति पाठान्तरं ।

जीवता भुज्यते दुःखं मृतो दुःखं न पश्यति।
एतस्मात्कारणात् सुभ्रु माघस्नानं विशिष्यते॥
अहन्यहनि दातव्यास्तिलाः शर्करयान्विताः।
त्रिभागस्तु तिलानां हि चतुर्थः शर्करान्वितः॥
अनभ्यङ्गी वरारोहे सर्व्वं मासं नयेद्व्रती।
सूर्य्यो मे प्रीयतां देवो विष्णुमूर्त्तिर्निरञ्जनः॥
माघावसाने सुभगे षड्रसं संप्रदापयेत्।
दम्पत्योर्वाससी शुक्ले सप्तधान्यसमन्विते॥
त्रिंशत्तु मोदका देयाः कृतास्तिलमयाः शुभाः।
मरिचैर्निर्म्मिताः स्वच्छाः नारङ्गाणि च दापयेत्॥
सवितः प्रभवस्त्वं हि परं धाम जले मम।
त्वत्तेजसा परिभ्रष्टं पापं यातु सहस्रधा॥
दिवाकर जगन्नाथ प्रभाकर नमोऽस्तु ते।
परिपूर्णं कुरुष्वेह माघस्नानमुषःपते॥
एवं माघप्लवो याति भित्त्वा विम्बं दिवाकरं।
परिव्राड्योगयुक्तश्च रणे वाभिमुखो हतः।
तृतीयोऽत्र वरारोहे माघस्नायी प्रकीर्त्तितः॥

भविष्योत्तरात्।

युधिष्ठिर उवाच।

माघमासे मम ब्रूहि स्नानं यदुकुलोद्वह।
येन दुःखाम्बुपङ्कौघादुत्तरन्ति भवार्णवात्॥

श्रीकृष्ण उवाच।

ब्राह्मं कृतयुगं प्रोक्तन्त्रेता तु क्षत्रियं स्मृतं।

वैश्यं द्वापरमित्याहुः शूद्रं कलियुगं तथा ॥
कलौ राजन् मनुष्याणां शैथिल्यं स्नानकर्म्मणि ।
तथापि माघव्याजेन कथयिष्यामि तच्छृणु ॥
यस्य हस्तौ च पादौ च वाङ्मनश्च सुसंयतं(१) ।
विद्या तपश्च कीर्त्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥
अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः ।
हेतुनिन्दारतश्चैते न तीर्थफलभागिनः ॥
प्रयागं पुष्करं प्राप्य कुरुक्षेत्रमथापि वा ।
यत्र वा तत्र वा स्नायान्माघे नित्यमिति स्थितिः ॥
त्रिरात्रफलदा नद्यो याः काश्चिदसमुद्रगाः ।
समुद्रगास्तु पक्षस्य मासस्य सरितां पतिः ॥
अपां समीपे यत्स्नानं सन्ध्यायामुदिते रवौ ।
प्राजापत्येन तत्तुल्यं महापातकनाशनं ॥
प्रातरुत्थाय यो विप्रः प्रातःस्नायी भवेत्सदा ।
सर्व्वपापविनिर्मुक्तः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥
वृथा चोष्णोदकस्नानं वृथा जाप्यमवैदिकं ।
अश्रोत्रिये वृथा श्राद्धं वृथा भुक्तमसाक्षिकं ॥
स्नानं चतुर्विधं प्रोक्तं स्नानविद्भिर्युधिष्ठिर ।
वायव्यं वारुणं ब्राह्मं दिव्यञ्चेति पृथक् शृणु ॥
वायव्यं गोरजस्नानं वारुणं सागरादिभिः ।
ब्राह्मं ब्राह्मणमन्त्रोक्तं दिव्यं मेघाम्बु भास्करात् ॥
स्नानानामपि सर्व्वेषां वारुणं श्रेष्ठमुच्यते ।

(१) मनश्चैव सुसंयतं इति पाठान्तरं ।

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः॥
एते सर्व्वे प्रशंसन्ति सर्व्वदा माघमज्जनं।
बालवृद्धयुवानश्च नरनारीनपुंसकाः॥
स्नात्वा माघे शुभे तीर्थे प्राप्नुवन्तीप्सितं फलं।
ब्रह्मचत्रविशां चैव मन्त्रवत्स्नानमिष्यते॥
तुष्णीमेव हि शूद्राणां तथैव कुरुनन्दन।
नमस्कारेण वा कार्य्यं सर्व्वपापौघहानिदं॥
माघमासे रटन्त्यापः किञ्चिदभ्युदिते रवौ।
ब्रह्मघ्नं वा सुरापं वा(१) कं पतन्तं पुनीमहे॥
प्रासादा यत्र सौवर्णाः स्त्रियश्चाप्सरसां समाः।
दधिदुग्धवहा यत्र नद्यः पायसकर्द्दमाः॥
तत्र ते यान्ति मज्जन्ति ये माघे भास्करोदये।
यतिवत्पथि गच्छेत मौनी पैशून्यवर्ज्जितः॥
य इच्छेद्विपुलान् भोगान् चन्द्रसूर्य्यग्रहोपमान्।
पुष्यफाल्गुनयोर्म्मध्ये प्रातः स्नायी भवेत्तु सः॥
पौर्णमासीममावास्यां प्रारभ्य स्न माचरेत्।
त्रिंशद्दिनानि पुण्यानि मकरस्थे दिवाकरे॥
तत उत्थाय नियमं गृह्णीयाद्विधिपूर्व्वकं।
माघमासमिमं पुण्यं स्नास्येऽहं देव माधव॥
तीर्थे शीतजले नित्यमिति सङ्कल्प्य चेतसि।
अप्रावृतशरीरस्तु यः साक्षात् स्नानमाचरेत्॥
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः।

(१) ब्रह्मघ्नमपि चाण्डालमिति पाठान्तरं।

ततः स्नात्वा शुभे तीर्थे दत्त्वा शिरसि वै मृदं।
वेदोक्तविधिना राजन् सूर्य्यायार्घ्यं निवेदयेत् ॥
पितॄन् सन्तर्प्य तत्रस्थः अवतीर्य्य ततोजलात्।
इष्टदेवं नमस्कृत्य पूजयेत्पुरुषोत्तमं ॥
शङ्खचक्रधरं देवं माधवं नाम पूजयेत्।
वह्निं हुत्वा विधानेन ततश्चैकाशनो भवेत् ॥
भूशय्याब्रह्मचर्य्येण शक्तः स्नानं समाचरेत्।
अशक्तो ब्रह्मचर्य्यादौ स्वेच्छा तस्यैव कल्प्यते ॥
अवश्यमिति कर्त्तव्यं माघस्नानमिति श्रुतिः।
ईश्वरेण यथाकामं बलं धर्म्मोऽनुवर्त्तते ॥
तिलस्नायी तिलोद्वर्त्ती तिलहोमी तिलोदकी।
तिलभुक्तिलदाता च षट्तिलाः पापनाशनाः ॥
तैलमामलकाश्चैव तीर्थे देयाश्च नित्यशः।
तथा प्रज्वालयेद्वह्निं निवातां कारयेत्कुटिं ॥
एवं माघवमासे तु शक्तो भोज्यमवारितं।
कारयेदथ शक्त्या वा वित्तशाठ्यविवर्ज्जितं॥
दम्पत्यानि द्विजाग्र्याणां पूज्यवस्त्रविभूषणैः।
भूषयित्वा प्रदेयानि दानानि विविधानि च॥
कम्बलाजिनवस्त्राणि नानारत्नानि शक्तितः।
चोलकानि च देयानि प्रच्छादनपटानि च ॥
उपानहौ पादगुप्तौ मोचकौ पापमोचकौ।
तथान्यद्दयितं किञ्चिन्माघस्नाने प्रदीयते।

तस्मात्माघस्नायिनान्देयं विप्राणां भूतिमिच्छता ।
स्वल्पेऽपि दाने वक्तव्यं माधव प्रीयतामिति ॥
अगम्यागमनात्स्तेयात्पापेभ्यश्च प्रतिग्रहात् ।
रहस्याचरितात्पापान्मुच्यते स्नानमाचरन् ॥
माघमासे विधानेन चेतस्याधाय माधवं ।
पितुः पूर्व्वान् समुद्धृत्य मातुः पूर्व्वान्पितॄनथ ।
एकविंशकुलैः सार्द्धं भोगान् भुक्त्वा यथेप्सितान् ॥
माघस्योषसि स्नात्वा वै विष्णुलोके महीयते ॥
यो माघमास्युषसि सूर्य्यकराभितास्रे
स्नानं समाचरति चारुनदीप्रवाहे ।
उद्धृत्य पूर्व्वपुरुषान् पितृमातृतश्च
स्वर्गं प्रयात्यमरदेहधरो नरोऽसौ ॥

## इति माघस्नानविधिः ।

——oo@oo——

माघमास्युषसि स्नानं कृत्वा दम्पत्यमर्च्चयेत् ।
भोजयित्वा यथाशक्त्या माल्यवस्त्रविभूषणैः ॥
सौभाग्यपदमाप्नोति शरीरारोग्यमुत्तमं ।
सूर्य्यलोकप्रदं नूनं सूर्य्यव्रतमिदं स्मृतं ॥

## इति पद्मपुराणोक्तं सूर्य्यव्रतं ।

——ooo——

ब्रह्मोवाच ।

कृच्छ्रैकभक्तं हेमन्ते माघमासमतन्द्रितः ।
मासान्ते च रथं कुर्य्याच्चित्रवस्त्रोपशोभितं ॥

श्वेतैश्चतुर्भिर्युक्तन्तु तुरगैः समलङ्कृतं ।
श्वेतध्वजपताकाभिः छत्रचामरदर्पणं ॥
तण्डुलाढ़कपिष्टेन कृत्वा भानुन्नराधिप ।
विन्यस्य तं रथप्रस्थे संज्ञया सह भूपते ॥
तं रात्रौ राजमार्गेण शङ्खभेर्य्यादिभिः स्वनैः ।
भ्रामयित्वा शनैः पश्चात् सूर्य्यायतनमानयेत् ॥
तत्र चागुरुपिष्टेन प्रदीपाद्युपशोभितं ।
प्रेक्षणीयप्रदानैश्च चपयित्वा शनैः शनैः ॥
प्रभाते स्नपनङ्कृत्वा पयसा वा घृतेन वा ।
दीनान्धकृपणानाञ्च यथाशक्त्या च दक्षिणां ।
रथं सम्बाहनोपेतं भास्कराय निवेदयेत् ॥
भुक्त्वा च ब्राह्मणैः सार्द्धं प्रणम्यार्कं गृहं व्रजेत् ॥
सर्व्वव्रतानां परमं शक्रधर्म्मास्थितः सदा ।
तत्र सूर्य्यव्रतं नाम सर्व्वकामार्थसाधकं ॥
सर्व्वव्रतेषु यत्पुण्यं सर्व्वतीर्थेषु यत् फलं ।
सर्व्वं सूर्य्यरथेनेह तत्पुण्यं लभते नृप ॥
सूर्य्यायुतप्रतीकाशैर्व्विमानैः सार्व्वकामिकैः ।
त्रिसप्तकुलजैः सार्द्धं सूर्य्यलोके महीयते ॥
भुक्त्वा तु विपुलान् भोगान् सर्व्वलोकेष्वनुत्तमान् ।
कल्पायुतशतं साग्रं ततो राजा भवेत् क्षितौ ॥

इति भविष्यत्पुराणोक्तं सूर्य्यव्रतं ।

---

माघमासि समुद्युक्तस्त्रिसन्ध्यं योऽर्च्चयेद्रविं।
भवेत् षाण्मासिकं पुण्यं मासेनैव न संशयः।

## इति भविष्यत्पुराणोक्तं रविव्रतं।

———000———

### महाभारते।

माघमासन्तु यो मासमेकभक्तेन यः क्षिपेत्।
श्रीमान् कुलज्ञातिमांस्तु स महत्त्वं प्रपद्यते॥

### विष्णुधर्म्मे।

माघमासं द्विजश्रेष्ठ एकभक्तेन यः क्षिपेत्।
विष्णुशुश्रूषणपरः सत्कुले जायते सतां॥
अहिंस्रः सर्व्वभूतेषु वासुदेवपरायणः।
नमोऽस्तु वासुदेवायेत्यहन्यष्टशतं जपेत्।
अतिरात्रस्य यज्ञस्य ततः फलमवाप्नुयात्॥

## इति एकभक्तव्रतं।

———000———

### वज्र उवाच।

भगवन् कर्म्मणा केन विद्यावान् पुरुषो भवेत्।
सविद्य एव विज्ञेयः पुरुषः पशुरन्यदा॥

### मार्कण्डेय उवाच।

पौषान्तु समतीतायां प्रतिपत्प्रभृतिक्रमात्।
प्राग्वत्तु पूजयेद्देवन्तुरङ्गशिरसं हरिं॥

प्राग्वदिति रूपावाप्तिव्रतोक्तविधिना तुरङ्गशिरसं हयग्रीवं ॥

तिलांश्च जुहुयादग्नौ तिलैर्द्देवं समर्चयेत् ।
त्रिरात्रोपोषितो माघं तिलान् कनकमेव च ॥
दद्याद्ब्राह्मणमुख्याय सम्यक् प्रयतमानसः ।
मुख्यान् यज्ञोपवीतांश्च प्रभूतमपि चन्दनं ॥

कृत्वा व्रतं मासमिदं यथोक्तं
विद्यान्वितः स्यात्पुरुषः सदैव ।
स्वर्लोकमासाद्य सुखानि भुक्त्वा
कामानभीष्टान् पुरुषोऽश्नुते च ॥

## इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं विद्यावाप्तिव्रतं ।

———000@000———

## अथ फाल्गुनव्रतानि ।

### महाभारते ।

भगदैवन्तु यो मासमेकभक्तेन विक्षिपेत् ।
ऐश्वर्य्यमतुलं श्रेष्ठं पुमान् स्त्री वा प्रपद्यते ।
स्त्रीषु वल्लभतां याति तस्याश्चैव भवन्ति ते ॥

### विष्णुधर्म्मे ।

क्षपयेदेकभक्तेन शुश्रुषुर्य्यस्तु फाल्गुने ।
शुश्रूषुः विष्णुशुश्रूषापरः ।
सौभाग्यं स्वजनानाञ्च सर्व्वेषामेव सोन्नतिः ।

अहिंस्रः सर्व्वभूतेषु वासुदेवपरायणः॥
नमोऽस्तु वासुदेवायेत्यहन्याष्टशतं जपेत्।
अतिरात्रस्य यज्ञस्य ततः फलमवाप्नुयात्॥

इति एकभक्तव्रतं।

---

वराह उवाच।

फाल्गुनस्य तु मासस्य पुष्पाणि सुरभीणि च।
कर्म्मण्यानि शुभानीह गृहीत्वा भक्तिमान्नरः॥

ततः वक्ष्यमाणश्लोकोक्तादाचार्य्यात्।

यस्तु जानाति कर्म्माणि सर्व्वकर्म्मविनिश्चितः।
उदाहरति मन्त्रांश्च नक्तादिनियमस्थितः॥
जानुभ्यां धरणीङ्गत्वा कराभ्यामञ्जलिः पुटं।
गृहीत्वेतिशेषः, पुटं पुष्पपूर्णपात्रपुटं।
नमो नारायणेत्युक्त्वा इमं मन्त्रमुदीरयेत्॥
नमोऽस्तु देवदेवेश चक्रनिर्म्मथनाय ते।
नमोऽस्तु लोकनाथाय सुप्रवीर नमोऽस्तु ते॥
आदिमध्यावसानन्तेन जानातीह कश्चन॥
वसन्तागमपुष्पाणि गृहाण पुरुषोत्तम।
य एतेन विधानेन कुर्य्यान्मासे तु फाल्गुने।
न च गच्छति संसारं परं लोकं च गच्छति॥

इति वराहपुराणोक्तः फाल्गुनविधिः।

---

वज्र उवाच।

भगवन् कर्म्मणा केन सौभाग्यं महदाप्नुयात्।
लावण्यरूपसौभाग्यं विना श्रेयं निरर्थकं॥

मार्कण्डेय उवाच।

माघ्यान्तु समतीतायां प्रतिपत्प्रभृतिक्रमात्।
पटे वा यदि वार्च्चायां कृष्णं संपूजयेत्सदा।
पूर्वोक्तं सकलं कुर्य्याद्विधिं चात्र नराधिप॥

पूर्व्वोक्तमिति चैत्रमाससम्बन्धिरूपावाप्तिव्रतोक्तमित्यर्थः।

नित्यं समाचरेत् स्नानं तथा गन्धप्रियङ्गुना।
चरुं प्रियङ्गुना कुर्य्याद्धोमं कुर्य्यात् प्रियङ्गुना॥

गन्धः प्रियङ्गुसदृशगन्धद्रव्यं, प्रियङ्गुः कङ्गुसदृशगन्ध द्रव्यं प्रियङ्गुः कङ्गुः।

फाल्गुन्यान्तु ततोदद्यात् त्रिरात्रोपोषितो नरः।
वस्त्रे च देये नृप कुङ्कुमाक्ते
चौद्रस्य पात्रञ्च तथैव कांस्यं।
सौभाग्यदं ह्येतदनुत्तमन्ते
व्रतं ममैतत्कथितं नृवीर॥

## इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं सौभाग्यावाप्तिव्रतं।

---

इति श्रीमहाराजाधिराज-श्रीमहादेवस्य समस्तकरणा-
धीश्वरसकलविद्याविशारद-श्रीहेमाद्रिविरचिते
चतुर्व्वर्गचिन्तामणौ व्रतखण्डे
मासव्रतानि।

# अथ अष्टादशोऽध्यायः।

———000(v)000———

## अथ नानामासव्रतानि।

अश्रान्तश्चारुचामीकर ००० (१)परिप्रीणितप्राणिवर्गः
स्वर्गङ्गासङ्गभूमीरुहतलविलसत्किन्नरीगीतकीर्त्तिः।
हेमाद्रिः संप्रतीह स्फुरदुरुदुरितव्रातघातैकहेतुं
नानामासव्रतानां क्रमनमथ कलाकोविदः संविधत्ते॥

## तत्र चातुर्मासीव्रतानि।

———

विष्णुधर्म्मोत्तरात्।

मार्कण्डेय उवाच।

अथ स्वपिति धर्म्मात्मन् देवदेवो जनार्द्दनः।
लक्ष्मीसहायः सततं शेषपर्य्यङ्कमाश्रितः॥
एकादश्यामाषाढ़स्य शुक्लपक्षे जनार्द्दनं।
देवाश्च ऋषयश्चैव स्तुवन्ति दिनपञ्चकं॥
ततश्च चतुरोमासान् योगनिद्रामुपस्थितां।
सप्त च तमुपासन्ति ऋषयो ब्रह्मसंमिताः॥
कार्त्तिकस्य सिते पक्षे तदेव दिनपञ्चकं।
विबोधयन्ति देवेशं गत्वा सेन्द्रा दिवौकसः॥
तस्मादेताश्चतुर्मासीर्नरः कुर्य्यात् महोत्सवं।

भविष्योत्तरात्।

---

१ अत्र अक्षरत्रयं पतितम्।

युधिष्ठिर उवाच ।

गोविन्दशयनं किन्तु किमर्थं स्वपितीत्यसौ ।
कथन्तच्छयनं तस्य देवदेवस्य चक्रिणः ॥
के चात्र मन्त्राः पूजा च दानार्थं नियमाश्च के ।
किं ग्राह्यं किञ्च मोक्तव्यं सुप्ते देवजगत्पतौ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

शृणु पार्थ प्रवक्ष्यामि गोविन्दशयनव्रतं ।
कटिदानं समुत्थानं चातुर्मासीव्रतक्रमं ॥
मिथुनस्थे सहस्रांशौ स्थापयेन्मधुसूदनं ।
तुलां प्राप्ते(१) महाराज पुनरुत्थापयेच्च तं ॥
अधिप्रयत ते देव एष एव विधिक्रमः ।
नान्यथा स्थापयेत् कृष्णं नान्यथोत्थापयेत्तथा ॥
आषाढस्य सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः ।
स्थापयेत् प्रतिमां विष्णोः शङ्खचक्रगदाधरां ॥
काञ्चनीं राजतीं ताम्रमयीं पित्तलजां तथा ।
पीताम्बरधरां सौम्यां पर्य्यङ्के चाश्रिते शुभे ।
शुक्लवस्त्रपटच्छन्ने सोपधाने सुपूजिते ॥

ब्रह्मपुराणात् ।

एकादश्यान्तु शुक्लायां आषाढे भगवान् हरिः ।
भुजङ्गशयने शेते यदा क्षीरार्णवे सदा ॥
तदा तत्प्रतिमा कार्य्या सर्व्वलक्षणसंयुता ।
सुप्ता तु शेषपर्य्यङ्के शैलमृद्भिश्च दारुभिः ॥

(१) तुलांगस्थे इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

ताम्रारकूटरजतैः कृता चित्रपटेषु वा।
लक्ष्म्या स्वहस्तविन्यस्तमनोज्ञचरणाम्बुजा॥
नानाविधोपकरणैः पूज्या तु विधिपूर्व्वकं।
उपवासश्च कर्त्तव्यो रात्रौ जागरणं तथा॥
तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां द्वादश्यां पूजयेच्च तां।
त्रयोदश्यां ततो गीतनृत्यवाद्यं निवेदयेत्॥

भविष्योत्तरे (१)।

इतिहासपुराणज्ञो वेदवेत्ताथ वा पुमान्।
स्नापयित्वा दधिक्षीरघृतक्षौद्रसितादिभिः॥
समालभ्य शुभैर्गन्धैर्धूपैर्वस्त्रैरलङ्कृतां।
जातीकुसुममालाभिर्मन्त्रेणानेन पूजयेत्॥
सुप्ते त्वयि जगन्नाथे जगत्सुप्तं भवेदिदं।
विबुद्धे च विबुध्येत प्रसन्नो मे भवाच्युत॥
एवं तां प्रतिमां विष्णोः स्थापयित्वा स्वयं नरः।
प्रभाषेच्चाग्रतो विष्णोः कृताञ्जलिपुटस्तथा॥
चतुरो वार्षिकान् मासान् देवस्योत्थापनावधिः।
इमं करिष्ये नियमं निर्व्विघ्नं कुरु मेऽच्युत॥
स्त्री वा नरो वा मद्भक्तो धर्म्मार्थं सुदृढव्रतः।
गृह्णीयान्नियमानेतान् दन्तधावनपूर्व्वकान्॥
तेषां फलानि वक्ष्यामि तत्कर्त्तॄणां पृथक् पृथक्।
मधुस्वरो भवेद्राजा पुरुषो गुड़वर्जनात्॥
तैलस्य वर्जनादेव सुन्दराङ्गः प्रजायते।

(१) महाभारते इति पुस्तकान्तरे पाठः।

कटुतैलपरित्यागाच्छत्रुनाशमवाप्नुयात् ॥
मधूकतैलत्यागेन सौभाग्यमतुलं लभेत् ।
योगाभ्यासी विरतस्तु स ब्रह्मपदमाप्नुयात् ।
कटुकास्त तिक्तमधुरक्षारकषायसञ्चयः ॥
यो वर्ज्जयेत् स वैरूप्यं दौर्गन्ध्यं नाप्नुयात् क्वचित् ।
ताम्बूलं वर्जयेत् भोगी रक्तकण्ठश्च जायते ॥
घृतत्यागाच्च लावण्यं सर्व्वस्निग्धतनुर्भवेत् ।
फलत्यागाच्च मतिमान् बहुपुत्रश्च जायते ॥
शाकपत्राशनाद्भोगी अपक्वादमलो भवेत् ।
पादाभ्यङ्गपरित्यागाच्छिरोऽभ्यङ्गं विवर्जयेत् ॥
दीप्तिमान् दीप्तकायेन सोऽपि क्षौद्रपतिर्भवेत् ।
दधिदुग्धैकनियमी गोभक्तो गोपतिर्भवेत् ।
इन्द्रातिथित्वमाप्नोति स्थालीपाकस्य वर्जनात् ॥
लभते सङ्गतिन्दीर्घां तैलपक्वस्य वर्जनात् ।
भूमौ प्रस्तरशायी च विप्रो मुनिवरो भवेत् ॥
सदा मुनिः सदा योगी मधुमांसञ्च वर्जयेत् ।
निर्व्याधिर्नीरुगोजस्वी सुरामद्यं विवर्जयेत् ॥
एवमादिपरित्यागात् धर्म्मः स्यात् धर्म्मनन्दन ।
एकान्तरोपवासेन ब्रह्मलोके महीयते ।
धारणान्नखरोम्नाञ्च गङ्गास्नानफलं लभेत् ॥
धारणाद्यष्टयोगाङ्गं ।
मौनव्रती भवेद्यस्तु तस्याज्ञा फलिता भवेत् ।
नमोनारायणायेति जपन्यज्ञफलं लभेत् ॥

अयं चातुर्म्मास्यव्रतारम्भो गुर्व्वस्तमयादावपि कार्य्यः।
यदाह वृद्धगर्गः। न शैशवन्न मौढ़ाद्य शुक्रगुर्व्वोर्नवा तिथेः।
खण्डत्वं चिन्तयेच्चादौ चातुर्म्मास्यविधौ नरः।
पादाभिवन्दनाद्विष्णोर्लभेद्गोदानजं फलं॥
भूमौ भुङ्क्ते सदा यस्तु स पृथिव्याः पतिर्भवेत्।
नमो नारायणायेति जपन्यज्ञफलं लभेत्॥
विष्णुपादाब्जसंस्पर्शाद्दिनपापात् प्रमुच्यते।
पादोदकाभिषेकाद्वै गङ्गास्नानं दिने दिने॥
पर्व्वसु यो नरो भुङ्क्ते कुरुक्षेत्रफलं लभेत्।
नित्यं शास्त्रसमाख्यानाल्लोकान् यस्तु प्रबोधयेत्॥
व्यासस्तुष्यति तस्याशु विष्णुलोकं स गच्छति।
कृत्वा प्रदक्षिणकं विष्णोर्लोकमप्सरसां लभेत्॥
तीर्थाम्बुस्नापनाद्विष्णोर्निर्म्मलं देहमाप्नुयात्।
पञ्चगव्याशनात्पार्थ चान्द्रायणफलं लभेत्॥
अयाचितेन प्राप्नोति पुत्रान् धर्म्मानशेषतः।
षष्ठान्नकालभोक्ता यः कल्पस्थायी भवेद्दिवि॥
उपवासद्वयान्तरितैकभक्तः।
शिलोञ्छवृत्तेन भुञ्जानः प्रयागस्नानमाप्नुयात्।
विष्णुदेवकुले कुर्य्यादुपलेपनमार्ज्जने॥
कल्पस्थायी भवेद्राजा स नरो नात्र संशयः।
प्रदक्षिणशतं यस्तु करोति स्तुतिपाठकः॥
हंसयुक्तविमानेन स तु विष्णुपुरं व्रजेत्।
गीतवाद्यकरो विष्णोर्गान्धर्व्वं लोकमाप्नुयात्॥

यामद्वयं जलत्यागान्नरोगैरभिभूयते ।
गुड़वर्ज्जीं नरोदद्याद्द्रुतं ताम्रभाजनं ।
सहिरण्यं नृपश्रेष्ठ लवणस्याप्ययं विधिः ॥

ब्रह्मवैवर्त्ते ।

नारद उवाच ।

कथं सुप्ते तु गोविन्दे व्रतचर्य्या सुरोत्तम ।
कर्त्तव्या मानवैर्भक्त्या विष्णुपूजनतत्परैः ॥
तिथयः काश्च पुण्या वै निःशेषफलदायिकाः ।
सन्तुष्यते हरिर्य्यासु स्वल्पेन तपसा नृणां ॥
दानहोमजपस्नानं व्रतचर्य्यार्च्चनं हरेः ।
समाचक्ष्व सुरश्रेष्ठ उपवासविधिक्रियां ॥

ब्रह्मोवाच ।

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि चातुर्म्मास्यविधिक्रियां ।
यां निर्वर्त्त्य नरो भक्त्या प्रयाति परमाङ्गतिं ॥
अवगम्य विधानेन समर्चनविधिं हरेः ।
व्रतपूजादिकं कुर्य्यात्ततो भक्तिसमन्वितः ॥
अविज्ञाय विधानोक्तां हरेःपूजाविधिक्रियां ।
कुर्व्वन् भक्त्या समाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदं ॥
यस्तु विष्णुपरो नित्यं दृढ़भक्तिर्जितेन्द्रियः ।
स गृहेऽपि वसन् याति तद्विष्णोः परमं पदं ॥
शिवे वा भक्तिसंयुक्तो भानौ वा गणनायके ।
कृत्वा व्रतस्य नियमं यथोक्तफलभाग्भवेत् ।
नरस्य क्षयमाप्नोति पापं जन्मशतोद्भवं ॥

आषाढ़स्य सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः।
नक्तं कुर्य्याद्द्विजश्रेष्ठ गृह्णीयान्नियमं व्रती॥
कुर्य्यादिति, नियमं नक्तं गृह्णीयादित्यन्वयः।
एकादश्यान्तु गृह्णीयात् संक्रान्तौ कर्कटस्य च॥
आषाढ़ादौ नरो भक्त्या चातुर्मासीव्रतक्रियां।
चातुर्मासीव्रतानान्तु कुर्व्वीत परिकल्पनां॥
इदं व्रतं मया देव गृहीतं पुरतस्तव।
निर्विघ्नां सिद्धिमायातु प्रसादात्तव केशव॥
गृहीतेऽस्मिन् व्रते देव पञ्चत्वं यदि मे भवेत्।
तदा भवतु संपूर्णन्त्वत्प्रसादाज्जनार्द्दन॥
गृहीतेऽस्मिन् व्रते देव यद्यपूर्णे म्रिये त्वहं।
तन्मे भवतु सम्पूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्द्दन॥
एवमभ्यर्च्च्य गोविन्दं व्रतार्च्चनजपादिकं।
सर्व्वत्र परिगृह्णीयात्परिपूर्णं यथा भवेत्॥
व्रतानि वैष्णवानीह शैवानीह द्विजोत्तम।
एकभक्तं नरः कृत्वा नित्यस्नायी दृढ़व्रतः॥
योऽर्च्चयेच्चतुरोमासान्वासुदेवं स नाकभाक्।
समाप्तौ भोजयेद्विप्रान् भक्त्या दद्याच्च दक्षिणां॥
यस्तु सुप्ते हृषीकेशे नक्तमाचरते व्रती।
वस्त्रयुग्मं नरो दत्वा शिवलोके महीयते॥
अपूपवर्ज्जनं कृत्वा भोजने व्रतमाचरेत्।
कार्त्तिके स्वर्णगोधूमान् वस्त्रं दत्वाश्वमेधकृत्॥
अन्नं दत्वा च विप्राय ब्रह्मलोकमवाप्नुयात्।

रौप्यं दत्वा ब्राह्मणाय व्रती तद्गतमानसः॥
अन्नदानं व्रतं कुर्य्याद्रौप्यदानञ्च पारणं।
एकान्तरोपवासेन विष्णुपूजनतत्परः॥
गान्दत्वा वासुदेवस्य लोके संपूज्यते नरः।
यस्तु सुप्ते हृषीकेशे क्षितिशायी भवेन्नरः॥
शय्यां सोपस्करान्दत्वा इन्द्रलोके महीयते।
वार्षिकांश्चतुरोमासान् मद्यं मांसञ्च यस्त्यजेत्॥
स्वर्णादौ हरिमुद्दिश्य स भवेद्वेदविद्द्विजः।
यः क्षिपेत् कृच्छ्रपादेन आषाढ़ादिकऋतुद्वयं॥
विष्णुपूजनकृन्मर्त्त्यः स लभेत्तन्निकेतनं।
गोप्रदानाद्भवेल्लोऽहिः समाप्ते द्विजसत्तम॥
यस्त्रिरात्रकृताहारी नित्यस्नायी जितेन्द्रियः।
वासुदेवार्चने युक्तः स लोकं वैष्णवं व्रजेत्॥

पूर्व्वोक्तक्रोदानपारणं।

व्रीहीं यो वर्ज्जयित्वा तु कार्त्तिके मासि मानवः।
हिरण्यं शालिना दत्त्वा पदं प्राप्नोति वैष्णवं॥
यस्तु केशवभक्तो हि विष्णोः पादोदकं पिबेत्।
वर्षारात्रं नरो भक्त्या स विष्णोः सद्म संविशेत्॥
रौप्यं चन्दनसंयुक्तं धेनुं दद्यात्पयस्विनीं।
वार्षिकांश्चतुरो मासान् प्राजापत्यञ्चरेन्नरः॥
समाप्ते गोयुगं दद्याद्दत्त्वा ब्राह्मणभोजनं।
पराकेण नरो नित्यं यः क्षिपेत् वार्षिकीं सकृत्॥
अर्च्चयित्वाऽच्युतं भक्त्या स गच्छेद्विष्णुलोकतां।

पूर्व्वोक्तं पारणं ।

गोमूत्रयावकाहारी योऽर्चयेच्च क्रतुद्वयं ॥
विष्णुमभ्यर्च्य सद्भक्त्या नरोविष्णुपुरं व्रजेत् ।
समाप्तौ गोवृषं दद्याद्वस्त्रं काञ्चनसंयुतं ॥
शाकमूलफलैर्वापि वर्षारात्रं नयेन्नरः ।
समाप्तौ गोप्रदो भूत्वा स याति विष्णुमन्दिरं ॥
पयोव्रती तथाप्नोति ब्रह्मलोकं सनातनं ।
व्रतान्ते च तथा दद्याद्गामेकाञ्च पयस्विनीं ॥
वर्ज्जयित्वा मधुं यस्तु दधिक्षीरघृतान्वितम् ।
दद्याद्वस्त्राणि सूक्ष्माणि कार्त्तिक्यां गोप्रदो भवेत् ॥
संपूज्य विप्रमिथुनं गौरी मे प्रीयतामिति ।
दद्याच्च काञ्चनं शक्त्या गौरीलोके महीयते ॥
ब्रह्मचर्य्येण यो मासांश्चतुरः क्षपयेन्नरः ।
प्रतिमां काञ्चनीं दद्याद्दम्पत्योर्ब्रह्मलोकभाक् ॥
ताम्बूलवर्ज्जनाद्भोगी रक्तकण्ठश्च जायते ।
समाप्तौ वस्त्रयुग्मन्तु वस्त्रं दद्याद्विजातये ॥
सन्ध्यामौनन्ततः कृत्वा समाप्तौ घृतकुम्भदः ।
वस्त्रयुग्मं तिलान् घण्टां ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥
सारस्वतं पदं याति विद्यावान् धनवान् भवेत् ।
कृत्वा प्रलेपनं शम्भोरग्रतः केशवस्य च ॥
वार्षिकांश्चतुरो मासान् धेनुं दद्यात्पयस्विनीं ।
अश्वत्थं भास्करं गङ्गां प्रणम्यैकश्च वाग्यतः ॥
एकभक्तं नरः कुर्य्याच्चातुर्मास्यमतन्द्रितः ।

व्रतान्ते विप्रमिथुनं पूज्यं धेनुसमन्वितं ।
वृक्षान् हिरण्मयान् दद्यात् सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥
वृक्षानश्वत्थान् ।
घृतेन स्नापनं कृत्वा शम्भोर्वै केशवस्य च ।
अक्षतैश्च समं कुर्य्यात् पद्मं गोमयमण्डले ॥
समाप्तौ हेमकमलन्तिलधेनुसमन्वितं ।
ब्राह्मणाय व्रती दद्याच्छिवलोके महीयते ॥
सन्ध्यादीपप्रदो यस्तु प्राङ्गणे द्विजसत्तम ।
समाप्तौ दीपिकां दद्याच्चकश्चतुरस्रे गृहाङ्गने ॥
वस्त्रयुग्मान्विते वत्स स तेजस्वी भवेदिह ।
वैमानिको भवेद्देवो गन्धर्व्वाप्सरसेवितः ॥
भूमिन्तु भाजनं कृत्वा यो भुङ्क्ते तु ऋतुद्वयं ।
कांस्यपात्रञ्च गां दत्त्वा पृथ्वीशो भवते नरः ॥
पर्णसंस्तरसम्भोजी समाप्तौ कांस्यभाजनं ।
दत्त्वा स्वर्गगतो ब्रह्मन् पूज्यते त्रिदिवौकसा ॥
उपोषणफलं भुङ्क्ते रम्भापलाशवृन्तजैः ।
अन्यानि यान्यभोज्यानि वर्जयेद्विष्णुतत्परः ।
विशुद्धमानसो ब्रह्मन् सर्व्वमेवाक्षयो भवेत् ॥
पादाभिवन्दनं कृत्वा केशवस्य नरोत्तम ।
प्राप्नोत्यतुलमानन्त्यं प्रसन्ने गरुड़ध्वजे ।
तच्छुद्धमनसः पुंसस्तोषं यान्ति दिवौकसः ॥
एवं व्रतानि पुण्यानि जन्मदुःखहराणि च ।
हरिमुद्दिश्य चीर्णानि भुक्तिमुक्तिप्रदानि तु ॥

अष्टम्याञ्च चतुर्द्दश्यां पञ्चम्योरुभयोरपि।
नक्तं समाचरेद्यस्तु दीपं दद्याच्चतुष्पथे॥
प्राङ्गणे तु तथा दीपं दत्त्वा चैव गवाह्निकं।
चातुर्मास्यव्रतं कृत्वा व्रतान्ते गोवृषप्रदः।
स याति भवनं शम्भोः पूजितो देवसत्तमैः।
विष्णोः प्रदक्षिणां कृत्वा शम्भोर्वाथ द्विजोत्तम॥
व्रतान्ते वस्त्रदो भूत्वा दत्त्वा स्वर्गमवाप्नुयात्।
यस्तु वै चतुरो मासान् करोति च जगत्पतेः॥
केशवस्य महाभाग पादपूजां द्विजोत्तम।
स याति वैष्णवं लोकं शाश्वतं नात्र संशयः॥
यस्तु केशवमुद्दिश्य नित्यमेव तिलप्रदः।
तिलत्यागी भवेन्नित्यं चातुर्मास्यमतन्द्रितः॥
समाप्ते तु व्रते विप्र तिलधेनुप्रदो भवेत्।
सर्व्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते।
तदन्ते च भवेद्राजा भारते भूभृताम्वरः॥
गीतन्तु देवदेवस्य केशवस्य शिवस्य च।
करोति नित्यमाप्नोति नरो योगस्य वै फलं॥
व्रतान्ते स व्रती दद्यात् घण्टां देवाय सुस्वरां।
कटुतिक्तकषायांश्च वर्ज्जयेद्यस्तु मानवः॥
स भवेद्रूपसम्पन्नो व्याधिभिर्नाभिभूयते।
व्रतान्ते च द्विजं पूज्यं शक्त्या दद्याच्च दक्षिणां॥
पतितालापमनृतं वर्ज्जयेच्च ऋतुद्वयं।
पादाभ्यङ्गकरो दद्याद्ब्राह्मणानाञ्च भोजनं।

दक्षिणाञ्च यथाशक्त्या स गच्छेद्विष्णुमन्दिरं ॥
यस्तु वै चतुरो मासान् वर्ज्जयेद्वृतमुत्तमं ।
महालावण्यमाप्नोति गात्रसौरभ्यमेव च ॥
व्रतान्ते हरिमुद्दिश्य दत्त्वा ब्राह्मणभोजनं ।
गन्धेन पूज्य गोविन्दं ब्राह्मणाय द्विजोत्तम ।
वस्त्रयुग्मन्ततो दत्त्वा विष्णुलोके महीयते ॥
तेजस्वी जायते विप्र तैलपक्कस्य वर्ज्जनात् ।
विप्रान् सम्भोज्य विप्रर्षे याति लोकञ्च वैष्णवं ॥
यस्त्यजेद्धरिमुद्दिश्य स्नानमुष्णेन वारिणा ।
गङ्गास्नानं कृतन्तेन नित्यमेव न संशयः ॥
यस्तु संस्मरते नित्यं गङ्गां भागीरथीं शुभां ।
स नित्यं स्नानमाप्नोति गङ्गायां नात्र संशयः ॥
यस्तु सुप्ते हृषीकेशे पुष्पाणि च विवर्जयेत् ।
व्रतान्ते तु भवेद्दातः स व्रती स्वर्णपुष्पदः ॥
स याति भुवनं शुभ्रं विष्णोरमिततेजसः ।
प्रसुप्ते तु जगन्नाथे शिवस्याङ्गणमर्च्चयेत् ।
पञ्चवर्णैस्तु यो नित्यं स्वस्तिकैः पद्मकैस्तथा ।
स याति रुद्रलोकं हि गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥
यस्तु सुप्ते हृषीकेशे पूजयेन्मधुसूदनं ।
सायं प्रातस्तु भुक्त्वा वै प्राजापत्यपुरं व्रजेत् ॥
यस्तु सुप्ते हृषीकेशे तृतीयायां नरोत्तमं ।
प्रतिपक्षं गुडं दद्याद्गौरी मे प्रीयतामिति ॥
समाप्ते विप्रमिथुने पूजयित्वा द्विजोत्तमं ।

वस्त्रैराभरणैश्चैव भोजयित्वा भवेत् सुखी ॥
पञ्चम्यां प्रतिपच्चन्तु तण्डुलैः पूरितं घटं।
यः प्रदद्याद्व्रतस्यान्ते पूजयित्वा द्विजोत्तमान्॥
वस्त्रैराभरणैश्चैव तण्डुलप्रस्थमेव च।
दत्त्वा सारस्वतं याति पदं गन्धर्व्वपूजितं।
विद्वान् स पूर्णविभवो धनधान्यसमन्वितः॥
रूपवान् गुणवांश्चैव रक्तकण्ठश्च जायते।
चतुर्द्दश्यान्तु संपूज्य उमामाहेश्वरं विभुं॥
प्रतिपच्चन्तु संपूज्य पुष्पैर्गन्धैर्निवेदनैः।
चातुर्मास्ये ततो वृत्ते रौप्यं कृत्वा वृषोत्तमं।
तत्रोपरि च सौवर्णमुमामाहेश्वरं विभुं॥
पूजयित्वा द्विजश्रेष्ठ ब्राह्मणाय निवेदयेत्।
व्रती स याति भुवनं विमानेन हि शाङ्करं।
कल्पान्ते तत्र वै स्थित्वा पृथ्वीपालो भवेदिति॥

भविष्योत्तरात्।

एवमादिव्रतैः पार्थ तोषमायाति तोषितः।
केशवः क्लेशहा कृष्णः कंसकेशिनिसूदनः॥
सुप्ते यस्मिन्निवर्त्तन्ते क्रियाःसर्व्वाः शुभोदयाः।
विवाहव्रतबन्धादिचूड़ासंस्कारबोधनं।
यज्ञगृहप्रवेशश्च प्रतिष्ठादेवभूभृतां॥
मुख्यानि यानि कर्म्माणि न स्युः सुप्ते जगत्पतौ।
असंक्रान्तन्तथा मासं दैवे पैत्रे च कर्म्मणि॥
मलमासमशौचञ्च वर्जयेन्मतिमान्नरः।

प्राप्ते भाद्रपदे मासि एकादश्यां सितेऽहनि ॥
कटिदानं भवेद्विष्णोर्महापातकनाशनं ।
कटिदानमिति शयितस्य विष्णोरङ्गपरिवृत्तिकरणं ।
यदेतद्देवशयनं तस्येदङ्कारणं शृणु ॥
पुरा तपःप्रभावेण तोषितोऽहं महाभुज ।
प्रार्थितः स्थानमङ्गेषु प्रीत्यर्थं योगनिद्रया ॥
ततो मयात्मनो देहं तत् स्थानार्थं निरीक्षितं ।
उरो लक्ष्म्या मम व्याप्तं हृदयं कौस्तुभेन तु ॥
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गैर्बाहवोऽथाहवक्षमाः ।
अधो नाभेर्निरुद्धं मे वैनतेयेन पक्षिणा ।
मुकुटेन शिरो रुद्धं कुण्डलाभ्यां श्रुतिद्वयं ॥
ततो दत्तं मया पार्थ नेत्रयोः स्थानमादरात् ।
चतुरो वार्षिकान्मासान् वसुः प्रीतो भविष्यति ॥
योगनिद्रापि तद्वाक्यं श्रुत्वा प्रीताभवत्तु सा ।
चकार लोचनावासमतोऽर्थं मे युधिष्ठिर ॥
अहञ्च ताम्भावयित्वा मानयाम्यात्मसंस्थितां ।
योगनिद्रां महानिद्रां शेषाहिशयने स्वपन् ।
क्षीरोदतोयवीच्योवैर्धौतपादः समाहितः ॥
लक्ष्म्याः कराम्बुजैः श्लक्ष्णैर्मृद्यमानपदद्वयः ।
तस्मिन् काले च मद्भक्तो यो मासांश्चतुरः क्षिपेत् ॥
व्रतैरनेकैर्नियमैः पाण्डव श्रेयसेऽनघ ।
कल्पमेकं विष्णुलोके पूज्यमानो नरो वसेत् ॥
ततो विबुध्यते देव शङ्खचक्रगदाधरः ।

ब्रह्म पुराणात्। एकादश्याञ्च शुक्लायां कार्त्तिके मासि केशवं।
प्रसुप्तं बोधयेद्रात्रौ श्रद्धाभक्तिसमन्वितः॥
नृत्यैर्गीतैस्तथा वाद्यैः ऋग्यजुःसाममङ्गलैः।
वीणापटहशब्दैश्च पुराणश्रवणेन च॥
वासुदेवकथाभिश्च स्तोत्रैरन्यैश्च वैष्णवैः।
सुभासितैरिन्द्रजालैर्भूरिशोभाभिरेव च॥
पुष्पैर्धूपैश्च नैवेद्यैर्दीपैरुच्चैः सुशोभनैः।
होमैर्भक्ष्यैरपूपैश्च फलैः शर्करपायसैः॥
इक्षोर्विकारैर्मधुरैर्द्राक्षाखर्जूरैः सदाड़िमैः।
कुठेरकस्य मञ्जर्य्या मालत्या कमलेन च॥

कुठेरकः कृष्णतुलसी।

द्रव्याभ्यां श्वेतरक्ताभ्याञ्चन्दनाभ्याञ्च सर्व्वदा।
कुङ्कुमालक्तकाभ्याञ्च रक्तसूत्रैः सकङ्कणैः॥
तथा नानाविधैः पुष्पैर्द्दैवैर्वीर क्रमाहृतैः।
रक्तयुक्तेन प्रथमं माल्येन ग्रहणं तथा॥
तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां द्वादश्यामरुणोदये।
आदौ घृतेनेक्षवेण मधुना स्नापयेत्ततः॥
दध्ना क्षीरेण च ततः पञ्चगव्येन शास्त्रवत्।
उद्वर्त्तनं माषचूर्णं मसूरामलकानि च॥
सर्षपाश्च पियङ्गुश्च सर्व्वबीजानि काञ्चनं।
मङ्गलानि यथाकामं रत्नानि च कुशोदकं॥
एवं संशोध्य देवेशं दद्याद्गोरोचनां शुभां।
ततस्तु कलशा देया यथा प्राप्ताः स्वलङ्कृताः॥

जातीपल्लवसंयुक्ताः सफलाश्च सकाञ्चनाः ।
पुण्याहवेदशब्देन वीणावेणुरवेण च ॥
एवं संस्नाप्य गोविन्दं स्वनुलिप्तं स्वलङ्कृतं ।
सुवाससन्तु सम्पूज्य सुमनोभिः सुकुङ्कुमैः ।
दीपैर्धूपैर्मनोज्ञैश्च पायसेन च भूरिणा ॥
पानेभ्यश्चान्नदानैश्च होमैः पुष्पैः सदक्षिणैः ।
वासोभिर्भूषणैरन्यैर्गोभिश्चैव मनोजवैः ॥
ब्राह्मणाः पूजनीयाश्च विष्णोर्हृद्याश्च मूर्त्तयः ।
यत्तु शिष्टामृतं पश्चाद्भोक्तव्यं ब्राह्मणैः सह ॥

भविष्योत्तरात् ।

कार्त्तिके शुक्लपक्षस्य एकादश्यां समाहितः ॥
मन्त्रेण चैव राजेन्द्र देवमुत्थापयेद्द्विजः ।

मन्त्रास्तु वराहपुराणोक्ताः ।

ओं ब्रह्मेन्द्ररुद्राग्निकुवेरसूर्य-
सोमादिभिर्वन्दितवन्दनीयः ।
बुध्यस्व देवेश जगन्निवास
मन्त्रप्रभावेण सुखेन देव ॥
इयं तु द्वादशी देव प्रबोधार्थन्तु निर्म्मिता ।
त्वयैव सर्व्वलोकानां हितार्थं शेषशायिना ॥
त्वयि सुप्ते जगन्नाथ जगत्सुप्तं भवेदिदं ।
उत्थिते चेष्टते सर्व्वमुत्तिष्ठोत्तिष्ठ माधव ॥
गता मेघा वियच्चैव निर्म्मलं निर्म्मला दिशः ।
शारदानि च पुष्पाणि गृहाण मम केशव ॥

इदं विष्णुरिति प्रोक्तो मन्त्रमुत्थापने हरेः।
समुत्थिते ततो विष्णौ प्रवर्त्तन्ते शुभाः क्रियाः॥
तत्रैव देवदेवस्य स्नानन्तु पूर्व्ववद्भवेत्।
महातूर्य्यरवै रात्रौ भ्रामयेद्देवमुत्थितं॥
विमानाकारयानेन नगरे पार्थिवः स्वयं।
दीपोद्योतकरे मार्गे नृत्यगीतजनाकुले॥
यो यो दामोदरं पश्येदुत्थितं धरनीधरं।
स स प्राणी महाराज सर्व्वः स्वर्गाय कल्पयेत्॥
रात्रौ प्रजागरे देव एकादश्यां सुरालये।
प्रभाते विमले स्नात्वा द्वादश्यां विष्णुमर्चयेत्॥
होमयेद्धव्यवाहञ्च होमद्रव्यैर्घृतादिभिः।
ततोविप्रान् नृपश्रेष्ठ भोजयेदन्नविस्तरैः॥
घृतक्षीरदधिक्षौद्रकासारगुड़मोदकैः।
यजमानयुतस्तुष्टस्त्वरां हास्यं विवर्जयेत्॥
एकादशद्वशाष्टौ वा पञ्च द्वौ वा कुरूत्तम।
चर्च्चयेच्चन्दनैर्गन्धैर्वस्त्रमाल्यादिभिर्द्विजान्॥
शास्त्रोक्तविधिना पार्थ श्रद्धया विधितत्परः।
पितरस्तर्पितास्तेन तोषितस्तेन केशवः॥
न हि कश्चित्समः साक्षाद्धर्म्मः श्राद्धेन पाण्डव।
पितॄनुद्दिश्य यत्किञ्चिद्दीयते श्रद्धयान्वितैः।
तत्प्रीत्या भुज्यते देवैर्ब्रह्मादिभिरसंशयं॥
अतः श्राद्धोक्तविधिना व्रतान्ते पूजयेद्द्विजान्।
आचान्ते तु ततोदद्यात्यक्तं यत्किञ्चिदेव हि॥

स्ववाचा स्वमनोभीष्टं स्नेहधान्यफलादिकं ।
चतुरो वार्षिकान् मासान् नियमो येन यः कृतः ॥
कथयित्वा द्विजेभ्यस्तद्दद्याद्भक्त्या सदक्षिणं ।
दत्त्वा विसर्जयेद्विप्रान् ततो भुञ्जीत वाग्यतः ॥
यस्त्यक्त्वाचतुरो मासान् प्रवृत्तिं तस्य वाचयेत् ।
य एनं कुरुते पार्थ सोऽनन्तफलभाग्भवेत् ॥
प्रतिवर्षञ्च यः कुर्य्यादेवं संस्मरते हरिं ॥
देहान्तेऽतिप्रदीप्तेन विमानेनार्कवर्च्चसा ।
मोदते विष्णुलोकेऽसौ यावदाहुतसंप्लवं ॥
यस्याविघ्नैः समाप्येत चातुर्मासीव्रतं नृप ।
स भवेत् कृतकृत्यस्तु तुष्टो यस्य जनार्द्दनः ॥
यो देवशयने भक्त्या अनुष्ठानं समाचरेत् ।
गङ्गादितीर्थयात्रायास्तुल्यं फलमवाप्नुयात् ॥
उत्थानं वापि कृष्णस्य स हरेर्लोकमाप्नुयात् ।
शृणोति ध्यायति स्तौति समाख्यात्यनुमोदते ।
व्रतमेतन्नरो भक्त्या स गच्छेद्वैष्णवं पुरं ॥
दुग्धाब्धिभोगिशयने भगवाननन्तो
यस्मिन् दिने स्वपिति वाथ विबुध्यते वा ।
तस्मिन्ननन्यमनसामुपवासभाजां
पुंसान्ददाति सुगतिङ्गरुड़ाङ्कसङ्गः ।

इति देवशयनोत्थानविधिः ।

---

आषाढ़ादिचतुर्मासानभ्यङ्गं वर्जयेन्नरः।
पारिते च पुनर्दद्यात्तिलतैलयुगं घटं॥
भोजनं पायसाज्यञ्च स याति भवनं विभोः।
लोकप्रीतिकरं ह्येतत् स्नेहव्रतमिहोच्यते॥

इति पद्मपुराणोक्तं स्नेहव्रतं।

———000———

आषाढ़ादिचतुर्म्मास्यां वर्ज्जयेन्नखकृन्तनं।
वृन्ताकभक्षणञ्चैव मधुसर्पिर्घटान्वितं॥
कार्त्तिक्यान्तत्पुनर्हैमं ब्राह्मणाय निवेदयेत्।
रुद्रलोकमवाप्नोति शिवव्रतमनुत्तमं॥

इति पद्मपुराणोक्तं शिवव्रतं।

———000———

महाफलानि यस्त्यक्त्वा चातुर्मास्यं द्विजातये।
हैमानि कार्त्तिके दद्याद्गोयुगेन समं नरः॥
सितवस्त्रयुगेनाथ सम्पूर्णाज्यघृतेन च।
एतत् फलव्रतं नाम सर्व्वकामफलप्रदं॥

इति पद्मपुराणोक्तं फलव्रतं।

———00———

आषाढ़ादिचतुर्म्मासान् प्रातः स्नायी भवेन्नरः।
विप्राय भोजनं दत्त्वा कार्त्तिक्याङ्गोप्रदो भवेत्॥
घृतकुम्भस्तथा दद्यात् सर्व्वकामानवाप्नुयात्।
वैष्णवव्रतमित्युक्तं विष्णुलोकप्रदायकं॥

इति पद्मपुराणोक्तं वैष्णवव्रतं।

अश्वं वै मार्गशीर्षे तु यस्तु पिष्टमयन्ददेत् ।
शिवं सम्पूज्य विधिवत् सूर्य्यलोके महीयते ॥
दिव्यं वर्षसहस्रन्तु तदन्ते स्यान्महीपतिः ।
पौषे पिष्टमयौ दन्तौ शिवस्याग्रे निवेदयेत् ॥
त्रिःसप्तकुलसंयुक्तः शिवलोके महीयते ।
दिव्यं वर्षसहस्रन्तु तदन्ते स्यान्महीपतिः ॥
चक्रवर्त्ती महावीरः सर्वैश्वर्य्यसमन्वितः ।
माघे चाश्वरथं यस्तु शिवाय विनिवेदयेत् ॥
उद्धरेत्सोऽपि नरकात् स्वपितॄन् रौरवादितः ।
शिवलोके तु वसति दिव्यवर्षायुतत्रयं ॥
तदन्ते तु महीं कृत्स्नां न च खण्डां भुनक्ति सः ।
फाल्गुने वृषयूथन्तु पिष्टोत्थं रुद्रसंख्यया ॥
निवेद्य तु शिवस्याग्रे त्रैलोक्याधिपतिर्भवेत् ।
दिव्यं वर्षसहस्रन्तु तदन्ते स्यान्महीपतिः ॥
चक्रवर्त्ती महावीरः सर्वैश्वर्य्यसमन्वितः ।
चैत्रे गृहमिन्दुमयं दासदासीसमन्वितं ॥
गृहोपकरणैर्युक्तं विचित्राङ्गणचर्चितं ।
पूजान्ते परया भक्त्या शिवाय विनिवेदयेत् ॥
दिव्यवर्षशतान्यष्टौ रुद्रलोके महीयते ।
जातिस्मरस्तदन्ते तु चक्रवर्त्तित्वमाप्नुयात् ।
मासि वैशाखसंज्ञे तु सप्तव्रीहिसरावकान् ॥
शिवाय पुरतो दद्यात् पूजान्ते प्रीतिचेतसा ।
स याति शिवसायुज्यं बन्धुभिः सहितो नरः ॥

फलानां द्वे शते यस्तु गुग्गुलन्तु दहेत्सुधीः ।
ज्यैष्ठे मासि शिवस्याग्रे पूजान्ते भक्तिसंयुतः ॥
त्रिःसप्तकुलसंयुक्तः शिवलोके महीयते ।
तदन्ते पृथिवीं भुङ्क्ते न च खण्डां ससागरां ॥
बलिमण्डलकं कार्य्यं आषाढ़े शूलपाणिनः ।
नानाभक्षैर्विरचितं नानाभक्ष्यसमन्वितं ॥
नानाचित्रसमाकीर्णं कर्त्तव्यं बलिमण्डलं ।
संपूज्य परमेशानं ततस्तस्य निवेदयेत् ॥
पितॄन् पितामहांश्चैव उद्धृत्य प्रपितामहान् ।
पुत्रपौत्रसमायुक्तः शिवलोके महीयते ॥
दिव्यवर्षसहस्राणि तदन्ते पृथिवीपतिः ।
श्रावणे मासि देवस्य त्रिमानं पुष्पसम्भवं ॥
पूजावसाने दातव्यं विचित्ररचनाकुलं ।
वर्षायुतप्रमाणन्तु रुद्रलोके महीयते ॥
योगीशो जायते शान्तो येन मोक्षं व्रजेत्तु सः ।
मासि भाद्रपदे यस्तु रुद्रपूजां चरेत्तदा ॥
गुग्गुलं प्रथमं धूपं सुरदारु ततो दहेत् ।
विल्वबीजं घृतं तद्वत् तथा नानाघृतान्वितं ॥
पञ्चमं ह्यगुरुन्देयं धूपं सर्व्वात्मना विभोः ॥
मासमेकन्दहेद्यस्तु नैरन्तर्य्येण भक्तितः ।
याति सायुज्यतां शम्भोः सपुत्रः सहबान्धवः ॥
यस्त्वर्कपत्रपुटकं पूरयेत्क्षीरसर्पिषा ।

(१) पञ्च इति क्वचित् पाठः ।

मासमब्दयुगं शम्भोर्नैरन्तर्येण भक्तितः ॥
तस्य पुण्यफलं वक्तुं न शक्तोऽस्मि षडानन ।
तत्कुले पतिता ये तु डिम्भाडिम्भहता पुनः ॥
ते प्रयान्ति महाभागा रुद्रलोके यथासुखं ॥
वर्षायुतायुतं साग्रं तदन्ते तु नरेश्वराः ।
जायन्ते शिवभक्ताश्च ज्ञानिनो वीतकल्मषाः ॥
शिवदीक्षां समासाद्य ते यान्ति परमाङ्गतिं ।
वस्त्राहतमिक्षुरसं पुटकन्तु शिवाग्रतः ।
पूजान्ते दापयेद्यस्तु मासि प्राप्ते च कार्त्तिके ॥
देहान्ते रुद्रलोके तु मोदते सह बान्धवैः ।
व्रतान्ते चैव संपूज्य शिवभक्तान् यथाविधि ॥
हैमवस्त्रान्नपानैश्च वित्तशाठ्यं विना सुत ।

## इति कालोत्तरोक्तं शिवव्रतं ।

———०३०———

एकभक्तेन या नारी कार्त्तिकन्तु क्षपेन्नृप ।
क्षमाहिंसादिनियमैः सञ्जाता ब्रह्मचारिणी ॥
गुडान्नमिश्रं शाल्यन्नं भास्कराय निवेदयेत् ।
पुष्पाणि करवीराणि गुग्गुलं साज्यमादरात् ॥
सप्तम्याञ्चाथषष्ठ्यां वा उपवासरतिर्भवेत् ।
पक्षयोरुभयोरेव श्रद्धया परयान्वितः ॥
इन्द्रनीलप्रतीकाशैर्विमानैः सार्व्वकामिकैः ।
नारीयुगशतं साग्रं सूर्य्यलोके महीयते ॥
तथा च सर्व्वलोकेषु भोगानासाद्य यत्नतः ।

तस्मादागत्य लोकेऽस्मिन् यथेष्टं विन्दते पतिं ॥
क्षमा सत्यन्दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
सूर्य्यपूजाग्निहवनं सन्तोषस्तेयवर्ज्जनं ॥
सर्व्वव्रतेष्वयं धर्म्मः सामान्येन सदा स्थितः।
मार्गशीर्षे शुभे मासि व्योमपिष्टेन निर्म्मितं ॥
गन्धमाल्यैरलङ्कृत्य भास्कराय निवेदयेत्।
गैरिकेयैर्महाख्यानैरप्सरोगणसेवितैः॥
मासैकादशसाहस्रं सूर्य्यलोके महीयते।
गैरिकेयैः महास्वर्णैः।
क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन् राजानं पतिमाप्नुयात्।
पौषे तु गरुडङ्कृत्वा भानवे विनिवेदयेत् ॥
गन्धमाल्यैरलङ्कृत्य भास्करं विबुधोत्तमं।
ताम्रपात्रेऽथ कांस्ये वा तत्सर्व्वं विनिवेदयेत्।
महापद्मकदानेन दिव्यगन्धप्रवाहिना॥
अथैकादशसाहस्रं सूर्य्यलोके महीयते।
सम्प्राप्यैवं क्रमाल्लोकं यथेष्टं विन्दते पतिं॥
माघे रथञ्चाश्वयुतं दीपमाल्यविभूषितं।
पैष्टम्भानुसमायुक्तं कृत्वायतनमानयेत् ॥
विमानैः सूर्य्यसङ्काशैर्गीतवाद्यसमाकुलैः।
सप्तैकादशसाहस्रं सूर्य्यलोके महीयते।
पुनरेत्य इमा लोकं यथेष्टं विन्दते पतिं॥
देवार्चां फाल्गुने मासि कृत्वा पिष्टमयीं रवेः।
गन्धमाल्यैरलङ्कृत्य स्थापयेत् भास्करालये॥

विमानैः सूर्य्यसङ्काशैर्गीतवाद्यसमाकुलैः।
वर्षायुतशतं साग्रं सूर्य्यलोके महीयते॥
क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन् यथेष्टं विन्दते पतिं।
कृत्वा चणं तथा चत्रे गन्धमाल्योपशोभितं॥
स्थाप्य पात्रे यथोक्तन्तु भास्कराय निवेदयेत्।
शरदिन्दुप्रतीकाशैर्विमानैः सार्व्वकामिकैः॥
वर्षायुतशतं साग्रं सूर्य्यलोके महीयते।
कर्म्मक्षयादिहागत्य पुत्रपौत्रसमन्विता॥
अभीष्टं पतिमासाद्य तत्र भोगान् सुदुर्लभान्।
तन्दुलाढ़कपिष्टेन कृत्वा वै मेरुपर्व्वतान्॥
निम्नभागं समायुक्तं सर्व्वधातुविभूषितं॥
नानालङ्कारसम्पन्नं नानामाल्यविभूषितं।
सर्व्वरत्नसमायुक्तं स्थापयेद्भास्करालये॥
महाव्योमव्रतं ह्येतत् वैशाखे यः समाचरेत्।
नानाविधैर्विमानैश्च सूर्य्यलोके महीयते॥
क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन् क्रीड़ते मानसेऽचले।
पिष्टेन पङ्कजं कृत्वा ज्यैष्ठे मासि सवेदिकं॥

पङ्कजं पद्मं।

पात्रैः संपूज्य गन्धाद्यैर्नानामाल्यविभूषणैः।
शुद्धस्फटिकसङ्काशैर्विमानैः सार्व्वकामिकैः।
वर्षकोटिशतं साग्रं सूर्य्यलोके महीयते॥
क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन् राजानं पतिमाप्नुयात्।
विस्ताय च तथा पद्ममाषाढ़े पैष्टमुत्तमं॥

सर्व्वबीजरसैः पूर्णं कृत्वा तु शुभलक्षणं।
नानाकेसरगन्धाढ्यं सर्व्वरत्नसमन्वितं॥

भास्कराय निवेदयेदिति शेषः।

हंसवाहैर्महायानैः सर्व्वभोगान्विते नृप॥
वर्षकोटिशतं साग्रं ब्रह्मलोके महीयते।

ब्रह्मलोके सूर्य्यलोके।

क्रमाल्लोकमिमं प्राप्य राजानं विन्दते पतिं।
निवेदयेत्तु सूर्य्याय श्रावणे तिलपर्व्वतं॥
स्वच्छन्दगामिभिर्य्यानैर्नानारत्नविभूषितैः।
वर्षकोटिशतं साग्रं सूर्य्यलोके महीयते॥
सम्प्राप्य विविधान् भोगान् बह्वाश्चर्य्यसमन्वितान्।
क्रमाल्लोकमिमं प्राप्य राजानं विन्दते पतिं॥
कृत्वा भाद्रपदे मासि व्योमशालिमयं नृप।
वितानध्वजवस्त्राद्यं नानामाल्यविभूषितं॥
निशाकरकरप्रख्यैर्महायानैः सुशोभनैः।
वर्षकोटिसहस्राणि सूर्य्यलोके महीयते॥
क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन् राजानं विन्दते पतिं।
कृत्वा चाश्वयुजे मासि विपुलं धान्यपर्व्वतं।
सुवर्णवस्त्रगन्धाढ्यं सूर्य्यस्याग्रे निवेदयेत्॥
सा विचित्रैर्महायानैर्वरभोगसमन्वितैः।
वर्षकोटिसहस्राणि सूर्य्यलोके महीयते॥
अस्मिन् लोकमनुप्राप्ता राजानं विन्दते पतिं।

इति भविष्यत्पुराणोक्तं स्त्रीपुत्रकामावाप्तिव्रतं।

पुलस्त्य उवाच ।

आषाढ़शुक्लपक्षान्ते भगवान् मधुसूदनः ।
भोगिभोगे निजां मायां योगनिद्रान्तु मानयेत् ॥
शेतेऽसौ चतुरो मासान् यावद्भवति कार्त्तिकी ।
विशिष्टास्तु प्रवर्त्तन्ते तदा यज्ञादिकाः क्रियाः ॥
तत्राषाढ़सितान्ते तु यो नरो दिनपञ्चकं ।
अधःशायी वहिःस्नायी मासमभ्यङ्गवर्जितः ॥
समस्तमन्दिरावर्जी सक्तन्नक्ताशनो भवेत् ।
ब्रह्मचारी जितक्रोधो जपहोमपरायणः ।
हरिं संपूजयेन्नित्यं गन्धमाल्यान्नसम्पदा ॥
गीतवाद्यैस्तथा नृत्यैर्दीपमालाभिरेव च ।
सार्द्धनां जलधेनूनां प्रदानेन तथैव च ।
तथा कार्त्तिक शुक्लान्ते तृतीये पारणं भवेत् ॥
प्रस्वापे च प्रबोधे च दिनानि दश वै द्विज ।
हिंसात्मकैस्तु किन्तस्य यज्ञैः कार्य्यं महात्मनः ॥
प्रस्वापे च प्रबोधे च पूजितो येन केशवः ।
दशाहमेतत् कृत्वा तु व्रतं विष्णुपरो नरः ॥
अग्निष्टोममवाप्नोति कुलञ्चैव समुद्धरेत् ।
अग्निर्मुखं देवतानामग्निर्देवश्च कृत्तिका ॥
कार्त्तिकश्चाग्निदैवत्यो मासो देवमुखः स्मृतः ।
आश्वयुज्यामतीतायां यावत्स्याद्द्विज कार्त्तिकी ॥
व्रतं दशाहाभिहितं कृत्वा स्वर्गे महीयते ।
पौण्डरीकमवाप्नोति कुलमुद्धरति स्वकं ॥

प्रत्यहं दीपदानेन कान्तिकेऽभिमुखीभवेत्।
चक्षुष्मान् ब्राह्मणश्रेष्ठस्तथा सर्व्वत्र पूजितः॥
एतावन्तं तथाकालं सर्व्वमासविवर्जकः।
स्वर्गलोकात्परिभ्रष्टो मानुषे सुखमाप्नुयात्॥
आरोग्यरूपसम्पत्त्या युक्तश्च सुभगो भवेत्।
प्रसुप्ते देवदेवेशे दशराचोदितं व्रतं॥
कृत्वा तु चतुरो मासान् प्रसुप्ते मधुसूदने।
अश्वमेधफलं प्राप्य नाकपृष्ठे महीयते॥
असिधाराव्रतं कृत्वा तथा संवत्सरं नरः।
सर्व्वयज्ञानवाप्नोति विष्णुलोकञ्च गच्छति॥
येन येन तु कामेन खड्गधाराव्रतञ्चरेत्।
तं तङ्काममवाप्याथ विष्णुलोके महीयते॥
तथा समर्थो भवति दाने च वरशापयोः।
आदित्यतेजा भवति नात्र कार्य्या विचारणा॥

दाल्भ्य उवाच।

असिधाराव्रतविधिं समाचक्ष्व महाद्युते।
एतन्मे संशयं छिन्धि त्वं हि सर्व्वविदुच्यते॥

पुलस्त्य उवाच।

स्नातश्चालङ्कृतस्रग्वी भुक्तवान्मांसवर्जितं।
कृतदैवत्यपूजश्च स्त्रीसहायः स्वपेन्निशि॥
ब्रह्मचारी द्विजश्रेष्ठ खड्गधाराव्रतं चरेत्।
अपूर्व्वञ्चाथ पूर्व्वञ्च समालिङ्ग्य स्वपेन्निशि॥
ब्रह्मचारी शतगुणं फलमाप्नोत्यसंशयं।

अतीवदुष्करमिदं खड्गधाराव्रतं स्मृतं ॥
कृत्वा व्रतं द्वादशवत्सराणि
त्रैलोक्यराज्यं ध्रुवमाप्नुयाच्च ।
भुक्त्वाचिरन्ते द्विजमुख्यमन्ते
सायुज्यमायाति जनार्दनस्य ॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तमसिधाराव्रतं ।

---

मार्कण्डेय उवाच ।

इदमन्यत् प्रवक्ष्यामि चतुर्मूर्त्तिव्रतन्तव ।
विद्याकामेन यत्कार्य्यं नरेण सुविपश्चिता ॥
बहिः स्नानं नरः कृत्वा कृतऋग्वेदपूजनः ।
ऋग्वेदं शृणुयान्नित्यं मासद्वयमतन्द्रितः ॥
चैत्रादारभ्य धर्म्मज्ञो नित्यं नक्ताशनो भवेत् ।
ततो नृपवर प्राप्ते ज्यैष्ठस्य चरमेऽहनि ॥
वासोयुगं हिरण्यञ्च तथा धेनुं पयस्विनीं ।
घृतपूर्णं कांस्यपात्रं सहिरण्यन्तु दक्षिणां ॥
आषाढ़ादिषु मासेषु यजुर्वेदव्रतं चरेत् ।
अश्विनादिषु मासेषु सामवेदव्रतं चरेत् ॥
तथाप्यथर्वव्रतं नाम पौषादिषु विधीयते ।
सर्वेषु सर्व्वंकर्त्तव्यं ऋग्वेदव्रतकीर्त्तितं ॥
वेदात्मनो वासुदेवस्य पूजां
कृत्वा नरो द्वादशवत्सराणि ।

विष्णोर्लोकं याति लोकैर्विशिष्टं
यस्मिन् प्राप्ते सर्व्वदुःखं जहाति ॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं वेदव्रतं।

———000———

मार्कण्डेय उवाच।

इदमन्यत् प्रवक्ष्यामि चतुर्मूर्त्तिव्रतं तव।
चैत्रस्यामलपक्षे तु सोपवासो जितेन्द्रियः॥
वासुदेवन्तु संपूज्य ब्राह्मणाय विचक्षणः।
दक्षिणार्थन्तु वै दद्याद्द्रव्यं यज्ञोपयोगिवित्॥
सङ्कर्षणन्तु संपूज्य वैशाखे धर्म्मवत्सल।
क्षत्रियाय तथा दद्याद्द्रव्यं सांग्रामिकं शुभं॥
प्रद्युम्नं पूजयित्वा तु ज्यैष्ठे मासि द्विजोत्तम।
वैश्याय दद्याद्वाणिज्ये द्रव्यं यदुपयुज्यते॥
कृत्वानिरुद्धपूजान्तु मास्याषाढ़े यथाविधि।
कर्म्मोपकरणं(१) द्रव्यं दद्याच्छूद्राय भार्गव॥
मासैश्चतुर्भिर्भवति पारणं प्रथमं द्विज।

कृत्वा नरस्त्रिष्वथ पारणानि
लोकं समाप्नोति पुरन्दरस्य।
तस्मोथ राजन् सुचिरञ्च कालं
मानुष्यमासाद्य भवेत् समृद्धः॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं वर्णव्रतं।

---

(१) कामाय कारणमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

मार्कण्डेय उवाच ।

इदमन्यत् प्रवक्ष्यामि चतुर्मूर्त्तिव्रतन्तव ।
नित्यञ्चतुर्षु मासेषु श्रावणाद्येषु यादव ॥
चतुःसागरचिह्नानि पूर्णकुम्भांस्तु पूजयेत् ।
चतुरात्मा हरिर्ज्ञेयः सागरात्मा विचक्षणैः ॥
स्नानं समाचरेन्नित्यं नदीतोयेन यादव ।
होमञ्च प्रत्यहं कुर्य्यात् सततं तैलवर्जितं ॥
कार्त्तिकस्यावसानाह्नि पूजयित्वा द्विजोत्तमान् ।
तैलं दत्त्वा तु विप्राय नाकपृष्ठे महीयते ।
सर्व्वकाम समृद्धस्य यज्ञस्य लभते फलं ॥

मानुष्यमासाद्य महीपतिश्च
भुक्त्वा महीं सागरमेखलान्तां ।
तत्रापि धर्म्मस्य मनोनिविष्टो
भवत्यरोगश्च बलेन युक्तः ॥

## इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं सागरव्रतं ।

———000◎000———

मार्कण्डेय उवाच ।

इदमन्यत् प्रवक्ष्यामि चतुर्मूर्त्तिव्रतन्तव ।
वासुदेवस्य गरुड़स्तालः सङ्कर्षणस्य च ॥
प्रद्युम्नस्य तथा चिह्नं मकरो व्यादिताननः ।
देवानिरुद्धो धर्म्मज्ञ ऋष्यकेतुः प्रकीर्त्तितः ॥
पीतं नीलं तथा श्वेतं रक्तञ्च यदुनन्दन ।

तेषान्तु कथितं वासः पताका तादृगिष्यते ॥
यस्य देवस्य यच्चिह्नं स चात्मना प्रकीर्त्तितः।
पताका तादृशी तस्य वसनन्तस्य तादृशं।
चैत्रेषु प्रत्यहं मासि गरुड़ं पूजयेन्नरः ॥
पीतेन गन्धनैवेद्यमाल्यवस्त्रादिना द्विज।
वैशाखे च तथा मासि तालं संपूजयेत्सदा ॥
नीलेन गन्धनैवेद्यमाल्यवस्त्रादिना द्विज।
ज्यैष्ठे च प्रत्यहं मासि मकरं पूजयेत्सदा ॥
श्वेतेन गन्धनैवेद्यमाल्यवस्त्रादिभिर्द्विज।
ऋष्यं संपूजयेद्देवं मास्याषाढ़े यथाविधि।
रक्तेन गन्धनैवेद्यमाल्यवस्त्रादिना द्विज ॥
बहिः स्नानं तथा कुर्य्याद्वह्निसंपूजनं तथा।
नित्यञ्च कुर्य्याद्धर्मज्ञ तथा ब्राह्मणभोजनं(१)।
पारनार्थं तथा कुर्य्यान्नक्तं तैलविवर्जितं ॥
अधःशयी तथा च स्याद् ब्रह्मचारी सदा भवेत्।
व्रतमेतन्नरः कुर्य्यात् सम्यङ्मासचतुष्टयं ॥
ब्राह्मणान् पूजयेच्छक्त्या आषाढ़े चरमेऽहनि।
वस्त्राण्युक्तानि धर्मज्ञ दद्याद्विप्रेषु दक्षिणां ॥
कृत्वैकं पारणं राजन् स्वर्गलोके महीयते।
द्वितीयं पारणं कृत्वा शक्रलोके महीयते ॥
तृतीयं पारणं कृत्वा ब्रह्मलोके महीयते।
कृत्वा पारणषट्कन्तु रुद्रलोके महीयते ॥

---

(१) ब्राह्मणतर्पणमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

विष्णुलोकमवाप्नोति कृत्वा द्वादश पारणं।

ध्वजव्रतं द्वादशवत्सराणि
कृत्वा नरो भार्गववंशमुख्य।
सायुज्यमायाति जनार्द्दनस्य
देवस्य विष्णोः परमेश्वरस्य॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं ध्वजव्रतं।

——oo@oo——

मार्कण्डेय उवाच।

इदमन्यत् प्रवक्ष्यामि चतुर्मूर्त्तिव्रतन्तव।
शङ्खचक्रं गदापद्मं चतुरात्मा प्रकीर्त्तितः॥
वासुदेवः स्मृतः शङ्खः चक्रः सङ्कर्षणस्तथा।
प्रद्युम्नश्च गदापद्ममनिरुद्धोजगद्गुरुः॥
श्रावणादिषु मासेषु वहिःस्नातस्तु नक्तभाक्।
तेषान्तु पूजनं कुर्य्यात् प्रतिमासमनुक्रमात्॥
गन्धमाल्यनमस्कारदीपधूपान्नसम्पदा।
ततस्तु कार्त्तिकस्यान्ते समाप्ते तु तथा व्रते॥
ब्राह्मणान् भोजयेद्भक्त्या दद्याच्छक्त्या च दक्षिणां।
कांस्यपात्रञ्च सघृतंससुवर्णं तथैव च।

कृत्वा व्रतं मासचतुष्टयञ्च
प्राप्नोति लोकं त्रिदशेश्वरस्य।
मानुष्यमासाद्य तथैव पश्चात्
वसुन्धरेशो भवतीह वीरः॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं आयुधव्रतं।

ब्रह्मोवाच।

अतः परं प्रवक्ष्यामि सर्व्वाभ्युदयवर्द्धनं।
यत्कृत्वा जायते राजा सार्व्वभौम इहानघ॥
मासे नभसि संप्राप्ते नक्ताहारो जितेन्द्रियः।
प्रातःस्नायी सदाध्यायी अग्निकार्य्यपरायणः।
देवीं संपूजयेद्वत्स बिल्वपुष्पन्नागचम्पकैः॥
धूपन्तु गुग्गुलं दद्यान्नैवेद्यं घृतपाचितं।
क्षीरान्नं दधिभक्तञ्च अथवा शाकयावकं॥
जपञ्च कुर्य्यान्मन्त्रस्य सहस्रमथवा शतं।
देव्यास्तत्र समर्प्येत यावत् पूर्णं व्रतम्भवेत्॥
पूर्णे व्रते ततोवत्स कन्याचार्य्यद्विजस्त्रियः।
भोजयेत् पूजयेच्छक्त्या हेमगोचरभूषणैः॥
अभावान्मन्त्रजप्यञ्च नित्यं कार्य्यं नृपोत्तम।
यः कुर्य्यात् सततं भक्त्या सोपि तत्तुल्यतामियात्।
नचव्याधिजरामृत्युर्न भयञ्चारिसम्भमं।
जायते देवि भक्तस्य अन्ते च फलमव्ययं॥

अत्र मन्त्रपदानि भवन्ति। ओं नन्दने नन्दनि सर्व्वार्थसाधनी नमः। मूलमन्त्रः। ओं नन्दने हृदयाय नमः, हृदयं। नन्दिनी शिरसे नमः, शिरः। सर्व्वार्थे नमः। शिखा। ओं अर्थसाधिनी नमः, कवचं। ओं नमः, हुँ फट्, अस्त्रं। ओं नेत्राय नमः। ओं नन्दिनी उपचारहृदयं।

तृतीयायाञ्च पञ्चम्यां चतुर्थ्यामष्टमीषु च।

नवम्यां पौर्णमास्यामेकादश्यां द्वादशीषु च।
षष्ठ्यां सा चैव विज्ञेया पूजनीया विशेषतः॥
नन्दामुद्दिश्य यो दद्याच्छ्रावणे गोवृषं सितं।
स लभेदिष्टकामार्थं देवीलोकञ्च शाश्वतं॥
नभस्येतां समुद्दिश्य दद्याद्गां काञ्चनं पिवा।
स व्रजेद्धूतपापस्तु नन्दालोकञ्च निर्भयं॥
आश्विने नवरात्रञ्च उपवासमयाचितं।
कृत्वा देवीं प्रपूज्याथ अष्टम्यामपरेऽहनि॥
हेमपुष्पमणिर्वस्त्रं नानाचित्रविभूषितं।
दानञ्च काञ्चनं देयं नन्दायै स्वार्थसिद्धये॥
विधूतपापसङ्घातः सर्व्वकामसमन्वितः।
गच्छन्ति तन्तु लोकं वै यत्र देवी सुरार्च्चिता।
वसते कल्पकोटिस्तु अप्सरोगणसेवितः॥
नन्दतेप्यागतस्तात पृथिव्यामेकराड् भवेत्।
कार्त्तिके पूजयित्वा तु देवीं जातीगजाह्वयैः॥
अन्नदानं ददद्विप्रे कन्यासु स्त्रीष्वथापि वा।
श्वेतानि चैव वस्त्राणि तथा देयानि दक्षिणा॥
मुच्यते सर्व्वपापैस्तु जन्मान्तरकृतैरपि।
इहैव जायते योगी परत्र पदमव्ययं॥
मार्गे तु विधिवत्स्नात्वा देवीं पूज्य च कुङ्कुमैः।
नैवेद्यं घृतपूपाश्च देयाः कन्यासु च द्विजे॥
भोजयेदर्च्चयेद्वत्स वस्त्रैः कीटकुलोद्भवैः।
प्राप्नुयात्सर्व्वकामांश्च सर्व्वपापैः प्रमुच्यते॥

पौषे देवीं समाधाय जलजैरभिपूजयेत् ॥
नैवेद्यं शालिभक्तञ्च कन्यां सम्भोज्य दक्षयेत्।
पीतवस्त्रैस्तथा शय्या देव्या देयातिशोभना ॥
अनेन विधिना वत्स साक्षाद्देवी प्रसीदति।
ददाति कामिकान् भोगान् अन्ते च स्वपुरं नयेत् ॥
माघे तु पूजयेद्देवीं कुन्दजस्रग्भिरादरात्।
कुङ्कुमेन सदर्पेण तथा समुपलेपितं ॥
सदर्पेण कस्तूरिकासहितेन।
स्नापितां विधिवत्पूर्व्वं ततः कन्यास्तु पूजयेत्।
द्विजांश्च चण्डिकां भक्त्या विधिवद्घृतपायसैः।
दक्षिणां तिलहोमञ्च यथाशक्त्या प्रदापयेत् ॥
विधूतपापकलिकः सर्व्वभोगसमन्वितः।
विशत्रुर्बहुपुत्रश्च जायते नरसत्तमः ॥
देहान्ते नन्दिनीलोकं सर्व्वदेवनमस्कृतं।
प्रयाति नात्र सन्देहो अनेन विधिना नृप ॥
फाल्गुने पूजयेद्देवीं कुसुमैः सहकारकैः।
तथा निवेद्य भक्ष्याणि शर्करामधुना सह ॥
भोजयेत्कन्यकान् विप्रान् दक्षिणासितवाससी।
अनेन जायते भोगी देवीलोकञ्च गच्छति।
सम्प्राप्ते चैत्रमासे तु देवी पूज्या दमानकैः ॥
नैवेद्यं लड्डुका देया तथा कन्याश्च भोजयेत्।
स्त्रियश्च रक्तवस्त्रैश्च पूजितव्याः(१) यथाविधि ॥

(१) दक्षितव्या इति पुस्तकान्तरे पाठः।

अनेन सर्व्वकामान् वै प्राप्नुयादविचारणात् ।
देवीलोकं व्रजेद्वत्स यत्र भोगा निरन्तराः ॥
वैशाखे पूजयेद्देवीं पुष्पैर्वैकर्णिकारजैः ।
नैवेद्यं सक्तवः खण्डं कन्यां भोज्याथ दक्षयेत् ।
शुभानि हेमच्छत्राणि देयानि द्विजसत्तमे ॥
देवीन्तु प्रणमेद्वत्स सर्व्वदेवेष्वनूत्तमां ।
ज्यैष्ठे तु शङ्करी पूज्या रक्ताशोककरण्टकैः ॥
तथा देयञ्च नैवेद्यं घृतपूरैश्च कन्यकाः ।
भोजनीयास्तथा दत्वा गोभूदानादिभिः शुभैः ॥
जलकुम्भास्तथा देयाः सम्पूर्णा वा सिताम्भसा ।
अनेन वारुणान् भोगान् तेषां क्षिप्रं प्रयच्छति ॥
आषाढ़े पूजयेद्देवीं पद्मैर्नीलोत्पलैर्द्दलैः ।
नैवेद्यं शर्करायुक्तं दधि भक्तञ्च पायसं ।
कन्या द्विजा स्त्रियो भोज्या दक्षयेच्च तथार्च्चनात् ।
नानाहेमाङ्गरागाद्यैस्तिलभूम्यैः समौक्तिकैः ।
पूज्या भगवती शक्त्या सर्व्वकामप्रसिद्धये ॥
नन्दा सुनन्दा कनका उमा दुर्गा क्षमावती ।
गौरी योगेश्वरी श्वेता नारायणी सुनाशिका ॥
अम्बिकेति च नामानि श्रावणाद्दादशक्रमात् ।
सङ्कीर्त्तयन्ति उत्थाय ये नरा धौतकल्मषाः ॥
भवन्ति नरशार्दूल पृथिव्यां धनसङ्कुलाः ।
एतानि पथि संग्रामे रिपुपीड़ासु नित्यशः ॥
समुत्तरति दुर्गाणि चण्डिकेति सुरोत्तम ।

व्रतानां प्रवरं कार्य्यं अर्द्धं वा पादमेव वा ॥
मासं वापि प्रदातव्यं श्रावणादिक्रमेण तु।

इति देवीपुराणोक्तं नन्दाव्रतं।

——oo@oo——

गौरमुख उवाच।

देवकी नाम राजेन्द्र देवकस्याभवत् सुता।
अनपत्या तपस्तेपे पुत्रार्थं किल भामिनी ॥
भार्य्या सा वसुदेवस्य सत्यधर्म्मपरायणा।
न च तुष्यति गोविन्द तपस्तामाह भार्गवः ॥

भार्गव उवाच।

किमर्थं तप्यते भद्रे तपः परमदुःष्करं।
कोऽर्थस्तवाभिलषितो वद कुत्र तवेप्सितं ॥

देव्युवाच।

अपुत्राहं द्विजश्रेष्ठ पत्युर्मे नास्ति सन्ततिः।
साहमाराध्य गोविन्दं पुत्रमिच्छामि शोभनं ॥
तपस्तावत्करिष्यामि परमेण समाधिना।
यावदाराधितो विष्णुर्दास्यत्यरिमतम्बरं ॥

भार्गव उवाच।

गोविन्दाराधने यत्नो यदि ते कुलनन्दिनि।
तदिदं व्रतमास्थाय तोषयस्व जनार्द्दनं ॥

प्रथमे कार्त्तिकस्याह्नि सम्प्राप्ते देवकि स्वयं।
पञ्चगव्यकृतस्नानः पञ्चगव्यकृताशनः॥
बाणपुष्पैः समभ्यर्च्य वासुदेवमजं विभुं।
दत्त्वा च चन्दनं धूपं परमान्नं निवेदयेत्॥
घृतं निवेदयेद्विप्रे गृह्णीयाच्च ततो व्रतं।
अद्यप्रभृत्यहं मासं विरतः प्राणिनां वधात्॥
असत्यवचनात्स्तेयान्मधुमांसादिभक्षणात्।
स्वपन् विबुध्यन् गच्छंश्च स्मरिष्याम्यहमच्युतं॥
परापवादं पैशून्यं परपीड़ाकरन्तथा।
सच्छास्त्रदेवतायज्ञनिन्दामन्यस्य वा भुवि॥
न वक्ष्यामि जगत्यस्मिन् पश्यन् सर्व्वगतं हरिं।
अत्यन्तो वाधिशक्तोऽपि यस्मिन् वोढुं यशस्विनि॥
कुर्वीत नियमन्तस्य त्यागोधर्म्मोपवृद्धये।
कृत्वैवं पुरतो विष्णो निर्वृतिं पापतः शुभे।
नैवेद्यं स्वयमश्नीयान्मौनी नित्यमुदङ्मुखः॥
मार्गशीर्षे तथा मासि जातीपुष्पैर्जनार्द्दनं।
समभ्यर्च्य पुनर्धूपं चन्दनञ्च निवेदयेत्॥
परमान्नञ्च देवाय विप्राय च पुनर्घृतं।
दत्त्वा तथैव गृह्णीयान्नियमः योऽस्य रोचते॥
तथैव नक्तं भुञ्जीत नैवेद्यं कुलनन्दिनि।
सर्व्वेष्वेव चतुर्मासं पञ्चगव्यादिकं समं।
पुष्पधूपोपहारेषु विशेषो दक्षिणासु च॥
स्नानप्राशनयोः साम्यन्तथैव नक्तभोजनं।

अर्चयेत् प्रतिमासञ्च यैः पुष्पैस्तानि मे शृणु॥
ये च धूपाः प्रदातव्या नैवेद्यान्नञ्च यत्तथा।
बाणस्य जातिकुसुमैः तथैव च मुकुन्दजैः॥
कुन्दातिमुक्तकै रक्तै रक्तवीरैश्च रक्तकैः।
श्वेतैः शुभ्रैर्मल्लिकायास्तथा मल्लिकया ततः॥
दधिपद्माभकेतक्याः पद्मरक्तोत्पलेन च।
क्रमेणाभ्यर्च्चितो विष्णुर्द्ददाति मनसि स्थितं॥
कार्त्तिके मार्गशीर्षे च धूपं पौषे च चन्दनं।
माघफाल्गुनचैत्रेषु दद्याद्विष्णोस्तथा गुरु॥
वैशाखादिषु मासेषु त्रिषु देवकि भक्तितः।
कर्पूरं देवदेवाय गुग्गुलं श्रावणादिषु॥
कार्त्तिकादिषु मासेषु परमान्नं शुभे त्रिषु।
कासारं माघपूर्व्वेषु यवान्नञ्च ततस्त्रिषु॥
घृतन्तिलान् जलघटं हिरण्यमथवा व्रती।
प्रतिमासं तथा दद्याद्ब्राह्मणाय शुभव्रते॥
यथोक्तनियमानाञ्च ग्रहणं प्रतिमासिकं।
कुर्व्वन् जगत्पतिर्व्विष्णुः प्रीयतामिति मानवः॥
योषिदप्यमलप्रज्ञा व्रतमेतद्यथाविधि।
करोति मासान् सकलान् अवाप्नोति मनोरथान्॥
व्रतेनाराधितो विष्णुरनेन जगतःपतिः।
ददात्यभिमतान् कामान् चिप्रकालेन भामिनि॥
धान्यं यशस्यमायुष्यं सौभाग्यारोग्यदन्तथा।
व्रतमेतत् प्रियतरं व्रतेभ्योऽव्यक्तजन्मनः॥

व्रतेनानेन शुद्धात्मा पदेनैकेन माधवः।
सुखदृश्यो न सन्देहो दीपेन वाग्यतस्थितः।
कायवाङ्मनसा बुद्ध्या करोत्येतन्महाव्रतं।
शुद्धानाममलो देवो दृश्य एव जनार्द्दनः॥
तस्मिन्नेकाग्रचित्तानां प्राणिनां वरवर्णिनि।
प्राप्नुवन्ति प्रयत्नेन मुक्तिभाजो विभूतयः॥
यथा कल्पतरुं प्राप्य यद्यदिच्छति चेतसा।
तत्तत्फलमवाप्नोति यथा सम्प्राप्य तं विभुं॥
शुभव्रतमिदं तस्मात् महापातकनाशनं।
आराधनाय कृष्णस्य कुरु देवकि पावनं॥
तस्मिंस्तीर्णे हृषीकेशो नूनं यास्यति दर्शनं।
दृष्टे चाभिमतं यत्ते तदशेषं भविष्यति॥

**इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं विष्णुदेवकीव्रतं।**

———000———

नारद उवाच।

भगवन् श्रोतुमिच्छामि स्नानदानव्रतक्रियाः।
हेमन्ते शिशिरे चैव यथा पूज्यो जनार्द्दनः॥
मार्गशीर्षे तथा पुष्ये माघे चैवाथ फाल्गुने।
यत्फलं प्राप्यते पुंभिः प्रणम्य मधुघातिनं॥

ब्रह्मोवाच।

शृणु वत्स महापुण्यं हेमन्तशिशिरावुभौ।
अत्र संपूजितः कृष्णः स्वल्पेनापि प्रतुष्यति॥

मार्गशीर्षे सिते पक्षे प्रतिपत्प्रभृतिक्रमात्।
व्रतचर्य्यां विगृह्णीयाद्धेमन्ते शिशिरात्मिकां॥
स्नात्वाभ्यर्च्च्य हृषीकेशं प्रणिपत्य नरो व्रती।
वरञ्च याचयेद्भक्त्या चराचरगुरुन्ततः॥
भगवन् चपला ह्येषा प्राणिनां प्राणसंस्थितिः।
ध्रुवं मृत्युर्मनुष्याणां दुर्विज्ञेयं कदा भवेत्॥
अतस्त्वां प्रार्थयाम्येव वरमेतदधोक्षज।
यथा खण्डं व्रतं न स्यात् प्रसन्ने त्वयि मे विभो॥
व्रतमेतन्मया देव गृहीतन्तव शासनात्।
जीवतोपि मृतस्यापि परिपूर्णम्भवत्विति॥
एवमभ्यर्च्च्य लोकेशं चराचरगुरुं हरिं।
ततो नु बुद्धिमान् कुर्य्यात् व्रतचर्य्याञ्च शैशिरीं॥
मार्गशीर्षस्य कृष्णादौ प्रतिपत्प्रभृतिं नरः।
अहिंसकः क्रियायुक्तः प्रातःस्नायी सदा भवेत्॥
अर्चयेद्देवदेवेशं मध्याह्ने केशवं सदा।
विलिप्य कुङ्कुमोशीरं चन्दनेनाथ शक्तितः॥
पूजयेन्मालतीपुष्पैर्भृङ्गबिल्वादिकेन च।
दीपं सदोज्ज्वलं दद्यात्सघृतं गुग्गुलन्दहेत्॥
शाल्योदनं दधियुतं नैवेद्यं सन्निवेदयेत्।
प्रणमेच्च तथा भक्त्या शिरसा केशवं मुहुः॥
अनेन विधिना चैव संपूज्य गरुड़ध्वजं।
ॐ नमः केशवायेति जपेदष्टोत्तरं शतं॥
एवं पञ्च सुराध्यक्षं मार्गशीर्षं ततोनरः।

अकांस्यपात्रे भुञ्जीत दत्त्वा भिक्षां द्विजाय च ॥
वर्जयेन्मधुमांसानि सदाध्वानं कुभोजनं ।
अनृतस्तेयपारुष्यं सम्पर्कं पतितैः सह ॥
गवाह्निकं सदा दद्यात् क्षितिशायी भवेन्निशि ।
सदाभिवन्देद्वृद्धांस्तु कुर्यात् स्नानप्रदस्तथा ॥
एवं पुष्ये तथा माघे फाल्गुने च नरो व्रती ।
व्रतं समापयेच्छक्त्या नच कर्षेत् कथञ्चन ॥
हेमन्तांश्चतुरोमासान् व्रतेनानेन नर्त्तयेत् ।
विशेषोऽत्र विधिस्तत्र द्वादशी च पृथक् शृणु ॥
मार्गशीर्षे शुभे पक्षे एकादश्यामुपोषितः ।
पूजयेज्जगतामीशं केशवं कल्मषापहं ॥
द्वादश्यां स्नापयेद्देवं क्षीरेण पुरुषोत्तमं ।
रसेन सर्पिषा चैव पञ्चगव्येन च क्रमात् ॥
द्वादश्यां स्नापयेद्देवं पुष्ये माघे च फाल्गुने ।
नैवेद्यं पुष्पधूपाद्यैः पूजयेच्च ततो हरिं ॥
प्रणम्य शिरसा देवं केशवं केशिपातनं ।
भक्त्या कृताञ्जलिर्भूत्वा याचयेत् प्रवरं वरं ॥
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनञ्च केशव ।
यत्पूजितं मया देव परिपूर्णन्तदस्तु मे ॥
एवमभ्यर्च्य देवेशं प्रणिपत्य पुनः पुनः ।
ततोऽनुभोजयेद्विप्रान् भक्त्या दद्याच्च दक्षिणां ॥
अनेनैव विधानेन पुष्ये माघे च फाल्गुने ।
सनाम्ना प्रणमेदीशं प्रार्थयेत् पूज्य वै हरिं ॥

भोजयेच्च द्विजान् भूयस्तेभ्योदद्याच्च दक्षिणां।
व्रीहिवस्त्रतिलान् सर्प्पिर्द्दद्यान्मासक्रमेण तु॥
द्वादश्यां देवमुद्दिश्य द्विजाग्रेभ्यश्च भक्तितः।
समाप्यैवं व्रतं भक्त्या नाम्ना त्वनरकन्नरः॥
न गच्छेन्नरकं याति यत्रास्ते गरुड़ध्वजः।
व्रतमेतन्महापुण्यं व्रतेभ्योऽभ्यधिकं मुने॥
दुःष्कृतश्चलचित्तानां महापातकनाशनं।
सुरापो ब्रह्महा स्तेयी गुरुगामी सदानृती॥
कृत्वा नरो व्रतं भक्त्या सद्यः पापात् प्रमुच्यते।
महर्षिभिः सदाचीर्णं भृगवित्रिभुजगोत्तमैः॥
स्नानार्थिभिर्महाभागैर्व्रतमेतत् प्रपूजितं।
स्वर्गन्ते ह्यक्षयं प्राप्तः सम्पूज्य गरुड़ध्वजं॥
व्रतेनानेन देवेशो दक्षाद्यैर्ऋषिभिस्तुतः।
भार्गवेणावनिं प्राप्य अक्रूरेण ययातिना॥
परितोष्य सुरश्रेष्टं व्रतेनानेन केशवं।
सदा नमं परं स्थानं वैष्णवं मुक्तिलक्षणं॥
अनेनार्च्चविधिं भक्त्या सम्प्राप्ते सनकादिभिः।
सर्व्वकामप्रदं पुण्यं नाम्नात्वनरकं व्रतं॥
कृत्वा श्रुत्वा तथा ध्यात्वा न गच्छेन्नरकं नरः।

इति विष्णुरहस्योक्तमनरकव्रतं।

———000———

चैत्रादिचतुरो मासान् जले कुर्य्यादयाचितं।

व्रतान्ते मणिकन्द्याननववस्त्रसमन्वितं ॥
तिलपात्रं हिरण्यञ्च ब्रह्मलोके महीयते ।
कल्पान्ते भूपतिर्नीलमानन्दव्रतमुच्यते ॥

इति मत्स्यपुराणोक्तमानन्दव्रतं ।

---

पौर्णमास्यां तथाषाढ्यां शिवं संपूज्य यत्नतः ।
उपवीतं शिवे दद्याच्छिवभक्तांश्च भोजयेत् ॥
पुनरेव च कार्त्तिक्यां पूज्य शम्भुं क्षमापयेत् ।
यतीनां दक्षिणां दत्त्वा सूत्रवस्त्रादिपूर्व्विकां ॥
यः कुर्य्यात्सकृदप्येवं चातुर्मास्यां पवित्रकं ।
कल्पकोटिसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥
पुण्यक्षयात्परिभ्रष्टः चतुर्वेदः प्रजायते ।
इच्छया तु भवेद्राजा गुरुरूपसमन्वितः ॥

इति शिवधर्म्मोक्तं शिवोपवीतव्रतं ।

———000@000———

प्रतिमासं प्रवक्ष्यामि शिवव्रतमनुत्तमं ।
धर्म्मकामार्थमोक्षार्थं नरनार्य्यादिदेहिनां ॥
पुष्ये मासे तु सम्प्राप्ते यः कुर्य्यान्नक्तभोजनं ।
सत्यवादी जितक्रोधः शालिगोधूमगोरसैः ॥
पक्षयोरष्टमीं यत्नादुपवासेन वर्जयेत् ।
त्रिसन्ध्यमर्च्चयेदीशमग्निकार्य्यञ्च भक्तितः ॥

भूमिशय्याश्च मासान्ते पौर्णमास्यां घृतादिभिः।
स्नात्वा स्नानं महापूजां शिवे यत्नात् प्रकल्पयेत्॥
नैवेद्यं यावकप्रस्थं चोरसिद्धं निवेदयेत्।
भोजयित्वा द्विजानष्टौ शिवभक्तान् सदक्षिणान्।
शिवे गोमिथुनञ्चैव कपिलञ्च निवेदयेत्॥
अलङ्कृत्य सुरूपञ्च तस्य पुण्यफलं शृणु।
सूर्य्यकोटिप्रतीकाशैर्व्विमानैः सार्व्वकामिकैः॥
रुद्रकन्यासमाकीर्णैर्महावृषभसंयुतैः।
सङ्गीतनृत्यवाद्यैश्च अप्सरोगणसेवितैः।
चामरैर्धूपमाल्यैश्च स्तूयमानः सुरासुरैः॥
त्रिनेत्रः शूलपाणिश्च शिवैश्वर्य्यसमन्वितं।
गच्छेच्छिवपुरं रम्यं यत्रास्ते शङ्करः स्वयं॥
यावत्तद्रोमसङ्ख्यानं तत्प्रशस्तिः कुलेषु च।
तावद्युगसहस्राणि सुखी शिवपुरं व्रजेत्॥
त्रिःसप्तकुलजैः सार्द्धं भोगान् भुङ्क्ते यथेप्सितान्।
ज्ञानयोगं समासाद्य स तत्रैव विमुच्यते॥
इत्येष वः समाख्यातः संसारार्णववर्त्तिनां।
शिवमोक्षक्रमोपायः शिवाश्रमनिषेविणां॥
माघमासे तु संप्राप्ते यः कुर्य्यान्नक्तभोजनं।
कृशरां घृतसंयुक्तां भुञ्जानः सञ्जितेन्द्रियः॥
सोपवासश्चतुर्द्दश्यां भवेदुभयपक्षयोः।
शिवाय पौर्णमास्यान्तु प्रदद्याद्घृतकम्बलं॥
कृष्णं गोमिथुनञ्चात्र सुरूपं विनिवेदयेत्॥

शेषं कृत्वा यथोद्दिष्टं पूर्व्वोक्तन्तु फलं लभेत् ।
इन्द्रनीलप्रतीकाशैर्विमानैः शिखिसंयुतैः ॥
गत्वा शिवपुरं रम्यं भुक्ता भोगान् यथेप्सितान् ।
सम्प्राप्ते फाल्गुने मासे यः कुर्य्यान्नक्तभोजनं ॥
श्यामाकचीरनीवारैर्जितक्रोधोजितेन्द्रियः ।
चतुर्द्दश्यामथाष्टम्यामुपवासरतो भवेत् ॥
पौर्णमास्यां महास्नानं पञ्चगव्यघृतादिभिः ।
वल्मीकायादिमृद्भिश्च गोमूत्रगोमयादिभिः ॥
त्वग्भिश्च चीरवृचाणां धात्रीगन्धादिभिस्तथा ।
दद्याद्गोमिथुनं भक्त्या ताम्राभं परमेष्ठिने ॥
शेषमन्यद्यथोद्दिष्टं प्राप्नोति सुमहत् फलं ।
पद्मरागप्रतीकाशैर्विमानैर्गजसंयुतैः ॥
गत्वा शिवपुरं रम्यं पूर्व्वोक्तं लभते फलं ।
चैत्रमासि तु सम्प्राप्ते यः कुर्य्यान्नक्तभोजनं ।
पिष्टकं पयसा युक्तं भुञ्जानः संयतेन्द्रियः ॥
दद्याद्गोमिथुनञ्चात्र पाटलं समलङ्कृतं ।
शिवायातिसुरूपञ्च शेषं पूर्व्ववदाचरेत् ॥
पुष्परागप्रभैर्य्यानैर्दिव्यैश्च रथसंयुतैः ।
गत्वा शिवपुरं रम्यं दुःप्राप्यं त्रिदशैरपि ॥
वैशाखे मासि सम्प्राप्ते यः कुर्य्यान्नक्तभोजनं ।
पिष्टकं पयसा युक्तं भुञ्जानः सञ्जितेन्द्रियः ।
गोष्ठशायी शिवध्यायी निशायां वस्त्रमेकधृक् ॥
नियमञ्च यथोद्दिष्टं सामान्यं सर्व्वमाचरेत् ।

वैशाखपौर्णमास्याञ्च कुर्य्यात् स्नानं घृतादिभिः॥
शिवायालङ्कृतं श्वेतं दद्याद्गोमिथुनं शुभं।
हंसकुन्देन्दुवर्णाभैर्महायानैरलङ्कृतैः॥
श्वेतवृषभसंयुक्तैः प्रयातीश्वरमन्दिरं।
सर्व्वाभिः सर्व्वरूपाभिः स स्त्रीभिः परिवारितः॥
नीलोत्पलसुगन्धाभिः क्रीड़ते कालमक्षयं।
ज्यैष्ठे मासे तु सम्प्राप्ते यः कुर्य्यान्नक्तभोजनं॥
शाल्यन्नं पयसा युक्तमाज्यक्षीरेण संयुतं।
वीरासनो निशार्द्धं स्याद्दिवा गामनुगच्छति॥

अनुपविश्यावस्थानं वीरासनं।

हितकारी गवां नित्यमहङ्कारविवर्ज्जितः।
पौर्णमास्याञ्च पूर्व्वोक्तं कुर्य्यात् स्नानादिकं विधिं॥
देयं गोमिथुनञ्चात्र धूम्रवर्णमलङ्कृतं।
नीलोत्पलसमप्रख्यैर्महायानैर्मनोरमैः॥
महासिंहनिबद्धैश्च क्रीड़ते कालमक्षयं।
आषाढ़मासे सम्प्राप्ते यः कुर्य्यान्नक्तभोजनं॥
भूरिखण्डाम्बुसंमिश्रं सक्तुं दद्यात्सगोरसं।
दद्याद्गोमिथुनं गौरं शिवायालङ्कृतं शुभं॥
सामान्यञ्च विधिं कुर्य्यात् सर्व्वं वै प्रख्य चोदितं।

इति पुष्यमासोदितं।

शुद्धस्फटिकसङ्काशैर्यानैः सारसवाहनैः।
अणिमादिगुणैर्युक्तः शिववद्विचरेत् स्वयं॥
सम्प्राप्ते श्रावणे मासि यः कुर्य्यान्नक्तभोजनं।

क्षीरषष्टिकभक्तेन सर्व्वभूतहिते रतः॥
श्वेताम्रपादपौण्ड्रञ्च दद्याद्गोमिथुनं शिवे।
सामान्यमखिलं कुर्य्याद्विधिना यत् प्रकीर्त्तितं॥
सविचित्रैर्महायानैर्विचित्राश्वनियोजितैः।
गत्वा शिवपुरन्दिव्यं पूर्व्वोक्तं लभते फलं॥
प्राप्ते भाद्रपदे मासे यः कुर्य्यान्नक्तभोजनं।
हुतशेषन्तु भुञ्जानो वृक्षमूलाश्रितो दिवा॥
रात्रौ वायतने वासः सर्व्वभूतानुकम्पकः।
नीलस्कन्धं वृषं गाञ्च शिवाय विनिवेदयेत्॥
निशाकरकरप्रख्यैर्व्वैदूर्य्यशोभनैः।
चक्रवाकसमायुक्तै र्विमानैः सार्व्वकामिकैः॥
गत्वा शिवपुरं रम्यममरासुरवन्दितं।
क्रीड़ते स महाभोगैर्य्यावदाहृतसंप्लवं॥
श्रीमानश्वयुजे मासि यः कुर्य्यान्नक्तभोजनं।
घृताशनं प्रभुञ्जानः प्रसन्नात्मा जितेन्द्रियः॥
वृषभं नीलवर्णाभमुरोदेशे समुन्नतं।
विमुच्य भगवत्यग्रे गामेकां समलङ्कृतां।
विधिशेषं हि पूर्व्वोक्तं तत्सर्व्वं समुपाचरेत्॥
प्राणान्ते च परं स्थानं प्रयाति शिववद्वशी।
स्वच्छमौक्तिकसङ्काशै रिन्द्रनीलोपशोभितैः॥
जीवं जीवकसंयुक्तै र्विमानैः सार्व्वकामिकैः।
प्रक्रीड़ते महाभोगैर्य्यावदाहृतसंप्लवं॥
शुभे च कार्त्तिके मासे यः कुर्य्यान्नक्तभोजनं।

क्षीरोदनञ्च भुञ्जीत सत्यवादी जितेन्द्रियः॥
दद्याद्गोमिथुनञ्चात्र कपिलं कज्जलप्रभं।
पूर्व्वोक्तविधिवत् कृत्वा शिवतुल्यः प्रजायते॥
कल्पानलशिखाप्रख्यैर्महायानैर्मनोरमैः।
महासिंहकृताटोपैः शिववच्चेष्टते सुखी॥
मार्गशीर्षे शुभे मासे यः कुर्य्यान्नक्तभोजनं।
यवान्नं पयसा युक्तं भुञ्जानः सञ्जितेन्द्रियः॥
दद्याद्गोमिथुनं दिव्यं पाण्डुरं समलङ्कृतं।
शिवाय शेषं पूर्व्वोक्तविधिना समुपक्रमेत्॥
सितपद्मनिभैर्य्यानैः श्वेताश्वरथसंयुतैः।
गत्वा शिवपुरं दिव्यं शिवतुल्यबलो भवेत्॥
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्य्यं क्षमा दया।
त्रिस्नानञ्चाग्निहवनं भूशय्या नक्तभोजनं॥
पक्षयोरुपवासेन चतुर्द्दश्यष्टमीं क्षिपेत्।
इत्येवमादिनियमैराचरेत शिवव्रतं॥
शिवभक्ता तु या नारी ध्रुवं सा पुरुषो भवेत्।
स्त्रीत्वमत्युत्तमं सा चेत् काङ्क्षते शृणुयाद्व्रतं॥

## इति विष्णुधर्मोक्तं शैवमहाव्रतं।

———000———

कार्त्तिके तु शुभे मासे एकभक्तेन वर्त्तयेत्।
क्षमाऽहिंसादिनियमैः संयता व्रतचारिणी॥
गुड़ाज्यमिश्रपिण्याकं मासान्ते विनिवेदयेत्।

अष्टम्याञ्च चतुर्द्दश्यां उपवासरतो भवेत् ॥
इन्द्रनीलप्रतीकाशैर्विमानैः सार्व्वकामिकैः।
वर्षाणामयुतं साग्रं रुद्रलोके महीयते ॥
यथावत्सर्व्वलोकेषु भोगानासाद्य यत्नतः।
क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन यथेष्टं पतिमाप्नुयात् ॥
इत्येवं सर्व्वमासेषु विधिस्तुल्यः प्रकीर्त्तितः।
एकभक्तोपवासस्य फलन्तु सदृशं विदुः ॥
क्षमा सत्यन्दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
शिवपूजाग्निहोमश्च सन्तोषस्तेहभावनं ॥
सर्व्वव्रतेष्वयं धर्म्मः सामान्यो दशधास्मृतः।
मार्गशीर्षे शुभे मासे वृषपृष्ठं सुनिर्म्मलं।
गन्धमाल्यैरलङ्कृत्य शिवाय विनिवेदयेत् ॥
वृषयुक्तैर्महाया नैरप्सरोगणसेवितैः।
वर्षायुतशतं साग्रं शिवलोके महीयते ॥
पुष्ये मासि पिनाकञ्च शूले कृत्वा पिनाकिने।
गन्धपुष्पैरलङ्कृत्य शिवाय विनिवेदयेत् ॥
ताम्रकांस्यादिपात्रे वा दत्त्वा दद्यात्पिनाकिने।
महापुष्पकयानेन दिव्यगन्धप्रभावतः।
वर्षाणामयुतं साग्रं रुद्रलोके महीयते ॥
रथञ्चाश्वयुतं माघे दीपमालाप्रशोभितं।
पिष्टं लिङ्गसमायुक्तं कृत्वायतनमानयेत् ॥
महारथोपमैर्य्यानैः श्वेताश्वरथसयुतैः।
वर्षायुतं शतं साग्रं शिवलोके महीयते ॥

फाल्गुने प्रतिमां पैष्टीं कृत्वा वस्त्रसमन्वितां।
गन्धमाल्यैरलङ्कृत्य स्थापयेदीश्वरालयं।
यानैरप्रतिमैर्दिव्यैर्गीयनाद्यसमाकुलैः॥
ऽ युतशतं साग्रं शिवलोके महीयते।
चैत्रे भवकुमारञ्च कृत्वा पुष्पैरलङ्कृतं।
स्थाप्य पात्रे यथोक्ते च आनयेच्छिवमन्दिरं॥
शरदिन्दुतोकाशैर्विमानैः सार्व्वकामिकैः।
वर्षायुतशतं साग्रं रुद्रलोके महीयते।
तन्दुलाढ़कपिष्टेन कृत्वा कैलासपर्व्वतं।
ईश्वरोमासमायुक्तं सर्व्वधातुविभूषितं॥
कन्दरैर्विविधं चित्रं लवणप्रस्थसंयुतं।
सर्व्वरत्नसमायुक्तं स्थापयेदीश्वरालये॥
कैलासव्रतमित्येवं वैशाख्यां यः समाचरेत्।
कैलासकल्पयानैः स शिवलोके महीयते॥
लिङ्गपिष्टमयङ्कृत्वा ज्येष्ठमासे सवेदिकं।
भक्त्या संपूज्य गन्धाद्यैर्वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत्।
उपशोभाविशेषैश्च तत्र जागरमाचरेत्॥
प्रभाते ध्वजशङ्खाद्यैः शिवाय विनिवेदयेत्।
शुद्धस्फटिकसङ्काशैर्विमानैः सार्व्वकामिकैः॥
वर्षकोटिशतं साग्रं शिवलोके महीयते।
गृहं पिष्टमयङ्कृत्वा आषाढ़े दिव्यभूमिकं॥
सर्व्वबीजरसैश्चापि संपूर्णं शुभलक्षणं।
गृहोपकरणैर्युक्तं मुषलोदूखलादिभिः।

सर्व्वरत्नसमायुक्तं दासीशय्याद्यलङ्कृतं ।
एतैः पिष्टमयैः साद्यैः प्रदे... सुशोभितं ॥
सर्व्वभक्तसमाकीर्णं गन्धमाल्यैरलङ्कृतं ।
श्वेतरक्तासितैः पीतैर्ध्वजवस्त्रैः सुशोभितं ॥
चतुर्विधेनसंयुक्तञ्चरुणा सर्षपेण तु ।
आषाढ़े पौर्णमास्यान्तु गृहं स्थाप्य शिवाग्रतः ॥
सर्व्वोपकरणोपेतं प्रणिपत्य निवेदयेत् ।
शतभूमैर्म्महायानैर्विमानैः सार्व्वकामिकैः ॥
वर्षकोटिशतं साग्रं रुद्रलोके महीयते ॥
सुधाधातुसमाकीर्णं विचित्रध्वजशोभितं ।
निवेदयीत सर्व्वाय श्रावणे तिलपर्व्वतं ॥
स्वच्छेन्द्रनीलसङ्काशैर्यानैरप्रतिमैः शुभैः ।
वर्षकोटिशतं साग्रं रुद्रलोके महीयते ॥
कृत्वा भाद्रपदे मासे शोभितं धान्यपर्व्वतं ।
वितानध्वजच्छत्राद्यैः शिवाय विनिवेदयेत् ॥
दिवाकरकरप्रख्यैर्म्महायानैः सुशोभनैः ।
वर्षकोटिसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥
कृत्वा चाश्वयुजे मासि विपुलं शिखिपर्व्वतं ।
सुवर्णवस्त्रसंयुक्तं शिवाय विनिवेदयेत् ।
सुविचित्रैर्म्महायानैर्व्वरभोगसमन्वितैः ॥
वर्षकोटिशतं साग्रं रुद्रलोके महीयते ।
सर्व्वधान्यसमायुक्तं सर्व्वबीजरसादिभिः ॥
सर्व्वधातुसमायुक्तं सर्व्वरत्नोपशोभितं ।

शृङ्गैश्चतुर्भिः संयुक्तं वितानच्छत्रशोभितं ॥
गन्धमाल्यैस्तथा धूपैः प्रदीपैश्चातिशोभितं।
विचित्रैर्नृत्यगीतैश्च शङ्खवीणादिभिस्तथा ॥
ब्रह्मघोषैस्तथा पुण्यैर्माङ्गल्यैश्च विशेषतः।
महाध्वजाष्टकयुतं विचित्रकुसुमोज्ज्वलं ॥
नगेन्द्रमेरुनामानं त्रैलोक्याधारमुत्तमं।
तस्य मूर्द्ध्नि शिवं कुर्य्यात्सर्व्वदेवसमायुतं ॥
दैत्यगन्धर्व्वभूताश्च सिद्धयक्षगणास्तथा।
विद्याधराप्सरोनागा ऋषयश्च विशेषतः ॥
शालिपिष्टमयं लिङ्गं रूपङ्कृत्वा विचक्षणः।
देयञ्च दक्षिणे हस्ते शूलं त्रिदशपूजितं ॥
एवं सर्व्वेषु देवेषु कुर्य्यादस्त्रं यथाक्रमं।
शिवस्य महतीं पूजां कृत्वा चरुसमन्वितां ॥
पूजयेत्सर्व्वदेवांश्च दशदिक्षु बलिं हरेत्।
व्रतान्ते भोजयेत्पश्चात् शिवभक्तान् सदक्षिणान् ॥
सर्व्वारम्भसमायुक्तं यथाविभवकल्पितं।
निवेदयीत रुद्राय कार्त्तिके नगमुत्तमं ॥
यः कुर्य्यात्सकृदप्येवं तस्य पुण्यफलं शृणु।
देवतुल्यगणो भूत्वा गुणरूपसमन्वितः ॥
शिववद्विचरेन्नित्यं निश्चलं भुवनं सदा।
सदागमेषु यत्पुण्यं कथितं मुनिभिः पुरा ॥
तत्पुण्यं कोटिगुणितं प्राप्नुयान्नात्र संशयः।
महारत्नप्रभैर्य्यानैः सर्व्वरत्नसमन्वितैः ॥

गीतनृत्यादिवाद्यैश्च अप्सरोभिः समन्वितैः ।
सूर्य्यकोटिसमप्रख्यैर्विमानैर्मरुसम्भवैः ॥
नरनारीसमाकीर्णैर्गन्धवाहैः शुभैस्तथा ।
देवदानवगन्धर्वैस्तूयमाना गणादिभिः ॥
स्वच्छन्दा सर्व्वगा भूत्वा प्रयातीश्वरमन्दिरं ।
कल्पकोटिशतं दिव्यं मोदते सा महातपाः ॥
एवं सर्व्वेषु देवेषु भोगान् भुक्त्वा यथेप्सितान् ।
पुण्यक्षयादिहागत्य राजानं पतिमाप्नुयात् ॥
सुरूपा सुभगा नित्यं भवतीश्वरभाविता ।

इति शिवधर्मोक्तमपरशैवमहाव्रतं ।

——000——

श्रीकृष्ण उवाच ।

चैत्रारभ्य पिबंस्तोयञ्जलधारां प्रपातयेत् ।
वर्षान्ते घृतसंपूर्णान्दद्याद्वर्द्धनिकां नवां ॥
एतद्धाराव्रतं नाम सर्व्वोद्वेगहरं परं ।
कान्तिसौभाग्यजननं सपत्नीदर्पनाशनं ॥

इति भविष्योत्तरोक्तं धाराव्रतं ।

---

देवीपुराणे ।

मार्गे रसोत्तमं दद्याद्घृतं पौषे महाफलं ।

रसोत्तमं लवणं ।

तिलान्माघे मुनिश्रेष्ठ सप्तधान्यानि फाल्गुने ।
विचित्राणि च वस्त्राणि चैत्रे दद्याद्द्विजातये ॥
वैशाखे द्विज गोधूमान् ज्यैष्ठे तोयभृतं घटं ।
आषाढ़े चन्दनं देयं सकर्पूरं महाफलं ॥
नवनीतं नभोमासि छत्रं प्रौष्ठपदे मतं ।
गुड़शर्करवर्णाढ्यान् लड्डुकानाश्विने मुने ।
दीपदानं महापुण्यं कार्त्तिके यः प्रयच्छति ॥
सर्व्वकामानवाप्नोति क्रमेण तु उदाहृतं ।
व्रतान्ते गां शुभां दद्यात् सवत्सां कांस्यदोहनीं ॥
सयुगां सस्रजं वत्स दापयेद्विधिना मुने ।
देवीं विरञ्चिमादित्यं विष्णुं वाथ यथाविधि ॥
स्वभावशुद्धो विधिवत् पूजयित्वा द्विजोत्तम ।
दातव्या वीतरागे तु कामक्रोधविवर्ज्जिते ॥
अयाचके सदाचारे विनीते विनयान्विते ।
गोदानाल्लभते कामान् गोलोकेषु मनोरमान् ॥

## इति देवीपुराणोक्तं मासव्रतं ।

---

वसिष्ठ उवाच ।

शृणु भूपाल यैर्विष्णुर्व्रतैराराध्यते नरैः ।
नारीभिश्चापि घोरेऽस्मिन् पतिताभिर्भवार्णवे ।
समभ्यर्च्य जगन्नाथं वासुदेवं सनाधिना ॥
एकमश्नाति यो भक्तं द्वितीयं ब्राह्मणार्पणं ।

करोति केशवप्रीत्यै कार्त्तिकं मासमात्मवान् ॥
पूर्व्वे वयसि यत्तेन जानताजानतापि वा ।
पापमाचरितं तस्मान्मुच्यते नात्र संशयः ॥
अनेनैव विधानेन मार्गशीर्षेऽपि माधवं ।
समभ्यर्च्चैकभक्तं वै वर्णिभ्यो यः प्रयच्छति ।
भगवत् प्रीणनार्थाय फलन्तस्य शृणुष्व मे ॥
मध्ये वयसि यत्पापं योषिता पुरुषेण वा ।
कृतं तस्माच्च तेनोक्तो विमोच्यः परमात्मना ॥
तथा चैवैकभक्तं वै यस्तु गोभ्यः प्रयच्छति ।
पुण्डरीकाक्षमभ्यर्च्य पौषमासे महीयते ॥
तत् प्रीणनाय यत्पापं वार्द्धके तेन वै कृतं ।
स तस्मान् मुच्यते राजन् पुमान् योषिद्यथापि वा ।
त्रैमासिकं व्रतमिदं यः करोति नरेश्वर ॥
स विष्णुप्रीणनात् पापैर्लघुभिः परिमुच्यते ।
द्वितीये वत्सरे राजन् मुच्यते चोपपातकैः ॥
तद्वत्तृतीयेपि कृतं महापातकनाशनं ।
व्रतमेतन्नरैः स्त्रीभिस्त्रिभिर्मासैरनुष्ठितं ॥
त्रिभिः संवत्सरैश्चैव प्रददाति फलं नृणां ।
त्रिभिर्मासैस्त्रयोवस्थास्त्रिविधात्पातकान्नृप ॥
त्रीणि नामानि देवस्य मोचयन्ति त्रिवार्षिकैः ॥
यतस्ततो व्रतमिदं त्रिविक्रमसुदाहृतं ।
सर्व्वपापप्रशमनं केशवाराधनं परं ॥

इति विष्णुधर्मोक्तं त्रिविक्रमव्रतं ।

सुमन्तुरुवाच।

समभ्यर्च्य जगन्नाथं देवमर्कमथापि वा।
एकमश्नाति यो भक्तं द्वितीयं ब्राह्मणार्प्पणं॥
करोति भास्करप्रीत्यै कार्त्तिकं मासमात्मवान्।
पूर्व्वे वयसि यत्नेन जानताजानतापि वा॥
पापमाचरितं तस्मात् मुच्यते नात्र संशयः।
अनेनैव विधानेन मार्गशीर्षे विभाकरं॥
समभ्यर्च्य एकभक्तं विप्रेभ्यो यः प्रयच्छति।
भगवत्प्रीणनार्थाय फलन्तस्य शृणुष्व मे॥
मध्ये वयसि यत्पापं योषिता पुरुषेण च।
कृतं तस्माच्च तेनोक्तो विमोचः परमात्मना॥
तथा चैवैकभक्तञ्च यश्च विप्राय यच्छति।
दिवाकरं समभ्यर्च्य पौषे मासि महीपते॥
तद्वत् तृतीयेपि कृतं महापातकनाशनं।
व्रतमेतन्नरैस्त्रीभिस्त्रिभिर्मासैरनुष्ठितं॥
त्रिभिः संवत्सरैश्चैव प्रददाति फलं नृणां।
त्रिभिर्मासैस्त्ववस्थास्तु त्रिविधात्पातकान्नृप॥
त्रीणि नामानि देवस्य मोचयन्ति त्रिवार्षिकान्।
यतस्ततो व्रतमिदं त्रिविक्रमसुदाहृतं।
सर्व्वभूतप्रशमनं भास्करारार्धनं परं॥

इति भविष्योत्तरोक्तं सौरत्रिविक्रमव्रतं।

——००※००——

चैत्रादिचतुरो मासान् जले कुर्य्यादयाचितं।
ज्यैष्ठाषाढ़े तथा माघे पौषे वा राजसत्तम॥
व्रतान्ते मणिकं दद्यादन्नवस्त्रसमन्वितं।
तिलपात्रं हिरण्यञ्च ब्रह्मलोके महीयते।
तदन्ते राजराजः स्याद्वारिव्रतमिहोच्यते॥

इति पद्मपुराणे वारिव्रतं।

———ooo———

इति श्रीमहाराजाधिराजश्रीमहादेवस्य समस्तकरणा
धीश्वरसकलविद्याविशारदश्रीहेमाद्रिवि-
रचिते चतुर्व्वर्गचिन्तामणौ
व्रतखण्डे मासव्रतानि।

———

# अथोनत्रिंशोऽध्यायः।

———000———

## अथ ऋतुव्रतानि।

——0——

उपक्रियायै सुहृदामिदानीं
हेमाद्रिसूरिः प्रकटीकरोति।
ऋतुव्रतश्रेणिमकम्पसम्पत्-
संपादयित्रीं दुरितापहन्त्रीं॥

मार्कण्डेय उवाच।

अथातः संप्रवक्ष्यामि षण्मूर्त्तेरर्च्चनं परं।
वसन्तं पूजयेन्नित्यं द्वौ मासौ मुनिपुंगव॥
फलैः पुष्पैः कषायैस्तु ग्रीष्मे ग्रीष्मञ्च पूजयेत्।
मधुरेण महाराज प्रावृट्काले ऋतुञ्चरेत्॥
अनेन पूजयेन्नित्यं शरदं लवणेन च।
कट्वम्लेन च हेमन्तं तिक्तेन शिशिरं तथा॥
नक्ताशनस्तथा तिष्ठेत्पञ्चकं वर्जयेद्रसं।
ब्राह्मणान् भोजयेच्चापि प्रभूतवसनादिभिः॥
संवत्सरमिदं कृत्वा व्रतं परमपावनं।
अश्वमेधमवाप्नोति राजसूयञ्च विन्दति॥
सर्व्वान् कामानवाप्नोति नात्र कार्य्या विचारणा।
फलमक्षयमाप्नोति व्रतस्यास्य करोत्तम॥

चैत्रे समारभ्य सिते तु षष्ठीं
संपूजयेद्यस्त्वृतुषटकमेकं ।
कृतोपवासः स नरो यथोक्तं
लभेत् फलं शाश्वतमेव शीघ्रं ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं षण्मूर्त्तिव्रतं ।

———oo———

कृत्वैकभक्तं हेमन्ते माघमासे तु यन्त्रितः ।
माघान्ते च रथं कुर्य्याच्चित्रवस्त्रोपशोभितं ॥
श्वेतैश्चतुर्भिः संयुक्तं वृषभैः समलङ्कृतं ।
शोभितं ध्वजमालाभिश्चित्रचामरदर्पणैः ॥
तण्डुलाटकपिष्टेन लिङ्गं कृत्वा सवेदिकं ।
विन्यस्य रथमध्ये तु पूजयेत् कृतलक्षणं ॥
तद्रात्रौ राजमार्गे च शङ्खभेर्य्यादिभिः स्वनैः ।
भ्रामयित्वा ततः पश्चाच्छिवायतनमानयेत् ॥
तत्र जागरपूजाभिःप्रदीपाद्युपशोभितैः ।
प्रेक्षणीयप्रदानैश्च क्षपयेत शनैर्निशां ।
प्रभाते स्नापनं कृत्वा तद्भक्तानाञ्च भोजनं ॥
दीनान्धकृपणानाञ्च यथाशक्त्या च दक्षिणां ।
रथं शोभासमायुक्तं शिवाय विनिवेदयेत् ॥
भुक्त्वा च बान्धवैः सार्द्धं प्रणम्येशं गृहं व्रजेत् ।
प्रवरः सर्व्वदानानामस्मिन् धर्म्मः समाप्यते ॥
व्रतं शिवरथं नाम सर्व्वकामार्थसाधकं ।

सर्व्वव्रतेषु यत्पुण्यं (१) सर्व्वयज्ञेषु यत्फलं॥
सर्व्वं शिवरथेनैव तत्पुण्यं सकलं भवेत्।
सूर्य्यायुतप्रतीकाशैर्विमानैः सार्व्वकामिकैः।
त्रिःसप्तकुलजैः सार्द्धं शिवलोके महीयते॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं शिवरथव्रतं।

———ooo———

पुलस्त्य उवाच।

वर्जयेद्यस्तु पुष्पाणि हेमन्तशिशिरे व्रती।
पञ्चत्रयस्तु फाल्गुन्यां कृत्वा शक्त्या च काञ्चनं॥
दद्यात्‌ हि कालवेलायां (२) प्रीयेतां शिवकेशवौ।
शिरःसौगन्ध्यजननं सदानन्दप्रदं नृणां॥
कृत्वा परं पदं याति सौगन्ध्यव्रतमुत्तमं।

इति पद्मपुराणोक्तं सौगन्ध्यव्रतं।

——oo——

पुलस्त्य उवाच।

यश्चेन्धनन्ददेद्विप्रे वर्षादिचतुरस्त्वृतून्।
घृतधेनुप्रदोऽन्ते च स परं ब्रह्म गच्छति॥
वैश्वानरव्रतं नाम सर्व्वपापप्रणाशन।

इति पद्मपुराणोक्तं वैश्वानरव्रतं।

---

(१) सर्व्वप्राण्येषु यत् पुण्यमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

(२) दद्याद्धि कालवेलायामिति पुस्तकान्तरे पाठः।

पवित्रतोययुक्तैर्यः कुम्भैः ग्रीष्मे शिवोपरि ।
गालयेद्यः पयोधारां स ब्राह्मपदमश्नुते ॥

इति शिवरहस्योक्तजलतिकाव्रतं ।

---

इति श्रीमहाराजाधिराज-श्रीमहादेवस्य समस्तकरणा-
धीश्वरसकलविद्याविशारद-श्रीहेमाद्रिविरचिते
चतुर्व्वर्गचिन्तामणौ व्रतखण्डे
ऋतुव्रतानि ।

---

# अथ त्रिंशोऽध्यायः।

———000@000———

## अथ संवत्सरव्रतानि।

———000———

विद्वन्मनःकैरव कोरकाणां
शशाङ्कसन्दीधितिरद्भुतो यः।
हेमाद्रिणा प्राणभृतां हिताय
वितन्यते तेन समाव्रतौघं॥

पुलस्त्य उवाच।

नक्तमश्वरित्वा तु गवा सार्द्धं कुटुम्बिने।
हैमञ्चक्रं त्रिशूलञ्च दद्याद्विप्राय वाससी॥
प्रणम्य भक्त्या शक्तञ्च प्रीयतां शिवकेशवौ।
एतद्देवव्रतं नाम महापातकनाशनं॥

इति पद्मपुराणोक्तं दवव्रतं।

———0———

पुलस्त्य उवाच।

सन्ध्यामौनं नरः कृत्वा समान्ते घृतकुम्भकं।
वस्त्रयुग्मं तिलान् घण्टां ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥
लोकं सारस्वतं याति पुनरत्रैव जायते।
एतत्सारस्वतं नाम रूपविद्याप्रदायकं॥

इति पद्मपुराणोक्तं सारस्वतव्रत।

यस्तु संवत्सरं पूर्णमेकभक्तो भवेन्नरः ।
अहिंसः सर्व्वभूतेषु वासुदेवपरायणः ॥
नमोऽस्तु वासुदेवायेत्यहन्याष्टशतं जपेत् ।
पौण्डरीकस्य यज्ञस्य ततः फलमवाप्नुयात् ॥
दशवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।
तत् क्रियादिह वागत्य माहात्म्यं प्रतिपद्यते ॥

## इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तमेकभक्तव्रतं ।

———ooo@oo———

पुलस्त्य उवाच ।

कृत्वोपलेपनं शम्भोरग्रतः केशवस्य च ।
यावदष्टं पुनर्दद्याद्धेनुं जलघृतस्य च ॥
स सर्व्वपापनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ।
राजा भवति सम्भूतः सर्व्वभौमो महेश्वरः ।
एतत् श्रद्धाव्रतं नाम बहुकल्याणकारकं ॥

## इति पद्मपुराणोक्तं श्रद्धाव्रतं ।

———ooo@ooo———

पुलस्त्य उवाच ।

अश्वत्थं भास्करं गङ्गां प्रणम्यैकत्र वाग्यतः ।
एकभक्तं नरः कुर्य्यादष्टमीकं विमत्सरः ॥
व्रतान्ते विप्रमिथुनं पूज्य धेनुत्रयान्वितं ।
वृक्षं हिरण्मयं दद्यात्सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥

दिवि देवविमानस्थो गीयतेऽप्सरसाङ्गणैः ।
एतत्कीर्त्तिव्रतं नाम भूमिकीर्त्तिप्रदायकं ॥

इति पद्मपुराणोक्तं कीर्त्तिव्रतं ।

---

घृतेन स्नापनं कृत्वा केशवस्य शिवस्य च ।
ब्राह्मणो भास्करस्यापि गौर्य्या लम्बोदरस्य च ॥
अक्षतैश्च शुभं कुर्य्यात्पद्मं गोमयमण्डले ।
समान्ते हेमकमलं तिलधेनुसमन्वितं ॥

समा वर्षं ।

शङ्खमष्टाङ्गुलं दद्याच्छिवलोके महीयत ।
सामगाययतश्चैतत् सामव्रतमिहोच्यते ॥

इति पद्मपुराणोक्तं सामव्रतं ।

---

ताम्बूलभक्षणादौ या गौरीपत्रं ददाति च ।

गौरीपत्रं ताम्बूलपत्रं ।

पूगचूर्णसमायुक्तं स्त्रियो वा पुरुषस्य वा ॥
वर्षस्यान्ते तु सौवर्णं फलपत्रन्तु राजतं ।
मुक्ताफलमयं चूर्णं सम्पूर्णं वा प्रयच्छति ॥
न सा प्राप्नोति दौर्भाग्यं न दौर्गन्ध्यं मुखस्य वा ।
एतत्पत्रव्रतं नाम गौरीलोकप्रदायकं ॥

इति भविष्योत्तरोक्तं पत्रव्रत ।

पञ्चामृतेन स्नापनं कृत्वा विष्णोः शिवस्य वा ।
वत्सरान्ते पुनर्दद्याद्धेनुं पञ्चामृतैर्युतं ॥
विप्राय कनकं शङ्खं वस्त्रयुग्मञ्च पाण्डरं ।
स्वर्गलोकप्रदं दिव्यं धृतिव्रतमिदं स्मृतं ॥

इति विष्णुपुराणोक्तं धृतिव्रतं ।

———000———

पुलस्त्य उवाच ।

वर्ज्जयित्वा पुमान्मांसमब्दान्ते गोप्रदो भवेत् ।
तद्वद्धेममृगं दत्वा सोऽश्वमेधफलं लभेत् ।
अहिंसाव्रतमित्युक्तं कल्पान्ते भूपतिर्भवेत् ॥

इति पद्मपुराणोक्तमहिंसाव्रतं ।

———

मुखवासं परित्यज्य समान्ते गोप्रदो भवेत् ।
यक्षाधिपत्यमाप्नोति सुखव्रतमिहोच्यते ॥

इति पद्मपुराणोक्तं सुखव्रतं ।

———

यश्च नीलोत्पलं हैमं शर्करापात्रसंयुतं ।
एकान्तरितनक्ताशी समान्ते वृषसंयुतं ।
दद्यादिति शेषः ।
स वैष्णवं पदं याति नीलव्रतमिदं स्मृतं ॥

इति पद्मपुराणोक्तं नीलव्रतं ।

वत्सरं त्वेकभक्ताशी सभक्ष्यफलकुम्भदः।
शिवलोके वसेत्कल्पं प्राप्तिव्रतमिदं स्मृतं॥

इति पद्मपुराणोक्तं प्राप्तिव्रतं।

———000———

सन्ध्यादीपप्रदो यस्तु समां तैलञ्च वर्जयेत्।
समान्ते दीपकान् दद्याच्चक्रं शूलञ्च काञ्चनं॥
वस्त्रयुग्मञ्च विप्राय स तेजस्वी भवेदिह।
रुद्रलोकमवाप्नोति दीप्तिव्रतमिदं स्मृतं॥

इति पद्मपुराणोक्तं दीप्तिव्रतं।

———000———

आकाशशायी समां दद्याद्धेनुमन्ते पयस्विनीं।
शक्रलोकमवाप्नोति शक्रव्रतमिदं स्मृतं॥

इति पद्मपुराणोक्तं शक्रव्रतं।

———000———

यस्त्वेकभक्तेन समां क्षिपेद्धेनुं वृषान्वितां।
धेनुं तिलमयीं दद्यात्स पदं याति शाङ्करं।
एतद्रुद्रव्रतं नाम पापशोकविनाशनं॥

इति पद्मपुराणोक्तं रुद्रव्रतं।

———oo@oo———

द्वे सहस्रे पलानान्तु माहिषाख्यन्तु यो दहेत्।
देवि संवत्सरं पूर्णं स मे नन्दिसमो भवेत्।

पलं नव समारभ्य पयः प्रतिदिनं दहेत् ॥

इति पद्मपुराणोक्तं शम्भुव्रतं।

———000———

दक्षिणायाश्च यो मूर्त्तौ पायसं सघृतञ्च वै।
निवेदयेद्वर्षमेकं सोऽपि नन्दिसमो भवेत् ॥
ततः संवत्सरे पूर्णे सोपवासोऽथ जागरं।
कृत्वाभ्यर्च्य महेशानं महास्नानादिभिर्व्रतं ॥
दद्याद्विप्राय पृथिवीं शय्यां गाञ्च पयस्विनीं।
नन्दिना चरितं पुण्यं व्रतं पातकनाशनं।
कृतं संवत्सरं भक्त्या तावदेव निवेदितं ॥

इति स्कन्दपुराणोक्तं महेश्वरव्रतं।

———000@000———

संवत्सरन्तु यो भुङ्क्ते नित्यमेव ह्यतन्द्रितः।
निवेद्य पितृदेवेभ्यः पृथिव्यामेकराड्भवेत् ॥
यो भुङ्क्ते पृथिव्यामित्यन्वयः।

इति पद्मपुराणोक्तं भुभाजनव्रतं।

———

इति श्रीमहाराजाधिराज-श्रीमहादेवस्य समस्तकरणा-
धीश्वरसकलविद्याविशारद-श्रीहेमाद्रिविरचिते
चतुर्वर्गचिन्तामणौ व्रतखण्डे
संवत्सरव्रतानि।

———

# अथ एकत्रिंशोऽध्यायः।

——————ooOoo——————

## अथ प्रकीर्णकव्रतानि।

——————ooo——————

हेमाद्रिरुन्निद्रमुरारिभक्ति-
रधीतवेदाखिलधर्म्मवेदः।
अशेषलोकोद्धरणावतीर्णः
प्रकीर्णकं वर्णयति क्रमेण॥

श्वेतद्वीपे सुखासीनं देवदेवं जगद्गुरुं।
वासुदेवं जगन्नाथं स्थितिसंहारकारकं॥
प्रणिपत्य महादेवं चराचरगुरुं हरिं।
शरीरारोग्यमैश्वर्य्यं कामदेवसमः पतिः॥
सुखावबोधने नित्यमवियोगश्च तेन वै।
तद्दानं वा व्रतं वापि पूजामाराधनादिकं॥
लक्ष्मीः प्रोवाच शनकैर्भर्त्तारमसितेक्षणा।
भगवन् देवदेवेश लोकानामनुकम्पया।
प्रष्टुं त्वां किञ्चिदिच्छामि दयां कुरु ममोपरि॥
व्रतं कथय मे किञ्चिद्रूपसौभाग्यदायकं।
कृतेन येन देवेश सर्व्वतीर्थफलं लभेत्॥
येन पुत्राश्च पौत्राश्च गृहं सर्व्वसमृद्धिदं।
शरीरारोग्यमैश्वर्य्यं कामदेवसमःपतिः॥
सुखावलोकने नित्यमवियोगश्च तेन वै।

तद्दानं वा व्रतं वापि तीर्थमाहात्म्यमेव च ॥
येनानुष्ठितमात्रेण सर्व्वसिद्धिर्भवेत् ध्रुवं।
कथयस्व सुरश्रेष्ठ गुह्याद्गुह्यतरं मम ॥

विष्णुरुवाच।

कथयामि न सन्देहो व्रतानामुत्तमं व्रतं।
प्रद्युम्नायापि नाख्यातं पुत्रप्रीत्या व्रतं त्विदं ॥
तेजस्विनां यथादित्यः पक्षिणाङ्गरुडो यथा।
यथा नदीनां गङ्गा च वर्णानां ब्राह्मणो यथा।
तथा व्रतमिदं श्रेष्ठं कथ्यते तव भामिनि ॥
न गङ्गा न कुरुक्षेत्रं न काशी न च पुष्करं।
पावनानि महाभागे यथेदं व्रतमुत्तमं ॥
गौर्य्या देव्या कृतं पूर्व्वं शङ्करेण महात्मना।
रामेण सीतया सार्द्धं दमयन्त्या नलेन च।
कृष्णेन पाण्डवैः सर्व्वैः कृतं व्रतमनुत्तमं ॥
रम्भया मेनया चापि पौलोम्या सत्यभामया।
शाण्डिल्ययाप्यरुन्धत्या उर्व्वश्या देवदत्तया ॥
गायत्र्या चैव सावित्र्या व्रतं श्रेष्ठमनुत्तमं।
अन्याभिश्चैव नारीभिर्द्दिवि व्रतमिदं कृतं ॥
तस्मात्तेऽहं करिष्यामि सर्व्वपापप्रणाशनं।
विष्णुप्रीतिकरं रम्यं व्रतानां प्रवरं शृणु ॥
ब्रह्महा मुच्यते पापात्सुरापो रुक्महारकः।
गुरुभार्य्याभिगामी च एतेषां सङ्गमीच यः ॥
मानकूटस्तुलाकूटः कन्यानृगवविक्रयी।

अगम्यागमनो यस्तु मांसाशी वृषलीपतिः ॥
भूमिहर्त्ता कूटसाक्षी कन्यादूषयिता च यः।
एभिः सर्व्वैर्महापापैर्मुच्यते नात्र संशयः।
तस्मात्सर्व्वप्रयत्नेन कर्त्तव्यं व्रतमुत्तमं ॥
काञ्चनाख्या पुरी नाम व्रतं त्रैलक्यपावनं।
शुक्लतृतीया कृष्णा च एकादश्यऽथ पूर्णिमा ॥
संक्रान्तिर्वा महाभागे कुहुर्वा चाष्टमी तिथिः।
पर्व्वस्वेतेषु दातव्या काञ्चनाख्या पुरी शुभा ॥
व्रती स्नात्वा तु पूर्व्वाह्ले नद्यादौ विमले जले।
मृत्तिकालम्भनं कार्य्यं विधिनानेन तत् प्रिये ॥
उद्धृतासि धरे पूर्व्वं विष्णुना क्रोडरूपिणा।
लोकानामुपकाराय वन्दिता सिद्धिकामदा।
तस्मात्त्वं वन्दिता पापं हर मेऽनेकजन्मजं ॥

मृत्तिकालम्भनमन्त्रः।

आपोयूयं सर्व्वयोनिर्विष्णुना निर्म्मिताः स्वयं।
सान्निध्यं तीर्थसहिताः कुरुध्वं साम्प्रतं मम ॥

उदकाभिमन्त्रणं।

अनेन विधिना स्नात्वा गृहमागत्य सद्व्रती।
नालपेत् पिशुनान् चण्डान् पापिनः पापसङ्गिनः ॥
पाषण्डिनो विकर्म्मस्थान्देवब्राह्मणनिन्दकान्।
प्रक्षाल्य पाणिपादञ्च कुर्य्याद्‌ वै दन्तधावनं ॥
उपवासस्य नियमं कुर्य्यान्नक्तस्य वा पुनः।
शङ्खमवरमादाय हेमयुक्तं ततो जलं ॥

नमो भगवते वासुदेवायेत्यभिमन्त्र्य च ।
वन्दे तीर्थं शुचिर्भूत्वा हरिरित्यक्षरं जपन् ॥
शमीवृक्षमयी वेदी चतुःस्तम्भैः समन्विता ।
चतुर्हस्तप्रमाणा तु कार्य्या चैव सुशोभना ॥
वस्त्रेणावेष्टितास्तम्भा वितानवरमण्डिताः ।
पुष्पमालान्विताः कार्य्या दिव्यरूपाधिवासिताः ॥
मध्ये तु मण्डलं कार्य्यं पद्माख्यं वर्णकैः शुभैः ।
मण्डलस्य तु मध्ये तु भद्रपीठं सुशोभनं ॥
आसनं तत्र विन्यस्य कमलं तत्र विन्यसेत् ।
तस्योपरि न्यसेद्देवं लक्ष्म्या युक्तं जनार्द्दनं ॥
अग्रे तु स्थापयेत् कुम्भं जलपूर्णं सुशोभनं ।
क्षीरसागरनामास्य कल्पितव्यं प्रयत्नतः ।
सामान्यैकपलाः कार्य्या आत्मवित्तानुसारतः ॥

चत्वारिपलान्यस्यामिति वीप्सायां बहुव्रीहिः सप्तवर्णवत् । वीप्सायाञ्च गृहाणां गृहाणि च पततः षोड़शमध्य एकमिति सप्तदशतावद्ब्राह्मणविधानात् । मध्यगृहस्याष्टधाचार्य्यगृहत्वात् । तत्प्रकारस्तद्वत् । बहिःप्रकारो बहिर्गृहवत् । एवं चतुश्चत्वारिंशदधिकशतपलं हेम । तावच्च रूप्यं(१) ।

रौप्या ह्यस्या अधोभूमिः शिखरं काञ्चनं तथा ।

---

(१) आदर्शपुस्तकेषु एतद्गद्यसमूहात् पूर्व्वं कतिचित पाठाः पतिताः प्रतिभान्ति, अन्यथा एतद्गद्यसमूहात् पूर्व्वं यादृश पद्यसमूहं आदर्शपुस्तकेषु दृष्टं तन्मध्ये चतुष्पला इति शब्दाभावात् चत्वारि पलान्यस्यामिति व्युत्पत्तिकरणं न समीचीनं भवितुमर्हति ।

स्तम्भा रत्नमयाः कार्य्या दशेरससमन्विताः(१)।
प्राकारं कारयेद्धैमं रौप्यं पैष्टमथापि वा॥

पैष्टं सीसं।

मोदकान् स्थापयेद्विद्वान् प्रासादशिखरेषु च।
समन्ताद्वेष्टयेत्तान्तु पुरीं वस्त्रैः सुशोभनैः॥
तदग्रे कदलीस्तम्भैस्तोरणं परिकल्पयेत्।
पुष्पशोभानुकर्त्तव्या विभवाद्विस्तरेण च॥
चतुश्चरणिकैर्विप्रैः प्रतिष्ठाप्या पुरी शुभा।
तस्या मध्ये न्यसेद्विष्णुं हैमलक्ष्म्या समन्वितं॥
नेत्रे रत्नमये कार्य्ये दशनाश्च सुभूषिताः।
मुक्ताफलमयं तत्र भूषणं परिकल्पयेत्॥
अङ्गं स्वर्णमयं कार्य्यं शङ्खचक्रगदायुतं।
पञ्चामृतेन संस्नाप्य गन्धपुष्पैः प्रपूजयेत्॥
ब्राह्मणो वैदिकैर्मन्त्रैः पुराणोक्तैस्तथोत्तरैः।
वासुदेवाय पादौ तु गुल्फौ संकर्षणाय च॥
त्रैलोक्यजननायेति जानुनी पूजयेद्धरेः।
जानु त्रैलोक्यनाथाय गुह्यं ज्ञानमयाय च॥
कटिं दामोदरायेति उदरं विष्णुरूपिणे।
पद्मनाभाय नाभिन्तु उरः श्रीवत्सधारिणे॥
कण्ठं कौस्तुभनाभाय आस्यं यज्ञमुखाय च।
दैत्यान्तकारिणे बाहू स्वनाम्ना चायुधानि च॥
शिखाश्चैशानमन्त्रेण देवदेवस्य पूजयेत्।

(१) पाठोऽयमादर्शदोषेण न समीचीनः।

श्रियं स्वमन्त्रैः संपूज्य लोकपालांस्ततोऽर्चयेत् ॥
नवग्रहाश्च पूज्या वै होमं तेषान्तु कारयेत्।
दुर्गागणपती पूज्यौ तयोर्होमं प्रकल्पयेत् ॥
अग्रे नैवेद्यमतुलं दापयेद्घृतपाचितं।
पायसं घृतपूरांश्च मोदकान् पूपकांस्तथा ॥
देशकालोद्भवान्यत्र फलादीनि प्रकल्पयेत्।
दीपान् दशदिशं दद्यात् पार्श्वतः पुष्पचर्चितान् ॥
घृतेन तु विशालार्चि मूलमन्त्रेण दापयेत्।
कुम्भाः षोड़श कर्त्तव्याः श्वेतवस्त्रैर्विभूषिताः ॥
मिष्टान्नेन समायुक्ताः सहिरण्याः पृथक् पृथक्।
पक्वान्नानि तु हृद्यानि षोड़शैव प्रदापयेत् ॥
फलानि तत्र देयानि नानारूपाणि सुन्दरि।
दीपांस्ताम्रमयांश्चैव तेषु कुम्भेषु विन्यसेत् ॥
ब्राह्मणान् भूषयेत्तैस्तैरलङ्कारैर्यथाविधि।
सपत्नीकान् प्रयत्नेन जपं कुर्य्यात्तु षोड़श ॥
सहस्रशीर्षा इत्यादि ऋग्भिकाभिस्तु मन्त्रयेत्।

आचार्य्यः सर्व्ववित्प्राज्ञो बन्धयेत्तदस्येन च ॥
आबद्धनेत्रे सुप्राज्ञ आचार्य्यस्तु इदं वदेत्।
सर्व्वकामप्रदां पश्य काञ्चनाख्यां पुरीमिमां ॥
वरवस्त्रयुतां रम्यां दुःखदौर्भाग्यनाशनीं।
एवमुक्त्वा महाभागे वस्त्रमुत्सर्जयेत्ततः ॥
पुष्पाञ्जलिं ततः क्षिप्त्वा स पश्येन्नगरीं शुभां।
दृष्ट्वा तां नगरीं देवि यजमानः पुरोहितः॥
सौवर्णपात्रमादाय रौप्यन्ताम्रमथापि वा।
अथवा शङ्खमादाय पात्रालाभे तु सुन्दरि ॥
पञ्चरत्नं क्षिपेत्तत्र जलगन्धांस्तथा फलं।
सिद्धार्थञ्चाक्षतं दूर्व्वां रोचनाञ्च दधि प्रिये॥
ततस्त्वर्घ्यः प्रदातव्यो मन्त्रेणानेन सुव्रते।
लक्ष्मीनारायणौ देवौ भक्तिपूतेन चेतसा ॥
जानुभ्यां धरणीं गत्वा मन्त्रमेनमुदीरयेत्।
स्वर्णस्य निर्म्मिता देवी विष्णुना शङ्करेण च॥
पार्व्वत्या चैव गायत्र्या स्कन्दवैश्रवणेन च।
यमेन पूजिता देवी धर्म्मस्य विजिगीषया ॥
सौभाग्यं देहि पुत्रांश्च धनं रूपञ्च पूजिता।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं देवि सौख्यं प्रयच्छ मे।
एवमर्घ्यं तदा दत्वा दीपान् प्रज्वलयेत्ततः॥
जागरं तत्र कुर्व्वीत गीतनृत्यादिना तथा।
विष्णोर्जागरणे पुण्ये शतयज्ञफलं लभेत् ॥
प्रभाते विमले जाते कृत्वा नित्यादिपूजनं।

आचार्य्यं पूजयेत्तद्वद्वस्त्रै राभरणैस्तथा ॥
सपत्नीकं सपुत्रञ्च यत्नात् सम्भोज्य पूजयेत् ।
शय्या सोपस्करा तस्मै वस्त्रचन्दनसंयुता ॥
प्रदेया गुरवे तत्र सर्व्वोपस्करसंयुता ।
तां पुरीं काञ्चनीं दद्यान्मन्त्रेणानेन सुव्रती ॥
लक्ष्मीनारायणौ देवौ सर्व्वकामफलप्रदौ ।
रुक्मपुर्य्याः प्रदानेन यच्छतां मम वाञ्छितं ॥
नारायण हृषीकेश ज्ञानज्ञेय निरञ्जन ।
रुक्मपुर्य्याः प्रदानेन यच्छ मे मुक्तिदं परं ॥
दत्त्वा त्वनेन मन्त्रेण गौर्देया गुरवे ततः ।
तेभ्यस्तु दक्षिणां दद्यात्सन्तुष्टा यद्भवन्ति ते ॥
एवं क्षमापयित्वा तान् प्रणम्य च पुनः पुनः ।
अनाथान् बधिरान् पङ्गूनन्धांश्चैव विशेषतः ॥
गवाह्निकञ्च दातव्यं गोभ्यः सक्तत् प्रयत्नतः ।
एवमुच्चारयेत्तत्र विष्णुर्मे प्रीयतामिति ॥
एवं कृत्वा तु तत्सर्व्वं पारणं तत्र कारयेत् ।
इष्टैर्मित्रैः कुटम्बैश्च पुत्रपौत्रैः समन्वितः ॥
एवं कृते तु यत्पुण्यं अशक्यं कथितुं मया ।
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ॥
ब्रह्मलोकं समासाद्य व्रती मोदति ब्रह्मवत् ।
ब्रह्मलोकाद्रुद्रलोकमिन्द्रलोकमतः परं ॥
क्षीणलोकस्ततो देवि मदीयं लोकमाप्नुयात् ।
तत्र भुक्त्वा तु विस्तीर्णान् भोगांस्त्रैलोक्यसुन्दरि ॥

महेहे लीयते चैव पुमानमृततां व्रजेत्।
सार्व्वभौमस्तु राजा वै जायते विपुले कुले॥
य इदं शृणुयान्नित्यं वाच्यमानं व्रतन्त्विदं।
सहस्रकुलमुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते॥
त्वया काञ्चनपुर्य्याख्यं व्रतमेतत् कृतं पुरा।
व्रतप्रसादाद्भर्त्ताहं लब्धस्त्रैलोक्यपूजितः॥

इति गारुड़पुराणोक्तं काञ्चनपुरीव्रतं।

——000——

युधिष्ठिर उवाच।

संपूर्णतां मनुष्याणां व्रतानाञ्च जनार्द्दन।
कुरु प्रसादङ्गुह्यार्थमेतन्मे वक्तुमर्हसि॥

श्रीकृष्ण उवाच।

साधु साधु महावाहो कुरुराज युधिष्ठिर।
रहस्यानां रहस्यन्ते कथयामि व्रतोत्तमं॥
संपूर्णं नाम तच्चापि व्रतं सम्यक् फलप्रदं।
यच्चीर्णं नरनारीभिर्य्यावत् संपूर्णकालकं॥
अवश्यन्तच्च कर्त्तव्यं संपूर्णफलकाङ्क्षिभिः।
किञ्चिद्भग्नं प्रमादेन यद्व्रतं व्रतिनां भवेत्॥
तत् संपूर्णं भवेत् सर्व्वं व्रतेनानेन पाण्डव।
उपद्रवैर्बहुविधैर्महामोहाच्च पार्थिव॥
यद्भग्नं किञ्चिदेव स्यात् व्रतं विघ्नविनायकैः।
तत् संपूर्णं भवेत् सर्व्वं सत्यं सत्यं न संशयः॥
काञ्चनं रौप्यकं रूपं शिल्पिना तु घटापयेत्।

भग्नव्रतस्य योदेवस्तत् स्वरूपं सुनिर्म्मितं ॥
रूपं स्त्रीपुंसयोर्वापि प्रारब्धं तद्‌व्रतं किल ।
नच निष्पादितं किञ्चिद्दैवात् सर्व्वं तथा स्थितं ॥
द्विभुजं पङ्कजारूढ़ं सौम्यं प्रहसिताननं ।
द्विभुजादीनि स्त्रीपुंसयोरूपस्य विशेषणं ॥

तच्च रूपमज्ञातेषु व्रतेषु, जन्मान्तरकृतानां विस्मृतानाञ्च ज्ञातत्वं तेष्वपीदं प्रायश्चित्तमिति ।

निष्पादितं शिल्पिना च तस्मिन्नेव दिने पुनः ।
तस्मान्मासे पुनः प्राप्ते ब्राह्मणो विधिना गृहे ॥
स्नापयेत्पयसा दध्ना घृतक्षीररसाम्बुभिः ।
गन्धचन्दनपुष्पैस्तु पूजयेत् कुसुमादिना ॥
तोयपूर्णस्य कुम्भस्य मुखे विन्यस्य चन्दनैः ।
धूपदीपाक्षतैर्वस्त्रैरन्नैर्बल्युपहारकैः ॥
अर्घ्यं दद्याच्च तन्नाम्ना मन्त्रेणानेन पाण्डव ।
उपवासेन हीनस्य प्रायश्चित्तं कृताञ्जलिः ॥
शरणञ्च प्रपन्नस्य कुरुष्वाथ दयां पुनः ।
परञ्च भयभीतस्य भग्नवर्ज्यव्रतस्य च ॥
कुरु प्रसादं संपूर्णं व्रतं संपूर्णमस्तु मे ।
तपश्छिद्रं व्रतच्छिद्रं यच्छिद्रं भग्नके व्रते ।
तव प्रसादात्तद्देव सर्व्वमच्छिद्रमस्तु मे ॥

स्वाहा अमुकदेवाय नमः ।

पूर्व्वतो दक्षिणत उत्तरतो विधिं कुर्य्यात् ।

उपर्य्यधस्ताद्दिक्पालेभ्यो नमः ।

इदमर्घ्यमिदं पाद्यं नैवेद्यं ते नमोनमः।
एवं प्रोक्ष्य ततः पादौ जानुनी कटिशीर्षके॥
वक्षःकुक्षी च हृदयं पृष्ठं वास्यशिरोरुहान्।
ततो द्विजाय कौन्तेय विधिवत् प्रतिपादयेत्॥
पूजयेत्तस्य देवस्य ततः पश्चात् क्षमापयेत्।
पूजितस्त्वं यथाशक्त्या नमस्तेऽस्तु सुरोत्तम॥
ऐहिकामुष्मिकीं नाथ कार्य्यसिद्धिं दिशस्व मे।
एवं क्षमापयित्वा तां देवमूर्त्तिं विधानतः॥
स्थित्वा पूर्व्वमुखो विप्रो गृह्णीयाद्दर्भपाणिना।
विप्रस्य हस्ते यच्छेत्तु दाता चैवोत्तरामुखः॥
ब्राह्मणोऽपि प्रयच्छेत मन्त्रेणानेन तद्व्रतं।
वाक्यं पूर्णं मनः पूर्णं काया पूर्णा व्रतेन ते।
संपूर्णस्य प्रसादेन तव पूर्णो मनोरथः॥
ब्राह्मणा यानि भाषन्ते अनुमोदन्ति देवताः।
सर्व्वदेवमया विप्रा न तद्वचनमन्यथा॥
जलस्य क्षीरतां नीतः पावकः सर्व्वभक्षतां।
सहस्रनेत्रः शक्रोऽपि कृतोविप्रैर्महात्मभिः॥
ब्राह्मणानान्तु वचनात् ब्रह्महत्या प्रणश्यति।
अश्वमेधफलं साग्रं प्राप्यते नात्र संशयः॥
व्यासवाल्मीकिरचनात्परासरवसिष्ठयोः।
गर्गगौतमधौम्यात्रिवसिष्ठाङ्गिरसां तथा।
वचनान्नारदादीनां पूर्णं भवतु मे व्रतं॥
एवंविधविधानेन गृहीत्वा ब्राह्मणो व्रजेत्।

दाता तत् प्रेरयेत् सर्व्वं ब्राह्मणस्य गृहे स्वयं ॥
ततः पञ्चमहायज्ञान्निर्वपेद्भोजनादिभिः ।
एवं यः कुरुते भक्त्या व्रतमेतत्सदा बुधः ॥
तस्य संपूर्णतां याति तद्व्रतं यत्पुरास्थितं ।
खण्डं संपूर्णतां याति प्रसन्ने व्रतदैवते ॥
संपूर्णे च ततः कर्त्ता संपूर्णाङ्गोभवेद्व्रती ।
भोगी भव्योल्लसत्कीर्त्तिः स संपूर्णमनोरथः ॥
स्थित्वा वर्षशतं मर्त्त्ये ततः स्वर्गेऽमरो भवेत् ।
यथेष्टचेष्टाचारी च ब्रह्मविष्ण्वीशपूजितः ॥
स्वर्गलोके चिरं स्थित्वा पुनर्मोक्षमवाप्नुयात् ।
प्रायश्चित्तमिदं प्रोक्तं पुरा गर्गेण मे प्रभो ॥
गोकुले गोकुलाकीर्णे मया बाल्ये ह्युपोषितं ।
एवं त्वमपि कौन्तेय चर संपूर्णकं व्रतं ॥
भग्नानि यानि मदमोहवशाद्गृहीत्वा ।
जन्मान्तरेष्वपि नरेण समस्तरेण ॥
संपूर्णपूजनपरस्य पुरो भवन्ति ।
सर्व्वव्रतानि परिपूर्णफलप्रदाणि ॥

## इति भविष्योत्तरोक्तं संपूर्णव्रतं

———000———

नन्दिकेश्वर उवाच ।

साधु साधु महाविप्र शिवभक्तोऽसि सुव्रत ।
मौनं वक्ष्यामि तत्त्वज्ञ देवैरपि निषेवितं ॥

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि मौनं सर्व्वार्थसाधकं।
मौनव्रतं महापुण्यं हुं हुं तत्र विवर्जयेत्॥
पुंसां भोजनकाले तु हुङ्कारो यदि निर्गतः।
सर्व्वमेव सुरामांसं तस्मान्मौने विवर्जयेत्॥
कर्म्मणा मनसा वाचा तत्र हिंसां विवर्जयेत्।
मौनस्यास्य प्रभावेन देवाश्च त्रिदिवं गताः॥
अहिंसकः क्षमी भुङ्क्ते शान्तो मौनव्रते स्थितः।
अष्टमासं चरेन्मौनं यः षण्मासमथापि वा॥
मासत्रयसमायुक्तो मासमेकन्तथैव च।
मासार्द्धन्तु पुनः कुर्य्याद्दिवसान् द्वादशाथ वा॥
षट्पञ्च त्रीणि एकं वा मौनी भुञ्जीत यत्नतः।
समाप्ते तु व्रते तस्मिन् मौनव्रतसमाहितः॥
लिङ्गं चन्दनजं कृत्वा षडङ्गेन तु प्रोक्षयेत्।
गोरोचनां समारभ्य गन्धैः पुष्पैस्तु पूजयेत्॥
धूपञ्चागुरुकं दद्यान्नमस्कारं ततः पुनः।
करपादशिरोभिस्तत् प्रणिपत्य निवेदयेत्॥
आत्मवित्तानुसारेण हेमघण्टां प्रदापयेत्।
शिवाग्रतो निबध्नीयाच्छिवस्यातीव वल्लभं॥
शोभितां ध्वजमालाभिः पञ्चरत्नैः सुशोभनैः।
पुष्पदामविलम्बैश्च बहुवर्णैरनेकधा॥
विदिशासु विमानस्य कांस्यघण्टां निबन्धयेत्।
बध्नीयाच्चतुरस्त्रीणि द्वेवैकां शक्तितस्तथा॥
कांस्यलोहमयीं वापि सुशोभां च निवेदयेत्।

शिवस्य पुरतो विप्रांश्शिवभक्तांश्च भोजयेत् ॥
पायसं घृतसंमिश्रं मधुमासंपरिप्लुतं ।
अनेकभक्तभोज्यान्नैर्लेह्यपेयसपिच्छलैः ॥
मञ्जुलक्षीरसंमिश्रैर्मण्डकैः सुसमाहितैः ।
भुक्त्वा प्रव्रजितानांश्च निरुच्छेषं समापयेत् ॥
शक्त्या च दक्षिणां दद्याद्वित्तशाठ्यं विवर्ज्जयेत् ।
क्रमेण जायते विप्र यस्य यस्य तु तद्भवेत् ॥
शिवभक्तायतो नित्यं शान्तिवाक्यं पुनः पुनः ।
ताम्रपात्रे तु तल्लिङ्गं स्थाप्य पुष्पैरलङ्कृतं ॥
शिरसाधार्य्य तत्पात्रं स्वयं मौनी समाहितः ।
स गच्छेत् नृपमार्गेण यावत्तु शिवगोचरं ॥
प्रदक्षिणीकृत्य शिवे त्रीन् वारांश्च समन्ततः ।
प्रविशेद्गर्भगृहकं स्थापयेद्देवदक्षिणे ॥
पुनः पुनः समभ्यर्च्य गन्धपुष्पैश्च सर्व्वतः ।
नमस्कारैस्ततः पश्चात् प्रणम्य शिरसा भुवि ॥
मौनस्यैव विधिः प्रोक्तोमया तव महामुने ।
अस्य मौनस्य माहात्म्याद्देवताः शिवतां गताः ॥
दिव्यवर्षसहस्राणि दिव्यवर्षशतानि च ।
दिव्यवर्षशतं कोटि रुद्रकन्यासमावृतः ॥
कोटिकोटिविमानानामसंख्याकोटिसङ्कुलैः ।
वज्रस्फटिकसोपानैस्तम्भैर्मरकतप्रभैः ॥
सर्वैर्हेममयैर्दिव्यैर्वनमालाविभूषितैः ।
चामरासक्तहस्ताग्रैः कोटिकोटिनरैर्वृतः ॥

दिव्यगन्धसुसंपूर्णैर्युक्तमालाफलान्वितैः।
एवं विधैर्विमानैस्तु आस्ते शिवपुरे सुखी॥
कालक्षयादिहागत्य राजा ह्यमितविक्रमः।
वक्ता च सुभगः श्रीमान् सुरूपः प्रियदर्शनः॥
धर्म्मबुद्धियुतश्चैव सर्व्वशास्त्रविशारदः।
एवं मौनव्रतं प्रोक्तं सर्व्वकामार्थसाधकं।
भुवि सर्व्वासमर्थानां सुकरं प्रकटीकृतं॥

ज्ञानमधर्म्मविनाशनमाद्यं
मोक्षमनादिमनन्तरमेकं।
शिवं सर्व्वजगत्प्रभुं शान्तिकरं
प्रभुमव्ययसूक्ष्ममसूक्ष्मतनुं॥
तनुलम्बितनरमुखमालधरं
परिपिङ्गजटार्द्धशशाङ्कधरं।
दशबाहुत्रिलोचनपापहरं
श्रवणोज्ज्वलकुण्डलनागधरं।
वरनूपुरसुष्टुसुपादधरं
कमलोपरि संस्थितपादतलं॥

सुरासुरशिरश्रेणीमणिनीराजितं हृदये।
नमः शिवाय शान्ताय कारणत्रयहेतवे॥
पठ्यते सर्व्वशास्त्रेषु वेदैश्चैव विशेषतः।
ध्यानधारणयोगात्मा परापरविभूतये॥
य इदं पठते स्तोत्रं भक्त्या चैव तु पूजयेत्।

(१) कर्म्मेति पुस्तकान्तरे पाठः।

न तस्य पीड़ां कुर्व्वन्ति ग्रहाश्चापि ग्रहोत्तमाः ॥
वाचिकं मानसं पापं (१) नश्यते नात्र संशयः ।
इति मौनव्रतं पुण्यं यस्तनोति महेश्वरं ।
मुच्यते सर्व्वपापेभ्यो रुद्रलोकं स गच्छति ॥

इति शिवधर्म्मोक्तं मौनव्रतं ।

———ooo@ooo———

श्रुतिस्मृतिपुराणेभ्यो यन्मया ह्यवधारितं ।
तत्ते वच्मि सुरश्रेष्ठ कस्यान्यस्योपदिश्यते ॥
स्नात्वा प्रभातसन्ध्यायामुपस्पृश्य च पिप्पलं ।
तिलपात्रन्तु यो दद्यात् स न शोच्यः कृताकृते ॥
व्रतानामुत्तमं ह्येतत् सर्व्वपापप्रणाशनं ।
पुत्रव्रतमितिख्यातं नाख्यातं कस्यचिन्मया ॥

इति भविष्योत्तरोक्तं पुत्रव्रतं ।

———oo@oo———

कृच्छ्रान्ते गोयुगं दद्यात् भोजनं शक्तितः पदं ।
विप्राणां शाङ्करं याति प्राजापत्यमिदं स्मृतं ॥
शाङ्करं पदं यातीत्यन्वयः ।

इति पद्मपुराणोक्तं प्राजापत्यव्रतं ।

——o——

त्रिसन्ध्यं पूज्य दम्पत्यमुपवासी विभूषणैः ।
दद्याद्गां धनमाप्नोति मोचमिन्दुव्रतादिह ॥

इति पद्मपुराणोक्तमिन्दुव्रतं ।

गौरीसमन्वितं शम्भुं लक्ष्म्या सह जनार्दनं।
राज्ञीसमन्वितं सूर्य्यं प्रतिष्ठाप्य यथाविधि।
धूपोत्क्षेपेण सहितं(१) घण्टां पात्रेण संयुतां॥

पात्रं, दीपपात्रं।

यो ददाति द्विजेन्द्राणां पुष्पैरभ्यर्च्य पाण्डरैः।
दक्षिणासहितं दत्वा प्रणम्य च पुनः पुनः॥

द्विजेन्द्राणामिति बहुवचनादेव युग्मानां पृथग्दानं धूपादित्रयञ्च प्रतियुग्मं।

एतद्देवीव्रतं नाम दिव्यदेहप्रदायकं॥

इति भविष्योत्तरोक्तं देवीव्रतं।

———oo———

मासोपवासी यो दद्याद्धेनुं विप्राय शोभनां।
सर्व्वेश्वरपदं याति भीमव्रतमिदं स्मृतं॥

इति पद्मपुराणोक्तं भीमव्रतं।

———o———

चान्द्रायणञ्च यः कृत्वा हैमचन्द्रं निवेदयेत्।
चन्द्रव्रतमिदं प्रोक्तं चन्द्रलोकप्रदायकं॥

इति पद्मपुराणोक्तं चन्द्रव्रतं।

———ooo———

पक्षोपवासी यो दद्याद्विप्राय कपिलाद्वयं।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति देवासुरसुपूजितः।

(१) धूपोत्क्षेपणसहितमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

तदन्ते राजराजः स्यात् प्रभाव्रतमिदं स्मृतं ॥

इति पद्मपुराणोक्तं प्रभाव्रतं।

---

ब्रह्माण्डं काञ्चनं कृत्वा तिलराशिसमन्वितं।
त्र्यहं तिलप्रदो भूत्वा वह्निं सन्तर्प्य च द्विजान् ॥
संपूज्य विप्रदम्पत्यं माल्यवस्त्रविभूषितं (१)।
शक्तितस्त्रिपलादूर्द्धं विश्वात्मा प्रीयतामिति ॥
पुण्येऽह्नि दद्यात्स परं ब्रह्म यात्यपुनर्भवं।
एतद्ब्रह्मव्रतं नाम निर्वाणफलदं नृणां॥

इति पद्मपुराणोक्तं ब्रह्मव्रतं।

———000@000———

यश्चोभयमुखीं दद्यात् प्रभूतकनकान्वितां।
दिनं पयोव्रती तिष्ठेत् सयाति परमं पदं।
एतद्वसुव्रतं नाम पुनरावृत्तिदुर्लभं॥

इति पद्मपुराणोक्तं वसुव्रतं।

———०———

अतः परं प्रवक्ष्यामि नन्दादेव्याः पदद्वयं।
येन सा प्रीयते वत्स अचिरेण महाव्रतात् ॥
हेमोत्थे पादुके कार्य्ये यथाशक्त्यनुसारतः।

---

१) आदरेण सुखोषितमिति पुस्तकान्तरे पाठः।

आम्रदुर्व्वाक्षतैर्विल्वपत्रैः पूज्ये तु मन्त्रतः ॥
देवीं संपूज्य भक्त्या तु स्थण्डिले प्रतिमासु च।
तद्भक्ताय च विप्राय कन्यकासु निवेदयेत्।
मुच्यते सर्व्वपापेभ्यो दुर्गालोकञ्च गच्छति ॥
ततः क्षये महाप्राज्ञो विद्याधरपतिर्भवेत्।
कालेनैवमिहायातः पृथिव्यां नृपसत्तमः ॥

## इति पद्मपुराणोक्तं नन्दापदद्वयव्रतं।

———०००———

सप्तरात्रोषितो दद्यात् घृतकुम्भं द्विजातये।
वरव्रतमिदं प्रोक्तं ब्रह्मलोकप्रदायकं ॥

## इति पद्मपुराणोक्तं वरव्रतं।

———

एकभक्ता च सप्ताहं गौरिणीरत्न भोजयेत्।
संपूज्य पार्व्वतीं भक्त्या गन्धपुष्पविलेपनैः ॥
ताम्बूलसिन्दूरवरैर्नारिकेलफलेन च।
प्रीयतां कुमुदा देवी प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥
एकैकां पूजयेद्देवीं सप्ताहं यावदेव तु।
पुनश्च सप्तमे प्राप्ते ताः सप्तैव निमन्त्रयेत् ॥
षड्भ्यः सम्भोजयित्वान्नं यथाशक्त्या विभूषणैः।
भूषयित्वा माल्यवस्त्रैः कर्णवेष्टाङ्गुलीयकैः ॥
कुमुदा माधवी गौरी भवानी पार्व्वती उमा।
अम्बिका चेति संपूज्या दर्पणं दापयेत् पृथक् ॥

ब्राह्मणं पूजयेत्त्वेकं वाच्यं सम्पन्नमस्तु मे ।
सप्तसुन्दरकं नाम व्रतं पापहरं शुभं ।
कृत्वा प्राप्नोति सौन्दर्य्यं सौभाग्यमतुलं तथा ॥

## इति भविष्योत्तरोक्तं सप्तसुन्दरकव्रतं ।

---

नन्दिकेश्वर उवाच ।

अतः परमिदं गुह्यं वक्ष्यामि मुनिसत्तम ।
पुण्यातिशयसंयुक्तं सर्व्वदेवैरनुष्ठितं ॥
ब्रह्मणा विष्णुना देव्या स्कन्देन्द्रेण यमेन च ।
वरुणादित्यसोमाग्निमरुद्धनदनारदैः ॥
धर्म्मस्तोशुक्रनक्षत्रैर्विलोहितशनैश्चरैः ।
विश्वामित्रवसिष्ठात्रिवृहस्पतिबुधादिभिः ॥
श्वेतागस्त्यदधीचाद्यैः सर्व्वैश्च मुनिसत्तमैः ।
भार्गवात्रिमहाकालैश्चण्डेश्वरगणाधिपैः ॥
हृषवासुकिकर्कोटकुलिकानन्ततक्षकैः ।
शङ्खपद्मामहापद्मैरन्यैश्चापि महोरगैः ॥
सिद्धैर्यक्षैः किंपुरुषैर्वसुभिश्च महात्मभिः ।
अप्सरोदैत्यगन्धर्व्वैरक्षोभूतगणैरपि ॥
शिवा गतिर्यथा प्राप्ता सर्व्वगत्यतिशायिनी ।
मया शिवप्रसादेन तथा विधिपरं शृणु ॥
सितचन्दनतोयेन स्नाप्य लिङ्गं विलेप्य च ।
श्वेतैर्विकसितैः पद्मैः संपूज्य प्रणिपत्य च ।

पङ्कजे विमले सोमे निश्छिद्रे पुष्पिते घने ॥

सोमे रम्ये ।

मध्ये केसरजालस्य स्थाप्य लिङ्गं कनीयसं ।
अङ्गुष्ठमात्रं विधिवत्सर्व्वगन्धमयं शुभं ।
स्थाप्य दक्षिणामूर्त्तौ तु विल्वपत्रैः समर्चयेत् ॥

दक्षिणामूर्त्तिसमीपे ।

अगुरुं दक्षिणे पार्श्वे पश्चिमेन मनःशिलं ।
उत्तरे चन्दनं दद्याद्धरितालञ्च पूर्व्वतः ॥
शुभगन्धैश्च कुसुमैर्विचित्रैश्चैव पूजयेत् ।
धूपं कृष्णागुरुं दद्यात्सघृतञ्चापि गुग्गुलं ॥
वासांसि चापि सूक्ष्माणि विकाशानि नवानि च ।
पायसं घृतसंयुक्तं घृतदीपांश्च कारयेत्(१) ॥
सर्व्वं निवेद्य मन्त्रेण ततो गच्छेत् प्रदक्षिणं ।
प्रणम्य भक्त्या देवेशं स्तुत्वा चान्ते क्षमापयेत् ॥
सर्व्वोपहारसंयुक्तं तच्च लिङ्गं निवेदयेत् ।
शिवाय शिवमन्त्रेण दक्षिणामूर्त्तिमाश्रितः ॥

दक्षिणामूर्त्तिमाश्रितो यस्तस्मै शिवाय ।

अनेन विधिना देवाः सर्व्वदेवत्वमागताः ।
देवी देवीत्वमापन्ना स्कन्दः स्वामित्वमागतः ॥
इन्द्रश्च देवराजत्वं गणाश्च गणताङ्गताः ।
एवं योऽर्चयते लिङ्गं पद्मे गन्धमयं शुभं ॥
सर्व्वपापविनिर्मुक्तः शिवमेवाभिगच्छति ।

---

(१) दापयेदिति क्वचित् पाठः ।

एतद्व्रतोत्तमं गुह्यं शिवलिङ्गं महाव्रतं।
भक्तस्य ते मयाख्यातं न देयं यस्य कस्यचित्॥

इति शिवधर्म्मोत्तरोक्तं शिवलिङ्गव्रतं।

———000———

युधिष्ठिर उवाच।

देवदेव महाभाग बालानां हितकाम्यया।
वर्द्धापनविधिं ब्रूहि राज्ञामपि विशेषतः॥

श्रीकृष्ण उवाच।

पितृकर्म्मसमुद्भूतः पाराशर्य्यो महामुनिः।
गत्वा प्रयागं सत्तीर्थं गङ्गायमुनयोस्तटे॥
कृत्वा स्नानञ्च विधिवत् कृत्वापि पितृतर्पणं।
नत्वा तु माधवं देवं दृष्ट्वा तत्र महामुनिं॥
सनत्कुमारं योगीन्द्रं सत्यलोकनिवासिनं।
तं प्रणम्य यथान्यायं मुनिः कालीसमुद्भवं॥
पूजितस्तेन विधिवत् कथाश्चक्रे मनोहराः।
कथान्ते तु महाभागं मुनिः पप्रच्छ सादरं।
व्यासः सत्यवतीसूनुः सर्व्वलोकहिताय वै॥

सनत्कुमार उवाच।

मासि मासि प्रहृष्टन्तु बालवर्द्धापनं बुधैः।
आसमान्तात्समन्ताच्च समान्तात् संविधीयते॥
कुमुदा माधवी गौरी रुद्राणी पार्व्वती उमा।
काली सरस्वती चैव सावित्री ब्रह्मणः प्रिया॥

सती संज्ञा तथा मेधा पुष्टितुष्टिसमन्विता ।
नृपडिम्भपरिवासा जयन्ती नाम षोड़शी ॥
पूजनीयाः प्रयत्नेन सूर्य्यमध्ये विलिख्य ताः ।
रजनीपिष्टतो वापि लिखेद्वा कुङ्कुमेन वा ॥
गन्धपुष्पैः सुगन्धैश्च दीपवस्त्रनिवेदनैः ।
फलैर्मनोहरैर्भक्ष्यैः पक्वान्नैर्विविधैरपि ॥
तूर्य्यघोषै र्ब्रह्मघोषैः कुर्य्यात्तत्र महोत्सवं ।
सोपलिप्ते शुचौ देशे स्थाप्य सूर्य्यं विधानतः ॥
अक्षतैश्चन्दनैः स्थाप्य कुमुदाद्याः पृथक् पृथक् ।
नामभिः पूजनीयास्ताः स्नापयित्वा च बालकं ॥
भूपतिं वा मुनिश्रेष्ठ सर्व्वालङ्कारभूषितं ।
पूजेतां मातृपितरौ बालवर्द्धापने सति ॥
पुरोधाः पूजयेद्ब्रह्मन् राजवर्द्धापने विधौ ।
कुमुदाद्याः समुद्दिश्य वंशपात्राणि कल्पयेत् ॥
एकैकस्यै धनाढ्यान्तु दद्यात् षोड़श षोड़श ।
तदर्द्धानि तदर्द्धानि द्वे चैकैकमथापि वा ॥
बहुपक्वान्नयुक्तानि फलपुष्पयुतानि च ।
सुवासिनीभ्यो विप्राणां दद्याद्भक्तिपुरःसरं ॥
प्रीयतां कुमुदाद्या मे बालत्राणविवर्द्धनी ।
बालेन यशसा पुष्ट्या बालं मे वर्द्धयन्तु वै ॥
प्रयच्छन्तु सदारोग्यं सौख्यं सौभाग्यमेव च ।
श्रीश्च ते इतिमन्त्रेण अर्घ्यन्ताभ्यः प्रकल्पयेत् ॥
एवं कृत्वा नमस्कृत्य विप्राशीर्वादपूर्व्वकं ।

भुञ्जीत गोत्रजैः सार्द्धं हृष्टतुष्टमना नृप ॥
वस्त्रताम्बूलपुष्पादि दिने तस्मिन् प्रकल्पयेत् ।
सुवासिनीनां विप्राणां कुमुदा प्रीयतामिति ॥

अथाथर्वणगोपथब्राह्मणे ।

अथ वर्षशतं प्रवर्द्धमाने(१)संवत्सरे राजानमभिवर्द्धयिष्यन्नायुषा-वर्चसा तेजसा यशसा प्रजया श्रिया विजयेन कीर्त्त्योपचितैर्मङ्गलै-रभ्युक्ष्य रुक्मैरर्चयित्वा माहेन्द्रं हविर्निरूप्य लोकपालेभ्यश्च श्राप-येत्। माहेन्द्रो यत्तुजसेति लोकपालांश्चेष्ट्वा राजानमन्वालभ्य जुहुयात्। अर्वाचमिन्द्र त्रातारमिन्द्र वर्द्धय क्षत्रियं मइतिशितं जीव शरदोवर्द्धमानोऽभिवर्द्धस्व प्रजया वाहुधानेतिद्वाभ्यां, रक्षन्तु-त्वागिरयः(२) इति चतसृभीरर्चां कृत्वा सगुण आसत इति रोचनेनालङ्कुर्य्यात्। ना वै स तन्तुमिति सूक्तं सम्पातहुतं कृत्वा धाता ते ग्रन्थिमित्युक्तमभि वर्द्धस्वेत्यसपत्नो भवेदित्येतत् कर्म्म मौस लपुत्रः पैठीनसिः ।

स्कन्द पुराणे ।

एवं वर्द्धापनञ्चैव जन्म वा प्रामवासरे ।
मासे मासे व्यतीते तु बालानां वृद्धिहेतवे ॥
न बालरोगाः प्रभवन्ति तस्य
न स्कन्द रोगा न तु शाकिनीभ्यः ।
भयं भवेन्नैव जलाग्निदिग्भ्यो
बालस्य राज्ञोऽपि विशेषतश्च ॥

(१) प्रवर्द्धमने इति पुस्तकान्तरे पाठः ।
(२) त्वाग्नय इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

सम्प्राप्य राज्यं नृपतिः समाप्ते
कुर्य्यादिमं शान्तिमहोत्सवञ्च।
ग्रहान् सुसंपूज्य विनायकञ्च
दुर्गां च भक्त्या कुमुदादिदेवीं।
यः पूजयेद्भक्तिपुरःसरं वै
जेता रिपूणां बलबुद्धियुक्तः॥

इति वर्द्धापनविधिः।

———ooOoo———

अथर्वणगोपथब्राह्मणे।

अथ घृतावेक्षणं।

प्रातः प्रातः शङ्खदुन्दुभिनादेन ब्रह्मघोषेण वा प्रबोधितो राजा शयनगृहादुत्थायापराजितान्दिशमभिक्रम्योपाध्यायं प्रतीक्षेत। अथ पुरोधाः स्नातानुलिप्तः शुचिः शुक्लवासाः कृतमङ्गलरचितोष्णीषः शान्तिगृहं प्रविश्य देवानां नमस्कारं कृत्वा स्वस्तिवाचनमनुज्ञाप्य विनीतोपविशेद्यमस्य लोकाद्यथाकालं यो न जीवोसीति स्वस्त्ययनं कृत्वोल्लिख्याभ्युक्ष्य परिस्तीर्य्य शान्तातीयेन तिलान् घृताक्तान् जुहुयात् शान्तः सौवर्णराजतमौदुम्बरं वा पात्रं घृतपूर्णं सहिरण्यं घृतस्य जुतिसहस्रं श्रृङ्गोरुविष्णो विक्रमस्वेत्यभिमन्त्र्य आज्यन्तेज इति तदा लभते।

आज्यन्तेजः समुद्दिष्टमाज्यं पापहरं परं।
आज्येन देवास्तृप्यन्ति आज्ये लोकाः प्रतिष्ठिताः॥
भौमान्तरीक्षदिव्यं वा यत्ते कल्मषमागतं।
सर्व्वं तदाज्यसंस्पर्शात् प्रणाशमुपगच्छतु॥

तस्मिन् सर्व्वमात्मानं पश्येदक्षणा। शिरोहृदयमन्वालभेदुच्चापतन्तमिति द्वाभ्यां। सूर्य्यस्यावृतमिति प्रदक्षिणमावृत्य शेषं साधयेदिति।

तत्र श्लोकाः।

अयं घृतावेक्षणस्य प्रोक्तो विधिरथर्वणः।
एवं समाचरेत्सम्यक् प्रयतः सुसमाहितः॥
उपास्योदयकाले तु स राजा जयमिच्छया।
स राजा जयते राष्ट्रं न पश्यन्ति तु शत्रवः॥
पश्चादानीय कपिलां राजा दद्याद्विजातये।
आशीर्व्वादं ततश्चैव श्रुत्वा तन्मुखनिःसृतं॥
गुरुणावेदिते तस्माद्दीर्घमायुरवाप्नुयात्।
पुत्रान् पौत्रांश्च मित्राणि लभते नात्र संशयः॥
आयुष्यमथ वर्च्चस्यं सौभाग्यं शत्रुतापनं।
दुःस्वप्ननाशनं धन्यं घृतावेक्षणमुच्यते॥

इति घृतावेक्षणविधिः।

---

अथ अगस्त्यार्घ्यविधिः।

पद्मपुराणात्।

भीष्म उवाच।

भूर्लोकोऽथ भुवर्लोकः स्वर्लोकोऽथ महर्जनः।
तपः सत्यञ्च सप्तैते देवलोकाः प्रकीर्त्तिताः॥
पर्य्यायेण तु सर्व्वेषां आधिपत्यं कथं भवेत्।

इह लोके शुभं रूपं आयुरारोग्यमेव च।
लक्ष्मीश्च विपुला ब्रह्मन् कथं स्यात्सुरपूजित॥
पुलस्त्य उवाच।
वसिष्ठो यो भवेत्तस्मिन् जलकुम्भे च पूर्ववत्।
ततश्चेतश्चतुर्बाहुः साक्षसूत्रकमण्डलुः॥
अगस्त्य इति शान्तात्मा बभूव ऋषिसत्तमः।
मलयस्यैव देशे च वैखानसविधानतः॥
सभार्य्यःससुतोविप्रैस्तपश्चक्रे सुदुष्करं।
ततः कालेन महता तारकादिनिपीड़ितं॥
जगद्वीक्ष्य स कोपेन पीतवान्वरुणालयं।
ततोऽस्य वरदाः सर्वे बभूवुः शङ्करादयः॥
ब्रह्मा विष्णुश्च भगवान् वरदानाय जग्मतुः।
वरं वृणीष्व भद्रं ते यथाभीष्टोऽत्र वै मुने॥
अगस्त्य उवाच।
यावद्ब्रह्मसहस्राणां पञ्चविंशतिकोटयः।
वैमानिको भविष्यामि दक्षिणाम्बरवर्त्मनि॥
मद्विमानोदयात् कुर्य्यात् यः कश्चित् पूजनं मम।
स चैव पुण्यतां यातु वर एष वृतो मया॥
श्राद्धं ये तु करिष्यन्ति पिण्डपूर्वन्तु भक्तितः।
तेषां पितृगणः सर्व्वो मया सार्द्धं दिवि स्थितः॥
एतत् कालञ्च तिष्ठेत एष एव वरो मम।
एवमस्त्विति तेप्युक्ता जग्मुर्द्देवा यथागतं।
तदर्घ्यः संप्रदातव्यो अगस्त्यस्य सदा बुधैः॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे ।

अगस्त्यस्य महामुनिं प्रति

पितामहवाक्यं ।

देवकार्य्यमहं ब्रह्मन् त्वया कृतमिदं शुभं ।
तस्मात्स्थानन्तु ते वच्मि वैश्वानरपथाद्बहिः ॥
दिव्यदेहो भवांस्तत्र विमानवरमास्थितः ।
दक्षिणां दिशमाश्रित्य अस्तोदयसमन्वितः ॥
प्रसादमम्भसां शैत्यं निर्विषत्वं तवोदये ।
भविष्यत्यमलप्रज्ञ मत्प्रसादात्सदैव तु ॥
शरत्समुदितो भूत्वा वसन्तेऽस्तमयं द्विज ।
प्राकाम्ययुक्तश्च तथा समग्रां वसुधाञ्चर ॥
शरत्समयमासाद्य तस्माद्विप्र तवोदये ।
पूजां त्वमाप्स्यसे लोके मत्प्रसादाद्द्विजोत्तम ॥
ये च त्वां पूजयिष्यन्ति गन्धमाल्यफलाक्षतैः ।
दधिकाञ्चनरत्नैश्च परमान्नेन भूरिणा ॥
पूर्णकुम्भैः सकूष्माण्डैश्छत्रोपानद्यष्टिभिः ।
धेन्वा वृषेण भक्ष्यैश्च वासोभिः कनकेन च ॥
संवत्सरञ्च त्यागेन फलस्यैकस्य वाप्यथ ।
पूजनैर्ब्राह्मणानाञ्च त्वन्मन्त्र परिकीर्त्तनैः ।
विधानं यदगस्त्यस्य पूजने तद्वदस्व मे ॥

पुलस्त्य उवाच ।

प्रत्यूषसमये विद्वान् कुर्य्यादस्योदये निशि ।
स्नानं शुक्लतिलैस्तद्वच्छुक्लमाल्याम्बरो गृही ॥

निश्युदये निशि दिनमुखे स्नानं समाचरेत्।
स्थापयेद्व्रणं कुम्भं माल्यवस्त्रविभूषितं॥
पञ्चरत्नसमायुक्तं घृतपात्रान्नसंयुतं।
नानाभक्ष्यफलैर्युक्तं ताम्रपात्रसमन्वितं॥

अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं तथैव
सौवर्णमत्यायतबाहुदण्डं।
चतुर्भुजं कुम्भमुखे निधाय
धान्यानि सप्ताम्बरसंयुतानि॥
सकाशपुष्पाक्षतशुक्तियुक्तं
मन्त्रेण दद्याद्द्विजपुङ्गवाय।
उत्क्षिप्य लम्बोदरदीर्घबाहु-
मनन्यचेता यमदिङ्मुखस्थः॥

सकाशपुष्पाक्षतया शुक्त्या युक्तं प्रयुक्तमर्घ्यमुत्क्षिप्य दद्यादित्यन्वयः। अत्यायतबाहुदण्डमित्युत्क्षेपणक्रियाविशेषणं। लम्बोदरदीर्घबाहुमिति प्रतिमाविशेषणं। द्विजपुङ्गवोऽगस्त्यः।

श्वेतां च दद्याच्छुचिमुक्तिरौप्य-
खुरां च हेमशृङ्गीं सवत्सां।
धेनुं नरः क्षीरवतीं प्रणम्य
सवस्त्रघण्टाभरणां द्विजाय।

भविष्योत्तरात्।

काञ्चनं कारयित्वा च यथाशक्त्या सुशोभनं।
पुरुषाकृतिं प्रशान्तञ्च जटामण्डलधारिणं॥
कमण्डलुकरं शिष्यैः स्वर्गैश्च परिवारितं।

मृत्यूग्रविषहन्तारं दर्भाचस्रग्धरं मुनिं।
तस्मिन् कुम्भे समालग्नं चन्दनेन ततो न्यसेत्॥
स्नापितस्यानुलिप्तस्य चन्दनेन सुगन्धिना।
पूजितं जातिकुसुमैं ह्र्द्यैर्धूपैश्च धूपितं॥

अथ विष्णुरहस्ये।

काशपुष्पमयीं रम्यां कृत्वा मूर्त्तिं तु वारुणेः।
प्रदोषे विन्यसेत्तान्तु पूर्णकुम्भे स्वलङ्कृते॥

इह पूर्व्वोक्तसुवर्णरूप्येण सह शक्त्यनुसाराद्विकल्पः। पूर्णकुम्भो जलपूर्णकुम्भः।

कुम्भस्थं पूजयेत्तन्तु पुष्पधूपविलेपनैः।
दध्यक्षतबलिं दद्याद्रात्रौ कुर्य्यात् प्रजागरं॥

पूजा च वक्ष्यमाणैरर्घ्यमन्त्रैर्विधेया।

प्रभाते तं समादाय यावत् पुण्यजलाशयं।
निशावसाने तान् पश्यन् जलान्ते प्रतिमां मुनेः॥
अर्घ्यं दद्यादगस्त्याय भक्त्या सम्यगुपोषितः।
पुष्पैर्मूलैः फलैर्गन्धैर्धूपैरथ सुगन्धिभिः॥
द्राक्षाखर्जूरकर्कन्धूनारिकेलादिभिः शुभैः।
पञ्चरत्नसमायुक्तं हेमरूप्यसमन्वितं॥
सप्तधान्यभृतं पात्रञ्चन्दनेन समायुतं।
तत्तु ताम्रमयं कृत्वा दद्यादर्घ्यं द्विजातये॥
अगस्त्यः खनमानेति पठन्मन्त्रमिमं मुने।
यथा लाभकृतार्थेन सर्व्वर्वाथ स्वशक्तितः॥
अर्घ्यं दद्युरगस्त्याय शूद्रैर्मन्त्रविधिस्त्वयं।

काशपुष्पप्रतीकाश वह्निमारुतसम्भव।
मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोस्तु ते॥

भविष्योत्तरात्।

ततश्चार्घ्यः प्रदातव्योयैर्द्रव्यैस्तान् शृणुस्व मे।
खर्जूरैर्नालिकेलैश्च कुष्माण्डैस्त्रपुसैरपि॥
कर्कोटैः कारुवेल्लैश्च कर्म्मरैर्बीजपूरकैः।
वृन्ताकैर्दाडिमैश्चैव नारङ्गैः कदलीफलैः॥
दूर्वाङ्कुरैः कुशैः काशैः पद्मैर्नीलोत्पलैस्तथा।
नानाप्रकारैर्भक्ष्यैश्च गोभिर्वस्त्रै रसैः शुभैः॥
विरूढैः सप्तधान्यैश्च वंशपात्रे निधापितैः।
सौवर्णरूप्यपात्रेण ताम्रवंशमयेन च॥
मूर्द्ध्नि स्थितेन नम्रेण जानुभ्यान्धरणीं गतः।
दक्षिणाभिमुखो भूत्वा ध्यात्वागस्त्यं चम्पं नृप॥
दद्यादर्घ्यं प्रयत्नेन चेतसागुरुचन्दनैः।
शुक्त्याकारं अर्घ्यपात्रं सकाशपुष्पाक्षतशुक्तीति वचनात्।
काशपुष्पप्रतीकाश वह्निमारुतसम्भव।
मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते॥
वातापिर्भक्षितो येन समुद्रः शोषितः पुरा।
लोपामुद्रापतिः श्रीमान् योऽसौ तस्मै नमो नमः॥
येनोदितेन पापानि विलयं यान्ति व्याधयः।
तस्मै नमोस्त्वगस्त्याय सशिष्याय च पुत्रिणे॥
ब्राह्मणो वेदमन्त्रेण दद्यादर्घ्यं नृपोत्तम।
अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः प्रजामपत्यं बलमिच्छमानः।

उभौ वर्णावृषिरुग्रः पुपोष सत्या देवेष्वाशिषो जगाम ॥
दत्त्वैवमर्घ्यं कौरव्य प्रणिपत्य विसर्जयेत् ।
अर्चितस्त्वं यथाशक्त्या नमोऽगस्त्यमहर्षये ।
ऐहिकामुष्मिकीं दत्त्वा कार्य्यसिद्धिं व्रजस्व मे ॥

विसर्जनमन्त्रः ।

विसर्ज्जयित्वाऽगस्त्यं तं विप्राय प्रतिपादयेत् ।
दैवज्ञे व्यासरूपाय वेदवेदाङ्गवादिने ॥
अगस्त्यो मे मनस्थोऽस्तु अगस्त्योऽस्मिन् घटे स्थितः ।
अगस्त्यो द्विजरूपेण प्रतिगृह्णातु सत्कृतः ॥
अगस्त्यः सप्तजन्मोत्थनाशयत्वावयोरघं ।
अतुलं विमलं सौख्यं प्रयच्छ त्वं महामुने ॥

प्रतिग्रहमन्त्रः ।

एवं यः कुरुते भक्त्या ह्यगस्त्यव्रतमादरात् ।
फलमेकं तथा धान्यं रसञ्चैकं परित्यजेत् ।
सम्पूर्णे च तथा वर्षे पुनरप्यनुपक्रमेत् ॥

विष्णुरहस्ये ।

दत्त्वार्घ्यन्तु विधानेन नरः कुम्भोद्भवाय च ।
त्यजेदगस्त्यमुद्दिश्य धान्यमेकं फलं रसं ॥

अथ मात्स्येऽप्यगस्त्यार्घ्यमभिधाय ।

प्रत्यब्दञ्च फलत्यागमेवं कुर्व्वन् न सीदति ।
होमं कृत्वा ततः पश्चाद्वर्जयेन्मानवः फलं ॥

होमश्च स्वाहान्तेन प्रणवादिना अर्घमन्त्रेण सर्पिषा विधेयः ।

ततोऽनु पूजयेद्विप्रान् घृतपायसमोदकैः।
गाः सुवर्णञ्च वासांसि तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणां॥
घृतपायसयुक्तेन पात्रेण स्थगिताननं।
सहिरण्यञ्च तं कुम्भं ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥
अप्राप्ते भास्करे कन्यामर्वाग्वै सप्तभिर्दिनैः।
अर्घ्यं दद्युरगस्त्याय ये वसन्ति महोदये॥

पूर्व्वानक्षत्रान्तर्गतेऽर्के इत्यर्थः। उज्जयन्यां त्वर्व्वाक्।

यदाह वराहमिहिरः।

संख्याविधानात् प्रतिदेशमस्य
विज्ञाय संदर्शनमादिशेद्बुधः।
तच्चोज्जयन्यामगतस्य कन्यां
भागैः स्वराख्यैः स्फुटभास्करस्य॥

स्वराख्यैर्भागैः सप्तभिरंशैः कन्यामगतस्य स्फुटस्यादित्यस्य मघाद्वितीयचरणान्तर्गतस्येत्यर्थः।

तथा।

ईषत्प्रकाशेऽरुणरश्मिजाले।
नैशेऽन्धकारे दिशि दक्षिणस्यां॥
संवत्सराविदितदिग्विभागो।
भृगोऽर्घ्यमूर्व्वा प्रयतः प्रयच्छेत्॥

भविष्योत्तरे कृष्णवाक्यं।

तस्यैवं चेष्टितस्यार्षैः प्रयच्छार्घ्यं युधिष्ठिर।
कन्यायामागते सूर्य्ये अर्वाग्वै सप्तमे दिने।
कन्यायां समनुप्राप्ते अर्घ्यकालोनिवर्त्तते॥

युधिष्ठिरे पुरे पूर्व्वां तृतीयचरणच्छिहा सत्यर्कउदये इत्यर्थः। यस्मिन् देशे यस्मिन् दिने अगस्त्यसन्दर्शनं भवति। तस्मिन् देशे तस्मिन्नर्घ्यदानमिति संक्षेपः। कन्यायां समनुप्राप्ते इत्यादिना सप्तमाह्निनादारभ्य संक्रान्तिमवधीकुर्व्वता उदयादारभ्य सप्तदिनाभ्यन्तरेऽपि युक्तमर्घदानमित्येतद्दर्शितं।

तथाच पद्मपुराणे।

आसप्तरात्रादुदयाद्यमस्य
दातव्यमेतत्सकलं नरेण॥

यमस्य अगस्त्यस्य। उदयादूर्द्धं आसप्तरात्रात्। सप्तरात्रमवधीकृत्य एकस्मिन् दिने अर्घ्यो दातव्य इत्यर्थः।

सप्तरात्रादूर्द्धन्तु अर्घ्यदानमनर्थकमिति॥

ब्रह्मपुराणे।

अगस्त्योदक्षिणामाशामाश्रित्य नभसि स्थितः।
वरुणस्यात्मजो योगी विन्ध्यपादविमर्द्दनः॥
कन्यांशेभ्यः पश्चिमेभ्यः षड्भ्यः प्रारभ्य संख्यया।
अंशान् द्विसप्ततिं यावत् भुङ्क्ते सूर्य्यस्तु राशिषु।
उदेति तावद्भगवान् अगस्त्यो व्योम्नि धामभृत्॥
उच्चांशेभ्यः पश्चिमेभ्यः प्रारभ्य पूर्व्ववत् क्रमात्।
षट्त्रिंशतश्च यावच्च भुङ्क्ते भानुर्यथाक्रमं॥
तावत्क्रान्तस्य पातालं प्रयात्यस्तमुपैति च॥

उच्चा वृषभः। अंशश्चरणः। नवचरणोराशिः। सपादनक्षत्रद्वयभोगात्। उत्तरातृतीयचरणादयः। तद्द्विसप्ततिरश्विनी तृतीयचरणान्ताः। एतावत् सूर्य्यभागेनोदयकालः। शेषोऽन्ये कालः

कृतोपवासः सम्पश्येदगस्त्यमुदितं मुनिं।
सर्व्वकामप्रदं पुण्यं सर्व्वभाग्यप्रवर्द्धनं॥
अर्चनीयश्च भगवान् श्रद्धाभक्तिसमन्वितैः।
पूर्णकुम्भैः सकूष्माण्डैर्य्यवैर्धान्यैर्घृतेन च॥
जातिपद्मोत्पलैः पुष्पैश्चन्दनेन सितेन च।
गोभिर्घृतैस्तथा वस्त्रै रत्नैः सागरसम्भवैः॥
उपानच्छत्रदण्डैश्च पादुकाञ्जनवल्कलैः।
हविषा परमान्नेन फलैः पुष्पैश्च शोभनैः॥
अन्यप्रकारैर्भक्षैश्च होमैर्ब्राह्मणतर्प्पणैः।
आशास्य च शुभं काममुद्दिश्यैकं मनोगतं॥
यद्यहं प्राप्नुयाम् कामं भगवन्मनसि स्थितं।
त्वत्प्रसादादविघ्नेन भूयस्त्वां पूजयाम्यहं॥
इत्युक्त्वा पूजयेत्पश्चाद्देवज्ञांश्च तथा गुरून्।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु ततो भुञ्जीत वाग्यतः॥

अथ पद्मपुराणे।

आसप्तरात्रादुदयाद्यमस्य
दातव्यमेतत्सकलं नरेण।
यावत्समाः सप्तदशाथ वा स्यु-
रथोर्घ्यमप्यत्र वदन्ति केचित्॥

अनेन विधिना यस्तु पुमानर्घं निवेदयेत्।
इमं लोकमवाप्नोति रूपारोग्यसमन्वितः॥
द्वितीयेन भुवर्लोकं स्वर्लोकञ्च ततः परं।
सप्तैवलोकानाप्नोति सप्तार्घान् यः प्रयच्छति॥

यावदायुश्च यः कुर्य्यात् स परं ब्रह्म गच्छति ।

वराहसंहितायां ।

नरपतिरिममर्घ्यं श्रद्दधानो ददानः
प्रविगतमददोषैर्निर्ज्जितारातिपक्षः ।
भवति यदि हि दद्यात्सप्तवर्षाणि सम्यक्।
जलनिधिरसनायाः स्वामितामेति भूमेः ॥

भविष्योत्तरात् ।

दत्त्वार्घ्यं सप्तवर्षाणि क्रमेणानेन पाण्डव ।
पुमान्यत्फलमाप्नोति तदेकाग्रमनाः शृणु ॥
ब्राह्मणः स्यात् चतुर्वेदः सर्व्वशास्त्रविशारदः ।
क्षत्रियः पृथिवीं सर्व्वां प्राप्नोत्यर्णवमेखलां ॥
वैश्यानां धान्यनिष्पत्तिर्गोधनञ्चापि निन्दति ।
शूद्राणां धनमारोग्यं सस्यान्नञ्चाधिकं भवेत् ॥
स्त्रीणां पुत्राः प्रजायन्ते सौभाग्यं गृहसृद्धिमत्।
विधवानां महत्पुण्यं वर्द्धते पाण्डुनन्दन ॥
कन्या भर्त्तारमाप्नोति व्याधेर्मुच्येत दुःखितः ।
येषु देशेष्वगस्त्यार्घः पूजेयं क्रियते जनैः ॥
तेषु देशेषु पर्ज्जन्यः कामवर्षी प्रजायते ।
ईतयः प्रशमं यान्ति नश्यन्ति व्याधयस्तथा ॥
पठन्ति ये त्वगस्त्यर्षेर्व्रतं शृण्वन्ति चापरे ॥
ते सर्व्वे पापनिर्मुक्ताः चिरं स्थित्वा महीतले ।
हंसयुक्तविमानेन स्वर्गं यान्ति नरोत्तमाः ॥

मर्त्त्यैर्यदीच्छसि गृहं परमर्द्धियुक्तं

भोगान् शरीरमतुलं पशुपुत्रपुष्टिं।
तद्रत्नवल्लभ मुनेरुदये महार्घ्य-
मर्घं प्रयच्छ फलवस्त्ररसैः सधान्यैः।

पद्मपुराणे।

इति पठति शृणोति वा य एत-
द्दस्युयुगलाङ्गभवस्य संप्रदानं।
मतिमपि च ददाति सोपि विष्णो-
र्भवनगतः परिपूज्यतेऽमरौघैः॥

ब्रह्मोवाच।

सितचन्दनतोयेन व्योम स्थाप्य विलिप्य च।
कर्णिकाकल्पितैः पद्मैः संपूज्य प्रणिपत्य च॥

कर्णिकाकल्पितैः, कर्णिकामण्डितैः।

वकुले विमले सौम्ये निश्छिद्रे पुष्पिते सति।

पुष्पिते विकसिते।

मध्ये केसरजालस्य व्योम स्थाप्यं सुशोभनं॥
अङ्गुष्ठपर्व्वमात्रन्तु सर्व्वगन्धसमन्वितं।
अग्रे संस्थापयित्वा च भास्करस्य सुरोत्तम॥
पूजयेत् करवीरैस्तु तथा रक्तैश्च चन्दनैः।
धूपञ्च गुग्गुलं दद्यात् प्रणम्य शिरसा रविं॥
कुङ्कुमं पूर्व्वपार्श्वे तु दद्याद्व्योमसमाहितः।
दक्षिणे चागुरुं दत्त्वा पश्चिमे चन्दनं सितं॥
चतुःसमञ्चोत्तरे तु दद्याद्व्योमविचक्षणः।
दद्यान्मध्ये शुभं पुष्पं रक्तचन्दनमादरात्॥

पूजयेद्विविधैः पुष्पैस्तथा सागुरुचन्दनैः ।
धूपं कृष्णागुरुं दद्यात्सघृतं वापि गुग्गुलं ॥
वासांसि च सुसूक्ष्माणि विकेशानि निवेदयेत् ।
पायसं घृतसंयुक्तं घृतदीपांश्च दापयेत् ॥
सर्व्वं निवेद्य मन्त्रेण ततो गच्छेत् प्रदक्षिणं ।
प्रणम्य शिरसा भानुमुत्थायैनं क्षमापयेत् ॥
सर्व्वोपहारसंयुक्तं बलिन्देवाय चाहरेत् ।
खखोल्कायेति मन्त्रेण सूर्य्यायामिततेजसे ॥
अनेन विधिवद्देवञ्चार्चयित्वा पुरा रविं ।
अहं ब्रह्मत्वमापन्नः प्रसादाद्भास्करस्य तु ॥

इति भविष्यत्पुराणोक्तं व्योमव्रतं ।

———000———

निशि कृत्वा जले वासं प्रभाते गोप्रदो भवेत् ।
वारुणं लोकमाप्नोति वरुणव्रतमिहोच्यते ॥

इति पद्मपुराणोक्तं वरुणव्रतं ।

———

योऽब्दमेकं प्रकुर्व्वीत नक्तं पर्व्वणि पर्व्वणि ।

पर्व्व पञ्चदशी ।

ब्रह्मचारी जितक्रोधः शिवार्चनरतः सदा ।
वत्सरान्ते च विप्रेन्द्र शिवभक्तान् समाहितान् ॥

भोजयित्वा ततो ब्रूयात् प्रीयतां भगवान् प्रभुः।
एवं विधिसमायुक्तः शिवलोकञ्च गच्छति।
न च मानुषतां लोके अध्रुवां प्राप्नुते नरः॥

इति भविष्यत्पुराणोक्तं पर्व्वनक्तव्रतं।

———ooo———

पृथिवीभाजने भुङ्क्ते नित्यं पर्व्वसु यो नरः।
अतिरात्रफलं देवि अहोरात्रेण विन्दति॥
पृथिवीभाजने भूमावन्नं निधायेत्यर्थः शिवोऽत्र देवता।

इति पद्मपुराणोक्तं पर्वभूभाजनव्रतं।

———oo@oo———

यो विंशतिपलादूर्द्धं महीं कृत्वा तु काञ्चनीं।
दिनं पयोव्रतं दद्याद्रुद्रलोके महीयते।
धराव्रतमिदं प्रोक्तं सप्तकल्पशतानुगं।
दिनं देवानामुत्तरायणं। पयोव्रतमित्यनन्तरं कृत्वेत्यनुसङ्गः।
रुद्रो देवता धरादानं पारणं।

इति पद्मपुराणोक्तं धराव्रतं।

———ooo———

नन्दिकेश्वर उवाच।

तथा सर्व्वफलत्यागमाहात्म्यं शृणु नारद।

यदक्षयं परे लोके सर्व्वकामफलव्रतं ॥
मार्गशीर्षे शुभे मासि तृतीयायां मुनिव्रतं ।
द्वादश्यामथ वाष्टम्याञ्चतुर्द्दश्यामथापि वा ॥
आरभेच्छुक्लपक्षस्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनं ।
अन्येष्वपि च मासेषु पुण्येऽह्नि मुनिसत्तम ॥
सदक्षिणां पायसेन शक्तितः पूजयेद्दिजान् ।
अष्टादशानां धान्यानां अन्यत्र फलमात्रकं ॥
वर्जयेदष्टमेकन्तु विनेवौषधकारणात् ।
सवृषं काञ्चनं रुद्रन्धर्म्मराजञ्च कारयेत् ॥
कूष्माण्डं मातुलिङ्गञ्च वृन्ताकम्पनसन्तथा ।
आम्राम्रातकपित्थानि कालिङ्गमथ वारुकं ॥
श्रीफलाश्वत्थबदरञ्जम्बीरं कदलीफलं ।
कर्म्मरन्दाड़िमं शक्त्या कलधौतानि षोड़श ॥

कलधौतं हेम ।

मूलकामलकञ्जम्बूतिन्तिड़ीकरमन्दकं ।
कङ्कैलकञ्च तुण्डीर करीरकुटजं समी ॥

एलकमेलाफलं ।

उदुम्बरं नारिकेलन्द्राक्षाथ वृहतीद्वयं ।
रौप्याणि कारयेच्छक्त्या फलानीमानि षोड़श ॥
ताम्रन्तालफलं कुर्य्यादगस्तिफलमेव च ।
पिण्डीरकाश्मर्य्यफलं तथा सूरणकन्दकं ॥

काश्मर्य्यः श्रीपर्णी ।

रक्तालुकाकण्टकञ्च केतकाम्लोकचिर्भटं ।

केतकः अम्बुप्रसादनफलं। अम्लीकश्चिञ्चा।

चिञ्चवल्लीफलं तद्वत् कूटशाल्मलिजं फलं।

कूटशाल्मलिः रोहीतकः।

ग्रामनिष्पावमधुकवटेङ्गुदपटोलकं।

मधुकोमधूकः। इङ्गुदी हिंगुणः।

ताम्राणि षोड़शैतानि कारयेच्छक्तितो नरः।

उदकुम्भद्वयं कुर्य्याद्धान्योपरि सवस्त्रकं॥

ततश्च कारयेच्छय्यां शय्योपरि सवाससं।

भच्चपात्रद्वयोपेतं यमं रुद्रवृषान्वितं॥

धेन्वा सहैव शान्ताय विप्रायाथ कुटुम्बिने।

सपत्नीकाय संपूज्य पुण्येऽह्नि विनिवेदयेत्॥

यथा फलेषु निवसन्त्यमरा रसरूपिणः।

तथा सर्व्वफलत्यागव्रताद्भक्तिः शिवेऽस्तु मे॥

यथा शिवश्च धर्म्मश्च सदानन्दफलप्रदः।

तद्युक्तफलदानेन तौ स्यातां मे फलप्रदौ॥

यथा फलानि कामाः स्युः शिवभक्तेषु सर्व्वदा।

तथानन्तफलप्राप्तिर्मेऽस्तु जन्मनि जन्मनि॥

यथा भेदेन पश्यामि शिवविष्ण्वर्कपद्मजां।

तथा ममास्तु विश्वात्मा शङ्करः शङ्करः सदा।

इति वत्सरतः सर्व्वमलङ्कृत्य च भूषणैः॥

वत्सरतः वर्षात्परं।

शक्तश्चेच्छयनं दद्यात्सर्व्वोपस्करसंयुतं।

अशक्तस्तु फलान्येव यथोक्तानि विधानतः॥

तथोदकुम्भयुग्मञ्च शिवधर्म्मौ च काञ्चनैः ।
विप्राय दत्त्वा भुञ्जीत वाग्यतस्तैलवर्जितं ॥
अन्यानपि यथाशक्त्या भोजयेद्द्विजपुङ्गव ।
एतस्मान्न परं किञ्चिदिह लोके परत्र च ॥
व्रतमस्य मुनिश्रेष्ठ यदनन्तफलप्रदं ।
सौवर्णताम्ररौप्येषु यावन्तः परमाणवः ॥
भवन्ति चूर्णमानेषु फलेषु मुनिसत्तम ।
तावद्युगसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥

एतत्समस्तकलुषापहरं जनाना-
माजीवनाय मनुजेषु च सर्व्वदा स्यात् ।
जन्मान्तरेषु न च पुत्रवियोगदुःख-
माप्नोति धाम च पुरन्दरदेवजुष्टं ॥

इति मत्स्यपुराणोक्तं फलत्यागव्रतं ।

———ooo———

श्रीकृष्ण उवाच ।

वृन्ताकस्य विधिं वक्ष्ये शृणु पार्थ समाहितः ।
संवत्सरं वा षण्मासान् त्रीन्मासान् वा न भक्षयेत् ॥

अथ भरण्यां मघायां वा एकरात्रोपवासं कृत्वा स्थण्डिले देवतामाहूय गन्धपुष्पनैवेद्यादिना च संपूज्य दर्भपाणिर्गन्धोदकेनावाहयेत् । यमराजमावाहयामि । कालमावाहयामि । चित्रगुप्तमावाहयामि । मृत्युमावाहयामि । परमेष्ठिनमावाहयामि इति । ततोऽग्निं समाधाय तिलाज्यं जुहुयात् । यमाय स्वाहा । नीलाय स्वाहा नीलकण्ठाय स्वाहा । यमराजाय स्वाहा । चित्र-

गुप्ताय स्वाहा। वैवस्वताय स्वाहा।

अग्निमूर्द्धव्याहृतीरष्टशतञ्जुहुयात्।

प्रायश्चित्तं दत्त्वा ब्राह्मणः स्वयमेव इतरेषामाचार्य्यः। अथ स्वशक्त्या सौवर्णं वृन्ताकं ब्राह्मणाय निवेदयेत्।

कृष्णां गान्तथा वृषञ्च तथैव कर्णवेष्टाङ्गुलीयकैः छत्रोपानहौ कृष्णवस्त्रयुगं कृष्णकम्बलं दद्यात्।

ब्राह्मणान् भोज्याशिषो वाचयेत्।

अनेन विधिना यस्तु वृन्ताकञ्च प्रयच्छति।
त्रीन्मासान्षन्मासं वा वर्षमेकं न भक्षयेत्॥

अथ वैनं विधिं कृत्वा जन्मावधि त्यागं करोति स तु विष्णु लोकं प्रयाति पौण्डरीकोऽश्वमेधफलमाप्नोति।

सप्तजन्मसहस्राणि नाकपृष्ठे महीयते।
सप्तलोकोत्तरं यावद्यमलोकं न पश्यति॥

वृन्ताकमप्रतिहतं वरहेमसिद्धं
दद्याद्‌द्विजाय घृतवस्त्रसमन्वितं यः।
कृत्वा तु वर्षमपि मासमथैकमेव
याम्यं न पश्यति पुरं पुरुषः कदाचित्॥

इति भविष्योत्तरोक्तो वृन्ताकत्यागविधिः।

———ooo———

चाहं पयोव्रते स्थित्वा काञ्चनं कल्पपादपं।
पलादूर्द्धं यथाशक्त्या तन्दुलं सूर्प्पसंयुतं॥
॥पैन्द्रोणद्वयं।
दत्त्वा ब्रह्मपदं याति कल्पवृक्षव्रतं स्मृतं॥

ब्रह्माऽत्र देवता।

इति पद्मपुराणोक्तं कल्पवृक्षव्रतं।

———000———

हैमं पलद्वयादूर्द्ध्वं रथमश्वयुगादिकं।

ददन् कृतोपवासः स्याद्दिवि कल्पशतं वसेत्।

तदन्ते राजराजः स्यादश्वव्रतमिदं स्मृतं॥

इन्द्रोऽत्र देवता।

इति पद्मपुराणोक्तं अश्वव्रतं।

———000———

तद्वद्धेमरथं दद्यात्करिभ्यां संयुतं पुनः।

सत्यलोके वसेत्कल्पसहस्रमथ भूमिपः।

भवेदुपोषितो भूत्वा करिव्रतमिदं स्मृतं॥

उपोषितो भूत्वा दद्यादित्यन्वयः। तद्वत्कल्पद्वयादूर्द्ध्वं। ब्रह्मा-ऽत्रय देवता।

इति पद्मपुराणोक्तं करिव्रतं।

———

घृताभिषेकं यः कुर्य्यादहोरात्रं शिवस्य तु।

नियतं क्षणधाराभिः पुष्यमासे समुद्यतः॥

गीतनृत्योपहारेण शङ्खवादित्रनिःस्वनैः।

कुर्य्याज्जागरणं तत्र प्रदीपाद्युपशोभया॥

समस्तपापनिर्मुक्तः समस्तकुलसंयुतः।

ज्वलद्भिः स महायानैरसंख्येयैर्नगोत्तमैः॥
युक्तः शिवपुरे नित्यं मोदते शिववत्सुखी।
ग्रहणे विषुवे चैव पुण्येषु दिवसेषु च॥
घृताभिषेकं यः पश्येदासमाप्तिमुपोषितः।
विधूय सर्व्वपापानि शिवलोकं स गच्छति॥
एकः पूजयते भक्त्या अन्यो भक्त्या प्रपश्यति।
तुल्यमेव फलन्ताभ्यां भक्तिरेवाऽत्र कारणं॥

इति शिवधर्म्मोक्तो घृतस्नपनविधिः।

——000——

सूत उवाच।

दुर्लभा खलु या मुक्तिरनायासेन देहिनां।
जायते कर्म्मणा येन शृणुध्वं तद्द्विजोत्तमाः॥
गोचर्म्ममात्रमालिख्य मण्डलं गोमयेन च।
चतुरस्रं विधानेन चरुणाभ्युक्ष्य मन्त्रवित्॥
अलङ्कृत्य वितानाद्यैश्छत्रैश्चापि मनोरमैः।
वुद्वुदैरर्द्धचन्द्रैश्च स्वर्णैरश्वत्थपत्रकैः॥
सितैर्विकसितैः पद्मैः रक्तैर्नीलोत्पलैस्तथा।
विमानेन विचित्रेण मुक्तादाम्ना द्विजोत्तमाः।
सितन्त्वात्मकैश्चैव सुस्रक्ष्णैः पूर्णकुम्भकैः॥
फलपल्लवमालाभिर्वैजयन्तीभिरंशुकैः।
पञ्चाशद्दीपमालाभिर्धूपैश्च विविधैस्तथा॥
पञ्चाशद्दलसंयुक्तं लिखित्वा पद्ममुत्तमं।
तत्तद्वर्णैस्तथा चूर्णैश्च तच्चूर्णैरथापि वा॥

एकहस्तप्रमाणेन कृत्वा पद्मं विधानतः ।
कर्णिकायां न्यसेद्देवन्दद्याद्देवेश्वरम्भवं ॥
तत्र वर्णानकारादीन्न्यसेत् प्रागाद्यनुक्रमात् ।
प्रणवादिनमोन्तांश्च सर्व्ववर्णान् हि सुव्रतः ॥
संपूज्यैव मुनिश्रेष्ठ गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् ।
ब्राह्मणान् भोजयेत्तत्र पश्चाच्छ्रद्धाविधिपूर्व्वकं ॥
अक्षमालोपवीतञ्च कुण्डलानि कमण्डलुं ।
आसनञ्च तथा दण्डं उष्णीषं वस्त्रमेव च ॥
दत्त्वा तेषां द्विजेन्द्राणां देवदेवाय शम्भवे ।
महाचरुञ्च नैवेद्यं कृष्णं गोमिथुनं तथा ॥
अन्नैश्च देवदेवाय दत्त्वा तद्वर्णमण्डलं ।
योगोपयोगिद्रव्याणि शिवानि विनिवेदयेत् ॥
ओंकाराद्यं जपेद्धीमान् प्रतिवर्णमनुक्रमात् ॥
एवमालिख्य यो भक्त्या वर्णमण्डलमुत्तमं ।
यत् फलं लभते मर्त्त्यस्तद्वदामि समासतः ॥
साङ्गान् वेदान् यथान्यायमधीत्य विधिपूर्व्वकान् ।
इष्ट्वा यज्ञैर्यथान्यायं ज्योतिष्टोमादिभिः क्रमात् ॥
ततो विश्वजितञ्चेष्ट्वा पुत्रानुत्पाद्य तादृशान् ।
वानप्रस्थाश्रमं गत्वा सदारः साग्निरेव च ॥
चान्द्रायणादिकान् कृत्वा संन्यस्य वै द्विजः क्रमात् ।
ब्रह्मविद्यामधीत्यैव ज्ञानमापाद्य यत्नतः ॥
ज्ञानेन ज्ञेयमालोक्य योगी यत्फलमाप्नुयात् ।
तत् फलं लभते सर्व्वं वर्णमण्डलदर्शनात् ॥

येन केनापि वा लिख्य प्रलिप्यायतनाश्रयं।
उत्तरे दक्षिणे वापि पृष्ठतो वा द्विजोत्तमाः॥
चतुःष्कोणेऽपि वा वर्णैरलङ्कृत्य समन्ततः।
विकीर्य्य गन्धकुसुमैर्धूपदीपैश्चतुर्विधैः।
प्रार्थयेद्देवमीशानं शिवलोकञ्च गच्छति॥
तत्र भुक्त्वा महाभोगान् कल्पकोटिशतं नरः।
स्वदेहगन्धैः स शुभैः पूरयेच्छिवमन्दिरं॥
क्रमाद्गान्धर्व्वमासाद्य गन्धर्वैस्तत्र पूजितः।
क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन् राजा भवति वीर्य्यवान्॥

इति सौरपुराणोक्तं वर्णमण्डलं।

शुक्लपक्षे नवं धान्यं पक्वं ज्ञात्वा सुशोभनं।
सुतिथौ च सुनक्षत्रे मुहूर्त्ते च शुभे सति॥
गच्छेत् क्षेत्रं विधाने च गीतवाद्यपुरःसरः॥
तत्र वह्निन्तु प्रज्वाल्य धान्यैः संस्तीर्य्य शास्त्रवत्।
कृत्वा होमं ततः पश्चान्नयेद्धान्यं विभूषितं॥
पुष्पैर्वस्त्रैः फलैर्मूलैर्हस्त्यश्वरथसंयुतं।
तेन देवान् पितॄन् बन्धून् तर्प्पयित्वा यथाक्रमं॥
विभज्य च यथाशक्त्या दैवज्ञाः सस्यरक्षितः।
नववस्त्रावृतः स्रग्वी स्वनुलिप्तः स्वलङ्कृतः॥
स्थितः पूर्व्वमुखस्तुष्टा ब्रह्मघोषपुरःसरः।
शृण्वन्वा परमं हृष्टो मङ्गलालम्भनादियुक्॥
प्राश्नीयाद्दधिसंयुक्तं नवमन्त्राभिमन्त्रितं।
कृताहारश्च कुरुते गीतवाद्यैर्महोत्सवं॥

इति ब्रह्मपुराणोक्तं सस्योत्सवः।

क्षीरोदसागरात् पूर्व्वं मथ्यमानात् पुरातनात्।
श्यामा देवी समुत्पन्ना सर्व्वलक्षणसंयुता॥
नारायणी याऽसाऽनुक्ता सुकुमारा यशस्विनी।
सतीदेहसमुद्भूता सती परमशोभना॥
तां दृष्ट्वा चकितास्तत्र ततः सर्वे सुरासुराः।
मनोज्ञा सुमुखी चैषा हन्त दृश्यामहे वयं॥
एवमुक्त्वा वचस्ताश्च ददृशुः सर्व्व एव तत्।
चतुर्नामाथ तस्यास्ते दृश्येति भुवि विस्तरं॥
अतोऽर्द्धं सा सुपक्षा च पूजितव्या प्रयत्नतः।
पुष्पधूपानुलेपाद्यैस्तथा ब्राह्मणतर्प्पणैः॥
द्वौ बालकौ तथा वृद्धौ संपूज्य तदनन्तरं।
धर्म्मार्थकाममोक्षञ्च समुद्दिश्य कुटीरकैः।
स्त्रीसहायेन हृष्टेन भृत्यमित्रसुतैः सह॥
स्वनुलिप्तेन विधिवत् स्रग्विणा च सुवाससा।
निवेदिता गुरुभ्यश्च स्वयं भोज्या न चान्यथा।
उत्सवश्चापि कर्त्तव्यो नृत्यगीतसमाकुलः॥

इति आदित्यपुराणोक्तः श्यामामहोत्सवः।

---

ब्रह्मोवाच।

ऋग्वेदमात्रेयगोत्रं सोमदेवं विदुर्मुने।
काश्यपं च यजुर्वेद उग्रदेवं विदुर्बुधाः॥
सामवेदोऽपि गोत्रेण भारद्वाजः पुरन्दरः।

अधिदेवं विजानीयाद्रूपाण्यस्माच्छृणुष्व तु॥

ऋग्वेदः पद्मपत्रायताक्षः प्रलम्बिताम्बरः।

सुविभक्तग्रीवः कुञ्चितकेशश्मश्रुः प्रमाणेनापि वितस्तयःपञ्च।

स राजतो मौक्तिकजोऽथ पूज्यो

वरप्रदो भक्तियुतद्विजाय॥

यजुर्व्वेदः पिङ्गलाक्षः कृशमध्यस्थूलगलकपोलः ताम्रवर्णः प्रादेशात् षड्दैर्घ्येण।

चित्रे लिङ्गेऽथवा पूज्य सर्व्वकामानवाप्नुयात्। सामवेदो नित्यस्रग्वी सुव्रतः शुचिः शुचिवासाः चमी दान्तश्च दण्डी काचनयनः आदित्यवर्णो वर्णेन षड्रत्निमात्रः। ताम्रेयमणाविन्द्राद्याख्येड्वा पूजितः शुभदो भवेत्। अथर्ववेदस्तीक्ष्णश्चण्डः कामरूपी विश्वात्मा विश्वकृत् क्रूर ऊर्द्ध्वज्वालावान् क्षुद्रकर्म्मा वंशसुकृतोत्थापी नीलोत्पलवर्णो वर्णेन स्वदारतुष्टः सौवर्णः पद्मरागे वा रुद्राक्षे वा पूजनीयः प्रपूज्य सर्व्वान् कामानवाप्नुयात्।

अथर्व्ववेदविहितानि।

यावन्ति वेदगीतानि पुण्ययज्ञव्रतानि च।

तावन्ति श्रवणादस्य प्राप्नुयाद्भक्तिभावितः॥

अपुत्रो लभते पुत्रानधनो धनमाप्नुयात्।

विद्यामविद्वानाप्नोति दुःखी दुःखात् प्रमुच्यते॥

पठित्वा सर्व्वदेवानां सम्मतो द्विजवल्लभः।

जायते नात्र सन्देहो देवी च वरदा सदा॥

इति देवीपुराणोक्तं देवव्रतं।

——oo@oo——

सौरपुराणात् ।

अथात्मचरणौ स्थित्वा शिवक्षेत्रे वसेन्नरः ।
देहान्ते शिवसायुज्यं लभते नात्र संशयः ॥

लिङ्गपुराणात् ।

भित्त्वा पदद्वयं वापि शिवक्षेत्रे वसेत्तु यः ।
स याति शिवताञ्चैव नात्र कार्य्या विचारणा ॥

## इति तीव्रव्रतं ।

—o—

शङ्कर उवाच ।

आदित्यग्रहणे राम ग्रहणे च निशाभृतां ।
उपवासादवाप्नोति सर्व्वकल्मषनाशनं ॥
स्नानं दानं तथा जाप्यमक्षय्यं तत्तदा स्मृतं ।
श्राद्धञ्च भार्गवश्रेष्ठ वह्निसंपूजनं तथा ॥

## इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तो ग्रहणोपवासः ।

—ooo—

अथ महातपोव्रतानि ।

मासे मासे च यः कुर्य्यात्त्रिरात्रक्षपणं बुधः ।
कौवेरं लोकमासाद्य स विन्देत् परमं पदं ॥
चतुर्थेऽहनि यो भुङ्क्ते व्रतवांश्च शुचिर्नरः ।
गान्धर्व्वं स पदं प्राप्य मोदते शक्रवद्दिवि ॥
पञ्चमेऽहनि यो भुङ्क्ते प्रतिमासमतन्द्रितः ।

विमुक्तः सर्व्वपापैश्च स गच्छेद्दिवमूर्ज्जितः॥
यो भुङ्क्ते दिवसे षष्ठे नित्यं नियमवान् शुचिः।
वारुणं लोकमासाद्य स विन्देत्परमं पदं॥
सप्तमेऽहनि यो भुङ्क्ते जितद्वन्द्वो दृढ़व्रतः।
आदित्यलोकमासाद्य सोऽपि विन्देन्महाश्रियं॥

जितद्वन्द्वः सहिष्णुः।

अष्टमेऽहनि यो भुङ्क्ते जितद्वन्द्वो दृढ़व्रतः।
वैष्णवं लोकमासाद्य स भवेत्परमद्युतिः॥
नवमेऽहनि यो भुङ्क्ते नरो नियममास्थितः।
स वसूनां प्रियो भूत्वा चरते वसुभिः सह॥
दशमेऽहनि यो भुङ्क्ते द्वादशाहफलं लभेत्।
अश्विभ्यां च समो भूत्वा अव्ययं खेलते तथा॥

द्वादशाहः क्रतुविशेषः।

एकादशे तु यो भुङ्क्ते दिवसे मानवः शुचिः।
एकादशाहं संप्राप्य स रुद्रगणतां व्रजेत्॥
यो द्वादशे तु दिवसे भुङ्क्ते देवि सदा नरः।
द्वादशाहन्तु सम्प्राप्य शक्रलोके महीयते॥
त्रयोदशे तु यो नित्यमश्नाति दिवसे नरः।
वसेत् स भार्गवस्थानं प्राप्य दिव्यसुखान्वितं॥
चतुर्द्दशेऽतु दिवसे नित्यमश्नाति यो नरः।
स वसेद्रुद्रलोके तु शिवसायुज्यतां व्रजेत्॥
अर्द्धमासं क्षिपेद्यस्तु नित्यमेव जितेन्द्रियः।
देवराजेन तुल्योऽसौभूत्वा स्वर्गं च तिष्ठति॥

यस्तु मासं क्षिपेद्धीरो जितक्रोधो जितेन्द्रियः ।
विमानेन स दिव्येन अप्सरोभिः समन्वितः ॥
सर्व्वलोकेषु वसते जन्मान्यष्टायुतानि च ।
ततो ब्रह्मासनं प्राप्य ब्रह्मणा च सुपूजितः ।
ब्रह्मलोके निवसते यथा ब्रह्मनरोत्तमः ॥

महाभारते ।

मासि मासि त्रिरात्राणि कृत्वा वर्षाणि द्वादश
गणाधिपत्यं प्राप्नोति निःसपत्नमनाविलं ॥
यस्तु संवत्सरं पूर्णं एकाहारी भवेन्नरः ।
अतिरात्रस्य यज्ञस्य समं फलमुपाश्नुते ॥
दशवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।
तत्क्षयादिह चागत्य माहात्म्यं प्रतिपद्यते ॥
यस्तु संवत्सरं पूर्णंचतुर्थं भक्तमश्नुते ।
अहिंसानिरतो नित्यं सत्यवाग्विजितेन्द्रियः ॥
वाजपेयस्य यज्ञस्य स फलं समुपाश्नुते ।
त्रिंशद्वर्षसहस्राणि वर्षाणां दिवि मोदते ॥
अष्टमेन तु भक्तेन जीवेत्संवत्सरं नरः ।
गवां मेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥
हंससारसयुक्तेन विमानेन स गच्छति ।
पञ्चाशत्तु सहस्राणि वर्षाणि दिवि मोदते ॥
पक्षे पक्षे गते राजन् योऽश्नीयाद्वर्षमेव तु ।
षण्मासानशनन्तस्य भगवानङ्गिराऽब्रवीत् ॥
षष्टिर्वर्षसहस्राणि दिवमावसते स च ॥

अश्वीयाद्द्वितीये पक्षे सर्व्वदिनेष्विति विशेषः।

वीणानां वल्लकीनाञ्च वेणूनाञ्च विशाम्पते।
सुघोषैर्म्मधुरैः शब्दैः सुसुप्तः प्रतिबुध्यते॥
संवत्सरमिहैकन्तु मासि मासि पिवेत् पयः।
फलं विश्वजितस्तात प्राप्नोति स नरोत्तमः॥
सिंहव्याघ्रप्रयुक्तेन विमानेन स गच्छति।
गतश्चाप्सरो सुरकन्या रमयन्ति च तन्नरं॥
सप्ततिञ्च सहस्राणि वर्षाणां दिवि मोदते।
मासादूर्द्ध्वं नरव्याघ्र नोपवासो विधीयते॥

युधिष्ठिर उवाच।

यो दरिद्रैरपि विधिः शक्यः प्राप्तुं भवेत् प्रभो।
तुल्यो यज्ञफलैरेव तन्मे ब्रूहि पितामह॥

भीष्म उवाच।

यस्तु कल्यं तथा सायम्भुञ्जानो नान्तरा पिवेत्।
अहिंसानिरतो नित्यं जुह्वानो जातवेदसं॥
यज्ञं बहुसुवर्णं यो वासवप्रियमाहरेत्।
सत्यवाक् दानशीलश्च ब्रह्मशासनसूचकः॥
क्षान्तो दान्तो जितक्रोधी यत्फलं समवाप्नुयात्।
पाण्डुराभ्रप्रतीकाशे विमाने हंसलक्षणे॥

कल्यमिति प्रातः। पिवेदुदकमपीति शेषः।

षड्भिरेव च स वर्षैः सिध्यते नात्र संशयः।
देवस्त्रीणामपि वसेत् नृत्यगीतनिनादिते।
प्राजापत्यं वसेत् पद्मं वर्षाणामग्निसम्भवं॥

पद्मं कोटिशतं।

त्रीणि वर्षाणि यः प्राश्नेत् शततन्त्वेकभोजनं।
धर्म्मपत्नीरतोनित्यमग्निष्टोमफलं लभेत् ॥
द्वितीये दिवसे यस्तु प्राश्नीयादेकभोजनं।
सदा द्वादशमासान्वै जुह्वानो जातवेदसं ॥
यज्ञं बहुसुवर्णं यो वासवप्रियमाचरेत्।
सत्यवाग्दानशीलस्य ब्रह्मण्यश्चानसूयकः ॥
क्षान्तो दान्तो जितक्रोधः यत् फलं समराप्नुयात्।
पाण्डुराभ्रप्रतीकाशे विमाने हंसलक्षणे ॥
द्वे समाप्ते ततः पद्मे सोऽप्सरोभिर्वसेत्सह।

समाप्ते परिपूर्णे।

तृतीये दिवसे यस्तु प्राश्नीयादेकभोजनं।
सदा द्वादशमासान्वै जुह्वानो जातवेदसं ॥
अग्निकार्य्यपरो नित्यं नित्यकार्य्यप्रबोधनं।
अतिरात्रस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमं ॥
सप्तर्षीणां सदा लोके सोऽप्सरोभिर्व्वसेत्सह।
निवर्त्तनञ्च तत्रास्य त्रीणि पद्मानि वै विदुः ॥

आस्येति स्थित्वा।

दिवसेयश्चतुर्थे तु प्राश्नीयादेकभोजनं।
स च द्वादशमासान्वै जुह्वानोजातवेदसं ॥
वाजपेयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमं।
सागरस्य च पर्य्यन्ते सर्व्वलोके च वेशयेत् ॥
देवराजस्य च क्रीड़ांनित्यकालमवेक्षते।

सागरस्य च पर्य्यन्तं समुद्रसंख्याविशेषान्तं॥

दिवसे पञ्चमे यस्तु प्राश्नीयादेकभोजनं।
स च द्वादशमासान्वै जुह्वानो जातवेदसं॥
अलुब्धः सत्यवादी च ब्रह्मण्यश्चाविहिंसकः।
अनसूयुरपापस्थो द्वादशाहफलं लभेत्॥
जाम्बूनदमयं दिव्यं विमानं हंसलक्षणं।
सूर्य्यमालासमाभासमारोहेत्पाण्डुरं गृहं॥

आवर्त्तनानि चत्वारि। तुलापद्मानि द्वादश।

शराग्नि परिमाणञ्च तथासौ वसते चिरं॥

आवर्त्तनानि मन्वन्तराणि तुलापद्मानि शतंप्रमानि।

शराग्निपरिमाणं। शराःपञ्च। अग्नयस्त्रयः॥ इदमपि परिमाणं मन्वन्तराणामेव।

दिवसे यस्तु षष्ठे तु मुनिः प्राश्नीत भोजनं।
सदा द्वादशमासान् वै जुह्वानो जातवेदसं॥
सदा त्रिषवणस्नायी ब्रह्मचार्य्यनसूयकः।

मुनिः संयतवाक्।

गवामेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमं।
तत्रैवाप्सरसामङ्के प्रसुप्तः प्रतिबुध्यते॥
नूपुराणां निनादेन मेखलानाञ्च निस्वनैः।
कोटीसहस्रवर्षाणि युगकोटिशतानि च॥
पद्मान्यष्टादश तथा पताके द्वे तथैव च।
अयुतानि च पञ्चाशदृक्षचर्म्मशतस्य च।
लोम्नां प्रमाणेन समं ब्रह्मलोके महीयते॥

पताका: संख्याविशेष: ।

दिवसे सप्तमे यस्तु प्राश्नीयादेकभोजनं ।
सदा द्वादशमासान्वै जुह्वाणो जातवेदसं ॥
सरस्वतीं गोपयानो ब्रह्मचर्य्यं समाचरेत् ।
सुमनोवर्णकञ्चैव मधुमांसञ्च वर्जयेत् ॥
पुरुषो मरुतां लोकमिन्द्रलोकञ्च गच्छति ।
तत्र तत्र च सिद्धार्थौ देवकन्याभिरर्च्यते ।
फलं बहुसुवर्णस्य यज्ञस्य लभते नरः ॥
संख्यामतिगुणां वापि तेषु लोकेषु मोदते ।

कुङ्कुमादि अतिगुणं । अतिक्रान्तगुणानामपिरिमितामिति यावत् ।

यस्तु संवत्सरं पूर्णं भुङ्क्तेऽहन्यष्टमे नरः ।
देवकार्य्यपरो नित्यं जुह्वानो जातवेदसं ॥
पौण्डरीकस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमं ।
पद्मवर्णनिभञ्चैव विमानमधिरोहति ॥
कृष्णा: कनकगौराश्च नार्य्य: श्यामास्तथा परा: ।
वयोरूपसमायुक्ता लभते नात्र संशय: ॥
यस्तु संवत्सरं भुङ्क्ते नवमे नवमेऽहनि ।
सदा द्वादशमासान्वै जुह्वानो जातवेदसं ॥
अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानव: ।
पुण्डरीकप्रकाशं वै विमानं लभते नर: ॥
दीप्तसूर्य्याग्नितेजोभिर्दिव्यमालाभिरेव च ।

नीयते रुद्रकन्याभिः सोऽन्तरिचं सनातनं॥
अष्टादशसहस्राणि वर्षाणां कल्पमेव च।
कोटीशतसहस्रञ्च तेषु लोकेषु मोदते॥
यस्तु संवत्सरं भुङ्क्ते दशाहे वै गते गते।
सदा द्वादशमासान्वै जुह्वानो जातवेदसं॥
गते प्राप्ते तथा ब्रह्मकन्या चामरवर्जिता।
कुरुते तत्र सा क्रीड़ा सर्व्वभूतमनोहरे॥
अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमं।
रूपवत्यश्च तं कन्या रमयन्ति सदा नरं॥
एकादशे तु दिवसे यः प्राप्ते प्राशते हविः।
सदा द्वादशमासांश्च जुह्वानो जातवेदसं॥
परस्त्रियं नाभिलषेद्वाचाथ मनसापि वा॥
अनृतञ्च न भाषेत मातापित्रोः कृतेऽपि च।
अभिगच्छेन्महादेवं विमानस्थं महाबलं।
रुद्राणां तमधीवासं दिवि दिव्यं मनोरमं।
वर्षाणां परिमेयानि युगान्ताग्निसमप्रभः॥
कोटीशतसहस्रञ्च कोटिदशशतानि च।
रुद्रं नित्यं प्रणमते देवदानवसंस्तुतः॥
स तस्मै दर्शनं प्राप्तो दिवसे दिवसे भवेत्।
दिवसे द्वादशे यस्तु प्राप्ते वै प्राशते हविः।
सदा द्वादशमासान्वै जुह्वानो जातवेदसं।
आदित्यद्वादशाभासं विमानं सोऽधिरोहति॥
अष्टमर्हर्द्धिसंयुक्तं ब्रह्मलोके प्रतिष्ठितं।

नित्यमावसथं राजन् नरनारीसमाकुलं।
त्रयोदशे तु दिवसे यः प्राप्ते भुञ्जते हविः॥
सदा द्वादशमासान् वै देवसत्रफलं लभेत्।
रत्नपद्मोदयं नाम विमानं साधयेन्नरः।
तत्र शङ्कुपताके द्वे युगान्तं कल्पमेव च॥
अयुतायुतं तथापद्मं समुद्रञ्च तथा वसेत्॥

शङ्कुपताकाप्रभृतयः पताकाविशेषः।

गीतगन्धर्वघोषैश्च भेरीपणवनिःस्वनैः।
सदाप्रमुदितस्ताभि र्दैवकन्याभिरीज्यते॥
चतुर्द्दशे तु दिवसे यः सदाप्राशयेद्धविः।
सदा द्वादशमासान्वै महामेधफलं लभेत्॥
अनिर्द्दिश्यवयोरूपा देवकन्याः स्वलङ्कृताः।
मृष्टतप्ताङ्गदधरा विमानैरुपयान्ति तं॥
कलहंसविनिर्घोषैर्नूपुराणाञ्च निस्वनैः।
काञ्चीनाञ्च समुत्कर्षैस्तत्र तत्र विबोध्यते॥
देवकन्यानिवासे च तस्मिन् वसति मानवः।
जाह्नवीवालुकाकीर्णे पूर्णसंवत्सरं नरः॥
यस्तु पक्षे गते भुङ्क्ते एकभक्तं जितेन्द्रियः।
सदा द्वादशमासांस्तु जुह्वानो जातवेदसं॥
राजसूयसहस्रस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमं।
यानमारोहते दिव्यं हंसबर्हिणसेवितं॥
मनिमण्डलकैश्चित्रं जातरूपसमावृतं।
दिव्याभरणशोभाभिर्व्वरस्त्रीभिरलङ्कृतं॥

एकस्तम्भश्चतुर्द्वारं सप्तभौमं सुमङ्गलं।
वैजयन्तीसहस्रैश्च शोभितं गीतनिस्वनैः॥
दिव्यं दिव्यगुणोपेतं विमानमधिरोहति।
मणिमुक्ताप्रवालैश्च भूषितं वैद्युतप्रभं॥
वसेत् युगसहस्रञ्च खड्गकुञ्जरवाहनः।
षोड़षे दिवसे प्राप्ते यः कुर्य्यादेकभोजनं।
सदा द्वादशमासान् वै सोमयज्ञफलं लभेत्॥
सोमकन्यानिवासेषु सोऽप्यावसति नित्यशः।
सौम्यगन्धानुलिप्तश्च कामचारगतिर्भवेत्॥
सुदर्शनाभिर्नारीभि र्मधुराभिस्तथैव च।
अर्च्च्यते वै विमानस्थः कामभोगैश्च सेव्यते॥
फलं पद्मशतप्रख्यं महाकल्पं दशाधिकं।
आवर्त्तनानि चत्वारि साधयेच्चाप्यसौ नरः॥
दिवसे सप्तदशमे यः प्राप्ते प्राशते हविः।
सदा द्वादशमासान् वै जुह्वानो जातवेदसं॥
स्थानं वारुणमैन्द्रञ्च रुद्रञ्चाप्यधिगच्छति।
मारुतोशनसञ्चैव ब्रह्मलोकं स गच्छति॥
तत्र दैवतकन्याभिरासने नोपचर्य्यते।
भूर्भुवश्चापि देवर्षिं विश्वरूपमवेक्षते॥
तत्र देवाधिदेवस्य कुमार्य्यो रमयन्ति तं।
द्वात्रिंशद्रूपधारिण्यो मधुराः समलङ्कृताः॥
चन्द्रादित्यावुभौ यावत् गगणे चरतः प्रभो।
तावच्चरत्यसौ वीरः सुधामृतरसाशनः॥

अष्टादशे यो दिवसे प्राश्नीयादेकभोजनं ।
सदा द्वादशमासान् वै सप्तलोकान् स पश्यति ॥
रथैः सनन्दिघोषैश्च पृष्ठतः सोऽनुगम्यते ।
देवकन्याभिरूढ़ैस्तु भ्राजमानैः स्वलङ्कृतैः ॥
व्याघ्रसिंहप्रयुक्तञ्च मेघस्वननिनादितं ।
विमानमुत्तमं दिव्यं सुमुखो ह्यधिरोहति ॥
तत्र कल्पसहस्रं स कन्याभिः सह मोदते ।
सुधारसञ्च भुञ्जीत अमृतोपममुत्तमं ॥
एकोनविंशतिदिने यो भुङ्क्ते एकभोजनं ।
सदा द्वादशमासान् वै सप्तलोकान् स पश्यति ॥
उत्तमं लभते स्थानमप्सरोगणसेवितं ।
गन्धर्व्वैरुपगीतञ्च विमानं सूर्य्यवर्च्चसं ॥
तत्रामरवरस्त्रीभिर्मोदते विगतज्वरः ।
दिव्याम्बरधरः श्रीमानयुतानां शतं शतं ॥
पूर्णेऽथ विंशे दिवसे यो भुङ्क्ते त्वेकभोजनं ।
सदा द्वादशमासांस्तु सत्यवादी धृतव्रतः ॥
अमांसाशी ब्रह्मचारी सर्व्वभूतहिते रतः ।
स लोकान् विपुलान् रम्यानादित्यानामुपाश्नुते ॥
गन्धर्व्वैरप्सरोभिश्च दिव्यमाल्यानुलेपनैः ।
विमानैः काञ्चनैर्द्दिव्यैःपृष्ठतश्चानुगम्यते ॥
एकविंशे तु दिवसे यो भुङ्क्ते ह्येकभोजनं ।
सदा द्वादशमासान् वै जुह्वानो जातवेदसं ॥
लोकमौशनसं दिव्यं शक्रलोकञ्च गच्छति ।

अश्विनोर्मरुताञ्चैव सुखेष्वभिरतः सदा।
अनभिज्ञश्च दुःखानां विमानवरमास्थितः॥
सेव्यमानो वरस्त्रीभिः क्रीड़त्यमरवत् प्रभुः।
द्वाविंशे दिवसे प्राप्ते यो भुङ्क्ते ह्येकभोजनं।
सदा द्वादशमासान् वै जुह्वानो जातवेदसं॥
अहिंसानिरतो धीमान् सत्यवागनसूयकः।
लोकान् वसूनामाप्नोति दिवाकरसमप्रभः॥
कामचारी सुधाहारी विमानवरमास्थितः।
रमते देवकन्याभिर्दिव्याभरणभूषितः॥
त्रयोविंशे तु दिवसे यः प्राश्नेदेकभोजनं।
सदा द्वादशमासांस्तु मिताहारो जितेन्द्रियः॥
वायोरुसनश्चैव रुद्रलोकञ्च गच्छति।
कामचारी कामगमः पूज्यमानोऽप्सरोगणैः॥
अनेकगुणपर्य्यन्तं विमानवरमास्थितः।
रमते देवकन्याभिर्दिव्याभरण भूषितः॥
चतुर्विंशे तु दिवसे यः प्राश्नेदेकभोजनं।
सदा द्वादशमासान् वै जुह्वानो जातवेदसं॥
आदित्यानामधीवासे मोदमानो वसेच्चिरं।
रमते देवकन्यानां सहस्रै वायुतै स्तथा।
पञ्चविंशे तु दिवसे यः प्राश्नेदेकभोजनं॥
सदा द्वादशमासान्वै पुष्कलं यानमारुहन्।
रथैः सनन्दघोषैस्तु पृष्ठतोह्यनुगम्यते॥
देवकन्यासमारूढ़ै राजतैर्विमलैः शुभैः।

तत्र कल्पसहस्रं वै रमते स्त्रीशतावृतः॥
भोज्यं रसञ्च लभते सदा ते अमृतोपमं।
षड्विंशे दिवसे यस्तु प्राश्नीयादेकभोजनं॥
सदा द्वादशमासान्वै नियतो नियताशनः।
जितेन्द्रियो वीतरागो जुह्वानो जातवेदसं॥
सम्प्राप्नोति महाभाग पूज्यमानोऽप्सरोगणैः।
सप्तानां मरुतां लोकान्वसूनाञ्च समश्नुते॥
गन्धर्व्वैरप्सरोभिश्च पूज्यमानः समश्नुते।
द्वे युगानां सहस्रेतु दिवि दिव्येन तेजसा॥
सप्तविंशे तु दिवसे यः प्राशेदेकभोजनं।
सदा द्वादशमासान्वै जुह्वानो जातवेदसं॥
फलमाप्नोति विपुलं देवलोके च मोदते।
अमृताशी वसंस्तत्र स वै तृप्तः प्रपूज्यते॥
स्त्रीभिर्म्मनोभिरामाभीरममाणो मदोत्कटः।
युगकल्पसहस्राणि लोकावसति वै सुखं॥
योऽष्टाविंशे तु दिवसे प्राश्नीयादेकभोजनं।
सदा द्वादशमासान्वै जितात्मा च जितेन्द्रियः॥
फलं देवर्षिचरितं विपुलं समुपाश्नुते।
भोगवांस्तेजसायुक्तः स्वर्गे रविरिवामलः॥
सुकुमार्य्यश्च तं नार्य्यो रममाणाः सुवर्चसः।
रमयन्ति मनःकान्ते विमाने सूर्य्यवर्च्चसे॥
सर्व्वकामयुते दिव्ये कल्पायुतशतं समाः।
एकोनत्रिंशे दिवसे यः प्राशेदेकभोजनं॥

सदा द्वादशमासान्वै सत्यव्रतपरायणः।
तस्य लोकाः शुभा दिव्या दिव्यगन्धगुणान्विताः॥
तत्र चैतं शुभानार्य्यो दिव्याभरणभूषिताः।
मनोभिरामा मधुरा रमयन्ति मदोत्कटाः॥
भोगवांस्तेजसा युक्तो वैश्वानरसमप्रभः।
दिव्यो दिव्येन वपुषा भ्राजमान इवामरः॥
वसूनां मरुताञ्चैव साध्यानामश्विनोस्तथा।
रुद्राणाञ्च तथा लोकान् ब्रह्मलोकञ्च गच्छति॥
यस्तु मासे गते भुङ्क्ते एकभक्तं समाहितः।
सदा द्वादश वै मासान् ब्रह्मलोके गतिर्भवेत्॥
सुधारसकृताहारः श्रीमान् सर्व्वमनोहरः।
तेजसा वपुषा युक्तोभ्राजते रश्मिमानिव॥
स्वयं प्रभाभिर्नारीभिर्विमानस्थो महीयते॥
रुद्रदेवर्षिकन्याभिः सततञ्चाभिपूज्यते।
यावद्वर्षसहस्रन्तु जम्बूद्वीपेऽभिवर्षति॥
तावत्संवत्सराः प्रोक्ता ब्रह्मलोकस्य धीमतः।
विप्रुषश्चैव यावन्त्यो निपतन्ति नभस्थलात्॥
वर्षा सु वर्षतस्तावन्निवसत्यमरप्रभः।

यावदित्यादि। जम्बूद्वीपेषु च वर्षासु वर्षसहस्रं धीमतो देवस्य वृष्टिकुर्व्वतो यावन्तो विप्रुषोजलकणा नभस्थलान्निपतन्ति तावन्तः संवत्सरान् ब्रह्मलोके वसतीत्यर्थः।

मासोपवासी वर्षैस्तु दशभिः स्वर्ग्यमुत्तमं।
महर्षित्वमथासाद्य सशरीरगतिर्भवेत्॥

मुनिर्दान्तो जितक्रोधोजितशिश्नोदरस्तथा।
जुह्वन्नग्नौ नियमतः सन्ध्योपासनसेविता।
बहुभिर्नियमैरेवं मासमश्नाति योनरः।
अभ्रावकाशशीलस्य तस्य वासोनिरुप्यते॥
दिवङ्गत्वा शरीरेण स्वेन राजन् यथाऽमरः
स्वर्गं पुण्यं यथाकामं नृप भुङ्क्ते यथाविधि॥
उपवासानिमान् कृत्वा गच्छेच्च परमां गतिं।
तथा वैश्याश्च शूद्राश्च उपवासं प्रकुर्व्वते॥
त्रिरात्रं द्विस्त्रिरात्रञ्च तयोः पुष्टिर्न विद्यते।
चतुर्थभक्तक्षपणं वैश्यशूद्रेऽभिधीयते॥
त्रिरात्रन्तु न धर्म्मज्ञैर्विहितं ब्रह्मवादिभिः।

## इति महातपोव्रतानि।

—o—

राम उवाच।

कृच्छ्राणां श्रोतुमिच्छामि नामानि च विधिं तथा।
एतन्मे ब्रूहि धर्म्मज्ञत्वं हि वेत्सि यथा तथं॥

पुष्कर उवाच।

कृच्छ्राण्येतानि कार्य्याणि राम वर्णत्रयेण च।
कृच्छ्रेष्वेतेषु शूद्रस्य नाधिकारो विधीयते॥
आदौ तु मण्डलं कार्य्यं सर्व्वकृच्छ्रेषु भार्गव।
नित्यं त्रिषवणस्नानं केशवस्य च पूजनं॥
होमः पवित्रमन्त्रैश्च तथातद्गत एव च।

स्त्रीशूद्रपतितानाञ्च तथालापं विवर्जयेत् ॥
एतत् कृच्छ्रेषु सर्व्वेषु कर्त्तव्यमविशेषतः।
वीरासनञ्च कर्त्तव्यं कामतोऽथ यथाविधि ॥
वीरासनेन हीनञ्च विधिहीनं प्रकीर्त्तितं।

राम उवाच।

वीरासनमहं तत्त्वं श्रोतुमिच्छामि सुव्रत ॥
वीरासनेन सहितं कृच्छ्रं बहुगुणं यथा।

पुष्कर उवाच।

उत्थितस्तु दिवा तिष्ठेदुपतिष्ठेत्तथा निशि।
एतद्वीरासनं प्रोक्तं महापातकनाशनं ॥
आमिक्षया तु द्वौ मासौ पक्षेन पयसा तथा।
अष्टरात्रं तथा दध्ना त्रिरात्रमपि सर्पिषा ॥
निराहारस्त्रिरात्रन्तु कुर्य्यादुद्दालकव्रतं।
सर्व्वपापप्रशमनं सर्व्वकामप्रदन्तथा ॥
स्नापयेदात्मनोर्थाय पावकं भृगुनन्दन।
वह्नौ ततोनुजुहुयाद्घृतेन च कस्यचित् ॥
ब्रह्मदेवेति मन्त्रेण साध्यमानो विचक्षणः।
दर्भांस्तु खलु बध्नीयाद्रक्षार्थमिति च स्तुतिः ॥
श्रितञ्च स्नाप्यमानञ्च भाण्डे न्यस्तं तथा पुनः।
अनेन राम मन्त्रेण नरस्त्रिरभिमन्त्रयेत् ॥
यवोसि धान्यराजोसि वारुणं मधुसंयुतं।
विच्छेदे सर्व्वपापानां पवित्रमृषिभिस्तु तं ॥
घृतं यवा मधु यवा आपोहि अमृतं यवाः।

सर्व्वं पुनीत मे पापं यन्मया दुःष्कृतं कृतं ॥
वाचाकृतं कर्म्मकृतं दुःस्वप्नं दुर्विचिन्तितं ॥
अलक्ष्मीं नाशयत्येव सर्व्वं पुनीत मे यवाः ।
श्वशूकरावलीढञ्च उच्छिष्टाद्युपहतञ्च यत् ।
मातुर्गुरोश्च शुश्रूषा सर्व्वं पुनीत मे यवाः ।
गणान्नं गणिकान्नञ्च शूद्रान्नं श्राद्धसूतकं ॥
चौरस्यान्नं नवश्राद्धं सर्व्वं पुनीत मे यवाः ।
बालवृद्धमधर्म्मं च राजद्वारगतञ्च यत् ॥
सुवर्णस्तैन्यजं व्रात्यमयाज्यस्य च याजनं ।
ब्राह्मणानां परीवादं सर्व्वं पुनीत मे यवाः ॥
भाण्डे न्यस्तस्य मन्त्रोयन्ततस्तु परिकीर्त्तयेत् ।

ये देवा मदनो जाताः मनोयुताः तेसुदक्षा दक्षपितारस्ते नः पान्तु ते नोऽवन्तु तेभ्यो नमस्तेभ्यः ।

अनेनात्मनि धर्म्मज्ञ जुहुयादात्मनः सदा ।
न कुर्य्यादतिसौहित्यं ब्रह्म एतद्धि यावकं ॥
ये चार्थिनस्त्रिरात्रन्तु षड्रात्रमपि यापितः ।
उपपातकिना प्रोक्तं सप्तरात्रमरिन्दम ।
महापातकयुक्तस्तु षड्रात्रं द्विगुणं स्मृतं ॥
एकविंशतिरात्रेण कामानाप्नोति वाञ्छितं ॥
मासेन सर्व्वपापेभ्यो मोक्षमाप्नोत्यसंशयं ।
गवां निहारनिर्मुक्तैर्यवैः सात्वात देव तु ॥
फलं प्राप्नोति धर्म्मज्ञ तथा दशगुणं ध्रुवं ।
मासेन मोक्षान् त्रिदशान् वेदान् विद्याश्च पश्यति ॥

वरशापसमर्थश्च तथा भवति भार्गव।
एकैकवृद्ध्या ह्यश्नयान् पिण्डांश्छिव्यण्डसंमितान्॥
एकैकं ह्रासयेत् कृष्णे प्रतिपत्प्रभृतिक्रमात्।
हविष्यश्च महाभाग नाश्नीयाच्चन्द्रसंक्षये॥
एतच्चान्द्रायणं प्रोक्तं यवमध्यं महामुनिः।
एतदेव विपर्यस्तं वाजिमेध्यं प्रकीर्त्तितं॥
अष्टभिः प्रत्यहं ग्रासैर्य्यं वैश्वान्द्रायणञ्चरेत्।
तथा कथञ्चित्पिण्डानाञ्चत्वारिंशच्छतद्वयं॥
मासेन भक्षयेदेतत्सुरचान्द्रायणं भवेत्।
गोक्षीरं सप्तरात्रञ्च द्वे सुरे च चष्टयं॥
सुरात्रयात् सप्तरात्रं सप्तरात्रात्सुराद्वयं।
सुरा एयेण पश्चात्तु त्रिरात्रं वायु ना भवेत्॥
एतत् सोमायनं नाम व्रतं कल्मषनाशनं।
त्र्यहं पिवेदपस्तूष्णाः त्र्यहमुष्णं पयः पिवेत्॥
त्र्यह मुष्णं घृतं पीत्वा वायुभक्षो भवेत् त्र्यहं।
तप्तकृच्छ्रमिदं प्रोक्तं शीतैः शीतं प्रकीर्त्तितं॥
कृच्छ्रातिकृच्छ्रं पयसा दिवसानेकविंशतिः।
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकं॥
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सान्तपनं स्मृतं।
एतच्च प्रत्यहाभ्यस्तं महासान्तपनं स्मृतं॥
त्र्यहाभ्यस्तमथैकैकं महासान्तपनं स्मृतं।
कृत्स्नं पराकसंज्ञं स्यात् द्वादशाहमभोजनं॥
एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च।

उपवासेन चैकेन कृच्छ्रपादः प्रकीर्त्तितः ॥
एतदेव त्रिरभ्यस्तं शिशुकृच्छ्रं प्रकीर्त्तितं ।
त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितं ॥
त्र्यहं परञ्च नाश्नीयात् प्राजापत्यञ्चरेद्द्विजः ।
पिण्याकचम तक्राम्बुसक्तूनां प्रतिवासरं ॥
एकैकमुपवासश्च सौम्य कृच्छ्रं प्रकीर्त्तितं ।
अम्बुसिद्धैस्तथा मासं केवलं वारुणं समैः ॥
फलैर्मासेन कथितं फलकृच्छ्रं मनीषिभिः ।
श्रीकृच्छ्रं श्रीफलैः प्रोक्तं पद्माक्षैरपरं तथा ।
मासमामलकैरेव श्रीकृच्छ्रमपरं स्मृतं ॥
पत्रैर्युतं पत्रकृच्छ्रं पुष्पैस्तत्कृच्छ्रमुच्यते ।
मूलकृच्छ्रं तथा मूलैस्तोयकृच्छ्रं जलेन तु ॥
दध्ना क्षीरेण तक्रेण पिण्याकचमकैस्तथा ।
शाकं मासन्तु कार्य्याणि स्वनामानि विचक्षणैः ॥
सायं प्रातश्च भुञ्जानो नरो येनान्तरा पिवेत् ।
षड्भिर्व्वर्षैरिदं प्रोक्तं कृच्छ्रं नित्योपवासिना ॥
एकभक्तेन मासेन कथितश्चैकभक्तकं ।
नक्तेन भोजयेद्यस्तु नक्तकृच्छ्रञ्च वत्सरात् ॥
नक्तोसितस्तु धर्म्मज्ञ एकभक्तश्च वा पुनः ।
त्र्यहं सोपवसेद्यस्तु स्नायीत सवनत्रयं ॥
निमग्नश्च तथैवाप्सु त्रिःपठेदघमर्षणं ।
देवताभावहृत्तन्तु छन्दश्चैवाप्यनुष्टुभं ॥
संस्मरेत्तस्य च तथा ऋषिञ्चैवाघमर्षणं ।

चतुर्थेऽहनि दातव्या ब्राह्मणाय पयस्विनी ॥
त्र्यहं जपेद्यथाशक्ति शुचिश्चैवाघमर्षणं।
भाववृत्तः स्मृतो देवस्तथा च पुरुषः परः ॥
तद्दैवत्यं विजानीयात् सूक्तन्तदघमर्षणं।
यथाश्वमेधे क्रतुराट् सर्व्वपापापनोदनः ॥
तथाघमर्षणं प्रोक्तं सर्व्वकल्मषनाशनं।
कृष्णाजिनं वा कुतपं परीधायाथ वल्कलं ॥
संवत्सरं व्रतं कुर्य्यात् सचिरं रामभार्गव।
गृहं न प्रविशेत्तत्र भवेदाकाशशायकः ॥
अशक्तो वा भवेद्राम महाशैलगुहाश्रयः।
नित्यन्त्रिषवणस्नायी तथास्य द्विजसम्भव ॥
भैक्षशाकफलाहारः कामं स्याद् द्विजसत्तम।
वीरासनं तथा कुर्य्यात् काष्ठमौनं तथैव च ॥
सर्व्वकामप्रदं ह्येतत् सर्व्वकल्मषनाशनं।
वायव्यं कृच्छ्रमुक्तन्तु पाणिपूरान्नभोजनं ॥
मासेनैकेन धर्म्मज्ञ सर्व्वकल्मषनाशनं।
तिलैर्द्वादशरात्रेण कृच्छ्रमाग्नेयमुच्यते ॥
राजप्रसूतिमध्येकं कनकेन समन्वितं।
भुञ्जानस्य तथा मासं कृच्छ्रं धनददैवतं ॥
सर्व्वान् हरीतकीयुक्तांर्थ्येवैः सक्तून् समश्नतः।
याम्यकृच्छ्रं विनिर्द्दिष्टं मासेन भृगुनन्दन ॥
गोमूत्रेण चरेत् स्नानं वृत्तिं गोमयमाचरेत्।
गवां मध्ये सदा तिष्ठेद्गोपुरीषे च संविशेत् ॥

गोष्वपीतासु न पिबेदुदकं भृगुनन्दन।
अभुक्तवत्सु नाश्नीयादुत्थितासूत्थितो भवेत्॥
तथाचैवोपविष्टासु सर्व्वासूपविशेन्नरः।
मासेनैकेन कथितं गोव्रतं कल्मषापहं॥
अनाकृच्छ्रं तदेवैतदजामध्ये तु वर्त्तिनः।
त्रिराशिनस्तुषादात्मा(१) सन्तुल्ये न फलैरभे॥
द्वादशाहेन कथिते सर्व्वपातकनाशने।
उपोषितश्चतुर्द्दश्यां पञ्चदश्यामनन्तरं॥
पञ्चगव्यं समश्नीयाद्धविष्याशी त्वनन्तरं।
ब्रह्मकूर्च्चमिदं कुर्य्यादुक्तप्रशमनाय वै॥
पक्षान्ते त्वथवा कार्य्यं मासमध्येऽथवा पुनः।
ब्रह्मकूर्च्चं नरः कुर्य्यात् पौर्णमासीषु यः सदा।
तस्य पापं क्षयं याति दुर्भुक्तादि न संशयः॥
मासेन द्विर्न्नरः कृत्वा ब्रह्मकूर्च्चं समाहितः।
सर्व्वपापविनिर्मुक्तो यथेष्टाङ्गतिमाप्नुयात्॥
ब्रह्मभूतममावास्यां पौर्णमास्यां तथैव च।
योगभूतं परिचरन् केशवं सहसाप्नुयात्॥
एवमेतानि कृच्छ्राणि कथितानि मया तव।
शमितानीह पापानि दुरितानि च भार्गव॥
संवत्सरस्यैकमपि चरेत् कृच्छ्रं द्विजोत्तमः।
अज्ञातभुक्तशुद्ध्यर्थं ज्ञातस्य तु विशेषतः॥
अज्ञातं यदि वा ज्ञातं कृच्छ्रपापं विशोधयेत्।

(१) पाठोऽयमादर्शदोषेण समीचीनो भवितुं नार्हति।

कृच्छ्रसंशुद्धपापानां नरकं न विधीयते ॥
श्रीकामः पुष्टिकामश्च स्वर्गकामस्तथैव च।
देवताराधनपरस्तथा कृच्छ्रं समाचरेत् ॥
रसायनानि मन्त्राश्च तथा चैवौषधाश्च ये।
तस्य सर्व्वेऽपि सिध्यन्ति यो नरः कृच्छ्रकृद्भवेत् ॥
वैदिकानि च कर्म्माणि यानि काम्यानि कानिचित्।
सिध्यन्ति सर्व्वाणि तदा कृच्छ्रकर्त्तुर्भृगूत्तम ॥
तेजसस्तस्य संयोगो महतश्चैव जायते।
वाञ्छितान्मानसान् कामान् स प्राप्नोति न संशयः ॥
ज्ञातो भवति देवेषु तथा ऋषिगणेष्वपि।
विपाप्मा वितमस्कश्च संशुद्धश्च विशेषतः ॥

आराधनार्थं पुरुषोत्तमस्य
कृच्छ्राणि कृत्वा मधुसूदनस्य।
पापैर्विमुक्तः परिशुद्धचित्तः
कामानवाप्नोति यथेप्सितांश्च ॥

आयातु भगवान् ब्रह्मा समुनिर्हंसवाहनः।
तपोयज्ञव्रतानान्तु भर्त्ता देवश्चतुर्मुखः ॥
आहूय पद्मयोनिन्तु मन्त्रेणानेन मन्त्रवित्।
देवस्य चेतिमन्त्रेण भक्तितस्तं समर्चयेत् ॥
अर्घैर्धूपैः पवित्रैश्च मालया कुसुमैः फलैः।
मूलैर्बल्युपहारैश्च नैवेद्यैर्विविधैरपि।
दीपदानैर्यथाशक्त्या जपेन स्तुतिमङ्गलैः।
तदग्रे पञ्चगव्यन्तु कुर्व्वीत सुसमाहितः ॥
गोमूत्रन्ताम्रवर्णाया स्त्वष्टमाषकसंख्यया।

पुण्यं वरुणदैवत्यं गायत्र्या चाभिमन्त्रणं ॥
गोमूत्रं श्वेतवर्णायाश्चतुर्माषकमात्रकं।
गृह्णीयादग्निदेवस्य गन्धद्वारेति वै शनैः ॥
पयः काञ्चनवर्णाया सोमदैवत्यमेव च।
आप्यायस्वेति मन्त्रेण माषकद्वादशान्तिकं ॥
गृह्णन्ति वायुदैवत्यं कृष्णवर्णोद्भवं दधि।
दशमाषकमात्रन्तु दधिक्रावण इति स्मरन् ॥
घृतन्तु नीलवर्णायाः पञ्चमाषकसंख्यया।
गृह्णन्ति सूर्यदैवत्यं तेजोसीति जपन् क्रमात् ॥
शतत्रयं माषकानां चत्वारिंशच्च पञ्च च।
कुशोदकस्य गृह्णीत देवस्यत्वेति कीर्त्तयेत् ॥
ताम्रपात्रे पलाशे वा पात्रे मिश्रीकृतञ्च यत्।
आपोहिष्ठेति चालोड्य प्रणवेन पिवन्ति च ॥
उदङ्मुखस्त्विराचम्य ततो गच्छेत् स तद्गृहं।
तत्राग्निहोमं प्रागूढ़ं कृत्वा दद्याच्च दक्षिणां ॥
ब्राह्मणेभ्यो यथाशक्त्या भोजनञ्च मनोहरं।
गवां वर्णास्तु शुक्लाद्याः सन्ति शेषेषु यत्र च।
तत्र वर्णविभागेन पञ्चगव्यानि चाहरेत् ॥
वर्णालाभान्न दोषोऽस्ति मात्राहीनं विवर्ज्जयेत्।
त्याज्यानि दूषितानाञ्च न विन्मूत्रपयांसि च ॥
प्रसूतानाञ्च शुक्रेण प्रस्रुतानाञ्च शोणितं।
चैलकेश्याश्च भक्षाणामभक्ष्यैः संप्लुतान्तथा ॥
रोगार्त्तानाञ्च पूर्णाद्यैर्मृताण्डानाममङ्गलैः।

निष्फलत्वेन वृद्धानां कृशानां कृमिभिस्तथा॥
अनतिप्रीतिदत्तानि साधनाप्रभवाणि च।
शुद्धभाण्डे मनोज्ञे तु भूमावपतितानि तु॥
गृहीतव्यानि विधिना छेदस्तासां न कारयेत्।
ब्रह्मकूर्च्चव्रतमिदं सर्व्वपापप्रनाशनं॥
सर्व्वकामप्रदं पुंसां रूपारोग्ययशस्करं।
महतामपि पापानां नाशनं श्रीविवर्द्धनं॥

## इति ब्रह्मपुराणोक्तं ब्रह्मकूर्च्चव्रतं।

———000———

विष्णुधर्म्मोत्तरात्।

ऋषय ऊचुः॥

कर्म्मणा केन पुरुषः किमाप्नोति महामते।
एतन्मे संशयं छिन्धि द्विजानां द्विजसत्तम॥

हंस उवाच।

दानेन भोगी भवति तपसा विन्दते महत्।
वृद्धोपसेवया विप्र प्राज्ञो भवति मानवः॥
यज्ञेन लोकानाप्नोति सत्येन च पराङ्गतिं।
स्नानेन शुद्धिमाप्नोति प्राणायामाद्विशेषतः॥
ध्यानेन धारणाभिस्तु पदमाप्नोत्यनुत्तमं।
दमने सर्व्वमाप्नोति यत्किञ्चिन्मनसि स्थितं॥
शौचेन देवाः प्रीयन्ते प्रीयन्ते चोपवासतः।
उपवासव्रतस्थानां कामावाप्तिर्ध्रुवं भवेत्॥
भवन्ति विपुला भोगाः संग्रामेष्वपलायिनां।

मधुमांसनिवृत्तस्य सर्व्व एव मनोरथाः॥
मांसाशननिवृत्तोऽपि परं सौख्यमुपाश्नुते।
अहिंसया त्वरोगी स्याद्दीर्घायुश्चाप्यहिंसया॥
रूपलावण्यसौभाग्यधनधान्ययुतः सदा।
तीर्थानुसरणाद्विप्राः पापनाशमवाप्नुयात्॥
सर्व्वकल्मषहीनस्तु यान् लोकान् मनसीच्छति।
प्रतिश्रयप्रदानेन स्थानमाप्नोत्यनुत्तमं॥
पूज्य पूजयिता विप्रा यशसा युज्यते नरः।
अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः॥
समञ्चत्वा विवर्द्धन्ते कीर्त्तिमायुर्य्यशोबलं।
ऋतुकालादृते भार्य्यां तथैव परिवर्जयेत्॥
पानीयमपि विप्रेन्द्रा विष्णुलोकं स गच्छति।
अनेनैव विधानेन देशकालशनैर्नरः॥
सर्व्व कामानवाप्नोति गतिं प्राप्नोत्यभीप्सितां।
तथा भोजनकाले तु यस्तु मौनं समाचरेत्॥
उपवासफलन्तस्य प्रत्यहं भोजनस्य तु।
सर्व्वान् कामानवाप्नोति मौनी नक्ताशनः सकृत्॥
नाप्नोति नरकं दुःखं नित्यस्नायी नरो यदि।
यो दद्यादपरिक्लिष्टमन्नमध्वनिवर्त्तिने॥
श्रान्तायादृष्टपूर्व्वाय तस्य पुण्यफलं महत्।
पाद्यमासनमेवाथ दीपमन्नं प्रतिश्रयं॥
दद्यादतिथिपूजार्थं स यज्ञः पञ्चदक्षिणः।
चक्षुर्दद्यान्मनो दद्याद्वाचं दद्याच्च सूनृतां॥

अनुव्रजेदुपाचीनः सर्व्वकामफलप्रदः।
पुष्पाशिनात्तथैश्वर्य्यं धनं शाकाशिनां महत्॥
पयोभक्षा दिवं यान्ति अभक्षाश्चामितां गतिं।
दन्तोलूखलको विप्रो यश्चाप्युञ्छेन जीवति॥
कापोतीं मास्थितो वृत्तिं यथेष्टाङ्गतिमाप्नुयात्।
प्रायोपवेशनाद्राज्यं सर्व्वत्र फलमुच्यते।
येन प्रीणाति पितरन्तेन प्रीतः प्रजापतिः॥
प्रीणाति मातरं येन पृथिवी तेन पूजिता।
येन प्रीणात्युपाध्यायन्तेन स्याद्ब्रह्म पूजितं॥
सर्वं तस्यादृता धर्म्मा यस्यैते त्रय आदृताः।
अनादृतास्तु यस्यैते सर्व्वा तस्याफला क्रिया॥
गुरुशुश्रूषया विद्या नित्यश्राद्धेन सन्ततिः।
नित्यस्नायी भवेद्दक्षः संध्ये तु द्वे जपेत्सदा।
द्विजशुश्रूषया राज्यं द्विजत्वं वापि पुष्कलं।
देवशुश्रूषया कामं यथेष्टं प्राप्नुयात् ततः।
सान्त्वदः सर्व्वभूतानां सर्व्वलोकैः प्रपूज्यते॥
परिचर्य्यातुरं सम्यक् न रोगैः परिभूयते।
गोलोकमाप्नोति तथा गवाञ्च परिचर्य्यया॥
देवमाल्यापनयनात्पादशौचात् द्विजस्य तु।
श्रान्तसंवाहनाद्विप्राः सुखमत्यन्तमश्नुते॥
जले सप्तसहस्राणि एकादश हुताशने।
भृगुप्रपाते च दश संग्रामे विंशतिस्तथा॥
नरो वर्षसहस्राणि तनुं त्यक्त्वा तु मोदते।

अनाशके तु धर्म्मज्ञाः परिसंख्या न विद्यते ॥
भेरोः साधयते राज्यं यथेष्टं भुवि जायते ।
पुण्यप्रस्थानमाविश्य यथेष्टाङ्गतिमाप्नुयात् ॥
वह्निप्रवेशी नियतमभीष्टं लोकमश्नुते ।
वारुणं लोकमाप्नोति त्यक्त्वाम्भसि तनुन्नरः ॥
शष्पं मृगमुखोत्सृष्टं यो मृगैः सह सेवते ।
दीक्षितो वै मुदा युक्तः स गच्छत्यमरावतीं ॥
शैवलं शीर्णपर्णं्वा तद्व्रतं यो निषेवते ।
शीतयोगवहो नित्यं स गच्छेत्परमाङ्गतिं ॥
वायुभक्षोऽम्बुभोक्षो वा फलमूलाशनोऽपिवा ।
यावमैश्वर्य्यमाप्नोति मोदतेऽप्सरसाङ्गणैः ॥
अग्नियोगवहो ग्रीष्मे विधिदृष्टेन कर्म्मणा ।
दीर्घंद्वादशवर्षाणि राजा भवति पार्थिवः ॥
आहारनियमं कृत्वा मुनिर्द्वादशवार्षिकं ।
व्रतं समाप्य कालेन राजा भवति पार्थिवः ॥
स्थण्डिले शुद्धमाकाशं परिगृह्य समन्ततः ।
प्रविश्य च मुदायुक्तो दीक्षां द्वादशवार्षिकीं ।
स्थण्डिलस्य फलान्याह यानानि शयनानि च ।
गृहाणि शयनार्हाणि चन्द्रशुभ्राणि ब्राह्मण ॥
आत्मानमुपजीवन् यो नियतो नियताशनः ।
देहं वानशने त्यक्त्वा स स्वर्गं समुपाश्नुते ॥
आत्मानमुपजीवन् यो दीर्घंद्वादशवार्षिकीं ।
अश्मना चरणौ दत्वा गुणकेषु च मोदते ॥

साधयित्वात्मनात्मानं निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः।
तीर्त्वा द्वादशवर्षाणि दीक्षामेकां मनोगतां।
स्वर्गलोकमवाप्नोति पितृभिः सह मोदते॥
स्वात्मानमुपजीवन्यो दीक्षां द्वादशवार्षिकीं।
त्यक्त्वा महाहवे देहं वारुणं लोकमाप्नुयात्॥
आत्मानमुपजीवन्यो दीक्षां द्वादशवार्षिकीं।
हुताग्नौ देहमुत्सृज्य वह्निलोके महीयते॥
यस्तु विप्रो यथान्यायं दीक्षितो नियतेन्द्रियः।
आत्मन्यात्मानमाधाय निर्द्वन्द्वो धर्म्मलालसः।
तीर्त्वा द्वादशवर्षाणि दीक्षामेतामरोगतां।
अरणीसहितः स्कन्धे तीर्थाटनविधिश्चरेत्॥
वीराध्वानमवानीत्य वीरासनगतः सदा।
वीरस्थायी च सततं स वीरगतिमाप्नुयात्॥
वीरलोके गते वीरो वीरयोगावहः सदा।
सत्त्वस्थ सर्व्वमुत्सृज्य दीक्षितो नियतः शुचिः।
शक्रलोकगतः श्रीमान् मोदते दिवि देववत्॥
उपव्रताः शुचिर्दान्ता अहिंसाः सत्यवादिनः।
संसिद्धाः प्रेत्यगन्धर्व्वैः सह मोदन्त्यनामयं॥
मण्डूकयोगशयनो यथास्थानं यथाविधि।
दीक्षां चरति धर्म्मात्मा स नागैः सह मोदते॥
आर्द्रवासास्तु शिशिरे व्रतं वहति यो नरः।
द्वादशाब्दानि नियतं राजा भवति पार्थिव॥
वृक्षवनगतान् प्राणान् समपूर्व्वापरांस्तथा।

नरांस्तारयते दुःखादात्मानञ्च विशेषत: ॥
येन येन शरीरेण यद्यत्कर्म्म करोति यः ।
तेन तेन शरीरेण तत्फलं हि समश्नुते ॥
यस्यां यस्यामवस्थायां यत् करोति शुभाशुभं ।
तस्यां तस्यामवस्थायां तत्फलं समुपाश्नुते ॥

महाभारतात् ।

फलमूलाशिनां राज्यं स्वर्गः पर्णाशिनाम्भवेत् ।
पयोभक्षो दिवं याति स्थानेन द्रविणोदकः ॥
गवाद्यः शाकदीक्षाभिः स्वर्गमाहुस्तृणाशिनां ।
स्त्रियस्त्रिसवणस्नानादायु पीत्वा क्रतुं लभेत् ॥
नित्यस्नायी लभेद्राज्यं सन्ध्ये तु द्वे जयं द्विजः ।
सेन्द्र साधयते राज्यं नाकपृष्ठमनाशकः ॥
स्थण्डिले तु शयानानां गृहाणि शयमानि च ।
रसानां प्रतिसंहारे सौभाग्यमभिविद्यते ॥
आमिषप्रतिसंहारे प्रजा आयुष्मती भवेत् ।
उद्वासंवसेद्यस्तु स नराधिपतिर्भवेत् ॥

प्रतिसंहारः परित्यागः, उद्वास उदके वासः ।

सत्यवादी नरश्रेष्ठो दैवतैः सह मोदते ॥
गन्धमाल्यानुवृत्त्या तु कान्तिर्भवति पुष्कला ।
केशश्मश्रु धारयति तामग्र्यां वसतिं लभेत् ॥
उपवासञ्च दीक्षाञ्चाप्यभिषेकञ्च पार्थिवः ।
कृत्वा द्वादश वर्षाणि वासवत्वाद्विशिष्यते ॥
अवाक्शिरास्तु यो लम्बेदुदवासं वसेच्च यः ।

सततञ्चैकसाधी यः स लभेदीप्सिताङ्गतिं ॥
परं विन्दति दानेन मौनेनात्मा प्रतीच्छति ।
उपभोगांश्च तपसा ब्रह्मचर्य्येण जीवितं ॥
रूपमैश्वर्य्यमारोग्यं अहिंसाफलमुच्यते ।
प्रायोपवेशनाद्राज्यं सर्व्वत्र फलमश्नुते ॥
स्वर्गं सत्येन लभते दीक्षया कुलमुत्तमं ।
अधीत्य सर्व्ववेदान्वै सद्यो दुःखात् प्रमुच्यते ॥
मानसन्तु वरं धर्म्मं स्वर्गलोकमवाप्यते ।

विष्णुधर्म्मोत्तरात् ऋषय ऊचुः ।

कं लोकं कर्म्मणा केन संप्राप्नोति नरोत्तमः ।
तत्त्वमस्माकमाचक्ष्व त्वं हि सर्व्वविदुच्यते ॥

हंस उवाच ।

ज्येष्ठं स्वसारं पितरं गुरुं मातरमेव च ।
नित्यं संपूजयेद्भक्त्या याम्यलोके महीयते ॥
भोजनावसथाद्येन त्वतिथिञ्चैव पूजयेत् ।
राजराजस्य लोकेषु मोदते नात्र संशयः ॥
मेरोः समीपं गच्छन्ति यथा चैवोत्तरान् कुरून् ।
नित्यं दानपराः शान्ता लोकं गच्छन्ति शीतगोः ॥
आदित्यलोकं गच्छन्ति यथा येन परिस्थिताः ।
तीर्थयात्रां परां यान्ति तथा लोकं प्रचेतसः ॥
संग्रामे निहता यान्ति शक्रलोकमसंशयं ।
प्राजापत्यं तथा यान्ति सम्यग् दत्त्वा महीक्षितः ॥
गवां भक्त्या तथा यान्ति गोलोकं मानवोत्तमाः ।

यान्ति लोकन्तु साध्यानां नित्यं ये सत्यभाषिनः॥
प्रतिग्रहान्निवृत्ताश्च वसूनामपि मानवाः।
वायुलोके महीयन्ते रोगिणां परिचारकाः॥
लोकं गच्छन्त्यथाग्नेयं वह्निशुश्रूषणे रताः।
यान्ति ते नैर्ऋतं लोकं पररक्षणतत्पराः।
भृगूणामथ लोकेषु मोदन्त्याकाशशायिनः॥
यान्ति चाङ्गिरसे लोके व्रतिनो नात्र संशयः।
मरुतांश्च तथा लोकं यान्ति यानप्रदा नराः॥
नासत्यलोके मोदन्ते तथैवौषधिदायिनः।
रुद्रलोकं प्रपद्यन्ते गोविप्रातुरवत्सलाः॥
स्ववाचि निरता यान्ति वैश्वदेवमसंशयं।
आदित्यैः सह मोदन्ते दयावन्तस्तु ये नराः॥
ब्रह्मलोकं विष्णुलोकं रुद्रलोकं तथैव च।
तद्गौरवेण लभ्यन्ते नान्यथा द्विजसत्तमाः॥
यस्य देवस्य यां भक्तिं सदा वहति मानवः।
सम्पदस्तस्य सालोक्यं याति नास्त्यत्र संशयः॥

लोकेषु दिव्येषु गतिर्मयोक्ता
कर्म्मानुरूपा पुरुषस्य विप्राः।
अतः परं किं कथयाम्यहं वै
तन्मे वदध्वन्तपसि प्रधानाः॥

इति नानाशुभफलानि।

———000———

अथ शरीरोत्सर्गविधिरभिधीयते। ते चानशनाग्निप्रवेशभृगुपतनादयः।

तत्र विष्णुधर्म्मोत्तरात्।

नरो नव्याधिरहितः सन्त्यजेदात्मनस्तनुं।
अधमा नाम ये लोका अन्धेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥
अनिष्टैरात्मनो ज्ञात्वा मृत्युकालमुपस्थितं।
व्याधितो भिषजा त्यक्तः पूर्णे वायुषि चात्मनः॥
यथा युगानुसारेण सन्त्यजेदात्मनस्तनुं।
तस्मिन् काले तनुत्यागाद्यथोक्तं फलमाप्नुयात्॥
आयुषस्तु पुरा दृष्टं मरणं ब्राह्मणस्य च।
क्षत्रियस्य तु संग्रामे मृतभर्त्तरि योषितः॥
ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सन्त्यजेदात्मनस्तनुं।
सर्व्वो ह्यप्राप्तकालोऽपि गतिमग्र्यामवाप्नुयात्॥

आदित्यपुराणात्।

समायुक्तो भवेद्यस्तु पातकैर्महदादिभिः।
दुश्चिकित्स्यैर्महारोगैः पीड़ितो वा भवेत्तु यः॥
स्वयं देहे विनाशस्य काले प्राप्ते महामतिः।
आब्राह्मणोऽपि स्वर्गादिमहाफलजिगीषया॥
प्रातरुज्ज्वलनन्दीप्तं करोत्यनशनं तथा।
अगाधतोयराशिं वा भृगोः पतनमेव वा॥
गच्छेन्महापथं वापि तुषारगिरिमादरात्।
प्रयागवटशाखाग्रे देहत्यागं करोति वा॥

उत्तमान् प्राप्नुयात् लोकान् नात्मघाती भवेत् क्वचित् ।
महापापक्षयात् सर्व्वान् दिव्यान् भोगान् समश्नुते ॥
एतेषामधिकारस्तु तपसा सर्व्वजन्तुषु ।
नराणामथ नारीणां सर्व्ववर्णेष्वयं विधिः ॥
श्वश्रुञ्च मातरञ्चैव भगिनीं ब्राह्मणीं सतीं ।
मासोपवासिनीं गत्वा गुरुपत्नीं तथैव च ।
करीषाग्निं विशेद्विप्रो गच्छेच्चैव महातपं ॥

तथा रेवाखण्डे ।

ये मृता नर्म्मदातीरे सङ्गमे लिङ्गदर्शने ।
तेषां गृहाश्च रम्याश्च पूर्व्वभागव्यवस्थिताः ॥
नर्म्मदामेदमध्ये तु सावित्रीसङ्गमे तथा ।
त्रिपुरासन्निधाने च विष्णौ सन्निहिते तथा ॥
ओंकारदक्षिणे भागे पूर्व्वतो मरकण्टके ।
जलाधारे कोटितीर्थे ये मृताः स्कन्धमानुषाः ॥
हर्म्यैरिमैर्मनोरम्यैर्वसन्ति च नरोत्तमाः ।
भृगावग्नौ जले वापि नद्याः सकलसङ्गमे ।
गोदावर्य्यां पयोष्ण्यां च तपायाश्चैव सङ्गमे ॥
आत्रेय्याञ्चैव भारत्यां वाराणस्यान्तथैव च ।
द्रुमालये गोगृहे च गोकर्णे च महालये ॥
हरिश्चन्द्रे पुरीश्चन्द्रे सोमिले त्रिपुरान्तके ।
कृष्णायान्तुङ्गभद्रायां महारथ्यां महानदीं ॥
कार्त्तिके स्वामिकुण्डे च ये म्रियन्ते च पुत्रक ।
सरस्वत्यान्त्यजेत् प्राणान् प्रभासे शशिभूषणे ॥

पारियात्रे महाकाले जायन्ते तत्त्ववर्त्तिनः ।

अनशनं तावदुच्यते ।

विष्णुधर्म्मात् ।

तदेतदुक्तं तपसामशेषानां महामते ।
गुणैरनशने ब्रह्मा प्रधानतममब्रवीत् ॥
त्यजेदनशनस्थो हि प्राणान् यः संस्मरन् हरिं ।
स याति विष्णुसालोक्यं यावदिन्द्राश्चतुर्द्दश ॥
अतीतानागतानीह कुलानि पुरुषर्षभ ।
पुनात्यनशनं कुर्व्वन् सप्त सप्त च सप्त च ॥
नान्यत्सुकृतमुद्दिष्टं तपोभिरनशनात् परं ।
तस्याहं लक्षणं वक्ष्ये यच्च जप्यं मुमूर्षता ॥
यादृक् रूपश्च भगवान् चिन्तनीयो जनार्द्दनः ।
आसन्नमात्मनः कालं ज्ञात्वा प्राज्ञो महासुर ॥
निधूतमलदोषश्च स्नातो नियतमानसः ।
समभ्यर्च्च हृषीकेशं पुष्पधूपादिभिस्तथा ॥
प्रणिपातैः स्तवैः पुण्यैर्ध्यानयोगैश्च पूजयेत् ।
दत्त्वा दानञ्च विप्रेभ्यो विकलादित्य एव च ॥
सभायोगि ब्राह्मणीको देवौकस्तपयोगि च ।
बन्धौ पुत्रे कलत्रे च क्षेत्रधान्यधनादिषु ॥
मित्रवर्गे च दैत्येन्द्र ममत्त्वं विनिवर्त्तयेत् ।
मित्राण्यमित्रमध्यस्थान् परांश्चाशु पुनः पुनः ॥
अभ्यर्थनोपचारेण क्षमयेत् सुकृतं स्वकं ।
ततश्च प्रयतः कुर्य्यादुत्सर्गं सर्व्वकर्म्मणां ॥

शुभाशुभानां दैत्येन्द्र वाक्यं वेदमुदाहरेत्।
परित्यजाम्यहं दानं यजामि सुहृदोऽखिलान्॥
भोजनादि मयोत्सृष्टं ताम्बूलमनुलेपनं।
सुश्रूषणादिकं त्यक्तं दानञ्चादानमेव च॥
होमादयः पदार्था ये ये च नित्यक्रमा मम।
निमित्ताश्च तथा काम्याः श्राद्धकर्म्मक्रियोदिता॥
त्यक्ताश्चाश्रमिणां धर्म्मा वर्णधर्म्मास्तथा हिताः।
पद्भ्यां कराभ्यां विहरन् कुर्व्वन् वा काममत्यहं॥
न पापं कस्यचिद्दास्ये प्राणिनः सन्तु निर्भयाः।
नभसि प्राणिनो ये च ये जलेष्वपि भूतले॥
क्षितौ विवरगा ये च ये च पाषाणसङ्कटे।
ये धान्यादिषु वस्त्रे च शयने ह्यासनेषु च॥
न स्वयं किञ्च बुद्ध्यातु दत्तन्तेभ्यो भयावहं।
नमेऽस्ति बान्धवः कश्चिद्विष्णुं त्यक्त्वा जगद्गुरुं॥
मित्रपक्षे च मे विष्णुरधश्चोर्द्ध्वं तथाग्रतः।
पार्श्वयोर्मूर्द्ध्नि हृदये बाहुभ्यां वापि चक्षुषोः॥
श्रोत्रादिषु तथाङ्गेषु मम विष्णुः प्रतिष्ठितः।
इति सर्व्वं समुत्सृज्य ध्यात्वा सर्व्वगमच्युतं॥
वासुदेवस्य नियतं नाम देवेश कीर्त्तयेत्।
दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु शयीत प्राक्शिरास्ततः॥
उदक्शिरा वा दैत्येन्द्र चिन्तयन् जगतः पतिं।
विष्णुं जिष्णुं हृषीकेशं केशवं मधुसूदनं॥
नारायणं नरं सौरिं वासुदेवं जनार्द्दनं।

वाराहं यज्ञपुरुषं पौण्डरीकमथाच्युतं ॥
वामनं श्रीधरं कृष्णं नृसिंहमपराजितं।
पद्मनाभमजं श्रीशं दामोदरमधोक्षजं ॥
सर्व्वेश्वरेश्वरं शुद्धमनन्तं राममीश्वरं।
चक्रिणङ्गदिनं शान्तं शङ्खिनं गरुड़ध्वजं ॥
किरीटकौस्तुभधरं प्रणमाम्यहमव्ययं।
अहमस्मिन् जगन्नाथे मयि वास्तु जनार्द्दनः ॥
आवयोरन्तरं मास्तु शमीराकाशयोरिव।
अयं विष्णुरयं सौरिरयं कृष्णः पुरो मम।
नीलोत्पलदलश्यामः पद्मपत्रायतेक्षणः ॥
एष दृश्यतमो ह्यौशः पश्याम्यहमथोहरिं।
यतो न व्यतिरिक्तोऽहं यन्मनोऽहं यदाश्रयः ॥
इत्थं जपेदेकमनाः स्मरन् सर्व्वेश्वरं हरिं।
अतीतः सर्व्वदुःखेषु समो मित्राहितेषु च ॥
नमोऽस्तु वासुदेवाय व्रतोक्तं सततं जपेत्।
यद्वोदीरयितुं नाम समर्थस्तदुदीरयेत्।
तथा ध्यायेच्च देवस्य विष्णोरूपं मनोरमं ॥
प्रसन्ननेत्रभ्रूवक्त्रं शङ्खचक्रगदाधरं।
श्रीवत्सं सुमनसञ्चतुर्बाहुं किरीटिनं ॥
पीताम्बरधरं कृष्णं चारुकेयूरधारिणं।
चिन्तयेच्च सदा रूपं मनः कृत्वैकनिश्चये ॥
यादृशे वामनः स्थैर्य्यं रूपे बध्नाति चक्रिणः।
तदेव चिन्तयेद्रूपं वासुदेवेति कीर्त्तयेत्।

इत्थं जपन् स्मरन्नित्यं स्वरूपं परमात्मनः।
आप्राणोपरमाद्वीरस्तच्चित्तस्तत्परायणः।
सर्व्वपातकयुक्तोऽपि पुरुषः पुरुषर्षभ।
प्रयाति देवदेवेशे लयमीड्यतमेऽच्युते॥
यथाग्निस्तृणजातानि दहत्यनिलसङ्गतः।
तथानघमनसङ्कल्पः पुंसां पापान्यलङ्कृताः॥
पृष्ठतश्चामरधरा विमानैरनुयान्ति तं।
देवकन्या निवासे च तस्मिन् वसति मानवः।
जाह्नवीवालुकापूर्णं पूर्णसंवत्सरं नरः॥

बलिरुवाच।

उत्क्रान्तिकाले भूतानां मुह्यन्ते चित्तवृत्तयः।
जराव्याधिविहीनानां किन्तु व्याध्यादिदोषिणां॥
अत्यन्तं वयसा वृद्धो व्याधिना रोगपीड़ितः।
यदि स्थातुं न शक्नोति चितिस्थो दर्भसंस्तरे।
तत् किमन्योप्युपायोऽस्ति नरामघ्नकर्म्मणि।
वैफल्यं येन नाप्नोति तन्मे ब्रूहि पितामह॥

प्रह्लाद उवाच।

नात्र भूमिनं च कुशाश्चास्तरश्च न कारणं।
चित्तस्यालम्बनीभूतो विष्णुरेवात्र कारणं॥
तिष्ठन् व्रजन् स्वपन् बुध्यन् तथा धावन्नितस्ततः।
उत्क्रान्तिकाले गोविन्दं संस्मरन् तन्मयो भवेत्॥
किं जपैः किं नु वा स्तव्यैः किन्तु शैर्दैत्यसत्तम।
तथापि कुर्व्वतो यस्य हृदये न जनार्द्दनः॥

तस्मात् पुत्र सदा कार्य्यं वासुदेवस्य चिन्तनं।
तन्मयत्वेन दैत्येन्द्र तस्योपायश्च विस्तरात्॥
इत्येतत् कथितं सर्व्वं यत् पृष्टोऽहं त्वयानघ।
उत्क्रान्तिकाले स्मरणं किम्भूयः कथयामि ते॥

भविष्योत्तरात्।

समासहस्राणि तु सप्त वै जले
दशैकमग्नौ पतने च षोड़श।
महाहवे षष्टिरशीतिरहवे
अनाशने भारत चाक्षया गतिः॥

तथा च शातपथी श्रुतिः।

तमेतं वेदानुवचनेन विविदिषन्ति ब्रह्मचर्य्येण तपसा श्रद्धया यज्ञेनानाशनेन।

सौरपुराणात्।

शिवक्षेत्रे निराहारो भूत्वा प्राणान् परित्यजेत्।
शिवसायुज्यमाप्नोति प्रभावात् परमेष्ठिनः॥

लिङ्गपुराणात्।

यावत्तावन्निराहारो भूत्वा प्राणान् परित्यजेत्।
शिवक्षेत्रे मुनिश्रेष्ठाः शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥

इति अनशनविधिः।

———ooOoo———

अथ महायात्राप्रकरणं।

क्रौड़स्थाकाशगङ्गायामष्टमे वातवर्त्मनि।

गजेन्द्राः कुमुदाद्याश्च येन प्राप्ता जनार्दनं॥
तस्मात् प्रधानमत्रोक्तं वासुदेवस्य चिन्तनं।
निर्मलं ब्रह्मसम्भूतं करैस्तज्जाह्नवीजलं॥
गृहीत्वा प्रतिमुञ्चन्ति फुत्कारैर्दक्षिणामुखः॥
स्पृष्टाः पृष्ठैश्च पातैश्च सामीप्यात् सूर्य्यरश्मिभिः॥
मुमुक्षुस्तम्भसामर्थ्यं दाहस्य शमनाय च।
महाप्रपातं नीलाभं पतमानन्तु तज्जलं॥
वायुना स्थाप्यमानन्तुस्थानत्वमुपगच्छति।
तत्पुण्यं हिमवत्प्रान्ते पतते च यदा हिमं॥
प्रथमं तत्र संपूज्यो हिमवांश्छिशिरस्तथा।
हेमन्तश्च तथा नागो नीलनीलाब्जसम्भवः॥
स्थाननागाश्च संपूज्याः कालपात्रैर्नमेरुजैः।
त्वर्कपुष्पाणि देयानि धूपो गुग्गुलसम्भवः॥
मध्वाज्यतिलसंमिश्रं पितृभिश्च हिमं बहु।
यस्मिन् देशे हिमं न स्यात् तत्र ब्रूयाद्धिमं हिमं॥
महाप्रस्थानयात्रा च कर्त्तव्या तु हिमोपरि।
आश्रित्य सर्व्वं धैर्य्यं च सद्यः स्वर्गप्रदा च सा॥
यावत् पुरन्दरं लोके न यातः कार्य्यगौरवात्।
तावत्तुषारमध्ये तु स्वन्तनुन्त्यक्तुमुत्सहेत्॥
यतस्तुषारदग्धस्तु मुञ्चन् प्राणान् विचेतसः।
प्रदक्षिणावर्त्तशङ्खं पश्येद्दीप्तहुताशनं।
साकर्षणं वपुर्विष्णोश्चन्द्राग्निभवदाहकं॥

इति ब्रह्माण्डपुराणोक्तं महाप्रस्थानं।

अथाग्निप्रवेशः

वायुपुराणे।

यो वाहिताग्निप्रवरो वीराध्वानं गतोऽपिवा।
समाधाय मनः पूर्व्वं मन्त्रमुच्चारयेच्छनैः॥
त्वमग्ने रुद्रस्त्वंमुरोमहोदिवस्त्वं शर्द्धोमारुतं पृक्षइशिषे।
त्वं वातैररुणैर्यासि शङ्कयस्त्वं पूषा विधतः पासि त्मात्मना॥
इत्येवं मनसा मन्त्रं सम्यगुच्चारयन् द्विजः।
अग्निं प्रविशते यस्तु रुद्रलोकं स गच्छति॥
अग्निस्तु भगवान् कालः कालोरुद्र इति स्मृतः।
तस्माद्यः प्रविशेदग्निं स रुद्रमतिवर्त्तते॥

लिङ्गपुराणात्।

आधायाग्निं शिवक्षेत्रे संपूज्य परमेश्वरं।
स्वदेहपिण्डं जुहुयात् स याति परमं पदं॥

सौरपुराणात्।

शिवस्य पुरतो वह्निं संस्थाप्याभ्यर्च्य केशवं।
जुहुयादात्मनो देहं स याति शिवसन्निधिं॥

अथ स्त्रीणामग्निप्रवेशोविधीयते।

तत्र बृहस्पतिः।

आर्त्तार्त्ते मुदिते हृष्टा प्रोषिते मलिना कृशा।
मृते म्रियेत या पत्यौ सा स्त्री ज्ञेया पतिव्रता॥

अथ अङ्गिराः।

साध्वीनामिहनारीणामग्निप्रपतनादृते।

मान्यो धर्म्मो हि विज्ञेयो मृते भर्त्तरि कर्हिचित् ।
तावन्न मुच्यते नारी स्त्रीशरीरात् कथञ्चन ॥

सद्वृत्तभावार्पितभर्तृकाणां
स्त्रीणां वियोगः क्षितिकातराणां ।
तासाम्मृतावस्तमिते यतः स्या-
दग्निप्रवेशादपरो हि मार्गः ॥

हारीतः ।

मृते भर्त्तरि या नारी धर्म्मशीला दृढ़व्रता ।
अनुगच्छति भर्त्तारं शृणु तस्यास्तु यत्फलं ॥
तिस्रः कोट्योर्द्धकोटी वा यावद्रोमाणि मानुषे ।
तावदब्दसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥
मातृकं पैतृकञ्चैव यत्र कन्या प्रदीयते ।
कुलत्रयं पुनात्येषा भर्त्तारं यानुगच्छति ॥

व्यासः ।

ब्रह्मघ्ने वा कृतघ्ने वा मित्रघ्ने यच्च दुष्कृतं ।
भर्त्तुं पुनाति सा नारी तमादाय मृता तु या ॥

आदायालिङ्ग्येत्यर्थः । एवं कल्पसूत्रकाराः । भर्तृशरीरेण सह संवेशनमाहुः पत्नी संवेशयन्तीति ।

आदित्यपुराणात् ॥

जुहोत्यग्नौ शरीरं वा मृतेन पतिना सह ।
सत्त्वोद्रेकान्महद्धीरा या काचित्सा पतिव्रता ॥
पितृमेधमहायज्ञः स्त्रीणामेषः प्रकीर्त्तितः ।
देहः सजीवो यत्र स्याद्धविः प्राणास्तु दक्षिणा ॥

अविच्छन्नमृगर्थन्तु देवरः सार्व्वकालिकं।
आराधयेद्भ्रातृजायां सह भर्त्रा समन्वितां॥
चितामारोपयन् प्राज्ञः प्रस्तुतं धर्म्ममुत्तमं।
इमाः पतिव्रताः पुण्याः स्त्रियोजाताः पतिव्रताः॥
अवैधव्यमनुप्राप्ताः रत्नाभरणभूषिताः।
कुङ्कुमाज्याञ्जनाः स्रग्भिरर्चिताः कृतमण्डनाः॥
सुस्थिरं भर्तृसंयोगं प्राप्नुवन्तु स्वयं बलात्।
दुष्टप्रवादरहिता सुस्थास्त्वव्याधिदूषिताः।
सह भर्तृशरीरेण संविशन्तु विभावसुं॥
एवं श्रुत्वा ततो नारी श्रद्धाभक्तिसमन्विता।
पितृमेधेन यज्ञेन यदा स्वर्गमवाप्नुयात्॥
मृते भर्त्तरि सुस्त्रीणां न चान्या विद्यते गतिः॥
नान्यद्भर्तृवियोगाग्निदाहस्य शमनं भवेत्।
ऋग्वेदवचनात् साध्वी न भवेदात्मघातिनी॥

तदेवेदं ऋग्वेदवचनं।

इमा नारीरविधवाः सुपत्नी
रञ्जनेन सर्पिषा संविशन्तु।
अनस्रवो अनमीराः सुरत्ना
आरोहन्तु जनयो योनिमग्ने॥

देशान्तरमृते तस्मिन् साध्वी तत्पादुकाद्वयं।
निधायोरसि संशुद्धा प्रविशेज्जातवेदसं॥

व्यासः।

दयितं यान्यदेशस्थं मृतं श्रुत्वा पतिव्रता।

समारोहति दीप्तेऽग्नौ तस्याः शक्तिं निबोधत ॥

वृत्तं मृतमित्यर्थः ।

यदि प्रविष्टोनरकं बद्धः पाशैः सुदारुणैः ।
संप्राप्या यातनास्तत्र गृहीतो यमकिङ्करैः ॥
तिष्ठते विवसो दीनो वेष्ट्यमानः स्वकर्मभिः ।
व्यालग्राही यथा व्यालं बलादुद्धरते बलात् ।
तद्वद्भर्त्तारमादाय दिवं याति तपोबलात् ॥
तत्र सा भर्तृपरमा स्तूयमानाऽप्सरोगणैः ।
क्रीड़ते पतिना सार्द्धं यावदिन्द्राश्चतुर्द्दश ॥

वाराहपुराणे ।

ततो दिव्याम्बरधरन्दिव्याभरणभूषितं ।
दिवि दिव्यविमानस्थं भर्त्तारं स्वन्ददर्श सा ॥

कूर्म्मपुराणात् ।

ब्रह्मघ्नं वा सुरापञ्च महापातकदूषितं ।
भर्त्तारमुद्धरेन्नारी प्रविष्टा सह पावकं ॥
एतदेव परं स्त्रीणां प्रायश्चित्तं विदुर्बुधाः ।
सर्व्वपापं समुद्भूतं नात्र कार्य्या विचारणा ॥

आदित्यपुराणात् ।

मृते भर्त्तरि या वह्निं समारोहति कर्हिचित् ।
सारुन्धतीसमाचारा स्वर्गलोके महीयते ॥
मातृकं पैतृकं वापि यत्र कन्या प्रदीयते ।
पुनाति त्रिकुलं नारी भर्त्तारं यानुगच्छति ॥
क्रीड़ते पतिना यत्र यावदिन्द्राश्चतुर्द्दश ।

स्वेच्छया तदवाप्नोति यत्र गत्वा न शोचति ॥

इत्यग्निप्रवेशविधिः।

———000———

अथ कारीषाग्निसाधनं।

कारीषं साधयेद्यस्तु पुष्करे तु वने नरः।
सर्व्वलोकान् परित्यज्य ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥
ब्रह्मलोके वसेत्तावत् यावत् कल्पचयो भवेत्।
नैव भ्रश्यति मर्त्त्येषु क्लिश्यमानः स्वकर्म्मभिः ॥
गतिश्चास्याप्रतिहता तिर्य्यगूर्द्धमधस्तथा।
सप्तर्षिसर्व्वलोकेषु स्ववशो विचरन् वशी ॥
उपचारविधिज्ञश्च सर्व्वेन्द्रियमनोहरः।
नृत्यवादित्रगीतज्ञः सुभगः प्रियदर्शनः ॥
संसेव्यमानः कुसुमैः दिव्याभरणभूषितः।
नीलोत्पलदलश्यामो नीलकुञ्चितमूर्द्धजः ॥
अजेयतनुमध्याश्च सर्व्वसौभाग्यपूजिताः।
सर्व्वैश्वर्य्यगुणोपेताः यौवनेनातिगर्व्विताः ॥
स्त्रियः सेवन्ति तं नित्यं शयने रमयन्ति च।
वीणावेणुनिनादैश्च सुप्तः स प्रतिबुध्यते ॥
महोत्सवसुखं भुङ्क्ते दुष्प्रापमकृतात्मभिः।
प्रसादाद्देवदेवस्य ब्रह्मणः शुभकारिणः ॥

इति पद्मपुराणोक्तं कारीषाग्निसाधनं।

———000———

अथ भृगुपतनविधिः ।

रेवाखण्डात् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

भृगोः पतन्ति ये शूराः काङ्गतिं वै प्रयान्ति ते ।
श्रोतुमिच्छाम्यहं ह्येतत् कथय त्वं महामुने ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

एकान्तरोपवासैश्च भृगुगोग्रहसंग्रहैः ।
प्राणांस्त्यजन्ति ये शूरा गतिं तेषां निबोधय ॥
पृथक् पृथक् निवासश्च तेषां कर्म्मानुसारतः ।
चतुर्व्विंशतिकोटास्तु सप्तदश तथापराः ॥
उमायां तु पुरा प्रप्ता मध्यमोत्तमकल्पकाः ।
अनेन विधिना यस्तु प्राणांस्त्यजति मानवः ॥
स तु भर्त्ता मया दत्तो युष्माकन्तु प्रसादतः ।
अमरेश्वरं प्रमीताश्च भर्त्टतां वो व्रजन्ति वै ॥
भृगुं दृष्ट्वान्वयश्रेष्ठ मुच्यते ब्रह्महत्यया ।
चतुरशीतिभृगवो जम्बूद्वीपे प्रकीर्त्तिताः ॥
तथान्ये सप्त निर्द्दिष्टाः स्वर्गसोपानमुत्तमाः ।
भैरवश्च भृगुश्रेष्ठो ज्ञेयश्चामरकण्टके ॥
शूद्राश्च क्षत्रिया वैश्या अन्त्यजाश्चाधमास्तथा ।
एते त्यजेयुः प्राणान्वै वर्ज्जयित्वा द्विजं नृप ।
पतित्वा ब्राह्मणस्तत्र ब्रह्महा चात्महा भवेत् ॥

द्वात्रिंशच्च सहस्राणि राहुसोमसमागमे ।
वर्षाणां जायते राजन् राजा विद्याधरे पुरे॥
ग्रस्ते तु राहुणा सूर्य्ये द्विगुणं फलमश्नुते।
अवशः स्ववशो वापि जलपूरानलैर्हतः ।
नृपत्ते योभृगुं प्राप्य स विद्याधरराड् भवेत् ॥
भृगुं भैरवरूपेण विद्धि कैलाससम्भवं ।
गर्हयन्ति भृगुं ये तु ते लिङ्गब्रह्मवादिनः ।
भैरवः क्षमते तेषामिति स्कन्देन कीर्त्तितं॥
सन्यासाच्च च्युतो विप्रो मातृहा पितृहा तथा।
श्वश्रुगो मातृगश्चैव स्नुषागः स्वसृगस्तथा ॥
एतेषां पतनं शस्तं काषाग्निश्च प्रसाधनं।
मुच्यते तेन पापेन शिवलोकं स गच्छति ॥
वत्सरं वत्सरार्द्धन्तु त्रिमासं मासमेव च ।
सप्तत्रीणि दिनानीह वसेद्यो वै युधिष्ठिर॥
एकान्तरोपवासाद्वै स गच्छेच्छिवमन्दिरं ।
हरिश्चन्द्रे पुरीश्चन्द्रे श्रीशैले त्रिपुरान्तरे॥
धौतपापे महापुण्ये वाराहे विन्ध्यपर्व्वते।
कावेर्य्यास्तु तथा कुण्डे पतनात् स्वर्गमाप्नुयात् ॥
भृगोस्तु दक्षिणे भागे लिङ्गं वै चापलेश्वरं।
क्षेत्रसंरक्षणायेह विख्यातं पापनाशनं॥
भृगुः षष्ट्या भृगोस्तद्धि विज्ञेयं चापलेश्वरं।
आरोहति गिरिं यस्तु तमदृष्ट्वा तु मानवः।
तस्य पुण्यफलं सर्व्वं स गृह्णाति न संशयः॥

आलिख्य च पटे सूर्य्यं पताकादण्डमण्डितं ।
वलयञ्च करे कृत्वा वीज्यमानस्तु चामरैः ।
वीरैरुद्रपतितच्छत्र आरोहेद्भृगुपर्व्वतं ।
पदे पदे यज्ञफलं तस्य स्याच्छङ्करोऽब्रवीत् ॥
पर्व्वकालं प्रतीचन्तेऽप्सरसः काममोहिताः ।
दिव्ययानसमारूढ़ा दिव्याभरणभूषिताः ॥
वीरस्तु पतितस्तत्र स्वयं त्यक्त्वा कलेवरं ।
तत्क्षणाद्दिव्यलोकेषु शक्रतुल्यो भवेन्नृप ॥
कामदं यानमारुह्य विवादेन परस्परं ।
गच्छेच्छिवपुरं सार्द्धं अप्सरोभिर्मुदा युतः ॥
क्लीवस्य सत्त्वहीनस्य ह्युत्तीर्णस्य भृगोः पुनः ।
पदे पदे ब्रह्महत्या भवेत्तस्य न संशयः ॥
न चिरायुर्य्यतो मर्त्त्यो मृत्योः कस्माद्विभेत्यसौ ।
केऽपि धारयितुं शक्ताः कालमृत्युवशं नरं ॥
स पापिष्ठो दुराचारश्चाण्डालो लोकगर्हितः ।
सन्न्यासादिकमारुह्य च्यवते यस्तु मानवः ॥
सन्न्यासप्रच्युतं विप्रं दृष्ट्वा नरोऽर्कवीक्षणं ।
कुर्य्यात्सर्व्वप्रयत्नेन स्पर्शे चान्द्रायणञ्चरेत् ॥
सत्यानृतं न वक्तव्यन्तेन सार्द्धं कदाचन ।
प्रस्थातव्यं हि मौनेन न चेत्पापमवाप्नुयात् ॥
निश्चिते मरणे प्राप्ते कथं भृगुरुपेक्ष्यते ।
जरामृत्युश्च रोगश्च संसारोदधिसङ्कटे ।
एवं कृत्वा नृपश्रेष्ठ ह्यारोहेत् भृगुमुत्तमं ॥

भविष्योत्तरात् ।

कृष्ण उवाच ।

अहन्ते कथयिष्यामि तं विधिं पाण्डुनन्दन ।
यत् कृत्वा प्रथमं कर्म्म निपतेत्तदनन्तरं ॥
कृत्वा कृच्छ्रत्रयं पूर्व्वं जपन् लक्षान् दशैव तु ।
शाकयावकाहारस्थः शुचिस्त्रिषवणो नरः ॥
त्रिकालमर्चयेदीशं देवदेवं त्रिलोचनं ।
दशांशेन तु राजेन्द्र होमन्तत्रैव कारयेत् ॥
लक्षवारञ्जपेद्देवं गन्धमाल्यैश्च पूजयेत् ।
रात्रौ स्वप्ने तदा पश्येद्विमानस्थन्ततः क्षिपेत् ।
आत्मानं मन्यते तात अकृतार्थं कथञ्चन ॥
अनेनैव विधानेन आत्मानं यस्तु निक्षिपेत् ।
स्वर्गलोकमनुप्राप्य मोदते त्रिदशैः सह ॥
त्रिंशद्वर्षसहस्राणि त्रिंशत्कोटास्तथैव च ।
क्रीड़ित्वा विविधान् भोगान् तदा गच्छेन्महीतलं ॥
पृथिवीमेकछत्रेण भुङ्क्ते स द्विजपूजितः ।
व्याधिशोकविनिर्मुक्तो जीवेच्च शरदां शतं ॥

देवीपुराणात् ।

परमेश्वर उवाच ।

यदि वै भैरवं रूपं कृतं भूतक्षयं प्रति ।
अनुग्रहाय भूतानां भूधरेन्द्रो भविष्यति ॥
तस्मिन् ये भावमापन्ना मत्पुत्रा मयि भाविताः ।

पतन्ति ते च भर्त्तारो मम तुल्या भवन्ति वै ।
भुक्त्वा भोगांस्तथा तेन राज्ञा राजपुरोचितान् ।
क्रमादनुद्भवं यान्ति तत्र मोक्षपदं ध्रुवं ॥

ब्रह्मोवाच ।

एवं तासां वचो दत्तं देवदेवेन शूलिना ।
नारीणां भर्तृकामानां नित्यमानन्दकारकं ॥

सनत्कुमार उवाच ।

किं रूपं भैरवं ह्येतत् कथं कार्यं गतौ विभो ।
पातयात्राफलं देव कथयस्व प्रसादतः ॥

ब्रह्मोवाच ।

ये ते संभावसम्पन्नाः कृत्वा मनसि वै शिवं ।
भैरवं यान्ति ते रुद्रं ते यान्ति परमं पदं ॥
ये वा स्नेहाद्भयाल्लोभात् कौतुकात् यान्ति भैरवं ।
तेऽपि वै तत्प्रसादेन भुवनानां महामते ।
शिवत्वं क्रमयोगेन रुद्रत्वं यान्ति ते द्विजाः ॥
अथवा भैरवं रूपं पावनं सुरपूजितं ।
कृत्वा स्थाल्यां महावाद्ये भैरवं सर्व्वकामदं ।
पञ्चविंशभुजं देवं रुद्रत्वं यान्ति ते द्विजाः ॥
अथवा भैरवं रूपं पटगं सुरपूजितं ।
कृत्वा स्थाल्यां महावाद्ये भैरवं सर्व्वकामदं ॥
पञ्चविंशभुजं देवं पीताङ्गं सुरपूजितं ।
खड्गखेटधरं कार्य्यं शूलोद्यतकरं परं ॥

गजचर्म्मधरञ्चैव चक्रोद्यतभुजं तथा।
खट्टाङ्गञ्च कपालञ्च वज्रं डमरुकं तथा॥
एवंविधेन रूपेण भीमदंष्ट्रं धराननं।
अन्धकं भिन्दमानन्तु शङ्करन्तु त्रिलोचनं॥
कुर्व्वन्तु भैरवं देवं ससुरासुरपूजितं।
नानाशिवशिवैर्युक्तं ननाभरणभूषितं॥
नवयौवनशोभाढ्यं सर्व्वशोभाप्रकाशकं।
चुरिकानागराजेन वासुकिश्चोपवीतकं॥
कुलिकस्तु जटाबन्धे शङ्खपालेन कङ्कणं।
तक्षकः पद्मनागश्च कार्य्यौ केयूरमण्डने॥
पद्मकर्कोटकौ नागौ नूपुरौ पादगौ शुभौ।
एवं देवं प्रकुर्व्वीत भैरवं सर्व्वकामदं॥
तस्य द्वास्थौ प्रकर्त्तव्यौ पीताङ्गौ सर्व्वलक्षणौ।
शूलहस्तौ शुभौ देवौ गजवाजिरवौ परौ॥
द्वारपौ तत्र गङ्गाद्या द्वारि कार्य्यास्तु भैरवे।
उद्वेजितास्तु पीड़ाद्यैः प्रकुर्युरिह पातकं॥
एवञ्चात्र प्रसङ्गेन कथितं तव सुव्रत।
कपालशूलहस्तौ तु उत्पलाङ्कुरधारिणौ।
द्वास्थौ देवस्य कर्त्तव्यौ सर्व्वाभरणभूषितौ॥
भैरवञ्चोर्द्धवदनं ब्रह्मविष्ण्वादिभिर्युतं।
शूलभिन्नान्धकं रूपं धार्य्यमानं तु कल्पयेत्॥
एवं पटगतङ्कृत्वा पूजयित्वा परं विभुं।
सानुगं सह मन्त्रेण रक्तमाल्याम्बरादिभिः॥

आत्मानं भूषयित्वा तु मुद्रालङ्कृतपाणिना ।
प्राप्य तद्वै गृहं रम्यं भोगमोक्षप्रदायकं ॥
पूजाङ्कृत्वा तु देवेशि गयान्धकमदापहे ।
आरोहेदमरं स्थानं भुक्तिमुक्तिफलप्रदं ॥
आकारं चिन्तयित्वा तु रूपं स्वच्छन्ददायकं ।
तस्य वक्त्रानले होममात्माहुत्या तु कारयेत् ॥
देववक्त्रं हुताशस्तु स्वयङ्कृततिलादिकं ।
होतव्यं तेन भावेन परां सिद्धिमभीप्सुकैः ॥
पातङ्ककेन वीरो वै यथावत्तं निबोधत ।
पतङ्ग इव चात्मानं दीपाग्नौ निक्षिपेत्तु यः ।
पातङ्गो नाम पातोऽयं हंससंज्ञमतः शृणु ॥
संयम्य पक्षसङ्घातं कृत्वा वेगवतीं तनुं ।
तं पातं हंसनामानं साधकेच्छाफलप्रदं ॥
मृगोऽपि यूथे गर्त्तादिलङ्घनैस्तु यथा व्रजेत् ।
समपादमतिर्यस्तु मृगपातः स उच्यते ॥
मौशलं मुशलीभूत्वा पतेद्यद्वदुदूखले ।
विमानं ध्वजमालादिशाखादोलादिकं लभेत् ॥
वृषभस्येव कृत्वा तु धूननं सुचिरं द्विज ।
वृषपातं विजानीहि रुद्रलोकफलप्रदं ॥
सिंहो गजेन्द्रनिधने यथा विक्रमते तनुं ।
एवं तत्कृतभावस्तु पातः सिंहक्रमो मतः ॥
कृत्वा तु भैरवं रूपं सायुधं विगतज्वरः ।
शिवानने क्षिपेत्कायं तं पातम्भैरवप्रदं ॥

पातङ्गाद्या यथा पाताः स्वात्मभावगता द्विजाः।
तथा ते फलदाः सर्व्वे क्रमन्ते भैरवं पदं॥
भुवनानि विचित्राणि असंख्येयानि संख्यया।
अन्नपानानि यानीह क्रमशः सौम्नि तानि तु॥
दीक्षादिना विरहिता येऽपि भङ्गवशङ्गताः।
तेऽपि भुक्त्वा वरान् भोगान् प्रयान्ति परमं पदं॥
पापोपि हि पुमांस्तत्र वर्णाश्रमविवर्ज्जितः।
प्रभावाच्चैव देवस्य भुङ्क्ते चैव वरं सुखं॥
नन्दकेदारदेवस्य तथा रुद्रमहालयं।
भैरवेण तु तुल्याणि भोगान्ते मोक्षदानि तु॥
चत्वारि देवशार्दूल सर्व्वानिष्टहराणि तु।
प्रसङ्गेनापि मुच्यन्ते तत्र ये कुपितैर्नराः।
तेऽपि यानं समारुह्य त्वायान्ति च शिवं पदं॥
स्वर्गताः क्रमयोगेन भुक्त्वातु बहुधा परान्।
विचित्ररूपसम्पन्नाः सर्व्वकामसुखप्रदाः॥
कन्या द्विरष्टवर्षाश्च पीनोन्नतपयोधराः।
भुञ्जन्ति सुविचित्रास्ताः पातं युञ्जन्ति मानवाः॥
नार्य्यो वा पतनं कुर्युस्तदा भुञ्जन्ति भैरवान्।
प्रभुत्वं दिव्यभोगाद्याः अप्सरोगणसंयुताः॥
गान्धर्व्वञ्च यथा यक्षं किन्नरं वारुणं तथा।
तथा विद्याधरं सौरं रौद्रं च क्रमशःस्थितं॥
स्वकामभोगसम्पन्नं पतनाद्भुवनं लभेत्।
स्वकामतोपि तद्भुक्त्वा चान्ते याति परं पदं॥

वैष्णवास्थिमयीं मालां कम्बुकं शाम्भवं सदा।
धारयेद्देवदेवेशं लोकानुग्रहकारणात् ॥
ये चित्रधातुकाष्ठोत्थं रत्नशैलमयञ्च वै ।
पूजयन्ति कृतपुण्यास्तेऽपि यान्ति शिवं पदं ॥
एवं गृहेऽथ शैले वा नदीविन्ध्याटवीषु च।
भैरवं पूजयेद्यस्तु स लभेदीप्सितं फलं ॥
पत्रं पुष्पं मठं कूपमारामाणि च भैरवे ।
कृत्वा च तानि चत्वारि देयानि सुखसिद्धये ॥
यद् दत्त्वा सर्व्वदेवानां फलं प्राप्नोति मानवः ।
विप्रे वा वेदविदुषे तत् फलं भैरवाल्लभेत् ॥

इति भृगुपतनविधिः ।

———000◎000———

अथ संग्रामविधिः ।

वह्निपुराणात् ।

धर्म्मध्वज उवाच ।

शूराणां मे समाख्याता स्वर्गतिर्य्युधिसंस्तरात् ।
कृते त्वया मुनिश्रेष्ठ तस्मात् त्वं वक्तुमर्हसि ॥

मैत्रेय उवाच ।

अग्निष्टोमादिभिर्य्यज्ञैरिष्ट्वा विपुलदक्षिणैः ।
न तत् फलमवाप्नोति संग्रामे यदवाप्नुयात् ॥

इति यज्ञविदः प्राहुर्यज्ञकर्म्मविशारदाः।
तस्मात्तत्ते प्रवक्ष्यामि यत् फलं शस्त्रजीविनां॥
धर्म्मलाभोऽर्थलाभश्च यशोलाभस्तथैव च।
यः शूरो विद्यते पुंसां विमृद्य परवाहिनीं॥
तस्य धर्म्मार्थकामश्च यज्ञाश्चैवाप्तदक्षिणाः।
परं ह्यभिमुखं हत्वा तद्यानं योऽधिरोहति॥
विष्णुक्रान्तं स यतते एवं युध्यन् रणाजिरे।
अश्वमेधानवाप्नोति चतुरस्तेन कर्म्मणा॥
यस्तु शस्त्रमनुत्सृज्य वीर्यवान् वाहिनीमुखे।
सम्मुखो वर्त्तते शूरः स स्वर्गान्न निवर्त्तते॥
राजा वा राजपुत्रो वा सेनापतिरथापि वा।
हतः क्षत्रेण येनाशु तस्य लोकोऽक्षयो ध्रुवं॥
यावन्ति तस्य शस्त्राणि भिन्दन्ति त्वचमाहवे।
तावतो लभते लोकान् सर्व्वकामदुहोऽक्षयान्॥
वीरासनं वीरशय्या धीरस्थानस्थितिस्थिरा।
गवार्थे ब्राह्मणस्यार्थे गोस्वाम्यर्थे तु ये हताः।
ते गच्छन्त्यमलं स्थानं यथा सुकृतिनस्तथा॥
अभग्नं यः परं हन्याद्भग्नञ्च परिरक्षति।
पृष्ठस्थितः पालयति सोऽपि गच्छति तद्गतिं॥
अनुत्तीर्णस्तथा सद्यः प्राणान् सन्त्यजते युधि।
हताश्वः पतते युद्धे सः स्वर्गान्न निवर्त्तते॥
दंष्ट्रिभिः शृङ्गिभिर्वापि हता म्लेच्छैश्च तस्करैः।
स्वाम्यर्थं ये मृता राजन् तेषां स्वर्गो न संशयः॥

भयेन लज्जया वापि स्नेहेन च रणाजिरे।
सम्मुखो म्रियते राजन् तदा स्वर्गो न संशयः॥
यस्य चिह्नीकृतं गात्रं शरशक्त्यृष्टितोमरैः।
देवकन्यास्तु तं वीरं रमयन्त्यनुयान्ति च॥
परास्परः सहस्राणि शूरमायोधने हतं।
त्वरितन्तं विधावन्ति मम भर्त्ता ममेति च॥
यत्र तत्र हतः शूरः शत्रुभिः परिवेष्टितः।
अक्षयाल्लँभते लोकान् यदि क्लीवं न भाषते॥
जिते च लभते लक्ष्मीर्मृतेनापि सुराङ्गणां।
क्षणविध्वंसिकायाश्च का चिन्ता मरणे रणे॥
हतस्याभिमुखस्थस्य पतितस्यानिवर्त्तिनः।
क्रियते यत्परैर्द्रव्यं स्वमेव सफलं हि तत्॥

विष्णुधर्म्मात्।

शक्यन्त्विह सधर्म्मस्तु यदुक्तन्तु शतैर्न्नरैः।
आत्मदेहन्तु विप्रार्थे त्यक्तुं युद्धे सुदुष्करं॥

यां यज्ञसङ्घैस्तपसा च विप्राः
स्वर्गैषिणः सञ्चयैश्च यान्ति।
क्षणेन तामेव गतिं प्रयान्ति
महाहवे स्वांतनुमुत्त्यजन्ति॥
सर्व्वे च वेदाः सह षड्भिरङ्गैः
साङ्ख्यञ्च योगं तपसा च पुंसां।
एतान् गुणानेकपदेऽतियेत
संग्रामधन्यात्मतनुं त्यजेद् यः॥

इमां गिरं चित्रपदां शुभाक्षरां
सुभाषितां वृत्रभिदां दिवौकसां।
रणोन्मुखे यः स्मरते दृढ़व्रतः
न हन्यते हन्ति च सङ्गरे रिपून्॥
एषः पुण्यतमः स्वर्गः सुयज्ञः सर्व्वतोमुखः।
सर्व्वेषामेव वर्णानां चत्रियस्य विशेषतः॥
भूयश्चैव प्रवक्ष्यामि भीष्मवाक्यमनुत्तमं।
यादृशो यः प्रहर्त्ता तं तादृशं परिवर्जयेत्॥
आततायिनमायान्तमपि वेदान्तकद्रणे।
जिघांसन्तं जिघांसीयान्न तेन ब्रह्महा भवेत्॥
हताश्वश्च न हन्तव्यः पानीयं यश्च भाषते।
व्यसनार्त्तो भवेद्यश्च भुञ्जानश्च महामते॥
पलायनपरश्चैव प्राणेषु कृपणं त्यजत्।
विमुक्तकेशो धावंश्च यश्चोन्मत्ताकृतिर्भवेत्॥
पर्णशाखातृणग्राही तवास्मीति च यो वदेत्।
ब्राह्मणोऽस्मीति यश्चाहं बालो वृद्धो नपुंसकः।
तस्मादेतान् परिहरेद् यथोद्दिष्टान् रणाजिरे॥

कालिकापुराणात्।

ऋषयस्तु पुरा ख्यातं नराणां नास्ति निष्कृतिः।
आतुरभ्भीतमुद्विग्नं कायस्थं शरणागतं॥
स्त्रियमप्यथ बालं वा गावं पङ्गुं तपस्विनं।
विलपन्तं तथोन्मत्तं विस्रस्तं ब्राह्मणं तथा॥
पतन्तं प्रपलायन्तं एकाकिनं निरस्त्रकं।

नग्नं दीनं तथा वृद्धं हतायाभ्याससमादनं ॥
मुक्तकेशं तथा मत्तं सुप्तं भूरिवनौकसं ।
सूदयिष्यन्ति ये मूढ़ा नूनन्ते नरकार्णवात् ॥
अनुत्थाना विविध्यन्ते पतितः कुञ्जरो यथा ॥

विष्णुधर्म्मोत्तरात् ।

राम उवाच ।

सांग्रामिकं महत्तत्त्वं श्रोतुमिच्छामि भूभुजां ।
सर्व्वं वेत्सि महाभाग त्वं देव परमेष्ठिवत् ॥

पुष्कर उवाच ।

द्वितीयेऽहनि संग्रामो भविष्यति यदा तदा ।
गजांश्च स्नपयेद्राजा सर्व्वौषधिजलैः शुभैः ॥
गन्धमाल्यैरलङ्कुर्य्यात् पूजयेच्च यथाविधि ।
नृसिंहं पूजयेद्विष्णुं राजलिङ्गान्यशेषतः ॥
छत्रं ध्वजं पताकाञ्च धर्म्मं चैव महाभुज ।
आयुधानि च सर्व्वाणि तथा पूज्यानि भूभुजा॥
तेषां संपूजनं कृत्वा रात्रौ प्रथमपूजनं ।
कृत्वा तु प्रार्थयेत् स्वप्नं विजयायेतराय वा ॥
प्रथमञ्च महापार्थ धरण्याञ्च महीपतिः ।
भिषक्पुरोहितामात्यमन्त्रिमध्ये तदा स्वपेत् ॥
संयतो ब्रह्मचारी च नृसिंहं संस्मरन् हरिं ।
रात्रौ दृष्टे शुभे स्वप्ने समरारम्भमाचरेत् ॥
रात्रिशेषे समुत्थाय स्नातः सर्व्वौषधीजलैः ।
पूजयित्वा नृसिंहन्तु वाहनाद्यमशेषतः ॥

पुरोधसा हुतं पश्यन् ज्वालितं जातवेदसं।
पुरोधाः पूर्व्ववत्तत्र मन्त्रांस्तु जुहुयाच्छुचिः॥
दक्षिणाभिस्ततो विप्रान् पूजयेत् पृथिवीपतिः।
ततोऽनुलिम्पेद्गात्राणि गन्धद्वारेति पार्थिव॥
चन्दनागुरुकर्पूरं कान्तकालीयकैः शुभैः।
मूर्द्ध्नि कण्ठे समालभ्य रोचनाञ्च तथा शुभां॥
आयुष्यं वर्च्चस्यञ्चेति मन्त्रेणानेन मन्त्रितं।
अलङ्करणमावध्याच्छियन्मोतुरितिस्रजं॥
ध्याल्वौषधय इत्येवं धारयेदोषधीः शुभाः।
नवोनवेति वस्त्रञ्च कार्पासं बिभृयाच्छुभं॥
ऐन्द्राग्नेति ततो धर्म्मं ध्वञ्चनागेति वै बुधः।
ततो राजा समादद्यात् सरस्वन्त्वभिमन्त्रितं॥
कुञ्जरं वा रथं वाश्वन्दुहेदित्यभिमन्त्रितं।
आरुह्य सिद्धिमद्राजा निष्क्रम्य तु समप्रभे॥
देशे च दृश्यः शत्रूणां कुर्य्यात् प्रकृतिकल्पनां।
संहतान् योधयेदल्पान् कामं विस्तारयेद्बहून्॥
सूचीमुखमनीकं स्यादल्पाणां बहुभिः सह।
व्यूहाः प्राण्यङ्गरूपाश्च द्रव्यरूपाश्च कीर्त्तिताः॥
गरुड़ाकारव्यूहश्च चक्रश्येनस्तथैव च।
अर्द्धचन्द्रश्च वज्रश्च शकटव्यूहएव च॥
व्यूहश्च सर्व्वतोभद्रः सूचीव्यूहस्तथैव च।
पद्मश्च मण्डलव्यूहः प्राधान्येन प्रकीर्त्तिताः॥
व्यूहानामथ सर्व्वेषां पञ्चधा सैन्यकल्पना।

द्वौ पक्षौ बन्धपक्षौ तु द्वारस्य पञ्चमे भवेत् ॥
एकेन यदि वा द्वाभ्यां तत्समं युद्धमाचरेत् ।
भागत्रयं स्थापयेत तेषां रक्षार्थमेव च ॥
न व्युहे कल्पना कार्य्या राज्ञो भवति कर्हिचित् ।
पत्रच्छेदे फलच्छेदे वृक्षच्छेदावकल्पने ॥
पुनः प्ररोहमायाति मूलच्छेदे विनश्यति ।
स्वयं राज्ञा न योद्धव्यमपि सर्व्वास्त्रशालिना ॥
नित्यं लोके हि दृश्यन्ते शक्तेभ्यः शक्तिमत्तराः ।
सैन्यस्य पश्चात्तिष्ठेत्तु क्रोशमात्रे महीपतिः ॥
भग्नसन्धारणं तत्र योधानां परिकीर्त्तितं ।
प्रधानत्वेन सैन्यस्य नावस्थानं विधीयते ॥
न भग्नान् पीड़येच्छत्रून् नैकायनगता हि ते ।
मरणे निश्चिताः सर्व्वे हन्युः शत्रुचमूमिति ॥
भटभङ्गच्छलेनापि नयन्ति स्वभुवं परान् ।
तेषां स्वभूमिसंस्थानां बधः स्यात्सुकरस्तदा ॥
न संहतान्न विरलान् योधान् व्यूहे प्रकल्पयेत् ।
आयुधानान्तु संमर्द्दो यथा न स्यात् परस्परं ॥
तथा च कल्पना कार्य्या योधानां भृगुनन्दन ।
भेदकामः परानीकं संहतैरेव भेदयेत् ॥
देवरक्षापरेणापि कर्त्तव्या संहता तथा ।
स्वेच्छया कल्पयेत् व्यूहं ज्ञात्वा चारप्रकल्पनं ॥
व्यूहान्तदा बहून् कुर्य्यात् रिपुव्यूहस्य पार्थिवः ।
गजस्य देया रक्षार्थं चत्वारः सुरथा द्विज ॥

रथस्याश्वाश्च चत्वारस्तावन्तस्तस्य चर्म्मिणः।
चर्म्मिभिश्च समास्तत्र धन्विनः परिकीर्त्तिताः॥
पुरस्ताच्चर्म्मिणो देया देयास्तदनु धन्विनः।
धन्विनामनु चाश्वीयं रथांस्तदनु योजयेत्॥
रथानां कुञ्जराश्चानु दातव्याः पृथिवीक्षिता।
पदातिकुञ्जराश्वानां वर्म्म कार्य्यं प्रयत्नतः॥
आवर्जयित्वा यो वाहमात्मानं वर्म्मयेन्नरः।
शूरा मरणकं यान्ति सुकृतेनापि कर्म्मणा॥
शूराः प्रमुखतो देया न देया भीरवः क्वचित्।
शूरा वा मुखतो दत्त्वा तनुमात्रप्रदर्शनं॥
कर्त्तव्यं भीरुसङ्घेन शत्रुविद्रावकारकं।
द्रानयन्ते(१) पुरस्तात्तु विद्रुता भीरवः पुरः॥
य उत्साहयन्ते रणे भीरुं शूराः पुरा स्थिताः।
प्रांशवः शुकनासाश्च योजिब्रह्मेक्षणा नराः॥
संहृतभ्रू युगाश्चैव क्रोधनाः कलहप्रियाः।
नित्यहृष्टा न हृष्टाश्च शूरा ज्ञेयाश्च कामिनः॥
पञ्चालाः शूरसेनाश्च रथेषु कुशला नराः।
दाक्षिणात्याश्च विज्ञेयाः कुशलाः खड्गचर्म्मिणः॥
कङ्कला धन्विनो ज्ञेया पर्व्वतीयास्तथैव च।
पाषाणयुद्धकुशलाः तथा पर्व्वतवासिनः॥
काम्बोजा ये च गान्धाराः कुशलास्ते हयेषु च।
प्रायशश्च तथा म्लेच्छा विज्ञेयाः प्रासयोजिनः॥

१ पाठोऽयमादर्शदोषेण न समीचीनो भवितुमर्हति।

अङ्गा वङ्गाः कलिङ्गाश्च ज्ञेया मातङ्गयोधिनः।
आहतानाञ्च पतने रणादानयनक्रिया॥
प्रतियुद्धमजानाञ्च तोयदानादिकञ्च यत्।
आयुधानयनञ्चैव पत्तिकर्म्म विधीयते॥
रिपूणां भेत्तुकामानां स्वसैन्यस्य तु रक्षणं।
भेदनं संहतानाञ्च चर्म्मिणाञ्चर्म्मकीर्त्तनं॥
विमुखीकरणं युद्धे धन्विनाञ्च तथोच्यते।
दूरापसरणं यत्तदश्विनश्च तथोच्यते॥
प्रासनं रिपुसैन्यानां रथकर्म्म तथोच्यते।
भेदनं संहतानाञ्च भिन्नानामपि संहतिः॥
प्रासादात् गोमुखाद्वालद्रुमभङ्गाश्च भार्गव।
गजानां कर्म्म निर्द्दिष्टं यदसह्यं तथा परैः॥
पत्ती च विषमा ज्ञेया रथाश्वस्य तथा समा।
सवद्रुमा च नागानां युद्धभूमिरुदाहृता॥
एवं विरचितव्यूहः कृतपृष्ठदिवाकरः।
तथानुलोमशुक्राग्निर्दिक्पालरुधमारुतः॥
योधानुत्तजयेत्सर्व्वान्नमनान्नावदानतः।
भोगप्राप्त्या च विजयाः स्वर्गप्राप्त्या मृतस्य च।
धन्यानि तु निमित्तानि वदन्ति विजयं द्विज॥
मृदनं शुभगात्राणि शुभस्वप्ननिदर्शनं।
निमित्तञ्च गजाश्वाश्च सर्व्वतो दृश्यते शुभं॥
प्रभूणां मङ्गलाश्चैव दृश्यन्ते हि मनोनुगैः।
विपरीतमरिः सर्व्वमत्र पश्यति नान्यथा॥

भवन्तोपि कुले जाताः सर्व्वशास्त्रास्त्रपारगाः।
ननु धर्म्मपरा नित्यं नित्यं सन्मार्गमाश्रिताः॥
अनाहार्य्याः परैर्नित्यं कथं न स्याज्जयो मम।
राज्यश्रीर्भवतामेव भवद्भिः केवलं मम॥
हे चामरेऽधिके शूराः छत्रं चन्द्राभमेव च।
जित्वारिभागसम्प्राप्तिर्मृतस्य च परा गतिः।
निष्कृतिः स्वामिपिण्डस्य नास्ति युद्धपरा गतिः॥
शूराणां यद्विनिर्य्याति रक्तं साम्बाधतः क्वचित्।
तेनैव सह पाप्मानं सर्व्वं त्यजति धार्म्मिकः॥
तथा चिकित्सां कुर्य्याद्वा वेदनां हरते तु यः।
ततो नास्त्यधिका लोके बाधा परमदारुणा॥
मृतस्य नाग्निसत्कारो नाशौचं नोदकक्रिया।
कर्त्तुमिच्छति यस्येह संग्रामादधिकन्तु किं॥
तपस्विनो दानपरा यज्वानो बहुदक्षिणाः।
शूरानां गतिमिच्छन्ति हृष्ट्वा भोगाननुत्तमान्॥
वराप्सरः सहस्राणि शूरमायोधने हतं।
अभिद्रवन्ति कामार्त्ता मम भर्त्ता भविष्यति॥
स्वामी सुकृतमादत्तेऽभग्नानां विनिवर्त्तनात्।
फलं तेषां तथा प्रोक्तमाश्वमेधं पदे पदे॥
जित्वारिभोगसंप्राप्तिर्मृतस्य च परा गतिः॥
सपर्य्यां तस्य कुर्व्वन्ति देवाः शक्रपुरोगमाः।
अश्वमेधफलं प्रोक्तं भग्नानां विनिवर्त्तनात्॥
पदे पदे महाभाग सम्मुखानां महात्मनां।

देवस्त्रियस्तथालक्ष्मीरपाप्मानमयस्तथा ।
प्रतीक्षन्ते महाभाग संग्रामे समुपस्थिते ॥
परामर्षो मया ग्राह्यो जीवत्यथाथ वा मृते ।
इत्येवमामयस्तस्य पाप्मना सह तिष्ठति ॥
लक्ष्मीः सन्तिष्ठते तस्य जीवतः कृतकर्म्मणः ।
मृतस्य चोपतिष्ठन्ति विमानस्थाः सुरस्त्रियः ॥
एवमुद्धर्षणं कृत्वा धर्म्मेणेच्छेज्जयं रणे ।
अधर्म्मविजये राज्ञो यमलोको भयावहः ॥
अधर्म्मविजयादर्थं यच्छिद्रमभिधीयते ।
छिद्रादेवापरं छिद्रन्तस्य स्यान्नात्र संशयः ॥
न कर्णी न तथादिग्धः शरस्यार्द्धमयोधिनां ।
नास्तशल्यः शरःकार्य्यो दत्तशल्यस्य भार्गव ॥
समः समेन योद्धव्यो नानोपचारनैर्द्विज ॥
सन्नद्धेन च सन्नद्धः साश्वस्त्वाश्वागतेन च ।
रथी च रथिना नाम पदातिश्च पदातिना ॥
कुञ्जरस्थो गजस्थेन योद्धव्यो भृगुनन्दन ।
क्लिमुखो भग्नशस्त्री च स्त्रीबालपरिरक्षिता ॥
व्यायुधो भग्नगात्रश्च तथैव शरणागतः ।
परेण युद्धमानश्च युद्धप्रेक्षक एव च ।
आर्त्ततोयप्रदाता च दण्डपाणिस्तथैव च ।
एते रणे न हन्तव्या क्षत्रधर्म्ममभीप्सता ।
पापिष्ठे कूटयुद्धे तु कर्त्तव्यो मुखवाहनः ॥
श्रान्तेन प्रातिभूतेन अर्द्धोत्तीर्णबलेन च ।

दुर्दिने न च युद्धानि कर्त्तव्यानि महाबल ॥
प्रवृत्ते समरे राम परेषां नाम कारणात् ।
बाहू प्रगृह्य विक्रोशेद्भग्नाभग्नान् परेन्वितान् ॥
प्राप्तमित्रबलो भूरिनायकोऽत्र निपातितः ।
सेनानीर्निहतः सोऽयं सेनानीश्चापि वैकृतः ॥
एवं चित्रासनं कुर्य्यात्परेषां भृगुनन्दन ।
विद्रुतानान्तु योधानां सुविघातो विधीयते ।
धनुर्वेदविधानेन कल्पना च तथा भवेत् ॥
वपाश्च देया धर्म्मज्ञास्तथा च परमोहनी ।
एतयाभ्युच्छ्रयः कार्य्यः स्वस्थले च तथा शुभः ॥
सम्भारश्चैव कर्त्तव्यो वादित्राणां जयावहः ।
एतत्सर्व्वं प्रवक्ष्यामि भवोपनिषदि द्विज ॥
संप्राप्य विजयं युद्धे कार्य्यश्चैव न प्रलम्बं ।

नृणां प्रदर्शयेद्राजा समरेऽपि हते रिपौ ॥
न मे प्रियं कृतन्तेन येनायं समरे हतः ।
किन्तु पूजां करोत्यस्य मच्छन्दमविजानतः ॥
हतोऽयं मद्धितार्थाय प्रियमद्यापि नो मम ।
अपुत्राणां स्त्रियश्चैव नृपतिः परिपालयेत् ॥
ततस्तु स्वपुरं प्राप्य मुहूर्त्ते प्रविशेद्गृहं ।
यात्राविधानविहितं भूयो दैवतपूजनं ॥
द्विजानां पूजनञ्चैव तथा कुर्य्याद्विशेषतः ।
संविभागं परावाप्तैः कुर्य्याद्भित्तजनस्य तु ॥

विजित्य धर्म्मेण नृपस्तु पृथ्वीं
यज्ञीययूपादिसुरालयाङ्कां ।
कृत्वा तथान्यान् विजयांश्च शक्त्या
लोकं जयत्यप्यमराधिपस्य ॥

आह पराशरः ।

ललाटे रुधिरस्रातः पतिता भुवि सङ्गरे ।
सोमपानन्तदेवास्य सर्व्वदेवगणो भवेत् ॥

ललाट देशे रुधिरं स्रवत्तु
यच्छस्त्रघातात्तु मुखे प्रविष्टं ।
तत्सोमपानेन तु तस्य तुल्यं
संग्रामयज्ञे विधिरेव दृष्टः ॥

याज्ञवल्क्यः ।

आनीय विप्र सर्व्वस्वं हृतं घातित एव वा ।

तन्निमित्तं क्षतः शस्त्रैः कुर्व्वन्नपि विशुध्यति ॥
संग्रामे वाहनो यस्तु मृतः शुद्धिमवाप्नुयात्।
मृतकल्पप्रहारैर्वा जीवन्नपि विशुध्यति ॥
यत्र यत्र हतः शूरः शत्रुभिः परिवेष्टितः।
अक्षयान् लभते लोकान् यदि क्लीवं न भाषते ॥

मनुः।

द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्य्यमण्डलभेदिनौ।
परिव्राड्योगयुक्तश्च रणे वाभिमुखो हतः ॥

भविष्यपुराणात्।

यो ब्राह्मणार्थमुद्युक्तः प्राणैर्य्यदि विमुच्यते।
प्राप्नोति परमं स्थानं यत्र देवो दिवाकरः ॥

ब्रह्मवैवर्त्तात्।

गोब्राह्मणस्वामिधने महार्णवे
त्यक्त्वा शरीराण्यभयास्तु ये नराः।
न योगिनस्तत्परमात्मचिन्तकाः
फलं लभन्ते शमतां जनादिभिः ॥

यदाह शालिहोत्रः।

या संख्या रोमकूपाणां वाहकस्य हयस्य च।
तावत्समा वसेत् स्वर्गे हयपृष्ठहतो नरः ॥
यं लोकं वाजिपृष्ठेषु हता गच्छन्ति मानवाः।
तं लोकमधिगच्छन्ति वड़वासु हताश्च ये ॥

पालकाप्यः।

गजस्कन्धहता यान्ति स्वर्गं स्वर्गेऽपि मत्ततः।

तुल्यानोगत्रयं (१) वीचिर्व्वारिधेरिव मन्दिरः ॥
शरतोमरचक्रैश्च नागस्कन्धहता नराः ।
क्षणात्स्वर्गं प्रयान्त्येव यावदाहूतसंप्लवं ॥

## इति संग्रामविधिः ।

———ooo@ooo———

### अथ वृषोत्सर्गः ।

कार्त्तिक्यामश्वयुज्यां वा । तत्रादौ वृषभं परीक्षेत । जीववत्सायाः पुत्रं सर्व्वलक्षणोपेतं नीललोहितं वा पुच्छपादेषु सर्व्वशुक्लं यूथस्याच्छादकं ।

ततो गवां मध्ये सुसमिद्धमग्निं परिस्तीर्य्य पौष्णञ्चरुं श्रपयित्वा पूषा गा अन्वेतु न इहरादिति च हुत्वा वृषभमयस्कारमाह्वयेत् । एकस्मिन् पार्श्वे चक्रेण अपरस्मिन् शूलेनांकितञ्च हिरण्यवर्णेति चतसृभिः शन्नोदेवीति च स्नापयेत् । स्नातालङ्कृतं स्नातालङ्कृताभिश्चतसृभिर्वत्सतरीभिः सार्द्धमानीय रुद्रान् पुरुषसूक्तं कूष्माण्डीश्च जपेत् ।

पिता वत्सेति मन्त्रं वृषभस्य दक्षिणे कर्णे ।

वृषो हि भगवान् धर्म्मश्चतुष्पादः प्रकीर्त्तितः ।
वृणोमि तमहं भक्त्या स मां रक्षतु सर्व्वतः ॥

एनं युवानं पतिं वो ददामि तेन क्रीड़न्तीश्चरथ प्रियेण ।
मानः आप्तजनुषेति ।

---

१ पाठोऽयं आदर्शदोषेण समीचीनो भवितुं नार्हति ।

माहात्म्य हि प्रजयामातनूभिर्मारधामहिषते सोमराजन्।
वृषं वत्सतरीयुक्तं ऐशान्यां कारयेत् दिशि।
होतुर्वस्त्रयुगं दद्यात्सुवर्णं कांस्यमेव च॥
अयस्कारस्य दातव्यं वेतनं मनसेप्सितं।
भोजनं बहुसार्प्पिष्कं ब्राह्मणांश्चात्र भोजयेत्॥
उत्सृष्टो वृषभो यस्मिन् पिवत्यथ जलाशये।
शृङ्गेणोल्लिखते भूमिं यत्र क्वचन दर्पितः।
पितृणामन्नपानादि प्रभूतमुपतिष्ठते॥

ब्रह्मपुराणे।

अन्यच्चैत्र्यां वृषोत्सर्गं कार्त्तिक्यां वा प्रयत्नतः।
कर्त्तव्यः स्वच्छश्वेतस्त्रिभिर्वर्णैर्द्विजातिभिः॥
वृषभः कृष्णसारस्तु प्रत्यग्रस्तु त्रिहायनः।
मनोज्ञो दर्शनीयश्च सर्व्वलक्षणसंयुतः॥
अष्टाभिर्धेनुभिर्युक्तश्चतुर्भिरथवा क्रमात्।
त्रिहायनीभिर्धन्याभिः सुरूपाभिश्च शोभितः॥
सर्व्वोपकरणोपेतः सर्व्वसस्यचरो महान्।
उत्सृष्टो विधिनानेन अपि स्मृतिविधानतः॥
प्रागुदक्प्रवणे देशे मनोज्ञे निर्ज्जने वने।
न च वाह्यो न तत्क्षीरं पातव्यं केनचित् क्वचित्।
स्वधा पितृभ्यो मातृभ्यो बन्धुभ्यश्चापि तृप्तये॥
मातृपक्षाश्च ये केचित् ये चान्ये पितृपक्षजाः।
गुरुश्वशुरबन्धूनां ये कुलेषु समुद्भवाः।
ये प्रेतभावमापन्ना ये चान्ये श्राद्धवर्ज्जिताः।

वृषोत्सर्गेन ते सर्वे लभन्ते तृप्तिमुत्तमां॥
दद्यादनेन मन्त्रेण तिलाक्षतयुतं जलं।
पितृभ्यश्च समासेन ब्राह्मणेभ्यश्च दक्षिणां॥
ततः प्रमुदितास्तेन वृषभेण समन्विताः।
वनेषु गावः क्रीड़न्ति वृषोत्सर्गप्रसिद्धये॥
अप्रवृत्ते वृषोत्सर्गे दाता वक्रोक्तिभिः पदैः।
ब्राह्मणानाह यत्किञ्चिन्मयोत्सृष्टन्तु निर्जने॥
तत्कश्चिदन्यो न नयेद्विभाज्यन्तु यथाक्रमं।
वृषोत्सर्गादृते नान्यत् पुण्यमस्ति महीतले॥

मत्स्यपुराणे।

मनुरुवाच।

भगवन् श्रोतुमिच्छामि वृषभस्य तु लक्षणं।
वृषोत्सर्गविधिञ्चैव तथा पुण्यफलं महत्॥
धेनुमादौ परीक्षेत सुशीलां लक्षणान्वितां।
अव्यङ्गामपरिक्लिष्टां जीववत्सामरोगिणीं॥
स्निग्धवर्णां स्निग्धखुरां स्निग्धशृङ्गान्तथैव च।
मनोहरातिसौम्याञ्च सुप्रमाणामनुद्धृतां॥
आवर्त्तैर्दक्षिणावर्त्तैर्युक्ता दक्षिणतश्च या।
वामावर्त्तैर्वामतश्च विस्तीर्णजघनस्तना॥
मृदुसंहतताम्रोष्ठी रक्तजिह्वा सुपूजिता।
आस्यावदीर्घा स्फुटितरक्तजिह्वा तथा च या॥
ताम्राभवलिनेत्रा च शफैरविरलैर्दृढैः।

वैदूर्य्यमधुवर्णैश्च जलवुद्बुदसन्निभैः ॥
रक्तस्निग्धैश्च नयनैस्तथा रक्तकनीलकैः ।
सप्तचतुर्दशदन्ता भवेद्श्यामतालुका ॥
षडुन्नता सुपार्श्वौ पृथुपञ्चसमायुता ।
अष्टायतशिरोग्रीवायुता सा शुभलक्षणा ॥
षडुन्नता भवेत् केषु केषु पञ्चसु चायता ।
आयताश्च तथैवाष्टौ धेनूनाञ्च शुभावहाः ॥

मत्स्य उवाच ।

उरः पृष्टं शिरः कुक्षिः श्रोणी च वसुधाधिप ।
षडुन्नतानि धेनूनां कथयन्ति विचक्षणाः ॥
कर्णौ नेत्रे ललाटञ्च पञ्चैव रविनन्दन ।
समायतानि शस्यन्ते पुच्छं शस्तञ्च चामरं ॥
चत्वारश्च स्तना राजन् एवमष्टौ मनीषिभिः ।
शिरोग्रीवायुताश्चैव भूमिपालायता भृशं ॥
तस्याः सुतं परीक्षेत वृषभं लक्षणान्वितं ।
उन्नतस्कन्धककुदं ऋजुलाङ्गूलकम्बलं ॥
महाकटिं तटस्कन्धं वैदूर्य्यमणिलोचनं ।
प्रवालवर्णशृङ्गाग्रं सुदीर्घमणिवालधिं ॥
नवाष्टदशसंख्यैर्वा तीक्ष्णाग्रैर्दशनैः शुभैः ।
मल्लिकाक्षश्च मोक्तव्यो गृहेऽपि धनधान्यदः ॥
वर्णतस्ताम्रकपिलो ब्राह्मणस्य प्रशस्यते ।
श्वेतो रक्तश्च गौरश्च कृष्णः पाटल एव च ॥
इन्द्रनीलाभपृष्ठश्च शवलः पञ्चकालकः ।

पृथुकर्णो महास्कन्धश्चचूरोमा च यो भवेत् ॥
रक्ताक्षः कपिलो यश्च रक्तशृङ्गश्च यो भवेत् ।
श्वेतोदरः कृष्णपृष्ठो ब्राह्मणस्य च शस्यते ॥
स्निग्धरक्तेन वर्णेन क्षत्रियस्य प्रशस्यते ।
काञ्चनाभेन वैश्यस्य कृष्णे नाप्यन्त्यजन्मनः ॥
यस्य प्रागायते शृङ्गे स्वमुखाभिमुखे सदा ।
सर्व्वेषामेव वर्णानां स च सर्व्वार्थसाधकः ॥
मार्जारपादकपिलो धन्यः कपिलपिङ्गलः ।
श्वेतो मार्जारपादस्तु धन्यो मणिनिभेक्षणः ॥
करटः पिङ्गलश्चैव श्वेतपादस्तथैव च ।
स्वच्छपादशिरा यस्तु द्विपादः श्वेत एव च ॥
कपिञ्जलनिभोधन्यस्तथा तिमिरसन्निभः ।
आकर्णमूलाच्छन्नं तु मुखं यस्य प्रकाशते ।
नान्दीमुखः स विज्ञेयो रक्तवर्णो विशेषतः ॥
श्वेतञ्च जठरं यस्य भवेत् पृष्ठञ्च गोपते ।
वृषभः स समुद्राक्षः सततं कुलवर्द्धनः ॥
मल्लिकापुष्पचित्रश्च धन्यो भवति पुङ्गवः ।
कमलैर्मण्डलैश्चापि चित्रो भवति गोप्रदः ॥
अतसीपुष्पवर्णश्च तथा धन्यतरः स्मृतः ।
एते धन्यास्तथाधन्यान् कीर्त्तयिष्यामि ते नृप ॥
कृष्णताल्वोष्ठदशना रूक्षशृङ्गशफाश्च ये ।
अव्यक्तवर्णा ह्रस्वाश्च व्याघ्रभस्मनिभाश्च ये ॥
ध्वाङ्क्षगृध्रसवर्णाश्च तथा मूषकसन्निभाः ।

कुण्ठाः काणास्तथा खञ्जा केकराख्यास्तथैव च।
विषमश्वेतपादाश्च उद्भ्रान्तनयनास्तथा॥
न ते वृषाः प्रमोक्तव्या न ते धार्य्यास्तथा गृहे।
मोक्तव्यानाञ्च धार्य्याणां भूयो वच्यामि लक्षणं॥
स्वस्तिकाकारशृङ्गाश्च मेघौघसदृशस्वनाः।
महाप्राणाश्चैव तथा मत्तमातङ्गगामिनः॥
महोरस्का महोच्छ्रासा महाबलपराक्रमाः।
शिरः कर्णौ ललाटञ्च बालधिश्चरणास्तथा॥
नेत्रे पार्श्वे च कर्णानि शस्यन्ते चन्द्रसन्निभाः।
श्वेतान्येतानि शस्यन्ते कृष्णस्य तु विशेषतः॥
भूमौ कर्षति लाङ्गूलं सुस्थूलञ्चैव बालधि।
पुरस्तादुन्नतो नालो वृषभस्तु प्रशस्यते॥
शक्तिध्वजपताकाभा येषां राजी विराजते।
अनड्वाहस्तु ते धन्या वित्तसिद्धिजयावहाः॥
प्रदक्षिणा निवर्त्तन्ते स्वयं ये विनिवर्त्तिताः।
समुन्नतशिरोग्रीवा धन्यास्ते यूथवर्द्धनाः॥
रक्तशृङ्गोग्रनयनाः श्वेतवर्णो भवेद्यदि।
शफैः प्रवालसदृशैर्नास्ति धन्यतमस्ततः॥
एते धार्य्याः प्रयत्नेन मोक्तव्या यदि वा वृषाः।
धारिताश्च तथा मुक्ता धनधान्यविवर्द्धनाः॥
चरणाश्च मुखं पुच्छं यस्य श्वेतानि गोपते।
लाक्षारससवर्णश्च तं नीलमिति निर्दिशेत्॥
वृष एव स मोक्तव्यो न स धार्य्यो गृहे भवेत्।

तदर्थमेषाविरला लोके गाथा पुराणकी।
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्यप्येको गयां व्रजेत्॥
एवं वृषं लक्षणसम्प्रयुक्तं
गृहोद्भवं क्रीतमथापि राजन्।
मुक्त्वा न शोचेन्मरणं महात्मा
नो वा विधिं वै महते विधास्येत्॥

आदित्यपुराणात्।

भानुरुवाच।

मुञ्चन्ति वृषभं ये तु नीलञ्चैव सुशोभनं।
लाङ्गूलाकर्षसर्व्वाङ्गं शृङ्गयुक्तं मनोहरं॥
कार्त्तिक्यां ददते यस्तु दत्त्वा पूजां न संशयः।
त्रिवर्षास्त्वथ गुर्व्विण्यो दद्याद्गावो वृषस्य च॥
सावित्रीञ्च जपेत्तत्र तथा चैवाघमर्षणं।
कर्णजाप्यं प्रदद्यात् तु वृषभस्य न संशयः॥
घण्टां लौहकृतां दद्यात् शृङ्गैश्च पटलैः शुभैः।
रुद्रस्याग्रे भोजयेच्च ब्राह्मणान्वै यथाविधि॥
यावन्ति रोमकूपाणि वृषभस्य भवन्ति वै।
गवाञ्चैव तथा लोम यावच्छ्रयति वै मुने।
तावत्कोटिसहस्राणि रुद्रलोके महीयते॥
यत्किञ्चित् कुरुते पापं पुरुषो वृत्तिकर्षितः।
ते सर्व्वे विलयं यान्ति गोपते परिमोचनात्॥
वृषभस्यैव शब्देन पितरः सपितामहाः।
आखण्डलेन दृप्यन्ति स्वर्गलोके न संशयः॥

जले प्रक्षिप्य लाङ्गूलन्तोयञ्चोद्धरते वृषः।
दशवर्षसहस्राणि पितरस्तेन तर्पिताः॥
कूले समुच्छ्रिता यावच्छृङ्गे लिखति मृत्तिकां।
भक्ष्यभोज्यमयैः शैलैः पितरस्तेन तर्पिताः॥
गवां मध्ये यदा चैव वृषभः क्रीड़ते तु यः।
अप्सरसां सहस्रेण क्रीड़न्ते पितरः सदा॥
लाङ्गूलमुत्सृजन् यावत्तोये संक्रीड़ते तु सः।
अप्सरोगणसङ्घैश्च सेव्यन्ते पितरस्तदा॥
सहस्रदत्तमात्रेण तड़ागेन यथाविधि।
तृप्तिस्तु या पितॄणां वै सा वृषेण समोच्यते॥

देवीपुराणात्।

मनुरुवाच।

अश्वमेधसमं पुण्यं वृषोत्सर्गादवाप्यते।
रेवत्यां वाश्विने मासि कृत्तिकां कार्त्तिकस्य वा॥
गोविवाहोऽथ वा कार्य्यो माघ्यां वै फाल्गुनेऽपिवा।
शिवोमामङ्गलं चैव तृतीयायां महाफलं॥
अश्वत्थोदुम्बरीयोगं विवाहविधिना भवेत्।
सतोरणं भवेत्तीर्थे उत्सङ्गे गोकुलेऽपिवा॥
चतस्रो वत्सिका भद्रा द्वौ वा सम्भवतोऽपिवा।
वत्सं सर्व्वाङ्गसंपूर्णं कन्या सा वत्सिका भवेत्।
अलङ्कृत्वा यथाशोभं उत्सर्गं कारयेन्मने।
विवाहमेकवात्सर्य्यं नीलेन च लभते सदा॥

वृषेण अश्वमेधस्य यागस्य लभते फलं ।
जायेरन् बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ॥
यजेत चाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥
रोहितो यस्तु वर्णेन शङ्खवर्णखुरो वृषः ।
सलाङ्गूलं शिरः श्वेतं स वै नीलवृषः स्मृतः ।
अङ्कं वोत्सृज्य वै पूर्व्वं गां वालङ्कृत्य सर्व्वतः ॥
तद्वामे वामतश्चक्रं याम्ये शूलं समालिखेत् ॥
धातुना हेमतारेण आयसेनाथवाङ्कयेत् ।
एवं कृत्वा अवाप्नोति फलं वाजिमखोदितं ॥
यमुद्दिश्योत्सृजेद्वत्सं स लभेताविचारणात् ।
यथा शिवोमयोरर्चा पूजिता सर्व्वकामदा ॥
एवं देवत्रयं यष्टा अनन्तं लभते फलं ।
मङ्गलं विहितं यच्च कृत्वा गोदानजं फलं ।
क्रतोः सहस्रं कृत्वा यत् वृषोत्सर्गादवाप्नुयात् ॥

वाराहपुराणात् ।

मुक्ता तु नीलकण्ठन्तु कौमुद्याः समुपागमे ।
श्राद्धं कृत्वा तु सुश्रोणि तर्पयित्वा द्विजातयः ॥
दत्त्वा तिलोदकं पिण्डं पितृपैतामहेषु च ।
नरा ये चात्र तिष्ठन्ति पतिताः पितृबान्धवाः ॥
तेषान्त्राता भविष्यन्ति नीलोत्सृष्टौ यथाविधि ।
गृहीत्वोडुम्बरं पात्रं कृत्वा कृष्णतिलोदकं ॥
विप्राणां वचनं कृत्वा यथाशक्त्या च दक्षिणां ।
नीलकण्ठस्य लाङ्गूले तोयमभ्युत्सृजेद्यदि ॥

षष्टिवर्षसहस्राणि पितरस्तेन तर्पिताः ॥
मुक्तमात्रेण शृङ्गेण नीलकण्ठेन भेदितं।
उद्धृतं यदि सुश्रोणि पङ्कं शृङ्गगतं भवेत् ॥
बान्धवाः पितरस्तस्य नरके ये वसन्ति च।
उद्धृता नरकात् सर्व्वे सोमलोकं व्रजन्ति ते।
नीलकण्ठस्य मुक्तस्य बहुपुण्येन सुन्दरि ॥
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च।
सोमलोके तु भुञ्जन्ति सर्व्वेऽमृतरसं सदा ॥

कालिकापुराणात्।

अनिलाद उवाच।

नीलोत्पलसमप्रख्यः श्वेताङ्गश्चन्द्रमस्तकः।
सुभ्रूर्युवा लोहिताक्षो वृषभो नील उच्यते ॥
अथवा लोहितं पिङ्गं सुश्वेतं वा विमोचयेत्।
चतुष्पात् सकलो धर्म्मो वृषोऽयं हरवाहनः ॥
तमुद्दिश्य समो कृष्यो विधिना येन मे शृणु।
सोपवासः शुचिः स्नात्वा गवाञ्चैव हरालयं ॥
वितानदीपमुच्छाद्य विन्यसेच्छिवमूर्द्धनि।
गव्येन शुभगन्धेन स्नानं संकारयेच्छिवे ॥
पलैस्तु पञ्चविंशद्भिः सर्पिषा यत्नतो बुधः।
समुद्धृत्य कषायैस्तु क्षाल्य कोष्णेन वारिणा ॥
भूयोऽप्यभ्यङ्ग्य यत्नेन पञ्चगव्येन शङ्करं।
ततः स्नाप्य शिवं भक्त्या कर्पूरागुरुचन्दनैः ॥

पूजयेत् कुसुमैः श्रेष्ठैः समालिप्य च चन्दनैः ।
सौवर्णपङ्कजं कार्य्यं पञ्चविंशद्दलाकुलं ॥
सरत्नञ्च न्यसेन्मूर्द्ध्नि केसराढ्यं सकर्णिकं ।
वस्त्रयुग्मं तथा श्वेतं सूक्ष्मं दद्यात्सुशोभनं ॥
दत्त्वार्घ्यं बोधयेद्दीपं ततः षड्विंशसंख्यया ।
रौप्यताम्रादिपात्रस्थं नीराजनन्तु कारयेत् ॥
ततो भूतबलिं दद्यात्सर्व्वदिक्षु प्रयत्नतः ।
पूजान्ते पूजयेद्विप्रानष्टौ दद्याच्च दक्षिणां ॥
ततो वेदीं वितानञ्च चतुर्हस्तं प्रकल्पयेत् ।
तत्रैवाग्निं समाधाय चरुत्रयं न्यसेद्बुधः ॥
स्थालीपाकञ्च रुद्राय यावकं चरुपायसं ।
तथा चाहुतये दत्त्वा एभीरौद्रवलिन्ततः ॥
हरेः सर्व्वासु काष्टासु मन्त्रेण विधिपूर्व्वकं ।
सार्द्धं वत्सतरीभिश्च ब्रह्मघोषेण वै ततः ॥
अभिषिच्य वृषं तन्तु विधिदृष्टेन कर्म्मणा ।
रक्तपीतसितैः क्षौमैः पुष्पैश्चापि विभूषयेत् ॥
संयुक्तं वस्त्रयुग्माभ्यां हेमवैदूर्य्यसम्भवे ।
घण्टिके कण्ठिकाभ्याञ्च वासयित्वा विभूषयेत् ॥
विकिरेच्च ततो लाजान् जातवेदः प्रदक्षिणं ।
परीताञ्जलिना पुच्छं सहेमेन तु धारयेत् ॥
हराय परमेशाय पुष्पोदकयुतेन च ।
हस्तादुत्क्षिप्य मोक्तव्यो मया दत्तमुदीरयेत् ॥
जङ्घामूर्द्धस्फिचावर्द्धं मोचयित्वा प्रदक्षिणं ।

अङ्कयेत्तु त्रिशूलेन कुङ्कुमेन विपश्चितः ॥
दद्यादर्चयते कुम्भं प्रणम्येशञ्च सोदकं।
कर्षार्द्धहेमविन्यस्तं सम्पूर्णं तिलसंयुतं ॥
तं चास्य वस्त्रयुग्मेन सहाचार्य्याय दापयेत्।
शिवव्रतधरान् विप्रान् संयतांश्च विशेषतः ॥
हिरण्यवस्त्रदानेन व्रतस्थान् भोज्य दक्षयेत्।
दीनान्धदुःखितानाञ्च भोजनञ्चानिवारितं ॥
अरण्ये चत्वरे वापि गोष्ठे वा मोचयेत् वृषं।
न गृहे मोचयेद्विद्वान् पुष्कलं कामनाफलं ॥

विष्णुधर्म्मोत्तरात्।

मार्कण्डेय उवाच।

अश्वयुक् शुक्लपक्षस्य पञ्चदश्यां नराधिप।
कार्त्तिके प्यथवा मासि वृषोत्सर्गन्तु कारयेत् ॥
ग्रहणे द्वे महापुण्ये तथा चैवायनद्वये।
विषुवद्वितये चैव मृताहे बान्धवस्य च ॥
मृताहो यस्य यस्मिन् वा तस्मिन्नहनि कारयेत्।
मातरं स्थापयित्वाग्रं पूजयेत् कुसुमाक्षतैः ॥
मातृश्राद्धं ततः कुर्य्यात् वंशाभ्युदयकारकं।
अकालमूलं कलसं अश्वत्थदलसेवितं ॥
तत्र रुद्रान् समावाह्य जपयेद्रुद्रदेवताः।
सुसमिद्धं गवां मध्ये सुविस्तीर्य्य हुताशनं।
पयसा श्रपयेद्विद्वान् चरुं पौष्णं समाहितः ॥

तथैव पौरुषं सूक्तं कूष्माण्डानि तथैव च।
ततोऽङ्कयीत वृषभमयस्कारः सुशिल्पवान्॥
शूलेन दक्षिणे पार्श्वे वामे चक्रेण निर्द्दिशेत्।
अङ्कितं स्नपयेत्पश्चात् स्नाने तस्य यथा पठेत्॥
हिरण्यवर्णेति ऋचश्चतस्रो मनुजेश्वर।
आपोहिष्ठेति तिस्रश्च शन्नोदेवीति वाप्युत॥
वत्सतर्य्यश्चतस्रस्तु तं वृषञ्च नराधिप।
अलङ्कुर्य्यात्ततः पश्चाद्गन्धमाल्यैश्च शक्तितः॥
किङ्किणीभिश्च रम्याभिस्तथा चीनांशुकैः शुभैः।
ततोऽङ्किते जपेन्मन्त्रमिमं प्रयतमानसः॥
वृषो हि भगवान् धर्म्मश्चतुष्पादः प्रकीर्त्तितः।
वृणोमि तमहं भक्त्या स मां रक्षतु सर्व्वतः॥

एतं युवानं वृषभं ददामि
गवां पतिं यूथपतिं महार्घं।
अनेन सार्द्धञ्चरत प्रकामं
कामं तथा प्राप्नुत वत्सतर्य्यः॥
एतं युवामं पतिं वो ददामि
तेन क्रीड़न्त्यश्चरत प्रियेण।
सहस्महि प्रजया मातनूभि
स्तन्मारिषाम द्विषते सोमराजं(१)।
मन्त्रं पितावत्स इति प्रतीतं
जपेत कर्णे वृषभस्य सव्ये।

१ श्लोकार्द्धमिदं न समीचीनं।

प्रचालयेत्तं वृषभं ततस्तु
पूर्व्वां दिशं वत्सतरीस्तु सर्व्वाः॥
वासोयुगं होतुरथ प्रदेयं
सुवर्णयुक्तं सघृतञ्च कांस्यं।
शिल्पिप्रधानस्य तथैव मूल्यं
देयं तथा पुष्टिमुपैति राजन्॥
विप्रास्तथान्नं दधिसर्पिषा युतं
सम्भोजनीयाः पयसा च मिश्रं।
उत्सृष्टमात्रे वृषभे व्रजन्ति
तृप्तिं परान्तस्य पितामहा ये॥
यस्मिंस्तड़ागे स जलं तृषार्त्तः
पातुं समागच्छति तत् पितृणां।
दिव्यान्तु पूर्णां सकलां महीपते
लोके परे तृप्तिमसौ विधत्ते॥
सरिद्वरां काञ्चिद्यथोपयाति
तृष्णान्वितस्तस्य पितामहानां॥
तृप्तिं विधत्ते सरिताम्बरिष्ठा
सुदीर्घं कालं विविधाम्बुवाहा॥
दर्पेण पूर्णः स विषाणघातै-
र्धरां यदा दारयते नरेन्द्र।
पित्रादयस्तस्य तदन्न कूटां
ध्रुवं लभन्तीति न संशयोऽत्र॥
रोम्नाञ्च तुल्यानि शतानि राजन्

मोक्ता तथा तस्य दिवं प्रयाति ।
संवत्सराणां परिपूर्णकामः
संसेव्यमानस्त्रिदशाङ्गनाभिः ।

इति वृषोत्सर्गविधिः ।

———000———

शतानीक उवाच ।

भगवन् केन विधिना श्रोतव्यं भारतं नरैः ।
चरितं रामभद्रस्य पुराणानि विशेषतः ॥
कथञ्च वैष्णवा धर्म्माः शिवधर्म्मा अशेषतः ।
सौराणां वापि विप्रेन्द्र श्रवणे उच्यतां विधिः ॥

सुमन्तुरुवाच ।

हन्त ते कथयिष्यामि पुराणश्रवणे विधिं ।
इतिहासपुराणानि श्रुत्वा भक्त्या विशाम्पते ।
मुच्यते सर्व्वपापेभ्यो ब्रह्महत्यादिभिर्विभो ॥
सायं प्रातस्तथा रात्रौ शुचिर्भूत्वा शृणोति यः ।
तस्य विष्णुस्तथा ब्रह्मा तुष्यते शङ्करस्तथा ॥
प्रत्यूषे भगवान् ब्रह्मा दिनान्ते तुष्यते हरिः ।
महादेवस्तथा रात्रौ शृण्वतां तुष्टिमाप्नुयात् ।
पुराणानि दशाष्टौ च तदेकं शृण्वतां विभो ।
भारतं राजशार्दूल शृणु तेषाञ्च यत् फलं ।
विधानं वाचकस्येदं शृणु तावद्विशाम्पते ॥
शुक्लवासा गृहादेव स्नानं यत् समयान्वितं ।

प्रदक्षिणं ततः कृत्वा या तस्मिन् देवतैव हि ॥
तां विधानेन सर्व्वेषां अशेषगुरुवन्नृप ।
नमस्कृत्य यथा आद्यं शिवमस्त्विति चान्ततः ।
नान्यतो नृपशार्दूल सर्व्ववर्णैर्महीपते ॥
शूद्राणां पुरतो वैश्या वैश्यानां क्षत्रियास्तथा ।
क्षत्रियाणां तथा विप्राः शृण्वन्त्येतेऽग्रतः सदा ।
मध्यस्थितोऽथ सर्व्वेषां वाचको वाचयेन्नृप ।
ये च सङ्करजा राजन् दूरात्तच्छूद्रपृष्ठतः ॥
ब्राह्मणं वाचकं विद्यान्नान्यवर्णजमादरात् ।
श्रुत्वान्यवर्णजाद्राजन् वाचकान्नरकं व्रजेत् ॥
इत्थं हि शृण्वतां तेषां वर्णानामनुपूर्व्वशः ।
मासि मासि भवेद्राजन् पारणं कुरुनन्दन ॥
श्रेयोर्थमात्मनो राजन् पूजयेद्वाचकं नृप ।
मासि पूर्णे नृपश्रेष्ठ दातव्यः स्वर्णमाषकः ॥
ब्राह्मणेन महाबाहो द्वौ देयौ क्षत्रियेण तु ।
वाचकस्य नृपश्रेष्ठ वैश्येनापि त्रयस्तथा ॥
शूद्रेणाप्यत्र चत्वारो दातव्याः स्वर्णमाषकाः ।
मासि मासि नृपश्रेष्ठ श्रद्धया वाचकस्य तु ॥
प्रथमे पारणे राजन् वाचकं पूज्य शक्तितः ।
अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥
कार्त्तिकादि महाबाहो कार्त्तिकं यावदेव तु ।
अग्निष्टोमं गोसवञ्च ज्योतिष्टोमं तथैव च ॥
मैत्रावरुणं वाजपेयं वैष्णवञ्च तथा विभुं ।

माहेश्वरं तथा ब्राह्मं पुण्डरीकञ्च भूपते ॥
आदित्ययज्ञस्य यथा राजसूयाश्वमेधयोः ।
फलं प्राप्नोति राजेन्द्र मासैर्द्वादशभिः क्रमात् ॥
इत्थं यज्ञफलं प्राप्य याति लोकानथोत्तमान् ॥
समाप्ते पर्व्वणि तथा स्वशक्त्या तर्पयन् नृप ।
वाचकं ब्राह्मणञ्चैव सर्व्वकामैः प्रपूजयेत् ॥
गन्धमाल्यानि दिव्यानि वस्त्राण्याभरणानि च ।
वाचकाय प्रदद्यात्तु ततो विप्रान् प्रपूजयेत् ॥
हिरण्यं रजतं वस्त्रं गावः कांस्योपदोहनीः ।
दत्वा तु वाचकायेह श्रुतस्य प्राप्नुते फलं ॥
वाचकः पूजितो येन प्रसन्नास्तस्य देवताः ।
तस्माद्धनं सदा पूर्व्वं देयन्तस्य विदुर्बुधाः ॥
श्राद्धे तस्य द्विजो भुङ्क्ते वाचकः श्रद्धयान्वितः ।
भवन्ति पितरस्तस्य तृप्ता वर्षशतं नृप ॥
ब्राह्मणादिषु वर्णेषु ग्रन्थार्थं वाचयेन्नृप ।
य एवं वाचयेद्राजन् स विप्रो व्यास उच्यते ॥
अतोऽन्यथा वाचयानो ज्ञेयोऽसौ पितृनामतः ।
इत्थम्भूतो वसेद्यस्मिन् वाचको व्याससंमितः ॥
देशेषु पत्तने राजन् स देशः प्रवरः स्मृतः ।
प्रणम्य वाचके भक्त्या यत् फलं प्राप्यते नरैः ॥
न तत्क्रतुसहस्रेण प्राप्यते कुरुनन्दन ॥
यथैकतो ग्रहाः सर्व्वे एकतस्तु दिवाकरः ।
तथैकतो द्विजाः सर्व्वे एकतस्तु स वाचकः ॥

दैवे कर्म्मणि पित्र्ये च पावनं परमं नृप।
वाचकश्च यतिश्चैव तथा चैव षड़ङ्गवित्॥
एते सर्व्वे नृपश्रेष्ठ विज्ञेयाः पङ्क्तिपावनाः।
त्रिविधं वाचकं विद्यात्सदारगुणभेदतः॥
श्रावकश्च महाबाहो त्रिविधो गुणभेदतः।
द्वावेतौ कथ्यमानौ त्वं निबोध गदतो मम॥
अतिद्रुतं तथाऽस्पष्टं स्वरसर्व्वविवर्ज्जितं।
पदच्छेदविहीनञ्च तत्तद्भावविवर्ज्जितं॥
अबुध्यमानो ग्रन्थार्थं लोलश्चोत्साहवर्ज्जितः।
ईदृशं वाचयेद्यस्तु स विप्रश्च नरेश्वर॥
क्रोधनोऽप्रियवादी च अज्ञातो ग्रन्थदूषकः।
न च वृद्याति कष्टानि स ज्ञेयो वाचकोऽधमः॥
विस्पष्टमद्रुतं शान्तं स्पष्टाक्षरपदं तथा।
तारस्वरसमायुक्तं रसभावविवर्जितं॥
अबुध्यमानो ग्रन्थार्थं वाचयेद्यस्तु वाचकः।
स ज्ञेयो राक्षसो राजन् इदानीं सात्विकं शृणु॥
ग्रन्थार्थं बुध्यमानस्तु समग्रं कृत्स्नशो नृप।
ब्राह्मणादिषु वर्णेषु अर्चयेद्विधिवन्नृप॥
य एवं वाचयेद्राजन् स ज्ञेयः सात्विको बुधैः।
श्रद्धाभक्तिविहीनोऽसौ लोभी च दूषकस्तथा॥
हेतुवादपरो राजन् तथासूयासमन्वितः।
नित्यां नैमित्तिकीं काम्यामददद्दक्षिणां नृप॥
वाचकाय महाबाहो शृणुयाद्यस्तु मानवः।

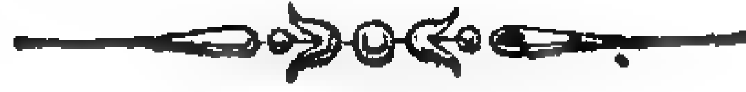
स ज्ञेयस्तामसो राजन् तामसो मानवः सदा ।
न तस्य पुरतो वीर वाचयेत् प्राज्ञ एव हि ॥
प्रसङ्गात् शृणुयाद्यस्तु श्रद्धाभक्तिविवर्जितः ।
श्रोता कौतुकमात्रस्तु स ज्ञेयो राजसो बुधैः ॥
सन्त्यज्य सर्व्वकर्माणि भक्तिश्रद्धासमन्वितः ।
सततं पूजयानस्तु वाचकं श्रद्धया नृप ॥
नित्ये नैमित्तिके काम्ये गुरवे च ददत्तथा ।
य एवं वाचको वीर स ज्ञेयः सात्विको बुधैः ॥
व्यासः पूज्यः श्रावकाणां यथा व्यासवचो नृप ।
तस्मात् पूज्यो नृपश्रेष्ठ प्रथमं वाचको बुधैः ॥
आपत्काले च वृद्धौ च तथाऽसौ गुरुवत् स्मृतः ॥
वैशाखसमये वीर तृतीयायान्तु सुव्रत ।
कार्त्तिक्यामथ माघ्याञ्च संपूज्यः प्रथमो भवेत् ॥
पर्व्वस्वेतेषु च विभो संपूज्य धर्मतः स्मृतः ॥
हिरण्यञ्च सुवर्णञ्च धनं धान्यं तथैव च ।
अन्नञ्चापि तथा पक्वं मांसञ्च कुरुनन्दन ।
दातव्यं प्रथमं तस्मै श्रावकैरतिभक्तितः ॥
दत्त्वा पुष्पं फलं तोयं पत्रमिन्धनमेव च ।
सारस्वतञ्च यत्रान्यत्तस्मै देयं समन्ततः ॥
अथ सर्व्वैस्तथा कार्य्यं श्रावकैः पूजनं नृप ।
वाचकस्तु यथा नित्यं सुखमास्ते नराधिप ॥
न पीड्यते यथा द्वन्द्वैस्तथा कार्य्यं नराधिप ।
हेमन्ते लोमशं देयं छत्रं प्रावृषि चोत्तमं ॥

उपानहौ कालयोगे कालौ वै कृष्णलोमशौ ॥
यदा दातुं न शक्नोति माषकं काञ्चनस्य तु।
ततस्तस्य तदा दद्यात् माषकं श्रेयसेऽनघ ॥
तदभावे हिरण्यन्तु वित्तशाठ्यं विवर्जयेत्।
मृत्तिकापि हि दातव्या कुर्व्वता सफलं श्रुतं ॥
इत्येषा कथिता नित्या मासि मासि भवेत्ततः।
नैमित्तिकी भवेद्राजन् ग्रहणादिषु पर्व्वसु ॥
अमले वाससी राजन् गन्धमाल्यविभूषणे।
समाप्ते पर्व्वणि विभो दातव्ये भूतिमिच्छता ॥
ज्ञात्वा पर्व्वसमाप्तिन्तु वाचकं पूजयेद् बुधः।
आत्मानमपिविक्रीय य इच्छेत् सफलं श्रुतं।
नैमित्तिकीञ्च नित्याञ्च दक्षिणां न ददाति यः॥
शृणोति च सदा तात तस्य तत् निष्फलं फलं।
चतुर्गुणा भवेद्राजन् या नित्यं दक्षिणा विभो ॥
ऐच्छकं भोगमाप्नोति इत्याह भगवान् शिवः।
इत्येष कथितो राजन् पुराणश्रवणे विधिः ॥

इति श्रीमहाराजाधिराज-श्रीमहादेवस्य समस्तकरणा-
धीश्वर-सकलविद्याविशारद-श्रीहेमाद्रिविरचिते
चतुर्व्वर्गचिन्तामणौ व्रतखण्डे
प्रकीर्णकव्रतानि।

---

# अथ शान्तिकपौष्टिकानि ।



नीतः शान्तिमनः स्वदानसलिलस्रावैः सहस्रै रसौ
येनात्यर्थकदर्थितार्थिनिवहो दारिद्रदावानलः ।
लोकं यः सततं कृपालुहृदयः पुष्णाति तृष्णातुरं
सोऽयं शान्तिकपौष्टिकानि मदितुं हेमाद्रिरभ्योद्यतः ॥

तत्र विनायकस्नपनमुच्यते ।

आह याज्ञवल्क्यः ।

विनायकः कर्मविघ्नसिद्ध्यर्थं विनियोजितः ।
गणानामाधिपत्ये च रुद्रेण ब्रह्मणा तथा ॥
तेनोपसृष्टो यस्तस्य लक्षणानि निबोधत ।
स्वप्नेऽवगाहतेऽत्यर्थं जलं मुण्डांश्च पश्यति ॥

अत्यर्थमिति स्रोतसि ह्रियते निमज्जति वा अवगाहमानस्य च बलवत्वात् ।

काषायवाससश्चैव क्रव्यादश्चाधिरोहति ॥

क्रव्यादः, गृध्रव्याघ्रादीन् ।

अन्त्यजैर्गर्दभैरुष्ट्रैः सहैकत्रावतिष्ठति ।
व्रजमानं तथात्मानं मन्यतेऽनुगतं परैः ॥

परैः शत्रुभिः, पृष्ठतो धावद्भिरभिभूयमानं मन्यते ।

विमनानि फलारम्भाः संसत्येति निमित्ततः ।
तेनोपसृष्टो लभते न राज्यं राजनन्दनः ॥

कुमारी न च भर्त्तारमपत्यञ्च गर्भसङ्गता ।
आचार्य्यत्वं श्रोत्रियश्च न शिष्योऽध्ययनं तथा ॥
वणिक् लाभं न वाप्नोति कृषिश्चैव कृषीवलः ।
स्नपनं तस्य कर्त्तव्यं पुण्येऽह्नि विधिपूर्व्वकं ॥

पुण्येऽह्नि, अनुकूलनचत्रादियुतेऽह्नि न रात्रौ ।

गौरसर्षपकल्केन साज्येनोत्सादितस्य तु ।

'उत्सादनमुद्वर्त्तनं' ।

सर्व्वौषधैः सर्व्वगन्धैर्विलिप्तशिरसस्तथा ।
भद्रासनोपविष्टस्य स्वस्तिवाच्याः द्विजाः शुभाः ॥

शुभा अनूचानाः । चत्वारो द्विजाः स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्त्विति वाच्याः । अस्मिन् समये गृह्योक्तविधिना पुण्याहवाचनं कुर्य्यादित्यर्थः ।

अश्वस्थानाद्गजस्थानाद्वल्मीकात् सङ्गमात् ह्रदात् ।
मृत्तिकां रोचनां गन्धान् गुग्गुलञ्चाप्सु निक्षिपेत् ॥
या आहृता ह्येकवर्णैश्चतुर्भिः कलशैर्ह्रदात् ।
चर्म्मण्यानडुहे रक्ते स्थाप्य भद्रासनं तथा ॥

तत उक्तोदकमृत्तिकां गन्धादिसहितांश्चूतादिपल्लवोपशोभितान् तान्स्रग्दामवेष्टितकण्ठान् चन्दनेन चर्च्चितान् नवाहृतवस्त्रभूषितांश्चतुरः कलशांश्च तिसृषु पूर्व्वादिषु दिक्षु स्थापयित्वा शुचौ सुलिप्ते स्थण्डिले रचितपञ्चवर्णस्वस्तिके लोहितमानडुहं चर्मोत्तरलोमप्राचीनग्रीवमास्तीर्य्य तस्योपरि श्वेतवस्त्रप्रच्छादितमासनं स्थाप्य तत्रोपविष्टस्य स्वस्तिवाचनानन्तरं जीवत्पतिपुत्राभिः रूपगुणशालिनीभिः कृतमङ्गलस्य गुरुरभिषेकं कुर्य्यात् ।

सहस्राक्षं शतधारमृषिभिः पावनं कृतं ।
तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमानाः पुनन्तु ते ॥
भगन्ते वरुणो राजा भगं सूर्य्यो बृहस्पतिः ।
भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो विदुः ॥
यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्द्धनि ।
ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तत् घ्नन्तु ते सदा ॥

कलशत्रये मन्त्रत्रयमुक्तं, चतुर्थं तु सर्व्वमन्त्रैरभिषेकः ।

स्नातस्य सार्षपन्तैलं स्रुवेणौदुम्बरेण तु ॥
जुहुयान्मूर्द्धनि कुशान् सव्येन परिगृह्य च ।

सव्यपाणिगृहीतकुशानन्तर्द्धारं जुहुयात् ॥

मितश्च संमितश्चैव तथा शालकटं कटौ ।
कूष्माण्डो राजपुत्रश्चेत्यश्ववाहसमन्वितैः ।
नामभिर्बलिमन्त्रैश्च नमस्कारसमन्वितैः ॥

प्रणवादिभिरितिशेषः ।

अनन्तरं लौकिकेऽग्नौ स्थालीपाकविधिना चरुं श्रपयित्वा तैरेवषड्भिर्मन्त्रैस्तस्मिन्नेवाग्नौ हुत्वा तच्छेषञ्च बलिमन्त्रैरिन्द्राग्नि-यम-निर्ऋति-वरुण-वायु-सोमेशानब्रह्मानन्तानां नामभिश्चतुर्थ्यन्तैर्नमोन्तैस्तेभ्यो बलिन्दद्यात् ।

दद्याच्चतुष्पथे सूर्पं कुशानास्तीर्य्य यत्नतः ।
कृताकृतांस्तण्डुलांश्च पललौदनमेव च ॥

कृताकृताः सकृदवहताः तण्डुलाः पललं तिलपिष्टन्तन्मिश्रमोदनं पललौदनं ।

मत्स्यान् पक्कांस्तथैवामान् मांसमेतावदेव तु।
चित्रं पुष्पं सुगन्धञ्च सुराञ्च विविधामपि॥
मूलकं पूरिकां पूपांस्तथैवोण्डरकस्रजः।
दध्यन्नं पायसञ्चैव गुड़पिष्टं समोदकं।

उण्डरका पिष्टादिमय्यः ताः प्रोताः स्रजः, गुड़पिष्टं गुड़मिश्रं शाल्यादिपिष्टं।

एतान् सर्व्वानुपाहृत्य भूमौ कृत्वा ततः शिरः।

एतान्याहृत्य

ओं तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि
तन्नो दन्ती प्रचोदयात्। इति विघ्नेशं।

सुभगायै विद्महे काममालिन्यै धीमहि तन्नो गौरी प्रचोदयादिति अम्बिकां नमस्कुर्य्यात्।

एवं विनायकं तज्जनन्यै संपूज्योपहारशेषमास्तीर्य्य कुशे सूर्पं निधाय चतुष्पथे निदध्यात्।

बलिं गृह्णन्त्विमं देवा आदित्या वसवस्तथा।
मरुतोऽथाश्विनौ रुद्राः सुपर्णाः पन्नगा ग्रहाः॥
असुरा यातुधानाश्च पिशाचा मातरो नगाः।
शाकिन्यो यक्षवेतालयोगिन्यः पूतना शिवाः॥
जम्भकाः सिद्धगन्धर्व्वा मालाविद्याधरानघाः।
दिक्पाला लोकपालाश्च ये च विघ्नविनायकाः॥
जगतां शान्तिकर्त्तारो ब्रह्माद्याश्च महर्षयः।
भूचराः खेचराश्चैव ये चान्ये चोपदेशिकाः॥

मा विघ्नो मा च मे पापं मा सन्तु परिपन्थिनः ।
सौम्या भवन्ति तृप्ताश्च भूतप्रेताः सुखावहाः ॥

इत्येते चतुष्पथे बलिहरणमन्त्राः ॥

विनायकस्य जननीमुपतिष्ठेत्ततोऽम्बिकां ।
दूर्व्वासर्षपपुष्पाणां दत्वार्घ्यं पूर्णमञ्जलिं ॥

स कुसुमेनोदकेनार्घ्यं दत्वा दूर्व्वासर्षपपुष्पाणां पूर्णमञ्जलिञ्च दत्वोपतिष्ठेत वक्ष्यमाणमन्त्रेण ।

रूपं देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे ।
पुत्रान् देहि धनं देहि सर्व्वान् कामांश्च देहि मे ॥

विनायकोपस्थाने भगवन्नित्यूहः ।

ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः ।
ब्राह्मणान् भोजयेद्दद्याद्वस्त्रयुग्मं गुरोरपि ॥

गुरोर्द्दक्षिणादानमप्यपिशब्दात् । विनायकोद्देशेन ब्राह्मणेभ्यश्च ।

एवं विनायकं पूज्य ग्रहांश्चैव विधानतः ।
कर्म्मणां फलमाप्नोति श्रियं प्राप्नोत्यनुत्तमां ॥
आदित्यस्य सदा पूजां तिलकं स्वामिनस्तथा ।
महाभोगपतश्चैव कुर्व्वन् सिद्धिमवाप्नुयात् ॥

विनायकोपसृष्टाधिकारे ।

भविष्यत्पुराणे ।

करणे मूढमात्मानमनीलान्तरगस्तथा ।
पितृभिश्चावृतो याति श्मशाननिकटं नृप ॥

करणे विधेये कार्य्ये अनीलान्तरगः भूम्यादावसंलग्नः सन्नन्तरीक्षे गच्छतीत्यर्थः ।

पश्यते नृपशार्दूल स्वप्नान्ते नात्र संशयः।
तैलार्द्रगात्रविधुरं करवीरविभूषितं॥

स्वप्नान्ते स्वप्नमध्ये। तथा

स्नपनं तस्य कर्त्तव्यं पुण्येऽह्नि विधिपूर्व्वकं।
गौरसर्षपकल्केन सक्तुनोत्सादितो नरः॥
शुक्लपक्षे चतुर्थ्याञ्च वारेण धिषणस्य च।
तिथौ वीरजनक्षत्रे तस्यैव पुरतो नृप॥

उत्सादित उद्वर्त्तितः। धिषणो वृहस्पतिः।

सर्व्वौषधैः सर्व्वगन्धैर्विलिप्तशिरसस्तथा।
भद्रासनोपविष्टस्य स्वस्तिवाच्या द्विजाः शुभाः॥
व्योमकेशन्तु संपूज्य पार्व्वतीं भीमजन्तथा।
कृष्णस्य पितरं वाथ अकर्म्मारम्भिनं तथा॥
धिषणं क्लिदपुत्रञ्च कोणलक्ष्मीञ्च भारत।
विप्रस्तकं वाहुलेयं नवकस्य च धारिणं।

अश्वस्थानगजस्थान इत्यादिको ग्रन्थो याज्ञवल्क्यसमानः।

अम्बिकोपस्थानमन्त्रस्तु।

रूपं देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे।
पुत्रान् देहि धनं देहि सर्व्वकामांश्च देहि मे॥
अचलां कुरु मे देवि विपुलां ख्यातिसम्भवां।

ख्यातिसम्भवा लक्ष्मी।

इति विनायकस्नपनं।

---

पुष्कर उवाच।

स्नानमन्यत् प्रवक्ष्यामि तवाहं दुरितापहं।
राजन् माहेश्वरं पुण्यं सततं विजयावहं ॥
दानवेन्द्राय तु वने यज्जगाद मनुः पुरा।
धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्व्वशत्रुक्षयङ्करं ॥
प्रभातायाञ्च शर्व्वर्य्यां भास्करेऽभ्युदिते तथा।
स्नायीत दानवश्रेष्ठ विधिदृष्टेन कर्म्मणा ॥
सौवर्णं राजतं कुम्भं अथवापि महीमयं।
नादेयैः सारसैस्तोयैः कल्पयित्वा यथाविधि ॥
औषधीर्विन्यसेत्तत्र समाभ्यङ्गाः सुचूर्णिताः।
जया च विजया चैव तथा सूक्ष्मफलेति च ॥
धूपनं मुखवीजा च भण्डी च कुसुमानि च।
क्षीरजं पत्रनिर्म्माल्यं देवीनिःसारमेव च ॥
फलिनी वराङ्गना चैव गजेन्द्रस्य च मञ्जरी।
क्षुद्रजाङ्कुरजाश्चैव घने द्वे द्वे विभावरी ॥
महौषं मृत्तिके चैव तुम्बं यज्ञभुवं तथा।
शशाङ्कमृगदर्प्यञ्च दानञ्च करिणस्तथा।
औषध्यः कथितास्तुभ्यं स्नानमन्त्रमतः शृणु ॥

ओं नमो भगवते रुद्राय धवलपाण्डुरोपचितभस्मानुलिप्त-गात्राय।

तद्यथा।

जय जय विजय सर्व्वाच्छन्नममुष्य कलहविग्रहविवादेषु। जम्भ जम्भ मथ मथ सर्व्वप्रत्यर्थिकां।

योऽसौ युगान्तकाले तु दिधक्षति इमां पुनः।
रौद्रीं मूर्त्तिं सहस्राक्षः स त्वां रक्षतु जीवितं॥
संवर्त्तकाग्नितुल्यश्च त्रिपुरान्तकरः शरः।
सर्व्वदेवमयः सोऽपि स त्वां रक्षतु जीवितं॥

निखिलमित्यनि स्वाहा।

एवं स्नानन्तु तेनैव मन्त्रेण तिलतण्डुलं।
घृताक्तं ज्वलते वह्नौ जुहुयात् प्रयतः शुचिः॥
ततः संपूजनं कुर्य्याद्देवदेवस्य शूलिनः।
घृतक्षीराभिषेकेण गन्धपुष्पफलाक्षतैः॥
दीपधूपनमस्कारैस्तथा चान्नेन भूरिणा।
गीतवाद्यैस्तु मधुरैर्ब्राह्मणस्वस्तिवाचनैः॥
माहेश्वरस्नानमिदं हि कृत्वा
रक्षोहणं शत्रुनिवर्हणञ्च।
सर्व्वानवाप्नोति नरस्तु कामान्
यान्नाम कांश्चिन्मनसि स्थितांश्च॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं माहेश्वरस्नानं।

———000@000———

पुष्कर उवाच।

स्नानान्यन्यानि ते वक्ष्मि निवोध गदतो मम।
रक्षोघ्नानि यशस्यानि मङ्गल्यानि विशेषतः॥
स्नानं घृतेन कथितमायुषोवर्द्धनं परं।
राम गोमकृता स्नानं परं लक्ष्मीविवर्द्धनं॥

गोमूत्रेण तथा स्नानं सर्व्वपापनिवर्हणं ।
पञ्चगव्यजलस्नानं सर्व्वव्याधिनिषूदनं ॥
स्नानं क्षीरेण कथितं बलबुद्धिविवर्द्धनं ।
स्नानञ्च कथितं दध्ना परं लक्ष्मीविवर्द्धनं ॥
तथा दर्भोदकस्नानं सर्व्वपापनिवर्हणं ।
पञ्चगव्यजलस्नानं सर्व्वकार्य्यार्थसाधनं ॥
गवां शृङ्गोदकस्नानं सर्व्वपापनिवर्हणं ।
पलाशबिल्वकमलपुष्पस्नानं पुरोहितं ॥
वचा हरिद्रा मञ्जिष्ठा तगरं वाचके तथा ।
स्नानमेतद्विनिर्द्दिष्टं रक्षोघ्नं पापसूदनं ॥
वचा हरिद्रे द्वे मुस्ते स्नानं रक्षोहणं परं ।
आयुष्यञ्च यथा शस्यं धन्यं मेधाविवर्द्धनं ॥
स्नानं पवित्रं माङ्गल्यं तथा काञ्चनवारिणा ।
क्रमादूनतरे किञ्चिद्रूप्यताम्रोदकैस्ततः ॥
तथा रत्नोदकैः स्नानं संग्रामे विजयान् कुरु ।
वैकुण्ठमध्यतः कृत्वा प्रवालैः परिचारयेत् ॥
तेन पात्रेण यत् स्नानं सर्व्वकामप्रदं भवेत् ।
तथा पुष्पोदकस्नानं भवेदारोग्यकारकं ॥
तथा बीजोदकस्नानं सर्व्वबीजप्रसादकं ।
तथैवामलकस्नानं अलक्ष्मीनाशनं परं ॥
तिलसिद्धार्थकैः स्नानममाङ्गल्यप्रनाशनं ।
केवलैर्व्वा तिलैः स्नानं अथवा गौरसर्षपैः ।
स्नानं प्रियङ्गुना प्रोक्तं तथा सौभाग्यवर्द्धनं ॥

वन्ध्याकर्कोटकीमूलं कुमारी पद्मचारिणी।
स्नानं रोगविनाशाय स्मृतं प्रत्येकशो द्विज॥
मांसी मुरा चोरकनागपुष्पैः
सनामदानैररिनाशकैश्च।
कुरुष्व कङ्कोलकजातिपूगैः
समस्तसौख्यञ्च सुतप्रदं स्यात्॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तनानास्नानविधिः।

———ooo———

युधिष्ठिर उवाच।

रुद्रस्नानं विधानेन कथयस्व जनार्द्दन।
सर्व्वदुष्टोपशमनं सर्व्वशान्तिप्रदं नृणां॥

कृष्ण उवाच।

देवसेनापतिस्कन्दं रुद्रपुत्रं षड़ाननं।
अगस्त्यो मुनिशार्दूलः सुखासीनमुवाच ह॥
सर्व्वज्ञोऽसि कुमार त्वं प्रसादाच्छङ्करस्य वै।
स्नानं रुद्रविधानेन ब्रूहि कस्य कथं भवेत्॥

स्कन्द उवाच।

मृतवत्सा तु या नारी दुर्भगा ऋतुवर्ज्जिता।
या सूते कन्यकां वन्ध्यां स्नानमासां विधीयते॥
अष्टम्यां वा चतुर्द्दश्यां उपवासपरायणा।
ऋतौ शुद्धे चतुर्थेऽह्नि प्राप्ते सूर्य्यदिनेऽथ वा॥

नद्योस्तु सङ्गमे कुर्य्यान्महानद्यो विशेषतः।
शिवालयेऽथवा गोष्ठे विविक्ते वा गृहाङ्गणे॥
आहिताग्निं द्विजं शान्तं धर्म्मज्ञं सत्यशालिनं।
स्नानार्थं प्रार्थयेद्देवं निपुणं रौद्रकर्म्मणि॥
ततस्तु मण्डपं कुर्य्याच्चतुरस्रमुदक्प्लवं।
वहुचन्दनमाल्यञ्च गोमयेनानुलेपितं॥
तन्मध्ये श्वेतरजसा संपूर्णं पद्ममालिखेत्।
मध्ये तस्य महादेवं स्थापयेत् कर्णिकोपरि॥
दद्याद्दलेषु नन्द्यादीन् चतुर्षु विधिपूर्व्वकं।
इन्द्रादिलोकपालांश्च दलेष्वन्येषु विन्यसेत्॥
देवीं विनायकञ्चैव स्थापयेत्तत्र पार्थिव।
दत्वार्घं गन्धपुष्पञ्च धूपं दीपं गुड़ोदनं॥
भक्ष्यान्नानाविधान् दद्यात् फलानि विविधानि च।
चतुःष्कोणेषु भृङ्गारानश्वत्थदलभूषितं॥
एकैकं विन्यसेद्ब्रह्मन् सर्व्वौषधिसमन्वितं।
चतुर्द्दिक्षु मण्डपस्य दद्याद्भूतबलिं ततः॥
आग्नेय्यां दिशि कर्त्तव्यं मण्डलस्य समीपतः।
अग्निकार्य्यं शुभे कुण्डे पत्रपुष्पैरलङ्कृते॥
लवणं सर्पिषा युक्तं घृतेन मधुना सह।
मासं श्लोकेन जुहुयात् कृतहोमे नवग्रहे॥
द्वितीयस्याग्निकार्य्यस्य कर्त्ता च ब्राह्मणो भवेत्॥
रुद्रजाप्यकृदाचार्य्यं सितचन्दनचर्च्चितं।
सितवस्त्रपरीधानं सितमाल्यविभूषितं॥

शोभयेत् कङ्कणैः कण्ठैः कर्णवेष्टाङ्गुलीयकैः।
मण्डपस्य समीपस्थो जपेद्रुद्रान् विमत्सरः॥
यावदेकादश गताः पुनरेव जपेच्च तान्।
देवमण्डलवत् कार्य्यं द्वितीयं मण्डलं शुभं॥
तस्य मध्ये तु या नारी श्वेतपुष्पैरलङ्कृता।
श्वेतवस्त्रपरीधाना श्वेतगन्धानुलेपना॥
सुखासनोपविष्टा या आचार्यो रुद्रजापकः।
अभिषिञ्चेत्ततश्चैनामर्कपत्रपुटाम्बुना॥

चतुःषष्टिसंख्यानामेकादशकृत्यः।

पवित्रामिन्द्रकीटाजम्बूगोदावरीमृदं।
सर्व्वौषधी रोचनाञ्च नदीतीर्थोदकानि च॥
एतत् संक्षिप्य कलशे शिवसंज्ञसुपूजिते।
आपादतलकेशान्तं कुक्षिदेशे विशेषतः॥
सर्व्वाङ्गं लेपयेद्भक्त्या सुशीला काचिदङ्गना।
रुद्राभिजप्तेन ततः स्नापयेत् ललनाञ्च तां॥
तोयपूर्णाष्टकलशैरश्वत्थदलपूरितैः।
सर्व्वतोदिक्स्थितैः पश्चात् स्थापयेत् कलशाच्चतैः॥
एवं स्नाता स्नापकाय दद्याद् गां काञ्चनं तथा।
होतुरेवात्र निर्दिष्टा दक्षिणा गौः पयस्विनी॥
ब्राह्मणानामथान्येषां स्वशक्त्या मुनिपुङ्गव।
गोवस्त्रकाञ्चनादीनि दत्वा सर्व्वान् क्षमापयेत्॥
कृतेनानेन विप्रेन्द्र रुद्रस्नानेन भामिनि।
सुभगा कान्तिसंयुक्ता बहुपुत्रा प्रजायते॥

सर्व्वेष्वपि हि मासेषु ब्राह्मणानुमते शुभं ।
तस्मादवश्यं कर्त्तव्यं पुत्रान् स्त्री सुखमृच्छति ॥
या स्नानमाचरति रुद्रमिति प्रसिद्धं
श्रद्धान्विता द्विजवरानुमता नताङ्गी ।
दोषान् निहत्य सकलांश्च शरीरभाजो
भर्त्तुः प्रिया भवति भारत जीववत्सा ॥

इति भविष्योत्तरोक्तं रुद्रस्नानं ।

———ooOoo———

ईश्वर उवाच ।

शृणु षण्मुख तत्त्वेन स्नानं घटिकया परं ।
धारयिष्यन्ति ये वत्स घटिकां देवनिर्म्मितां ॥
तेषामर्थश्च कामश्च सौभाग्यं वृद्धिमेष्यति ।
पूर्व्वोक्तं मण्डलं कृत्वा गौरीं तत्रैव पूजयेत् ॥
कुङ्कुमागुरुकर्पूरचन्दनेन विलेपयेत् ।
ऐशान्यां दिशि संस्थाप्य घटिकां मधुपूरितां ।
पुष्पमाल्यैरलङ्कृत्य रक्तसूत्रेण वेष्टयेत् ॥
हिरण्यं निक्षिपेत्तत्र न शून्यां कारयेद् बुधः ।
वस्त्रेण तु समाहृत्य गन्धांस्तत्रैव निक्षिपेत् ॥
कुङ्कुमागुरुकर्पूरचन्दनेन विलेपयेत् ।
उशीरं चन्दनं मुस्तां बालकं सर्व्वमौषधं ।
तथा चामलकीं दूर्वां क्षिपेद्गोरोचनां बुधः ॥
शतमष्टोत्तरं कृत्वा गौर्य्या वै मूलविद्यया ।

ततोऽभिमन्त्र्य घटिकां गौरीमन्त्रेण तां पुनः।
शताष्टाधिकजप्तेन अभिमन्त्र्योदकं गुह ॥
ततोऽभिषेकं कुर्य्याद्वै योषितो वा नरस्य वा।
घटिकाभिषिक्ता चैव या नारी मण्डले गुह।
सुभगा सा भवेन्नित्यं नरश्च विधिवद्गुह ॥
अपुत्रा लभते पुत्रं अजीवा जीविनी भवेत्।
अनेनैव विधानेन गुर्व्विणी यदि कारयेत् ॥
पुत्रं प्रसूयते सा तु महावीर्य्यपराक्रमं।
राजा विजयमाप्नोति धारयित्वा सुसङ्गरे ॥
या या रूपवती कन्या वरं न लभते सदा।
सा घटिकाभिषेकेण सौभाग्यमतुलं लभेत् ॥
येन येन हि भावेन घटिकां कारयेद्बुधः।
तस्य तेन हि भावेन तत्फलं ददते बुधः ॥
धर्म्मेणोक्तं यथोक्तञ्च सङ्क्षेपेण कथञ्चन।
तत्सर्व्वं मूलमाश्रित्य अनेनैव तु कारयेत् ॥

मूलमाश्रित्य पूर्व्वोक्तमूलमन्त्रेणेत्यर्थः।

न घटिकापरं किञ्चित्सौभाग्यकरसं मतं।
न घटिकापरं स्कन्द धर्म्मकामार्थमोक्षदं ॥
घटिका धारयेद्यस्तु स कामानखिलान् लभेत्।
अपुत्रो लभते पुत्रमधनो धनमाप्नुयात् ॥

इति भविष्यत्पुराणोक्तो घटिकाभिषेकः।

---

कार्त्तिकेय उवाच।

पूर्व्वमेव त्वया ज्ञातं सन्ति बन्ध्या न हि स्त्रियः।
दोषैस्तु विविधाकारैर्ग्रहधातुविकारजैः।
बन्ध्यात्वं जायते तासां तानाचक्ष्व प्रयत्नतः॥

ईश्वर उवाच।

ग्रहदोषान् प्रवक्ष्यामि शृणु पुत्र यथार्थतः।
द्वात्रिंशतिर्ग्रहाः प्रोक्ता नारीपीड़ाकरास्तु ते॥
ग्रहाः कौमारिकाश्चान्ये तेऽपि द्वात्रिंशकीर्त्तिताः।
चतुःषष्टिश्च संख्या वै ग्रहाणां क्रूरकर्म्मणां॥
चतुःषष्टिसहस्राणि एकैकस्य प्रविस्तरः।
तेषां मध्ये तु प्रोच्यन्ते चतुःषष्टिस्तु नायकाः॥
दोषैर्द्वादशभिर्वत्स ग्रहा गृह्णन्ति योषितं।
एकपात्रेण यानेन परशय्यासनेन तु॥
परपुरुषसंयोगेन परवस्त्रविभूषनैः॥
लालोच्छिष्टकमाल्येन एकभाजनभोजनैः॥
केशोदकेन संसिक्तादन्यनार्य्यवगूहनात्।
एतै र्दोषैश्च सर्व्वैश्च ग्रहाः पीडाकराः स्मृताः॥
प्रथमं गृह्णते पुष्पं गर्भञ्च तदनन्तरं।
पश्चात् चीरन्ततो बालमेवमाहुर्न संशयः॥
ग्रहनामानि वक्ष्यामि सचरी रेवती शिवा।
सुखमन्दी च लम्बा च पूतना कण्डपूतना॥
गोमुखी च बिड़ाली च तथा चैव महाछला।
काकोली च हसन्ती च अहङ्कारी जया तथा।

मुक्तकेशी विदण्डी च अजामुखी च रोचना॥
मुकुला पिङ्गला नाम पिटनासा तथापरा।
स्कन्दग्रहास्तथा चान्ये सर्वेषां नायकाः स्मृताः॥
रजनी कुम्भकर्णी च तापसी राक्षसी परा।
मोदनी रोदनी चाव धनदा च कुला तथा॥
चतुःषष्टिः समाख्याता मातरो बालमातरः।
आर्जको जम्भको भाम उपस्कन्दश्च पञ्चमः॥
बालानां पीड़नाः सर्वे भ्रमन्ते बलिकाङ्क्षिणः।
बलिन्द्याद्विधानेन ततो मुञ्चन्ति नान्यथा॥
चतुरस्रं कृतं चैवं समसूत्रं कृतं ततः।
सप्तभागान् समान् सर्वान् कृत्वा होमं विचक्षणः॥
तेषामन्तरकोष्ठेषु नवपद्मानि कारयेत्।
सबाह्याभ्यन्तरे वत्स चक्रमालिख्य यत्नतः॥
अष्टपत्रं सितं शुभ्रं केसरैः सह कर्णिकैः।
तेषु पात्रेषु च गणाः सर्व्वे तुष्टिं यथाक्रमं॥
पूर्वादौ पूजयेत् सर्वान् तथाष्टाष्टकमष्टधा।
शिवन्तु कर्णिकामध्ये पद्मेषु नवसु स्थितं॥
कमले मध्यमे वत्स अङ्गैस्तु सहितं शिवं।
पूजयेत् पूर्वविधिना कल्पयित्वा तु वासनं॥
अस्य कर्माणि वक्ष्यामि येन मुञ्चन्ति योषितः।
ज्ञात्वा तासां विकारांश्च सर्व्वाभरणभूषिताः॥
स्थापयेच्च विधानज्ञः सोपवासपरायणः।
व्यतीपातविनिर्मुक्ते स्नानङ्कुर्याच्छुभेऽहनि॥

त्रिषूत्तरेषु रेवत्यां प्राजापत्ये पुनर्वसौ।
अश्विन्यामथ पुष्ये च नक्षत्रे रोहिणी तथा॥
मातृगृहे गृहे वापि त्रिपथे वा चतुष्पथे।
जीर्णकूपे तड़ागे वा नदीनां सङ्गमेषु च॥
एकवृक्षे श्मशाने वा देवतायतनेऽपि वा।
अष्टम्यां राजपत्नीन्तु मध्याह्ने स्नापयेत्ततः॥
पुत्रकामान्तु गोतीर्थे राजपत्नीन्तु सङ्गमे।
मातृस्नाने तु दौर्भाग्यां श्मशाने मृतपुत्रिकां॥
काकवन्ध्यां जीर्णकूपे बन्ध्यां पुष्करिणीषु च।
अभिचारकृतां नारीं पुरुषञ्च विरेतसं।
स्नापयेत्तान् प्रयत्नेन शिवायतनसङ्गमे॥
आचार्य्यस्तु सुसंपूर्णः शुक्लवस्त्रः शुचिः सदा।
अष्टहस्तप्रमाणेन चतुर्हस्तमथापि वा॥
चतुर्हस्तं चतुर्द्वारं तोरणध्वजशोभितं।
चन्द्राभन्तु कृतादीपं पुष्पमाल्योपशोभितं।
स्नानपानैश्च नैवेद्यैर्विविधं कारयेद्बलिं॥
त्रिरजोभिः समालिख्य मण्डलं सर्व्वकामिकं।
श्वेतरक्तं तथा कृष्णं वर्णानाञ्च क्रमेण तु॥
ईशो ब्रह्मा तथा विष्णुः रजसामधिपाः स्मृताः॥
मण्डलस्योत्तरे भागे कुर्य्यात् स्नपनमण्डलं।
चतुर्हस्तप्रमाणेन वर्णकैरुपशोभितं॥
अकालमूलकलसांश्चतुरष्टप्रमाणतः।
चूतपल्लवसंयुक्तान् तथेष्टपरिचेष्टितान्।

हिरण्यक्षतदूर्व्वाभिरोषधीसङ्गसंयुतान्॥
नद्याश्चोभयकूलात्तु वल्मीकवृत्तमूलतः।
गृहीत्वा मृदमल्पान्तु स्थापयेत् प्रथमे घटे॥
द्वितीये गोमयं स्थाप्य तृतीये गन्धवारि च।
चतुर्थे हेमरजते पञ्चमे सर्व्वमौषधं॥
षष्ठे तीर्थाम्बुविन्यासः सप्तमे सप्तसागरं।
कलशे चाष्टमे न्यस्य शङ्करं मातृभिः सह।
अनेन विधिना मन्त्री त्वभिषेकं प्रदापयेत्॥
मृतवत्सा जीवपुत्रा वन्ध्या चापि प्रसूतिका।
अवीजा वीजतां याति स्त्री वाथ पुरुषोऽपिवा।
अभिचारकृतं दोषं मन्त्रोऽयं नाशयेदिति॥
अनेनैव हि योगेन सुस्थेन सर्व्वबन्धुना।
दुर्भगा सुभगा वापि कन्या प्राप्नोति सद्वरं॥
हस्त्यश्वरथयानं वा मुकुटं कुण्डलानि च।
धनधान्यहिरण्यानि येन वै तुष्यते गुरुः।
येन तुष्टेन तुष्यन्ति देवता मातरो ग्रहाः॥

अथाभिषेकविद्या भवति। ओं रीं ह्रीं सौं वौषट्। अभिषेकोऽनेन कीलिते गर्भे ओं वृङ्कः। श्री स्वाहा। अनेनाभिषेकं भुक्तात्त्वये पुरुषः स्यातु। ओं श्रीलयुं स्वाहा।

पुष्पक्षये तु नारीणामभिषेकञ्च दापयेत्॥
ओं रीं हां स्वाहा। अनेन कीलिते गर्भे अभिषेकं देयं।
यो जीवति तस्याप्येतेन मृतं वा पतिं ध्रुवं।
ओं स्रां फट्। रें स्वाहा।

सर्षपैरक्षतैर्वापि तं देहन्ताड़येच्छिशोः ।
मौनश्चेन्म्रियते बालो रुदते जीवते ध्रुवं ॥

इति वन्ध्याभिषेकविधिः ।

———ooo@ooo———

मनुरुवाच ।

इन्द्वादित्योपरागे च यत्स्नानमभिधीयते ।
तत्सर्व्वं श्रोतुमिच्छामि द्रव्यं मन्त्रविधानतः ॥

मत्स्य उवाच ।

यस्य राशिं समासाद्य भवेद्ग्रहणसम्भवः ।
तस्य स्नानं प्रवक्ष्यामि मन्त्रौषधिसमन्वितं ॥
चन्द्रोपरागं संप्राप्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनं ।
संपूज्य चतुरो विप्रान् शुक्लमाल्यानुलेपनैः ॥
सर्व्वमेवोपरागस्य समानीयौषधादिकं ।
स्थापयेच्चतुरः कुम्भान् अव्रणान् सलिलान्वितान् ॥
गजाश्वरथवल्मीकसङ्गमाद्ध्रदगोकुलात् ।
राजद्वारप्रदेशाच्च मृदमानीय निक्षिपेत् ॥
पञ्चगव्यञ्च कुम्भेषु पञ्चरत्नानि चैव हि ।
रोचनापद्मशङ्खञ्च पञ्चभङ्गसमन्वितं ॥
स्फटिकञ्चन्दनञ्चैव तीर्थवारि ससर्षपं ।
गजदन्तं कुङ्कमञ्च तथैवोशीरगुग्गुलं ।
एतत्सर्व्वं विनिक्षिप्य कुम्भेऽथावाहयेत्सुरान् ॥
सर्व्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः ।

आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः॥
योऽसौ वज्रधरो देव आदित्यानां प्रभुर्म्मतः।
सहस्रनयनश्चेन्द्रः पीड़ामत्र व्यपोहतु॥
मुखं यः सर्व्वदेवानां सप्तार्चिरमितद्युतिः।
चन्द्रोपरागसम्भूतामग्निपीड़ां व्यपोहतु॥
यः कर्म्मसाक्षी लोकानां धर्म्मराजेतिविश्रुतः।
यमश्चन्द्रोपरागोत्थां पीड़ामत्र व्यपोहतु॥
रक्षोगणाधिपः साक्षात् प्रलयानलसंप्रभः।
खड्गव्यग्रोऽतिभीमश्च रक्षःपीड़ां व्यपोहतु॥
नागपाशधरो देवः सदा मकरवाहनः।
स जलाधिपतिश्चन्द्रः ग्रहपीड़ां व्यपोहतु॥
योऽसौ निधिपतिर्द्देवः खड्गशूलगदाधरः।
चन्द्रोपरागकलुषं धनदेवो व्यपोहतु॥
योऽसाविन्दुधरो देवः पिनाकी वृषवाहनः।
चन्द्रोपरागपापानि विनाशयतु शङ्करः॥
त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च।
ब्रह्मविष्ण्वर्कसूक्तानि तानि पापं हरन्तु ते॥
पूजयेद्वसुगोदानैर्ब्राह्मणानिष्टदेवतां।
एतानेव ततो मन्त्रान्वितश्च कनकान्वितां।
प्राङ्मुखः पूजयित्वा तु सम्पश्यतीष्टदेवतां॥
कलशं द्रव्यसंयुक्तं प्राप्तं ग्रहणपर्व्वणि।
चन्द्रग्रहे निवृत्ते तु कृते गोदोहमङ्गले।
कृतस्नानश्च तं घटं ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥

अनेन विधिना यस्तु सग्रहं स्नानमाचरेत्।
न तस्य ग्रहपीड़ास्यान्न च बन्धुधनक्षयः॥
परमां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभां।
सूर्य्यग्रहे सूर्य्यनाम सदा मन्त्रेषु कीर्त्तयेत्॥
द्रव्यैस्तैरेव कथितं स्नानं नृपकुलोद्वह।
अस्मिंस्तु पद्मरागःस्यात् कपिला च सुशोभना॥
य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वापि मानवः।
सर्व्वपापविनिर्मुक्तः ब्रह्मलोके महीयते॥
चन्द्रग्रहे नृप रविग्रहणेऽग्रजन्मा
मन्त्रैरिमैः समभिमन्त्र्य शुभोदकुम्भान्।
स्नानं करोति नियमेन नरस्य पीड़ा
न तस्य तं ग्रहकृता पुरुषं दुनोति॥

## इति मत्स्यपुराणोक्तं चन्द्रसूर्य्योपरागस्नानं।

———000◎000———

अथातो यमलजननशान्तिं व्याख्यास्यामो यस्य भार्य्या गौर्द्दासी वड़वा विकृतिं प्रसवेत्। प्रायश्चित्तीभवेत् पूर्णे दशाहे चतुर्णां क्षीरवृक्षाणां कषायमुपसंहरेत्। प्लक्षवटोदुम्बराश्वत्थशमीदेवदारुगौरसर्षपास्तेषां सहिरण्यदूर्व्वाङ्कुरैश्च पल्लवैरष्टौ कलशान् पूरयित्वा सर्वौषधिना दम्पती स्नापयेत्। आपोहिष्ठेति तिसृभिः, कयानश्चित्रेति पञ्चेन्द्रेण पञ्चवारुणेनेदमापः प्रवहतेत्यपाद्यमितिस्नापयित्वालङ्कृत्य तौ दर्भेषु उपवेशयेत्। मारुतं स्थाली-

पाकं श्रपयित्वाज्यभागाविष्ट्वाज्याहुतीर्जुहोति। पूर्व्वोक्तस्नपनमन्त्रैः स्थालीपाकं जुहोति। अग्नये स्वाहा। पवनाय स्वाहा। मारुताय स्वाहा। यमाय स्वाहा। अन्तकाय स्वाहा। मृत्यवे स्वाहा। ब्रह्मणे स्वाहा। अग्नये स्विष्टिकृते स्वाहा। गृहोत्पातेषूलूकः कपोतो गृध्रः श्येनोवाविशेषस्ततः प्ररोहेवल्मीको वा भवेदुदकुम्भप्रचलने, आसनशयनयानभङ्गे, गृहगोधिकाकृकलासशरीरोपसर्पणे, छत्रध्वजविनाशेऽप्यन्ये उत्पाते प्येतदेव प्रायश्चित्तं ग्रहणशान्तिं प्रोक्तेन विधिना कृत्वाचार्य्याय वरं दत्वा स्वस्ति वाच्याशिषः प्रतिगृह्य शान्तिर्भवतीति।

## इति कात्यायनोक्तयमलजननशान्तिः।

———000———

पुष्कर उवाच।

दन्तजन्मविशालानां लक्षणं तन्निबोध मे।
उपरि प्रथमं यस्य जायन्ते हि शिशोर्द्विजाः॥
दन्तैर्वा सह यस्य स्याज्जन्म भार्गवसत्तम।
मातरं पितरं वाथ खादेदात्मानमेव वा।
तत्र शान्तिं प्रवक्ष्यामि तां मे निगदतः शृणु॥
गजपृष्ठगतं बालं नौस्थं वा स्थापयेद्द्विज।
तदभावेन धर्म्मज्ञ काञ्चनेन वरासने॥
सर्व्वौषधैः सर्व्वगन्धैर्बीजैः पुष्पैः फलैस्तथा।
पञ्चगव्येन रत्नैश्च पताकाभिश्च भार्गव।
स्थालीपाकेन दातारं पूजयेत्तदनन्तरं॥

सप्ताहश्चात्र कर्त्तव्यं तथा ब्राह्मणभोजनं ।
अष्टमेऽहनि विप्राणां तथा देया च दक्षिणा ॥
काञ्चनं रजतं गाश्च भुवमात्मानमेव वा ।
दन्तजन्मनि सामान्ये शृणु स्नानमतः परं ॥
भद्रासने निवेश्यञ्च मृद्भिर्मूलैः फलैस्तथा ।
सर्व्वौषधैः सर्व्वबीजैः सर्व्वगन्धैस्तथैव च ।
स्नापयेत् पूजयेच्चात्र वह्निं सोमं समीरणं ॥
प्रथमं स्नापयेत्तत्र देवदेवञ्च केशवं ।
स तेषामेव जुहुयाद्घृतमग्नौ यथाविधि ॥
ब्राह्मणानान्तु दातव्या ततः पूजा च दक्षिणा ।
ततः स्वलङ्कृतं बालं आसनेषूपवेशयेत् ॥
आसन्तं क्षतमूर्द्धानं बीजैः सुस्नापयेत्ततः ।
सुस्विन्नैर्बालकानाञ्च तैश्च कार्य्यञ्च पूजनं ।
पूज्याश्चाविधवा नार्यो ब्राह्मणाः सुहृदस्तथाः ॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तदन्तोत्पत्तिशान्तिः ।

———o———

जनमारसमुत्पत्तिं प्रवक्ष्यामि वसन्तिकां ।
यदा लोभसमाविष्टः पीड़यानो धनैः प्रजाः ॥
रमत्यभिद्रवन्राजा न च धर्म्मेण तिष्ठति ।
वचस्तस्यानुवर्त्तन्ते प्रजा धर्म्मं विहाय ताः ॥
क्रोधलोभसमाविष्टाः साध्वाचारविवर्ज्जिताः ।
पूजयन्ते न चाभीष्टं देवान् विप्रांस्तथा पितॄन् ॥

तास्वधर्माभिभूतासु ततो रुद्रः प्रकुप्यति ॥
अन्तको एष भगवान् भूतानां प्रिय एव च।
कुरुतेऽसौ विकारांश्च हेतुभूतः पृथग्विधान् ॥
ताराग्रहान् केतुदण्डान् राहुकाकवलाहकान्।
ससूर्य्यसन्ध्याविकृतिं घोरां खमृगपक्षिणः।
भूमिकम्पोल्कानिर्घाताः शीतोष्णानिलविक्रियाः ॥
अतिवर्षमवर्षञ्च तथैवर्तुविपर्य्ययाः।
ओषध्यो रसहीनाश्च भवन्तीह विपर्य्यये ॥
रसवीर्य्यविहीनास्ता रोगानुत्पादयन्ति च ॥
रुद्रप्रकोपनं तस्माज्जनमारं प्रपद्यते ॥
तस्मात् प्रसादयेत् यत्नाद्देवदेवं महेश्वरं।
दैवज्ञानप्रदिष्टेन विधिना सुसमाहितः ॥
गाणपत्येन विधिना अथर्वशिरसा तथा।
यामलेन विधानेन कुर्य्यादेवं प्रसादनं ॥
शिवसूक्तमुमासूक्तं जपेच्च शतरुद्रियं।
बल्युपहारविविधान् चत्वरेषु निवेदयेत् ॥
आवाहयेत्तं सगणं रुद्रं रात्रावहः शुचिः।
ब्राह्मणान् भक्ष्यभोज्यैश्च दक्षिणाभिश्च पूजयेत् ॥
प्रसादिते ततो रुद्रे जनमारो निवर्त्तते।
जप्य एवास निरतो नृपतिश्च यतेन्द्रियः ॥
युक्तो होममुपाश्रित्य नियमेन यथाविधि।
एवं युक्तस्य नृपतेः कर्मसिद्धिः प्रशस्यते ॥
कर्मणस्तस्य मूलं हि श्रद्दधानो नृपः स्मृतः।

उपोषितो नृपः स्नातः शुक्लवस्त्रसमाहितः ॥
आत्मरक्षां स्वयं कृत्वा ततः शान्तिं प्रयोजयेत् ॥
धर्म्मात्मा धर्म्मविद्येषां राजा राजपुरोहितः ।
राजवंशगुणो येषां कुशलं तत्र वर्द्धते ॥

इति गर्गोक्तजनमारशान्तिः ।

———o§o———

अथ गोशान्तिः गर्गप्रोक्ता ।

व्याधयस्तु दश प्रोक्ता गवां वक्ष्यामि यादृशाः ।
उद्विग्नो हृदयग्राही पतनो मोहनस्तथा ॥
तेषां रूपसमुत्थानन्तादृशं तद्ब्रवीमि वः ।
शान्तिकर्म्म च निर्दिष्टं यादृशं तत्र निर्म्मितं ॥
रात्रौ गोष्ठेषु या गावो वित्रसन्ति यतस्ततः ।
उद्विग्नो नाम स व्याधिस्तेन चैव प्रजायते ॥
अश्रुप्रमोचं कुर्व्वन्ति नयनात् प्रपतन्ति च ।
हृद्रोगं तं विजानीयाद्गोषु रोगं विनिर्द्दिशेत् ॥
शोणितं यत्र कुर्व्वीत पुरीषं मूत्रयन्ति वा ।
प्रवेपमानास्खलिताः पतिता व्याधिरुच्यते ॥
हुङ्कारमत्र कुर्व्वन्ति मण्डलानि तथैव च ।
भविष्यात्संप्रियन्तौ च मूढसंज्ञं विदुर्बुधाः ॥
पुरीषं पूतिकं यासां चौद्रमर्व्वत् प्रवर्त्तते ।
तं पूतनाग्रहं विद्याद्गोषु रोगसमुत्थितं ॥
यदि जिह्वां विनिर्भज्य गौर्गां समभिधावति ।

कलिलो नाम नाम्नेह गोषु व्याधिर्भवत्यपि ॥
रक्तानि जवनेत्राणि विप्लवन्ति स्रवन्ति च ।
मक्षिकाश्चापि लीयन्ते व्याधिं विद्यात्सुदारुणं ॥
उत्थाय मण्डलं याति वातेन क्षिप्यते च या ।
कर्णाक्षेपगतिर्ज्ञेयो गोषु व्याधिः समुत्थितः ॥
क्षुरेण या न शक्नोति यातुमुल्लङ्घसंस्थिता ।
खेरको नाम स ज्ञेयो गोषु रोगः समुत्थितः ॥
यस्याः स्फुरन्ति गात्राणि रोमाण्यूढानि सन्ति च ।
उभौ च कर्णौ लम्बेते विद्यात्तं कर्णलम्बकं ॥
इत्येते व्याधयो दृष्टा यथेज्या एव चापरे ।
तेषु तेषु यथोद्दिष्टं शान्तिकर्म प्रयोजयेत् ॥
ब्रह्मचारी शिरःस्नातो निराहारः क्षमी शुचिः ।
आत्मरक्षां स्वयं कृत्वा ततः शान्तिं प्रयोजयेत् ॥
नग्नाः कषायवसना मूढा ये परिचारिणः ।
व्यङ्गाश्च स्खलिताश्चैव दूरतः परिवर्जयेत् ॥
काणांश्छिन्नांश्च कुष्ठांश्च तथा पक्षहतानपि ।
अन्त्यावसायिनश्चैव दूरतः परिवर्जयेत् ॥
अश्वत्थे वा पलाशे वा समदेशे त्वनूषरे ।
महास्थानैकवृक्षे वा देवगोष्ठेऽपि वा भवेत् ॥
गणकस्तु शुचिर्भूत्वा देवताद्युपकल्पयेत् ।
प्रतिष्ठाप्य ततो देवान् वेदीं कुर्यात् प्रमाणतः ॥
पूर्व्वं कुम्भान् कुशान् माल्यं लाजानुल्लोमिकांस्तथा ।
मांसं पक्वाशनञ्चापि तथैव हिमपिण्डिकां ॥

घृतसर्षपतैलेन सर्षपानक्षतांस्तथा।
युक्तप्रतिसरान् गन्धान् समिधस्तु समाहरेत्॥
उदुम्बरं पलाशञ्च खदिरं विल्वमेव च।
अश्वत्थञ्च शमीञ्चैव समिधस्तत्र कारयेत्॥
चत्वार्य्येव सहस्राणि पर्व्वमात्राणि कारयेत्।
वृषास्थिवारणास्थीनि उलूकस्य समाहरेत्॥
एतान्यस्थीनि धूपार्थं सर्वाण्येव समाहरेत्।
वचया सह संयुक्तं धूपकोषु समानयेत्॥
सुरारुधिरसंयुक्तं मांसं पक्वामिषन्तथा।
दिशाञ्च विदिशाञ्चैव बलिं कुर्य्यात् प्रदक्षिणां॥
गावस्तु सर्व्वगोष्ठात्तु देवगोष्ठमुपानयेत्।
आज्यधूपञ्च गन्धाञ्च ग्राहयित्वा प्रदक्षिणां॥
अग्निं प्रणीय विधिवत् परिस्तीर्य्य समन्ततः।
बलेन विजयेच्चापि मुहूर्त्ते कर्म्म कारयेत्॥
शान्तिमेतां प्रयुञ्जानः सावित्रीं मनसा जपेत्।
एषा हि वेदमाता तु द्विजैः पूर्व्वमुदाहृता॥
कृष्णच्छागस्य देहेन कर्णाभ्यां गृह्य शोणितं।
समिधो जुहुयाच्छान्तौ सर्षपैश्च घृतेन च॥
रक्षोघ्नतैलकृशरं रक्तमाल्येन संयुतं।
एवं तु जुहुयाद्विप्रो हृद्रोगस्य विनाशनं॥
पुष्पकर्णस्य छागस्य शोणितं स्रावयेत्ततः।
यावनं कटुतैलञ्च व्याधिं दृष्टानुपातनं॥
शमीमय्यस्तु समिधः कृशरं यावकन्तथा।

रक्षातैलेन संयुक्तं व्याधिः शाम्यात मोहकः॥
पाण्डुरस्य तु छागस्य वसां हृदयमेव च।
मधु सर्पिश्च जिह्वाश्च जुहुयात् पूतनाग्रहे॥
अश्वत्थोदुम्बरः समित्।
पलाशखादिरीमांसैः व्याधिः शाम्यति दारुणः।
कृष्णग्रीवस्य छागस्य छागल्या वा तथा भवेत्॥
शोणितं सर्पिषा युक्तं जुहुयाद्दारुणामये।
यथोदृष्टस्य छागस्य वसां हृदयशोणितं॥
अरिष्टाक्षतसंयुक्तं कण्डूचेमस्य नाशनं।
घृतं सर्षपतैलञ्च हृदयं कुक्कुटस्य च॥
यथोपनीताः समिधा हावयेत्त्र्यम्बकर्षिणि के।
गवां शान्तिं यथोद्दिष्टां यः प्रयुक्तां द्विजर्षभ॥
कारयेच्च गवार्थं वा जपेयुश्च शतैर्वरं।
तस्य पुत्राश्च पौत्राश्च धनधान्यन्तथैव च॥
गावश्च सम्यग्वर्द्धन्ते लोके कीर्त्तिमवाप्नुयात्।

## शिवधर्मात्।

———ooo———

ब्रह्मणा ब्रह्मपादेन स्तूयते प्रणवेन सः।
स शिवः शाश्वतो देवो गोषु मारीं व्यपोहतु॥
लम्बोदरेण देवेन गजवक्त्रेण सुस्तुतः।
स शिवः शाश्वतो देवो गोषु मारीं व्यपोहतु॥
योऽर्च्यते च सदा भक्त्या विष्णुना प्रभविष्णुना।

स शिवः शाश्वतो देवो गोषु मारिं व्यपोहतु ॥
सर्व्वरोगहरेणापि रविणा यः प्रणम्यते ।
स शिवः शाश्वतो देवो गोषु मारीं व्यपोहतु ॥
श्रीमतां रुचिराङ्गेण घण्टाकर्णगणेन यः ।
नित्यं प्रणम्यते भक्त्या हृष्टेनानन्यचेतसा ॥
स शिवः शाश्वतो देवो गोषु मारीं व्यपोहतु ।
नित्यं रुद्रबलोपेतो रुद्रभक्तिसमन्वितः ॥
घण्टाकर्णगणो देवः शिवज्ञानविधायकः ।
शिवयोगानुभावेन गोषु मारीं व्यपोहतु ॥
नमः शिवाय देवाय महादेवाय भाविने ।
रुद्राय स्थानवे नित्यं हरायोग्राय ते नमः ॥
परमेशाय सिद्धाय मन्त्रसिद्धिप्रदायिने ।
शाश्वताय महेशाय अनन्ताय नमोनमः ॥
अभिमन्त्र्य सदा तोयमेतैर्मन्त्रैर्यथाक्रमं ।
प्रार्थयीत गवां देवं ततः सिद्धिर्भविष्यति ॥
य इदं पठते गोषु प्रस्थाने वा समागमे ।
आयुष्मान् बलवान् भोगी श्रीमानर्थपतिर्भवेत् ॥
देहान्ते च परं स्थानं स गच्छेन्नात्र संशयः ।
सर्व्वपापविशुद्ध्यर्थं गोशान्तिकमिदं पठेत् ॥

इति गोशान्तिः ।

—o—

सुश्रुतो रुद्रराजश्च गर्गो मित्रजिदेव च ।

पृच्छन्ति वाहनागारं शालिहोत्रं तपोनिधिं ॥
हयानां मड़को घोरः कथं जायेत वै प्रभो।
कथं वा शान्तिकं तेषां एतच्छ्रुत तां वद ॥
तानुवाच महातेजाः शालिहोत्रस्तपोनिधिः।
स्थानेऽशुभे स्थापितानां सशल्ये वाघसंग्रहे ॥
हयानां मरको घोरो जायते नात्र संशयः।
यस्य वा जन्मनचत्रं कर्म्मजं वाथ मानस ॥
मघादिकं सानुदायं वैनाशिकमथापि वा।

जन्मनचत्राचतुर्थदशमषोड़शाष्टादशानां नचत्राणां मानसादयः संज्ञाः।

पीडाते सौरिसूर्य्याद्यैर्य्यदि वाप्यथ राहुणा।
त्रिविधैर्वा तथोत्पातैस्तस्य स्याद्वाजिमारणं॥
यस्य वै ब्राह्मणाः क्रुद्धा देवा वा पितरोऽप्यथ।
विनायकोपसृष्टो वा क्रुद्धा वा यस्य वाजिनः ॥
हयमारस्तु तस्य स्यात् स तु शान्तिकरो भवेत्।
न वर्द्धन्ते हयात् पुत्रा रोगैः पीडयन्ति चापरे॥
स्थानाद्विवर्त्तनं कार्य्यं शल्योद्धरणमेव वा।
कृत्वा कुर्व्वीत तत्रैव वासुदेवतपूजनं ॥
तथा नचत्रपीड़ायां स्नानं विहितमाचरेत्।
पीड़कस्य ग्रहः पूज्यो नचत्रमपि पीड़कं॥
विनायकोपसृष्टेन पूज्यो गणपतिर्भवेत्।
मितश्च संमितश्चैव तथा शालकटं कटौ॥
कूष्माण्डो राजपुत्रश्च पूज्या वै चाम्बिका तथा।

यस्य वै ब्राह्मणाः क्रुद्धाः पूज्यास्ते वे ते न चान्यथा ।
देवानां पूजनं कार्य्यं यस्य क्रुद्धा दिवौकसः ॥
रात्रौ च वाहनागारे यदालिन्दापकर्षणं ।
कृते स्यात्तत्र कर्त्तव्यं गन्धर्व्वाणाञ्च पूजनं ॥
प्रदीपे स्थापिते स्थाने तथा शुचिविवर्ज्जिते ।
स्थानापकर्षणं कृत्वा श्रियः पूजा विधीयते ॥
उच्चैःश्रवाद्यः पूज्या यस्य क्रुद्धास्तुरङ्गमाः ॥
हयमारे तु संप्राप्ते हयानां वाप्युपद्रवे ।
इमां शान्तिं प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ॥
गोमयेनानुलिप्ते तु शुभे देशे पुरोहितः ।
अहोरात्रोषितो भूत्वा शान्तिकर्म्म समारभेत् ॥
धौतशुक्लाम्बरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः ।
सोष्णीषालङ्कृतः शक्त्या हयैस्तैः शुचिभिः सह ॥
चत्वारो ब्राह्मणाश्चास्य सहायाश्चाततन्द्रिताः ।
ऋग्वेदपारगश्चैको द्वितीयो यजुषां वरः ।
तृतीयः सामविन्मुख्यश्चतुर्थश्चाप्यथर्वणः ॥
सर्व्वे व्यङ्गाः कुलीनाश्च शुचयः शीलसंयुताः ।
गृहीताम्बरसम्वीताः पवित्रककरास्तथा ।
मध्येऽग्निकुण्डं कुर्व्वीत मण्डलन्तु समायतं ॥
विदिक्षु विन्यसेत् कुम्भान् पूर्णानोषधिवारिणा ।
रसपात्रं न्यसेत्तेषु ऐशान्यादिक्रमेण तु ॥
सर्पिषः पयसो दध्नो मधुनश्च यथाक्रमं ।
कुण्डस्य पूर्व्वभागे तु कुर्य्याद्देवेश्वरं पदे ॥

दक्षिणे तु यमं कुर्य्याद्वरुणं पश्चिमे तथा।
उत्तरे च तथा भागे कुर्य्याद्वैश्रवणं प्रभुं॥
सर्व्वांस्तान् पूजयेद्विप्रा गन्धमाल्यानुलेपनैः।
वस्त्रैर्धूपैरलङ्कारैस्तथैव वैद्यपूजनं॥
तेषामवाप्य तल्लिङ्गं मन्त्रराज्येन पावकं।
यजुर्वेदविदः पूर्व्वं जपेदैन्द्राग्निविशारद॥
याम्ये सोमं सामगस्तु वारुणं बह्वृचोपि च।
मन्त्रं कुवेरसंयुक्तं जपेद्विद्वानथर्व्वणः॥
सुवर्णमक्षतं वासः कांस्यञ्चाश्च पृथक् पृथक्।
पञ्चानां दक्षिणा दत्त्वा हयमारात् प्रमुच्यते॥
हयमारे तु संप्राप्ते हयानां वाप्युपद्रवे।
इमां शान्तिं प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु॥
पूर्वोक्ते तु शुभे स्थाने पूर्वोक्तविधिना ततः।
अग्निकुण्डं दिशीशान्यां पूर्व्वं वै पूर्वदक्षिणे।
भूमौ कुर्व्वीत देवानां मण्डलेष्वपि पूजनं॥
अत्र त्रिपत्रयं कार्य्यं नैवकार्य्यस्त्वथर्वणः।
आग्नेये त्वथ दिग्भागे वह्निपूजा विधीयते॥
ऐशान्यां पूजनं वायोः पूर्व्वं तु सवितुर्भवेत्।
सावित्रन्तु जपेन्मन्त्रं यजुर्वेदविशारदः॥
आग्नेये बह्वृचश्चैव सौमं सामविशारदः।
सर्व्वमन्यत्तु कर्त्तव्यं पूर्वोद्दिष्टं विजानता॥
उत्पातेषु निमित्तेषु वाजिनामिङ्गितेषु च।
प्रायश्चित्तं प्रकुर्वीत ततः सर्वं प्रशाम्यति॥

हयशालोत्तरे भागे स्थण्डिलं तत्र कल्पयेत्।
त्रिरात्रोपोषितस्तत्र शान्तिं कुर्य्यात् पुरोहितः॥
नववासोभिराच्छिन्नं स्थण्डिलन्तु चतुर्दिशं।
उदकुम्भास्तु चत्वारः स्थापनीयाश्चतुर्दिशं॥
रसपात्राणि देयानि पूर्णं कुम्भे च सुश्रुत।
शिरः स्नातः कृतोष्णीषो यथावत् कृतमण्डलः॥
शुक्लवासा जितक्रोधो बहुत्वेन समीरितः।
आहुती जुहुयाद्वह्नौ त्वनेन सुसमाहितः॥
पितामहाय रुद्राय स्कन्दाय वरुणाय च।
अश्विभ्याञ्चैव सूर्य्याय शक्राय च तथाग्नये॥
वास्ताय वाथ हरये श्रियै देव्यै तथैव च।
गन्धर्वेभ्यश्च सोमाय उच्चैःश्रवस एव च॥
देवता या भवेत्तत्र उत्पातस्य तु कारणी।
मण्डले तां विदित्वा तु बलिभिश्चापि पूजयेत्॥
शतमष्टाधिकं हुत्वा प्रतिदेवं पुरोहितः।
ततस्तु पूजनं कुर्य्याद्देवानान्तु विशेषतः॥
पायसोल्लिपकादीपधूपदीपादिलेपनैः।
मधुपायससंमिश्रं विप्रा भोज्याः सदक्षिणाः॥
एकैकदेवमुद्दिश्य दश सप्त च पञ्च वा।
सुवर्णसहितं वासो गाञ्च कांस्यञ्च दक्षिणां॥
निष्कृत्यर्थं तदा देयं त्रिरात्रन्तु महीभुजा।
पुरोहिताय तुष्ट्यर्थं येन तुष्यत्वसौ द्विजः॥
षाड्वनान् पूजयेत् सर्वान् स्वस्तिवाच्य द्विजोत्तमान्।

एतद्धि शान्तिकं कार्य्यं नित्यमौत्पातिके सदा ॥
रक्षोघ्नन्तु यशस्यन्तु सर्व्वोत्पातविनाशनं।
राज्ञो विजयदं पुण्यं धनधान्यविवर्द्धनं ॥

इति शालिहोत्राश्वशान्तिः।

---

अथ गजशान्तिः।

तत्र पालकलक्षणानि पालकगृहीतगजलक्षणानि चाभिधायाह पालकाप्यः।

चरस्तत्रोपसर्गाय चरतीत्यभिलक्षयेत्।
बहून् स कुञ्जरान् हन्ति श्रेष्ठं वापि मतङ्गजं ॥
इमां तत्र क्रियां कुर्य्यात् श्रेयोर्थी नृपतिः स्वयं।
पूजयेद्यत्नतो रुद्रं विष्णुं सर्वाश्च देवताः ॥
रात्रौ भूतबलिश्चापि कर्त्तव्यो मांसशोणितैः।
सर्वासु गजशालासु चत्वरेष्वपरेषु च ॥
नगरात्सहसा रात्रौ निर्णयेद्वारणान् बहिः।
दिशि प्राच्यामुदीच्यां वा स्थानं जनमनोरमं ॥
मनोरमतरान् देशानपरेक्षि मतङ्गजान्।
सञ्चार्य्यचरणा राजन् वृक्षभङ्गतृणाशनाः ॥
यथाविधि महामन्त्रैरेकाहारैस्तु संयतैः।
सप्ताहमेव सञ्चार्य्या जपहोमपरायणैः ॥
पुरोहितस्तु कुर्वीत शान्तिं पापप्रणाशनीं।
तर्प्पयित्वा द्विजांस्तत्र दक्षिणाभिश्च पूजयेत् ॥

महीमालाश्च सप्ताहं शुचयः संशितव्रताः ।
एकभक्तं निशि स्नात्वा भुञ्जीरन् हविषोदनैः ॥
वृषभङ्गलक्षणाद्वारानेकस्थाने निवेशयेत् ।
आरण्यकत्वं तेषान्तु सङ्कल्पं मनसा भवेत् ॥
हविस्थानेषु यूथस्तु गावः सप्ताहमेव च ।
वासयेत् सह वत्सैश्च वृषभैर्विंहितैस्तथा ॥
द्वितोरणं निवेश्याथ जलक्षोभयनीरजं ।
स्वस्तिकस्तेषु चैकैकोभवेद्द्रोणोऽथ काञ्चनः ॥
महामात्राश्च तत्रैव स्युस्ते स्थण्डिलवासिनः ।
सुवर्णानां शतञ्चात्र विन्यस्यमुदकं द्विज ॥
सामान्ययज्ञप्रोक्तं यत् स्नानं तदुपकल्पयेत् ।
तोरणे च भवेन्नाय्यं चतुर्मासविधौ तथा ॥
मन्त्रैर्जुहुयाद्विप्रस्तु समिद्भिर्जातवेदसं ।
सामान्ययज्ञं निर्वर्त्त्य यथाप्रोक्तं विधानवित् ॥
मन्त्रैस्तु जुहुयादेतैः समिद्भिर्जातवेदसं ।
इन्द्रैः सह मरुद्भिश्च गजेनैरावतेन च ॥
उत्पातन्तु निरुन्धीयात् उदीच्यां स्नापयेत् गजान् ।
एवं कृत्वा हविःशेषैर्बलिं प्रतिदिशं हरेत् ॥
मन्त्रैस्तैरेव पूर्व्वोक्तैर्द्देवेभ्यस्तेभ्य एव च ।
दक्षिणस्यान्दिशि विप्रो ततो होमं समाचरेत् ॥
नामाग्नये विश्वेभ्यश्च भूतेभ्योऽथ बलिर्मया ।
दक्षिणायां वारुणन्तु हरिद्रात्तोदनं बलिं ।
द्विजो मन्त्रमिमं राजन् नियतैः सुस्तनैर्जपन् ॥

ये च पश्चिमायान्दिशि समाश्रिता रुद्रा रुद्रमनुष्याः रौद्राणि च भूतानि रोगाणि व्याधयश्च येत्वारोग्यं व्याधयो जीवितं चायत्तन्तेभ्य एष बलिः।

पूर्वोत्तरायान्दिशि तु हुत्वाहरेन्द्रायौदनं।

सुसमाहितो बलिं हरेद्यथान्यायमिमंमन्त्रं विप्रो यत्नेन योजयेदिति नमो राक्षस-पिशाच-गन्धर्व-रक्षोभ्यो येषु पित्रं संस्पर्श एष प्राणाश्चायत्तास्तेभ्य एष बलिरिति बलिं सर्वेभ्यो दिशमिमं मन्त्रमुदीरयेत्।

अग्नये पार्थिवानां सत्वानामपार्थिवानां सत्वानामधिपतये एष ते बलिः वायोरान्तरिक्षाणां सत्वानामधिपतये एष ते बलिः।

रुद्राय च यथान्यायं क्रमेणोपहरेद् बलिं।

ये वृक्षेषु ये तीर्थेषु ये वीथिषु तेभ्यो नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो हराम्यहं।

येऽन्तरिक्षे ये निविष्टास्तु पृथिव्यां ये च संश्रिताः।
तेभ्यो नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो बलिमेभ्यो हराम्यहं॥
हुत्वा हुत्वा बलिं सम्यक् द्विजातीन् स्वस्तिवाच्य च।
पूर्वोक्तेन विधानेन रागान्नीराजते क्रमात्॥
दत्त्वावगाहन्तेषान्तु ततस्तोरं परं नयेत्।
द्वारे द्वितीये नीराज्यास्तेनैव विधिना पुनः॥
नीराजयेच्च पश्चाहं यथा राजजनन्ततः।
सप्तमे संप्रवेश्यैतान् कृतकौतुकमण्डलान्॥
गीतवादित्रशब्दैश्च सद्विजान् स्वस्तिवाच्य च।
सर्वबीजैः फलैः पुष्पैः माल्यगन्धैश्च पूजितान्॥

सहिरण्यांस्ततः कुम्भान् शालाद्वारेषु विन्यसेत् ।
संसृष्टालङ्कृतान् कृत्वा सर्वसम्भारपूजितान् ॥
भरद्वाजो मरुद्भिश्च रुद्रोभूप उदाहृतः ।
तथा पुनश्च शालायां क्षेममङ्गलसम्भृतां ॥
प्रविशंश्चानिरुद्धस्तु स्तम्भे तिष्ठन् शरच्छतं ।
अरोगी बलवान् भूयो राज्ञश्च च विजयावहः ॥

तथा ।

अङ्गस्तु राजा चम्पायां पालकाप्यं स्म पृच्छति ।
चातुर्मासीषु सर्वासु कथन्नीराजयेद्गजान् ॥
प्रब्रूहि पृष्टमेतन्मे यथावन्मुनिसत्तम ।
संपृष्टस्त्वङ्गराजेन पालकाप्यस्ततोऽब्रवीत् ॥
इदं शृणु महाराज यस्मात्त्वं परिपृच्छसि ।
रोगाश्च नैर्ऋतिश्चैव तथा रक्षांसि पन्नगाः ॥
पिशाचा गुह्यकाश्चैव गन्धर्वा राक्षसास्तथा ।
दानवाश्चैव यक्षाश्च कौमाराश्चापि ये ग्रहाः ॥
ये अघोरा जयाद्याश्च ये च रुद्राश्च देवताः ।
उपसर्गाश्च ये केचित् पीड़ानक्षत्रजाश्च ये ॥
बलिं वा भोक्तुकामाश्च हन्तुकामास्तथाऽपरे ।
तथा क्रीड़ितुकामाश्च घोररूपा महाग्रहाः ॥
देवोपघाता ये चान्ये तत्र शान्तिं व्रजन्ति ते ।
एतदर्थं महीपाल गजनीराजनी स्मृता ॥
कार्त्तिकी प्रथमा राजन् द्वितीया फाल्गुनी तथा ।
आषाढी तु तृतीया स्यात् तिस्रो नीराजनाः स्मृताः ॥

चतुर्मासी भवेत् कुर्य्याद् गजानां हितमिच्छता (१)।
यथार्ह देवतानाञ्च सिद्धानाञ्च बलिं हरेत्॥
उष्ट्रान् पिकांश्च जालांश्च धान्यन्दधि घृतं मधु।
पायसं मधु कल्माषं लोहितान्नं गुड़ोदनं।
सुप्रतिष्ठं भद्रपीठं दिव्यमाल्यानुलेपनं॥
शीर्षायान् हरितान् दर्भान् विप्राणाञ्चैव भोजनं।
नवं शिवञ्च विधिवद्गजोपस्करमाहरेत्॥
आक्रान्तन्तगरोशीरं प्रियङ्गुञ्चोपराजयेत्।
सर्वरत्नौषधैश्चापि धूपमाल्याञ्जनानि च॥
रक्षाविधानं कुर्वीत गजानां स्वस्तिवाचनैः।
गमागमेपि कर्त्तव्या शान्तिः सन्ध्याद्वयेपि च॥
पुरोहितो दक्षिणतो जुहुयाद्धव्यवाहनं।
उत्तरे जुहुयाद्वैद्यः शुचिवस्त्रः समाहितः॥
आहतक्षौमवसनः शुचिर्भूत्वा कृताञ्जलिः।
अष्टौ देवान् नमस्कृत्य गजानां स्वस्तिवाच्य च॥
प्रजापतिं च विष्णुञ्च यमञ्चैव शचीपतिं।
रुद्रञ्च बलदेवञ्च वरुणं धनदं तथा॥
सेनापतिं नमस्यामि गजानां स्वामिनां प्रभुं।
यज्ञभाण्डमथानीय यज्ञभूमिं प्रकल्पयेत्॥
पूर्वेणान्तरतो वापि ब्राह्मणानुमते शिवे।
प्रागुदक् प्रवणे देशे स्निग्धौषधिनगे समे॥
प्रदक्षिणोदके चैव सर्वतः सुपरिक्रमे।

१ श्लोकार्द्धमिदं समीचीनं भवितुं नार्हति।

गोमयेनोपलिप्याथ यज्ञभूमिं प्रवेशयेत् ॥
तस्मात्खनरकं तत्र भूमादष्टादरत्नयः(१) ।
नोद्यानदेवोपहतान् नोर्द्ध्वशुष्कान् दृढ़ान् समान् ।
अनुगम्यान्नवान् हृद्यान् ऋजुवृत्तानसुस्थितान् ।
उत्सेधान् द्वादशारत्नीन् वारयीत विचक्षणः ॥
हस्त्यागाराणि सर्व्वाणि गोमयेनोपलेपयेत् ।
शुचीनि कारयित्वा षट् बलिभिश्च विभूषयेत् ॥
स्थानेषु पुष्पमालाश्च करणे तोरणानि वा ।
राजाथ प्राजनान् सर्व्वान् गृहीत्वा चाक्षतोदकं ।
प्रोक्षयेत् स्तम्भमूलानि धरणीं परिघास्तथा ।
परिकर्म्मिणः सुस्नाताः शुचयः शुक्लवाससः ॥
यावन्निर्व्वाणकाले तु जलाभ्यासं नयेद्गजं ।
शान्तिञ्च जुहुयात्तत्र ब्राह्मणांश्चैव वाचरेत् ॥
द्रव्याणि हस्त्यागाराणि तथा प्रस्रवणानि च ।
वरुणं तीर्थकन्याश्च नागानुदकदैवतान् ॥
सागरान् सरितश्चैव उदपानं सरांसि च ।
तड़ागानि च सर्व्वाणि सुरानभ्यर्च्चयच्छुचिः ॥
प्रायश्चित्तानि कृत्वा च ततः प्रस्थापयेद्गजं ।
सर्व्वरत्नौषधैर्बीजैः पूर्णैश्चैव विचक्षणः ॥
चन्दनैश्च यथा प्रोक्तैः स्नापयेदृतुपूर्व्वशः ।
स्नातस्य तस्य नागस्य कारयेदाहतानि तु ॥
हारिद्रं पिष्टमादाय पूर्व्वात् पश्चाङ्गुलान्यथ ।

१ श्लोकार्द्धमिदं न सम्यक् प्रतिभाति ।

मङ्गलानि च सर्व्वाणि कारयेत्तु विचक्षणः॥
रोचनया प्रियं यच्च सम्यग्ग्रामं समालभेत्।
अङ्कि स्वलङ्कृतं हृष्टं तुर्य्याभिः समवत्सरेत्॥
शोभितं वैजयन्तीभिर्न बद्धैः पञ्चरज्जुभिः।
काञ्चना राजता वापि दिव्यवासः समन्विता॥
ग्रथिता क्षौमसूत्रेण नागरीगौरमिश्रिता।
सम्भूता पर्व्वताग्रे च सर्व्वदेवनमस्कृता॥
शतपासीनमुत्कर्षं गजानां स्वस्तये भवेत्।
आरोग्यायैव नागानां नृपस्य विजयाय च॥
मध्ये च स्वस्तिकं कुर्य्यात्स्वस्ति गच्छन्ति कुञ्जराः।
अवकीर्य्य तु लाजैश्च यज्ञभूमिं समन्ततः॥
कुशोदुम्बरशाखाभिः सर्व्वतः परिताड़येत्।
काष्ठैः पलाशजैश्चापि सिद्धकोदुम्बरैस्तथा॥
ज्योतीषिं जनयेद्यावत् समिद्धं वाचकं ततः।
गृहीत्वा चोदकं पात्रं प्रोक्षयेद्धव्यवाहनं॥

अदिते नमस्ते। सरस्वति नमस्ते। देवसवितर्नमस्ते।

उत्तिष्ठाय विवर्द्धस्व प्रभावं त्वरितं मम।
विबोधयत्वप्सरसः सुभद्रस्ताश्च ब्राह्मणाः॥
योगं मम प्रयच्छस्व प्रसन्नो हव्यवाहन।
स्रुवेणाज्यं गृहीत्वाथ शान्तिर्भवतु हस्तिनां॥

स्वाहा। समिधे स्वाहा। स्रुवाय स्वाहा। भूः स्वाहा। भुवः स्वाहा।

बुद्धो बोधय भूतानि ब्रह्माण्डानिलीनसं।

सहस्राक्षं भूतपतिं कुवेरं वरुणं यमं ॥
विष्णुञ्चैव महात्मानं तथा नारदपर्व्वतौ ।
उद्दालकं काश्यपञ्च मरीचिं भृगुमेव च ॥
ऋषिमुख्यान्नमस्यामि सर्व्वानेव कृताञ्जलिः ।
आसिच्याज्याहुतिं तेषां भूयः स्वस्ति गजे पुनः ॥
भवन्त्वरोगाः राजानः समृध्यन्ताञ्च याजकाः ।
द्विजे दानं प्रयच्छन्तु बलारोग्ययशांसि च ॥

स्वाहा ।

दक्षं भूतानि गन्धर्व्वाः ओषध्यश्च दिशोगणाः ।
आदित्यमरुतश्चैव अश्विन्यौ च तथा ग्रहाः ।
गजानां संप्रयच्छन्ति बलारोग्ययशांसि च ॥

स्वाहा ।

ऐरावतं पुष्पदन्तं कुमुदं वामनं तथा ।
पौण्डरीकं नीलवन्तं सार्व्वभौमं सुतेजसं ॥
सुप्रतीकञ्च नागेन्द्रं महाबलिनमेव च ।
महागजांस्तथैवान्यान् नमस्यामि कृताञ्जलिः ॥
आसिच्याज्याहुतिं तेषां भूयः स्वस्ति गजे पुनः ।
भवन्त्वरोगाश्च गजाः समृध्यन्ताञ्च याजकाः ।
प्रयच्छन्तु च नागानां बलारोग्ययशांसि च ॥

स्वाहा ।

आत्रेयं जमदग्निञ्च वसिष्ठं पुलहं क्रतुं ।
दीर्घं वरवरञ्चैव पुलस्त्यं च्यवनं तथा ॥
वेदोत्तमाञ्च स्वाहाञ्च पर्व्वतं चात्र मालिनं ।

हिमवत्प्रमुखश्चापि समेतान् कुलपर्व्वतान् ॥
तथैव सर्व्वतोऽनन्तान् नमस्यामि कृताञ्जलिः।
दिशो दश च ये नागा सर्व्वकालमधिष्ठिताः ॥
भूमिधराः भुजङ्गाश्च नमस्यामि कृताञ्जलिः।
आसिच्याज्याहुतिं तेषां भूयः स्वस्ति गजे पुनः ॥
भवन्त्वरोगाश्च गजा सम्बध्यन्ताश्च याजकाः।
प्रयच्छन्तु च नागानां वर्णारोग्ययशांसि च ॥

स्वाहा।

भूमिधरान् अभिमतान् महातेजान् महाबलान्।
देवदत्तौश्महाभोग्यान् शुचिर्भूत्वा कृताञ्जलिः ॥
अनन्तं प्रथमं वन्दे सर्व्वलोकाभिपूजितं।
कर्कोटकं धूमविषं वासुकिञ्च महाबलं ॥
कालीयञ्चापि वन्दित्वा बलमुत्पलमेव च।
हरिञ्च विद्युज्जिह्वञ्च कवलाश्वतरावुभौ ॥
उद्यन्तमथादित्यं जिह्वायां परिलेहति।
प्रयातं तं पुनश्चापि लाङ्गुलेन निषेवते ॥
अनुर्नाम महाभागः पञ्चशीर्षो महाबलः।
नागो मणिग्रहश्चैव ये चापि धरणीधराः ॥
कुर्व्वन्तु स्वस्ति नागानां निर्व्वाणे तरणे तथा।
अन्तर्भूमौ च ये नागा ये च ये दिशि गोचराः ॥
आसिच्याज्याहुतिं तेषां भूयः स्वस्ति गजे पुनः।
भवन्त्वरोगाश्च गजाः सम्बध्यन्ताश्च याजकाः ॥
संप्रयच्छन्तु नागानां बलारोग्ययशांसि च।

उत्तरेण जपेद्विप्रः सेनान्यमपि कीर्त्तनं॥
सेनापतिं शक्तिधरं गजानां स्वामिनं प्रभुं।
षष्ठीप्रियं क्रौञ्चरिपुं षण्मुखं द्वादशेक्षणं॥
रक्तमाल्याम्बरधरं घण्टाभरणकुण्डलं।
त्र्यम्बकं द्वादशभुजं कार्त्तिकेयं दुरासदं॥
रक्तप्रतिसरं माल्यं प्रक्षतं कामचन्दनैः।
अर्चयेद्गुड़संयावपायसस्वस्तिकादिभिः॥
पूर्व्वदक्षिण दिग्भागं दक्षिणाञ्च दिशं तथा।
तथैव नैर्ऋतीं वन्दे पश्चिमाञ्च दिशं तथा॥
वायव्याञ्चोत्तराञ्चैव तथा पूर्व्वोत्तरां दिशं।
ततोऽर्द्ध्वाञ्च दिशं वन्दे अदितिं देवमातरं॥
अधिश्रये वसन्नागास्तान्नमस्ये कृताञ्जलिः।
आसिच्याज्याहुतिं तेषां भूयः स्वस्ति गजे पुनः॥
भवन्त्वरोगाश्च गजाः समृध्यन्ताञ्च याजकाः।
संप्रयच्छन्तु नागानां वर्णारोग्ययशांसि च॥ स्वाहा।
स्वस्तिकापूपसंयावमधुलाजा घृतं तथा।
हिरण्यञ्च सुवर्णञ्च वासांस्यभिनवानि च॥
मैरेयञ्च सुराचैव वाचैषा वरवारुणी।
गुड़ोदनञ्च मांसञ्च मद्यं कल्माषमेव च॥
सर्व्वमेतदुपन्यस्तं ग्रहाणामग्रतो हितं।
प्रतिगुप्तां सुगुप्तां वा बुभुक्षां वद चास्त्र नः।
संप्रयच्छतु नागानां वर्णारोग्ययशांसि च॥
स्वाहा।

व्यपोहतु च पापानि इह राज्ञः शतं समाः।
त्वया विसृष्टा आरण्या मानुषाणामसङ्गताः॥
अविसृष्टं त्वया नास्ति भोक्तुमर्हसि कामदः।
अपूतिमांसमासारं ह्युपधापरिवर्जितं॥
अनारूढं मनुष्यैस्तु तमारुह्य च कुञ्जरं।
ग्रहणे च यथातत्त्वं सेनान्ये भद्रमस्तु ते।
संप्रयच्छन्तु नागानां वर्णारोग्ययशांसि च॥

स्वाहा।

पादायुधं ताम्रचूडं शतपत्रं मनोरमं।
विचित्रपत्ररत्नाद्यं कुक्कुटं दर्शयामि ते॥
कुक्कुटं मे गृहाण त्वं सेनानि भद्रमस्तु ते।
संप्रयच्छस्व नागानां वर्णारोग्ययशांसि च॥

स्वाहा।

प्रभूतवर्णलाङ्गूलं सर्व्वाङ्गसुसमाहितः।
धौतमामलकं कल्कैः छागं सन्दर्शयामि ते॥
छागं मम गृहाण त्वं सेनान्ये भद्रमस्तु ते।
संप्रच्छस्व नागानां वर्णारोग्ययशांसि च॥

स्वाहा।

सहस्रशूलावनतं देवराजविलेपनं।
प्रवरं सर्व्वमूलानां उशीरं दर्शयामि ते॥
उशीरं मे गृहाण त्वं सेनान्ये भद्रमस्तु ते।
संप्रयच्छस्व नागानां वर्णारोग्ययशांसि च॥

स्वाहा ।

नैराजिनीं त्विमां मालां सहस्राक्षेण धारितां ।
सम्भूतां देवतानाञ्च राक्षसानां मनोहरां ॥
प्रीतिसञ्जननीं देवीं भूतनागनिषेवितां ।
आवाहेषु विवाहेषु चैवनीराजनेषु च ॥
नागानाञ्च प्रवेशेषु सङ्ख्या वारुणी स्मृता ।
सुरा सुगन्धा सुरसा मदोत्करमनोरमा ॥
पूजिता देवमनुजैः प्रसन्नो दर्शयामि ते ।
वारुणीं मे गृहाण त्वं सेनान्ये भद्रमस्तु ते ।
संप्रयच्छस्व नागानां वर्णारोग्ययशांसि च ॥

स्वाहा ।

पुरा देवासुरे युद्धे संग्रामे तारकामये ।
सेनानीः संस्कृतो देवैर्देवानाममितद्युतिः ॥
रक्ष सैन्यं सराजानं सेनान्ये भद्रमस्तु ते ॥
संप्रयच्छस्व नागानां वर्णारोग्ययशांसि च ।

स्वाहा ।

इमे शङ्खा मृदङ्गाश्च कांस्यवाद्यानि यानि च ।
वीणासर्पाणि पणवा गोधा परिवदन्तकाः ॥
आहुता मङ्गलार्थं वै वाद्यन्ते मधुरस्वराः ।
इहैकरात्रं दिवसं विजयाय नृपस्य च ॥
विविधानि च रूपाणि सम्यग्बुद्धा हुताशने ।
हूयमाननिजिनः रक्षार्थं विनिर्दिशेत् ॥
क्रियमाणे क्षयं यान्ति यत्राग्निः हुहुङ्कायते ।

चित्रघ्नः परुषश्चापि वसुगन्धस्तथैव च ॥
अतिवर्णो विचित्रश्च वल्मीकाकृतिसंस्थितः ।
होलिदायी च यो वह्निर्द्विजानां चयमादिशेत् ॥
कूजमानः स्फुलिङ्गाद्यैः राज्ञो रूक्षो विरूपवान् ।
धूमवातयुतश्चाथ वर्णगन्धः समश्च यः ॥
गोसुखाकृतसंस्थानो गवां संचयमादिशेत् ।
चिरेणोत्तिष्ठते यश्च क्षिप्रश्चैव प्रशाम्यति ॥
कृष्णवर्णो विधूमाश्च कृशरागन्ध एव च ।
हूयमानस्तदा वह्निराख्यति नृपतेर्बधं ॥
गृध्रोलूकनिभश्चापि राज्ञो मरणमादिशेत् ।
अव्यक्तवर्णो दुर्गन्धी विप्रकीर्णशिखोऽनलः ॥
क्षिप्रं विनाशयेद्राष्ट्रं सामात्यं सपुरोहितं ।
राज्ञो मरणमेवापि शवगन्धो यदाऽनलः ॥
हीनस्वनो यदा वह्निः कुणपश्च हुताशनः ।
सगन्धः स्याद्विवर्णश्च हतमाख्याति पार्थिवं ।
श्यावः पाटलकश्चैव वह्निर्वधनमादिशेत् ॥
विप्रकीर्णशिखश्चापि वायसप्रतिनिस्वनः ।
राज्ञः कोषस्य नाशाय युवराजवधाय च ॥
तद्विधं कुरुते वह्निरतिधूमोह्यतिस्वनः ।
करे चोरसि दाही च होटवाही च यो भवेत् ॥
तत्रार्थहानिं जानीयात्तस्मिन्नुत्पातदर्शने ।
करीषधूमसङ्काश इन्द्रायुधसमद्युतिः ॥
हस्त्यश्वस्य चयं क्षिप्रं तद्विधो वह्निरादिशेत् ।

कर्व्वूरवर्णो विकृतस्तु तथा चर्म्मसुगन्धिकः॥
जननाशं तदाख्याति हूयमानो हुताशनः।
हविर्हरिद्रावर्णाभो लेपमानो यथाऽनलः॥
निगड़ाकृतिसंस्थानस्तथा शङ्कनिभाकृतिः।
पाशाकृतिनिभश्चापि राज्ञो बन्धनमादिशेत्॥
विच्छिन्नशतमूर्च्छाणामाकृतीरुदितस्वनः।
वामतो यस्य गत्वा च धूमः प्रतिनिवर्त्तते॥
मत्स्यशोणितगन्धानां तुल्यो यज्ञस्य जायते।
राज्ञः पुत्रबधं विद्यात् शास्त्रप्रोक्तैरिमैर्द्विजः॥
अशुभान्यवमादीनि न निवेद्यानि भूपते।
प्रासादाद्रिनिभश्चापि स्त्रीपशुः कलशाकृतिः॥
प्रदक्षिणाकृतिशिखो हंसरवोदधिस्वनः।
शङ्खप्रभमथाश्वानामेव दुन्दुभिनिस्वनः।
सुवर्णरजतप्रख्यः क्षीरपायसगन्धवान्॥
शस्त्राणां कवचानाञ्च वारणानां महीपते।
भासते यस्य चात्यर्थं संग्रामे जयमादिशेत्॥
प्रहृष्टमनसश्चापि शुक्लाम्बरधरा यदि।
ईक्षयेयुः शुभागारन्तद्वैज्जयलक्षणं॥
यदा गुरुस्त्वप्रसन्नो जुहुयाद्धव्यवाहनं।
महाभयं विजानीयात् नृपश्चापि गजादिकं॥
अनन्यवाहनान् पूज्यान् दिव्यलक्षणसंयुतान्।
गदादीनि विशिष्टेन तोयेन स्नापयेद् बुधः॥
अन्यवाहान् द्विपहयान् सर्व्वांस्तेन समाहितान्।

बाह्यकुम्भोदकेनैव स्नापयेत्तत्र साधकः ॥
राज्ञे नीराजनं कुर्य्यात्तदङ्गेषु च मन्त्रवित् ।
अन्येष्वेवम्विधः कार्य्यः स हि रत्नाकरः परः ॥
राजानं वाहनान्यांश्च तथान्यांश्च पुरोहितः ।
सर्व्वालङ्कारसंयुक्तान् सर्व्वमङ्गलसंयुतान् ।
कृत्वानुवाचयेत्पश्चाद् ब्राह्मणैराशिषो बहु ॥
दक्षिणामतुलान्दद्यादृत्विग्भ्यो गुरवे नृपः ।
वाहनञ्च सभूषाढ्यमाचार्य्याय प्रदापयेत् ॥
दासदासीकभृत्येषु ग्रामादिषु च सर्व्वशः ।
सर्व्वालङ्कारसंयुक्तान् राजा वाह्योपरिस्थितान् ॥
सारोहैश्चापि संयुक्तान् मत्तद्विपहयोत्तमैः ।
ब्राह्मणैः स्वस्तिवचनैर्ऋत्विग्भिः सह संयुतैः ॥
आचार्य्यो राजभवनं नृपं संवेशयेत् स्वयं ।
पूर्व्वस्नानविशिष्टेन कुम्भतोयेन मन्त्रवित् ॥
गजशालाञ्च संप्रोक्ष्य वाजिशालान्तथैव च ।
सिद्धार्थतण्डुलतिलैः पुष्पैश्चाप्यवकीर्य्य च ॥
शालामध्ये नृसिंहञ्च सुदर्शनमनामयं ।
पूजयेद् गन्धपुष्पादिसर्व्वालङ्कारसंयुतैः ।
सक्तुभिः कृशरान्नेन कुर्य्याद्भूतवलिं बहिः ॥
ततः शालासु सर्व्वासु ब्राह्मणान् भोजयेद्दलं ।
ततः संवेशने कुर्य्यादाचार्य्यो गजवाजिनं ॥
एवं शान्तिं प्रकुर्व्वीत निमित्ते सति तद्गुरुः ।
परिच्छदस्य नृपतेर्म्मन्त्रवित्सुसमाहितः ॥

सर्व्वकल्याणसंपूर्णः सर्व्वबाधाविवर्ज्जितः ।
सुपुष्टं राज्यतन्त्रन्तु नृपस्तेन महीयते ॥

## इति गजशान्तिः ।

——oo——

गृहमध्ये स्थूणा विरोहेत्कपोतो वागारमध्ये निपतेत् । वायसो वा गृहं प्रविशेत् । गौर्गृहमारोहेत् । गौरात्मानं प्रतिधायेत् । अनड्वान् वा मुदित उल्लिखेदनग्नौ वा धूमो जायते वल्मीकश्चोपजायते छत्राकनिर्य्यासश्चोपजायते । मण्डूकी अन्नष्टो वासयेत् । स्वप्नेऽस्थिदन्तपतने गृहपतिजायां सहोपतयद्विन्देत अन्येषु वा गृहोत्पातेषु अगदेयजनोल्लेखनप्रत्यग्निमुखान् कृत्वा स्थालीपाकं जुहोति । यत इन्द्रभयामह इति पुरोऽनूच्य स्वस्तिदाविशस्पतिरितियाज्यया जुहोत्याज्याहुतीरुपजुहोति व्यस्ते व्याख्याते । शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्न इन्द्रावरुणारातहव्या । शमिन्द्रासो मासुवितायशंयोः शन्नः इन्द्रापूषणावाजसातौ । कयानश्चित्र आभुवको अद्ययुक्त भवानश्चः समनसाविति । स्विष्टिकृत् प्रभृतितुष्टामा धेनूवरप्रदानन् ।

अथास्त्रेण शमीपत्रेषु हुतशेषं निदधाति ॥

शन्नोदेवी रभिष्टये आपो भवन्तु पीतये शंयोरभिस्रवन्तु नः । इति स्थालीसंचालनमाज्यशेषमुदकशेषञ्च पात्रां समानीय एतेषूत्पातेषु उत्पन्नेषु विनयेत् । प्रोक्षेद्वा तच्छंयोरावृणीमह इति ।

अन्नं संस्कृत्य ब्राह्मणान् संपूज्याशिषो वाचयित्वा शिवं शिवमित्यद्भुतो व्याख्यातः।

अरुण उवाच।

——ooOoo——

नानारोगहतानाञ्च आहितानां तथारिभिः।
आदित्याराधनं मुक्ता नान्यच्छ्रेयस्करं परं॥
तस्मादाराधयादित्यं सर्व्वरोगविनाशनं।
ग्रहोपघातहन्तारं सर्वोपद्रवनाशनं॥
पूजयानो जगन्नाथं भास्करं तिमिरापहं।
सूर्य्याग्निकार्यं सततं सिध्यर्थं सुखमाचरेत्॥
महाशान्तिरितिख्यातं सर्वोपद्रवनाशनं।
ग्रहोपघातहन्तारं दृढ़कायकरं परं॥
यत् कृते मम सूर्य्येण पुरा शान्त्यर्थमादरात्॥
सर्व्वपापहरं पुण्यं महाविघ्नविनाशनं॥
महोदयं शान्तिकरं लक्षहोममिति स्मृतं।
तालध्वजपताकाय महावस्त्राय ते नमः॥
स्वाहेति च दानायेह आहुतिं विसृजेद् बुधः।
महोदराय श्वेताय पिङ्गाक्षाय महामते॥
स्वाहा पद्माधिपतये आहुतिं विसृजेद् बुधः।
उत्तरादिङ्मुखायेह महादेव प्रियाय च॥
श्वेताय श्वेतवर्णाय त्रिविदाय नमो नमः।
शान्ताय शान्तरूपाय पिनाकवरधारिणे॥
ईशानदिङ्मुखायेह स्वाहा ईशान आहुतिं।

विसृजेत् खगशार्दूल विधिवत्पावकोपम ॥
हुते देवं महात्मानं पावकं विधिवन्नृप ।
लोकपालमुखं देवं विशाङ्कं यावदादरात् ॥
एवं हुताग्निकार्य्यञ्च स्वैरं खगवरोत्तम ।
लक्षहोमञ्च विधिवत्ततः शान्तिं समाचरेत् ॥
भूर्भुवः स्वरिति स्वाहा लक्षहोमविधिः स्मृतः ।
महाहोमे च वै सौर एष एव विधिः परः ॥
कृत्वैवमग्निकार्य्यन्तु सौरं खगवरोत्तम ।
लक्षहोमञ्च विधिवत्ततः शान्तिं समाचरेत् ॥
सिन्दूरारुणरक्ताभः पद्मरक्तान्तलोचनः ।
सहस्रकिरणो देवः सप्ताश्वरथवाहनः ॥
गभस्तिमाली भगवान् सर्व्वलोकनमस्कृतः ।
करोति ते महाशान्तिं ग्रहपीड़ानिवारिणीं ॥
सुचक्ररथमारूढ़ः अपां सारमयोऽम्बुजः ।
सप्ताश्ववाहनो देवः शान्तये त्वमृतप्रभुः ॥
शीतांशुरमृतांशुश्च चयवृद्धिसमन्वितः ।
सोमः सौम्येन भावेन ग्रहपीड़ां व्यपोहतु ॥
तप्तगैरिकसङ्काशः सर्व्वशास्त्रविशारदः ।
सर्व्वदेवगुरुर्विप्रो अथर्व्वर्षिवरः परः ॥
बृहस्पतिरितिख्यातो अर्थशास्त्रपरश्च यः ।
शान्तेन चेतसा शान्तिः परेण सुसमाहितः ॥
ग्रहपीड़ां विनिर्ज्जित्य करोतु तव शान्तिकं ।
सूर्य्यार्चनपरो नित्यं प्रसादाद्भास्करस्य च ॥

हिमकुन्देन्दुवर्णाभदैत्यदानवपूजितः।
महेश्वरस्तुतो वीरो महासौरो महामुनिः॥
सूर्य्यार्चनपरो नित्यं शुक्रः शुक्रनिभः सदा।
नीतिशास्त्रपरो नित्यं ग्रहपीडां व्यपोहतु॥
भिन्नाञ्जनचय प्रख्यश्छायाजः सुमहाद्युतिः।
सूर्य्यपुत्रः सूर्य्यरतो ग्रहपीडां व्यपोहतु॥
नानारूपधरोऽव्यक्तः रविज्ञानरतिश्च यः।
नोत्पत्तिर्जायते तस्य नोदयः पण्डितैरपि॥
एकमूलो द्विमूलश्च त्रिशिखः पञ्चचूडकः।
सहस्रशिखरूपश्च इन्द्रकेतुरिव स्थितः॥
सूर्य्यपुत्रोऽग्निपुत्रश्च ब्रह्मविष्णुशिवात्मजः।
अनेकशिखरः केतुः स ते रुजं व्यपोहतु॥
एते ग्रहाः महात्मानः सूर्य्यार्चनपराः सदा।
शान्तिं कुर्व्वन्ति मे हृष्टाः सदा कालहितैषिणः॥
पद्मासनः पद्मवर्णः पद्मपत्रदलेक्षणः।
कमण्डलुधरः श्रीमान् देवगन्धर्व्वसेवितः॥
चतुर्मुखो देवपतिः सूर्य्यार्चनपरः सदा।
सुरश्रेष्टो महातेजाः सर्व्वलोकप्रजापतिः॥
ब्रह्मशब्देन दिव्येन ब्रह्माशान्तिं करोतु वै।
निष्कालतत्त्वविज्ञो यः कालवित् कालतत्परः॥
पीताम्बरधरो देव आत्रेयीवरदः सदा।
शङ्खचक्रगदापाणिः श्यामवर्णश्चतुर्भुजः॥
बलिः साक्षात्कृतो येन वनेषु परयैव यः।

यज्ञदेवोत्तमो देवो माधवो मधुसूदनः॥
सूर्य्यभक्त्यान्वितो नित्यं विगतिर्विगतिप्रियः।
सूर्य्यध्यानपरो नित्यं विष्णुः शान्तिं करोतु मे॥
हेमकुन्देन्दुसङ्काशो गोश्रुत्याभरणोऽरिहा।

गोश्रुतयः सर्पाः।

चतुर्भुजो महातेजाः पुष्पेन्दुः शशिशेखरः।
चतुर्मुखो भस्मधरः श्मशाननिलयः सदा॥
मात्राणां नियतश्चैव तथ च क्रतुसूदनः।
वरो वरेण्यो वरदो देवदेवो महेश्वरः॥
त्रैलोक्यनमितः श्रीमानादित्याराधने रतः।
आदित्यपरमो नित्यमादित्यध्यानतत्परः॥
आदित्यदेहसम्भूतः स मे शान्तिं करोतु वै।
पद्मरागनिभा देवी चतुर्वदनपङ्कजा।
अक्षमालार्पितकरा कमण्डलुधरा शुभा॥
ब्रह्माणी सौम्यवदना आदित्याराधने रता।
शान्तिं करोतु ते प्रीत्या आशीर्व्वादपरा खग॥
महाश्वेतेति विख्याता आदित्यदयिता सदा।
महाश्वेतेति सैत्यस्मिन् ख्यातिं लोके गता खग॥
हिमकुन्देन्दुसदृशी महावृषभवाहिनी।
त्रिशूलहस्ताभरणा गोश्रुत्याभरणा सती॥
चतुर्भुजा चतुर्व्वक्त्रा त्रिनेत्रा पापनाशिनी।
वृषध्वजा यानरता रुद्राणी शान्तिदाऽस्तु मे॥
मयूरवाहना देवी सिंहवाहणविग्रहा।

शक्तिहस्ता महाकाया सर्व्वालङ्कारभूषिता ॥
सूर्य्यरक्ता महावीर्य्या वनवासपरा सदा।
कौमारी वरदा देवी शान्तिं सातु करोतु ते॥
कञ्जचक्रधरा श्यामा पीताम्बरधरा खग।
चतुर्भुजा च या देवी चतुर्वदनपङ्कजा ॥
सूर्य्यार्चनरता नित्यं सूर्य्यैकगतमानसा।
शान्तिं करोतु ते नित्यं सर्व्वासुरविमर्द्दनी॥
ऐरावतगजारूढ़ा पविहस्ता महाबला।

पविर्वज्रं।

सहस्रलोचनादेवी वर्णितश्यम्पकेस्वगा ॥
सिद्धगन्धर्व्वनमिता सर्व्वाभरणभूषिता।
इन्द्राणी ते सदा वीर शान्तिमाशु करोतु वै ॥
वराहरूपा विकटा वाराहवरवर्णिनी।
श्यामावदाता या देवी शङ्खचक्रगदाधरा।
तर्जयन्तीह निःशेषं पूजयन्ती सदा रविं॥
वाराही वरदा देवी तव शान्तिं करोतु वै।
अर्द्धकेशोत्कटामाचा निर्मांसा स्नायुबन्धना ॥
करालवदना घोरा खड्गघण्टोद्यता सती।
कपालमालिनी घोरा खट्वाङ्गवरधारिणी॥
आरक्तपिङ्गनयना गजचर्म्मावगुण्ठिता।
गायदाभरणा देवी श्मशानविनिवासिनी।
शिवा रूपेण घोरेण शिवाराधभयङ्करी॥
चामुण्डा चण्डरूपेण सदा रक्षाङ्करोतु मे।

चण्डमुण्डकरा देवी चण्डमुण्डगता सती ॥
आकाशमातरो देव्यस्तथा लोकस्य मातरः ।
भूतानां मातरः सर्व्वास्तथा च पितृमातरः ॥
वृद्धश्चैस्तु पूज्यन्ते तास्तु देव्यो मनीषिभिः ।
मात्रे प्रमात्रे तन्मात्रे इति मातृमुखास्तु ताः ॥
पितामही तु तन्माता वृद्धा या च पितामही ।
इत्येतास्तु पितामह्यः शान्तिं ते पितृमातरः ॥
सर्व्वमातृमुखादेव्यः स्वायुधाः शस्त्रपाणयः ।
जगद्व्याप्य प्रतिष्ठन्त्यो बलिकामा महोदयाः ॥
शान्तिं कुर्व्वन्तु ते नित्यमादित्याराधने रताः ।
शान्तेन चेतसा शान्ता शान्ता त्वं भव शान्तिदा ॥
सर्व्वावयवयुक्तेन गात्रेण तनुमध्यमा ।
पीतश्यामादिसौम्येन चित्रलेखेव शोभिता ॥
ललाटतिलकोपेतचन्द्रलेखाश्च धारिणी ।
चित्राम्बरधरा देवी सर्व्वाभरणभूषिता ॥
वरा स्त्रीमयरूपाणां शुभा गुणमहाखदं ।
सर्व्वमन्त्रे तु सन्तुष्टा उमा देवी वरप्रदा ॥
साक्षादागत्य रूपेण शान्तेनामिततेजसा ।
शान्तिं करोतु ते प्रीत्या आदित्यचरणे रता ॥
अवलाबालरूपेण षड्वक्त्रः शिखिवाहनः ।
पूर्णेन्दुवदनः श्रीमान् त्रिशिखः शक्तिमान् विभुः ॥
कृत्तिकापत्यरूपेण समुद्दीप्तः सुरार्चितः ।
कार्त्तिकेयो महातेजा आदित्याद्वरदर्पितः ॥

शान्तिं करोतु सततं फलं सौख्यञ्च सम्पदः।
आत्रेयीमवलां जन्म तथारोग्यं खगाधिप:॥
श्वेतवस्त्रपरीधानस्ताम्र्यश्च कनकप्रभुः।
शूलहस्तो महाप्राज्ञो नन्दीशो रविभावित:॥
शान्तिं करोतु ते शान्तो धर्म्मं मतिमनुत्तमां।
धर्म्म तरतु भो नित्यमचलं संप्रयच्छतु॥
महोदरो महाकायो गजवक्त्रो महाबलः।
नागयज्ञोपवीतेन नागाभरणभूषित:॥
सर्व्वार्थसम्पदाधारो गणाध्यक्षो वरप्रदः।
भीमगात्रो भवो देवो नायकोऽथ विनायकः।
करोतु ते महाशान्तिं प्रीतिं प्रीतेन चेतसा॥
पीताम्बरधरा कन्या नानालङ्कारभूषिता।
यमुना त्वाम्बिका पुण्या सर्व्वलोकनमस्कृता॥
सर्व्वसिद्धिकरा देवी प्रसादात्परमा परा।
शान्तिं करोतु ते माता भुवनस्य खगाधिप॥
त्रिगुणात्मेन सर्व्वेण महामहिषमर्द्दनी।
धनुः-शक्ति-प्रहरण-खड्ग-पट्टिशधारिणी॥
आर्जवेनोद्यतकरा सर्व्वोपद्रवनाशिनी।
शान्तिं करोतु ते सौरा दुर्गा भगवती शिवा॥
निर्म्मांसेन शरीरेण स्नायुरज्जुनिबन्धन:।
अतिसूक्ष्मोऽतिव्यक्तो यः अक्षोभः किरीटी महान्॥
सूर्य्यात्मको महावीर्य्यः सूर्य्ये च कृतमानसः।
सूर्य्यभक्तिपरो नित्यं स ते शान्तिं प्रयच्छतु॥

प्रचण्डगणसैन्योऽसौ महाकटाक्षधारकः ।
अक्षमालार्पितकरस्त्वाक्षश्चण्डेश्वरो वरः ॥
चण्डपापहरो नित्यं ब्रह्महत्यादिनाशनः ।
शान्तिं करोतु ते नित्यं आदित्याराधने रतः ।
करोतु च महायोगी कल्यान्तास्ताः परस्परम् ॥
आकाशे मातरो देव्यस्तथा लोकस्य मातरः ।
भूतानां मातरः सर्व्वास्तथा देवस्य मातरः ॥
सूर्य्यार्चनपरा देव्यो जगद्व्याप्य व्यवस्थिताः ।
शान्तिं कुर्व्वन्तु ते नित्यं मातरः सुरपूजिताः ॥
ये रौद्रा रौद्रकर्म्माणो रौद्रस्थाननिवासिनः ।
मातरो रौद्ररूपाश्च गणानामधिपाश्च ये ॥
विघ्नभूतास्तथा चान्ये दिवि दिक्षु समाश्रिताः ।
सिद्धिं कुर्व्वन्तु ते नित्यं भयेभ्यः पान्तु सर्व्वदा ॥
ऐन्द्रां दिशि गता ये तु वज्रहस्ता महाबलाः ।
हिमकुन्देन्दुपट्टीशनील-कृष्टाङ्गलोहिताः ॥
दिव्यान्तरिक्षा भौमाश्च पातालतलवासिनः ।
सूर्य्यार्चनरता ऐन्द्राः शान्तिं कुर्व्वन्तु ते सदा ॥
आग्नेय्यां ये स्थिताः सर्व्वे स्रुतहस्तानुषङ्गिनः ।
सूर्य्यभक्तास्तु रक्तास्तु तथा वै रक्तभूषणाः ॥
दिव्यान्तरिक्षा भौमाश्च आग्नेया भास्करप्रियाः ।
आदित्याराधनपराः शं प्रयच्छन्तु ते सदा ॥
याम्यां दिशि गता ये तु सततं दण्डपाणयः ।
कृष्णाङ्गाः कृष्णनेपथ्याः वरा वै कृष्णलोहिताः ॥

दिव्यान्तरिक्षा भौमाश्च यमस्यानुचराः खग।
आदित्याराधनपराः शं प्रयच्छन्तु ते सदा॥
नैर्ऋत्यां संस्थिता ये तु राक्षसा मृत्युपाणयः।
नीलाङ्गा नीलवर्णाश्च तथा वै नीललोहिताः॥
दिव्यान्तरिक्षा भौमाश्च विरूपाक्षानुगामिनः।
आदित्यस्यार्चने नित्यं कुर्व्वन्त्वारोग्यमुत्तमं॥
अपरस्यां वरा ये तु सततं कर्म्मपाणयः।
कर्म्माभाः कर्म्मरूपाश्च सदा क्षणिकवीक्षणाः॥
दिव्यान्तरिक्षा भौमाश्च अदित्याराधने रताः।
कुर्व्वन्तु ते सदा शान्तिं वारुणा वरुणानुगाः॥
वायव्यां संस्थिता नित्यं महावेगास्वराः खगाः।
पीताक्षाः पीतनिर्भासास्तथा वै पीतलोहिताः॥
दिव्यान्तरिक्षा भौमाश्च आदित्याराधने रताः।
सूर्य्यव्रताः सुमनसः शान्तिं कुर्व्वन्तु ते सदा॥
उत्तरायां दिशि गताः सततं निधिपाणयः।
गिरिकाक्षाः कस्तूरिकास्तथा वै कृष्णलोहिताः॥
दिव्यान्तरिक्षा भौमाश्च अलकाधिपवल्लभाः।
आदित्याराधनपराः शं प्रयच्छन्तु ते सदा॥
ऐशान्यां संस्थिता ये च प्रशान्ताः शूलपाणयः।
भस्मोद्धूलितदेहाश्च नीलकङ्कणलोहिताः॥
दिव्यान्तरिक्षा भौमाश्च पातालतलवासिनः।
सूर्य्यपूजापरा नित्यं शान्तिं कुर्व्वन्तु ते सदा॥
लोकपालानुगा ह्येते महाबलपराक्रमाः।

आदित्यं पूजयित्वा तु बलिमेषां विनिक्षिपेत् ॥
ततः सुशान्तमनसो लोकपालसमन्विताः ।
आत्रेयीसबलाः सर्व्वे शं प्रयच्छन्तु पूजिताः ॥
अमरावती नाम पुरी पूर्व्वभागे व्यवस्थिता ।
विद्याधरगणाकीर्णा सिद्धगन्धर्व्वसेविता ।
रत्नप्राकाररुचिरा महारत्नोपशोभिता ॥
तत्र देवपतिः श्रीमान् वज्रपाणिर्महाबलः ।
गोपतिर्गोसहस्रेण शोभमानेन शोभते ॥
ऐरावतगजारूढो गैरिकाभो महाद्युतिः ।
इन्द्रः सहस्रनयनः आदित्याराधने रतः ॥
सूर्य्यध्यानैकपरमः सूर्य्यभक्तिसमन्वितः ।
सूर्य्यप्रणामपरमः शान्तिं ते शीघ्रमृच्छतु ॥
आग्नेये दिग्विभागे तु पुरी तेजवती सदा ।
नानादेवगणाकीर्णा नानारत्नोपशोभिता ॥
तत्र ज्वालासमाकीर्णो दीप्ताङ्गारसमद्युतिः ।
पुरा गोदेहिनां देहे ज्वलनं पापनाशनं ॥
आदित्याराधनपरा आदित्यगतमानसाः ।
शान्तिं करोतु ते देवा अथ पापपरिक्षयं ॥
वैवस्वती पुरी रम्या दक्षिणे च महात्मनः ।
सुरनाथगणाकीर्णा पितृरक्षोगणाकुला ॥
तत्रेन्द्रनीलसङ्काशो रक्तान्तायतलोचनः ।
महामहिषमारूढो रक्तस्रग्वस्त्रभूषणः ॥
अन्तकोऽथ महातेजाः सौरधर्म्मपरायणः ।

आदित्याराधनपरः क्षेमारोग्यं ददातु मे ॥
नैर्ऋते तु दिशो भागे पुरी कृष्णेति विश्रुता ।
महारक्षोगणाकीर्णा पिशाचप्रेतसंकुला ॥
तत्र स्कन्दनिभो देवो रक्तस्रग्वस्त्रभूषणः ।
खड्गपाणिर्महातेजाः करालवदनोज्ज्वलः ॥
राक्षसेन्द्रो वसेन्नित्यं आदित्याराधने रतः ।
करोतु ते महाशान्तिं धनं धान्यञ्च यत्नतः ॥
पश्चिमे तु दिशां भागे पुरी शुद्धवती शुभा ।
ऋषिसिद्धगणाकीर्णा नानारत्नसुशोभिता ॥
तत्र कुन्देन्दुसंकाशो हरिः पिङ्गललोचनः ।
शुक्लाम्बरधरो देवो पाशहस्तो महाबलः ॥
वरुणः परया भक्त्या आदित्यगतमानसः ।
रोगकाशादिसंकाशं तापं निर्व्वापयत्वथ ॥
वायव्ये दिग्विभागे तु पुरी गन्धवती शुभा ।
ऋषिसिद्धगणाकीर्णा हेमप्राकारतोरणा ॥
तत्र होश्वरदेहस्तु कृष्णः पिङ्गललोचनः ।
पृथिव्याः प्रान्तसन्तानो ध्वजयष्ट्यायुधोच्छ्रितः ॥
चरमः परमो देवो ग्रहेशश्च परात्परः ।
क्षेमारोग्यं बलं शान्तिं करोतु सततं तव ॥
महोदया नाम पुरी मन्दरेण महोदया ।
नानायक्षसमाकीर्णा नानारत्नोपशोभिता ॥
तत्र देवो गदाहस्तश्चित्रस्रग्वस्त्रभूषणः ।
ह्रस्वबाहुर्महातेजा हरिः पिङ्गललोचनः ॥

शान्तिं करोतु ते प्रीतः शान्तः शान्तेन चेतसा ।
यशोवती पुरी रम्या ऐशानीं दिशमाश्रिता ॥
नानागणसमाकीर्णा नानाकृतसुरालया ।
तेजःप्राकारपर्य्यन्ता अनौपम्या महोज्ज्वला ॥
तत्र कुन्देन्दुसंकाशो अङ्गरागविभूषितः ।
त्रिनेत्रः शान्तरूपात्मा अक्षमालाधरो वरः ।
ईशानः परमो देवः सदा ते शान्तिमृच्छतु ॥
उमापतिर्महातेजाश्चन्द्रार्द्धकृतशेखरः ।
भूर्लोके च भुवर्लोके स्वर्लोके निवसन्ति ये ।
देवी देवीसमाकीर्णा शान्तिं कुर्व्वन्तु ते सदा ॥
महर्लोके जनोलोके तपोलोके च ये स्थिताः ।
ते सर्व्वे मुदिता देवाः शान्तिं कुर्व्वन्तु ते सदा ॥
सत्यलोके तु ये देवास्त्वथ भोज्ज्वलविग्रहाः ।
सूर्य्यभक्ताः सुमनसो भयं निर्नाशयन्तु ते ॥
गिरिकन्दरदुर्गेषु वनेषु निवसन्ति ये ।
सूर्य्यार्चनपरा देवा रक्षां कुर्व्वन्तु ते सदा ॥
शरच्चन्द्रातिगौरेण देहेनामलतेजसा ।
सरस्वती सूर्य्यभक्ता शान्तिं यच्छतु ते सदा ॥
या तु चामीकरच्छाया सरोजकरपल्लवा ।
सूर्य्यभक्ता श्रिया देवी शान्तिं यच्छतु ते सदा ॥
हारेण सुविचित्रेण भास्वत्कनकमेखला ।
अपराजिता सूर्य्यपरा करोतु विजयं तव ॥
कृत्तिका परमा देवी रोहिणी च वरानना ।

श्रीमन्मृगशिरो भद्रमार्द्रा च परमोज्ज्वला॥
पुनर्व्वसुस्तथा पुष्याः अश्लेषा च तथा खग।
सूर्य्यार्चनरता नित्यं सूर्य्यभावेन भाविताः।
पूर्व्वभागे स्थिता ह्येताः शान्तिं कुर्व्वन्तु ते सदा।
नक्षत्रमातरो ह्येताः कुर्व्वन्तु रविनोदिताः॥
अनुराधा ततो ज्येष्ठा मूलं सूर्य्यपरं तथा।
पूर्व्वाषाढ़ा महावीर्य्या आषाढा चोत्तरा तथा॥
अभिजिन्नाम नक्षत्रं श्रवणश्च बहुश्रुतं।
एताः पश्चिमतो दीप्ता राजन्ते चानुमूर्त्तयः॥
भास्करं पूजयन्त्येताः सर्व्वकालं सुभाविताः।
शान्तिं कुर्व्वन्तु ते नित्यं विभूतिञ्च महाधिकां॥
धनिष्ठा शतभिषा या तु पूर्व्वभाद्रपदा तथा।
उत्तराभाद्ररेवत्यावश्विनी च महामते।
भरणी च महादेवी नित्यमुत्तरतःस्थिता॥
सूर्य्यार्चनरता नित्यमादित्यगतमानसाः।
शान्तिं कुर्व्वन्तु ते नित्यं विभूतिञ्च महार्हकां॥
वृषो वृषाधिपः सिंहराशिर्दीप्तिमतां वरः।
पूर्व्वेण भासयन्त्येते सूर्य्ययोगपराः शुभाः।
शान्तिं कुर्व्वन्तु ते भक्त्या सूर्य्यपादाब्जपूजकाः॥
धनुः कन्या च परमा मकरश्चापि ऋद्धिमान्।
एते दक्षिणभागे तु पूजयन्ति रविं सदा॥
तुला मिथुनकुम्भाश्च पश्चिमेन व्यवस्थिताः।
सूर्य्यपादार्चनरताः शान्तिं कुर्व्वन्तु ते सदा॥

कर्कटो वृश्चिको मीन एते उत्तरतः स्थिताः ।
यजन्त्येते महाकालमादित्यं ग्रहनायकं ।
शान्तिं कुर्व्वन्तु ते नित्यं स्वस्वोक्तध्यानतत्पराः ॥
यतयः कृतपुण्याश्च ये स्मृताः सततं बुधैः ।
ऋषयः सप्तविंशाद्याः प्रशान्ताः परमोज्ज्वलाः ।
सूर्य्यप्रसादसम्पन्नाः शान्तिं कुर्व्वन्तु ते सदा ॥
कश्यपो गालवो गार्ग्यो विश्वामित्रो महामुनिः ।
मनुर्द्दक्षो वसिष्टश्च मार्त्तण्डः पुलहः क्रतुः ॥
नारदो भृगुरात्रेयो भरद्वाजोऽङ्गिरा मुनिः ।
वाल्मीकः कौशिकः कण्वः शालव्योऽथ पुनर्वसुः ॥
शालङ्कायन इत्येते ऋषयो वै खगाधिप ।
सूर्य्यध्यानैकपरमा आदित्याराधने रताः ॥
तारकोऽग्निमुखो दैत्यः कालनेमिर्म्महाबलः ।
एते दैत्या महात्मानः सूर्य्यभावेन भाविताः ॥
पुष्टिं बलं तथारोग्यं प्रयच्छन्तु सुरारयः ।
वैरोचनो हिरण्याक्षः सुपर्व्वा वसुलोचनः ॥
मधुकुन्दो मुकुन्दश्च दैत्यो रैवतकस्तथा ।
भावेन परमेणापि वक्त्रान्तायतलोचनः ।
महाभोगकृताटोपः शङ्खान्तकृतलक्षणः ॥
अनन्तो नागराजेन्द्र आदित्याराधने रतः ।
महापापचयं हत्वा शान्तिमाशु करोतु ते ॥
अतिश्वेतशरीरेण स्फुरन्मौक्तिकसन्निभः ।
नित्यं राजश्रिया युक्तो वासुकिः शान्तिमृच्छतु ॥

अतिपीतेन वस्त्रेण विस्फुरन् भोगसम्पदा।
तेजसा चापि दिव्येन कृतस्वस्तिकलाञ्छनः॥
नागराट् तक्षकः श्रीमान् नायकौघसमन्वितः।
करोतु ते महाशान्तिं सर्व्वदोषविषापहः॥
अतिकृष्णेन वर्णेन जटाविकटमस्तकः।
कण्ठे रेखात्रयोपेतो घोरदंष्ट्रायुधोद्यतः॥
कर्कोटको महाभागो विषदर्पहलान्वितः।
विवसन् सर्व्वसन्तापं हत्वा शान्तिं करोतु ते॥
पद्मवर्णेन देहेन चारुपद्मायतेक्षणः।
पद्मविन्दुकृताभासो ग्रीवायां शुभलक्षणः॥
व्योमपद्मो महाभागः सूर्य्यपादार्चने रतः।
करोतु ते महाशान्तिं महापापभयापहां॥
पुण्डरीकनिभेनापि देहेनामिततेजसा।
शङ्खशूलाङ्करचितैर्भूषितो मूर्ध्नि सर्व्वदा॥
महापद्मो महानागो नित्यं भास्करपूजकः।
स ते शान्तिं श्रियं जन्म निर्म्मलं संप्रयच्छतु॥
श्यामेन देहभारेण श्रीमान् कमललोचनः।
विषदर्पबलोन्मत्तो ग्रीवायां रेखयान्वितः॥
शङ्खपालः श्रिया युक्तः सूर्य्यपादकपूजकः।
महाविषहरो हृष्टः स च शान्तिं करोतु ते॥
अतिदेहेन गौरेण चन्द्रार्द्धकृतमस्तकः।
दीप्ताभोगकृताटोपः शुभलक्षणलक्षितः॥
कुलिशो नाम नागेन्द्रो नित्यं सूरपरायणः।

अपहृत्य विषं घोरं करोतु तव शान्तिकं॥
अन्तरिक्षे च ये नागा ये नागाः स्वर्गसंस्थिताः।
पाताले ये स्थिता नागाः सर्व्वेष्वत्र समाश्रिताः।
सूर्य्यपादार्चनरताः शान्तिं कुर्व्वन्तु ते सदा॥
नागिन्यो नागकन्याश्च तथा नागकुमारकाः।
सूर्य्यभक्ताः सुमनसः शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा॥
य इमं नागसंस्थानं कीर्त्तयेच्छृणुयात्तथा।
न तस्य सर्पा हिंसन्ति न विषं क्रमते सदा॥
गङ्गा पुण्या महादेवी यमुना नर्म्मदा नदी॥
गोमती चापि शोना च वरुणा देविका तथा।
सर्व्वग्रहपतिं देवं देवेशं लोकनायकं॥
पूजयन्ति सदा नद्यः सूर्य्यवद्भावभाविताः।
शान्तिं कुर्व्वन्तु ते नित्यं सूर्य्यध्यानैकमानसाः॥
नैरञ्जना नाम नदी शोनश्चापि महानदः।
मन्दाकिनी च परमा तथा सत्यान्विता शुभा॥
एताश्चान्याश्च बह्वो वै भुवि दिव्यन्तरीक्षगाः।
सूर्य्यार्चनपरा नद्यः कुर्व्वन्तु तव शान्तिकं॥
महावैश्रवणो देवो यक्षराजो महाबलः।
यक्षकोटिपरो वारो यक्षसंक्षेपसंयुतः॥
महाविभवसम्पन्नः सूर्य्यपादार्चने रतः।
सूर्य्यध्यानैकपरमः सूर्य्यभावेन भावितः।
शान्तिं करोतु ते प्रीतः पद्मपत्रायतेक्षणः॥
मणिभद्रो महायक्षो मणिरत्नविभूषितः।

मनोहरेण हारेण कम्बुलग्नेन राजते॥
यक्षिणीयक्षकन्याभिः परिवारितविग्रहः।
सूर्य्यार्चनसमायुक्तः करोतु तव शान्तिकं॥
सुवीरो नाम यक्षेन्द्रो मणिकुण्डलभूषितः।
ललाटे हेमपट्टेन प्रबद्धेन विराजते॥
वापिको नाम यक्षेन्द्रः कण्ठाभरणभूषितः।
मुकुटेन विचित्रेण बहुरत्नान्वितेन च॥
यक्षवृन्दसमाकीर्णो यक्षकोटिसमन्वितः।
सूर्य्यार्चनपरः श्रीमान् करोतु तव शान्तिकं॥
धृतराष्ट्रो महाराजा नागयक्षाधिपः खग।
दिव्यपट्टोऽगुरुच्छन्नो मणिकाञ्चनभूषितः॥
सूर्य्यभक्तः सूर्य्यरतः सूर्य्यपूजापरायणः।
सूर्य्यप्रसादसम्पन्नः करोतु तव शान्तिकं॥
पूर्णभद्रो महायक्षः सर्व्वालङ्कारभूषितः।
ललाटे हेमपट्टेन प्रबद्धेन विराजते॥
बहुयक्षसमाकीर्णो यक्षकोटिशतेन च।
सूर्य्यप्रणामपरमः सूर्य्यभक्त्या समन्वितः।
सूर्य्यार्चनसमायुक्तः करोतु तव शान्तिकं॥
विरूपाक्षाख्ययक्षेन्द्रो श्वेतवासा महाद्युतिः।
नानाकाञ्चनमालाभिरुपशोभितकाञ्चनः॥
सूर्य्यपूजापरो नित्यं कञ्जाक्षः कञ्जसन्निभः।
तेजसादित्यसङ्काशः करोतु तव शान्तिकं॥
अन्तरिक्षगता यक्षाः ये यक्षा सूर्य्यवासिनः।

गिरिदुर्गेषु ये यक्षाः पातालतलवासिनः ।
नानारूपधरा यक्षा सूर्य्यभक्ता दृढ़व्रताः ॥
ये तद्भक्तास्तन्मनसः सूर्य्यपूजासमुत्सुकाः ।
शान्तिं कुर्वन्तु ते हृष्टाः शान्ताः शान्तिपरायणाः ॥
यक्षिण्यो विविधाकारास्तथा यक्षकुमारकाः ।
यक्षकन्या महाभागा सूर्य्यस्यार्चनतत्पराः ॥
शान्तिं स्वस्त्ययनं क्षेमं बलं कल्याणमुत्तमं ।
सिद्धिमाशु प्रयच्छन्तु नित्याश्च सुसमाहिताः ॥
अर्चिताः सर्वतः सर्वे यक्षाश्चैव महाधिपाः ।
सूर्य्यभक्ता सदाकालं शान्तिं कुर्व्वन्तु ते पराम् ॥
सागराः सर्वतः सर्वे ग्रहरत्नानि सर्वशः ।
सूर्य्यस्याराधनपराः कुर्वन्तु तव शान्तिकं ॥
राक्षसाः सर्व्वतश्चैव घोररूपा महाबलाः ।
स्थूलाश्च राक्षसा ये तु अन्तरिक्षचराश्च ये ॥
पाताले राक्षसा ये तु नित्यं सूर्य्यार्चने रताः ।
प्रेतानामधिपाः सर्वे प्रेताश्च सर्व्वतोमुखाः ।
अतिदीप्ताश्च ये प्रेता ये प्रेता रुधिराशनाः ॥
अन्तरिक्षचराः प्रेतास्तथाऽन्ये स्वर्गवासिनः ।
पाताले भूतले वापि ये प्रेताः कामचारिणः ॥
एकचक्रो रथो यस्य यस्तु देवो वृषध्वजः ।
तेजसा तस्य देवस्य शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥
ये पिशाचा महावीर्या ऋद्धिमन्तो महाबलाः ।
नानारूपधराः सर्वे नाना च गुणवत्तराः ॥

अन्तरिक्षे पिशाचा ये स्वर्गे ये च महाबलाः ।
पाताले भूतले ये च बहुरूपा मनोजवाः ॥
यस्याहं सारथिर्व्वीर यस्य त्वं तुरगः सदा ।
तेजसा तस्य देवस्य शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥
अपस्मारग्रहाः सर्वे सर्वे वापि ज्वरग्रहाः ।
गर्भबालग्रहा ये च दन्तरोगग्रहाश्च ये ।
अन्तरिक्षग्रहा ये च शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥
इति देवादयः सर्वे सूर्य्यज्ञानविधायिनः ।
कुर्वन्तु जगतः शान्तिं सूर्य्यभक्त्यैव सर्वदा ॥
जयः सूर्य्याय देवाय तमोमोहविरोधिने ।
जगतामेकसूर्य्याय भास्कराय नमोऽस्तु ते ॥
ग्रहोत्तमाय शान्ताय जयः कल्याणकारिणे ।
जयः पद्मविकाशाय बुद्धरूपाय ते नमः ॥
जयो दीप्तिविधानाय जयः कान्तिविधायिने ।
तमोघ्नाय अजेयाय अजिताय नमो नमः ॥
जयो वाजेयदीप्तेश सहस्रकिरणोज्वल ।
रयनिर्जितलोकाय बहुरूपाय ते नमः ॥
गायत्रीवेदरूपाय सावित्रीदयिताय च ।
धराधराय सूर्य्याय मार्त्तण्डाय नमो नमः ॥

सुमन्तुरुवाच ।

———000(D)000———

एवं हि विहिता शान्तिररुणेन महीपते ।
श्रेयसे वैनतेन्द्राय गरुडाय महात्मने ॥

एवमन्येऽपि राजेन्द्र मानवाश्चाङ्गरोगिणः ।
अस्मिन् कृतेऽग्निकार्ये तु नीरुजास्ते भवन्ति हि ॥
तस्माद्यत्नेन कर्त्तव्यो अग्निकार्य्यो विधानतः ।
करणीयन्तु राजेन्द्र यदिदं शान्तिलक्षणं ॥
ग्रहोत्पातेषु दुर्भिक्षे उत्पातेषु च कृत्स्नशः ।
अवर्षमाने पर्जन्ये लक्षहोमसमन्वितं ॥
जपित्वा येऽग्निसूक्तन्तु ध्यात्वा रविं प्रयत्नतः ।
एवं कृते भुवन्देवो वर्षते कामतो नृणां ॥
इत्येवं शान्तिकाध्यायं यः पठेच्छृणुयादपि ।
विहाय सर्वलोकांस्तु सूर्य्यलोके महीयते ॥
कन्यार्थी लभते कन्यां जयकामो जयं लभेत् ।
अर्थकामो लभेदर्थं पुत्रकामः सुतं लभेत् ॥
यं यं प्रार्थयते कामं शृणुते मानवो नृप ।
तं सर्वं शीघ्रमाप्नोति भास्करस्य प्रियो भवेत् ॥
श्रुत्वा शान्तिमिमां पुण्यां समग्रां कुरुनन्दन ।
संग्रामं प्रविशेद्यस्तु ध्यायमानो दिवाकरं ।
सर्वान् जित्वा रणे शत्रुन् आनन्दपरमो भवेत् ॥
अक्षयं मोदते कालं अतिरस्कृतशासनः ।
व्याधिभिर्नाभिभूयेत पुत्रपौत्रप्रतिष्ठितः ॥
भवेदादित्यसदृशस्तेजसा प्रभया तथा ॥
यमुद्दिश्य पठेद्वीर वाचको मानवं प्रति ।
न पीड्यते त्वसौ दोषैर्वातकम्पकफात्मकैः ॥
नाकाले मरणं तस्य सर्वपापैर्न दुष्यते ।

न विषं क्रमते देहे न जड़ो मान्धमूकता।
न चोत्पातभयं तस्य नचैवाऽरिभयं भवेत् ॥
ये रोगा ये महोत्पाता ये ग्रहा यन्महाविषं।
ते सर्वे प्रशमं यान्ति श्रवणादस्य भारत ॥
यत्पुण्यं सर्वतीर्थानां गङ्गादिषु निषेवितः।
तत्पुण्यं कोटिगुणितं प्राप्नोति श्रवणादिभिः ॥
दशानां राजसूयानां अन्येषाञ्च विशेषतः।
जीवेद्वर्षशतं साग्रं सर्वबाधाविवर्जितः ॥
गोघ्नश्चैव कृतघ्नश्च ब्रह्महा गुरुतल्पगः।
शरणागतहन्ता च ये च विश्वासघातकाः ॥
दुष्टपापसमाचारः पितृहा मातृहा तथा।
श्रवणाच्चैव पाठेन मुच्यते सर्वपातकैः ॥
इतिहासमिदं पुण्यं अग्निकार्य्यमनुत्तमं।
सूर्य्यभक्ते सदा देयं सूर्य्येण कथितं पुरा ॥
अरुणस्य महावाहो अरुणेनानुजस्य तु।
अनुजेन पुरा प्रोक्तं भोजकानां महात्मनां ॥
सूर्य्यधर्म्ममुखानान्तु शाकद्वीपे महीपते।
तेनापि कथितं मह्यं सर्वपापभयापहं ॥

इति भविष्यपुराणोक्ता महाशान्तिः।

—oo—

अथाद्भुतशान्तयः। तत्र मत्स्यपुराणे।

मनुरुवाच।

दिव्यन्तरिक्षे भौमेषु या शान्तिरभिधीयते।

तामहं श्रोतुमिच्छामि महोत्पातेषु केशव ॥

मत्स्य उवाच।

अथातः संप्रवक्ष्यामि त्रिविधेष्वद्भुतेषु च।
विशेषेण तु भौमेषु शान्तिं कुर्य्यान्नराधिप॥
अभया चान्तरिक्षेषु भौमा दिव्येषु पार्थिव।
विजिगीषुपराद्राजन् भूतिकामस्य यो भवेत्॥
विजिगीषुपरेणैव अभियुक्तस्तथा परैः।
तथाभिचारशङ्कायां शत्रूणामपि नाशने।
भये महति संप्राप्ते अभया शान्तिरिष्यते॥
भूतेषु दृश्यमानेषु रौद्री शान्तिस्तथेष्यते।
वेदनाशे समुत्पन्ने जने जाते च नास्तिके।
अपूज्यपूजने जाते ब्राह्मी शान्तिस्तथेष्यते॥
भविष्यत्यभियोगे च परचक्रभयेऽपि च।
राष्ट्रभेदे च संप्राप्ते रौद्री शान्तिः प्रशस्यते॥
त्र्यहातिरिक्ते पवने रूक्षे सर्वदिगुत्थिते।
वैकृते वातजे व्याधौ वायवी शान्तिरिष्यते॥
अनावृष्टिभये जाते तथा विकृतवर्षणे।
जलाशयविकारे च वारुणी शान्तिरिष्यते॥
अभिशापभये प्राप्ते भार्गवी च तथाद्विज।
जाते प्रसववैकृत्ये प्राजापत्या महाभुज।
उपस्कराणां वैकृत्ये त्वाष्ट्री पार्थिवनन्दन॥
बालानां शान्तिकामस्य कौमारी च तथा नृप।
आग्नेयीं कारयेच्छान्तिं संप्राप्ते वह्निवैकृते॥

आज्ञाभङ्गे तथा जाते जायाभृत्यादिसंक्षये।
अश्वानां शान्तिकामस्य तद्विकारे समुत्थिते।
अश्वानां काममानस्य गान्धर्वी शान्तिरिष्यते॥
गजानां शान्तिकामस्य तद्विकारे समुत्थिते।
गजानां काममानस्य शान्तिराङ्गिरसी भवेत्॥
पिशाचादिभये जाते शान्तिस्तु नैर्ऋती स्मृता।
अपमृत्युभये जाते दुःस्वप्नेऽपि महाभुज॥
काम्यान्तु कारयेच्छान्तिं संप्राप्ते मकरे तथा।
धननाशे समुत्पन्ने कौवेरी शान्तिरिष्यते॥
वृक्षाणाञ्च तथार्थानां वैकल्ये समुपस्थिते।
भूमिकामस्तथा शान्तिं पार्थिवीञ्च प्रयोजयेत्॥
प्रथमे दिनयामे च रात्रौ वा मनुजोत्तम।
हस्ते स्वात्याञ्च चित्रायामादित्ये वाश्विने तथा॥
आर्यम्णे सोमजातेषु वायव्येष्वद्भुतेषु च।
द्वितीये दिनयामे च रात्रौ च रविनन्दन॥
पुष्याग्नेयविशाखायां पित्र्याजभरणीषु च।
उत्पाता ये तथा भाग्ये आग्नेयीं तेषु कारयेत्॥
तृतीये दिनयामे च रात्रौ च रविनन्दन।
रोहिण्यां वैष्णवे ब्राह्मे वासवे विश्वदैवते॥
ज्येष्ठायाञ्च तथा मैत्रे ये भवन्त्यद्भुताः क्वचित्।
ऐन्द्रीं भेषु प्रयोक्तव्या महाशान्तिः कुलोद्वह॥
चतुर्थे दिनयामे च रात्रौ च रविनन्दन।
सार्पे पौष्णे तथार्द्रायामहिर्बुध्न्ये च दारुणे॥

मूले वरुणदैवत्ये ये भवन्त्यद्भुतास्तथा ।
वारुणी तेषु कर्त्तव्या महाशान्तिर्महोचिता ॥
भिन्नमण्डलवेलासु ये भवन्त्यद्भुताः क्वचित् ।
शान्तिः शान्तिद्वयं कार्य्यं निमित्ते सति नान्यथा ।
निर्निमित्तकृता शान्तिर्निमित्तमुपजायते ॥

बाणप्रहारा न भवन्ति यद्व-
द्राजन्नृणां सन्मोहनैर्युतानां ।
दैवोपघाता न भवन्ति तद्व-
द्धर्मात्मनां शान्तिपरायणानां ॥

मनुरुवाच ।

अद्भुतानां फलं देव शमनञ्च तथा वद ।
त्वं हि वेत्सि विशालाच ज्ञेयं सर्वमशेषतः ॥

मत्स्य उवाच ।

अत्र ते वर्णयिष्यामि यदुवाच महातपाः ।
अत्र मे वृद्धगर्गस्तु सर्वधर्म्मभृताम्वर ॥
सरस्वत्यां समासीनं गार्गं पार्थिवनन्दन ।
पप्रच्छेति महातेजा गर्गो मुनिवरप्रियः ॥

अत्रिरुवाच ।

पश्यतां पूर्वरूपाणि जनानां कथयस्व मे ।
नगराणां तथा राज्ञां त्वं हि सर्वविदुच्यते ॥

गर्ग उवाच ।

पुरुषापचारनियमादपराध्यन्ति देवताः ।
ततोपराधाद्देवानामुपसर्गः प्रवर्त्तते ॥

दिव्यान्तरिक्षं भौमञ्च त्रिविधं परिकीर्त्तितं।
ग्रहर्क्षवैकृतं दिव्यमान्तरिक्षं निबोध मे॥
उल्कापातो दिशान्दाहः परिवेशस्तथैव च।
गन्धर्वनगरञ्चैव वृष्टिश्च विकृता च या।
एवमादीनि लोकेऽस्मिन् आकाशानि विनिर्द्दिशेत्॥
चरस्थिरभवं भौमं भूकम्पमपि भूमिजं।
जलाशयानां वैकृत्यं भौमं तदपि कीर्त्तितं॥
भौमञ्चाल्पफलं ज्ञेयं चिरेण परिपच्यते।
अभयं मध्यफलदं मध्यकालफलं द्रुतं॥
अद्भुते तु समुत्पन्ने यदि वृष्टिः शिवा भवेत्।
सप्ताहाभ्यन्तरे ज्ञेयमशुभं निष्फलं भवेत्॥
अद्भुतस्य विपाकश्चेद्विना शान्त्या न दृश्यते।
त्रिभिर्वर्षैस्तु तद्भव्यं सुमहद्भयकारकं॥
राज्ञः शरीरे लोके च पुरे दारे पुरोहिते।
पाकमायाति पुत्रेषु तथा वै कोशवाहने॥
ऋतुस्वभावाद्राजेन्द्र भवन्त्यद्भुतसंश्रिताः।
शुभावहाश्च विज्ञेयास्तांस्त्वं मे वदतः शृणु॥
वज्राशनि-महीकम्प-सन्ध्यानिर्घात-निःस्वनाः।
परिवेषरजोधूम-रक्तार्कास्तमनोदयाः॥
द्रुमेभ्योऽथ रसस्नेहो बहुशस्यफलोद्गमाः(१)।
गोपक्षिमदवृद्धिश्च शुभानि(२) मधुमाधवे॥

---

(१) मधुपुष्पफलोद्गमा इति क्वचित् पाठः।

(२) शिवाय इति पुस्तकान्तरे पाठः।

तारोल्कापातकलुषं कपिलार्केन्दुमण्डलं।
अनग्निज्वलनं स्फोटं धूमदिव्यानिलाहतं(१)॥
रक्तपद्मारुणा सन्ध्या नभः क्षुब्धार्णवोपमं।
सरितां चाम्बुसंशोषं दृष्ट्वा ग्रीष्मे शुभं वदेत्॥
शक्रायुधपरिवेशौ विद्युच्छुष्कविरोहणं।
कम्पोद्वर्त्तनवैकृत्यं रसनं दरणं क्षितेः॥
नद्युदपानसरसां वृष्ट्यर्द्धाभरणप्लवाः।
शीर्षाणि वारिरोधानां वर्षासु शुभदानि च(२)॥
दिव्यस्त्रीरूपगन्धर्वविमानाद्भुतदर्शनं(३)।
ग्रहनक्षत्रताराणां दर्शनं वागमानुषी(४)॥
गीतवादित्रनिर्घोषो वनपर्व्वतसानुषु।
शस्यवृद्धीरसोत्पत्तिः शरत्काले शुभाः स्मृताः(५)॥
शीतानिलतुषारत्वं नन्दनं मृगपक्षिणां।
रक्षोयक्षादिसत्त्वानां दर्शनं वागमानुषी॥
दिशो धूमान्धकाराश्च शलभा वनपर्वताः।
उच्चैः सूर्योदयास्तत्वं हेमन्ते शोभनाः स्मृताः॥
हिमपातानिलोत्पातविरूपाद्भुतदर्शनं।
दृष्टाञ्जनाभमाकाशन्तारोल्कापातपिञ्जरं॥

---

(१) धूमरेणुनिराकुलमिति वा पाठः।
(२) पतनद्याद्रिमेघानां वर्षासु न भयावहमिति वा पाठः।
(३) दिव्यस्त्रीभूतगन्धर्वविमानाद्भुतदर्शनमिति पाठान्तरं।
(४) दर्शनन्तु दिवाम्बरे इति क्वचित् पाठः।
(५) अपापाः शरदि स्मृता इति वा पाठः।

चित्रागर्भोद्भवास्त्वेषु गोजाश्वमृगपक्षिणां।
पत्राङ्कुरलतानाञ्च विकाराः शिशिरे शुभाः॥

ऋतुस्वभावेन विनाद्भुतस्य
जातस्य दृष्टस्य तु शीघ्रमेतत्।
कृतागमा शान्तिरनन्तरन्तु
कार्य्या यथोक्ता वसुधाधिपेन॥

इत्यद्भुतशान्तौ चौत्पातिकं।

———000———

गर्ग उवाच।

देवतार्चाः प्रनृत्यन्ति वेपन्ते प्रज्वलन्ति च।
आरटन्ति च रोदन्ति प्रतिष्ठन्ति हसन्ति च॥
उत्पत्तिञ्च निषीदन्ति प्रधावन्ति वसन्ति च।
भुञ्जतो विक्षिपन्ते वा शाकप्रहरणध्वजान्॥
अवाङ्मुखा वा तिष्ठन्ति स्थानात्स्थानं भ्रमन्ति च।
वमत्यग्निं तथाधूमं स्नेहरक्ते तथा वसां।
एवमादीनि दृश्यन्ते विकाराः सहसोत्थिताः॥
लिङ्गायतनचैत्येषु तत्र वासं न रोचयेत्।
राज्ञो वा मरणं तत्र स वा देशोविनश्यति॥
देवयात्रासु चोत्पातान् दृष्ट्वा देशभयं वदेत्।
पितामहस्वधर्म्मेषु तत्र वासं न रोचयेत्॥
वसूनां बभ्रुजं ज्ञेयं नृपाणां लोकपालजं।

ज्ञेयं सेनापतीनाञ्च यस्मात् स्कन्दशिखण्डिजं ॥
लोकानां विष्णुवाय्विन्द्रं विश्वकर्म्मसमुद्भवं।
विनायकोद्भवं ज्ञेयं गणानाञ्चैव नायक ॥
देवदेव नृपश्रेष्ठ देवस्त्रीषु नृपस्त्रियः।
वास्तु देवेषु विज्ञेयं गृहाणामेव नान्यथा ॥
देवतार्चाविकारेषु श्रुतिवेत्ता पुरोहितः।
देवतार्चान्तु गत्वा वै तांस्तामाच्छाद्य भूषयेत् ॥
पूजयेत्तां महाभाग गन्धमाल्यान्नसम्पदा।
मधुपर्केण विधिवदुपतिष्ठेदनन्तरं ॥
तल्लिङ्गार्चनमात्रेण स्थालीपाकं यथाविधि।
पुरोधा जुहुयादग्नौ सप्तरात्रमतन्द्रितः ॥

विप्राश्च पूज्या मधुरान्नपानैः
सदक्षिणैः सप्तदिनं द्विजेन्द्र।
प्राप्तेऽष्टमे च क्षितिगोप्रदानैः
सकाञ्चनैः शान्तिमुपैति पापं ॥

## इत्यद्भुतशान्तौ अर्चाविकृतोपशमनं।

———000———

गर्ग उवाच।

अनग्निर्दीप्यते यत्र राष्ट्रे भृशमतिस्वरः।
न दीप्यते चेन्धनवान् स राष्ट्रः पीड्यते नृप ॥
प्रज्वलेदद्रुमं यत्र तथार्द्रस्त्वा कथञ्चन।
प्रासादतोरणद्वारं नृपवेश्मसुरालयं।

एतानि यत्र दृश्यन्ते तत्र राजभयं भवेत् ॥
विद्युता वा प्रदृश्यन्ते तत्रापि नृपतेर्भयं।
अनैशानि तमांसि स्युः विशालमुपपद्यते।
धूमस्त्वनग्निजो यत्र तत्र विद्यान्महद्भयं ॥
तड़िद्विनाभ्रे गगने भयंस्याद्वृष्टिवर्जिते।
दिवा सतारे गगने तथैव भयमादिशेत् ॥
विकारस्त्वायुधानां स्यात्तत्र संग्राममादिशेत्।
त्रिरात्रोपोषितस्तत्र पुरोधाः सुसमाहितः।
समिद्भिः क्षीरवृक्षाणां सर्षपैश्च घृतेन च ॥

दद्यात्सुवर्णञ्च तथा द्विजेभ्यो
गाश्चैव वस्त्राणि तथा भुवञ्च।
एवं कृते पापमुपैति नाशं
यदग्निवैकृत्यभयं द्विजेन्द्र ॥

## इत्यद्भुतशान्तौ अग्निवैकृत्यं।

———000———

गर्ग उवाच।

पुरेषु येषु दृश्यन्ते पादपा दैवचोदिताः।
वदन्तो वा हसन्तो वा स्रवन्तो वा रसं बहु ॥
प्ररोहा वा विना बाधं शाखा मुञ्चन्त्यसंक्रमं।
फलं पुष्पन्तथाकालं दर्शयन्ति त्वाहायनाः ॥
पूर्व्वावस्थान्दर्शयन्ति फलं पुष्पं तथाभवं।
क्षीरं स्नेहं सुरां रक्तं मधु तोयं स्रवन्ति वा ॥

पुष्यन्त्यरोगाः सहसा शुष्कं रोहन्ति वा पुनः ।
उत्तिष्ठन्तीह पतिताः पतन्ति च तथोत्थिताः ॥
तत्र वक्ष्यामि ते ब्रह्मन् विपाकफलमेव च ।
रोदने व्याधिमभ्येति हसने देशविभ्रमं ॥
शाखाप्रपातने कुर्य्यात् संग्रामे योद्धपातनं ।
बालानां मरणं कुर्य्यात् बालानां फलपुष्पतः ॥
स्वराष्ट्रभेदं कुरुते फलपुष्पमनन्तरं ।
क्षयं सर्व्वत्र गोक्षीरं स्नेहं दुर्भिक्षलक्षणं ॥
शुष्केषु संप्रहारेषु वीर्य्यमन्नं न रोहति ।
पर्व्वतानां महाराजभयं भेदकरश्चवेत् ॥
स्थानात् स्थानन्तु गमने देशभङ्गं तथादिशेत् ॥
जल्पत्स्वपि च वृक्षेषु रोदते वा धनक्षयं ॥
एतत्पूजितवृक्षेषु सर्व्वराज्ञोऽपि पच्यते ।
पुष्पैः फलैश्चाधिकृते राज्ञो मृत्युस्तथादिशेत् ॥
अन्येषु चैव वृक्षेषु वृक्षोत्पातेष्वतन्द्रितः ।
आच्छादयित्वा तं वृक्षं गन्धमाल्यैर्विभूषयेत् ॥
वृक्षोपरि तथाछत्रं कुर्य्यात्पापप्रशान्तये ।
शिवमभ्यर्च्चयेद्देवं पशुञ्चास्मै निवेदयेत् ।
मूलेभ्य इति यद्दीमान् कृत्वा रुद्रं जपेत्ततः ॥

मध्वाज्ययुक्तेन तु पायसेन
संपूज्य विप्रांश्च भुवञ्च दद्यात् ।
गीतेन नृत्येन तथार्च्चनेन
देवं हरं पापविनाशहेतोः ॥

इत्यद्भुतशान्तौ वृक्षोत्पातशमनं ।

गर्ग उवाच।

अतिवृष्टिरनावृष्टिर्दुर्भिक्षादिभयं मतं।
अनृतौ तु दिनादूर्द्धं वृष्टिर्ज्ञेया भयाय तु॥
अनल्पे विकृता चैव विज्ञेया राजमृत्यवे।
शीतोष्णताविपर्य्यासे ऋतूनां रिपुजम्भयं॥
शोणितं वर्षते यत्र तत्र शस्त्रभयं भवेत्।
अङ्गारपांशुवर्षेषु नगरं संविनश्यति।
मज्जास्थिस्नेहमांसानां जनमारभयं भवेत्॥

गर्ग उवाच।

प्रविशन्ति यदा ग्राममारण्यमृगपक्षिणः।
अरण्यं यान्ति वा ग्राम्याः स्थलं यान्ति जलोद्भवाः॥
स्थलजा वा जले यान्ति घोरं वा सन्ति निर्भयाः।
राजद्वारे पुरद्वारे शिवा वाप्यशिवप्रदाः॥
दिवा रात्रिचरा वापि रात्रौ वापि दिवाचराः।
ग्राम्यास्त्यजन्ति ग्रामं वा तज्ञोत्पातं विनिर्द्दिशेत्॥
दीप्ता वा सन्ति सन्ध्यास्तु मण्डलानि च कुर्व्वते।
रसन्ते विप्रियं यत्र तदा प्रेतफलं लभेत्॥
प्रदोषे कुक्कुटावासो हेमन्ते वापि कोकिलः।
अर्कोदयेऽर्काभिमुखी शिवा यमभयं वदेत्॥
गृहङ्कपोतः प्रविशेत् क्रव्याद्वा मूर्ध्नि लीयते।
मधु वाऽमक्षिका कुर्य्यात् मृत्युर्गृहपतेर्भवेत्॥
प्राकारद्वारगेहेषु तोरणापणवीथिषु।
केतुच्छत्रायुधाद्येषु क्रव्यात् संपतते यदि॥

जायन्ते वाथ वाल्मीका मधु वा स्यन्दते यदि।
प्रदेशो नाशमायाति राजा च म्रियते तदा॥
मूषिकान् शलभान् दृष्ट्वा प्रभूतं चुद्भयं भवेत्।
काष्ठोलूकास्थिशृङ्गास्याः श्वानो मरकवेदिनः॥
दुर्भिक्षवेदना ज्ञेयाः काका धान्यमुषो यदि।
जना अभिभवन्ति स्म निर्भया रणवेदिनः॥
काको मैथुनयुक्तश्च श्वेतः स यदि दृश्यते।
राजा वा म्रियते तत्र तदा देशो विनश्यति॥
उलूको वसते यत्र निपतेद्वा तथा गृहे।
ज्ञेयो गृहपतेर्मृत्युर्धननाशस्तथैव च॥
मृगपक्षिविकारेषु कुर्य्याद्धोमं सदक्षिणं।
देवाः कपोत इति च जप्तव्यं पञ्चभिर्द्विजैः॥
सुदेव इति चैकेन देया गावः सदक्षिणाः।
जपेच्छाकुनसूक्तञ्च मनोवेदशिरांसि च॥
देवाः कपोतादयो मन्त्रा ऋग्वेदे प्रसिद्धाः।

गावश्च देया विधिवत् द्विजानां
सकाञ्चना वस्त्रयुगोत्तरीयाः।
एवं कृते शान्तिमुपैति पापं
मृगैर्द्विजैर्वा विनिवेदितं यत्॥

इत्यद्भुतशान्तौ मृगपक्षिवैकृतोपशमनं।

———ooOoo———

गर्ग उवाच।

प्रासादतोरणच्छादं द्वारं प्राकारवेश्मनां।

अनिमित्तन्तु पतितं वृद्धानां राजमृत्यवे॥
रजसा वाष्पधूमेन दिशो यत्र समाकुलाः।
आदित्यचन्द्रताराश्च विवर्णा भयवृद्धये॥
राक्षसा यत्र दृश्यन्ते ब्राह्मणाश्च विधर्म्मिणः।
ऋतवस्तु विपर्य्यस्ता अपूज्यं पूजयेज्जनः।
नक्षत्राणि वियोगानि तन्महद्भयलक्षणं॥
केतूदयोपरागे च छिद्रता शशिसूर्य्ययोः।
फलं पुष्पं तथा धान्यं हिरण्याभरणानि च॥
पांशुजन्तु(१) फलानाञ्च वर्षणे रोगजभयं।
छिद्रश्चातिप्रवर्षायां शस्यानां प्रीतिवर्द्धनं॥
विरजस्के रवावभ्रे यदा च्छाया न दृश्यते।
दृश्यते न प्रदीपे वा तत्र देशभयं भवेत्॥
निरभ्रे वापि रात्रौ वा श्वेतं याम्योत्तरेण च।
इन्द्रायुधं तथा दृष्ट्वा उल्कापातं तथैव च॥
दिग्दाहपरिवेषौ च गन्धर्वनगरन्तथा।
परचक्रभयं ब्रूयाद्देशोपद्रवमेव च॥

सूर्य्येन्दुपर्जन्यसमीरणानां
होमस्तु कार्य्यो विधिवद्द्विजेन्द्रैः।
धान्यानि गोकाञ्चनदक्षिणाश्च
देया द्विजानामघनाशहेतोः॥

इत्यद्भुतशान्तौ वृष्टिवैकृतप्रशमनं।

---

१ पत्रे ति क्वचित् पुस्तके पाठः।

गर्ग उवाच ।

नगरादपसर्पन्ते समीपमुपयान्ति वा ।
नद्यो ह्रदप्रस्रवणा विरसा हि भवन्ति च ॥
विवर्णकलुषं तप्तं फेनवर्जन्तु सङ्कुलं ।
क्षीरस्नेहसुरारक्तं वहन्ते बहुलोदकाः ।
षण्मासाभ्यन्तरे तत्र परचक्रभयं भवेत् ॥
जलाशया नदन्ते च प्रज्वलन्ति कथन्ति वा ।
विजल्पन्तेऽतिजिह्माश्च ज्वालाधूमं सृजन्ति च ॥
अखाते वा जलोत्पातः समर्था वा जलाशयाः ।
सगीतशब्दा दृश्यन्ते जनमारोऽत्र सम्भवेत् ॥
दिव्याम्भोगोभयं सर्पिर्मधुनातावसिचनं ।
जप्तव्या वारुणा मन्त्रास्तैस्तु होमो जले भवेत् ॥

मध्वाज्ययुक्तं परमान्नमत्र
देयं द्विजानां द्विजभोजनार्थं ।
गावश्च देयाः सितवस्त्रयुक्ता-
स्तथोदकुम्भाः सकलाघशान्त्यै ।

## इत्यद्भुतशान्तौ सलिलाशयवैकृतं ।

——000——

गर्ग उवाच ।

अकालप्रसवा नार्य्यः कालातीतप्रजास्तथा ।
विकृतप्रसवाश्चैव युग्मप्रसवनास्तथा ॥
अमानुषाश्च षण्ढाश्च सञ्जाता व्यञ्जनास्तथा ।

हीनाङ्गा अधिकाङ्गाश्च जायन्ते यदि वा नयः ॥
पशवः पक्षिणश्चैव तथैव च सरीसृपाः।
विनाशन्तस्य देशस्य कुलस्य च विनिर्दिशेत् ॥

निर्वासयेत्तां नृपतिश्च राष्ट्रात्
स्त्रियश्च पूज्याश्च ततो द्विजेन्द्राः।
यत्ट्च्छकैर्ब्राह्मणतर्पणञ्च
लोके ततः शान्तिमुपैति पापं।

इति वैकृतशान्तौ प्रसववैकृतं।

———000———

गर्ग उवाच।

यान्ति यानान्ययुक्तानि युक्तान्यपि न यान्ति चेत्।
चोद्यमानानि तत्र स्यात् महद्भयसमुत्थितं ॥
वाद्यमाना न वाद्यन्ते वाद्यन्ते वाप्यनाहताः।
अचलाश्च चलन्तोव न चलानि चलन्ति च।
उपस्करादिविकृते घोरं शस्त्रभयं भवेत् ॥

वायोस्तु पूजा द्विजपुङ्गवैश्च
कृत्वा तदुक्तांश्च जपेच्च मन्त्रान्।
दद्यात् प्रभूतं परमान्नमन्नं
सदक्षिणान्तेन शमोऽस्य भूपतेः ॥

इत्युपस्करवैकृतोपशमः।

———000———

अहर्त्तविकृतिर्यत्र तत्रापि भयमादिशेत् ।
स्त्रियश्च कलहायन्ते वाचा निघ्नन्ति बालकान् ॥
क्रियाणामुचितानाञ्च विस्थितिर्यत्र दृश्यते ।
अग्निर्यत्र न दीप्येत हूयमानासु शान्तिषु ॥
पिपीलिकाश्च क्रव्यादा यान्ति वान्तरितास्ततः ।
पूर्णकुम्भाः स्रवन्ते च हविर्वा विप्रलुप्यते ॥
मङ्गल्याः स्वामिनो यत्र न श्रूयन्ते समन्ततः ।
वेपथुर्बाधते वापि प्रोत्साहे सति निन्दितः(१) ॥
न च देवेषु वर्त्तन्ते यथावद्ब्राह्मणेषु च ।
मन्दघोषानि वाद्यानि वाद्यन्ते विस्वराणि च ॥
गुरुमित्रद्विषो यत्र शत्रुपूजारता जनाः ।
ब्राह्मणान् सुहृदोमान्यान् जनो यत्रावमन्यते ॥
शान्तिमङ्गलहोमेषु नास्तिको यत्र जायते ।
राजा वा म्रियते यत्र सर्व्वदेशो विनश्यति ॥
राज्ञो विनाशे संप्राप्ते निमित्तानि निबोध मे ।
ब्राह्मणान् प्रथमं द्वेष्टि ब्राह्मणांश्च विनिन्दति ॥
ब्राह्मणानवमन्येत ब्राह्मणांश्च जिघांसति ।
न तान् स्मरति कृत्येषु याचितश्चावमीयते ॥
नमनञ्च नचाशिश्च प्रशंसां नाभिनन्दति ।
अपूर्व्वन्तु करं लोभात्तथा सम्पीड़िते जने ॥

---

१ प्रहसन्ति स्तुवन्ति चेति क्वचित् पाठः ।

एतांश्चाभ्यर्चयेत् सम्यक् सपत्नीकान् द्विजोत्तमान्।
भोज्यानि चैव कार्य्याणि सुराणां बलयस्तथा॥

गावश्च देया द्विजपुङ्गवेभ्यो
भुवस्तथा काञ्चनमम्बरञ्च।
होमश्च कार्य्यो द्विजपूजनञ्च
एवं कृते शान्तिमुपैति पापं॥

इति मत्स्यपुराणोक्तान्यद्भुतशान्तिकानि समाप्तानि।

इति श्रीमहाराजाधिराज-श्रीमहादेवस्य समस्तकरणा-
धीश्वर-सकलविद्याविशारद-श्रीहेमाद्रिविरचिते
चतुर्व्वर्गचिन्तामणौ व्रतखण्डे
अद्भुतशान्तिकानि समाप्तानि।

---



